कल्याण

संक्षिप्त

पद्मपुराणाङ्क



जगन्नाथ ४४

दुर्गति-नाशिनि दुर्गा जय जय, काल-विनाशिनि काली जय जय ।
उमा रमा ब्रह्माणी जय जय, राधा सीता रुक्मिणि जय जय ॥
साम्ब सदाशिव साम्ब सदाशिव साम्ब सदाशिव जय शंकर ।
हर हर शंकर दुखहर सुखकर अघ-तम-हर हर हर शंकर ॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
जय जय दुर्गा जय मा तारा । जय गणेश जय शुभ-आगारा ॥
जयति शिवा-शिव जानकि-राम । गौरी-शंकर सीता-राम ॥
जय रघुनन्दन जय सिया राम । व्रज-गोपी-प्रिय राधेश्याम ॥
रघुपति राघव राजा राम । पतितपावन सीता-राम ॥

[प्रथम संस्करण ८०१००, सं० २००१]

कोई सज्जन विज्ञापन भेजनेका कष्ट न उठायें ।

कल्याणमें बाहरके विज्ञापन नहीं छपते ।

समालोचनार्थ पुस्तकें कृपया न भेजें ।

कल्याणमें समालोचनाका स्तम्भ नहीं है ।

वार्षिक मूल्य भारतमें ४≡) विदेशमें ६॥=) (१० शिलिङ्ग)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय ॥
जय जय विश्वरूप हरि जय । जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥
जय विराट जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥

इस अङ्कका मूल्य ४≡) विदेशमें ६॥= (१० शिलिङ्ग)

Edited by Hanumanprasad Poddar and C. L. Goswami, M. A., Shastri
Printed and Published by Ghanshyamdas Jalan at the Gita Press Gorakhpur, U P (India)


B.K. Mitra

श्रीहरिः

कल्याण-प्रेमियों तथा ग्राहकोंसे नम्र निवेदन

१—'संक्षिप्त पद्मपुराणाङ्क'में सृष्टिखण्ड और भूमिखण्डके ही दिये जानेकी संभावना गत संख्यामें दरसायी गयी थी, पर स्वर्गखण्डका भी जितना अंश उसमें जा सका, वह दे दिया गया है। भारतसरकारके आज्ञानुसार टाइटल और चित्रोंसहित अधिक-से-अधिक ३८४ पृष्ठ दिये जा सकते थे, वे दे दिये गये हैं।

२—वर्तमान महायुद्धके इस छठे सालमें कागज, स्याही, आर्टपेपर आदिके प्राप्त करनेकी भारी कठिनाईको देखते हुए इस विशेषाङ्कके ६४ लाइन चित्रयुक्त ठोस पाठ्यसामग्रीके ३६० पृष्ठ और आर्टपेपरपर छपे हुए १० बहुरंगे चित्र आदि सामग्रीको, आशा है, पाठकगण कम न समझेंगे।

३—इस अङ्कका मूल्य ४≥) है। यही वार्षिक मूल्य भी है। विदेशके लिये १० शिलिंग है। युद्धके कारण यदि परिस्थितिवश अगले अङ्क ग्राहकोंको न दिये जा सकें तो जितने अङ्क दिये जायँ, उतनेमें ही यह कीमत वसूल हुई समझनी होगी।

४—कल्याणके पुराने विशेषाङ्कोंमेंसे इस समय एक-आध ही उपलब्ध है। एवं कल्याणके पाठकोंका विशेषाङ्कोंके लिये बहुत आग्रह रहता है। इसलिये ऐसी चेष्टा की गयी है कि जिसमें अधिक-से-अधिक ग्राहकोंको यह विशेषाङ्क मिल सके। अतः कल्याण-प्रेमियोंकी सेवामें निवेदन है कि वे जिन-जिन प्रेमियोंको ग्राहक बनाना चाहें, उनके चन्देके ४≥) बहुत शीघ्र मनीआर्डरद्वारा भेज दें।

५—गत अङ्कमें दी हुई सूचनाके अनुसार यह विचार किया गया है कि मनीआर्डर भेजनेवाले ग्राहकोंके अङ्क चले जानेके बाद शेष ग्राहकोंके नाम वी० पी० भेज दी जाय। अतः जिन सज्जनोंको ग्राहक न रहना हो वे कृपा करके एक मनाईका कार्ड दे दें, ताकि वी० पी० भेजकर व्यर्थका नुकसान न उठाना पड़े।

६—जिन सज्जनोंके नाम वी॰ पी॰ जायगी, हो सकता है उनमेंसे कुछ सज्जन इधरसे वी॰ पी॰ जानेके समय ही उधरसे रुपये मनीआर्डरसे भेज दें। ऐसी हालतमें उन सज्जनोंसे प्रार्थना है कि वे वी॰ पी॰ लौटायें नहीं। वहीं रोक रखें और हमें तुरंत कार्ड लिखकर सूचना दें। रुपये आ गये होंगे तो हम उन्हें फ्री डिलेवरी देनेके लिये वहाँके पोस्टमास्टरको लिख देंगे। 'यदि संक्षिप्त पद्मपुराणाङ्क' रजिस्ट्रीसे मिल गया हो और वी॰ पी॰से भी अङ्क पहुँचे तो भी कृपया वी॰ पी॰ लौटायें नहीं। चेष्टा करके दूसरा नया ग्राहक बनाकर वी॰ पी॰ छुड़ानेकी कृपा करें और नये ग्राहकका नाम-पता साफ-साफ लिख भेजनेकी कृपा करें। हम उनके हृदयसे कृतज्ञ होंगे।

७—सभी ग्राहकोंको विशेषाङ्क रजिस्टर्ड पैकेटमें भेजे जाते हैं, जिन्हें डाक-विभागवाले करीब १॥ महीनेमें ले पाते हैं। अतः परिस्थिति समझकर ग्राहकोंको धैर्य रखना चाहिये।

८—सजिल्द अङ्क बनानेकी इस साल व्यवस्था नहीं की गयी है। अतः कोई सज्जन सजिल्दका चंदा भेजनेका कष्ट न करें। यदि किसीका जिल्दका पैसा आयेगा तो मनीआर्डर फीस काटकर लौटा दिया जायगा।

व्यवस्थापक—कल्याण, गोरखपुर

इस साल गीता-डायरी सन् १९४५ की नहीं छपेगी

भारतसरकारकी 'कागज-नियन्त्रण (मितव्ययिता) आज्ञा १९४४' के फलस्वरूप इस साल गीता-डायरी १९४५ की नहीं छप सकेगी; हमने इसके लिये विशेष आज्ञा प्राप्त करनेकी भी चेष्टा की, पर सफलता न मिल सकी।

आशा है कि गीता-डायरीके प्रेमी सज्जन परिस्थिति समझकर आर्डर देनेका कष्ट न उठायेंगे।

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, गोरखपुर

॥ श्रीहरिः ॥

लेखसहित संक्षिप्त पद्मपुराणके भावानुवादकी विषय-सूची

भूमि-खण्ड

स्वर्ग-खण्ड

पद्य-सूची

चित्र-सूची

तिरंगे

इकरंगे (लाइन)

सृष्टि-खण्ड

भूमि-खण्ड

गीता-जयन्ती

आगामी मार्गशीर्ष शुक्ल ११ ता० २६ नवम्बर रविवारको श्रीगीता-जयन्तीका पर्व है। इस पर्वपर ये कार्य होने चाहिये—

१—गीता-ग्रन्थकी पूजा।

२—गीताके वक्ता भगवान् श्रीकृष्णकी और गीताको महाभारतमें संयोजित करनेवाले भगवान् व्यासदेवकी पूजा।

३—गीताका यथासाध्य पारायण।

४—गीता-तत्त्वको समझने-समझानेके लिये तथा गीताका प्रचार करनेके लिये स्थान-स्थानमें सभाएँ और गीता-तत्त्व तथा गीताके महत्त्वपर प्रवचन और व्याख्यान।

५—पाठशालाओं और विद्यालयोंमें गीतापाठ और गीतापर व्याख्यान तथा गीता-परीक्षामें उत्तीर्ण छात्रोंको पुरस्कार-वितरण।

६—प्रत्येक मन्दिरमें गीताकी कथा और भगवान्‌का विशेष पूजन।

७—(जहाँ कोई अड़चन न हो, वहाँ) गीताजीकी सवारीका जलूस।

८—लेखक और कवि महोदय गीतासम्बन्धी लेखों और कविताओंद्वारा गीता-प्रचारमें सहायता करें।

श्रीगीता-जयन्तीके इस परम पुण्य पर्वपर गीताके अखण्ड पाठ स्थान-स्थानपर हों, इसके लिये विशेष उद्योग करना चाहिये। इससे सर्वत्र पारमार्थिक वातावरणका विस्तार होकर बड़ा लाभ होता है।

गीता ही एक ऐसा ग्रन्थ है, जिसको दुनियाभरके सभी विद्वान् परम आदरकी दृष्टिसे देखते हैं। गीताका एक-एक वाक्य मनन करने योग्य है। इस वर्ष यदि हमलोग गीताके निम्नलिखित श्लोकके अर्थपर ध्यान देकर तदनुसार अपना जीवन बनायें तो भगवान्‌की कृपासे हमारा बड़ा कल्याण हो सकता है। भगवान् कहते है—

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्। कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥ (१० । ९)

निरन्तर मुझमें मन लगानेवाले और मुझमें ही प्राणोंको अर्पण करनेवाले भक्तजन मेरी भक्तिकी चर्चाके द्वारा आपसमें मेरे प्रभावको जनाते हुए तथा गुण और प्रभावसहित मेरा कथन करते हुए ही निरन्तर संतुष्ट होते हैं और मुझ वासुदेवमें ही निरन्तर रमण करते हैं॥ ९॥

सम्पादक—कल्याण, गोरखपुर

गीता और रामायणकी परीक्षा

सद्विचारवान् सज्जनोंको श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीरामचरितमानस (रामायण) का महत्त्व समझाना नहीं होगा। हर्षकी बात है, इनके प्रचारके लिये कई वर्षोंसे दो परीक्षा-समितियाँ अपना कार्य कर रही हैं। प्रतिवर्ष हजारों परीक्षार्थी परीक्षामें बैठते हैं। अतएव सब सज्जनोंसे प्रार्थना है कि वे अपने-अपने स्थानोंकी हिन्दी-संस्कृत पाठशालाओंमें तथा स्कूल-कालेजोंमें गीता और रामायणकी पढ़ाईकी व्यवस्था करायें और यथासाध्य अधिक-से-अधिक विद्यार्थियोंको परीक्षामें बैठनेके लिये उत्साहित करें। आशा है कि सभी बुद्धिमान् सज्जन इस कार्यमें हमारी सहायता करेंगे। नियमावलीके लिये नीचे लिखे पतेपर पत्र लिखनेकी कृपा करें।

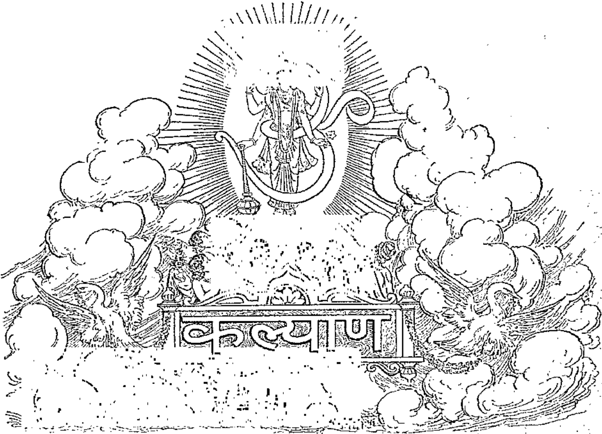
संयोजक—

श्रीगीता-रामायण-परीक्षा-समिति, गोरखपुर



साकार निराकार ब्रह्म

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥



कृष्णं च रामं शरणं व्रजन्ति जपन्ति जाप्यैः परिपूजयन्ति ।
दण्डप्रणामैः प्रणमन्ति विष्णुं तद्ध्यानयुक्ताः परिवैष्णवास्ते ॥

वर्ष १९ | गोरखपुर, अक्टूबर १९४४, सौर आश्विन २००१ | संख्या १ पूर्ण संख्या २१७

यो वन्द्यस्त्वृषिसिद्धचारणगणैर्देवैः सदा पूज्यते
यो विश्वस्य हि सृष्टिहेतुकरणे ब्रह्मादिकानां प्रभुः ।
यः संसारमहार्णवे निपतितस्योद्धारको वत्सल-
स्तस्यैवापि नमाम्यहं सुचरणौ भक्त्या वरौ साधकौ ॥

जो ऋषि, सिद्ध और चारणोंके वन्दनीय हैं; देवगण सदा जिनकी पूजा करते हैं, जो संसारकी सृष्टिका साधन जुटानेमें ब्रह्मा आदिके भी प्रभु हैं, संसाररूपी महासागरमें गिरे हुए जीवका जो उद्धार करनेवाले हैं, जिनमें वत्सलता भरी हुई है, जो सर्वश्रेष्ठ हैं, समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाले उन भगवान्‌के उत्तम चरणकमलोंको मैं भक्तिपूर्वक प्रणाम करता हूँ ।

पुराण

[अनन्तश्रीविभूषित ज्योतिष्पीठाधीश्वर जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य श्रीमद्ब्रह्मानन्दसरस्वतीजी महाराजका प्रसाद]

पुराण भारतका सच्चा इतिहास है। पुराणोंसे ही भारतीय जीवनका आदर्श, भारतकी सभ्यता, संस्कृति तथा भारतके विद्या-वैभवके उत्कर्षका वास्तविक ज्ञान प्राप्त हो सकता है। प्राचीन भारतीयताकी झाँकी, प्राचीन समयमें भारतके सर्वविध उत्कर्षकी झलक यदि कहीं प्राप्त होनी है तो पुराणोंमें। पुराण इस अकाट्य सत्यके द्योतक हैं कि भारत आदि-जगद्गुरु था और भारतीय ही प्राचीन कालमें आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक उन्नतिकी पराकाष्ठाको पहुँचे थे। पुराण न केवल इतिहास हैं अपितु उनमें विश्व-कल्याणकारी त्रिविध उन्नतिका मार्ग भी प्रदर्शित किया गया है।

कालान्तरके पश्चात् भारतमें दासताका युग आया। भारतकी संस्कृतिपर बारंबार घातक विदेशी आक्रमण हुए। पुराणोंका पठन-पाठन न होनेसे यहाँ अज्ञानान्धकार छा गया। परिणाम यह हुआ कि विदेशी प्रकाशके सहारेमें पुराण 'मिथ'—मिथ्या समझे जाने लगे। लोगोंकी श्रद्धा उनपरसे हटने लगी और निजज्ञानविहीन भारत इतस्ततः भटकने लगा। भारतीय जन-समुदाय अपनी सभ्यता और संस्कृति, अपने धर्म और उत्कर्ष आदिको भूलकर मूढ बालककी भाँति पाश्चात्य एवं अन्य विदेशी भौतिक चाकचिक्यसे चकित होने लगा। अब पाश्चात्य जगत् यदि किसी बातका आविष्कार कर पाता है तो संसारको पौराणिक बातोंकी सत्यताकी प्रतीति और पुष्टि होती है। परन्तु ये सब भौतिक आविष्कार हैं।

निरी भौतिक उन्नतिका परिणाम कितना भयंकर होता है, यह वर्तमान विश्वव्यापी युद्धसे स्पष्ट सिद्ध है। त्रिविध उन्नति ही विश्व-कल्याणकारिणी हो सकती है। पुराणोंद्वारा ही हमें त्रिविध उन्नतिका मार्ग मिल सकता है। अतएव अपने, अपनी जातिके, अपने देशके तथा विश्वके कल्याणके लिये पुराणोंका पठन-पाठन नितान्त आवश्यक है। विश्व-कल्याणके लिये श्रीभगवान् भारतीयोंको कल्याण-पथ प्रदर्शक पुराणोंके प्रति आदर, श्रद्धा और भक्ति प्रदान करें।

पुराण-तत्त्व-विवेचन

(लेखक—श्रीमन्माध्वसम्प्रदायाचार्य, दार्शनिकसार्वभौम, साहित्यदर्शनाद्याचार्य, तर्करत्न, न्यायरत्न पं० श्रीदामोदरजी गोस्वामी)

अंहः संहरदखिलं सकृदुदयादेव सकललोकस्य । तरणिरिव तिमिरपटलं जयति जगन्मङ्गलं हरेर्नाम ॥
जयति प्रमाणनिकरो निखिलो निगमश्च तत्रापि । तदनुगता च पुराणी पुराणवाणीतिहासेन ॥

इस बार 'कल्याण'के विशेषाङ्कमें संक्षिप्त रूपसे पद्मपुराणका भाषानुवाद प्रकाशित होना निश्चित हुआ है । अतः हम पुराण-तत्त्वका कुछ विवेचन करते हैं । लोक और शास्त्रमें प्रत्येक वस्तुकी सिद्धिके लिये सबसे पहले उसके साधक प्रमाणकी अपेक्षा होती है। इसीसे सम्पूर्ण शास्त्रोंका 'मानाधीना मेयसिद्धिः' (प्रमेयकी सिद्धि प्रमाणके अधीन है)—ऐसा सिद्धान्त है । प्रमाणोंकी संख्याके विषयमें यद्यपि शास्त्रोंका पारस्परिक मतभेद सदासे ही चला आता है, तथापि प्रत्येक शास्त्रकी अपनी प्रमाण-संख्या तो निश्चित ही है। इस दृष्टिसे पुराणमतमें प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, अर्थापत्ति, अनुपलब्धि, सम्भव और ऐतिह्य—ये आठ प्रमाण माने गये हैं । इनमें प्रत्यक्ष तो तभी प्रमाण हो सकता है जब वह संशय, विपर्यय, विप्रलिप्सा, करणापाटव आदि दोषोंसे रहित हो । अनुमानका प्राण व्याप्तिज्ञान है और वह साक्षात् अथवा परम्परासे प्रत्यक्षपर ही अवलम्बित है । उपमान, अर्थापत्ति और सम्भव—इन तीन प्रमाणोंको भी सूक्ष्म दृष्टिसे अनुमान-साधनोंके समान ही सामग्रीकी अपेक्षा है । अनुपलब्धिकी गति भी प्रत्यक्षके समान ही है तथा ऐतिह्य, यदि यथार्थ हो तो, शब्दप्रमाणके समान ही है । रहा शब्दप्रमाण; उसमें भी लौकिक शब्द तो तभी प्रमाण हो सकता है, जब उसका वक्ता प्रामाणिक—सत्यभाषण करनेवाला हो । कम-से-कम जिस शब्दको प्रमाण माना जाय, उसे कथन करनेके समय तो उसे सत्यभाषी होना ही चाहिये । इस दृष्टिसे लौकिक शब्दको प्रमाण माननेमें तो झंझटोंका सामना करना अनिवार्य है । इसलिये स्वतःप्रमाण होनेके कारण वेदवाक्य ही सर्वथा निर्विवाद प्रमाण है; क्योंकि शास्त्रोंने अनेकों युक्तियोंद्वारा उसे अपौरुषेय सिद्ध किया है । यहाँ उन युक्तियोंको देनेकी आवश्यकता नहीं है । इस समय तो इतना ही समझना है कि निर्विवाद प्रमाणता केवल वेदमें ही है ।

एक बात और ध्यानमें रखनेकी है । वाक्य सामान्यतः तीन प्रकारके माने गये हैं—प्रभुवाक्य, सुहृद्वाक्य और प्रेयसीवाक्य । इनमें प्रभुवाक्यके शब्दोंको कोई वक्ता वैसे ही अर्थवाले अन्य शब्दोंसे बदल नहीं सकता । यदि बदले तो उसे प्रभुवाक्य नहीं कहा जायगा । इस नियमके अनुसार वेदवाक्य प्रभुवाक्य ही हैं । जैसे वेदके एक मन्त्रमें आता है—'अग्निमीळे' यहाँ यदि 'वह्निमीळे' अथवा 'अग्निं स्तौमि' कहा जाय तो इसमें वेदत्व नहीं रहेगा । यही नहीं, इन शब्दोंका क्रम भी नहीं बदला जा सकता । अर्थात् 'ईळे अग्निम्' ऐसा कहनेपर भी इसमें वेदत्व नहीं रहेगा । यह नियम पूर्वमीमांसाने निश्चित किया है ।

पुराणवाक्य सुहृद्वाक्यके समान है । सुहृद्वाक्यमें शब्द बदलनेसे कोई क्षति नहीं मानी जाती; हाँ, उनके वाच्यार्थमें कोई अन्तर नहीं आना चाहिये । मान लीजिये—किसीने एक व्यक्तिसे कहा, 'तुम मेरे अमुक मित्रसे वस्त्र भेजनेके लिये कह देना' और उसने उसके मित्रसे कपड़ा भेजनेको कहा, तो यद्यपि यहाँ शब्द बदल गया तथापि अर्थ न बदलनेके कारण यह अप्रामाणिक नहीं माना जायगा । इसी प्रकार यदि पुराण वाक्यस्थ शब्दोंके स्थानमें ऋषि उसी बातको दूसरे शब्दोंमें कहें, तो भी उसमें पुराणत्व रहता ही है । काव्यवचन प्रेयसी-वाक्यके समान होता है । उसका विवरण देनेकी यहाँ आवश्यकता नहीं है ।

पुराणोंमें कई जगह ऐसी भी घटनाएँ आती हैं, जो स्थूलदर्शी पुरुषोंको आपाततः विरुद्ध जान पड़ती हैं । किन्तु वास्तवमें बहुत प्राचीन कालकी बातें होनेके कारण उनमें कोई विरोध नहीं है । जैसे भगवद्विग्रहमें स्वयं पुराणोंने ही युगभेदके कारण शुक्ल, रक्त, कृष्ण और पीत वर्णोंका प्राकट्य बतलाया है । इसी तरह मन्वन्तरभेदसे भी अविरोधके प्रमाण दिये जा सकते हैं । इस मन्वन्तरमें जो वैवस्वत मनु हैं, वे ही चाक्षुष मन्वन्तरमें राजर्षि सत्यव्रत थे, जिनपर श्रीमत्स्यभगवान्‌ने निरतिशय अनुग्रह किया था । कल्पभेदसे अविरोध प्रदर्शित करनेके लिये श्रीसरस्वती देवीका उदाहरण दिया जा

सकता है। सारस्वत कल्पमें वे श्रीनारायण भगवान्‌की अर्धाङ्गिनी थीं, किन्तु इस श्वेतवाराह कल्पमें वे ब्रह्मचारिणी हैं।

चौथी बात यह है कि वेदोंमें जो बात कही गयी है, वह सूत्ररूपसे है। उसीकी व्याख्या भगवान् श्रीकृष्णद्वैपायनने भाष्यरूपमें महाभारतादि इतिहास एवं पुराणग्रन्थोंमें की है, जैसा कि उन्हींके शब्दोंमें प्रतीत होता है—'इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।' इस समय यद्यपि वेदोंकी सम्पूर्ण शाखाएँ उपलब्ध नहीं हैं—जो कुछ मिलती हैं, वे उनकी शततमांश भी नहीं हैं; तथापि इतिहास पुराणादिके प्रणेता वेद व्याख्याकार श्रीव्यासदेव दिव्यज्ञान सम्पन्न होनेसे त्रिकालदर्शी थे। इसीसे उन्होंने इतिहास एवं पुराणोंमें ऐसी बातें भी दी हैं, जिनके मूलसूत्र इस समय स्पष्टरूपसे वेदोंमें नहीं मिलते। उन स्मृति वाक्योंसे उनके मूलभूत वेदांशका, इस समय अनुपलब्ध होने पर भी, अनुमान कर लेना चाहिये। इस विषयमें मीमांसा शास्त्रकी ऐसी ही पद्धति है। अतः आजकल जो लोग पुराणों के ऐसे अंशोंको कल्पित या प्रक्षिप्त कहते हैं, उनका ऐसा कहना शास्त्र-सिद्धान्तसे अनभिज्ञ होनेके कारण ही है। फिर भी इतना तो मानना ही होगा कि सब पुराणोंमें नहीं, तो दो तीन पुराणोंमें कुछ अंश प्रक्षिप्त (बढ़ाया हुआ) और कुछ त्रुटित (निकाला हुआ) भी अवश्य है। कहाँ और कितना अंश प्रक्षिप्त या त्रुटित है—इसका निर्णय इस प्रकार करना होगा कि जो अंश वर्तमान वेदभाग अथवा वेदानुसारी स्मृति-पुराणादिसे शास्त्रानुसारी विचारके द्वारा विरुद्ध जान पड़े, उसे प्रक्षिप्त मानना चाहिये और जो पुराणोक्त रूपसे प्रसिद्ध होने-पर भी पुराणोंमें न मिले, उसे त्रुटित समझना चाहिये। यह निर्णय बड़ी योग्यता और निरपेक्ष दृष्टिके द्वारा ही किया जा सकता है। इस प्रकार खोज करनेपर, पुराणोंमें परस्पर अथवा एक ही पुराणके पूर्वापर प्रसङ्गोंमें जो विशृङ्खलता या विरोध प्रतीत होता है वह उपक्रमोपसंहार, अभ्यास, अपूर्वता, फल, अर्थवाद एवं उपपत्ति—तात्पर्यनिर्णयके इन छः लिङ्गोंसे निर्विवाद ही सिद्ध होगा। यहाँ विस्तार-भयसे इनका विशेष विवरण नहीं दिया जा रहा है। तथापि यह तो निःसङ्कोच कहा जा सकता है कि ये पञ्चम वेदरूप इतिहास-पुराण बद्ध, मुमुक्षु और जीवन्मुक्त—तीनों ही प्रकारके मनुष्योंके लिये सन्मार्गप्रदर्शक हैं।

इस प्रकार यहाँ संक्षेपमें पुराण-तत्त्वका विवेचन किया गया है। यदि इसमें किन्हींको कोई बात पूछनी हो तो वे हमें लिखनेकी कृपा करें; हम सदैव उत्तरद्वारा उनकी सेवा करनेके लिये प्रस्तुत हैं।

पुराण और इतिहास

(लेखक—श्रीताराचन्द्रजी पांड्या)

आधुनिक इतिहासकारोंकी शिकायत है कि प्राचीन भारतीयगण इतिहास नहीं लिखते थे। अगर राजाओंके या युद्धोंके शृङ्खलाबद्ध व संवत् मितियुक्त वृत्तान्तको ही इतिहास समझा जाता हो तो मैं उक्त शिकायतको भारतीय सभ्यताके लिये लाञ्छनस्वरूप नहीं, किन्तु भूषणस्वरूप ही समझता हूँ; क्योंकि इससे सूचित होता है कि मानवके लिये महज प्रभुता या हिंसाका कोई महत्त्व नहीं है—मानव-मस्तिष्क कोई राजाओंकी नामावली या उनके कीर्ति-गानों या युद्ध-गाथाओंका स्मृति-कोष बननेके लिये नहीं है। किन्तु यदि इतिहासका तात्पर्य नीति अनीतिके परिणामोंके सच्चे दृष्टान्त (उदाहरण) देकर हिताहितका बोध देना और मानवात्माको व मानव-जातिको नीति और उन्नति, हित और विवेकके मार्गपर अग्रसर करना है तो मैं कहता हूँ—और मेरा विश्वास है कि सब मुझसे सहमत होंगे—कि प्राचीन भारतीयोंने इतिहासोंकी भी अतिशय सुन्दर, अतिशय तथ्यपूर्ण और अतिशय प्रभावोत्पादक रचनाएँ की हैं और ऐसे इतिहासोंको दिखानेके लिये मैं पुराणोंकी ओर संकेत करता हूँ।

वेद-पुराणमयी सुर-तरङ्गिणी

(लेखक—प्रो० श्रीअक्षयकुमार बन्द्योपाध्याय एम्० ए०)

सुरलोकमें सुरधुनी श्रीगङ्गाजी अपनी महिमामें पूर्ण थीं। वे श्रीभगवान्‌की पावनी शक्तिकी द्रवीभूता मूर्ति हैं। योगीश्वर शिव उन्हें अपने मस्तकपर आदरपूर्वक स्थापित करके ही प्रेमघनसुन्दर रूपमें विराजमान थे। उनका विहार-क्षेत्र दिव्यलोक ही था। देवर्षि, ब्रह्मर्षि, महर्षि और सिद्धर्षि-गण उनका करुणा-प्रसाद पाकर स्निग्ध, पवित्र और आनन्दसे सराबोर होते थे। देवता, विद्याधर और तत्त्वज्ञवृन्द उनकी गोदमें आनन्दसे क्रीड़ा करते थे। भगीरथकी अलौकिक तपस्या ही उन शिव-सुहागिनी, दिव्यलोकविहारिणी, ज्ञान-प्रेम-पवित्रतामयी श्रीगङ्गाजीको इस मर्त्यलोकमें ले आयी। स्वरूपतः जिनका निवासस्थान योगीश्वर, ज्ञानीश्वर, कल्याण-घनमूर्ति श्रीशिवके मस्तकपर था; सर्वपापविवर्जित, विचित्र-सौन्दर्य-माधुर्य-विमण्डित दिव्यधाम ही जिनका विहारक्षेत्र था; वे इस वन, जंगल और पर्वतोंसे पूर्ण मालिन्यमयी मर्त्यभूमिमें अवतरित हुईं। इस मर्त्यलोककी धूल और मिट्टीको उन्होंने अपने पवित्र अङ्गमें लगाया। मर्त्यलोकके निवासी अपनी सब प्रकारकी मलिनता उनके अङ्गमें डालने लगे। यह सब प्रसन्नवदनसे लेकर वे महासागरसे मिलनेके लिये चलीं। मर्त्यलोककी मलिनता देखकर उन्होंने घृणासे मुँह नहीं फेरा। यहाँसे विरक्त होकर वे देवलोकको नहीं लौटीं। वे 'निम्नगा' होकर ही बहने लगीं। करुणाके उद्रेकसे अपने अङ्गको फैलाकर वे निम्न, निम्नतर, निम्नतम एवं मलिन, मलिनतर, मलिनतम भूमिमें होकर बहने लगीं। मर्त्यलोककी सारी मलिनता ले जाकर उन्होंने पातालमें पटक दी। उनके प्रवाहका कभी विराम नहीं है। उन्हें कहीं भी विश्राम नहीं है। चिरकालके लिये उन्होंने यात्राका पथ ही वरण कर लिया है।

माता गङ्गाका जो यह मर्त्यलोकमें अवतरण है, यह जो उनकी अविराम गति है, यह जो पृथ्वीकी मलिनताको अपने अङ्गका आभूषण बना लेना है—इससे उनके माहात्म्यमें ह्रास हुआ है या वृद्धि! वे भगवान् शिवके लाड़-प्यारसे उनके जटाजूटमें आबद्ध थीं; पृथ्वीपर वे हँस-खेलकर, नाच-गाकर, देश-देशान्तरको आप्लावित करके, मुक्तदेह और मुक्तगतिसे विचित्र भावपूर्वक स्वयं ही अपने स्वरूपका आस्वादन करती हैं। वे सत्यप्रेम और पवित्रतामयी शिवानी-शक्ति सदासे सत्य, प्रेम और पवित्रताके नित्य आधार भगवान् शिवके साथ अभिन्न रूपसे विद्यमान थीं। उस समय कौन जानता था कि जडको चेतन करनेके लिये, निर्जीव प्राणिसमुदायको सञ्जीवनी-सुधाद्वारा बचानेके लिये, मर्त्यलोकके सारे कल्मषको अपनी पवित्रताद्वारा निष्कल्मष करनेके लिये तथा विश्वके सम्पूर्ण पापी-तापियों एवं पतित और दुर्गतिकोंको सब प्रकारके पाप-ताप एवं क्लेश और दुर्गतिसे मुक्त करके चिरपवित्र, ज्ञानी, कर्मी और भक्तोंके समकक्ष बनानेके लिये उनके स्वरूपमें असाधारण सामर्थ्य निहित है। उनकी यह महिमामयी शक्ति मर्त्यभूमिमें प्रकट हुई। मर्त्यभूमिमें अवतरित होकर उन्होंने अपनेको अहैतुक-करुणामयी, पतितोद्धारिणी और विश्वमंगलविधात्री रूपसे प्रकट किया। मर्त्यलोकके जीव उनकी स्नेहधारा पाकर आनन्दसे मतवाले हो गये। उन्हें नवीन जीवनका संधान प्राप्त हुआ तथा उनके प्राणोंमें नवीन आशाका संचार हुआ। मुक्तिके विषयमें जिन्हें किसी प्रकारका भरोसा रखनेका अधिकार भी नहीं था, मुक्तिने मानो स्नेहमयी जननीकी भाँति स्वयं ही आकर उन्हें अपनी गोदमें उठा लिया। इस प्रवाहमयी मुक्ति-जननीका आश्रय लेकर मर्त्यभूमिके वन, जंगल, पहाड़, पर्वत और नगर-ग्राम तीर्थ बन गये। मिट्टी, जल, आग और हवाको भी मानो चिन्मयता प्राप्त हो गयी। कितनी ही उपनदियोंने उनके साथ मिलनेका सौभाग्य प्राप्त करके उनके अङ्गमें अपने अङ्ग मिला दिये तथा अपने सम्पूर्ण अङ्गोंद्वारा पतितोद्धार-कार्यका व्रत ग्रहण किया। कितनी ही शाखा-नदियोंने उनके पवित्र जलको दूर-दूर देशोंमें ले जाकर सब श्रेणीके जीवोंकी सेवामें अपनेको समर्पित कर दिया। देवी गङ्गा जिन-जिन स्थानोंमें होकर बही हैं, उनके आस-पासके जल, स्थल, वृक्ष, लता, वायु और आकाश—सभी एक नवीन जीवनी-शक्तिसे अनुप्राणित हो गये हैं। देवनदी गङ्गाने मर्त्यलोकमें प्रवाहित होकर शिवलोक, देवलोक, नरलोक और पाताल—सभीको एक सूत्रमें बाँध दिया है। उन्होंने सम्पूर्ण विश्वको पवित्र, सुन्दर और कल्याणमय कर दिया है। यहाँ उनका माहात्म्य कईगुना बढ़ गया है।

हमने विश्वपावनी, पतितोद्धारिणी माता भागीरथीका माहात्म्य प्रदर्शित करनेके लिये इस प्रसङ्गकी अवतारणा नहीं की है, बल्कि भारतीय संस्कृति और साधनाके क्षेत्रमें श्रुति और पुराणोंका सम्बन्ध दिखानेके लिये ही यह दृष्टान्त ग्रहण किया गया है। भारतकी कर्म, ज्ञान और भक्ति साधनाओंका मूल स्रोत वेद या श्रुति हैं। वेद अपौरुषेय, नित्य और स्वयं श्रीभगवान्‌की शब्दमयी मूर्ति हैं। स्वरूपतः वे भगवान्‌के साथ अभिन्न हैं। भगवान्‌की नित्यप्रकाशमयी बुद्धि ही स्वरूपतः वेदकी निवासभूमि है। कल्पके आदिमें श्रीभगवान्‌ने ही आदिकवि ब्रह्माके हृदयमें भावरूपसे वेदोंको प्रकाशित किया था—'तेने ब्रह्महृदा य आदिकवये।' ब्रह्मा ही अपने मानसपुत्रोंके सामने शब्दब्रह्मरूपसे वेदोंको प्रकाशित करते हैं। फिर ये विभिन्न ऋषियोंकी शुद्ध बुद्धिको आश्रित करके विभिन्न शाखा-प्रशाखाओंमें विभक्त होकर ऋषिसमाजमें अपनेको प्रकाशित करते हैं। वैदिक मन्त्रोंके रूपमें मानव-जीवनके कर्म, ज्ञान और उपासनाके आदर्शोंने अत्यन्त उज्ज्वलरूपमें अपनेको प्रकट किया है। मानव जीवनमें कर्मप्रेरणा, ज्ञानस्पृहा और प्रेमावेग स्वभावसे ही विद्यमान हैं। किन्तु स्वभावजनित कर्म, ज्ञान और प्रेम मानव-जीवनको पूर्णतया सार्थक नहीं कर सकते। मानवके अन्तरात्मामें जो महान् आदर्शका आकर्षण सदासे विद्यमान है, वह उसे स्वाभाविक कर्म, ज्ञान और प्रेमसे तृप्त नहीं रहने देता। कर्म, ज्ञान और प्रेम सुनियन्त्रित होनेपर ही मानव जीवन आदर्शकी ओर अग्रसर होता है। कर्मके सुनियन्त्रणके द्वारा मनुष्यको चरम कल्याणके स्वरूपमें प्रतिष्ठित होना होगा, ज्ञानके सुनियन्त्रणद्वारा उसे सत्यस्वरूपके साथ मिलना होगा तथा प्रेमके सुनियन्त्रणद्वारा उसे परम प्रेमस्वरूप, सुन्दरस्वरूप एवं आनन्दस्वरूपके आस्वादनमें डूबना पड़ेगा। कर्म, ज्ञान और प्रेमको किस भाव एवं प्रणालीसे सुनियन्त्रित करनेपर मानवात्मा उस परम जीवनादर्शको वास्तविक जीवनमें परिणत कर सकता है—मानवबुद्धिके सामने चिरकालसे यही एक समस्या है। वेदने मानव-समाजमें अपनेको प्रकट करके स्वयं ही इस समस्याका समाधान किया है। यदि वेदको अपने जीवनका नियामक बना लिया जाय तो कर्म कल्याणमय, ज्ञान सत्यमय और प्रेम सौन्दर्यमय हो जाता है तथा सारा जीवन आनन्दसे भरपूर हो जाता है। इस प्रकार इस नियत-परिवर्तनशील और अनित्य जगत्प्रवाहमें मनुष्य नित्य, निर्विकार, शुद्ध, अपापविद्ध और मृत्युञ्जय जीवनका आस्वादन करनेमें समर्थ हो जाता है।

भगवद्-हृदयसे प्रकट हुआ वेद आविर्भूत होकर पहले ऋषि मुनि, ज्ञानी, भक्त और कर्मी लोगोंके स्थानोंमें विचरने लगा। पहले ब्रह्मर्षि और राजर्षि ही इसमें निष्णात होकर कृतार्थताका अनुभव करने लगे। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंके सिवा अन्यान्य साधारण मनुष्योंको उनमें दीक्षित होकर जीवनकी सार्थकता सम्पादन करनेका अधिकार नहीं था। वेदोंकी भाषा समझनेकी, वेदोंके छन्दोंको जाननेकी, वैदिक मन्त्रोंके तात्पर्यको हृदयङ्गम करनेकी तथा वैदिक कर्म, ज्ञान और उपासनाकी दीक्षा प्राप्त करनेकी योग्यता मानव समाजमें थोड़े ही लोगोंमें थी। जिन्होंने वंश-परम्परासे अथवा गुरु-शिष्य-परम्परासे वेदोंके अनुशीलन और अनुवर्तनमें अपनेको नियुक्त किया था, वे ही वेदोंका प्रसाद पाकर धन्य हो सकते थे। उन्हींका जीवन मानवताके चरम आदर्शके मार्गमें अग्रसर होकर दिव्य जीवन प्राप्त कर सका। वेद उन्हींके आदरकी वस्तु और आराध्यदेव होकर मानवसमाजके ऊर्ध्वस्तरमें ही अपनी महिमा प्रकाशित करने लगे। सुरलोक विहारिणी, शिव सुहागिनी महादेवी गङ्गाकी भाँति वेदरूपिणी विशुद्ध कर्म, ज्ञान एवं प्रेमानन्दमयी महादेवी सरस्वती मानव जगत्‌के ऊर्ध्वलोकमें विहार करने लगी। निम्नतर स्तरोंके नर नारी उन ज्ञानी, प्रेमी और ऋत्विजोंके प्रसादसे वैदिक जीवन-आदर्शके तत्त्व और महत्त्वको परोक्षरूपसे थोड़ा-बहुत जानकर भी साक्षात्‌रूपसे जीवनको वेदमय करनेके सुयोगसे वञ्चित रह गये। तब महर्षि कृष्णद्वैपायन और उनके अनुगत शिष्य प्रशिष्योंने इस महिमामयी वेदरूपिणी सरस्वती देवीको साधारण मनुष्योंके कल्याणार्थ मानव-समाजके ऊर्ध्वलोकसे निम्नतर भूमिमें लानेके साधनमें अपनेको नियुक्त किया। उनकी साधनाके फलरूप वेदमयी सरस्वती देवी 'पुराण' मूर्ति धारण करके सर्वसाधारणके सामने प्रकट हुईं। वेद और पुराण स्वरूपतः अभिन्न हैं। किन्तु वेद द्विजसमुदायमें अपनी महिमामें प्रतिष्ठित हैं और पुराण सभी श्रेणियोंके नर-नारियोंके बीचमें विचित्र वेष भूषा और विचित्र गति भङ्गीसे विचरनेवाले हैं। वेदमाता अवगुण्ठनसे आवृत होकर ब्राह्मणोंके पवित्र मन्दिरमें आविर्भूत हुईं और बोलीं—'सावधान, हमें अनधिकारीके सामने उपस्थित मत करना। यदि ऐसा करोगे तो तुम्हारा और उनका दोनोंका ही अमङ्गल होगा।' वही देवी फिर पुराणरूपसे मर्त्यलोकमें अवतरित होकर सभीको पुकारकर कहने लगी—'मैं तुम सभीको दी जा सकती हूँ। मैं उन्मुक्तरूपसे विश्वमें सभी

नर-नारियोंके कल्याणके लिये यथेच्छ विचरूँगी। कोई भी मेरे लिये अनधिकारी नहीं है। मैं ब्राह्मण और चाण्डाल—सभीको समान रूपसे अपनी गोदमें स्थान दूँगी। सभीका जीवन सार्थक करूँगी और सभीको परमगति प्रदान करूँगी।'

सरस्वतीकी वैदिक दिव्यमूर्ति अशिक्षित जन-साधारणमें अपरिचित है। पुराणोंमें उनकी मानवी मूर्ति है। सभी श्रेणियोंके नर-नारी उनके सर्वथा अपने हैं। वे सभी देश, सभी काल और सभी श्रेणीके लोगोंकी पोशाकसे अपनेको विभूषित करके सभीका चित्त हरण करती हैं तथा सभीको अपना बना लेती हैं। उनमें जो कुछ मलिन और आपात-दृष्टिसे कुत्सित है, उसे देखकर भी वे घृणासे मुँह नहीं फेरतीं। आवश्यकता होनेपर उसे अपने शरीरमें मिला लेनेमें भी उन्हें घृणा नहीं होती। अनन्त है उनकी सहानुभूति; अबाध-रूपसे बहनेवाली है उनकी करुणाधारा; उन्नत-अवनत, पण्डित-मूर्ख, प्रबल-दुर्बल—सभीको समान आसनपर बिठाकर प्रसाद वितरण करनेमें उनकी असीम क्षमता है। भारत-भारतीकी पौराणिकी मूर्तिने भारतके सभी प्रान्तोंके सभी श्रेणीके नर-नारियोंको एक ही संस्कृतिके अनुगत, एक ही आदर्शसे अनुप्राणित और एक ही आध्यात्मिक भाव-धारासे अभिषिक्त करनेमें जो कुशलता और शक्ति प्रदर्शित की है वह अतुलनीय है। केवल भारतके समस्त प्रान्तोंमें ही नहीं, पुराणोंने भारतीय सनातन वैदिक विचारधारा, कर्मधारा और भावधाराको भारतके बाहर अनेकों द्वीप-द्वीपान्तर और देश-देशान्तरोंमें भी प्रवाहित किया हैं। पुराणोंकी कृपासे सनातन वेदोंने विश्वके सभी श्रेणीके नर-नारियोंके जीवनको नियन्त्रित करके चरम तत्त्व, परम कल्याण और निर्मल प्रेम एवं आनन्दके मार्गमें प्रवृत्त करनेका अधिकार प्राप्त किया है।

पुराणोंका प्रधान गौरव यह है कि वेदने 'नेति-नेति' करके और 'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह' कहकर जिस परमतत्त्वको ऋषियोंके भी इन्द्रिय, मन और बुद्धिसे अगम्य देशमें रख दिया था, पुराणोंने उसको सर्व-साधारणके इन्द्रिय, मन और बुद्धिके समीप लाकर उपस्थित कर दिया है। वेदोंके 'सत्यं ज्ञानमनन्तम्', 'शुद्धमपापविद्धम्' ब्रह्मने पुराणोंमें केवल भक्तोंके आराध्य प्रेमघनमूर्ति सौन्दर्य-माधुर्य-निलय भगवान्‌के रूपमें ही नहीं, अपितु दीनबन्धु, अनाथनाथ, पतितपावनरूपमें तथा जीवमात्रके दर्दी स्वजनके रूपमें अपनेको प्रकाशित किया है। वेदोंमें जो 'अद्रेश्यमगोत्र-मग्राह्यमवर्णम्' हैं, वे ही पुराणोंमें विचित्र रूपमें, विचित्र रसमें, विचित्र वर्णमें, विचित्र गन्धमें एवं समस्त मनुष्योंकी समस्त इन्द्रियोंके आस्वाद्य तथा सभी मनोवृत्तियोंकी सार्थकताका सम्पादन करनेवाले होकर आविर्भूत हुए हैं। मनुष्य पुराणों-के भगवान्‌की सेवा कर सकता है, उनका स्पर्श कर सकता है, उनके मुँहमें अपना भोज्य पदार्थ दे सकता है, उनके हाथसे स्वयं आहार ग्रहण कर सकता है, उनसे बातचीत कर सकता है, उनके साथ भावका आदान-प्रदान कर सकता है और सब प्रकारकी आपद्-विपद्में उनके मङ्गलमय विधानपर निर्भर रह सकता है। पुराणोंमें भगवान् अपने चिन्मय स्वधाम परव्योमसे अवतरित होकर मनुष्योंके बीचमें आकर उनसे मिलते-जुलते हैं तथा मानव-देहमें विभिन्न देश, काल और अवस्थाओंके घात-प्रतिघातके बीचमें भी किस प्रकार भगवत्ता-को अक्षुण्ण रखना एवं बाह्यतः शान्त रहकर भी अन्तरमें अनन्तत्वकी अनुभूतिको समुज्ज्वल रखना सम्भव है—इसका दृष्टान्त प्रदर्शित करते हैं। पुराणोंके लीलामय भगवान्‌के लीला-विलासकी आलोचना करनेपर मानवहृदय आशासे खिल उठता है तथा स्वाभाविक जीवन-धाराका आश्रय लेकर ही ज्ञान, प्रेम, भक्ति और आनन्दद्वारा भगवान्‌के साथ नित्ययुक्त होनेकी आशा और अभिलाषा भी रख सकता है। पुराणोंके भगवान् केवल ज्ञेय ब्रह्म ही नहीं हैं, केवल जीव और जगत्‌के मूल कारण एवं अधिष्ठान ही नहीं हैं, केवल निर्गुण निर्विकार अद्वितीय चित्स्वरूप ही नहीं हैं, बल्कि वे प्रत्यक्ष उपास्य, समस्त अवस्थाओंमें आश्रयणीय, करुणा, प्रेम और सहानुभूतिसे भरपूर और अपने शरणमें आये हुए दीन एवं आर्त्त पुरुषकी रक्षामें तत्पर भी हैं। वे भक्तोंके निजजन हैं।

वेदोंने घोषणा की है कि ब्रह्म सब प्रकारके नाम, रूप और भावोंसे परे है। पुराण कहते हैं कि ब्रह्म सर्वनामी, सर्व-रूपी और सर्वभावमय है। वेद कहते हैं—'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति।' पुराण कहते हैं—'एकं सत्प्रेम्णा बहुधा भवति।' वेदोंके ही ब्रह्मतत्त्वने पुराणोंमें असंख्य नाम, रूप एवं भावोंके द्वारा मानव हृदय, बुद्धि और इन्द्रियोंके सामने अपनेको प्रकट किया है। वह ब्रह्मा, विष्णु और शिवरूप है; वही काली, दुर्गा, लक्ष्मी और सरस्वती है; वही राम, कृष्ण, नृसिंह और वामन है और वही इन्द्र, आदित्य, वरुण और अग्नि है। जिस किसी भी देश, काल और सम्प्रदायमें जिस किसी भी देवता या देवीकी उपासना प्रचलित थी अथवा है, पुराणोंने उन सभी देवी-देवताओंको स्वीकार कर लिया है। सभीके माहात्म्यको अनन्तगुना बढ़ाकर प्रकाशित किया है तथा सभीका स्वरूपगत एकत्व उद्घाटित किया है। पुराणोंने इस रहस्यको उद्घाटित करके कि एक परमतत्त्व भगवान् ही विभिन्न रूप और नामोंमें विचित्र शक्ति-सामर्थ्य

एव सौन्दर्य माधुर्यको प्रकट करके सम्पूर्ण जगत्में लीला विलास कर रहे हैं तथा प्रत्येक उपासक-सम्प्रदाय वस्तुतः विभिन्न नाम और विभिन्न रूपोंमें एक विश्वात्मा भगवान्की ही उपासना करके कृतार्थता प्राप्त करते हैं—सारे सम्प्रदायों को एकत्वके सूत्रमें बाँध दिया है। उन्होंने सभी धर्ममत, साधनप्रणाली और भावप्रवाहकी विशिष्टताओंको अक्षुण्ण रखकर उनके आन्तरिक अभेदको सुप्रतिष्ठित कर दिया है। पुराणोंके प्रभावसे भारतीय धर्म जिज्ञासु अनेकों सम्प्रदायोंमें विभक्त रहनेपर भी एक ही धर्मका अनुसरण कर रहे हैं। वे अनेकों देवताओंके उपासक होकर भी एक अद्वितीय ब्रह्मके ही उपासक हैं। प्रत्येक निश्छल उपासक यह जानता है कि वैष्णवगण विष्णु या कृष्णके नाम और रूपमें जिसकी उपासना करते हैं, शैव शिवनाम और शिवरूपमें तथा शाक्त काली, दुर्गा और चण्डी आदि नाम एवं रूपोंमें उसीकी आराधना करते हैं। विभिन्न पुराणोंने विभिन्न नाम, रूप और लीलाओंका आश्रय लेकर एक ब्रह्मके ही विविध प्रकारके आविर्भावोंकी महिमाका कीर्तन किया है और उसके द्वारा एक विशिष्ट श्रेणीके उपासक सम्प्रदायके हृदय और मनको विशेष भावसे आकर्षित किया है। किन्तु यह तत्त्व तो सर्वत्र प्रकट है कि ये सब आविर्भाव एक ही भगवान्के हैं। विभिन्न नाम और रूपोंमें एक नामरूपातीत ब्रह्मने ही सकल मनुष्योंके प्राणोंके सामने आकर अपनेको प्रकट किया है। पुराणोंने मनातीत ब्रह्मको मनके बीचमें लाकर, सच्चिदानन्दमय भगवान्को जड जगत्में मानवसमाजके बीचमें अवतरित कराकर तथा भगवान्के साथ मनुष्यके सब प्रकारके व्यवधान को बड़ी ही आश्चर्यमय कौशलसे हटाकर, मनुष्यके भीतर देवत्वके बोध और भगवत्ताकी अनुभूतिको जाग्रत् किया है, आपातत परिदृश्यमान जडको चैतन्यमय रूपसे उद्भासित कर दिया है तथा सान्त और अनन्त, अनित्य और नित्य, जीव और ईश्वर एवं विश्व और विश्वातीतके बीचमें चिरन्तन ऐक्य उद्घोषित कर दिया है। पुराणका जगत् केवल जड जगत् ही नहीं है, यह सच्चिदानन्दघन श्रीभगवान्की लीलाभूमि है। श्रीभगवान् विशुद्धसत्त्वमय देहद्वारा इस जगत्में विचरते हैं तथा इस जगत्के जल, स्थल, आकाश और वायुमें विशुद्ध सत्त्वकी धारा प्रवाहित करते हैं। भारतके विशेष विशेष स्थान उनके विशेष विशेष आविर्भाव और लीलाओंसे संयुक्त हैं। पुराणशास्त्र सभी श्रेणीके मनुष्योंको भगवान्के आविर्भाव और लीलाओंकी दृष्टिसे इन स्थानोंका चिन्मय भगवद्धामरूपमें दर्शन करनेकी शिक्षा देते हैं। भारतके असंख्य नगर, ग्राम, नदी, पर्वत, सरोवर और वन भगवान्के विशिष्ट लीलाक्षेत्ररूपसे पूजित हैं। भारतवासियोंकी दृष्टिमें ये स्थान बाह्यतः जड होते हुए भी वास्तवमें चिन्मय हैं। पुराणोंमें सब मनुष्य या सब हिंदुओंके लिये कोई एक ही तीर्थ नहीं माना गया है, बल्कि भारतके सभी प्रान्तोंमें तीर्थ हैं, सर्वत्र ही भगवान्की लीला हुई है। इस प्रकार पुराणोंने सारे भारतवर्षको ही एक चिन्मय भगवद्धाम रूपसे लोक-लोचनोंके सामने उपस्थित कर दिया है। पुराणोंके प्रसादसे भारतवर्ष प्रत्येक भारतवासीके लिये सत्त्वमयी, प्रेममयी, पवित्रतामयी, आनन्दमयी और स्नेहमयी जननी है। भारतभूमिके इस दृष्टिसे दर्शन और सेवा करके सम्पूर्ण जगत्के इसी प्रकारकी भागवती दृष्टिसे दर्शन और सेवा करनेकी शिक्षा देना ही पुराण शास्त्रका अभिप्राय है।

पुराणोंमें मानव-जातिका इतिहास और विशेषतः भारतवर्षका प्राचीन इतिहास वर्णित है। इस वर्णनमें कितने ही राष्ट्रोंसे सम्बन्ध रखनेवाले युद्ध, कितने ही सामाजिक उलट फेर, कितनी ही जाति और वंशोंके उत्थान-पतन तथा कितने ही साम्प्रदायिक आन्दोलनोंकी पुङ्खानुपुङ्खरूपसे कवित्व पूर्ण भाषामें आलोचना की गयी है। किन्तु इस वर्णनका आन्तरिक दृष्टिकोण साधारण इतिहासके दृष्टिकोणसे सर्वथा पृथक् है। इसमें कुछ घटनाओंका समावेश ही मुख्य लक्ष्य नहीं है, कुछ राज्योंके उत्थान और पतनका लोकमें प्रचार करना ही पुराणोंका प्रधान कार्य नहीं है। पुराणोंकी दृष्टिमें ये सब भागवती लीलाके ही अङ्गमात्र हैं। उनमें भगवान्की सृष्टि, स्थिति और प्रलयकी लीला, उनका न्याय, करुणा और प्रेमका विधान तथा उनके द्वारा जगत्में जीवके कर्म और कर्मफल का विधान—इन सबका मानवजातिके अत्यन्त वैचित्र्यपूर्ण इतिहासका आश्रय लेकर वर्णन किया गया है। मनुष्य मानव इतिहासका अध्ययन करके उसमें भगवल्लीलाका ही आस्वादन करें—यही पुराणोंका लक्ष्य है, जिससे कि मानव जातिके विभिन्न अङ्गोंमें तरह तरहके परिणामोंके इतिवृत्तकी आलोचना करके मनुष्य भगवान्के जीवन इतिहासको ही अपने सामने प्रकट देख सकें। इससे मनुष्यके जीवन, पुरुषार्थ, उत्कर्ष अपकर्ष और जातिके उत्थान-पतनका भाव एक नवीन रूपमें प्रतीत होने लगता है।

इस प्रकार पुराणोंने मनुष्य, जगत् और भगवान्को एक साथ ही नित्ययुक्त रूपमें प्रस्तुत करके सम्पूर्ण मानव जगत्की संस्कृतिको एक उन्नततर भूमिकामें प्रतिष्ठित कर दिया है।

पुराणोंका क्रम और पद्मपुराण

(लेखक—महामहोपाध्याय पं० श्रीगिरिधरजी शर्मा चतुर्वेदी)

पुराण-विद्या महर्षियोंका सर्वस्व है। यह वह अटूट खजाना है, जिसके प्रभावसे अनेक प्रकारकी दरिद्रताओंका शिकार बनकर भी भारत आज धनी है, आज भी संसारकी सभ्य जातियोंके समक्ष यह अपना मस्तक ऊँचा रख सकता है। बीसवीं शताब्दी विज्ञानका मध्याह्न कही जाती है; किन्तु जितने विज्ञान आजतक उच्च भूमिकापर पहुँच चुके हैं, जितने अभी अधूरे हैं तथा जो अभी गर्भमें ही हैं, उनमेंसे एक भी ऐसा नहीं है, जिसके संबन्धमें पुराणोंमें कोई भी उल्लेख न मिलता हो। जितने भी सामाजिक और राजनैतिक वाद इस समय भूमण्डलमें प्रसिद्ध हैं, उनमेंसे भी किसीका संक्षेपसे, किसीका विस्तारसे, किसीका पूर्वपक्षरूपसे और किसीका निन्दारूपसे—इस तरह किसी-न-किसी प्रकारसे पुराणोंमें अवश्य उल्लेख मिलेगा। आजसे हजारों वर्ष पूर्व इन सब बातोंका हमारे पूर्वजोंको ज्ञान था, वे इन सबकी आलोचना कर सकते थे, भुक्त भोगोंकी तरह सब बातोंपर अपनी राय दे सकते थे—यह क्या कम गौरवकी बात है। पुराणविद्याके *समान कौन-सी विद्या संसारकी किसी जातिके पास है? तब* इस प्रकारकी विद्याको अपने 'कोष' में रखकर क्यों न हिंदू-जाति गौरवान्वित हो। अस्तु, इस 'पुराणगौरव' की यहाँ विस्तृत विवेचना न कर आज हम संक्षेपमें पुराणोंके क्रमपर ही कुछ कहना चाहते हैं।

पुराण अठारह हैं—यह प्रसिद्ध बात है। वस्तुतः ये *अठारह स्वतन्त्र पुराण नहीं, किन्तु एक ही पुराणके* अठारह प्रकरण हैं। जैसे एक ग्रन्थमें कई अध्याय होते हैं, वैसे ही एक पुराणके ये अठारह अध्याय हैं। यही कारण है कि उनका क्रम नियत है। स्वतन्त्र ग्रन्थोंमें कोई नियत क्रम नहीं रहता; वक्ताकी इच्छा है कि उन्हें अपने व्याख्यान वा लेखमें किसी भी क्रमसे आगे-पीछे रख दे। किन्तु पुराणोंमें ऐसा नहीं हो सकता, उनका एक नियत क्रम है। सप्तम पुराण कहनेसे 'मार्कण्डेयपुराण' का ही बोध होगा, त्रयोदश पुराण कहनेसे 'स्कन्दपुराण' ही समझा जायगा। 'गरुड-पुराण' सत्रहवाँ पुराण ही कहलायेगा—इत्यादि। इस संख्यामें कभी फेर-बदल नहीं हो सकता। एक ग्रन्थके अध्यायोंमें उलट-फेर कौन कर सकता है। उलट-फेर कर दिया जाय तो सब ग्रन्थका स्वारस्य ही बिगड़ जाय। इसलिये पुराण सर्वदा निम्नलिखित क्रमसे ही समझे जाते हैं-(१) ब्राह्म, (२) पाद्म, (३) वैष्णव, (४) वायव्य (शैव), (५) भागवत, (६) नारद, (७) मार्कण्डेय, (८) आग्नेय, (९) भविष्य, (१०) ब्रह्मवैवर्त, (११) लैङ्ग, (१२) वाराह, (१३) स्कान्द, (१४) वामन, (१५) कौर्म, (१६) मात्स्य, (१७) गारुड और (१८) ब्रह्माण्ड। स्थूल दृष्टिसे भी देखते ही प्रत्येक भावुकको यह चमत्कार प्रतीत होगा कि इस विद्याका आरम्भ ब्रह्मसे और समाप्ति ब्रह्माण्डपर है तथा मध्यमें भी 'ब्रह्मवैवर्त'में ब्रह्मकी याद करा दी जाती है। इसीसे स्फुट हो गया कि यह 'सृष्टिविद्या' है, जो ब्रह्मसे आरम्भ कर 'ब्रह्माण्ड'तक हमारे ज्ञानको पहुँचा देती है और आदि, मध्य एवं अन्तमें ब्रह्मका कीर्तन करती हुई ब्रह्मपरसे ज्ञानको विचलित नहीं होने देती।

यद्यपि—

> सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तरं तथा।
> वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥

—इस लक्षणके अनुसार पुराणमें पाँच विषयोंका निरूपण प्रधान है; किन्तु विचारदृष्टिसे प्रतीत होगा कि 'सृष्टिविद्या' ही पुराणका मुख्य विषय है, शेष चार उसके 'उपोद्घात' हैं। सृष्टिका निरूपण उन चारोंके विना साङ्गोपाङ्ग नहीं बनता, इसलिये उन चारोंको साथ लेना पड़ता है; किन्तु पुराणका *मुख्य प्रतिपाद्य सृष्टिविद्या ही है। सृष्टिका क्रम* पुराणोंमें संक्षेपतः इस प्रकार बताया है कि क्षीरसमुद्रमें शेषशय्यापर भगवान् नारायण सो रहे हैं, जगज्जननी लक्ष्मी उनके पैर दबा रही हैं, भगवान् नारद पास खड़े स्तुति कर रहे हैं। उन्हें जब सृष्टि रचनेकी इच्छा होती है, तब उनकी नाभिसे एक 'पद्म' (कमल) निकलता है, उस कमलमेंसे चतुर्मुख ब्रह्मा प्रादुर्भूत होते हैं, वे ब्रह्मा स्थावर-जङ्गमात्मक सब विश्वको बनाते हैं। इस चित्र (नकशे) को ध्यानमें रखिये और अब पूर्वोक्त पुराणोंके क्रमपर चलिये। कार्यसे कारणकी ओर जाना है, स्थूलसे सूक्ष्ममें प्रवेश करना है। स्थावर-जङ्गमात्मक दृश्य-जगत्‌के निर्माता ब्रह्माका तत्त्व पहला 'ब्राह्मपुराण' समझाता है। ब्रह्मा जहाँसे प्रकट हुए, उस पद्म (कमल) का निरूपण दूसरे 'पाद्मपुराण' में हुआ है; पद्मके उद्भवस्थान भगवान् विष्णुको

तीसरे वैष्णवपुराणने समझाया है और उनके आधार (शयन-स्थान) 'शेष' का वायुपुराणमें निरूपण किया गया है। इसी वायुपुराणको कहीं 'शिवपुराण' नामसे भी लिखा है; तात्त्विक दृष्टिसे इन नामोंमें कोई भेद नहीं है—यह तत्त्व निरूपणसे स्फुट हो सकता है। इस शेषके भी आधार 'सरस्वान्' (क्षीरसागर) को पाँचवाँ 'भागवत' समझाता है, अतएव उसे 'सारस्वत कल्प' कहते हैं—'सरस्वत इद सारस्वतम्।' अब रह गये 'नारद भगवान्'; उनका निरूपण छठा नारदपुराण कर देता है। यों पूर्वषटक (पहले छः पुराणों) में यह सृष्टिका पुराणोक्त चित्र एक एक करके विशदरूपसे समझा दिया जाता है।

श्रद्धावान् उत्तमाधिकारियोंके लिये यह वर्णन सतोषप्रद हो जाता है। वे इन सबको भगवद्विभूति समझ तर्क वितर्कसे परे रहते हुए सर्वाधिष्ठाता भगवान्के भजनमें समय यापन करते रहते हैं। किन्तु जो मध्यमाधिकारी तर्कके बिना सतुष्ट नहीं होते, जिनके चित्तमें शङ्काओंका आन्दोलन चलता रहता है कि 'एक छोटे-से कमलके पुष्पपर बैठकर ब्रह्मा इतने विस्तृत ब्रह्माण्डको कैसे बनाता है, कमलके पुष्पमेंसे चार मुखका मनुष्याकारधारी ब्रह्मा कैसे निकल पड़ा?' इत्यादि, उनके सतोषार्थ प्रवृत्त पद्मपुराणने विशेष प्रयत्न किया है। इस पुराणमें यह स्पष्ट अक्षरोंमें बताया गया है कि इस पृथ्वीको ही पद्म कहते हैं। देखिये पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड, अध्याय ४०—

> तच्च पद्म पुरा भूतं पृथिवीरूपमुत्तमम्।
> यत्पद्म सा रसा देवी पृथिवी परिचक्ष्यते॥

'विष्णुभगवान्की नाभिसे जो कमल पहले उत्पन्न हुआ, वह पृथिवीरूप था। उस पद्मको ही रसा अथवा पृथिवी देवी कहा जाता है'—इत्यादि। इतना ही नहीं, इसके पत्र केसरादिरूपसे भिन्न-भिन्न वर्षादिका भी वहाँ निरूपण किया गया है।

जब यह निश्चय हो गया कि यह पृथिवी पद्म है, तब अब समझनेमें देर न लगेगी कि इस पृथिवीपर अभिव्याप्त आग्नेय प्राण ही ब्रह्मा है, जो 'चतुर्मुख' (चारों ओर फैला हुआ) अन्तरिक्षके चन्द्रमण्डलस्थ सौम्यप्राणसे मिलकर सब प्रकारकी सृष्टि करता रहता है—'अग्नीषोमात्मक जगत्'। और यह भी शीघ्र ही समझमें आ जायगा कि जिनकी नाभिसे यह पृथिवीरूप कमल निकला है, वे विष्णु भगवान् प्रत्यक्ष देव 'सूर्यनारायण' ही हैं। वैज्ञानिक भाषामें 'नाभि' केन्द्रको कहते हैं, सूर्यमण्डलके केन्द्रसे ही यह पृथिवी प्रादुर्भूत होकर उस मण्डलसे पृथक् हो गयी है—यह विज्ञान इस वर्णनसे प्रस्फुट हो जाता है। पुराणका रहस्य यहाँ पूरा नहीं हो जाता, इससे भी गम्भीरतम विज्ञान इस वर्णनमें निगूढ है कि जितने भी (सूर्य, चन्द्र, तारा, पृथिवी आदि) मण्डल बनते हैं, वे पद्मरूप (गोलाकार) हैं और वे सब विष्णुकी नाभिसे ही निकलते हैं। 'यज्ञो वै विष्णुः'—विष्णुभगवान् यज्ञरूप हैं, और आदान प्रदानरूप यज्ञके बिना किसी भी मण्डलकी उत्पत्ति हो नहीं सकती—इस विषयका दिग्दर्शन हम 'कल्याण' के पाठकोंको 'कृष्णाङ्क' और 'शिवाङ्क' में करा चुके हैं, किन्तु इस लघु निबन्धमें उस उच्चतम विज्ञानकी ओर नहीं जाना है। अस्तु, द्वादश आदित्योंमें अन्तिम आदित्यका नाम विष्णु है—यह वेद, पुराण आदिमें सर्वत्र ही स्फुट है; अत. विष्णुनामसे सूर्यके ग्रहणमें कोई शङ्का नहीं होनी चाहिये। यहाँतक यह हमारी 'त्रिलोकी' हुई—पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यु (सूर्यमण्डल) अथवा दूसरे शब्दोंमें भूः, भुवः, स्वः। अब सूर्यमण्डलके आगेका जो अन्तरिक्ष—'मह.' है, वह वायुप्रधान होनेके कारण विष्णुका शयनस्थान 'शेषशय्या' है। हमारे अन्तरिक्षकी (सूर्यमण्डल से नीचेकी) वायु उपद्रावक भी है; किन्तु यह दूसरे अन्तरिक्ष 'महः' लोककी वायु विशुद्ध कल्याणप्रद है, इसलिये इसे 'शिव' कहते हैं। अतएव इसके निरूपक पुराणके 'वायुपुराण' वा 'शिवपुराण' दोनों नाम प्रसिद्ध हैं। और इन्हे वायुभक्षी सर्पोंके ईश्वर शेषके रूपमें पौराणिक नकशेमें बताया गया है। यह भी जिसके आधारपर प्रतिष्ठित है, यह सोमप्रधान 'आपोमण्डल' क्षीरसमुद्र, परमेष्ठिमण्डल वा 'जन.' है। और उसके समीप प्रतिष्ठित स्वयम्भूमण्डल 'तपः' और नारद 'सत्यम्' हैं। कहा जा चुका है कि जनलोक या परमेष्ठिमण्डल 'आपोमय' है, इसी कारण वह क्षीरसमुद्र कहलाया है, ये 'आप्' नरके पुत्र होनेके कारण 'नार' कहे गये हैं; 'नार' को देनेवाला 'नारद' है—'नार ददातीति नारदः'। इसलिये अप्तत्त्वके उत्पादक स्वयम्भू मण्डलको नारद कहना युक्तियुक्त है। इन सातों व्याहृतियों अथवा पाँचों मण्डलोंका विस्तृत वर्णन भी हम 'कृष्णाङ्क' में कर चुके हैं, अत. यहाँ संकेत मात्र ही पर्याप्त है। अस्तु, यह सब सृष्टिका वर्णन मनुस्मृति प्रथमाध्यायके आरम्भमें इसी रूपमें मिलता है—

ततः स्वयम्भूर्भगवानव्यक्तो व्यञ्जयन्निदम्।
महाभूतादिवृत्तौजाः प्रादुरासीत्तमोनुदः॥
... ...
सोऽभिध्याय शरीरात्स्वात् सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः।
अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत्॥
तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम्।
तस्मिन् जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः॥
आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।
ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः॥
तस्मिन्नण्डे स भगवानुषित्वा परिवत्सरम्।
स्वयमेवात्मनो ध्यानात्तदण्डमकरोद् द्विधा॥
ताभ्यां स शकलाभ्यां च दिवं भूमिं च निर्ममे।
मध्ये व्योम दिशश्चाष्टावपां स्थानं च शाश्वतम्॥

संक्षेपमें इस सबका तात्पर्य यही है कि सृष्टिके आरम्भमें सबसे पूर्व 'स्वयम्भू' प्रादुर्भूत हुआ, उसने प्रजासृष्टिकी इच्छासे सबसे पहले अपने शरीरसे अप् (आपोमय परमेष्ठिमण्डल) को उत्पन्न किया [इसे ही पौराणिक चित्रमें क्षीरसमुद्र कहा गया है ।] और उसमें भावी सृष्टिका बीज रखा। वह बीज सुवर्णका अण्डा बना, उसके हजार किरणें थीं, और सब किरणोंमें समान कान्ति थी। [इसे ब्रह्माण्डगोलक या त्रिलोकमण्डल समझना चाहिये।] उसके मध्यमें सर्वलोकपितामह ब्रह्मा प्रादुर्भूत हुए। [स्मरण रहे कि पद्मज ब्रह्मा सब लोकोंके पिता हैं; किन्तु ये ब्रह्मा उनके भी उत्पादक हैं, इसलिये इन्हें [सूर्यरूप ब्रह्माको पितामह कहा गया है।] आगे इन ब्रह्माका ही नाम 'नारायण' बताया गया है, और 'नारायण' शब्दकी व्युत्पत्ति इस प्रकार की गयी है कि नर (स्वयम्भू) के पुत्र अप 'नार' हैं, उस नार (आपोमयमण्डल) में रहनेके कारण ये पितामह ब्रह्मा नारायण हैं। (इस सब वर्णनपर सूक्ष्म दृष्टिपात कर लेनेके अनन्तर इस विषयमें कोई सन्देह नहीं रह सकता कि पूर्वोक्त पौराणिक चित्रमें जिन्हें क्षीरसमुद्रशायी विष्णु कहा गया है, वे ही मनुस्मृतिमें 'पितामह' ब्रह्मा कहलाये हैं। 'नारायण' नाम दोनों जगह समान है। मनुभगवान्ने स्वयम्भूसे आरम्भ किया है, स्वयम्भूका 'ब्रह्मा' नाम लोकप्रसिद्ध है, और आगे-आगेके मण्डलोंमें जितनी शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं, वे आदिके मण्डलकी शक्तिसे भिन्न नहीं हैं। या यों कहिये कि आदित्यमण्डलका जो अभिमानी देव है, वही भिन्न-भिन्न नाम-रूपोंसे आगे उत्पन्न होनेवाले मण्डलोंका भी अभिमानी है। वह उनमें भेददृष्टि सर्वथा नहीं करता। इसी अद्वैततत्त्वके निर्वाहके लिये भगवान् मनुने 'ब्रह्मा' नाम ही सर्वत्र रख दिया है। किन्तु व्यवहार-सांकर्य मिटानेके लिये पुराणोंमें 'विष्णु' और 'ब्रह्मा' पृथक्-पृथक् नाम कर दिये गये हैं, अद्वैत सबको इष्ट है। इसलिये—

एकमूर्तिस्त्रयो देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।

—यह सिद्धान्त सर्वत्र ही उद्घोषित है। पितामह ब्रह्माने वर्षभर उस अण्डेमें निवास कर अपने ध्यानसे उस अण्डेके दो विभाग कर दिये। उन्हीं दोनों टुकड़ोंसे द्यु (स्वर्लोक) और पृथिवी (भूलोक) को बनाया। [यही भूलोक पुराणोंमें पद्मरूपसे निरूपित हुआ है और इसपर एक दूसरे ब्रह्मा प्रादुर्भूत होते हैं, जिनका वर्णन मनुस्मृतिमें आगे चलकर श्लोक ३२ में 'विराट्' नामसे आता है।] तैत्तिरीय उपनिषद्में जो 'तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः, आकाशाद्वायुः, वायोरग्निः, अग्नेरापः, अद्भ्यः पृथिवी' इत्यादि कहा गया है, वहाँ इतनी विशेषता है कि 'अप्' शब्दसे हमारी त्रिलोकीके अन्तरिक्षको लिया है, जिसे पूर्वोक्त मनुस्मृतिके श्लोकोंमें भी 'अपां स्थानम्' नामसे बताया गया है। यह सूर्यमण्डलसे उत्पन्न है और पृथिवी और सूर्यके मध्यमें स्थित है। पहला अप् जो कि सूर्यमण्डलका भी उत्पादक है, जिसे 'जनः' वा परमेष्ठिमण्डल नामसे हम पहले लिख आये हैं, वह इस उपनिषद्में 'वायु' नामसे ही निर्दिष्ट है। आकाश तो वाङ्मयमण्डल स्वयम्भू है ही। इन विषयोंका विस्तार इस लघु निबन्धमें नहीं किया जा सकता। संक्षेपमें यही दिखानेका प्रयास किया गया है कि उपनिषद्, मनुस्मृति वा पुराणोंकी सृष्टि-प्रक्रिया भिन्न-भिन्न नहीं है, एक ही तत्त्वको अधिकारियोंकी विभिन्न रुचियोंके अनुरोधसे भिन्न-भिन्न शब्दोंमें बताया गया है। विवेकदृष्टिसे किञ्चित् विचार करते ही सबकी एकवाक्यता बुद्धिमें आ जाती है और यह भी समझमें आ जायगा कि आजकलका विज्ञान भी अँधेरेमें टटोलता हुआ धीरे-धीरे इसी निश्चित सिद्धान्तकी ओर आ रहा है। जो भेद है, वह भी विचारसे हट जायगा। साथ ही यह भी स्पष्ट किया गया है कि पुराणके चित्रको विस्पष्ट रूपसे बुद्धिमें बैठाकर मनुस्मृति आदिसे उसकी एकवाक्यता समझा देनेमें 'पद्मपुराण' सबसे अधिक भाग लेता है। अन्यान्य पुराणोंमें भी इस चित्रके स्पष्टीकरणके संकेत हैं, किन्तु पद्मपुराणका

संकेत अधिक स्पष्ट है। यह भी हम संकेत कर चुके हैं कि पुराणके इस चित्र (नकशे) का आशय और भी अधिक वैज्ञानिक गम्भीरतामें जा सकता है, किन्तु उसके निरूपणका यहाँ स्थान नहीं। इस समय इतनेसे ही संतोष करना उचित होगा।

अब आगेके पुराणोंके क्रमपर भी संक्षेपमें पाठकोंका ध्यान आकृष्ट कर हम इस छोटे-से लेखको समाप्त करेंगे। यों पूर्वषट्क अर्थात् आदिके छः पुराणोंमें सृष्टिका क्रम निरूपित हुआ। अब जिज्ञासा यह उठी कि इस सप्त लोकात्मक सृष्टिका 'मूलतत्त्व' क्या है, जिससे ये स्वयम्भू आदि मण्डल बनते और बिगड़ते रहते हैं। 'स्वयम्भू' मण्डलका भी इतना ही महत्त्व हो सकता है कि उससे पहले और कोई मण्डल नहीं बना। किसी दूसरे मण्डलकी सहायता उसकी उत्पत्तिमें नहीं, इससे वह भले ही स्वयम्भू कहला ले; किन्तु कोई भी मण्डल मौलिक नहीं हो सकता, मौलिक तत्त्व सबका कुछ और ही होगा। वह क्या है—इस विषयमें प्राचीन आचार्योंकी तीन प्रकारकी विप्रतिपत्तियाँ हैं। कोई प्रकृतिको मूलतत्त्व कहते हैं, उनका वह 'प्राकृतवाद' सप्तम मार्कण्डेयपुराणमें प्रदर्शित हुआ है। कोई आग्नेय प्राणको मूलतत्त्व मानते हैं, वह मत अष्टम अग्निपुराणमें बताया गया है; तथा कोई अन्य आचार्य सौर प्राणको मूलतत्त्व बताते हैं, उनका सिद्धान्त नवम 'भविष्य पुराण' ने बताया है। यों तीन विप्रतिपत्तियाँ दिखाकर दशम पुराण ब्रह्मवैवर्तद्वारा भगवान् व्यासने अपना सिद्धान्त बता दिया कि यह सब ब्रह्मका विवर्त है। अर्थात् मूलतत्त्व 'ब्रह्म' है, उसका जो अतात्त्विक अन्यथाभाव समझा जाता है, वही सृष्टि है। यों विवर्तवादको उत्तरपक्षमें रखते हुए इस मूलतत्त्वविषयक विप्रतिपत्तिको दूर किया है। वह ब्रह्म मन और वाक्से परे है, जो सृष्टि हमें प्रतीत होती है, उसमें उस परब्रह्मका 'अवतार' होता है। उसी अवतारके द्वारा वह परब्रह्म उपास्य भी होता है, इसलिये एकादशसे आरम्भ कर षोडशपर्यन्त छः पुराण अवतारप्रतिपादक हैं। इनमें लिङ्ग और स्कन्द—ये दो भगवान् शङ्करके अवतार कहे जाते हैं और वराह, वामन, कूर्म और मत्स्य—ये चार अवतार भगवान् विष्णुके। यह स्मरण रहे कि सृष्टि प्रक्रियामें जिन अवतारोंका उपयोग है, उन्हीं अवतारोंके नामसे यहाँ पुराणोंके नाम रखे गये हैं। और जिस क्रमसे इन अवतारोंका सृष्टि प्रक्रियामें उपयोग है, वही क्रम उन पुराणोंका माना गया है। यह विषय स्वर्गीय गुरुवर श्रीमधुसूदनजी ओझा विद्यावाचस्पतिके ग्रन्थोंमें विस्तारसे निरूपित है। किसी अवसरपर पाठकोंको हिन्दीमें भी इसका दिग्दर्शन करानेका प्रयत्न किया जायगा। अस्तु, इस सृष्टिचक्रमें घूमनेवाले जीवकी किस किस कर्मके अनुसार क्या-क्या गति होती है—यह 'आयति' प्रकरण सत्रहवें 'गरुडपुराण'में दिखाया गया है, जिससे कि सृष्टिका 'परिणाम' (जीवका कर्मफलभोगरूप प्रयोजन) प्रतीत होता है। और इस सब गतिका 'आयतन' क्या है, तथा सृज्यमान वस्तुकी सीमा कितनी है—यह निरूपण अठारहवें 'ब्रह्माण्डपुराण'में कर दिया गया है। इस प्रकार क्रमसे अठारह पुराणों या एक ही पुराणके अठारह प्रकरणोंद्वारा सृष्टिविधानकी पूर्णता हो जाती है, और इस विद्यामें सब विद्याओंका अन्तर्भाव है—'यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते।' इससे आगे और कोई जाननेकी बात बाकी नहीं रहती।

क्यों न ?

(रचयिता—पं० श्रीअवधेशसुन्दरजी द्विवेदी)

चहक-चहक रह जाता चित्त चातक-सा, क्यों न श्यामघन ! रूप-रस टपकाते हो ?
रीते ही रहेंगे कर्ण-कलश हमारे अहो ! क्यों न अधरोंसे सुधा-धार ढरकाते हो ?
जो पै 'अवधेश' अवधेशके दुलारे हो तो, क्यों ये अविराम अश्रु-मोचन कराते हो ?
क्यों न इन लुब्ध लोचनोंको लोक-लोचन ! वे ललित ललाम लोल लोचन लखाते हो ?

वेद और पुराण

(लेखक—श्रीयुत वसन्तकुमार चट्टोपाध्याय, एम्० ए०)

मनुष्य कितना ही विद्वान् और बुद्धिमान् क्यों न हो, उसमें भ्रम और प्रमादकी सम्भावना रहती ही है । इसलिये मनुष्यरचित ग्रन्थ पाठ करके जो ज्ञान प्राप्त किया जाता है, वह निर्भ्रान्त होगा—ऐसा नहीं कहा जा सकता । वेद मनुष्यरचित नहीं हैं, ईश्वरके रचे हुए भी नहीं हैं; क्योंकि वे नित्य और अनादि हैं ।* आचार्योंने शब्द और ध्वनिमें भेद बतलाया है । वेदकी ध्वनि तो अनित्य है । जब कोई मनुष्य उच्चारण करता है, तभी वह सुनी जाती है । वह न तो इससे पहले सुनी जाती है और न इसके पीछे ही । किन्तु वेदके शब्द नित्य हैं । जिस समय कोई उच्चारण नहीं करता, उस समय भी वेदके शब्द विद्यमान रहते हैं । प्रलयकालमें वेदकी शब्दराशि ईश्वरके अंदर विद्यमान रहती है । सृष्टिके समय ईश्वरके द्वारा ही वेदका प्रचार होता है । सबसे पहले ब्रह्माजी वेदोंकी शिक्षा प्राप्त करते हैं । † पीछे जो ऋषि जिस प्रकारकी तपस्या करते हैं, उनके सामने उसीके अनुरूप वेदका अंश प्रकट हो जाता है । ऋषि अपने-अपने शिष्यको वेदकी शिक्षा देते हैं और शिष्य अपने शिष्यको शिक्षा देते हैं । इस प्रकार अविच्छिन्न गुरु-शिष्य-परम्परासे वेदका प्रचार हुआ है । इसमें मनुष्यका कोई कर्तृत्व नहीं है । इसलिये इसमें भ्रम या प्रमादकी कोई सम्भावना नहीं है । प्रमाणोंमें वेद ही सबसे श्रेष्ठ है । अर्थात् भ्रमहीन ज्ञान-प्राप्तिके श्रेष्ठ उपाय वेद ही हैं । प्रत्यक्ष दर्शनके द्वारा जो ज्ञान प्राप्त किया जाता है, उसमें भी भ्रमकी सम्भावना रहती है; क्योंकि नेत्रेन्द्रिय दोषयुक्त है । किन्तु वेदके द्वारा जो ज्ञान प्राप्त किया जाता है, वह भ्रान्तिशून्य होता है ।

वेद अत्यन्त दुरूह हैं । प्राचीन कालमें ब्राह्मण-बालकका उसके आठवें वर्षमें उपनयन-संस्कार होता था । वह बहुत समयतक गुरु-गृहमें रहकर वेदोंका अभ्यास करता था । उसके पश्चात् वेदोंका अर्थ ग्रहण करनेके लिये वह शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्यौतिष और छन्द—इन छः शास्त्रोंका अध्ययन करता था । किन्तु इतना परिश्रम करके वेदका जो अर्थ समझा जाता था, वह उसका केवल बाह्य अर्थ होता था । वेदका एक निगूढ अर्थ भी है, जो तपस्याके बिना ग्रहण नहीं किया जा सकता । ऋग्वेदसंहिताके प्रथम मन्त्रका अर्थ है—'हम अग्निदेवकी उपासना करते हैं । वे हमें बहुत-सा धन प्रदान करें ।' किन्तु यह तो इसका बाह्य अर्थ ही है । इसका निगूढ अर्थ तो यह है कि निष्कामभाव-पूर्वक वैदिक कर्म करनेसे चित्त शुद्ध होता है । तभी ब्रह्मज्ञान प्राप्त करना सम्भव है । वेदके इस निगूढ अर्थको लक्षित करके ही श्रीभगवान्ने गीतामें कहा है—'वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम् ।' वेदका प्रकृत अर्थ तो वे ही जानते हैं । व्यास-वाल्मीकि आदि ऋषि तपस्याद्वारा ईश्वरकृपासे ही वेदका प्रकृत अर्थ जान पाये थे । उन्होंने यह भी जाना था कि जगत्के कल्याणके लिये वेदके निगूढ अर्थका प्रचार करनेकी आवश्यकता है । साधारण मनुष्य न तो बहुत समयतक गुरु-गृहमें ही रह सकते हैं और न कठोर तपस्या ही कर सकते हैं । वे लोग भी वेदके निगूढ अर्थको समझ लें—इसलिये उन्होंने उसी अर्थको सरल भाषामें पुराण, रामायण और महाभारतके द्वारा प्रकट किया है । इसीसे शास्त्रोंमें कहा है कि रामायण, महाभारत और पुराणोंकी सहायतासे वेदोंका अर्थ समझना चाहिये ।* इन ग्रन्थोंको बिना पढ़े जो व्यक्ति वेदोंका अर्थ समझनेका प्रयत्न करता है, उसके लिये वेदका भ्रमात्मक अर्थ ग्रहण करना ही सम्भव है ।

अतएव वेद, रामायण, महाभारत और पुराण—ये सब एक अखण्ड धर्मका ही प्रतिपादन करते हैं । इन ग्रन्थोंमेंसे एकपर आघात करनेसे समग्र धर्मपर ही आघात होगा । ऐसा नहीं कहा जा सकता कि हम उपनिषदोंको तो मानते हैं, किन्तु पुराणोंको नहीं मानते । उपनिषदोंके निगूढ तत्त्व-की ही पुराणोंमें विशदरूपसे व्याख्या की गयी है । † जो लोग ऐसा मानते हैं कि उपनिषदों और पुराणोंमें विरोध है, वे उपनिषदों और पुराणोंका वास्तविक तात्पर्य नहीं समझ सके हैं ।

किन्तु पश्चिमी विद्वान् इन सब बातोंको स्वीकार नहीं

---

* वाचा विरूपनित्यया । (ऋ० सं० ८ । ७५ । ६)

† यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै ।
(श्वेताश्वतरोपनिषद् ६ । १८)

* इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत् । (महाभारत)

† वेदेर निगूढ अर्थ बूझने ना जाय ।
पुराणवाक्ये सेइ अर्थ करये निश्चय ॥
(चैतन्यचरितामृतमें श्रीचैतन्यदेवकी उक्ति)

करते। वे कहते हैं कि वैदिक और पौराणिक—ये दो विभिन्न धर्म हैं। वैदिक धर्ममें यज्ञ-यागादि विविध क्रिया कलापकी प्रधानता थी। क्रमश इन वैदिक क्रियाओंमें जब लोगोंकी अश्रद्धा होने लगी, तब वैदिक क्रिया और विविध देवताओं के प्रति विश्वास उठ गया और उपनिषदोंके द्वारा एकेश्वर वादका प्रचार हुआ। यह ज्ञानका प्रसङ्ग है। पीछे क्रमश पुराणोंमें भक्तिके प्रसङ्गका प्रचार हुआ; उपनिषदोंमें भक्तिका प्रसङ्ग नहीं है। तात्पर्य यह है कि वेदके कर्मकाण्ड और उपनिषदोंके ज्ञानकाण्डमें परस्पर विरोध है। इसी प्रकार उपनिषद् और पुराणोंमें भी विरोध है।

किन्तु इन सब ग्रन्थोंका मनोयोगपूर्वक विचार करने पर मालूम होगा कि पाश्चात्त्य पण्डितोंका यह कथन यथार्थ नहीं है। प्राचीन आचार्योंका मत ही ठीक है। उपनिषदोंमें यह बात कहीं नहीं कही गयी है कि वैदिक देवताओंका अस्तित्व नहीं है, यज्ञ करना निष्फल है अथवा यज्ञ करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। प्रत्युत उपनिषदोंमें तो जगह जगह अनेकों देवताओंका उल्लेख है, और यह बात भी स्पष्ट रूपसे कही गयी है कि यज्ञ करना आवश्यक है। * ऐसा भी कहा गया है कि अनासक्तभावसे यज्ञ क्रिया जाय तो वह ब्रह्मज्ञानकी प्राप्तिमें सहायक होता है। †

जिन लोगोंके लिये यही लोक सब कुछ है, उनकी इह लौकिक भोगाकाङ्क्षाको शिथिल किये बिना उनसे ब्रह्मज्ञानकी चर्चा करना निरर्थक ही होगा। इसीसे वेदोंके कर्मकाण्डमें परलोकके प्रचुर सुखकी प्राप्तिके लिये यज्ञानुष्ठान करनेकी बात कही गयी है। किन्तु इन सब बातोंका वास्तविक तात्पर्य मनुष्यको भगवत्प्राप्तिके मार्गमें प्रवृत्त करना ही है। हमारे पूर्वकृत पापकर्मोंसे उत्पन्न हुए सस्कार हमारी ब्रह्मज्ञानकी प्राप्तिमें प्रबल अन्तराय हैं। हमें यज्ञादि पुण्यकर्मोंके द्वारा उन पाप-सस्कारोंका नाश करना होगा। ‡ तभी हम ब्रह्मज्ञान प्राप्त करके मोक्ष पानेमें समर्थ हो सकेंगे। §

---

* तदेतत्सत्य मन्त्रेषु कर्माणि कवयो यान्यपश्यन्
तान्याचरथ नियत सत्यकामा।
(मुण्डकोपनिषद् १।२।१)

† तमेत ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसानाशकेन।
(बृहदारण्यकोपनिषद्)

‡ धर्मेण पापमपनुदति। (श्रुति)

§ अविद्यया मृत्यु तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते। (ईशोपनिषद्)
श्रीरामानुजाचार्यने ब्रह्मसूत्र १।१।१ के भाष्यमें इस वाक्य की ऐसी ही व्याख्या की है।

भक्तिकी चर्चा केवल पुराणोंमें ही है, उपनिषदोंमें नहीं—ऐसा कहना भी ठीक नहीं है। कठोपनिषद्में कहा है कि ईश्वरकी कृपाके बिना ईश्वरको प्राप्त नहीं किया जा सकता, विद्या और बुद्धि सभी व्यर्थ हो जाते हैं। * केनोपनिषद्में कहा है—'ईश्वर भजनीय है, इस दृष्टिसे उसकी उपासना करनी चाहिये।' † उपनिषदोंमें जो चीज बीज रूपमें है, पुराणोंमें वही पुष्प और पल्लवोंके रूपमें विकसित हुई है। विद्वान्लोग यह जानते ही हैं कि बीजमें पुष्प और पल्लव सूक्ष्मरूपसे विद्यमान रहते हैं। जो लोग ऐसा कहते हैं कि बीज दूसरी चीज है और पुष्प एव पल्लव दूसरी चीज हैं, वे वास्तवमें तत्त्वको नहीं जानते।

पुराणोंके केवल भक्तितत्त्वका ही नहीं, उनकी सब आख्यायिकाओंका मूल भी श्रुतियोंमें देखा जाता है। इसके कई उदाहरण दिये जा सकते हैं। पुराणोंमें जगन्माताके गिरिराजकुमारी उमाके रूपमें जन्म लेनेकी बात आती है। केनोपनिषद्में भी ब्रह्मविद्याका हैमवती उमाके रूपमें प्रकट होना देखा जाता है। ‡ पुराणोंमें वामन अवतारकी कथा है, ऋग्वेदमें भी देखा जाता है कि विष्णु तीन पादप्रक्षेपोंसे अपने आश्रित जनोंपर अनुग्रह करते हैं। § पुराणोंकी वाराहावतारकी कथा वेदोंमें भी देखी जाती है। × छान्दोग्योपनिषद्में 'कृष्णाय देवकीपुत्राय' ऐसा उल्लेख है।

वेदमें पुराणोंका उल्लेख देखा जाता है तथा पुराणोंको पञ्चमवेद कहा गया है। + अत वेदोंको माननेपर पुराणोंका भी प्रामाण्य स्वीकार करना पड़ता है।

---

* नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूँ स्वाम्॥
(कठ० १।२।२३)

† तद्वनमित्युपासितव्यम।
(केनोपनिषद्)

‡ स तस्मिन्नेवाकाशे स्त्रियमाजगाम बहुशोभमाना
उमां हैमवतीम्। (केन० ३।१२)

§ यस्य त्री पूर्णा मधुना पदान्यक्षीयमाणा स्वधया मदन्ति।
(ऋ० स० १।२१।४)

× स वराहरूप कृत्वा उपन्यमज्जत स पृथ्वीमध्य आर्च्छत्।
(तैत्तिरीय ब्राह्मण)

\+ ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेद सामवेदमाथर्वण
चतुर्थमितिहासपुराण पञ्चम वेदानां वेदम्।
(छान्दोग्य० ७।१।२)

बहुत लोगोंकी ऐसी धारणा है कि पुराण बहुत प्राचीन नहीं हो सकते, क्योंकि पुराणोंमें बुद्धदेवकी कथा तथा उनसे पीछेकी भी घटनाओंका उल्लेख है। किन्तु यह मत ठीक नहीं है। ज्यौतिषके ज्ञानकी सहायतासे जैसे परवर्ती सूर्यग्रहण-चन्द्रग्रहण आदिका समय पहलेसे ही बता दिया जाता है, उसी प्रकार ऋषिगण योगप्रभावसे भविष्यकी सब घटनाओं-को जान सकते थे। महर्षिगण त्रिकालदर्शी थे।

किसी पुराणमें विष्णुको बड़ा कहा है और शिवको छोटा, तथा किसीमें शिवको बड़ा और विष्णुको छोटा बताया है। इसका कारण यह है कि विष्णुभक्तके लिये विष्णुकी ही भगवद्भावसे उपासना करना उचित है। इसी प्रकार शिवभक्तको शिवकी ही ईश्वरभावसे उपासना करनी चाहिये। विभिन्न साधकोंका विभिन्न भावोंसे युक्त होकर उपासना करना उचित ही है। इसलिये पुराणोंको परस्पर-विरोधी नहीं कहा जा सकता।

पुराणोंमें लिखा है कि पृथ्वीका परिमाण पचास करोड़ योजन है। किन्तु वर्तमान विज्ञानके द्वारा पृथ्वीका व्यास (diameter) आठ हजार मील बताया गया है। इन दोनों मतोंका सामञ्जस्य इस प्रकार है कि पुराणोंमें पृथ्वीका घनफल (volume) कहा गया है। किसी भी गोलाकार वस्तुके व्यासार्द्ध (radius) को 'क' के द्वारा निर्देश किया जाय तो गोलाकार वस्तुका घनफल 'Integral Calculus' के नियमानुसार $\frac{४}{३} \pi क^{३}$ होगा। सामान्यतया यदि π को ३ माना जाय तो इस हिसाबसे पृथ्वीका घनफल पचास करोड़ योजन ही होगा। दो मीलका एक कोस और चार कोसका एक योजन होता है। अर्थात् एक योजन आठ मीलके बराबर होता है। अतः पृथ्वीका व्यासार्द्ध पाँच सौ योजन होनेके कारण उसका घनफल होगा $४ क^{३} =$ ४×५००×५००×५००=५०,००,००,००० अर्थात् पचास करोड़ योजन होगा।

पुराणोंमें कहा है कि चन्द्रग्रहणमें राहु चन्द्रमाको ग्रसता है; किन्तु विज्ञान कहता है कि चन्द्रमा पृथ्वीकी छायामें प्रवेश करता है। यह देखकर मनमें यह बात आ सकती है कि पुराणोंकी यह बात विश्वासके योग्य नहीं है। परन्तु बात ऐसी नहीं है। चन्द्रमा पृथ्वीकी छायामें प्रवेश कर सकता है; किन्तु यह कौन कह सकता है कि पृथ्वीकी जड छायामें कोई भी चेतनशक्ति अधिष्ठित नहीं है। पुराण कहते हैं कि उस छायामें एक चेतनशक्ति अधिष्ठित है। वही पूर्णचन्द्रके आलोक-को निस्तेज कर देती है। अतः वह आसुरी शक्ति है। सूर्य-ग्रहणके समय वही शक्ति सूर्यके दीखनेमें बाधक हो जाती है। सूर्य प्रकाश देता है, वायु प्रवाहित होता है और मेघ जल बरसाते हैं; प्रकृतिकी इन सभी घटनाओंमें उस चेतनशक्तिकी क्रिया विद्यमान है। ऋषियोंने दिव्यनेत्रोंसे उस शक्तिको देखा था। हमलोगोंमें उसे देखनेकी शक्ति नहीं है, अतः ऋषिवाक्योंमें हमारा अविश्वास करना ठीक नहीं है।

पुराणोंमें अनेकों अलौकिक घटनाओंका उल्लेख है। किन्तु इससे पुराणोंको अविश्वासनीय नहीं कह सकते। अलौकिक घटना उसे कहते हैं, जो साधारणतया नहीं घटती। किन्तु जो साधारणतया नहीं घटती, वह कभी भी नहीं घट सकती—ऐसा नहीं कहा जा सकता। इस समय भी तो कभी-कभी अलौकिक घटनाएँ देखनेमें आती हैं। 'अलौकिक' का अर्थ यदि 'आश्चर्य' किया जाय, तब तो कहना होगा कि पृथ्वीमें अलौकिक घटनाएँ प्रायः होती रहती हैं। बहुत-सी आश्चर्यजनक घटनाओंको देखनेका अभ्यास पड़ जानेसे ही हमें वे आश्चर्यजनक नहीं जान पड़तीं। सूर्योदय और सूर्यास्त भी बड़ी आश्चर्यजनक घटनाएँ हैं। बीजसे वृक्षकी उत्पत्ति भी एक आश्चर्यजनक घटना है।

पुराणोंमें राजाओंकी वंशावलीका भी वर्णन है; किन्तु यह वंशावलीका वर्णन केवल कौतूहलकी पूर्तिके लिये ही नहीं है। वेदका तात्पर्य समझानेके लिये, विषय-भोगोंकी आकाङ्क्षाको छुड़ानेके लिये और चित्तको भगवदुन्मुख करनेके लिये जिन ऐतिहासिक घटनाओंका उल्लेख आवश्यक है, पुराणोंमें विशेषरूपसे उन्हींका वर्णन हुआ है।

मूल वेदोंका पाठ करनेका सुयोग या क्षमता हममेंसे बहुतोंको प्राप्त नहीं है। परन्तु पुराणोंका पाठ बहुत-से लोग कर सकते हैं। अनेकों पुराणोंका भिन्न-भिन्न भाषाओंमें अनुवाद हो चुका है। उन ग्रन्थोंका श्रद्धापूर्वक पाठ करके हमलोगोंको वैदिक धर्मके वास्तविक स्वरूपकी उपलब्धि करनेकी चेष्टा करनी चाहिये।

पद्मपुराणका हृदय

(लेखक—दीवानबहादुर श्रीयुत के० एस्० रामस्वामी शास्त्री)

पद्मपुराणकी सात्त्विक पुराणोंमें गणना है। किन्तु पुराणोंका सात्त्विक, राजस और तामस—तीन वर्गोंमें विभाजन करनेका अर्थ यह नहीं है कि सात्त्विक पुराण सबसे श्रेष्ठ, राजस मध्यम श्रेणीके और तामस निकृष्ट कोटिके हैं। सत्त्व, रज, तम—ये तीन विश्वके मूल उपादान हैं। इनका अर्थ है—सामञ्जस्य, सक्रियता और निष्क्रियता। इन्हींको लेकर भगवान्‌ने ब्रह्मा, विष्णु, महेश—ये तीन रूप धारण किये हैं। इनमें ब्रह्मा—जगत्‌के उत्पादक, विष्णु—पालक और महेश—संहारक हैं। महाकवि कालिदासने अपने अमर काव्य 'कुमारसम्भव' में कहा है—

> एकैव मूर्त्तिर्बिभिदे त्रिधा सा
> सामान्यमेषां प्रथमावरत्वम्।

'एक ही भगवान् तीन रूपोंमें विभक्त हो गये, किन्तु उनमें छोटा-बड़ापन समान है—वे सभी एक दूसरेसे छोटे और सभी एक-दूसरेसे बड़े हैं।'

श्रीमद्भागवतपुराणमें तो यहाँतक बात आयी है कि महर्षि अत्रि जब विश्वके एकमात्र कारण श्रीभगवान्‌की प्रसन्नताके लिये तप कर रहे थे, उस समय ब्रह्मा, विष्णु, महेश—तीनों मूर्त्तियाँ उनके सामने प्रकट हुईं। महर्षिने पूछा कि 'मैंने तो एक भगवान्‌के ही दर्शन चाहे थे, फिर आप तीन महानुभाव कैसे पधारे?' इसपर भगवान् श्रीविष्णुने तीनोंकी ओरसे उत्तर दिया—

> अहं ब्रह्मा च शर्वश्च जगतः कारणं परम्।

'ब्रह्मा, शङ्कर और मैं—तीनों ही जगत्‌के परम कारण हैं।'

शास्त्रोंमें ऐसी बात भी आती है कि जिन्हें तामस पुराण कहा गया है, उनके भीतर सत्त्वकी धारा बहती है, केवल उनका बाह्यरूप ही तामस है—'अन्तःसत्त्व बहिस्तमः।' इसी प्रकार जिनकी सात्त्विक पुराणोंमें गणना है, उनमें भी तमोगुण गूढरूपसे विद्यमान है।

वास्तवमें पुराणोंकी विशेषता यही है कि उनमें वेदोंकी शिक्षाकी पुष्टि की गयी है, दृष्टान्तोंद्वारा उसका विशदीकरण हुआ है और साथ ही उसका विस्तार (उपबृंहण) भी किया गया है। इतिहासोंकी रचना भी इसी उद्देश्यको लेकर हुई है। रामायणमें लिखा है—

> वेदोपबृंहणार्थाय तावग्राहयत प्रभुः।

'महर्षि वाल्मीकिने वेदोंके विस्तारकी दृष्टिसे ही उन दोनों—लव और कुशको अपना काव्य कण्ठ करा दिया।'

जहाँ कहीं वेदों और स्मृतियोंमें तथा वेदों और इतिहास पुराणोंमें विरोध प्रतीत हो, वहाँ वेदोंको ही प्रमाण मानना चाहिये। परन्तु वास्तवमें इनमें कोई विरोध हो ही नहीं सकता। उनमें अविरोध स्थापित करना—उनकी एकवाक्यता करना ही हमारा प्रधान एवं आवश्यक कर्तव्य है।

अमरकोशमें पुराणके पञ्चविध लक्षण कहे गये हैं। उनमें सर्ग (मुख्य सृष्टि), प्रतिसर्ग (अवान्तर सृष्टि), वंश (देवताओं एवं प्रजापतियोंकी वंशावलि), मन्वन्तर (चौदह मनुओंके काल) तथा वंशानुचरित (मुख्य मुख्य राजवंशोंका इतिहास)—ये पाँच विषय अवश्य होने चाहिये—

> सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
> वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥

इस प्रकार पुराणोंमें पृथ्वीके किसी खण्डका अथवा पृथ्वी मात्रका ही नहीं, अपितु विश्व-ब्रह्माण्डका इतिहास है। परन्तु उनका प्रधान कार्य है—सत्यकी सनातन निधिरूप वेदोंमें प्रतिपादित आध्यात्मिक तत्त्वोंका विस्तार करना, उन्हें पुष्ट करना, दृष्टान्तोंद्वारा अथवा उदाहरण देकर समझाना तथा सर्वसाधारणमें प्रचारित करना। शास्त्रोंकी यह उक्ति बिल्कुल यथार्थ है कि वेदोंका उपदेश राजाज्ञाके सदृश (प्रभुसम्मित), पुराणोंका मित्रकी सलाहके समान (सुहृत्सम्मित) तथा काव्योंका पत्नीके मनोहर एवं भावपूर्ण अनुरोधके तुल्य (कान्ता सम्मित) है।

पद्मपुराणके पहले खण्डका नाम आदिखण्ड या सृष्टिखण्ड है। उसमें सृष्टिकी उत्पत्ति तथा सृष्टिके प्रारम्भकी घटनाओंका वर्णन है और साथ ही विविध धर्मों एवं व्रतोंका उपदेश किया गया है। दूसरे खण्डका नाम भूमिखण्ड है, उसमें १२५ अध्याय हैं। उसमें प्रह्लादके

पूर्वजन्मकी कथा, वृत्रासुरकी कथा तथा पृथु, ययाति एवं च्यवन आदिके चरित्रोंका वर्णन है। तीसरे स्वर्ग-खण्डमें देवताओंके लोकोंका तथा समुद्र-मन्थनका वर्णन है और चौथे पातालखण्डमें नीचेके लोकोंका वर्णन है तथा अनेकों राजाओंकी कथाएँ एवं भगवान् श्रीराम और श्रीकृष्णके चरित्र हैं। इस खण्डमें श्रीरामका चरित्र वाल्मीकीय रामायणमें वर्णित चरित्रकी अपेक्षा दूसरे ही ढंगसे वर्णित है। अन्तिम खण्ड—उत्तरखण्डमें भगवान् श्रीविष्णुके दस अवतारोंके हेतुओंका निर्देश किया गया है। तथा महर्षि अगस्त्यके पूर्वजन्मकी कथा, मार्कण्डेय मुनिका चरित्र, गायत्री-मन्त्रका रहस्य एवं माहात्म्य तथा रुद्राक्षका माहात्म्य आदि वर्णित है। यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि यद्यपि इस पुराणमें भगवान् श्रीविष्णुके ही उत्कर्षका प्रतिपादन किया गया है, फिर भी उसमें रुद्राक्ष एवं गणेश-पूजन आदिके माहात्म्यका भी वर्णन पाया जाता है। पद्मपुराणका सर्वोत्तम भाग उत्तरखण्ड ही है। उसमें जालन्धरकी कथाका भी वर्णन किया गया है तथा एकादशी, द्वादशी एवं ऋषिपञ्चमीके व्रतोंका माहात्म्य वर्णित है। साथ ही उसमें 'ॐ लक्ष्मीनारायणाभ्यां नमः'—इस मन्त्रको सम्पूर्ण मन्त्रोंमें श्रेष्ठ बताया गया है और यह भी कहा गया है कि उक्त मन्त्रकी दीक्षा शूद्रों एवं स्त्रियोंको भी दी जा सकती है। उसमें भगवान् श्रीविष्णुके पर, व्यूह एवं विभवनामक रूपोंका तथा ध्यानयोगकी अपेक्षा क्रियायोगके महत्त्वका भी वर्णन है।

पुराणोंका स्वरूप

(लेखक—डा० श्रीगिरीन्द्रशेखर वसु)

पुराणोंके मतसे पुराणोंका पाठ करनेमें अनेकों लाभ हैं।

पुराणोंके पाठसे लाभ

पुराणोंका पाठ करनेसे, पुराणोंकी प्रतिलिपि करनेसे अथवा पुराण लिखकर ब्राह्मणको दान करनेसे स्वर्ग और धर्मकी प्राप्ति होती है, वंशकी वृद्धि होती है और मनुष्यका सब प्रकारकी आपत्तियोंसे उद्धार हो जाता है। हमारे देशके पण्डितोंका कथन है कि मूल विष्णुपुराणका सात बार पाठ करनेसे संस्कृत-ज्ञानशून्य साधारण व्यक्तिका भी संस्कृत भाषापर अधिकार हो जाता है तथा पाठकको सम्पूर्ण शास्त्रोंके पाठका फल प्राप्त होता है। पुराणोंमें अनेक प्रकारकी अद्भुत-अद्भुत कथाएँ हैं; अतः आख्योपन्यासकी भाँति उनका भी पाठ किया जा सकता है। परन्तु खेदका विषय है कि इस समय शिक्षित पुरुषोंकी जैसी गति और मति है, उसे देखते हुए उनसे ऐसा प्रलोभन दिखाकर पुराणोंका पाठ नहीं कराया जा सकता। सौ वर्ष पूर्व शिक्षित भारतीय पुराणका अर्थ 'हिस्टरी' समझते थे। इस लेखमें मैं 'हिस्टरी' शब्दके अर्थमें 'इतिहास' शब्दका प्रयोग न करके 'इतिवृत्त' शब्दका प्रयोग करूँगा। इसका कारण आगे चलकर स्पष्ट हो जायगा। पुराणोंको यदि प्राचीन भारतकी हिस्टरी या इतिवृत्त माना जाय तो आधुनिक विद्वानोंमें उनके पाठका उत्साह उत्पन्न हो सकता है। परन्तु इन सौ वर्षोंमें हमारे अंदर बहुत परिवर्तन हो गया है। विदेशी विद्वानोंने पुराणोंका अध्ययन करके बताया है कि पुराण 'माइथॉलजी' है। प्रयत्नपूर्वक आलोचना करनेपर सम्भव है पुराणोंमें कुछ 'हिस्टरी' भी प्राप्त हो सके। परन्तु वास्तवमें सम्पूर्ण पुराण माइथॉलजीके सिवा और कुछ नहीं हैं। भारतके आधुनिक विद्वानोंने भी इस बातको स्वीकार कर लिया है। अतः वे भी पुराणोंका अध्ययन करनेके लिये विशेष आग्रह नहीं रखते। पुराणोंसे हिस्टरी या इतिवृत्तका कुछ अंश मिल जाय—इस आशासे ही दो-एक विद्वान् पुराणोंकी थोड़ी-बहुत चर्चा करते हैं।

पुराणोंके पाठमें बाधा

विदेशी पण्डितगण यदि इतना कहकर ही चुप हो जाते कि पुराणोंके पढ़नेसे कोई लाभ नहीं है तो सम्भव था कि भारतीय लोगोंका पुराणोंके अध्ययनके प्रति आग्रह शिथिल न पड़ता। किन्तु खेद है कि वे पुराणोंके स्वाध्यायमें बहुत बड़ी बाधा खड़ी कर गये हैं। फलतः उन सब बाधाओंको पार करके आधुनिक भारतीय विद्वानोंके लिये पुराणोंकी चर्चा करना दुःसाध्य हो गया है। पुराणोंका अध्ययन आरम्भ करते समय वे सब बाधाएँ शिक्षित व्यक्तिके मार्गमें रुकावट डाल देती हैं। वे पुराणोंके स्वाध्यायसे उसे विरत कर देती हैं। अथवा यदि पाठ किया भी जाता है

तो वे उनके वास्तविक अर्थका निरूपण करनेमें बाधक हो जाती हैं । ये बाधाएँ दो प्रकारकी हैं—साधारण और विशेष । साधारण बाधाकी बात पहले कहता हूँ—विदेशी विद्वानोंका कथन है कि प्राचीन हिंदू लिखना ही नहीं जानते थे । वे सारी विद्याको कण्ठस्थ करके रखते थे । इसलिये प्राचीन हिंदुओंकी हिस्टरी या इतिवृत्त तो रह ही नहीं सकता । लिखित न होनेपर अथवा घटनाका कोई *पक्का प्रमाण न मिलनेपर कोई हिस्टरी हिस्टरी* नहीं कही जा सकती । स्मृतिभ्रष्ट होनेसे कालान्तरमें सच्ची घटनाका रूप विकृत हो जाता है । हिंदुओंके लिखित पुराण सर्वथा प्राचीन नहीं हैं । उनका वर्णित विषय भी विश्वसनीय नहीं है । प्राचीन हिंदुओंमें historical sense अथवा इतिवृत्तीय भावनाका अभाव था तथा उसका होना सम्भव भी नहीं था । हिंदू-सभ्यता या संस्कृति अधिक से अधिक ईसाके १५०० वर्ष पूर्वतक जा सकती है । भारतमें हिंदुओं के आनेसे पूर्व सुसभ्य अनार्य जाति रहती थी । उन्हींके संसर्गमें आकर हिंदूलोग सभ्य हुए हैं । धूर्त ब्राह्मणोंने हिंदूधर्मका मान बढानेके लिये और अपनी सुविधाके लिये प्राचीन अनार्य किंवदन्तियोंकी 'शुद्धि' करके और उन्हें संस्कृत भाषामें लिखकर अपने काल्पनिक पूर्वजोंके कधोंपर लाद दिया है । अतएव पुराणोंमें जो कुछ प्राचीन विवरण है, वह सभी अग्राह्य है ।

विदेशी पण्डितोंकी की हुई विशेष बाधाका उदाहरण देता हूँ । वे कहते हैं कि हिंदुओंका महाभारत ग्रन्थ ही सर्वोत्कृष्ट इतिहास है । किन्तु महाभारतमें तो इतने अवान्तर विषय और असम्भव घटनाओंका वर्णन है कि उसे वास्तविक हिस्टरीका सम्मान देना असम्भव है । विशेष कालका निर्देश हिस्टरीका एक अपरिहार्य अङ्ग है और महाभारतमें कालनिर्देशकी कोई भी चेष्टा नहीं देखी जाती । हिंदुओंमें historical sense या इतिवृत्तीय भावनाका अभाव होनेसे ही उनके इतिहासमें ये दोष आ गये हैं । इन्हीं कारणोंसे पुराणोंको भी इतिवृत्त नहीं कहा जा सकता । यदि कोई कहता है तो वह सर्वथा हिंदुओंके प्रति पक्षपात ही है ।

उपर्युक्त आपत्तियाँ विजेता जातिके विद्वान्, विज्ञानवेत्ता और आधुनिक इतिवृत्तके जन्मदाता विदेशी पण्डितोंकी उठायी हुई हैं, अतः भारतीय शिक्षित व्यक्तियोंमें उनका बड़ा आदर है । पुराणोंकी अप्रामाणिकताके विषयमें सारी युक्तियाँ विदेशी विद्वानोंकी ही दी हुई हैं । देशी विद्वान् तो केवल उनकी पुनरावृत्ति ही करते हैं । वे स्वयं किसी प्रकारकी नवीन आपत्तिका उल्लेख नहीं करते । इन युक्तियों का गौरव और प्रतिष्ठा होनेसे भारतीय पुरातत्त्वसम्बन्धी विचारधारामें एक विशेषत्व आ गया है । यदि कोई कहे *कि पूर्वकालमें राम अयोध्याका राज्य करते थे तो आधुनिक* विद्वान् उत्तर देंगे—'यह तुम्हारी कल्पनामात्र है । तुम रामका अस्तित्व प्रमाणित करो । उनके विषयमें कोई पक्का प्रमाण, शिलालेख और मुद्रा दिखाओ, तब हम मान सकते हैं ।' इस प्रकार रामके सम्बन्धमें onus of proof अर्थात् प्रमाणका भार उनका अस्तित्व बतानेवालेपर पड़ता है । दूसरी ओर यदि कोई कहे कि 'तुम्हारा हैरल्ड इंग्लैंडका राजा था—यह बात मैं नहीं मानता । इस विषयमें तुम पक्का *प्रमाण दिखाओ', तो आधुनिक विद्वान् उसकी यह बात* स्वीकार नहीं करेंगे । वे कहेंगे, 'तुम यही सिद्ध कर दो कि हैरल्ड नहीं था ।' अर्थात् हैरल्डके सम्बन्धमें प्रमाणका दायित्व उसकी असत्ता बतलानेवालेपर पड़ता है । विदेशीय इतिवृत्त विश्वासकी भित्तिपर और पुराणोक्त विवरण अविश्वासकी भित्तिपर स्थित होनेसे ही भारतीय और इंग्लैंड के इतिवृत्त-विचारकी धाराएँ भिन्न भिन्न हैं । विश्वासकी भित्ति रहनेके कारण यदि विदेशियोंके लिखे हुए इतिवृत्तके मूल उपादानमें कोई गलती, अतिरञ्जन या असम्भव कहानी *भी रहती है तो हम उसकी उपेक्षा करके उनका इतिवृत्त लिखते* हैं और इस प्रकारके इतिवृत्तको वास्तविक हिस्टरी कहनेमें भी हमें आनाकानी नहीं होती । वहाँ हम पद-पदपर पक्का प्रमाण भी नहीं माँगते । दूसरी ओर पुराणोंकी भित्तिको अविश्वास्य मानकर हम पुराणोंके अतिरञ्जनादि दोषोंको घातक समझते हैं तथा पुराणोंके सारे के-सारे विवरणको ही अग्राह्य बताने लगते हैं । वहाँ हम इन बातोंपर विचार नहीं करते कि पुराणोंमें किस प्रकारका अति रञ्जन है, वह क्यों है तथा विदेशीय अतिरञ्जनकी धारासे इसमें क्या अन्तर है । शिक्षित व्यक्ति पुराणोंके स्वाध्यायका प्रयत्न करते हैं तो ज्ञात या अज्ञात रूपसे उनके हृदयमें विदेशियोंकी उत्पन्न की हुई बाधाएँ आकर उपस्थित हो जाती हैं और उनके लिये सत्यका निर्णय करना दुःसाध्य हो जाता है । पुराणोंके तात्पर्यका विचार करनेवालेको यह विदेशीय मोह पार करना होगा । सत्यका अन्वेषण करनेवाले चेष्टा

पुराणोंकी प्रामाणिकता

करनेपर इस मोहको काट सकते हैं। यह बात सदा याद रखनी चाहिये कि विदेशियोंमें भी पक्षपात है। यह पक्षपात कभी व्यक्त रहता है और कभी अव्यक्त। अव्यक्त पक्षपात rationalization अथवा युक्त्याभासके रूपमें दिखायी दिया करता है। विदेशियोंद्वारा उठायी हुई युक्तियाँ अनेकों फुटनोट, टीका, टिप्पणी, comparative, parallel cross reference द्वारा कण्टकित होनेके कारण सहजमें ही पाठकोंकी विचारबुद्धिको धोखेमें डाल देती हैं। मूल युक्तिमें कोई असारता रहनेपर भी वह सहसा पकड़नेमें नहीं आती। अतः मूल युक्तियोंका संक्षेपके लिये १, २, ३ इत्यादि संख्याओंसे निर्देश कर देनेपर उनकी यथार्थताका निर्णय करनेमें सुविधा रहेगी। हमें विदेशीय विद्वानोंकी प्रत्येक युक्तिकी मूलभित्तिको सावधानीसे परीक्षा करके देखना होगा। इसका निर्णय करना होगा कि कौन प्रत्यक्ष तथ्य है और कौन केवल अनुमानमात्र है। अनुमानमें कितनी दृढता है, इसका भी विचार करना होगा। प्रायः देखा जाता है कि पहले एक पुरुषने एक अनुमान किया, उसके बाद दूसरे व्यक्तिने उस अनुमानको ही आधार बनाकर एक नवीन अनुमान किया और फिर क्रमशः वह नवीन अनुमान ही सत्यरूपमें स्वीकार कर लिया गया और लोगोंने बिना किसी प्रकारका विचार किये ही उसे ग्रहण कर लिया। भारतीय पुरावृत्तके विचारमें ऐसे अनु-अनुमान कितने हैं, जो आज सत्य नामसे प्रतिष्ठा पा रहे हैं—इसकी कोई गणना नहीं की जा सकती। कहना न होगा कि इस प्रकारके अनु-अनुमानोंका वास्तविक मूल्य बहुत ही कम है और उनमें भ्रमकी सम्भावना भी बहुत अधिक है।

पुराणोंकी प्रामाणिकताके विरुद्ध जिन युक्तियोंकी अवतारणा की गयी है, उनका ठीक-ठीक विचार विशेषज्ञ पुरुष ही कर सकते हैं। मैं तो सामान्यरूपसे ही कुछ बातें कहूँगा। पुराणोंकी आलोचनासे मेरे मनमें यही विश्वास जमा है कि ये प्रामाणिक इतिवृत्त हैं। किन-किन युक्तियोंके बलसे मैं इस सिद्धान्तपर आया हूँ, यह बात मैं आगे बताऊँगा। मेरा विश्वास है कि पुराणोंकी प्रामाणिकता इतनी सुदृढ भित्तिपर प्रतिष्ठित है कि उसके च्युत होनेकी सम्भावना बहुत कम है; तथा विदेशीय पण्डितोंने बिल्कुल उल्टी बात कही है। जिन युक्तियोंके आधारपर मैंने पुराणोंकी प्रामाणिकता मानी है, वे सत्य हों तो दूसरे पक्षका विचार निश्चय ही भ्रान्तिपूर्ण है। अतः दूसरे पक्षकी युक्तियाँ आपाततः सत्य दिखायी देनेपर भी भलीभाँति उनकी परीक्षा किये बिना मैं उन्हें मान नहीं सकता। विशेषज्ञोंके द्वारा ही मेरी और प्रतिपक्षियोंकी युक्तियोंके सत्यासत्यका निर्णय होगा। अब मैं प्रतिपक्षियोंकी युक्तियोंकी असारता दिखाता हूँ।

पुराण वास्तविक इतिवृत्त हैं

हिंदुओंका वर्णाश्रमधर्म अत्यन्त प्राचीन कालसे प्रचलित है। वर्णाश्रमधर्मके गुण-दोषका विचार न करके भी यह तो कहा ही जा सकता है कि प्राचीन हिंदू अपने सामाजिक बन्धनके विषयमें खूब सावधान थे और इस प्रकारकी व्यवस्था प्रवृत्त करनेमें उन्होंने यथेष्ट स्वाधीन विचार और बुद्धिका परिचय दिया है। हिंदुओंने अत्यन्त प्राचीन कालसे ही अपने धर्मशास्त्रके आधारस्वरूप वेदोंका संग्रह किया है। उपनिषदोंमें उन्होंने यथेष्ट विद्या और बुद्धिका परिचय दिया है। उन्होंने शिक्षा, कल्प, ज्यौतिष, छन्द, निरुक्त, व्याकरण, मीमांसा, न्याय, आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्व-वेद और अर्थशास्त्रादि विशेष-विशेष विद्याओंकी आलोचना की है। प्राचीन उपनिषदोंमें ही इन सम्पूर्ण विद्याओंके नाम पाये जाते हैं। जो हिंदू ब्रह्मजिज्ञासा और धर्मजिज्ञासा आदिकी अवतारणा कर सकते थे उनमें इतिवृत्तीय भावनाका रहना सम्भव नहीं था—ऐसी बात कहना एकदम साहसका ही काम है। इतिवृत्तीय भावना विशेषरूपसे इलक्ट्रिसिटी या एरोप्लेनके आविष्कारादिपर तो निर्भर है नहीं। हाँ, यह बात अवश्य विचारणीय है कि इतिवृत्तीय भावना रहते हुए भी उन्होंने वास्तविक इतिवृत्त लिखा है या नहीं। इस स्थानपर तो मुझे इतना ही कहना है कि उनमें इतिवृत्तीय भावना रहना असम्भव नहीं था।

भारतमें प्राचीन लेखका कोई वस्तुगत प्रमाण न मिलनेसे विदेशी विद्वानोंने यह सिद्धान्त निश्चय किया है कि प्राचीन भारतमें लोग लेखनकलाको जानते ही न थे। 'श्रुति', 'स्मृति' आदि शब्दोंका ऊटपटांग अर्थ करके उन्होंने यही समझा है कि चार वेद, वेदाङ्ग—यहाँतक कि सारी ही विद्याएँ हिंदूलोग कण्ठस्थ करके रखते थे। यह बात सत्य है कि वैदिक ब्राह्मणको वेदोंके विशेष-विशेष अंश कण्ठस्थ रखने होते थे। परन्तु कण्ठस्थ करना होता था, इसलिये वेद लिखा ही नहीं जाता था—यह तो बड़ी ही विचित्र युक्ति है। कोई लोग कह सकते हैं कि 'मोहन-जो-दड़ोकी लिपिका आविष्कार हो जानेपर अब विदेशी विद्वान् यह नहीं कहते कि प्राचीन भारतीय लिखना नहीं जानते

थे। अतः इस विचारको बढानेकी क्या आवश्यकता है?' परन्तु 'प्राचीन हिंदू लेखनकला नहीं जानते थे' ऐसा न कहनेपर भी विदेशी विद्वानोंके शिष्य प्रशिष्य अभी यह तो कहते ही हैं कि आरम्भमें पुराण लिखे नहीं गये, मौखिक रूपमें ही इनका प्रचार हुआ था।

वैदेशिक युक्तियोंकी असारता

जिन युक्तियोंके बलपर हिंदू सभ्यताको अर्वाचीन कहा गया है, वे भी ऐसी ही विचित्र हैं। उनमेंसे कुछ यहाँ उद्धृत की जाती हैं। भारतके बाहर प्राचीन संस्कृत भाषासे मिलती-जुलती भाषामें लेख पाये गये हैं, किन्तु भारतमें ऐसा कोई भी प्राचीन लेख नहीं पाया गया। इससे यह निश्चय किया गया है कि भारतकी संस्कृत भाषा पूर्वोक्त लेखोंके पीछेकी है। वस्तुतः प्रमाण नहीं मिलता, इसलिये वस्तु थी ही नहीं—ऐसा भ्रमपूर्ण अनुमान भारतीय पुरातत्त्वके विचारमें बार बार किया गया है। जर्मन पण्डितोंने यह देखकर कि चार सौ वर्षोंमें जर्मन भाषामें कितना परिवर्तन हुआ है, ऐसा एक काल्पनिक हिसाब लगाया था कि संस्कृत भाषामें कितने वर्षोंमें क्या परिवर्तन हो सकता है। संस्कृत किसी भी समय सर्वसाधारणमें प्रचलित भाषा थी या नहीं, जर्मन पण्डितोंका कालनिर्णयका सूत्र संस्कृतके विषयमें लागू पड़ सकता है या नहीं और इस प्रकारके कालनिर्णयमें कितने भ्रमकी सम्भावना है—इन सबके विषयमें कुछ भी स्थिर करनेकी आवश्यकता उन्होंने नहीं देखी। संस्कृत श्लोकोंमें प्राकृतका प्रभाव देखकर एक महाशयने अनुमान किया है कि श्लोक पहले प्राकृत भाषामें लिखे गये थे। किसी बंगालीकी लिखी हुई अंग्रेजीमें यदि बँगला वाक्यविन्यासके अनुरूप छटा देखकर कोई निश्चय करे कि वह प्रबन्ध पहले बँगला भाषामें लिखा गया था, तो उस अवस्थामें ऐसी ही भूल समझी जायगी। अत्यन्त प्राचीन कालमें भी सर्वसाधारण लोग प्राकृत भाषामें बातचीत करते थे तथा विद्याकी आलोचनाके लिये और आनुष्ठानिक व्यापारोंमें संस्कृतका व्यवहार होता था। संस्कृतकी वर्णमाला और अक्षरक्रमसे, व्याकरणके सुदृढ बन्धनसे, यहाँतक कि 'संस्कृत' नामसे भी यह संदेह होता है कि बोल-चालकी भाषाके रूपमें संस्कृतका विशेष प्रचार कभी नहीं था। संस्कृत भाषा कृत्रिम है, अतः यह पूर्णाङ्ग है। दूसरी ओर प्राकृत भाषा प्रकृतिजात या स्वाभाविक भाषा है तथा स्वभावसे ही इसकी उत्पत्ति हुई है। प्राकृत भाषा देश देशमें विभिन्न प्रकार की है, किन्तु संस्कृत आधुनिक एसपेरेंटो नामकी कृत्रिम भाषाके समान सब देशोंमें एक-सी ही है। ऋग्वेदमें आया है कि ऋषियोंने भाषाको सत्तूकी तरह चलनीमें छाना। इससे भाषामें भद्रा श्री (मनोहर कान्ति या सुन्दरता) आ गयी और सातों छन्द उसके चारों ओर नृत्य करने लगे। ऋग्वेदका सूक्त ही कहता है कि यह भाषा सर्वसाधारणकी समझमें आनेयोग्य नहीं थी। लिखित संस्कृतमें प्राकृतका प्रभाव कोई नयी बात नहीं है। इससे संस्कृतकी अर्वाचीनता सिद्ध नहीं होती।

पुराणग्रन्थोंमें विदेशीय पण्डितोंको कुछ भूलें मिली हैं। इन भूलोंकी विशेषता देखकर उन्होंने अनुमान किया है कि मूल ग्रन्थ खरोष्ठी लिपिमें लिखे गये थे। खरोष्ठी लिपि प्रायः तीन सौ ईस्वीतक प्रचलित थी। पुराणोंकी अर्वाचीनतामें इस बातकी भी एक प्रमाणरूपसे गणना है। आजकल कोई-कोई संस्कृतग्रन्थ रोमन अक्षरोंमें छापे गये हैं। इस रोमन लिपिमें छपे हुए ग्रन्थको देखकर यदि कोई उसे पुनः देवनागरी लिपिमें लिखे तो उसमें अँग्रेजीमें होनेवाली भूलें रह ही सकती हैं। पीछे कोई विद्वान् उस लेखको देखकर यदि ऐसा अनुमान करे कि मूल ग्रन्थ अँग्रेजी अमलदारीका है तो उसका यह सिद्धान्त भ्रमपूर्ण है—इसमें तो कहना ही क्या है। पण्डितोंने बहुत खोज करके संस्कृतमें प्रायः चार सौ शब्द द्राविडी भाषाके पाये हैं। ये शब्द पूरे पूरे द्राविडी भाषाके हैं या नहीं, इसमें भी सन्देह है। संस्कृतमें बहुत कमीके साथ विचार किया जाय तो भी पचास हजारसे अधिक शब्द हैं। विदेशी विद्वान् जो यह कहते हैं कि असभ्य आर्य जाति अनार्य और सभ्य द्राविडी जातिके संसर्गमें आकर ही उन्नत हुई—इसमें उनकी भाषामें द्राविड शब्दोंका होना भी एक प्रमाण है। विजेता आर्य अन्ततक विजित द्राविडोंकी संस्कृतिसे पराजित होते रहे हैं। ऐसी ही युक्तिके अनुसार यह भी कहा जा सकता है कि अँग्रेजी कोषमें बहुत से भारतीय शब्द हैं, अतः अंग्रेज विजेता होनेपर भी विजित भारतीयोंके द्वारा पराभूत हुए हैं और उन्होंने उन्हींकी संस्कृति स्वीकार कर ली है। द्राविडी भाषामें ट, ठ, ड, ढ, ण अक्षरोंकी अधिकता है तथा भारतके बाहर जो संस्कृतसे मिलती जुलती भाषाके लेख पाये जाते हैं उनमें ट, ठ, ड, ढ बिल्कुल नहीं हैं, अतः भारतीय संस्कृत भाषाके प्रवर्तक इस विषयमें द्राविडीके ऋणी हैं। कैसी अद्भुत युक्ति है! प्राकृतको शुद्ध करके संस्कृत भाषा बनानेमें द्राविडी भाषाका आश्रय लिये बिना भी ट, ठ, ड, ढ आ सकते हैं—इसका अनुमान तो सहजमें ही

किया जा सकता है। मोहन-जो-दड़ोकी संस्कृति आर्य थी या अनार्य—इसका निर्णय तो अभीतक नहीं हो सका है। तो भी इन सब विद्वानोंने यह पहले ही तय कर लिया है कि वह निश्चय अनार्य ही होनी चाहिये; क्योंकि यदि इसे अनार्य न बताया जायगा तो आर्य सभ्यता बहुत प्राचीन हो जायगी और इस बातको माननेमें उन्हें घोर आपत्ति है। जिस स्थानपर कोई भी सिद्धान्त स्थिर करना उचित नहीं है, विदेशी पक्षपातके कारण ये पण्डितजन उन स्थानोंपर भी एक सिद्धान्त निश्चित करके डट जाते हैं। योरपमें मध्ययुगसे लेकर आजतक church and state अर्थात् पुरोहित-सम्प्रदाय और शासकोंके बीचमें विवाद चला आता है। इससे विदेशीय विद्वानोंने अनुमान किया है कि भारतमें भी निश्चित रूपसे ब्राह्मणसम्प्रदाय और क्षत्रिय राजाओंमें सदासे कलह होता रहा है। पुराणोंमें इस विचारके अनुकूल एक-दो आख्यान पाकर उनकी यह धारणा और भी दृढ़ हो गयी है। वे कहते हैं कि पुराणोंमें क्षात्र और ब्रह्मण्य—ये दो धाराएँ हैं। क्षात्र किंवदन्तीमें सत्य इतिवृत्त पाया जाता है और ब्राह्मणोंका लिखा हुआ अंश सारा-का-सारा ही अविश्वसनीय है। ब्राह्मणोंमें किसी प्रकारकी इतिवृत्तीय भावना थी ही नहीं। उन्होंने वेदोंमें कुछ भी इतिवृत्त नहीं लिखा है। विदेशियोंका ब्राह्मणविद्वेष बहुत ही प्रबल है। विदेशीय विद्वान् समझते हैं कि अनार्य और क्षात्र किंवदन्तियोंपर रंग चढ़ाकर उनमें परिवर्तन और काल्पनिक कालनिर्देश करके ब्राह्मणोंने अपेक्षाकृत आधुनिक पुराणको प्राचीन रूपसे प्रसिद्ध करनेकी चेष्टा की है। उपनिषदादि अत्यन्त प्राचीन ग्रन्थोंमें जो पुराणोंका उल्लेख है, इन पण्डितोंने पक्षपातवश उसपर ध्यान नहीं दिया।

पुराण और इतिहास

विदेशीय लोगोंका कहना है कि प्राचीन भारतीयोंमें इतिवृत्तीय भावनाके अभावका प्रकृष्ट प्रमाण महाभारत है। उनकी युक्ति इस प्रकार है। History शब्दका संस्कृत पर्याय 'इतिहास' है। महाभारत ही हिंदुओंका सर्वश्रेष्ठ इतिहास ग्रन्थ है; किन्तु यह इतिहास अवास्तविक, असम्भव और अविश्वसनीय घटनाओंके वर्णनसे पूर्ण है। इसमें कालनिर्देशकी भी कोई चेष्टा नहीं है। अतएव हिंदुओंकी हिस्टरी लिखनेकी दौड़ यहींतक है। इसके अनुरूप हम यह युक्ति देते हैं। 'धर्म' शब्दका पर्याय 'Religion' है। मन्वादि भारतीय धर्मशास्त्रमें जातिविभाग, समाजशासनका निर्देश, किस पापका क्या प्रायश्चित्त है, किस अपराधमें राजा क्या सजा दे—यहाँतक कि धोबीके कपड़ा फाड़ देनेपर तथा सुनारके सोना चुरा लेनेपर उसे क्या दण्ड दिया जाय, इत्यादि सभी विषय लिखे हैं। कहनेका तात्पर्य यह है कि समाजरक्षा और समाजान्तर्गत व्यक्तियोंकी सर्वाङ्गीण उन्नतिके लिये जो कुछ आवश्यक समझा गया है, उसीका हिंदू-धर्मशास्त्रमें उल्लेख हुआ है। विदेशियोंकी सर्वश्रेष्ठ धर्मपुस्तक बाइबिल है। हिंदू पण्डित बाइबिलमें समाजरक्षाकी व्यवस्थाके सम्बन्धमें विधि-निषेध और अपराधोंके सम्बन्धमें आईन-कानून न देखकर यह सिद्धान्त निश्चय कर सकते हैं कि विदेशीलोग समाजबद्ध होकर रहना नहीं जानते थे। उनकी समाजतत्त्वसम्बन्धी दौड़ तो बाइबिलकी शिक्षापर्यन्त ही है। इस प्रकारकी युक्तिमें जो भ्रम है, वह सहजमें नहीं पकड़ा जा सकता। धर्मके अर्थमें Religion नहीं है और History के अर्थमें 'इतिहास' शब्द नहीं है। वेदमें इतिवृत्त ढूँढ़ना, इतिहासमें इतिवृत्त ढूँढ़ना और कालिदासके कुमारसम्भव काव्यमें इतिवृत्त ढूँढ़ना एक ही बात है। इन सभी पुस्तकोंमें इतिवृत्तके उपयोगी कोई सामग्री तो मिल सकती है; परन्तु इन्हें वास्तविक इतिवृत्त या हिस्टरी कहना तो सर्वथा वाचालता ही है। 'इतिहास' शब्दकी निरुक्ति इस प्रकार है—इति ह+आस। 'इतिह'का अर्थ परम्पराप्राप्त कहानी है। यह कहानी पुरानी हो सकती है, नयी हो सकती है, सत्य हो सकती है और मिथ्या भी हो सकती है। वटवृक्षपर भूत रहता है, यह बहुत दिनोंकी कहावत है। इस प्रकारकी कहावत ही 'इतिह' कहलाती है और जिस पुस्तकमें 'इतिह' संगृहीत होते हैं, उन्हें 'इतिहास' कहते हैं। इतिहासमें सत्य इतिवृत्तीय घटनाओंका उल्लेख रहनेपर भी वह इतिवृत्त या हिस्टरी नहीं हो सकता। तो क्या 'हिस्टरी' कहनेपर हम जो कुछ समझते हैं, उस अर्थका वाचक कोई भी शब्द संस्कृतमें नहीं है? क्या विदेशियोंकी बात ही ठीक है; संस्कृतमें क्या कोई भी हिस्टरी नहीं पायी जाती? मुद्रणयन्त्रका आविष्कार होनेसे पूर्व किस देशमें कितनी

प्राचीन पुस्तकें थीं—इसकी यदि गणना की जाय तो हम देखेंगे कि संस्कृत भाषामें लिखी हुई पुस्तकोंकी संख्या सबसे अधिक है। यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता कि यह संख्या निश्चितरूपसे कितनी अधिक है, तथापि ऐसा कहनेमें तो तनिक भी अत्युक्ति नहीं है कि संस्कृत ग्रन्थोंके सामने अन्यान्य भाषाओंमें लिखी हुई पुस्तकोंकी संख्या बहुत ही अल्प है। भारतीय जलवायुके कारण यहाँकी कोई भी पुस्तक बहुत दिनोंतक नहीं ठहर सकती—यह बात निश्चित है। अत अनेकों पुस्तकोंकी बार बार प्रतिलिपियाँ तैयार की गयी हैं। इसमे सन्देह नहीं कि बहुत-सी प्राचीन पुस्तकें अब सर्वथा नष्ट हो चुकी हैं। तथापि उनमेंसे जो कुछ बची हैं, उनसे यह सहजमें ही अनुमान किया जा सकता है कि प्राचीन हिंदुओंका विद्यानुराग कितना आश्चर्यजनक था। जिन हिंदुओंने इतने विभिन्न विषयोंमें अपनी विद्वत्ता प्रदर्शित की है, वे क्या केवल हिस्टरीके विषयमे ही निश्चेष्ट थे। और यदि उन्होंने हिस्टरी भी लिखी थी तो क्या वे सभी ग्रन्थ नष्ट हो गये ? हमारा तो मत है कि हिंदुओंने वास्तविक हिस्टरी या इतिवृत्तोंकी रचना की थी और वे इतिवृत्त नष्ट भी नहीं हुए हैं। 'पुराण' ही वे इतिवृत्त हैं। यह बात सुननेमें सहसा विचित्र और अविश्वसनीय जान पड़ेगी। परन्तु विदेशीय विद्वानोंकी पैदा की हुई बाधाओंको कुछ देरके लिये मनसे हटाकर पुराणोंमें मनोनिवेश किया जाय तो हमारा कथन सत्य प्रतीत होगा। अब इस विषयमें जो कुछ कहना है, हम सक्षेपमें कहते हैं।

पहले यही देखना चाहिये कि पुराणोंमें लिखा क्या है।

पुराणोंका लक्षण

पुराणोंको चण्डूखानेकी गप्प समझकर उनके पाठको छोड़ बैठनेसे काम नहीं चलेगा। प्राचीन संस्कृत पुस्तकोंकी यह एक विशेषता है कि ग्रन्थकारने किस विषयका प्रतिपादन किया है—यह बात पहले ही सक्षेपमें कह दी जाती है। पुराणोंका वक्तव्य क्या है—यह बात भी पुराणकारने स्वयं ही कह दी है, यथा—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चेति पुराणं पञ्चलक्षणम्॥
(वायु० १। २०१)

अर्थात् सर्ग या सृष्टि, प्रतिसर्ग या प्रलय, वंश या विशिष्ट राजवंशादिका पुरुषक्रम, मन्वन्तर और वंशानुचरित अर्थात् वंशके अन्तर्गत विशेष विशेष व्यक्तियोंके कीर्तिकलापका वर्णन—पुराणके ये पाँच लक्षण हैं। 'पुराण' नामके ग्रन्थोंमें इन पाँच विषयोंकी आलोचना रहेगी। यदि इन पाँच अङ्गोंमेंसे किसी एकका भी अभाव हो तो वह पुस्तक 'पुराण' नामसे प्रसिद्ध नहीं हो सकेगी। विदेशीय इतिवृत्तकार वंश और वंशानुचरितको इतिवृत्तका उपादान मानकर विचार करनेके लिये प्रस्तुत होते हैं, किन्तु वे सर्ग प्रतिसर्ग और मन्वन्तरको इतिवृत्तसे भिन्न विषय समझते हैं। वे इन तीन लक्षणोंका वास्तविक अर्थ और उद्देश्य नहीं समझ पाते। इन तीन लक्षणोंके साथ वंश और वंशानुचरित का क्या सम्बन्ध है, यह आपातदृष्टिसे मालूम नहीं हो सकता। पुराणकारोंने अपने बताये हुए पाँच लक्षणोंका पारस्परिक सम्बन्ध बिना समझाये ही ग्रन्थ रच डाले हैं—यह बात सर्वथा हँसीके योग्य है। जबतक हम इस सम्बन्धका निर्णय नहीं कर लेते, तबतक यह कहना भूल ही होगा कि हमने पुराणोंका उद्देश्य समझ लिया है। सौभाग्यसे पुराणोंमें ही इस प्रश्नका उत्तर मौजूद है। पुराण-पाठ करनेसे तथा पुराण दान करनेमे क्या क्या पुण्य होता है, इसका उल्लेख करके पुराणकार कहते हैं—

पुरातनस्य कल्पस्य पुराणानि विदुर्बुधा॥
(मत्स्य० ५३। ७१)

अर्थात् विज्ञजन पुराणोंको पुरातन कालका विवरण ही समझते हैं। साधारण पुरुषोंकी दृष्टि पुराण पाठके द्वारा अलौकिक फलकी ओर जाय—इसमें कोई हानि नहीं है। किन्तु विद्वान्लोग पुराणका वास्तविक उद्देश्य समझ सकें—इसीलिये यह चेतावनी दी गयी है। इसके सिवा वायुपुराणमें कहा है—

यस्मात् पुरा ह्यनितीदं पुराणं तेन तत् स्मृतम्।
निरुक्तमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते॥
(१। २०)

'क्योंकि यह पूर्वकालमें जीवित था अर्थात् क्योंकि पूर्व कालमें ऐसी घटना घटी थी, इसीसे इसका नाम पुराण है।

'पुराण' नामकी इस निरुक्तिको जो पुरुष जानता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। सम्भव है, पीछे पुराणके इस उद्देश्यको कोई न समझ सके; इसीसे पुराणकारने बार-बार इस चेतावनीका प्रयोग किया है।

प्राचीन हिंदुओंकी धारणा थी कि संसारके समस्त व्यापारकी बार-बार आवृत्ति होती है। अव्यक्त प्रकृतिसे जगत्की उत्पत्ति होती है। बहुत समयतक जगत्का कार्य चालू रहकर फिर इसका लय होता है। इस प्रकार सृष्टि, स्थिति और लय बार-बार होते रहते हैं। सृष्टि हो जानेपर पृथ्वीके ऊपर क्रमशः किस प्रकार नद, नदी, सागर और पर्वतादि उत्पन्न हुए, वृक्ष और लतादिका जन्म हुआ, जीव-जन्तु दिखायी दिये और फिर किस प्रकार मनुष्योंकी सृष्टि हुई—पुराणोंमें इन सब बातोंका विवरण है। यह विवरण आधुनिक विज्ञानवेत्ताओंकी दृष्टिमें भी एकदम अश्रद्धनीय नहीं है। अत्यन्त प्राचीन समयमें मनुष्योंने किस प्रकार विभिन्न देशोंमें निवास किया, वे कैसे विभिन्न जातियोंमें विभक्त हुए, उन्होंने किस प्रकार गृहादि बनाना सीखा, कृषि आदि जीविकाके उपायोंको स्थिर किया, किस प्रकार उनमें समाज-शासन प्रवृत्त हुआ और किस प्रकार विभिन्न राजवंश प्रवृत्त हुए—पुराणोंमें इन सबका विवरण है। पुराणकारोंने जगत्की आरम्भिक सृष्टिसे ही पुरावृत्त लिखनेका प्रयत्न किया है। इसीसे उन्हें सृष्टि-प्रकरणको लाना पड़ा। इसीलिये पुराणोंमें सर्ग एक अनिवार्य अङ्ग है। आधुनिक इतिवृत्तकार इसका विचार नहीं करते कि वे कबतकका इतिवृत्त लिखेंगे और किस प्रकार उनका लिखा हुआ विवरण स्थायी होगा। आजसे पाँच हजार वर्ष पीछे आधुनिक इतिवृत्तकी क्या दशा होगी और किस प्रकार इसकी रक्षा की जा सकती है, इस विषयमें हमें एकदम उदासीन कहा जाय तो भी भूल नहीं होगी। दूर भविष्यकालमें यदि कोई आधुनिक इतिवृत्त-ग्रन्थ बच भी गया तो हमारे तत्कालीन वंशधरोंके लिये उसका अर्थ लगाना कठिन हो जायगा। क्योंकि आजकलके किसी भी इतिवृत्तकारने अपने ग्रन्थमें यह स्पष्ट करनेका प्रयत्न नहीं किया कि 'वर्ष' किसे कहते हैं, 'शताब्दी' क्या है, 'मास' कितने दिनोंका होता है तथा 'सप्ताह'में कितने दिन होते हैं। हमारे भावी वंशधर देखेंगे कि इतिवृत्तके एक ग्रन्थमें लिखा है—१९१४ खीष्टाब्दके अगस्त मासमें योरोपीय महायुद्ध छिड़ा था। परन्तु सम्भव है उस समय आजकलकी कालनिर्णयकी धारा ही बदल जाय तथा देशोंके नाम भी दूसरे ही हो जायँ। अतः उस समयके कोई भी पाठक उस ग्रन्थकी सहायतासे यह समझ ही नहीं सकेंगे कि योरोप कहाँ है, १९१४ खीष्टाब्दका क्या अर्थ है तथा अगस्त मास किसे कहते हैं। भिन्न-भिन्न अनुसन्धानकर्ता इस विवरणका भिन्न-भिन्न अर्थ करेंगे, इसमें सन्देह नहीं। किन्तु इस ओर प्राचीन हिंदू पुराणकार भविष्यके विषयमें पूर्णतया सावधान थे। उन्होंने ऐसी चेष्टा की है जिससे कि उनका लिखा हुआ विवरण प्रलयपर्यन्त सुरक्षित रहे। उन्होंने देखा कि कुछ समय बाद समाजके आचार-व्यवहार और रीति-नीतिमें बहुत परिवर्तन हो जाता है। इस प्रकारके एक-एक परिवर्तनकालका नाम उन्होंने 'मन्वन्तर' रखा है। 'मनु'का अर्थ है lawgiver—विधानकर्ता। जो राजा समाजरक्षाके लिये नये-नये नियमोंकी रचना करके उन्हें लिपिबद्ध करते हैं, वे 'मनु' कहलाते हैं। 'मनुकाल'का अर्थ है एक ही प्रकारके नियम-कानून प्रचलित रहनेका काल। इस मनुकालकी कल्पनाको आधार बनाकर पौराणिकोंने एक कालमान प्रवर्तित किया है। इसमें सन्देह नहीं इतने कालमें समाजमें बहुत बड़ा परिवर्तन हो जाता है। पुराणोंमें मन्वन्तरके प्रसंगमें कालमानके विषयकी आलोचना की गयी है। 'निमेष'से लेकर मुहूर्त, दिन, पक्ष, मास, वत्सर और युग आदि किन्हें कहते हैं—यह सभी प्रसंग मन्वन्तर-अध्यायमें पाया जाता है। 'मन्वन्तरप्रसङ्गेन कालज्ञानञ्च कीर्त्यते।' (वायु० १।७९) मन्वन्तरका रहस्य समझे बिना यह बात समझमें नहीं आ सकती कि पुराणोंमें विभिन्न राजाओंके कालका निर्देश किस उपायसे किया है।

अतः राजवंश और वंशानुचरितके साथ मन्वन्तर भी इतिवृत्तका एक प्रधान अङ्ग है तथा अल्पकालीन इतिवृत्त न होनेके कारण इसमें सर्ग-प्रतिसर्गका समावेश भी रहना ही चाहिये। इस प्रकार इन पाँचों अङ्गोंसे युक्त होनेके कारण पुराण पूर्णाङ्ग इतिवृत्त या History हैं।

पुराणोंका महत्त्व

(लेखक—देवर्षि भट्ट श्रीमथुरानाथजी शास्त्री, साहित्याचार्य, कविरत्न, विद्यावारिधि)

आज भूमण्डलमें विश्वसाहित्य, विश्वधर्म, विश्वविभूति आदि नाना नये शब्द सघटन करके 'विश्वसाहित्य' आदिकी चर्चा की जा रही है, किन्तु यदि सचमुच कोई विश्वसाहित्य कहला सकता है तो वह है —प्राचीन आर्योंका साहित्य। जिस समय भूमण्डलभरकी समस्त जातियाँ खाना पीना सोना आदि 'यथाजात' धर्मोंके सिवा कुछ नहीं जानती थीं, उस घोर अन्धकारमें भी सभ्यताकी ज्योति दिखानेवाले ये आर्य और उनका साहित्य ही है। विस्तारकी आवश्यकता नहीं, दूर दूर देशोंके रहनेवाले वैदेशिक विद्वान् भी मान चुके हैं कि ऋग्वेदसे पहलेकी कोई पुस्तक भूमण्डलभरको आजतक नहीं मिली। यह 'आर्य' सभ्यता धीरे धीरे यहाँतक सर्वाङ्गपूर्णताको पहुँची कि विश्वभरकी सब जाति, सब देश और सब मनुष्योंके लिये अपने-अपने अधिकारानुसार इसने कल्याणके मार्ग दिखलाये। कहिये, जहाँ साधारण-सी शिक्षापर भी जाति और चमड़ेका नियम नियन्त्रण है, वहाँ—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥

—इस देशमें उत्पन्न हुए विद्वान् ब्राह्मणसे पृथिवीभरके सब मनुष्य अपना-अपना चरित्र सीखें, यह घोषणा क्या यहाँके साहित्यके विश्वसाहित्य होनेकी सूचना नहीं देती?

आर्योंका वैदिक साहित्य ज्ञान और विज्ञानका अक्षय निधान है। भूमण्डलके ज्ञानी और विज्ञानियोंने आजतक जो कुछ ज्ञानकी बातें खोज निकाली हैं, वे सब वेदोंमें सूत्ररूपसे मौजूद हैं। यह आजकी नहीं, सदाकी प्रसिद्धि है और सच्ची है। बात इतनी-सी है कि वेदके वैज्ञानिक अर्थको समझ लेना साधारण बुद्धिगम्य नहीं। 'परोक्षप्रिया वै देवाः' —देवताओंको गूढ रहना ही प्रिय है। इसके अनुसार वहाँ प्रत्येक अर्थ बड़ी सूक्ष्मता और गूढतासे कहा गया है। जब लौकिक कवियोंकी वाणीका अर्थ भी बड़ी गूढतासे भरा रहता है, तब ससारभरके अनादि कविकी वाणीका क्या कहना।

इन्हीं वेदोंके अर्थको विशदतासे समझानेके लिये 'पुराणों'की सृष्टि हुई।

विस्ताराय तु लोकानां स्वयं नारायणः प्रभुः ।
व्यासरूपेण कृतवान् पुराणानि महीतले ॥

'लोगोंके कल्याणके लिये स्वय नारायणने ही व्यासके रूप में इन पुराणोंकी रचना की।'

विषय विभागके अनुसार पुराणोंकी सख्या अठारह हुई, किन्तु इतनेपर भी सारे विषय नहीं आ सके। इसलिये सनत्कुमार, नारसिंह, गणेश आदि अठारह उपपुराण बने। क्योंकि गूढतासे कहे गये उस वैदिक अर्थको जबतक विशद और रोचक ढगसे न कहा जाय, तबतक पुराणोंकी रचनाका प्रयोजन पूर्ण नहीं होता। इसीलिये आख्यान उपाख्यानादिसे इनका विस्तार करना पड़ा—

आख्यानैश्चाप्युपाख्यानैर्गाथाभिः कल्पशुद्धिभिः ।
पुराणसहितां चक्रे पुराणार्थविशारदः ॥

'अपनी आँखोंसे देखे अर्थका वर्णन आख्यान, सुनी बातका कथन उपाख्यान, पितृ पितामहादिसे चली आयी गीतियाँ गाथा कहलाती हैं तथा श्राद्धविधि आदिका निर्णय कल्पशुद्धि कहलाता है।'*

पुराणोंमें ऋषियोंका यावन्मात्र विज्ञान, धर्मोंके अनुशासन, नीतिके उपदेश, ऋषि-राज वशादिका इतिहास आदि सभी आवश्यक विषय सगृहीत हैं, उनमें भी पुराना इतिहास तथा पुराने धर्मानुशासन मुख्य गिने जाते हैं। इसीलिये ये 'पुराणसहिता' कहलाती भी हैं। वेदके विज्ञानको मनोरञ्जक उपाख्यानके रूपमें बाँध देना पुराणोंकी अद्भुत विशेषता गिनी जाती है। वहाँ उनकी वर्णन शैली इतनी गम्भीर और साथ ही-साथ इतनी रहस्यमयी भी है कि उनके कई अर्थ दिखायी देते हैं, जिनका आदिसे लेकर अन्ततक पूरा निर्वाह भी होता चला जाता है। एक साधारण-सा दृष्टान्त ले लीजिये। इन्द्र और वृत्रासुरका युद्ध सुप्रसिद्ध है। यह श्रीमद्भागवत तथा विष्णुपुराण आदिमें बड़े विस्तारसे कहा गया है। भक्तिमार्गके अनुसार 'वृत्र' भगवान्का अनुगृहीत दैव जीव था। शापके वश असुर-योनिमें आया था। इसीलिये इन्द्रके साथ युद्धके समयमें इसका बड़ा उदार

---

* स्वयं दृष्टार्थकथनं प्राहुराख्यानकं बुधाः ।
श्रुतस्यार्थस्य कथनमुपाख्यानं प्रचक्षते ॥
गाथास्तु पारम्पर्येण पितृप्रभृतिगीतयः ।
कुपैरुक्ता कल्पशुद्धिः श्राद्धकल्पादिनिर्णयः ॥

व्यवहार वर्णन किया गया है। इन्द्रके हाथसे वज्र गिरनेपर वह उसपर प्रहार करना तो दूर रहा, बड़ी वीरता और उदारतासे उसे निःशङ्क उठा लेनेको कहता है। वहाँ वह उस नीति और धर्मका उपदेश करता है, जिसे सुनकर इन्द्र भी लज्जित हो जाता है।

इस वृत्रासुरकी उक्तिमें भक्तिका वह सूक्ष्म रहस्य कहा गया है, जिसका स्पष्टीकरण भक्तिमार्गके आचार्योंने अपने-अपने ग्रन्थोंमें बड़े विस्तारसे किया है। श्रीमद्भागवतकी 'वृत्रचतु:श्लोकी' प्रसिद्ध है। 'स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्ताः' इत्यादि श्लोकका व्याख्यान जिस समय भावुकलोग सुनते हैं, गद्गद हो जाते हैं। यों इस पुराणके पवित्र प्राङ्गणमें एक ओर भक्तिकी भागीरथी बहती है तो दूसरी ओर विज्ञानका स्रोत निकलता दिखायी देता है। वैज्ञानिकलोग कहते हैं—यह इन्द्र और वृत्रासुरका युद्ध नहीं, यह वर्षाका विज्ञान है। अपने शरीरकी वृद्धिसे जलको रोककर खड़ा हुआ मेघ ही 'वृत्र' है। 'इन्द्र' अर्थात् पूर्णशक्तिशाली 'अग्नि' (ज्योति—ऊष्मा) जिस समय उसके शरीरको फाड़ देता है, उस समय पानीकी धारें बहने लगती हैं। बस, यही वर्षा-विज्ञान इस वृत्रोपाख्यानमें रूपक अथवा उपमालङ्कारके रूपमें कहा गया है। ऋग्वेदमें एक विस्तृत सूक्त है, जिसका तीसरा मन्त्र इस प्रकार है—

दासपत्नीरहिगोपा अतिष्ठन्निरुद्धा आपः पणिनेव गावः।
अपां बिलमपिहितं यदासीद् वृत्रं जघन्वाँ अप तद् ववार॥
(ऋ० १। ३२। ३)

सायणभाष्यके अनुसार इसका अर्थ यह है कि 'अहि (व्याप्त करनेवाले वृत्रासुर) के द्वारा रक्षित जलधाराएँ इस तरह रुकी हुई थीं, जैसे व्यापारी अथवा ग्वालेके द्वारा गायें। जो जलका द्वार अबतक रुका हुआ था, इन्द्रने वृत्रके शरीरको विदीर्ण करके उसको खोल दिया।' निरुक्तकार महर्षि यास्क इस वृत्रोपाख्यानको स्पष्ट अक्षरोंमें 'वर्षा-विज्ञान' बताते हैं—

तत्र को वृत्रः? मेघ इति नैरुक्ताः। त्वाष्ट्रोऽसुर इत्यैतिहासिकाः। अपां च ज्योतिषश्च मिश्रीभावकर्मणो वर्षकर्म जायते। तत्रोपमार्थेन युद्धवर्णा भवन्ति। अहिवत्तु खलु मन्त्रवर्णा ब्राह्मणवादाश्च। विवृद्ध्या शरीरस्य स्रोतांसि निवारयांचकार। तस्मिन् हते प्रसस्यन्दिर आपः।
(निरु० २। १६)

यह 'वृत्र' कौन है? यहाँ निरुक्तकी शैलीसे वेदका अर्थ करनेवाले 'मेघ हैं' यह उत्तर देते हैं; 'त्वष्टाका पुत्र एक असुर था'—यह ऐतिहासिक लोगोंकी व्याख्या है। जल और तेज (गर्मी) के संयोगसे वर्षा होती है। वहाँ उपमाके रूपमें युद्धके वर्णन हुआ करते हैं। मन्त्र और ब्राह्मण इसे 'अहि' कहते हैं। जलके स्रोत जो अन्तरिक्षमें थे, उन्हें अपने शरीरकी वृद्धिसे उसने रोक दिया था। उसके नष्ट हो जानेपर जलकी वृष्टि होने लगी।

इसी तरह ब्रह्माका अपनी पुत्रीके पीछे कामातुर होकर दौड़ना, जिसपर क्रुद्ध होकर शिवने ब्रह्माका सिर काट दिया था—यह उपाख्यान है। किन्तु यह भी 'संध्या-विज्ञान' है। संध्या सूर्यके आगे चलती है और सूर्यसे ही संध्याका जन्म हुआ है, इसलिये संध्या सूर्यकी पुत्री है—इत्यादि।

विवेकी मार्मिकोंका कहना है कि पुराणके अर्थोंपर बड़ी सूक्ष्म दृष्टिसे ऊहापोह करना पड़ता है। इसमें कहीं-कहीं बड़ी सूक्ष्म बातें कही गयी हैं, जो ऊपरी दृष्टिसे बड़ी असंगत और परस्पर विरुद्ध-सी दिखायी देती हैं; किन्तु प्रकरण, उपक्रम, उपसंहार आदिका विचार करनेपर सच्चा मार्ग दिखायी देता है। इसी ऊपरी दृष्टिके कारण बहुत-से सज्जन पुराणको प्रमाण नहीं मानना चाहते। परन्तु यह उनकी समझका दोष है, पुराणोंका नहीं। हम अपनी भूलके कारण किसी ठूँठसे टकराकर यदि अपना सिर फोड़ लेते हैं तो इसमें हमारा अपराध है, उस ठूँठका नहीं। पुराणको प्रमाण नहीं माननेवाले सज्जन जिनको प्रामाणिक मानते हैं, उन आचार्य और ग्रन्थोंमें पुराणोंको बड़े आदरसे प्रमाण माना है—

'इत्यमस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्—इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानान्यस्यैवैतानि सर्वाणि निःश्वसितानि।'
(बृहदारण्यक० २। ४। १०)

यदि भारतीयोंके हाथसे पुराण निकल जाते हैं तो एक बड़ी भारी निधि हाथसे जाती रहती है। पुराणोंमें धर्म, इतिहास, विज्ञान आदिका ही निरूपण नहीं; उनसे ऐसे कई व्यावहारिक शास्त्र-के-शास्त्र निकले हैं, जिनसे आज जगत्‌का असीम उपकार हो रहा है। अग्निपुराणमें व्याकरण और साहित्य आदिके मौलिक रहस्य प्रतिपादित किये गये हैं। यह संभव है कि पुराने समयमें कुछ लोगोंकी दूसरी अभिसंधि रहनेके कारण पुराणोंमें कुछ अंश 'क्षेपकों'का मिल गया हो। किन्तु इसीलिये पुराणमात्रको हटा देना कोई बुद्धिमानी नहीं। अमूल्य रत्नोंमें यदि कोई काच मिला दे तो क्या उन रत्नोंको भी फेंक देना चाहिये?

विद्याके स्थानोंमें पुराणोंका सबसे पहले नाम आता है—

पुराण-न्याय-मीमांसा-धर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः ।
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश ॥

प्राचीन आचार्य और पण्डितोंकी परिषदोंमें पहले प्रायः सभी पुराणोंकी चर्चा और विचार चलते रहते थे, किन्तु अब तो कुछ ही पुराणोंका जनतामें प्रचार रह गया है। कई पुराणोंके तो कुछ खण्ड ही सुने जाते हैं, जिनमेंके कुछ माहात्म्य आदि ही प्रसिद्ध हैं।

पुराणोंमें पद्मपुराणका ऊँचा स्थान है। 'तत्र पद्मपुराणं च प्रथमं स प्रणीतवान्' इत्यादि तो है ही, किन्तु जहाँ इन अठारह पुराणोंका भी सत्त्व, रज और तम—इन गुणोंके अनुसार वर्गीकरण किया गया है, वहाँ पद्मपुराण सात्त्विक पुराणोंमें गिना गया है—

मात्स्यं कौर्मं तथा लैङ्गं शैवं स्कान्दं तथैव च ।
आग्नेयं च षडेतानि तामसानि निबोधत ॥
वैष्णवं नारदीयं च तथा भागवतं शुभम् ।
गारुडं च तथा पाद्मं वाराहं शुभदर्शने ॥
सात्त्विकानि पुराणानि विज्ञेयानि शुभानि वै ।
ब्रह्माण्डं ब्रह्मवैवर्तं मार्कण्डेयं तथैव च ॥
भविष्यं वामनं ब्राह्मं राजसानि निबोधत ॥

ग्रन्थ संख्यामें भी स्कन्दपुराणके अनन्तर औरोंकी अपेक्षा यही सबसे अधिक है। इसकी श्लोक-संख्या पचपन हजार मानी जाती है—'पञ्चोनपष्टिसाहस्रं पाद्ममेव प्रकीर्तितम्'। अनेकानेक धर्मानुशासन इस 'पद्म'में मुद्रित हैं। वही 'पुराण-पद्म' कल्याणके अङ्कमें आकर आपके 'अङ्क' में आया है, इससे अधिक अभिनन्दनीय बात और क्या हो सकती है।

पुराणका स्वरूप

(लेखक—पं० श्रीबलदेवजी उपाध्याय एम० ए०, साहित्याचार्य)

भारतीय साहित्यमें पुराणोंका विशेष महत्त्व है। भारतीय सभ्यता तथा संस्कृतिको साधारण जनतामें प्रचारित करनेका श्रेय इन्हीं पुराणोंको है। आज भी हिंदूधर्मका मूलाधार ये पुराण ही हैं। परन्तु *बड़े दुःखके साथ लिखना पड़ता है* कि आजकल पाश्चात्त्य शिक्षामें दीक्षित भारतीय विद्वानोंकी दृष्टि इन पुराणोंके प्रति बड़ी उपेक्षापूर्ण है। वे इन ज्ञानके भंडार पुराणोंको गप्पसे अधिक महत्त्व नहीं देते। जब भारतीय विद्वानोंकी यह दशा है, तब पाश्चात्त्य विद्वानोंका क्या पूछना। वे तो पुराणोंको नितान्त कपोलकल्पित ही समझते हैं। पुराणोंमें जो इतिहास वर्णित है, उसे वे पुरातन कथा (माइथॉलजी) मानते हैं तथा उनपर तनिक भी विश्वास नहीं करते। इन्हीं पश्चिमी विद्वानोंके द्वारा फैलायी गयी इस भ्रान्त धारणाके अनुसार पुराणोंके प्रति लोगोंकी उपेक्षाकी प्रवृत्ति चली आ रही थी। परन्तु हर्षका विषय है अब भारतीय विद्वान् ही नहीं, पाश्चात्त्य मनीषी भी इसकी महत्ताको समझने लगे हैं और भारतीय इतिहासके लिये इनको अमूल्य निधि मानने लगे हैं।

'पुराण' शब्दका अर्थ

'पुराण' शब्दका अर्थ पुराना आख्यान है—'पुराण-माख्यानम्'। संस्कृत-साहित्यमें 'पुराण' शब्दका अर्थ 'पुराना' है। सम्भवतः पुराणोंकी अत्यन्त प्राचीनताके कारण ही इनको यह नाम प्राप्त हुआ हो। पुराणोंमें प्राचीन आख्यानोंकी ही विशेषता रही है। भारतीय साहित्यमें पुराणोंके साथ इतिहासका भी नाम आता है।* इतिहास उन्हीं घटनाओंका वर्णन करता है, जो भूतकालमें हो गयी हैं; परन्तु पुराणका *विषय इतिहाससे अधिक व्यापक और विस्तृत है। इसी मौलिक पार्थक्यको लक्ष्यमें रखकर इतिहास और पुराणका* नामकरण अलग-अलग किया गया है।

पुराणोंकी प्राचीनता

पुराण बहुत ही प्राचीन हैं। ये अत्यन्त प्राचीन कालसे चले आ रहे हैं। अतः इनकी प्राचीनताके विषयमें निश्चित *रूपसे कुछ कहना अत्यन्त कठिन है।* पुराणका उल्लेख अथर्ववेदमें पाया जाता है। छान्दोग्य-उपनिषद्में भी पुराणोंका उल्लेख मिलता है। परन्तु सूत्रकालमें ही इनके अस्तित्वका *निश्चितरूपसे पता चलता है। गौतमीय धर्मसूत्रमें*—जो धर्मसूत्रोंमें सबसे प्राचीन समझा जाता है—लिखा है कि राजाको वेद, वेदाङ्ग तथा धर्मशास्त्रके साथ ही-साथ पुराणको भी प्रमाण मानना चाहिये। आपस्तम्बीय धर्मसूत्रमें पुराणोंसे दो उद्धरण उद्धृत किये गये हैं तथा भविष्यपुराणसे एक उद्धरण है। आधुनिक विद्वानोंने इन ग्रन्थोंका निर्माण-काल ४थी अथवा ५वीं शताब्दी माना है। अतः इससे सिद्ध होता है कि पुराणोंकी रचना—कम-से कम प्रसिद्ध पुराणोंकी—

* इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।

इस समयसे पूर्व अवश्य हो गयी होगी। पुराणोंकी रचना महाभारतसे पूर्व हो गयी थी, इसमें किसीको सन्देह नहीं हो सकता। महाभारत स्वयं पुराण कहा गया है तथा इसका आरम्भ भी पुराणकी रीतिसे ही होता है। सूत लोमहर्षणके पुत्र उग्रश्रवा, जो इस भारतीय कथाके कहनेवाले हैं— पुराणमें निष्णात बतलाये गये हैं। इससे पता चलता है कि पुराण महाभारतसे प्राचीन हैं। इस प्रकार पुराणोंकी प्राचीनता सिद्ध है।

अब हमें इस बातपर विचार करना है कि हमारे शास्त्रोंमें पुराणकी कैसी कल्पना की गयी है। मत्स्य, विष्णु तथा ब्रह्माण्ड आदि महापुराणोंमें पुराणका लक्षण बतलाते हुए लिखा है—

पुराणकी कल्पना

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥

अर्थात् (१) सर्ग या सृष्टि, (२) प्रतिसर्ग अर्थात् सृष्टिका विस्तार, लय तथा पुनः सृष्टि, (३) सृष्टिके आदिकी वंशावली, (४) मन्वन्तर अर्थात् किस-किस मनुका समय कब-कब रहा और उस कालमें कौन-सी महत्त्वकी घटना हुई तथा (५) वंशानुचरित—सूर्य तथा चन्द्रवंशी राजाओंका वर्णन—यही पुराणोंके पाँच विषय हैं। यही लक्षण साधारणतया पुराणोंका है। परन्तु ध्यानसे देखनेपर पता चलता है कि पुराणोंमें इतनी ही बातोंका वर्णन नहीं है, प्रत्युत इनसे भी बहुत अधिक बातें हैं। उदाहरणके लिये अग्निपुराणको ले लीजिये, जिसे यदि हम भारतीय ज्ञानकोष कहें तो कुछ अत्युक्ति न होगी। कुछ ऐसे भी पुराण हैं, जिनमें इन पाँचों विषयोंका यथावत् वर्णन नहीं मिलता। फिर भी पुराणकी सामान्य कल्पना यही समझनी चाहिये। हमलोगोंको यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि हमारे पुराण ही सच्चे तथा आदर्श इतिहास हैं। किसी मानव-समाजका इतिहास तभी पूर्ण समझना चाहिये, जब उसकी कहानी सृष्टिके आरम्भसे लेकर वर्तमान कालतक क्रमबद्ध रूपसे दी जाय। किसी देशकी कथा जबतक सृष्टिके प्रारम्भसे न लिखी जाय, तबतक उसे अधूरा ही समझना चाहिये। इतिहासकी इस वास्तविक कल्पनाको पुराणोंमें हम पाते हैं। आधुनिक विद्वानोंने इतिहास-लेखन-शैलीमें इस प्रणालीकी चिरकालसे उपेक्षा कर रखी थी; परन्तु हर्षका विषय है कि इङ्गलैंडके सुप्रसिद्ध विचारशील विद्वान् एच्० जी० वेल्सने अपने इतिहासकी रूप-रेखा (आउटलाइन आफ हिस्ट्री) में इसी पौराणिक प्रणालीका अनुकरण किया है। उन्होंने अपने इस प्रसिद्ध इतिहासमें मानव-समाजका इतिहास लिखनेके पूर्व सृष्टिके प्रारम्भसे मनुष्यके विकासका इतिहास लिखा है। मनुष्य-योनिको प्राप्त करनेके पहले मानवको कौन-सा रूप धारण करना पड़ा था तथा उसका क्रमिक विकास कैसे हुआ, इसका बड़ा ही सुन्दर वर्णन उन्होंने किया है। इस प्रकार यदि मनुष्यका इतिहास लिखना हो तो सृष्टिके प्रारम्भसे ही उसके विकासकी कथा लिखनी आदर्श तथा ठीक है। इतिहास लिखनेका यही पौराणिक तथा आदर्श प्रकार है।

पुराणोंकी दूसरी विशेषता उनकी वर्णन-शैली है। कुछ लोग पुराणोंमें लिखी हुई किसी बातको लेकर उसे असम्भव कहकर कपोलकल्पित कहनेका दुःसाहस कर बैठते हैं। यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि हमारे शास्त्रोंमें वस्तु-कथनके तीन प्रकार बतलाये गये हैं—जिन्हें आलङ्कारिक भाषामें तथ्य-कथन, रूपक-कथन तथा अतिशयोक्ति-कथन कह सकते हैं। जो वस्तु जैसी हो, उसे ठीक वैसा ही कहना तथ्य-कथन है। यह कथन वैज्ञानिक लोगोंके लिये उपयुक्त है। जहाँ रूपकालङ्कारका आश्रय लेकर कुछ कहा जाय, उसे रूपक-कथन कहते हैं। यह कथन-प्रणाली वेदोंमें पायी जाती है, जहाँ सूर्यकी किरणोंमें पाये जानेवाले सात रंगोंको रंग न कहकर घोड़ोंका रूपक दिया गया है। पुराणोंमें वस्तु-वर्णनके लिये अतिशयोक्ति अलङ्कारका आश्रय सदा लिया गया है तथा जो कुछ बात कही गयी है, उसे बड़ा ही विस्तृत रूप दिया गया है; जैसे—इन्द्र-वृत्रके युद्धमें वृत्रकी राजाके रूपमें विस्तृत कल्पना। इस प्रकार पुराणोंमें जहाँ कहीं कोई बात कही गयी है, वहाँ बड़े विस्तारसे कही गयी है। अतः पौराणिक कथाओंके सम्बन्धमें इस कथन-प्रणालीपर ध्यान रखकर ही विचार करना चाहिये। मुझे आशा है कि यदि इस दृष्टिसे विचार किया जाय तो पुराण शुद्ध तथा आदर्श इतिहासके रूपमें ही हमलोगोंको दिखायी पड़ें।

पद्मपुराणपर एक दृष्टि

(लेखक—स्वामीजी श्रीअखण्डानन्दजी सरस्वती)

संस्कृत वाङ्मयमें पुराणोंका एक विशिष्ट स्थान है। इनमें वेदार्थका स्पष्टीकरण तो है ही, कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड तथा ज्ञानकाण्डके सरलतम विस्तारके साथ साथ कथा वैचित्र्यके द्वारा साधारण जनताको भी गूढ-से गूढतम तत्त्व हृदयङ्गम करा देनेकी अपनी अपूर्व विशेषता भी है। इस युगमें धर्मकी रक्षा और भक्तिके मनोरम विकासका जो यत्किञ्चित् दर्शन हो रहा है, उसका समस्त श्रेय पुराण-साहित्य को ही है।

पुराणोंमें पद्मपुराणका स्थान बहुत ही ऊँचा है। इसमें केवल भगवान् नारायणके नाभिपद्मसे समुद्भूत ब्रह्माके द्वारा की हुई सृष्टि विसृष्टिका ही वर्णन नहीं है, प्रत्युत वेदोक्त दहर विद्याके हृदयपद्मका विशद वर्णन है। इसलिये यह पुराण सार्वभौम एवं सार्वजनीन है। प्रत्येक अधिकारी इसके द्वारा भगवत् प्राप्तिरूप परम लाभ अनुभव कर सकता है।

साधारण मनुष्यको जब यह मालूम होता है कि भगवान् देश, काल और वस्तु भेदोंके परे, हमारी बुद्धि एवं इन्द्रियोंसे अतीत, अपने स्वतःसिद्ध स्वरूपमें स्थित हैं, तब वह यह सोचकर भयभीत हो जाता है कि जो हमारी वृत्तियोंके आकलनसे सर्वथा अतीत है, उसकी हम उपासना कैसे करें, स्मृति कैसे करें, उसे हम अपने हृदय-मन्दिरमें लाकर कैसे बैठायें। मनुष्यकी इस बेबसीको पुराणों और सन्तोंने भलीभाँति अनुभव किया और उन्होंने भगवान्‌की कृपालुता का आश्रय लेकर उनकी सर्वव्यापकता एवं सर्वात्मकताके यथार्थ आधारपर देश, काल और वस्तुओंके भीतर ही भगवान्‌के सान्निध्य, उपासना और स्मृतिका ऐसा प्रशस्त द्वार उद्‌घाटन किया, जिसे देखकर उनके सामने कृतज्ञताके भारसे सिर स्वयं ही अवनत हो जाता है। प्रायः सभी पुराणोंमें, विशेषकर पद्मपुराणमें अनेक तीर्थों, व्रतों और पवित्र वस्तुओंके रूपमें जो भगवान्‌का वर्णन आता है, उसका यही रहस्य है। तीर्थ सभी अलौकिक हैं, भगवन्मय हैं और भगवान्‌ की विचित्र विचित्र लीलाओंके स्मृति चिह्न होनेके कारण दर्शन, सेवन, स्मरण और अभिगमनमात्रसे चित्त शुद्धि करनेवाले हैं।

तीर्थोंकी महिमाका पर्यवसान कहाँ है? भगवान्‌की स्मृतिमें। इसीसे तीर्थ महिमाका उपसंहार करते हुए पद्मपुराण कहता है—

> तीर्थानां च परं तीर्थं कृष्णनाम महर्षयः।
> तीर्थीकुर्वन्ति जगतीं गृहीतं कृष्णनाम यैः॥
>
> (स्वर्गखण्ड ५० । १६)

समस्त तीर्थोंमें सबसे बड़ा तीर्थ क्या है? भगवान् श्रीकृष्णका नाम। जो लोग श्रीकृष्ण नामका उच्चारण करते हैं, वे सम्पूर्ण जगत्‌को तीर्थ बना देते हैं। इसके पूर्व—'प्रतिमां च हरेर्दृष्ट्वा सर्वतीर्थफलं लभेत्' इत्यादि वचनोंसे स्पष्ट मालूम होता है कि तीर्थोंकी महिमा भगवत्स्मृतिके लिये है। उनका तात्पर्य, उनका पर्यवसान निरन्तर भगवत्स्मरणमें ही है।

यह सम्पूर्ण नाम रूप क्रियात्मक जगत् भगवत्स्वरूप ही है। यह घट है, यह पट है, यह मठ है—इत्यादि जितनी भी विकल्पनाएँ हैं, वे भगवत्स्वरूपसे पृथक् नहीं हैं। सृष्टि और सृष्टि कर्ता, पाल्य और पालक, संहरणीय और संहर्ता—सब कुछ एकमात्र प्रभु ही हैं।

> स्रष्टा सृजति चात्मानं विष्णुः पाल्यं च पाति च।
> उपसंह्रियते चापि संहर्ता च स्वयं प्रभुः॥
>
> (सृष्टिखण्ड २ । ११५)

मनसे जो कुछ संकल्प विकल्प होता है, चक्षुरादि इन्द्रियोंसे जिन जिन विषयोंका ग्रहण होता है और बुद्धिके द्वारा जिन जिन वस्तुओंका आकलन होता है, वे चाहे देशके रूपमें हों, कालके रूपमें हों अथवा वस्तुके रूपमें हों, सब भगवान्‌के ही स्वरूप हैं। देखिये सृष्टिखण्ड ३। ३१—

> यद्रूपं मनसा ग्राह्यं यद् ग्राह्यं चक्षुरादिभिः।
> बुद्ध्या च यत्परिच्छेद्यं तद्रूपमखिलं तव॥

जिस प्रकार मन्त्रसंहिताओंमें 'पुरुष एवेदं सर्वम्' तथा उपनिषदोंमें 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' इत्यादि श्रुतियाँ 'परमात्मा सर्वस्वरूप है' इस बातका प्रतिपादन करती हैं, ठीक वैसे ही पद्मपुराण भी भगवान्‌को सर्वात्मक स्वीकार करता है। इसीसे किसी भी तीर्थके रूपमें, व्रतके रूपमें, भागवतादि ग्रन्थके रूपमें, तुलसी आदि वस्तुके रूपमें कहीं भी यदि भगवद्भाव हो जाय तो धीरे धीरे उस वस्तुकी जड़ता और पृथक्ता नष्ट होने लगती है और चैतन्यस्वरूपका आविर्भाव हो जाता है।

उपर्युक्त वर्णन पढ़कर यह प्रश्न स्वाभाविक ही उठता है कि यदि परमात्मा सर्वस्वरूप है तो क्या वह परिणामको

प्राप्त होकर जगत्‌के रूपमें हुआ है, अथवा उसने प्रकृति-परमाणु आदिके रूपमें स्थित जगत्‌को ही आत्मप्राधान्यसे उज्जीवित किया है अथवा वह स्वाभाविक ही जगद्रूप है। परमात्माको परिणामी माननेसे उसकी निर्विकारता नहीं बनती। प्रकृति-परमाणु आदिका अस्तित्व स्वीकार करनेपर अद्वितीयताका व्याकोप होता है। स्वाभाविक ही जगद्रूप माननेपर जन्म-मृत्यु आदिकी प्राप्ति दुर्निवार है। ऐसी अवस्थामें परमात्मा सर्वरूप है—इस वाक्यका क्या अर्थ है? सर्व भी है और परमात्मा भी है अथवा केवल परमात्मा ही है? इस सम्बन्धमें उपनिषदादि समस्त शास्त्रोंके साथ पद्मपुराणकी एकवाक्यता है। जैसे श्रुतियाँ ज्ञाननिवर्त्य होनेके कारण प्रपञ्चको मिथ्या स्वीकार करती हैं, पुरुषका बाध करके जैसे स्थाणुका बोध होता है, ठीक वैसे ही पद्मपुराण भी प्रपञ्चकी भ्रान्तिजन्यता और परमात्माके अतिरिक्त अन्य वस्तुकी असत्ता प्रतिपादन करता है।

परमात्मा त्वमेवैको नान्योऽस्ति जगतः पते ॥
ज्ञानस्वरूपमखिलं जगदेतदबुद्धयः।
अर्थस्वरूपं पश्यन्तो भ्राम्यन्ते तमसः प्लवे ॥
(सृष्टिखण्ड ३। ४२)

'हे जगत्पते! एकमात्र तुम्हीं परमात्मा हो, आपके अतिरिक्त और कोई नहीं है। यह सम्पूर्ण जगत् ज्ञानस्वरूप ही है। इस बातको न जाननेवाले अज्ञानीजन जगत्‌को विषयरूप देखते हैं और अज्ञानमय संसार-सागरमें भटकते रहते हैं, उन्हें पार जानेका मार्ग ही नहीं मिलता।'

परमात्माके निर्विशेष स्वरूपका स्पष्ट प्रतिपादन है—

परः पराणां परमः परमात्मा पितामह।
रूपवर्णादिरहितो विशेषेण विवर्जितः ॥
अपि वृद्धिविनाशाभ्यां परिणामविजन्मभिः।
गुणैर्विवर्जितः सर्वैः स भातीति हि केवलम् ॥
(सृष्टिखण्ड २। ८३-८४)

'परमात्मा समस्त कार्य-कारणसे परे, अरूप, अवर्ण, निर्विशेष, ह्रासोल्लाससे रहित, निर्विकार, अज एवं निर्गुण हैं। वह केवल ज्ञानस्वरूप, स्फुरणस्वरूप हैं।' वेदान्त-प्रतिपाद्य परमात्माका इस प्रकार वर्णन करके पद्मपुराणमें आत्माके साथ इसके एकत्वका भी स्पष्टरूपसे निर्देश किया गया है।

नान्यं देवं महादेवाद् व्यतिरिक्तं तु पश्यति।
तमेवात्मानमन्वेति यः स याति परं पदम् ॥
मन्यन्ते ये स्वमात्मानं विभिन्नं परमेश्वरात्।
न ते पश्यन्ति तं देवं वृथा तेषां परिश्रमः ॥
(स्वर्गखण्ड ६०। ३६-३७)

'जो अधिकारी पुरुष सर्वप्रकाशक परमात्मासे अतिरिक्त अन्य किसी प्रकाशकको नहीं देखता और उस परमात्माको ही अपनी आत्मा जानता है, उसे परमपदकी प्राप्ति होती है। जो अज्ञानीजन अपने आपको परमात्मासे पृथक् मानते हैं, उन्हें परमात्माके दर्शन नहीं होते; उनका सारा परिश्रम व्यर्थ है।'

इन दोनों श्लोकोंमें अन्वय-व्यतिरेकसे स्पष्टरूपसे यह बात कही गयी है कि जो परमात्मा और आत्माके एकत्व-ज्ञानसे सम्पन्न हैं, उन्हें परमपदकी प्राप्ति होती है और जो एकत्व-ज्ञानको स्वीकार नहीं करते, उनका परिश्रम व्यर्थ है। अब हम इस परिणामपर पहुँचते हैं कि समस्त वेदान्तोंका परम तात्पर्य जिस प्रकार प्रपञ्चके मिथ्यात्व और ब्रह्मात्मैकत्वके प्रतिपादनमें है, ठीक उसी प्रकार पद्मपुराण भी उसी सिद्धान्तका प्रतिपादन करता है; क्योंकि मीमांसा-पद्धतिके अनुसार समस्त शास्त्रोंकी एकवाक्यता अनिवार्य है और बिना उसके कोई भी वचन शास्त्रकी श्रेणीमें नहीं आ सकता।

व्यतिरेक-मुखसे यह बात कही जाती है कि भगवान् सबसे परे हैं और अन्वय-मुखसे यह बात कही जाती है कि सब कुछ भगवान् ही है। केवल भगवान् ही ऐसे हैं जिनमें इच्छाकी एकता, स्मृतिकी एकता, दृष्टिकी एकता सम्पादन की जा सकती है। पद्मपुराण स्पष्टरूपसे कहता है—

ऊर्ध्वबाहुरहं वच्मि शृणु मे परमं वचः।
गोविन्दे धेहि हृदयं………………॥
(स्वर्गखण्ड ६१। ३७)

'मैं बाँह उठाकर श्रेष्ठ-से-श्रेष्ठ बात कहता हूँ, सावधान होकर सुनो; जैसे हो, वैसे अपना हृदय भगवान्‌को समर्पित करो। उनकी स्मृतिमें डूब जाओ! वही सर्व मङ्गलकी जननी है।'

परमात्मतत्त्वके साक्षात्कारके लिये जीवको ज्ञान और ध्यानकी शरण लेनी चाहिये। श्रवण-मननसे सुनिष्पन्न अर्थमें चित्तकी स्थापना अथवा भगवत्स्मृतिकी परिपक्व परिणत अवस्थाका नाम ही ध्यान है। यह ध्यान सब अधिकारियोंके लिये सुलभ न होनेके कारण ही तीर्थ, व्रत, भागवत-गीता-माहात्म्य, साधुसङ्ग, ब्राह्मण-पूजा आदिके द्वारा अन्तःकरण-शुद्धिपूर्वक भगवत्स्मृतिको जगानेकी चेष्टा की गयी है। जैसे श्रुतियाँ 'स्मृतिपरिशुद्धौ सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः' वर्णन करती हैं और 'नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय' इत्यादि शत-शत वचनोंसे ज्ञानके द्वारा ही तत्त्व-साक्षात्कारका निरूपण करती हैं, ठीक वैसे ही पद्मपुराण भी—

साधुसङ्गाद् भवेद् विप्र शास्त्राणां श्रवणं प्रभो।
हरिभक्तिर्भवेत्तस्मात् ततो ज्ञानं ततो गतिः॥
(ब्रह्मखण्ड १।६)

'साधु-सङ्गसे शास्त्रोंके तात्पर्यका निर्णय करानेवाला श्रवण होता है। एकमात्र भगवत्तत्त्वकी श्रेष्ठता और सत्यता का निर्णय होनेपर इतर वस्तुकी प्राप्तिकी इच्छा निवृत्त हो जाती है और एकमात्र भगवत्प्राप्तिकी इच्छारूपा भगवद्भक्ति का उदय होता है, भगवद्भक्तिसे भगवत्तत्त्व विज्ञान और तदनन्तर परमगतिकी प्राप्ति होती है।'

परमगतिको प्राप्त करानेवाले तत्त्वज्ञानका अव्यवहित साधन भगवद्भक्ति है। इसी तत्त्वके प्रतिपादनमें समस्त पुराणों की अपूर्वता है और यही पद्मपुराणकी भी है। श्रीमद्भागवतमें 'भक्तिर्विरक्तिर्भगवत्प्रबोध' का भी यही अर्थ है। बिना भगवद्भक्तिके अन्तःकरण शुद्धिकी पूर्णता और भगवत्तत्त्व विज्ञान नहीं हो सकता। इसीलिये कहीं कहीं तो तत्त्वज्ञानसे बढ़कर भी भक्तिकी महिमाका उल्लेख मिलता है। सच ही है, बिना साधनमें अनन्यनिष्ठा हुए साध्यकी प्राप्ति त्रिकालमें भी नहीं हो सकती। अन्ततोगत्वा पद्मपुराण ही क्या, समस्त पुराण इस सिद्धान्तका प्रतिपादन करते हैं—भक्ति ही श्रेष्ठ है, भक्ति ही श्रेष्ठ है।

पद्मपुराणके प्रत्येक खण्डमें विशदरूपसे भक्तिकी महिमा का वर्णन है। केवल महिमाका ही नहीं उसके अङ्गोपाङ्ग—मन्त्र-जप, पूजा, ध्यान, रहस्य इत्यादिका भी अन्य पुराणोंकी अपेक्षा अत्यन्त श्रेष्ठ शैलीसे निरूपण किया गया है। नाम, धाम, रूप, लीला—ये सब चिन्मय भगवत्स्वरूप हैं, इन सबका अथवा इनमेंसे किसी एकका भी आश्रय ग्रहण कर लेनेपर जीवके लिये कुछ कर्तव्य शेष नहीं रह जाता। ज्ञान, मुक्ति आदि तो इनमेंसे एक एकके सेवक हैं—इत्यादि बातोंका पातालखण्ड एवं उत्तरखण्डमें विस्तृत निरूपण है। अवश्य ही ऐसे वर्णनोंसे अपनी निष्ठामें साधकोंकी अभ्यस्तता होती है और यह सर्वथा यथार्थ भी है, क्योंकि ब्रह्मतत्त्वके सिवा जब और कोइ वस्तु ही नहीं है, तब किसी भी वस्तुका ब्रह्मरूपसे निरूपण करनेमें आपत्ति ही कहाँ रह जाती है। सम्पूर्ण पद्मपुराणका अभिप्राय किसी भी प्रकार हो—भगवत्स्मृति, भगवद्भक्ति, भगवत् तत्त्वज्ञान एवं भगवत्तत्त्व-साक्षात्कारमें है, इसीसे, इसीमें जीवकी कृतकृत्यता है।

भगवद्भक्तिके माहात्म्य और कथा वैचित्र्यका आनन्द तो मूल ग्रन्थसे ही लेना चाहिये। यहाँ पाठकोंके और अपने आनन्दके लिये भगवान्‌का द्विभुज पीताम्बरधारी श्रीविग्रह ही साक्षात् ब्रह्मरूप कैसे है—इसका पद्मपुराणने जो रोचक प्रतिपादन किया है, उसका उल्लेख करके निबन्ध समाप्त किया जाता है।

भगवान् शंकर नारदसे अपनी अनुभूतिका वर्णन करते हुए कहते हैं कि जब भगवान् श्रीकृष्णने कृपा करके मुझे दर्शन दिया और वर माँगनेको कहा, तब मैंने उनसे प्रार्थना की—

यद्रूपं ते कृपासिन्धो परमानन्ददायकम्।
सर्वानन्दाश्रयं नित्यं मूर्तिमत् सर्वतोऽधिकम्॥
निर्गुणं निष्क्रियं शान्तं तद्ब्रह्मेति विदुर्बुधाः।
तदहं द्रष्टुमिच्छामि चक्षुर्भ्यां परमेश्वर॥

'ज्ञानीजन आपके जिस निर्गुण, निष्क्रिय, शान्त ब्रह्मस्वरूपका साक्षात्कार करते हैं, उसे मैं इन्हीं आँखोंसे देखना चाहता हूँ।' देवाधिदेव शंकर भगवान्‌के आदेशसे वृन्दावन आये, वहाँ गोपी मण्डल मण्डित यमुना पुलिन विहारी गोपालवेषधारी श्रीकृष्ण और प्रियाजीके दर्शन हुए। श्रीकृष्णने शंकरको सम्बोधन करके कहा—

अद्य ते दर्शनं यातो ज्ञात्वा रुद्र तवेप्सितम्॥
यदद्य मे त्वया दृष्टमिदं रूपमलौकिकम्।
घनीभूतामलप्रेम सच्चिदानन्दविग्रहम्॥
नीरूपं निर्गुणं व्यापि क्रियाहीनं परात्परम्।
वदन्त्युपनिषत्सङ्घा इदमेव ममानघ॥
(पातालखण्ड ८२।६५–६७)

'शङ्कर! तुम्हारी लालसा जानकर मैंने तुम्हें दर्शन दिया है। तुमने आज यह जो मेरा अलौकिक रूप देखा है, वह घनीभूत निर्मल प्रेम है, मूर्तिमान् सच्चिदानन्दघन है। सारे उपनिषद् मेरे इसी रूपको निर्गुण, निराकार, निष्क्रिय और परात्पर कहकर वर्णन करती हैं।'

भगवान् श्रीकृष्णके श्रीविग्रहमें ब्रह्मभावका कितना सुन्दर उपपादन है—यह तो केवल एक नमूना है। इसी प्रकार नाम, लीला और धाम भी ब्रह्मस्वरूप ही हैं—इस बातका भी पद्मपुराणमें स्थान स्थानपर सयुक्तिक प्रतिपादन है। इसीसे यह बात कही जाती है कि जीवको भगवत्तत्त्व विज्ञान एवं कृतकृत्यता प्राप्त करानेके उद्देश्यसे पद्मपुराणने भक्तिके वर्णनमें जितनी सफलता पायी है, उतनी और किसी भी पुराणको नहीं मिली। यही कारण है कि अठारह महापुराणोंमें पद्मपुराण अपना विशेष स्थान रखता है। पाठक मूलग्रन्थका स्वाध्याय करके उसकी इस अपूर्व विशेषतासे लाभ उठायेंगे, भगवत्स्मृतिके द्वारा भगवत्प्राप्तिके मार्गमें अग्रसर होंगे।

यज्ञोंकी उपयोगिता

(लेखक —'श्रीमण्डनमिश्र')

वैदिक धर्ममें 'यज्ञसंस्था' प्रधान पद रखती है। वेदोंमें यज्ञके वर्णनपर जितने मन्त्र हैं, उतने अन्य किसी विषयपर नहीं। यदि कहा जाय कि यज्ञ वैदिक धर्मका प्राण है, तो इसमें भी अत्युक्ति नहीं। ऋषिकालमें यज्ञ सदा हुआ करते थे और उनसे लाभ भी होता था। राजाओंके जब खजाने भर जाते थे, तब वे कोई-न-कोई यज्ञ किया करते थे जिनमें दान-दक्षिणा बराबर चलती रहती थी। ऐसे अवसरोंपर कुछ तो सर्वस्व दान कर देते थे। कितने गरीबोंको काम, कितने उद्योगोंको प्रोत्साहन मिल जाता था। लौकिक तथा पारलौकिक दोनों ही लाभ होते थे। परन्तु प्रकृतिमें देखा जाता है कि प्रत्येक वस्तु प्रायः समयके प्रभावसे विकृत हो जाती है। यज्ञोंका भी यही हाल हुआ। स्वार्थियोंके लिये ये धन कमानेका साधन बन गये और मांसलोलुपोंकी क्रूरतासे उनकी पवित्र वेदियाँ रक्तरञ्जित हो गयीं। निरपराध पशुओंकी 'आह' का एक कोमल हृदयपर आघात हुआ और गौतम बुद्धने ऐसे यज्ञोंके विरुद्ध-आवाज उठायी। उनमें 'पश्वालम्भ' का क्या स्थान है और उसका क्या रहस्य है, यह एक स्वतन्त्र विषय है, जिसपर बहुत-कुछ लिखा जा सकता है। उसकी ओटमें हिंसाप्रवृत्तिको जोर पकड़ते देखकर ही बुद्धका हृदय व्यथित हुआ था; पर यज्ञोंकी उपयोगिता उन्हें भी स्वीकार करनी पड़ी थी। 'सारसंग्रह' और 'संयुक्तनिकाय' में लिखा है कि प्राचीनकालमें यज्ञ (मेध) 'संग्राहक' थे। इनके द्वारा राजा प्रजाका संग्रह करता था और इस संग्रहके द्वारा राष्ट्र परम समृद्धिको पाता था। परन्तु उनके अनुयायियोंने इस संस्थाको ध्वंस करनेमें कोई बात उठा न रखी, इसके फलस्वरूप यह प्रथा बहुत कुछ शिथिल पड़ गयी। तत्कालीन कई शासकोंने बौद्धमतकी दीक्षा ली और उनके राज्यमें यज्ञशालाएँ निर्धूम हो गयीं। गुप्त सम्राटोंने फिर उनका क्रम चलाया। समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त द्वितीय, कुमारगुप्त आदिने बड़े-बड़े यज्ञ किये, जिनका शिलालेखोंसे पता चलता है। परन्तु बौद्धधर्मके प्रबल प्रचारने जनसाधारणके हृदयोंसे इनके प्रति श्रद्धाको ऐसा हटा दिया कि फिर उनका युग न आ सका। किसी-किसी समय कोई इनके लिये प्रवृत्त हो जाता था, पर यज्ञ राष्ट्रीय संस्था न रहे। एक कारण और भी हुआ, विदेशियोंके आक्रमणसे राजनीतिक उथल-पुथल होने लगी। दरिद्रता बढ़ने लगी और विदेशी आचार-विचार घुसने लगे। मुसलमानोंके समयसे संस्कृतका पठन-पाठन भी ढीला पड़ गया और शास्त्र-चर्चाका ही लोप होने लगा। सम्भव है कि यज्ञोंके बंद हो जानेका ही यह परिणाम हुआ हो; पर इसमें संदेह नहीं कि परिस्थिति प्राचीन परिपाटीके प्रतिकूल हो चली। अंगरेजोंके आगमनके साथ तो इसने विकट रूप धारण कर लिया। अंगरेजी शिक्षामें हमें यह सब 'पाखण्ड' बतलाया जाने लगा और यज्ञोंकी उत्पत्ति असभ्योंके 'टोना-टामर' तथा 'जादू' में दिखलायी जाने लगी। पर तब भी इस संस्थाका सर्वथा लोप न हुआ, कोई-न-कोई श्रद्धालु यज्ञ-भगवान्‌की सेवा करता ही रहा। कहीं-कहीं दो-चार निर्धन ब्राह्मणोंने अपने घरोंमें शुष्क इष्टियोंसे हवन करके इसकी परम्पराको अक्षुण्ण रखा और उस विधि-विधानको, जिसमें गूढ़ आध्यात्मिक रहस्य छिपा है, नष्ट न होने दिया। संसार इनका कितना ऋणी है, यह समय ही बतलायेगा।

प्राचीन कालसे यज्ञोंके सम्बन्धमें कई प्रकारकी भावनाएँ चलती रही हैं। इन्हीं भावनाओंमेंसे किसी एकको लेकर कई प्राचीन तथा नवीन विद्वानोंने यज्ञके वास्तविक रूपको ही उड़ा दिया है! वास्तवमें विश्व-कल्याणके लिये दैवी शक्तियोंकी सहायता प्राप्त करनेका यज्ञ एक गूढ़ प्रकार है। प्रधानतः इसमें वेदमन्त्रोंके साथ कुछ द्रव्योंका अग्निमें हवन किया जाता है। इनका पूरा विधि-विधान शास्त्रोंमें दिया हुआ है। इसके द्वारा मनुष्य देवताओंको प्रसन्न करता है और देवता उसकी रक्षा करते हैं; जैसा कि भगवान्‌ने गीतामें कहा है—

देवान् भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः ।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥

(३ । ११)

इस तरह यह भी एक प्रकारकी उपासना है। प्रत्येक धर्म, प्रत्येक सम्प्रदायमें तरह-तरहकी उपासनाएँ हैं, जिन सबमें यह आवश्यक है कि उनको विधिवत् किया जाय; क्योंकि ऐसा ही करनेसे उनका फल प्राप्त हो सकता है। यज्ञोंके सम्बन्धमें भी हमारे शास्त्रोंका यही कथन है। इसपर कहा जा सकता है कि आजकलके 'वैज्ञानिक युग' में देवताओंपर विश्वास करना क्या अपने बौद्धिक दिवालेका परिचय देना

नहीं है ? ठीक है, परन्तु आधुनिक विज्ञानको ही अपने अनुसंधानोंमें अदृष्ट जगत् तथा अदृष्ट शक्तियोंका आभास नहीं मिल रहा है ? स्वर्गीय सर आलिवर लॉजने क्या इसका प्रत्यक्ष अनुभव नहीं किया ? प्रसिद्ध वैज्ञानिक जिन्स लिखते हैं कि "विद्युत्कणों, परमाणुओं आदिको इधर-उधर खींचनेवाली शक्तिको हम 'अदृष्ट' ही कह सकते हैं। इस अदृष्टका ही खेल सर्वत्र देख पड़ता है।" यदि गम्भीरता पूर्वक विचार किया जाय, तो इस्य 'आधिदैविक जगत्' पर भी विश्वास लाना ही पड़ेगा। जो आस्तिक हैं, वे तो उससे कभी इनकार कर ही नहीं सकते। यदि ईश्वरको माना जाय तो फिर देव देवियोंपर भी विश्वास करना ही होगा। जब देव देवियाँ हैं, तब उनसे सम्पर्क रखने तथा उनकी सहायता प्राप्त करनेके उपाय भी होने चाहिये। विभिन्न प्रकारकी उपासनाएँ ही ऐसे साधन हैं। अपने शास्त्रोंमें सामूहिक उपासनाके रूपमें यज्ञको प्रधानता दी गयी है। इन दृष्टियोंसे विचार करनेपर यज्ञका विधान क्या सर्वथा तर्क तथा युक्तिपूर्ण नहीं प्रतीत होता ?

इसपर एक बात और कही जाती है कि यदि 'भारत'के पास ऐसे साधन उपलब्ध थे, तो फिर वह आज दूसरोंकी गुलामी क्यों कर रहा है ? इसका सीधा उत्तर तो यह है कि 'उन साधनों के प्रयोग न करनेसे।' जितने अंशमें उनका प्रयोग हुआ, उसका फल भी प्रत्यक्ष मिला। राजनीतिक परतन्त्रता अवश्य लज्जाजनक है, उसमें पड़े रहकर कोई राष्ट्र कभी उन्नति नहीं कर सकता। पर इसके साथ ही राजनीतिक स्वतन्त्रता ही सब कुछ नहीं है। इतिहासमें यह तो बराबर आती जाती रहती है। मुख्य तो है आध्यात्मिक अस्तित्व, जो राष्ट्रका प्राण और उसकी संस्कृतिका आधार है। असीरिया, बैबीलोनिया, मिस्र, यूनान, रोम आदिकी प्राचीन संस्कृतियाँ आज कहाँ विलीन हो गयीं। इतिहासके पृष्ठोंमें अब उनके केवल नाम रह गये, पर कुछ बात है कि 'हस्ती मिटती नहीं हमारी।' जो कुछ भी अपने यहाँ धर्मानुष्ठान होता रहा, क्या यह उसीका फल नहीं है ? जो सभ्यताएँ मर चुकीं, वे अब नहीं लौट सकतीं। भारतकी 'प्राचीन वैदिक' संस्कृति मृतप्राय अवश्य है, पर अभीतक मरी नहीं है। वह उचित उपचारसे अब भी हृष्ट पुष्ट होकर सारे संसारपर अपनी विजय-पताका फहरा सकती है।

परन्तु यज्ञ-जैसे कृत्योंपर आजकल सबसे बड़ा आक्षेप यह किया जा रहा है कि 'जब लाखों आदमी भूखों मर रहे हैं, तब अन्नकी ऐसी बहुमूल्य वस्तुओंको आगमें झोंकनेसे क्या लाभ।' उत्तरमें यह भी पूछा जा सकता है कि 'संसार का अपार धन वर्तमान महायुद्धकी समराग्निमें स्वाहा करनेसे क्या लाभ।' बमवर्षा हो रही है, आबाल वृद्ध-वनिता कुत्तोंकी मौत मर रहे हैं, किसीके जान मालका ठिकाना नहीं है। इससे किसीका क्या लाभ होगा ? कहा जायगा कि यह पाश्चात्योंकी मूर्खता है। यदि वे ऐसे ही मूर्ख हैं, तो क्या हम उनकी बात मानकर अपना भला कर सकते हैं ? परन्तु हमारी आँखें फूटी हुई हैं, तभी तो सामने खड़ा हुआ विनाश दृष्टिगोचर नहीं होता। पाश्चात्योंको बर्बर युद्धसे विरत करना तो दूर रहा, उलटे युद्धोद्योगमें सहायता देकर उसे और प्रज्वलित किया जा रहा है। युद्धमें तो सब तरह संहार ही होता है, पर यज्ञमें तो कितने ही लोगोंको बहुत कुछ मिल जाता है। फिर दावतों, सिनेमा, नाटक आदि तमाशों और शराब, सिगरेट, बीड़ी, तम्बाकू आदि व्यसनोंपर कितना धन उड़ रहा है ? उनसे क्षणिक शारीरिक सुखके अतिरिक्त क्या कोई स्थायी लाभ या वास्तविक उन्नति होती है ? तब यज्ञके ही नामपर क्यों मुँह बनाया जाता है ? विज्ञानकी प्रेरणा शक्ति है—अनुसन्धान। कितने अनुसन्धानोंपर आज लाखों रुपया खर्च किया जा रहा है। यदि उसी भावसे विश्वकी शान्तिका यह उपाय देख लिया जाय तो क्या हर्ज है ?

यज्ञोंमें भाग लेनेवालोंको व्रत, संयम, नियम आदिसे रहना पड़ता है, जिससे उनका अन्तःकरण शुद्ध होता है, भोजन, दान दक्षिणासे कितने लोगोंका भला हो जाता है, पवित्र वातावरणका दर्शकोंपर भी प्रभाव पड़ता है। इतना तो इनसे प्रत्यक्ष लाभ है। फिर इनकी वैज्ञानिक उपयोगिता भी है। इनके विधि विधानमें प्रतीकोंकी भाषाका ज्ञान भरा है, जिनसे प्रकृतिके गूढ रहस्योंके उद्घाटनमें बड़ी सहायता मिल सकती है। अदृष्ट शक्तियोंके साथ उनके द्वारा सम्पर्क स्थापित होता है, जिससे विश्व-कल्याणमें सहायता मिलती है—ऐसा शास्त्रोंका आश्वासन है। तब फिर आज-जैसे विकट समयमें महायज्ञोंके आयोजनपर क्या आपत्ति हो सकती है। हाँ, एक बात अवश्य है, अपने शास्त्रोंमें जहाँ यज्ञके फलोंका वर्णन किया गया है, वहाँ यह भी कहा गया है—'नास्ति यज्ञसमो रिपु'। यदि कोई तेज अस्त्र या यन्त्र है तो उनके उचित प्रयोगसे बड़ा उपकार तथा अनुचित प्रयोगसे भारी अपकार होगा। इसी तरह यदि यज्ञ विधिवत् नहीं हुआ तो उसका फल न हो—केवल इतना ही नहीं, उलटे उससे भारी अनर्थ भी हो जाता है। आज-कल

विधिवत् यज्ञ करनेमें कितनी अड़चनें हैं! सबसे पहले तो श्रद्धाकी कमी है, यजमान विश्व-कल्याणकी बुद्धिसे यज्ञमें प्रवृत्त नहीं होते, अधिकतर उसमें यशकी अभिलाषा रहती है। दूसरी ओर आचार्यका ध्यान धनकी ओर रहता है। न अब वैसे यजमान ही हैं, जो सब कुछ देनेके लिये तैयार हों और न ऐसे आचार्य ही हैं, जिन्हें जो कुछ मिल जाय, उसीमें संतोष हो। प्राचीन कालमें यदि धनिकवर्ग सब कुछ दान करनेके लिये कटिबद्ध रहते थे, तो ब्राह्मण प्रतिग्रहसे दूर भागते थे। परन्तु अब इन दोनोंमें कमी है। ब्राह्मणोंके असंतोषसे यजमानको उनमें श्रद्धा नहीं होती और श्रद्धा न होनेसे ब्राह्मणोंका निर्वाह नहीं होता। इस तरह अश्रद्धाका चक्र चल पड़ा है। दूसरे आज-कल यज्ञमें जैसे आचारनिष्ठ ब्राह्मणोंकी आवश्यकता है, वैसे नहीं मिलते। शुद्ध द्रव्योंतकका मिलना कठिन हो गया है। ऐसी दशामें यदि यज्ञ सफल न हो तो कोई आश्चर्य नहीं। यदि यज्ञोंमें लोगोंकी श्रद्धा उत्पन्न करना है तो यह बहुत आवश्यक है कि उनमें किसी ओरसे व्यवसाय-बुद्धि न हो। यजमान और पुरोहित सभी विश्व-कल्याणकी उच्च भावनासे प्रेरित होकर निष्कामरूपसे उनमें प्रवृत्त हों।

अन्तमें हम याजकके साथ 'यजुर्वेद' के शब्दोंमें यही प्रार्थना करते हैं—

आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायताम् दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायताम् निकामे निकामे नः। पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम्॥

'ब्रह्मन्! हमारे राष्ट्रमें ब्रह्मवर्चस्वी ब्राह्मण उत्पन्न हों, हमारे राष्ट्रमें उत्तम शूर क्षत्रिय हों तथा अधिक दूध देनेवाली गौएँ, बलवान् बैल, तेज घोड़े, ज्ञानी स्त्रियाँ, विजयी तथा सभामें पण्डित युवक बनें। योग्य समयमें हमारे राष्ट्रमें वृष्टि होती रहे, अनाजके पेड़ फलयुक्त हों और हम सबका योग-क्षेम उत्तम रीतिसे चले।'

'हिन्दूकोड'का कुठार

(लेखक—पं० श्रीगङ्गाशङ्करजी मिश्र, एम्० ए०)

हमारी सारी सामाजिक व्यवस्था श्रुति-स्मृतिद्वारा निर्धारित अटल सिद्धान्तोंके आधारपर प्रतिष्ठित है। उसीके अनुसार चलनेसे हमारा इहलौकिक तथा पारलौकिक कल्याण हो सकता है। परन्तु अब उसको नष्ट करके बराबर बदलनेवाली न्यूनाधिक मर्यादाओंके आधारपर एक नवीन समाजव्यवस्था बनानेका प्रयत्न किया जा रहा है, जिसमें भौतिक सुखकी आशामात्रका प्रलोभन है। अभीतक विदेशी सरकार अंग्रेजी शिक्षाद्वारा ही इसका प्रयत्न कर रही है; परन्तु अब वह प्रत्यक्षरूपसे हमारे धार्मिक, सामाजिक तथा कौटुम्बिक जीवनपर प्रहार करनेके लिये उद्यत हो रही है। अंग्रेजी भाषामें हिन्दू कानूनोंका एक 'कोड' (विधान) तैयार करनेके लिये उसने 'हिन्दू-कानून-कमेटी' नियुक्त की है। यह कमेटी हमारे प्राचीन शास्त्रीय नियमोंमें मनमाने परिवर्तन करने जा रही है। इसीकी सलाहसे भारत-सरकारने 'केन्द्रीय एसेम्बली'में पहले 'हिन्दू अप्रदत्त उत्तराधिकार' तथा 'हिन्दू-विवाह' ये दो बिल पेश किये। इनके दुष्परिणामोंको बतलाते हुए समस्त हिन्दू भाई तथा बहिनोंसे इनका विरोध करनेके लिये अनुरोध किया गया था। कुछ लोगोंने इसमें बड़ी तत्परता दिखलायी और लगभग पाँच लाख हस्ताक्षर बिलोंके विरोधमें सरकारके पास पहुँच गये। यह कार्य अभी चल ही रहा था कि इतनेमें ही 'हिन्दू-कानून-कमेटी'ने पूरे 'हिन्दूकोड'का मसविदा प्रकाशित कर दिया। उसका कहना है कि "हिन्दू-कानूनोंमें इधर-उधर परिवर्तन करनेसे काम न चलेगा। ब्रिटिशभारतके समस्त हिन्दुओंके लिये एक पूरा 'कानूनविधान' बन जाना चाहिये।" इस प्रस्तावित 'कोड' या विधानमें दोनों बिलोंका समावेश कर लिया गया और उनकी कई धाराएँ अधिक व्यापक तथा हानिकारक बना दी गयी हैं। इन दोनों बिलोंको रोककर अब यह पूरा 'कोड' ही धारासभाओंमें पास किया जायगा।

यह 'कोड' या विधान केवल ब्रिटिशभारतके समस्त हिन्दुओंपर लागू होगा। इस तरह देशी राज्योंके हिन्दुओंको ब्रिटिशभारतके हिन्दुओंसे, जिनमें परस्पर शादी-ब्याह होते हैं तथा उत्तराधिकारके नियम भी प्रायः एक ही प्रकारके हैं, अलग कर दिया गया है। देशी राज्योंके शासकों और वहाँके हिन्दुओंको अपना मत प्रकट करनेतकका अधिकार नहीं दिया गया है। यह केवल देशी राज्योंके साथ ही नहीं, समस्त हिन्दुओंके साथ अन्याय है। अन्य मतावलम्बी जिन्होंने हिन्दूधर्म स्वीकार कर लिया है, वे भी कानूनकी दृष्टिमें

नहीं है ! ठीक है, परन्तु आधुनिक विज्ञानको ही अपने अनुसंधानोंमें अदृष्ट जगत् तथा अदृष्ट शक्तियोंका आभास नहीं मिल रहा है ! स्वर्गीय सर आलिवर लॉजने क्या इसका प्रत्यक्ष अनुभव नहीं किया ! प्रसिद्ध वैज्ञानिक जिन्स लिखते हैं कि "विद्युत्कणों, परमाणुओं आदिको इधर-उधर खींचनेवाली शक्तिको हम 'अदृष्ट' ही कह सकते हैं। इस अदृष्टका ही खेल सर्वत्र देख पड़ता है।" यदि गम्भीरता पूर्वक विचार किया जाय, तो दृश्य 'आधिदैविक जगत्' पर भी विश्वास लाना ही पड़ेगा। जो आस्तिक हैं, वे तो उससे कभी इनकार कर ही नहीं सकते। यदि ईश्वरको माना जाय तो फिर देव देवियोंपर भी विश्वास करना ही होगा। जब देव देवियाँ हैं, तब उनसे सम्पर्क रखने तथा उनकी सहायता प्राप्त करनेके उपाय भी होने चाहिये। विभिन्न प्रकारकी उपासनाएँ ही ऐसे साधन हैं। अपने शास्त्रोंमें सामूहिक उपासनाके रूपमें यज्ञको प्रधानता दी गयी है। इन दृष्टियोंसे विचार करनेपर यज्ञका विधान क्या सर्वथा तर्क तथा युक्तिपूर्ण नहीं प्रतीत होता !

इसपर एक बात और कही जाती है कि यदि 'भारत'के पास ऐसे साधन उपलब्ध थे, तो फिर वह आज दूसरोंकी गुलामी क्यों कर रहा है ? इसका सीधा उत्तर तो यह है कि 'उन साधनों के प्रयोग न करनेसे।' जितने अंशमें उनका प्रयोग हुआ, उसका फल भी प्रत्यक्ष मिला। राजनीतिक परतन्त्रता अवश्य लज्जाजनक है, उसमें पड़े रहकर कोई राष्ट्र कभी उन्नति नहीं कर सकता। पर इसके साथ ही राजनीतिक स्वतन्त्रता ही सब कुछ नहीं है। इतिहासमें वह तो बराबर आती-जाती रहती है। मुख्य तो है आध्यात्मिक अस्तित्व, जो राष्ट्रका प्राण और उसकी संस्कृतिका आधार है। असीरिया, बैबीलोनिया, मिस्र, यूनान, रोम आदिकी प्राचीन संस्कृतियाँ आज कहाँ विलीन हो गयीं। इतिहासके पृष्ठोंमें अब उनके केवल नाम रह गये, पर कुछ बात है कि 'हस्ती मिटती नहीं हमारी।' जो कुछ भी अपने यहाँ धर्मानुष्ठान होता रहा, क्या यह उसीका फल नहीं है ! जो सभ्यताएँ मर चुकीं, वे अब नहीं लौट सकतीं। भारतकी 'प्राचीन वैदिक' संस्कृति मृतप्राय अवश्य है, पर अभीतक मरी नहीं है। वह उचित उपचारसे अब भी हृष्ट पुष्ट होकर सारे संसारपर अपनी विजय-पताका फहरा सकती है।

परन्तु यज्ञ-जैसे कृत्योंपर आजकल सबसे बड़ा आक्षेप यह किया जा रहा है कि 'जब लाखों आदमी भूखों मर रहे हैं, तब अन्नकी ऐसी बहुमूल्य वस्तुओंको आगमें झोंकनेसे क्या लाभ।' उत्तरमें यह भी पूछा जा सकता है कि 'संसार का अपार धन वर्तमान महायुद्धकी समराग्निमें स्वाहा करनेसे क्या लाभ।' बमवर्षा हो रही है, आबाल वृद्ध-वनिता कुत्तोंकी मौत मर रहे हैं, किसीके जान-मालका ठिकाना नहीं है। इससे किसीका क्या लाभ होगा ? कहा जायगा कि यह पाश्चात्योंकी मूर्खता है। यदि वे ऐसे ही मूर्ख हैं, तो क्या हम उनकी बात मानकर अपना भला कर सकते हैं ! परन्तु हमारी आँखें फूटी हुई हैं, तभी तो सामने खड़ा हुआ विनाश दृष्टिगोचर नहीं होता। पाश्चात्योंको बर्बर युद्धसे विरत करना तो दूर रहा, उलटे युद्धोद्योगमें सहायता देकर उसे और प्रज्वलित किया जा रहा है। युद्धमें तो सब तरह संहार ही होता है, पर यज्ञमें तो कितने ही लोगोंको बहुत कुछ मिल जाता है। फिर दावतों, सिनेमा, नाटक आदि तमाशों और शराब, सिगरट, बीड़ी, तम्बाकू आदि व्यसनोंपर कितना धन उड़ रहा है ? उनसे क्षणिक शारीरिक सुखके अतिरिक्त क्या कोई स्थायी लाभ या वास्तविक उन्नति होती है ? तब यज्ञके ही नामपर क्यों मुँह बनाया जाता है ? विज्ञानकी प्रेरणा शक्ति है—अनुसन्धान। कितने अनुसन्धानोंपर आज लाखों रुपया खर्च किया जा रहा है। यदि उसी भावसे विश्वकी शान्तिका यह उपाय देख लिया जाय तो क्या हर्ज है !

यज्ञोंमें भाग लेनेवालोंको व्रत, संयम, नियम आदिसे रहना पड़ता है, जिससे उनका अन्तःकरण शुद्ध होता है, भोजन, दान-दक्षिणासे कितने लोगोंका भला हो जाता है, पवित्र वातावरणका दर्शकोंपर भी प्रभाव पड़ता है। इतना तो इनसे प्रत्यक्ष लाभ है। फिर इनकी वैज्ञानिक उपयोगिता भी है। इनके विधि विधानमें प्रतीकोंकी भाषाका ज्ञान भरा है, जिससे प्रकृतिके गूढ रहस्योंके उद्घाटनमें बड़ी सहायता मिल सकती है। अदृष्ट शक्तियोंके साथ उनके द्वारा सम्पर्क स्थापित होता है, जिससे विश्व-कल्याणमें सहायता मिलती है—ऐसा शास्त्रोंका आश्वासन है। तब फिर आज-जैसे विकट समयमें महायज्ञोंके आयोजनपर क्या आपत्ति हो सकती है। हाँ, एक बात अवश्य है, अपने शास्त्रोंमें जहाँ यज्ञके फलोंका वर्णन किया गया है, वहाँ यह भी कहा गया है—'नास्ति यज्ञसमो रिपुः'। यदि कोई तेज अस्त्र या यन्त्र है तो उनके उचित प्रयोगसे बड़ा उपकार तथा अनुचित प्रयोगसे भारी अपकार होगा। इसी तरह यदि यज्ञ विधिवत् नहीं हुआ तो उसका फल न हो—केवल इतना ही नहीं, उलटे उससे भारी अनर्थ भी हो जाता है। आज कल

विधिवत् यज्ञ करनेमें कितनी अड़चनें हैं! सबसे पहले तो श्रद्धाकी कमी है, यजमान विश्व-कल्याणकी बुद्धिसे यज्ञमें प्रवृत्त नहीं होते, अधिकतर उसमें यशकी अभिलाषा रहती है। दूसरी ओर आचार्यका ध्यान धनकी ओर रहता है। न अब वैसे यजमान ही हैं, जो सब कुछ देनेके लिये तैयार हों और न ऐसे आचार्य ही हैं, जिन्हें जो कुछ मिल जाय, उसीमें संतोष हो। प्राचीन कालमें यदि धनिकवर्ग सब कुछ दान करनेके लिये कटिबद्ध रहते थे, तो ब्राह्मण प्रतिग्रहसे दूर भागते थे। परन्तु अब इन दोनोंमें कमी है। ब्राह्मणोंके असंतोषसे यजमानको उनमें श्रद्धा नहीं होती और श्रद्धा न होनेसे ब्राह्मणोंका निर्वाह नहीं होता। इस तरह अश्रद्धाका चक्र चल पड़ा है। दूसरे आज-कल यज्ञमें जैसे आचारनिष्ठ ब्राह्मणोंकी आवश्यकता है, वैसे नहीं मिलते। शुद्ध द्रव्योंतकका मिलना कठिन हो गया है। ऐसी दशामें यदि यज्ञ सफल न हो तो कोई आश्चर्य नहीं। यदि यज्ञोंमें लोगोंकी श्रद्धा उत्पन्न करना है तो यह बहुत आवश्यक है कि उनमें किसी ओरसे व्यवसाय-बुद्धि न हो। यजमान और पुरोहित सभी विश्व-कल्याणकी उच्च भावनासे प्रेरित होकर निष्कामरूपसे उनमें प्रवृत्त हों।

अन्तमें हम याजकके साथ 'यजुर्वेद' के शब्दोंमें यही प्रार्थना करते हैं—

आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥

'ब्रह्मन्! हमारे राष्ट्रमें ब्रह्मवर्चस्वी ब्राह्मण उत्पन्न हों, हमारे राष्ट्रमें उत्तम शूर क्षत्रिय हों तथा अधिक दूध देनेवाली गौएँ, बलवान् बैल, तेज घोड़े, ज्ञानी स्त्रियाँ, विजयी तथा सभामें पण्डित युवक बनें। योग्य समयमें हमारे राष्ट्रमें वृष्टि होती रहे, अनाजके पेड़ फलयुक्त हों और हम सबका योग-क्षेम उत्तम रीतिसे चले।'

'हिन्दूकोड'का कुठार

(लेखक—पं० श्रीगङ्गाशङ्करजी मिश्र, एम्० ए०)

हमारी सारी सामाजिक व्यवस्था श्रुति-स्मृतिद्वारा निर्धारित अटल सिद्धान्तोंके आधारपर प्रतिष्ठित है। उसीके अनुसार चलनेसे हमारा इहलौकिक तथा पारलौकिक कल्याण हो सकता है। परन्तु अब उसको नष्ट करके बराबर बदलनेवाली न्यूनाधिक मर्यादाओंके आधारपर एक नवीन समाजव्यवस्था बनानेका प्रयत्न किया जा रहा है, जिसमें भौतिक सुखकी आशामात्रका प्रलोभन है। अभीतक विदेशी सरकार अंग्रेजी शिक्षाद्वारा ही इसका प्रयत्न कर रही है; परन्तु अब वह प्रत्यक्षरूपसे हमारे धार्मिक, सामाजिक तथा कौटुम्बिक जीवनपर प्रहार करनेके लिये उद्यत हो रही है। अंग्रेजी भाषामें हिन्दू कानूनोंका एक 'कोड' (विधान) तैयार करनेके लिये उसने 'हिन्दू-कानून-कमेटी' नियुक्त की है। यह कमेटी हमारे प्राचीन शास्त्रीय नियमोंमें मनमाने परिवर्तन करने जा रही है। इसीकी सलाहसे भारत-सरकारने 'केन्द्रीय एसेम्बली'में पहले 'हिन्दू अप्रदत्त उत्तराधिकार' तथा 'हिन्दू-विवाह' ये दो बिल पेश किये। इनके दुष्परिणामोंको बतलाते हुए समस्त हिन्दू भाई तथा बहिनोंसे इनका विरोध करनेके लिये अनुरोध किया गया था। कुछ लोगोंने इसमें बड़ी तत्परता दिखलायी और लगभग पाँच लाख हस्ताक्षर बिलोंके विरोधमें सरकारके पास पहुँच गये। यह कार्य अभी चल ही रहा था कि इतनेमें ही 'हिन्दू-कानून-कमेटी'ने पूरे 'हिन्दूकोड'का मसविदा प्रकाशित कर दिया। उसका कहना है कि "हिन्दू-कानूनोंमें इधर-उधर परिवर्तन करनेसे काम न चलेगा। ब्रिटिशभारतके समस्त हिन्दुओंके लिये एक पूरा 'कानूनविधान' बन जाना चाहिये।" इस प्रस्तावित 'कोड' या विधानमें दोनों बिलोंका समावेश कर लिया गया और उनकी कई धाराएँ अधिक व्यापक तथा हानिकारक बना दी गयी हैं। इन दोनों बिलोंको रोककर अब यह पूरा 'कोड' ही धारासभाओंमें पास किया जायगा।

यह 'कोड' या विधान केवल ब्रिटिशभारतके समस्त हिन्दुओंपर लागू होगा। इस तरह देशी राज्योंके हिन्दुओंको ब्रिटिशभारतके हिन्दुओंसे, जिनमें परस्पर शादी-ब्याह होते हैं तथा उत्तराधिकारके नियम भी प्रायः एक ही प्रकारके हैं, अलग कर दिया गया है। देशी राज्योंके शासकों और वहाँके हिन्दुओंको अपना मत प्रकट करनेतकका अधिकार नहीं दिया गया है। यह केवल देशी राज्योंके साथ ही नहीं, समस्त हिन्दुओंके साथ अन्याय है। अन्य मतावलम्बी जिन्होंने हिन्दूधर्म स्वीकार कर लिया है, वे भी कानूनकी दृष्टिमें

हिन्दू मान लिये गये हैं और उन्हें हिन्दू समाजमें शादी विवाह करने तथा सम्पत्तिमें भाग पानेका अधिकार दे दिया गया है। 'जाति'में केवल चार वर्णोंकी ही गणना की गयी है और किसी भी 'उपजाति' को नहीं माना गया है। ये 'बने हुए हिन्दू' किस वर्णके माने जायँगे, यह नहा बताया गया है। इससे भी कितनी ही अड़चनें पड़ेंगी और हमारा प्राचीन सुदृढ सामाजिक सगठन शिथिल पड़ जायगा।

उत्तराधिकारके 'अप्रदत्त' तथा 'प्रदत्त'—ये दो भेद किये गये हैं। यदि कोई व्यक्ति वसीयतद्वारा अपनी सम्पत्ति बिना किसीको दिये ही मर जाय तो उस सम्पत्तिका उत्तराधिकार 'अप्रदत्त' है और जो उत्तराधिकार वसीयतद्वारा प्राप्त होता है, वह 'प्रदत्त' है। हिन्दू दायभाग में किसी व्यक्तिकी सम्पत्तिमें उत्तराधिकार उसी सम्बन्धीको पहुँचता है, जो मृत व्यक्तिका पिण्डदान कर सके। इस तरह मृतात्मा और उसके उत्तराधिकारीमें बराबर सम्बन्ध बना रहता है। परन्तु अब हिन्दू-दायभागकी इस विशेषताको हटाकर उसे सर्वथा लौकिक बनाया जा रहा है। सम्पत्तिपर स्त्रियोंको भी पूरा अधिकार दिया गया है, जिसके परिणामस्वरूप उसका ह्रास तथा दुरुपयोग होगा। लड़की भी अपने पिताकी सम्पत्तिमें अपने भाईके हिस्सेसे आधा हिस्सा पायेगी। हिन्दू दायभागमें यह मुसल्मानी सिद्धान्त प्रविष्ट करनेका प्रयत्न है। अपने यहाँ विवाह कर देनेतक लड़कीकी जिम्मेदारी पिताके ऊपर रहती है, उसके बाद वह अपने इच्छानुसार जो चाहे लड़कीको दे सकता है, परन्तु उसकी सम्पत्तिमें लड़कीका कोई हक नहीं रहता। अब उसको हिस्सा देनेका फल यह होगा कि पिताकी सम्पत्ति शीघ्र ही दूसरे कुलमें चली जायगी। विवाहमें जो खर्च होता है, वह तो बद होगा नहीं और उसके अतिरिक्त सम्पत्तिमें भी लड़कीका हिस्सा लगेगा। अभीतक तो भाई भाइयोंमें ही सम्पत्तिके लिये झगड़े होते हैं, पर अब भाई-बहिन, देवर भावज और सास पतोहूमें भी ऐसे झगड़े खड़े होंगे। कुटुम्बकी सम्पत्ति कुटुम्बमें ही रखनेके लिये जिस तरह मुसल्मानोंमें 'दूध-बराव' रखकर आपसमें ही विवाह-सम्बन्ध होते रहते हैं, वैसे ही विवाहोंका प्रचलन हिन्दू-समाजमें भी होगा। अभीतक हिन्दू स्त्रियोंका अपहरण केवल काम वासनाकी तृप्तिके लिये कुछ लोग किया करते थे, परन्तु अब सम्पत्तिके प्रलोभनसे भी अधिकाधिक अपहरण हुआ करेंगे। अभीतक हिन्दूधर्म त्याग देनेपर सम्पत्तिमें उत्तराधिकार मारा जाता था; परन्तु अब कोई ऐसा व्यक्ति फिर हिन्दू हो जानेसे सम्पत्तिका फिर उत्तराधिकारी बन बैठेगा। ऐसे प्रलोभनसे हिन्दू बननेकी प्रवृत्तिको प्रोत्साहन देना सर्वथा अवाञ्छनीय है। अपने यहाँ यह ध्यान रखा गया है कि जिस तरह हो, कुटुम्ब सम्मिलित बना रहे और उसके सभी सदस्योंके हितोंकी रक्षा होती रहे। इसीलिये मौरूसी जायदादको वसीयतद्वारा जिस किसीको दे देनेका अधिकार नहीं है। परन्तु इस 'कोड' में यह रुकावट भी हटा दी गयी है और मौरूसी जायदाद भी वसीयतद्वारा चाहे जिसको दी जा सकती है। इसका फल यह होगा कि सम्मिलित कुटुम्बकी बहुमूल्य संस्था थोड़े ही कालमें छिन्न भिन्न हो जायगी। कितने ही लोगोंको गुजारा देनेका भी नियम रखा गया है। इसमें जारज (नाजायज) पुत्रके, जबतक वह नाबालिग रहे, और ऐसी ही पुत्रीके भरण पोषण तथा विवाहकी जिम्मेदारी भी रखी गयी है। प्रान्तीय सरकारोंद्वारा पास कर दिये जानेपर यह कानून भूमिपर भी लागू होगा, जिसके परिणामस्वरूप भूमि सम्पत्तिके टुकड़े टुकड़े हो जायँगे, कितने ही कुटुम्ब लड़कियोंके हिस्सोंद्वारा सम्पत्ति दूसरे कुटुम्बमें चले जानेके कारण निर्धन हो जायँगे, वसीयतद्वारा सम्पत्ति देनेका प्रचलन बढ़नेसे बेकार खर्च बढ़ेगा, आपसमें तरह तरहके झगड़े चलेंगे, सरकारी अदालतोंका पेट भरेगा और हिन्दू सम्पत्तिका मुख्य आधार 'सम्मिलित कुटुम्ब' छिन्न भिन्न हो जायगा।

विवाह हमारे यहाँ एक धार्मिक संस्कार है। उसमें मनमानी नहीं चल सकती। परन्तु इस 'कोड' में सबको पूरी स्वच्छन्दता दे दी गयी है। विवाहके दो भेद किये गये हैं, एक 'शास्त्रविधिसे किया हुआ विवाह' और दूसरा 'रजिस्ट्रीद्वारा किया हुआ विवाह'। एक पत्नीके जीवित रहते किसी स्त्रीके साथ दूसरा विवाह नहीं किया जा सकेगा। आर्थिक कठिनाइयोंके कारण 'बहु विवाह' की प्रथा अपने आप ही बंद हो रही है। ऐसी दशामें इसको दण्डनीय अपराध बनाना कभी भी उचित नहीं कहा जा सकता। मुसल्मानोंके यहाँ 'बहु विवाह' नहीं रोका जा रहा है, इसका प्रभाव हिन्दू मुसल्मानोंकी जन-संख्यापर भी पड़ सकता है। 'शास्त्रविधिके विवाहों' में केवल 'पाणिग्रहण' और 'सप्तपदी' की ही आवश्यकता बतलायी गयी है, 'कन्यादान' के लिये कोई स्थान ही नहीं रखा गया है, जिसके बिना हिन्दू विवाह पूर्ण नहीं समझा जा

सकता। इस 'कोड' के अनुसार १६ वर्षकी आयु हो जानेके बाद लड़कीको अधिकार होगा कि वह किसी भी हिन्दूके साथ ब्याह कर ले; पिताकी सम्पत्तिमें उसका हिस्सा बना-बनाया है, फिर उसे किसीका भय ही क्या। 'रजिस्टरीद्वारा विवाह' किसी भी जातिके दो हिन्दुओंमें हो सकता है। विवाहके अवसरपर वरकी अवस्था १८ और वधूकी १४ वर्षसे कम न होनी चाहिये। २१ वर्षकी अवस्थातक माता-पिताकी अनुमति अपेक्षित है. फिर उसकी भी आवश्यकता नहीं है और विधवाको तो हर समय दूसरा विवाह करनेकी स्वतन्त्रता है। सरकारद्वारा नियुक्त 'हिन्दू-विवाह रजिस्ट्रार' के सामने जाकर यह लिखा देनेसे कि 'हम दोनों परस्पर विवाह करना चाहते हैं' और उसपर तीन गवाहियाँ होनेसे वह पक्का मान लिया जायगा। ऐसे विवाहोंकी सन्तानको सम्पत्तिमें पूरा उत्तराधिकार प्राप्त रहेगा। यदि कोई पुरुष घृणित रोगसे पीड़ित है, किसी रखैलको अपने घरमें रखता है, पत्नीके साथ क्रूर व्यवहार करता है या हिन्दू-धर्म छोड़ देता है तो उसकी विवाहिता पत्नी उससे अलग रहकर भी उससे गुजारा पानेकी अधिकारिणी रहेगी। ये शर्तें 'कोड' के पास होनेसे पहले जो विवाह हो चुके हैं, उनमें भी लागू होंगी। इन कारणोंमेंसे किसीको जैसे-तैसे अदालतोंमें सिद्ध कर कुछ स्त्रियाँ पतियोंसे गुजारा लेकर अलग स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करनेका प्रयत्न करेंगी। 'दहेज' की प्रथाको रोकनेके लिये भी इस 'कोड' में उपाय बतलाया गया है। इसके अनुसार वर या वधू दोनोंमेंसे विवाहके लिये स्वीकृति प्रदान करनेके उपलक्ष्यमें जो धन दूसरे पक्षको दिया जाय, वह उसके पास धरोहरके रूपमें रहेगा। १८ वर्षकी आयु हो जानेपर लड़की उस धरोहरको अपने श्वशुरसे माँग सकती है। यदि इतनी आयु होनेसे पहले ही उसकी मृत्यु हो जाय तो यह धरोहर उसके उत्तराधिकारियोंको मिलेगी। इससे दहेजकी बुराई तो दूर होगी नहीं, उल्टे श्वशुर और पतोहूमें अदालती झगड़े चलेंगे।

इस नये कानूनद्वारा हिन्दुओंमें भी 'तलाक़' (विवाह-विच्छेद) का दरवाजा सबके लिये खोल दिया गया है। पति-पत्नीमेंसे कोई भी 'जिला-जज'की अदालतमें या हाईकोर्टमें प्रार्थना-पत्र दे सकता है कि निम्नलिखित किसी भी एक कारणसे उसका विवाह-सम्बन्ध अवैध घोषित कर दिया जाय—(१) विवाहके समय अथवा मुकद्दमा दायर करनेके समय प्रतिवादी नपुंसक था; (२) कोडद्वारा निषिद्ध विवाह-की सीमाओंके अन्तर्गत दोनोंका विवाह हुआ है; (३) शास्त्रविधिसे विवाह होनेपर भी दोनों एक दूसरेके सपिण्ड हैं, जिनमें विवाह करनेकी रीति उनके समाजमें प्रचलित नहीं है; (४) विवाहके समय दोनोंमेंसे कोई पागल या जड था; (५) दोनोंमें किसीका पति या किसीकी पत्नी जीवित है और दोनोंका पहला विवाह-सम्बन्ध अदालतद्वारा भंग नहीं हुआ है।········इनके अतिरिक्त दोनोंमेंसे हाईकोर्टके सामने कोई यह भी कारण पेश कर सकता है कि विवाहके लिये उसकी स्वीकृति धोखा देकर ली गयी। विवाह-सम्बन्ध भङ्ग करनेके लिये भी जिला-जजकी अदालत या हाईकोर्टमें प्रार्थनापत्र देना होगा और उसमें निम्नलिखित कोई भी कारण दिखलाना होगा—(१) दोनोंमें एकका दिमाग खराब है और प्रार्थनापत्रके पहले सात वर्षतक उसका इस रोगके लिये इलाज होता रहा; (२) दोनोंमेंसे कोई असाध्य और उग्र कुष्ठसे पीड़ित है, जो वादीके सम्पर्कसे नहीं हुआ है; (३) किसीने दूसरेको अकारण ही सात वर्षतक छोड़ दिया है; (४) किसीने हिंदूधर्म परित्याग करके दूसरा धर्म ग्रहण कर लिया है; (५) दोनोंमेंसे कोई जननेन्द्रिय-रोगसे पीड़ित है, जो संक्रामकरूपमें है और जो वादीके सम्पर्कसे नहीं प्राप्त हुआ है; (६) यदि पतिके पास कोई रखैल है या पत्नी स्वयं किसी दूसरेकी रखैल है, तो ऊपर कहे हुए किसी भी कारणको अदालतमें सिद्ध कर देना एक साधारण बात है। आवश्यकता है केवल डाक्टरोंकी मुट्ठी गरम करने या कुछ झूठे गवाहोंके खड़े कर देनेकी। अदालतोंमें वैवाहिक जीवनकी छीछालेदर होगी और पवित्र पातिव्रतधर्मकी बलि दी जायगी। जिस स्त्रीके साथ न्याय करनेकी दृष्टिसे ये क्रान्तिकारी परिवर्तन किये जा रहे हैं, उसीके साथ घोर अन्याय होगा। पतिमें सैकड़ों दोष होते हुए भी साधारण हिंदू-स्त्रीका यह साहस कभी नहीं होगा कि वह सम्बन्ध-विच्छेद करानेके लिये अदालतोंमें दौड़ती फिरे। वह स्वयं कष्ट सह लेगी, पर जनताके सामने अपने घरकी 'आबरू' बिगड़ने न देगी। तलाककी सुविधाओंका दुरुपयोग मनचले पुरुष ही करेंगे और तरह-तरहके कारणोंको गढ़कर सीधी-साधी पत्नीको तलाक देनेका प्रयत्न करेंगे, जिसमें उन्हें किसी दूसरी शौकीन स्त्रीसे विवाह करनेका अवसर प्राप्त हो सके। बेचारी परित्यक्ता स्त्रीसे हिंदूसमाजमें कौन विवाह करनेको

तैयार होगा। परित्यक्ता होनेकी अपेक्षा तो सपत्नी (सौतका पद) हिंदू स्त्रीकी दृष्टिमें कहीं सम्मानित है। 'बहुविवाह'के स्थानपर यहाँ 'एक विवाह' रखा गया है, पर तलाकका अधिकार इस एक विवाहको तमाशा बना देता है। तलाक दे देकर कोई चाहे जितने विवाह कर सकता है। यदि 'दाय भाग'में स्त्रियोंको हिस्सा देकर मुसलमानी सिद्धान्त लानेका प्रयत्न किया गया है तो विवाह और तलाककी स्वच्छन्दतामें आधुनिक ईसाई सिद्धान्त घुसेड़ा गया है। इसका परिणाम हिंदूसमाजके लिये घातक होगा।

गोद लेनेमें केवल 'दत्तक' विधि मानी गयी है, पर साथ ही यह भी कह दिया गया है कि इसमें 'दत्तहोम' आदि की कोई आवश्यकता नहीं है। इंगलैंडमें जैसा नियम है, उसी तरह यहाँ भी उसकी केवल रजिस्टरी करा देना काफी है। इस तरह इस विधिमेंसे भी धार्मिक अंश निकालकर उसको केवल लौकिक रूप दे दिया गया है। विधवाको भी अपने पतिकी ओरसे किसीको गोद लेनेका अधिकार दिया है, जिसके दुरुपयोग होनेकी अधिक सम्भावना है।

प्रस्तावित 'हिन्दूकोड'के दुष्परिणामोंको यहाँ संक्षेपमें दिखानेकी चेष्टा की गयी है। पास हो जानेपर यह कोड पहली जनवरी सन् १९४६से काममें आने लगेगा। यदि यह 'कोड' पास हो गया तो हिन्दूधर्म, हिन्दूसंस्कृति और हिन्दूसमाज का वध करनेके लिये यह सचमुच 'कुठार' होगा। 'हिंदू-कानून कमेटी' की नियुक्ति ही सरकारकी अनधिकार चेष्टा है। भारत सरकार या प्रान्तीय सरकारोंको न ऐसा अधिकार प्राप्त था और न है, जिसके द्वारा वे हिन्दुओंके निजी व्यवहारोंमें किसी प्रकारका परिवर्तन कर सकें। धार्मिक जीवनमें हस्तक्षेप न करनेकी नीति ब्रिटिश सरकार समय समयपर घोषित करती रही है, पर अब वह स्वयं इसके विरुद्ध जा रही है। यदि सरकारका यह अधिकार मान लिया गया तो हमारे धर्मशास्त्र के प्रामाण्यका ही अन्त हो जायगा और उसके स्थानपर नवशिक्षित हिंदू तथा अहिंदुओंद्वारा धारासभाओंमें रचित अंग्रेजी भाषाके एक 'कानूनविधान' (कोड) का प्रामाण्य रह जायगा, जिसको राजदण्डके भयसे सभीको मानना पड़ेगा। यह कोड हिंदू, जैन, बौद्ध, ब्रह्मसमाजी, आर्यसमाजी—सभीपर समानरूपसे लागू होगा। इस कोडके किसी अंशसे भले ही कोई सहमत हो, पर सिद्धान्तकी दृष्टिसे सभीका विरोध होगा। यदि हिंदूधर्मशास्त्रोंमें मनमाने परिवर्तन करनेका सरकारका अधिकार मान लिया गया तो फिर वह किसी भी सम्प्रदायके धर्मग्रन्थोंमें मनमाना परिवर्तन कर सकती है। ऐसी दशामें इस कोडका पूरा विरोध करना प्रत्येक हिंदूका कर्तव्य है।

परन्तु हमारे सामने कितनी ही अड़चनें हैं। 'कोड' का मसविदा अंग्रेजी भाषामें है। किसी देशकी भाषामें इसका अनुवाद नहीं किया गया है। अंग्रेजीकी भी थोड़ी ही प्रतियाँ छपी हैं, कमेटीको लिखनेसे छ आनेमें एक प्रति मिलती है। हजार पीछे एक व्यक्तिको भी इन क्रान्तिकारी परिवर्तनों का पता नहीं है। 'अप्रदत्त उत्तराधिकार बिल' का कुछ देशी भाषाओंमें अनुवाद प्रान्तीय गजटोंमें प्रकाशित करा दिया गया, पर इस कोडके लिये यह भी नहीं किया गया।

पिछले दिनों पत्रोंमें यह समाचार निकला था कि सरकार शीघ्र ही उक्त कोडका सभी प्रान्तीय भाषाओंमें अनुवाद कराकर प्रकाशित करने जा रही है तथा कोडकी एक एक प्रति प्रत्येक जिलेके सार्वजनिक पुस्तकालयमें रखी जायगी। 'अखिल भारतीय धर्मसंघ'ने उस बिलका हिन्दी-अनुवाद और विरोधपत्र तथा प्रस्तावपत्र हजारोंकी संख्यामें प्रकाशित करवाकर वितरण किये थे। परन्तु अब नोटिसतक छापनेके लिये कागज नहीं मिल रहा है। बिना सरकारकी अनुमतिके जुलूस निकालना, सभाएँ करना भी बंद कर दिया गया है। ऐसी दशामें लोकमत कैसे व्यक्त किया जाय? यातायातकी कितनी ही असुविधाएँ हैं, मँहगीके कारण खाने-पहननेके लाले पड़ रहे हैं। वर्तमान कठिन समयमें ऐसी बातोंकी ओर किसका ध्यान है। फिर इस अवसरपर ऐसे कानून पास करनेको सरकार क्यों उतावली है। यदि वह सचमुच लोकमत जानना चाहती है तो उसे कोडका पूरा प्रचार करना चाहिये, मत प्रकट करनेकी सुविधाएँ देनी चाहिये और उसमें जो कुछ भी खर्च पड़े, उठाना चाहिये। भारतकी गरीब जनताके पास इतना धन नहीं है कि वह लाखों रुपया ऐसे प्रस्तावोंपर मत प्रकट करनेमें खर्च करे, जिनकी उसकी ओरसे माँगतक नहीं है। पर हमारे लिये यह जीवन मरणका प्रश्न है, इसलिये जो कुछ भी बन पड़े, हमें अवश्य करना चाहिये।

'हिन्दू कानून-कमेटी' आगामी शीतकालमें देशभरका दौरा करेगी। जो लोग उसके सामने अपना मत देना चाहें, वे उसको लिखें कि वे किस स्थानपर सुविधापूर्वक मिल सकते हैं। इसकी सूचना ३० नवबरतक कमेटीके पास पहुँचनी चाहिये। जो लोग अपना लिखित वक्तव्य भेजना चाहें, वे

२२ नवंबरतक ऐसा कर सकते हैं। यह कार्य विद्वानोंका है, वे ही लोग इस कोडके सम्बन्धमें कमेटीके सदस्योंसे शास्त्रार्थ कर सकते हैं; इसके लिये प्रत्येक जिलेके विद्वानोंको कमेटीसे अपने नगरमें आनेके लिये प्रार्थना करनी चाहिये और उसके सामने अपना पक्ष रखना चाहिये। इसके लिये **"सेक्रेटरी हिंदू ला कमेटी, फोर्ट सेंट जार्ज, मद्रास"** को लिखना चाहिये। सर्वसाधारणको अपना मत **"सेक्रेटरी लेजिस्लेटिव डिपार्टमेंट, भारत-सरकार नयी दिल्ली"** के पास भेजना चाहिये। उसमें ऊपर लिखा रहना चाहिये **"हम नीचे हस्ताक्षर करनेवाले भारत-सरकारसे प्रार्थना करते हैं कि वह हमारे धार्मिक तथा सामाजिक जीवनमें हस्तक्षेप न करे, प्रस्तावित 'हिंदू-कोड' को केन्द्रीय एसेम्बलीमें पेश न करे और 'हिन्दू-कानून-कमेटी' को तोड़ दे।"** इसके नीचे पूरा नाम, पता और हस्ताक्षर होना चाहिये। जो लोग हस्ताक्षर न कर सकें, वे लोग निशान अँगूठा दे सकते हैं। हस्ताक्षरोंकी संख्या **"धर्मसंघ-कार्यालय, गंगातरंग, नगवा, काशी"** को सूचित कर देनी चाहिये, जिसमें वहाँ उसका पूरा लेखा रहे। जहाँ सभाएँ हो सकें, वहाँ सभाएँ करके निम्नलिखित प्रस्ताव पास कराना चाहिये—**"यह सभा निश्चित करती है कि उसकी रायमें भारतसरकार या प्रान्तीय सरकारोंको न कभी ऐसा अधिकार प्राप्त था और न है कि जिसके द्वारा वे हिंदुओंके निजी धार्मिक तथा सामाजिक नियमोंमें कोई परिवर्तन कर सकें; अतः वर्तमान शासनविधानके अनुसार संगठित केन्द्रीय धारासभाओंद्वारा हिंदू-कानून-विधान तैयार करानेकी सरकारी नीति इस सभाकी रायमें अवैध तथा निन्दनीय है। प्रस्तावित हिंदू-कोड धर्मशास्त्रके सिद्धान्तोंके प्रतिकूल तथा हिंदूसभ्यता और संस्कृतिके लिये घातक है। अतः भारत-सरकारसे अनुरोध है कि वह इस कोडको केन्द्रीय एसेम्बलीमें पेश न करे और 'हिंदू-कानून-कमेटी' को तोड़ दे।"** सभापतिके हस्ताक्षरसे यह प्रस्ताव भी **"सेक्रेटरी, लेजिस्लेटिव डिपार्टमेंट, भारतसरकार, नई दिल्ली"** के पास जाना चाहिये और उसकी सूचना **धर्मसंघ-कार्यालय** के पास आनी चाहिये। कागज न मिलनेके कारण छपे हुए विरोध-पत्र तथा प्रस्ताव भेजना सम्भव नहीं है। इसीके अनुसार जितना भी कागज मिल सके, आवश्यकतानुसार प्रतियाँ बना लेनी चाहिये। जिन्हें सरकारके पास भेजनेमें कुछ असुविधा हो, वे विरोध-पत्रोंको **धर्मसंघ-कार्यालय** में भेज सकते हैं; वहाँसे यथास्थान भेज दिये जायँगे। इसमें अवधिका कोई प्रश्न नहीं है। भारत-सरकारके पास बराबर विरोध भेजते रहना चाहिये। देशी राज्योंके हिंदुओंको भी यही करना चाहिये।

'हिन्दूकोड' पर सरकार स्वयं मत जानना चाहती है, इसलिये सरकारी कर्मचारी तथा पदाधिकारी भी बिना किसी संकोचके हस्ताक्षर करके अपना मत दे सकते हैं। विशिष्ट व्यक्तियोंको अपना मत पत्रके रूपमें अलगसे भेजना चाहिये। अभीतक यह कार्य प्रायः प्रमुख सनातनी संस्थाओंके प्रयत्नसे चल रहा था; पर अब इसमें आर्य-समाजी, हिन्दू-महासभावाले, सिख, जैन, सभीका सहयोग होने जा रहा है। **अखिल भारतीय धर्मसंघका चतुर्थ महाधिवेशन आगामी मार्गशीर्ष (नवम्बर)के प्रथम सप्ताहमें काशीमें होगा, उसीके साथ "सार्धद्वय कोटिहोमात्मक १२१ महारुद्र यज्ञ" भी होगा। "तभी हिंदूकोड-विरोधी अखिल भारतीय सम्मेलन" भी करनेका निश्चय किया गया है।** इसमें सभी हिंदू-संस्थाएँ सम्मिलित हो सकती हैं। विभिन्न संस्थाओंको इस सम्बन्धमें संघके मन्त्रीसे पत्रव्यवहार करना चाहिये। इसमें प्रत्येक श्रेणी, प्रत्येक संस्थाके प्रतिनिधि आने चाहिये। पीठाधीश, मठाधीश, महंतादिको, जो धर्मके रक्षक माने जाते हैं, इस कार्यमें आगे आना चाहिये। ये ही थोड़े-से उपाय हमारे हाथमें रह गये हैं, जिनके द्वारा हम अपना मत व्यक्त कर सकते हैं और सरकारपर अपना प्रभाव डाल सकते हैं। परिस्थितिका दिग्दर्शन करा दिया गया है; कार्य करना आपके हाथ है।*

---

* हम सम्मान्य मिश्रजीके विचारोंसे पूर्ण सहमत हैं। प्रत्येक हिंदूका कर्तव्य है कि वह प्रस्तावित कोडके विरोधमें अपनी लिखित सम्मति मिश्रजीके बताये हुए ढंगसे सरकारके पास भेजे और यथासाध्य प्रत्येक जिलेके विद्वान् कमेटीको अपने यहाँ बुलाकर उसके सदस्योंसे मिलें। जहाँ संभव हो, कोडके विरोधमें सभाएँ भी होनी चाहिये। हम पाठकोंसे अनुरोध करते हैं कि यथासंभव उनमेंसे प्रत्येक व्यक्ति वायसराय महोदयके पास इसके विरोधमें तार भेजे और भिजवाये। —सम्पादक

इसीसे प्रेरणान्वित होकर उसके बाद महाभारत तथा श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणके अनुवाद भी क्रमशः छापे गये। ये दोनों ही ग्रन्थ श्रीमद्भागवतकी अपेक्षा बड़े हैं तथा भागवताङ्क निकलनेके बादसे ही युद्धकी परिस्थिति सङ्गीन हो जानेके कारण कागजोंके मिलनेमें कठिनाई होने लगी। इसके अतिरिक्त और भी कुछ कारण ऐसे थे, जिनसे बाध्य होकर हमें पिछले दोनों ग्रन्थोंका अविकल अनुवाद न देकर संक्षिप्त अनुवाद ही छापना पड़ा। उन्हीं कारणोंसे पद्मपुराणका भी यह संक्षिप्त भावानुवाद छापा गया है। भूलें तो हमसे पद-पदपर होती हैं और हुई होंगी। कृपालु पाठक जिस प्रकार पहले हमारी भूलोंको क्षमा करते आये हैं, उसी प्रकार इस बार भी वे हमारी भूलोंको क्षमा करें—यही हमारी सबसे करबद्ध एवं विनीत प्रार्थना है। ग्रन्थका संक्षेप करनेमें, अनुवादमें तथा छपाई आदिमें भी सम्भव है बहुत-सी भूलें रही होंगी। उनके लिये भी हम सबकी ओरसे क्षमा माँगते हैं।

पद्मपुराणमें सृष्टिखण्ड, भूमिखण्ड, स्वर्गखण्ड, पाताल खण्ड और उत्तरखण्ड—ये पाँच खण्ड पाये जाते हैं। किसी किसी पुस्तकमें सृष्टिखण्ड, भूमिखण्ड, स्वर्गखण्ड ब्रह्मखण्ड, पातालखण्ड, उत्तरखण्ड और क्रियाखण्ड—इस प्रकार सात खण्ड माने गये हैं। खण्डोंके क्रममें भी मतभेद पाया जाता है। किसी किसीने स्वर्गखण्डको ही आदिखण्ड माना है और सृष्टिखण्डको अन्तिम। हमने पद्मपुराणके ही निम्नलिखित श्लोकको प्रमाण मानकर उपर्युक्त क्रमको अङ्गीकार किया है। श्लोक इस प्रकार है—

प्रथमं सृष्टिखण्डं हि भूमिखण्डं द्वितीयकम्।
तृतीयं स्वर्गखण्डं च पातालं तु चतुर्थकम्॥
पञ्चमं चोत्तरं खण्डं सर्वपापप्रणाशनम्।
(भूमिखण्ड १२५। ४८-४९)

पहले दो खण्डोंका संक्षिप्त अनुवाद पूरा-का-पूरा इस अङ्कमें आ गया है। प्रारम्भमें दो ही खण्डोंका अनुवाद इस अङ्कमें देनेका विचार था। इसी हिसाबसे लाइन चित्र भी बनवाये गये थे। पीछे कुछ पृष्ठ बच जानेके कारण कुछ अंश तीसरे स्वर्गखण्डके अनुवादका भी इसमें जोड़ दिया गया है। परन्तु लाइन चित्र समयपर तैयार न हो सकनेके कारण इस अंशमें लाइन चित्र बिल्कुल नहीं दिये जा सके। आशा है, हमारी परिस्थितिको ध्यानमें रखते हुए कृपालु पाठक हमें क्षमा करेंगे।

अन्य प्राचीन ग्रन्थोंकी भाँति पद्मपुराणके पाठमें भी बहुत मतभेद देखनेमें आता है। हमने जहाँतक हो सका है, आनन्दाश्रम मुद्रणालयके द्वारा मुद्रित प्रतिका ही पाठ लिया है। अध्याय तथा श्लोकोंकी संख्या भी उसीके अनुसार दी है। कहीं-कहीं हमें जहाँ दूसरी दूसरी प्रतियोंका पाठ अधिक समीचीन प्रतीत हुआ, वहाँ हमने उन-उन प्रतियोंका पाठ भी लिया है।

पद्मपुराणमें बहुत ही उपयोगी विषयोंका समावेश हुआ है। श्राद्धकी महिमा तथा विधि, श्राद्धमें दिया हुआ अन्न किस प्रकार पितरोंको मिलता है, तीर्थोंकी महिमा तथा तीर्थोंमें किस प्रकार रहनेसे तीर्थसेवनका पूरा पूरा फल मिलता है, आश्रम धर्मका निरूपण, नाना प्रकारके व्रत, स्नान एवं तर्पण आदिकी विधि, दानकी प्रशंसा, सत्सङ्गकी महिमा, दीर्घायु होनेका सुगम उपाय, त्रिदेवोंकी एकता, मूर्तिपूजा, ब्राह्मणों एवं गायत्री मन्त्रकी महिमा, गौओंकी महिमा तथा गोदानका माहात्म्य, द्विजोचित आचार, पितृभक्ति, पतिभक्ति, समता, अद्रोह एवं विष्णुभक्तिरूप पाँच महायज्ञोंकी महिमा, कन्यादानका महत्त्व, सत्यभाषण एवं लोभत्यागकी महिमा, पोखरे खुदाने, वृक्ष लगाने, पौंसले चलाने, गोचरभूमि तथा साँड़ छोड़ने, देवालय बनवाने और देवताओंका पूजन करनेका माहात्म्य, रुद्राक्ष, आँवले तथा तुलसीका माहात्म्य, गङ्गाजीकी महिमा, गणेशजी एवं सूर्यकी महिमा तथा उनकी उपासनाका फल, पुराण आदिकी महिमा, नाम महिमा, ध्यान तथा प्राणायाम आदि अनेकों सुन्दर विषयोंका संकलन हुआ है। इनसे पाठकोंका तो महान् उपकार होगा ही, संकलन करने, अनुवाद करने तथा सम्पादन करनेमें जिन जिन व्यक्तियोंका सहयोग रहा है, उन सबको भी इस कार्यसे कम लाभ नहीं हुआ है। श्रीभगवान्‌के नाम, रूप, गुण, तत्त्व, रहस्य, प्रभाव एवं चरित्रोंकी तथा सदाचारकी जहाँ जहाँ आलोचना हुई है, वह अङ्क तो अवश्य उपादेय है ही। जिन जिनका इस पुनीत कार्यमें प्रेमपूर्ण एवं मूल्यवान् सहयोग प्राप्त हुआ है, उन्हें धन्यवाद देना तो उनके कार्यके महत्त्वको घटाना है। अन्तमें सबसे पुनः अपनी त्रुटियोंके लिये क्षमा माँगते हुए हम अपने इस क्षुद्र प्रयासको श्रीभगवान्‌के पावन चरण कमलोंमें अर्पित करते हैं—'त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये।' 'श्रीकृष्णार्पणमस्तु।'

विनीत—
सम्पादक



सूतजीका ऋषियोंको पद्मपुराण सुनाना

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

संक्षिप्त पद्मपुराण

सृष्टि-खण्ड

ग्रन्थका उपक्रम तथा इसके स्वरूपका परिचय

स्वच्छं चन्द्रावदातं करिकरमकरक्षोभसंजातफेनं
ब्रह्मोद्भूतिप्रसक्तैर्व्रतनियमपरैः सेवितं विप्रमुख्यैः।
ॐकारालङ्कृतेन त्रिभुवनगुरुणा ब्रह्मणा दृष्टिपूतं
संभोगाभोगरम्यं जलमशुभहरं पौष्करं नः पुनातु॥*

श्रीव्यासजीके शिष्य परम बुद्धिमान् लोमहर्षणजीने एकान्तमें बैठे हुए [अपने पुत्र] उग्रश्रवा नामक सूतसे कहा—"बेटा! तुम ऋषियोंके आश्रमोंपर जाओ और उनके पूछनेपर सम्पूर्ण धर्मोंका वर्णन करो। तुमने मुझसे जो संक्षेपमें सुना है, वह उन्हें विस्तारपूर्वक सुनाओ। मैंने महर्षि वेदव्यासजीके मुखसे समस्त पुराणोंका ज्ञान प्राप्त किया है और वह सब तुम्हें बता दिया है; अतः अब मुनियोंके समक्ष तुम उसका विस्तारके साथ वर्णन करो। प्रयागमें कुछ महर्षियोंने, जो उत्तम कुलोंमें उत्पन्न हुए थे, साक्षात् भगवान्से प्रश्न किया था। वे [यज्ञ करनेके योग्य] किसी पावन प्रदेशको जानना चाहते थे। भगवान् नारायण ही सबके हितैषी हैं, वे धर्मानुष्ठानकी इच्छा रखनेवाले उन महर्षियोंके पूछनेपर बोले—'मुनिवरो! यह सामने जो चक्र दिखायी दे रहा है, इसकी कहीं तुलना नहीं है। इसकी नाभि सुन्दर और स्वरूप दिव्य है। यह सत्यकी ओर जानेवाला है। इसकी गति सुन्दर एवं कल्याणमयी है। तुमलोग सावधान होकर नियमपूर्वक इसके पीछे-पीछे जाओ। तुम्हें अपने लिये हितकारी स्थानकी प्राप्ति होगी। यह धर्ममय चक्र यहाँसे जा रहा है। जाते-जाते जिस स्थानपर इसकी नेमि जीर्ण-शीर्ण होकर गिर पड़े, उसीको पुण्यमय प्रदेश समझना।' उन सभी महर्षियोंसे ऐसा कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये और वह धर्म-चक्र नैमिषारण्यके गङ्गावर्तनामक स्थानपर गिरा। तब ऋषियोंने निमि शीर्ण होनेके कारण उस स्थानका नाम 'नैमिष' रखा और नैमिषारण्यमें दीर्घकाल-तक चालू रहनेवाले यज्ञोंका अनुष्ठान आरम्भ कर दिया। वहीं तुम भी जाओ और ऋषियोंके पूछनेपर उनके धर्म-विषयक संशयोंका निवारण करो।"

तदनन्तर ज्ञानी उग्रश्रवा पिताकी आज्ञा मानकर उन मुनीश्वरोंके पास गये तथा उनके चरण पकड़कर हाथ जोड़कर उन्होंने प्रणाम किया। सूतजी बड़े बुद्धिमान् थे,



उन्होंने अपनी नम्रता और प्रणाम आदिके द्वारा महर्षियोंको

* जो चन्द्रमाके समान उज्ज्वल और स्वच्छ है, जिसमें हाथीकी सूँड़के समान आकारवाले नाकोंके इधर-उधर वेगपूर्वक चलने-फिरनेसे फेन पैदा होता रहता है, ब्रह्माजीके प्रादुर्भावकी कथा-वार्तामें लगे हुए व्रत-नियम-परायण श्रेष्ठ ब्राह्मण जिसका सदा सेवन करते हैं, ॐकार-जपसे विभूषित त्रिभुवनगुरु ब्रह्माजीने जिसे अपनी दृष्टिसे पवित्र किया है, जो पीनेमें स्वादिष्ट है और अपनी विशालताके कारण रमणीय जान पड़ता है, वह पुष्करतीर्थका पापहारी जल हमलोगोंको पवित्र करे।

सन्तुष्ट किया। वे यज्ञमें भाग लेनेवाले महर्षि भी सदस्योंसहित बहुत प्रसन्न हुए तथा सबने एकत्रित होकर सूतजीका यथायोग्य आदर-सत्कार किया।

ऋषि बोले—देवताओंके समान तेजस्वी सूतजी! आप कैसे और किस देशसे यहाँ आये हैं? अपने आनेका कारण बतलाइये।

सूतजीने कहा—महर्षियो! मेरे बुद्धिमान् पिता व्यास शिष्य लोमहर्षणजीने मुझे यह आज्ञा दी है कि 'तुम मुनियोंके पास जाकर उनकी सेवामें रहो और वे जो कुछ पूछें, उसे बताओ।' आपलोग मेरे पूज्य हैं। बताइये, मैं कौन-सी कथा कहूँ? पुराण, इतिहास अथवा भिन्न भिन्न प्रकारके धर्म—जो आज्ञा दीजिये, वही सुनाऊँ।

सूतजीका यह मधुर वचन सुनकर वे श्रेष्ठ महर्षि बहुत प्रसन्न हुए। अत्यन्त विश्वसनीय, विद्वान् लोमहर्षण पुत्र उग्रश्रवाको उपस्थित देख उनके हृदयमें पुराण सुननेकी इच्छा जाग्रत् हुई। उस यज्ञमें यजमान थे महर्षि शौनक, जो सम्पूर्ण शास्त्रोंके विशेषज्ञ, मेधावी तथा [वेदके] विज्ञानमय आरण्यक भागके आचार्य थे। वे सब महर्षियोंके साथ श्रद्धाका आश्रय लेकर धर्म सुननेकी इच्छासे बोले।

शौनकने कहा—महाबुद्धिमान् सूतजी! आपने इतिहास और पुराणोंका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ भगवान् व्यासजीकी भलीभाँति आराधना की है। उनकी पुराण विषयक श्रेष्ठ बुद्धिसे आपने अच्छी तरह लाभ उठाया है। महामते! यहाँ जो ये श्रेष्ठ ब्राह्मण विराजमान हैं, इनका मन पुराणोंमें लग रहा है। ये पुराण सुनना चाहते हैं। अतः आप इन्हें पुराण सुनानेकी ही कृपा करें। ये सभी श्रोता, जो यहाँ एकत्रित हुए हैं, बहुत ही श्रेष्ठ हैं। भिन्न भिन्न गोत्रोंमें इनका जन्म हुआ है। ये वेदवादी ब्राह्मण अपने-अपने वंशका पौराणिक वर्णन सुनें। इस दीर्घकालीन यज्ञके पूर्ण होनेतक आप मुनियोंको पुराण सुनाइये। महाप्राज्ञ! आप इन सब लोगोंसे पद्मपुराणकी कथा कहिये। पद्मकी उत्पत्ति कैसे हुई, उससे ब्रह्माजीका आविर्भाव किस प्रकार हुआ तथा कमलसे प्रकट हुए ब्रह्माजीने किस तरह जगत्‌की सृष्टि की—ये सब बातें इन्हें बताइये।

उनके इस प्रकार पूछनेपर लोमहर्षण कुमार सूतजीने सुन्दर वाणीमें सूक्ष्म अर्थसे भरा हुआ न्याययुक्त वचन कहा—'महर्षियो! आपलोगोंने जो मुझे पुराण सुनानेकी आज्ञा दी है, इससे मुझे बड़ा प्रसन्नता हुई है, यह मुझपर आपका महान् अनुग्रह है। सम्पूर्ण धर्मोंके पालनमें लगे रहनेवाले पुराणवेत्ता विद्वानोंने जिनकी भलीभाँति व्याख्या की है, उन पुराणोक्त विषयोंको मैंने जैसा सुना है, उसी रूपमें यह सब आपको सुनाऊँगा। सत्पुरुषोंकी दृष्टिमें सूत जातिका सनातन धर्म यही है कि वह देवताओं, ऋषियों तथा अमिततेजस्वी राजाओंकी वंश-परम्पराको धारण करे—उसे याद रखे, तथा इतिहास और पुराणोंमें जिन ब्रह्मवादी महात्माओंका वर्णन किया गया है, उनकी स्तुति करे, क्योंकि जब वेनकुमार राजा पृथुका यज्ञ हो रहा था, उस समय सूत और मागधने पहले-पहल उन महाराजकी स्तुति ही की थी। उस स्तुतिसे सन्तुष्ट होकर महात्मा पृथुने उन दोनोंको वरदान दिया। वरदानमें उन्होंने सूतको सूत नामक देश और मागधको मगधका राज्य प्रदान किया था। क्षत्रियके वीर्य और ब्राह्मणीके गर्भसे जिसका जन्म होता है, वह सूत कहलाता है। ब्राह्मणोंने मुझे पुराण सुनानेका अधिकार दिया है। आपने धर्मका विचार करके ही मुझसे पुराणकी बातें पूछी हैं, इसलिये इस भूमण्डलमें जो सबसे उत्तम एवं ऋषियोंद्वारा सम्मानित पद्मपुराण है, उसकी कथा आरम्भ करता हूँ। श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासजी साक्षात् भगवान् नारायणके स्वरूप हैं। वे ब्रह्मवादी, सर्वज्ञ, सम्पूर्ण लोकोंमें पूजित तथा अत्यन्त तेजस्वी हैं। उन्हींसे प्रकट हुए पुराणोंका मैंने अपने पिताजीके पास रहकर अध्ययन किया है। पुराण सब शास्त्रोंके पहलेसे विद्यमान हैं। ब्रह्माजीने [कल्पके आदिमें] सबसे पहले पुराणोंका ही स्मरण किया था। पुराण त्रिवर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ और कामके साधक एवं परम पवित्र हैं। उनकी रचना सौ करोड़ श्लोकोंमें हुई है।* समयके अनुसार इतने बड़े पुराणोंका श्रवण और पठन असम्भव देखकर स्वयं भगवान् इनका संक्षेप करनेके लिये प्रत्येक द्वापरयुगमें व्यासरूपसे अवतार लेते हैं और पुराणोंको अठारह भागोंमें बाँटकर उन्हें चार लाख श्लोकोंमें सीमित कर देते हैं। पुराणोंका यह संक्षिप्त संस्करण ही इस भूमण्डलमें प्रकाशित होता है। देवलोकोंमें आज भी सौ करोड़ श्लोकोंका विस्तृत पुराण मौजूद है।

---

* पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।
त्रिवर्गसाधनं पुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम्॥ (१। ५१)

अब मैं परम पवित्र पद्मपुराणका वर्णन आरम्भ करता हूँ। उसमें पाँच खण्ड और पचपन हजार श्लोक हैं। पद्मपुराणमें सबसे पहले सृष्टिखण्ड है। उसके बाद भूमिखण्ड आता है। फिर स्वर्गखण्ड और उसके पश्चात् पातालखण्ड है। तदनन्तर परम उत्तम उत्तर-खण्डका वर्णन आया है। इतना ही पद्मपुराण है। भगवान्‌की नाभिसे जो महान् पद्म (कमल) प्रकट हुआ था, जिससे इस जगत्‌की उत्पत्ति हुई है, उसीके वृत्तान्तका आश्रय लेकर यह पुराण प्रकट हुआ है; इसलिये इसे पद्मपुराण कहते हैं। यह पुराण स्वभावसे ही निर्मल है, उसपर भी इसमें श्रीविष्णुभगवान्‌के माहात्म्यका वर्णन होनेसे इसकी निर्मलता और भी बढ़ गयी है। देवाधिदेव भगवान् विष्णुने पूर्वकालमें ब्रह्माजीके प्रति जिसका उपदेश किया था तथा ब्रह्माजीने जिसे अपने पुत्र मरीचिको सुनाया था, वही यह पद्मपुराण है। ब्रह्माजीने ही इसे इस जगत्‌में प्रचलित किया है।

भीष्म और पुलस्त्यका संवाद—सृष्टि-क्रमका वर्णन तथा भगवान् विष्णुकी महिमा

सूतजी कहते हैं—महर्षियो! जो सृष्टिरूप मूल प्रकृतिके ज्ञाता तथा इन भावात्मक पदार्थोंके द्रष्टा हैं, जिन्होंने इस लोककी रचना की है, जो लोकतत्त्वके ज्ञाता तथा योगवेत्ता हैं, जिन्होंने योगका आश्रय लेकर सम्पूर्ण चराचर जीवोंकी सृष्टि की है और जो समस्त भूतों तथा अखिल विश्वके स्वामी हैं; उन सच्चिदानन्द परमेश्वरको मैं नमस्कार करता हूँ। फिर ब्रह्मा, महादेव, इन्द्र, अन्य लोकपाल तथा सूर्यदेवको एकाग्र चित्तसे नमस्कार करके ब्रह्मस्वरूप वेदव्यासजीको प्रणाम करता हूँ। उन्हींसे इस पुराण-विद्याको प्राप्त करके मैं आपके समक्ष प्रकाशित करता हूँ। जो नित्य, सदसत्स्वरूप, अव्यक्त एवं सबका कारण है, वह ब्रह्म ही महत्तत्त्वसे लेकर विशेष-पर्यन्त विशाल ब्रह्माण्डकी सृष्टि करता है। यह विद्वानोंका निश्चित सिद्धान्त है। सबसे पहले हिरण्मय (तेजोमय) अण्डमें ब्रह्माजीका प्रादुर्भाव हुआ। वह अण्ड सब ओर जलसे घिरा है। जलके बाहर तेजका घेरा और तेजके बाहर वायुका आवरण है। वायु आकाशसे और आकाश भूतादि (तामस अहंकार) से घिरा है। अहंकारको महत्तत्त्वने घेर रखा है और महत्तत्त्व अव्यक्त—मूल प्रकृतिसे घिरा है। उक्त अण्डको ही सम्पूर्ण लोकोंकी उत्पत्तिका आश्रय बताया गया है। इसके सिवा, इस पुराणमें नदियों और पर्वतोंकी उत्पत्तिका बारंबार वर्णन आया है। मन्वन्तरों और कल्पोंका भी संक्षेपमें वर्णन है। पूर्वकालमें ब्रह्माजीने महात्मा पुलस्त्यको इस पुराणका उपदेश दिया था। फिर पुलस्त्यने इसे गङ्गाद्वार (हरिद्वार) में भीष्मजीको सुनाया था। इस पुराणका पठन, श्रवण तथा विशेषतः स्मरण धन, यश और आयुको बढ़ानेवाला एवं सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाला है। जो द्विज अङ्गों और उपनिषदोंसहित चारों वेदोंका ज्ञान रखता है, उसकी अपेक्षा वह अधिक विद्वान् है जो केवल इस पुराणका ज्ञाता है।* इतिहास और पुराणोंके सहारे ही वेदकी व्याख्या करनी चाहिये; क्योंकि वेद अल्पज्ञ विद्वान्‌से यह सोचकर डरता रहता है कि कहीं यह मुझपर प्रहार न कर बैठे—अर्थका अनर्थ न कर बैठे। [तात्पर्य यह कि पुराणोंका अध्ययन किये बिना वेदार्थका ठीक-ठीक ज्ञान नहीं होता।]†

यह सुनकर ऋषियोंने सूतजीसे पूछा—'मुने! भीष्मजीके साथ पुलस्त्य ऋषिका समागम कैसे हुआ? पुलस्त्यमुनि तो ब्रह्माजीके मानस पुत्र हैं। मनुष्योंको उनका दर्शन होना दुर्लभ है। महाभाग! भीष्मजीको जिस स्थानपर और जिस प्रकार पुलस्त्यजीका दर्शन हुआ, वह सब हमें बतलाइये।'

सूतजीने कहा—महात्माओ! साधुओंका हित करनेवाली विश्वपावनी महाभागा गङ्गाजी जहाँ पर्वत-मालाओंको भेदकर बड़े वेगसे बाहर निकली हैं, वह महान् तीर्थ गङ्गाद्वारके नामसे विख्यात है। पितृभक्त भीष्मजी वहीं निवास करते थे। वे ज्ञानोपदेश सुननेकी इच्छासे बहुत दिनोंसे महापुरुषोंके नियमका पालन करते थे। स्वाध्याय और तर्पणके द्वारा देवताओं और पितरोंकी तृप्ति तथा अपने शरीरका शोषण करते हुए भीष्मजीके ऊपर भगवान् ब्रह्मा

* यो विद्याच्चतुरो वेदान् साङ्गोपनिषदो द्विजः।
पुराणं च विजानाति यः स तस्माद् विचक्षणः॥ (२।५०-५१)

† इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।
बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यति॥ (२।५१-५२)

बहुत प्रसन्न हुए। वे अपने पुत्र मुनिश्रेष्ठ पुलस्त्यजीसे इस प्रकार बोले—'बेटा! तुम कुरुवंशका भार वहन करनेवाले धीरवर देवव्रतके, जिन्हें भीष्म भी कहते हैं, समीप जाओ। उन्हें तपस्यासे निवृत्त करो और इसका कारण भी बतलाओ। महाभाग भीष्म अपनी पितृभक्तिके कारण भगवान्‌का ध्यान करते हुए गङ्गाद्वारमें निवास करते हैं। उनके मनमें जो-जो कामना हो, उसे शीघ्र पूर्ण करो, विलम्ब नहीं होना चाहिये।'

पितामहका वचन सुनकर मुनिवर पुलस्त्यजी गङ्गाद्वारमें आये और भीष्मजीसे इस प्रकार बोले—'वीर! तुम्हारा कल्याण हो, तुम्हारे मनमें जो इच्छा हो, उसके अनुसार कोई वर माँगो। तुम्हारी तपस्यासे साक्षात् भगवान् ब्रह्माजी प्रसन्न हुए हैं। उन्होंने ही मुझे यहाँ भेजा है। मैं तुम्हें मनोवाञ्छित वरदान दूँगा।' पुलस्त्यजीका वचन मन और कानोंको सुख पहुँचानेवाला था। उसे सुनकर भीष्मने आँखें खोल दीं और देखा पुलस्त्यजी सामने खड़े हैं। उन्हें देखते ही भीष्मजी उनके चरणोंपर गिर पड़े। उन्होंने अपने सम्पूर्ण शरीरसे पृथ्वीका स्पर्श करते हुए उन मुनिश्रेष्ठको साष्टाङ्ग प्रणाम किया और कहा—'भगवन्! आज मेरा जन्म सफल हो गया। यह दिन बहुत ही सुन्दर है, क्योंकि आज आपके विश्ववन्द्य चरणोंका मुझे दर्शन प्राप्त हुआ है। आज आपने दर्शन दिया और विशेषतः मुझे वरदान देनेके लिये गङ्गाजीके तटपर पदार्पण किया, इतनेसे ही मुझे अपनी तपस्याका सारा फल मिल गया। यह कुशाकी चटाई है, इसे मैंने अपने हाथों बनाया है और [जहाँतक हो सका है] इस बातका भी प्रयत्न किया है कि यह बैठनेवालेके लिये आराम देनेवाली हो, अतः आप इसपर विराजमान हों। यह पलाशके दोनेमें अर्घ्य प्रस्तुत किया गया है, इसमें दूब, चावल, फूल, कुश, सरसों, दही, शहद, जौ और दूध भी मिले हुए हैं। प्राचीन कालके ऋषियोंने यह अष्टाङ्ग अर्घ्य ही अतिथिको अर्पण करनेयोग्य बतलाया है।'

अमिततेजस्वी भीष्मके ये वचन सुनकर ब्रह्माजीके पुत्र पुलस्त्यमुनि कुशासनपर बैठ गये। उन्होंने बड़ी प्रसन्नताके साथ पाद्य और अर्घ्य स्वीकार किया। भीष्मजीके शिष्टाचारसे उन्हें बड़ा सन्तोष हुआ। वे प्रसन्न होकर बोले—'महाभाग! तुम सत्यवादी, दानशील और सत्यप्रतिज्ञ राजा हो। तुम्हारे अंदर लज्जा, मैत्री और क्षमा आदि सद्गुण शोभा पा रहे हैं। तुम अपने पराक्रमसे शत्रुओंको



दमन करनेमें समर्थ हो। साथ ही धर्मज्ञ, कृतज्ञ, दयालु, मधुरभाषी, सम्मानके योग्य पुरुषोंको सम्मान देनेवाले, विद्वान्, ब्राह्मणभक्त तथा साधुओंपर स्नेह रखनेवाले हो। वत्स! तुम प्रणामपूर्वक मेरी शरण आये हो, अतः मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। तुम जो चाहो, पूछो, मैं तुम्हारे प्रत्येक प्रश्नका उत्तर दूँगा।'

भीष्मजीने कहा—भगवन्! पूर्वकालमें भगवान् ब्रह्माजीने किस स्थानपर रहकर देवताओं आदिकी सृष्टि की थी, यह मुझे बताइये। उन महात्माने कैसे ऋषियों तथा देवताओंको उत्पन्न किया? कैसे पृथ्वी बनायी? किस तरह आकाशकी रचना की और किस प्रकार इन समुद्रोंको प्रकट किया? भयंकर पर्वत, वन और नगर कैसे बनाये? मुनियों, प्रजापतियों, श्रेष्ठ सप्तर्षियों और भिन्न-भिन्न वर्णोंको, वायुको, गन्धर्वों, यक्षों, राक्षसों, तीर्थों, नदियों, सूर्यादि ग्रहों तथा तारोंको भगवान् ब्रह्माने किस तरह उत्पन्न किया? इन सब बातोंका वर्णन कीजिये।

पुलस्त्यजीने कहा—पुरुषश्रेष्ठ! भगवान् ब्रह्मा साक्षात् परमात्मा हैं। वे परसे भी पर तथा अत्यन्त श्रेष्ठ हैं। उनमें रूप और वर्ण आदिका अभाव है। वे यद्यपि सर्वत्र व्याप्त हैं, तथापि ब्रह्मरूपसे इस विश्वकी उत्पत्ति करनेके

कारण विद्वानोंके द्वारा ब्रह्मा कहलाते हैं। उन्होंने पूर्वकालमें जिस प्रकार सृष्टि-रचना की, वह सब मैं बता रहा हूँ। सुनो, सृष्टिके प्रारम्भकालमें जब जगत्‌के स्वामी ब्रह्माजी कमलके आसनसे उठे, तब सबसे पहले उन्होंने महत्तत्त्वको प्रकट किया; फिर महत्तत्त्वसे वैकारिक (सात्त्विक), तैजस (राजस) तथा भूतादिरूप तामस—तीन प्रकारका अहङ्कार उत्पन्न हुआ, जो कर्मेन्द्रियोंसहित पाँचों ज्ञानेन्द्रियों तथा पञ्चभूतोंका कारण है। पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—ये पाँच भूत हैं। इनमेंसे एक-एकके स्वरूपका क्रमशः वर्णन करता हूँ। [भूतादि नामक तामस अहङ्कारने विकृत होकर शब्द-तन्मात्राको उत्पन्न किया, उससे शब्द गुणवाले आकाशका प्रादुर्भाव हुआ।] भूतादि (तामस अहङ्कार) ने शब्द-तन्मात्रारूप आकाशको सब ओरसे आच्छादित किया। [तब शब्द-तन्मात्रारूप आकाशने विकृत होकर स्पर्श-तन्मात्राकी रचना की।] उससे अत्यन्त बलवान् वायुका प्राकट्य हुआ, जिसका गुण स्पर्श माना गया है। तदनन्तर आकाशसे आच्छादित होनेपर वायु-तत्त्वमें विकार आया और उसने रूप-तन्मात्राकी सृष्टि की। वह वायुसे अग्निके रूपमें प्रकट हुई। रूप उसका गुण कहलाता है। तत्पश्चात् स्पर्श-तन्मात्रावाले वायुने रूप-तन्मात्रावाले तेजको सब ओरसे आवृत किया। इससे अग्नि-तत्त्वने विकारको प्राप्त होकर रस-तन्मात्राको उत्पन्न किया। उससे जलकी उत्पत्ति हुई, जिसका गुण रस माना गया है। फिर रूप-तन्मात्रावाले तेजने रस-तन्मात्रारूप जल-तत्त्वको सब ओरसे आच्छादित किया। इससे विकृत होकर जलतत्त्वने गन्ध-तन्मात्राकी सृष्टि की, जिससे यह पृथ्वी उत्पन्न हुई। पृथ्वीका गुण गन्ध माना गया है। इन्द्रियाँ तैजस कहलाती हैं [क्योंकि वे राजस अहङ्कारसे प्रकट हुई हैं]। इन्द्रियोंके अधिष्ठाता दस देवता वैकारिक कहे गये हैं [क्योंकि उनकी उत्पत्ति सात्त्विक अहङ्कारसे हुई है]। इस प्रकार इन्द्रियोंके अधिष्ठाता दस देवता और ग्यारहवाँ मन—ये वैकारिक माने गये हैं। त्वचा, चक्षु, नासिका, जिह्वा और श्रोत्र—ये पाँच इन्द्रियाँ शब्दादि विषयोंका अनुभव करानेके साधन हैं। अतः इन पाँचोंको बुद्धियुक्त अर्थात् ज्ञानेन्द्रिय कहते हैं। गुदा, उपस्थ, हाथ, पैर और वाक्—ये क्रमशः मलत्याग, मैथुनजनित सुख, शिल्पनिर्माण (हस्तकौशल), गमन और शब्दोच्चारण—इन कर्मोंमें सहायक हैं। इसलिये इन्हें कर्मेन्द्रिय माना गया है।

वीर! आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी—ये क्रमशः शब्दादि उत्तरोत्तर गुणोंसे युक्त हैं। अर्थात् आकाशका गुण शब्द; वायुके गुण शब्द और स्पर्श; तेजके गुण शब्द, स्पर्श और रूप; जलके शब्द, स्पर्श, रूप और रस तथा पृथ्वीके शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गन्ध—ये सभी गुण हैं। उक्त पाँचों भूत शान्त, घोर और मूढ़ हैं*। अर्थात् सुख, दुःख और मोहसे युक्त हैं। अतः ये विशेष कहलाते हैं। ये पाँचों भूत अलग-अलग रहनेपर भिन्न-भिन्न प्रकारकी शक्तियोंसे सम्पन्न हैं। अतः परस्पर संगठित हुए बिना—पूर्णतया मिले बिना ये प्रजाकी सृष्टि करनेमें समर्थ न हो सके। इसलिये [परमपुरुष परमात्माने संकल्पके द्वारा इनमें प्रवेश किया। फिर तो] महत्तत्त्वसे लेकर विशेषपर्यन्त सभी तत्त्व *पुरुषद्वारा अधिष्ठित होनेके कारण पूर्णरूपसे एकत्वको प्राप्त* हुए। इस प्रकार परस्पर मिलकर तथा एक दूसरेका आश्रय ले उन्होंने अण्डकी उत्पत्ति की। भीष्मजी! उस अण्डमें ही पर्वत और द्वीप आदिके सहित समुद्र, ग्रहों और तारोंसहित सम्पूर्ण लोक तथा देवता, असुर और मनुष्योंसहित समस्त प्राणी उत्पन्न हुए हैं। वह अण्ड पूर्व-पूर्वकी अपेक्षा दसगुने अधिक जल, अग्नि, वायु, आकाश और भूतादि अर्थात् तामस अहङ्कारसे आवृत है। भूतादि महत्तत्त्वसे घिरा है। तथा इन सबके सहित महत्तत्त्व भी अव्यक्त (प्रधान या मूल प्रकृति) के द्वारा आवृत है।

भगवान् विष्णु स्वयं ही ब्रह्मा होकर संसारकी सृष्टिमें प्रवृत्त होते हैं तथा जबतक कल्पकी स्थिति बनी रहती है, तबतक वे ही युग-युगमें अवतार धारण करके समूची सृष्टिकी रक्षा करते हैं। वे विष्णु सत्त्वगुण धारण किये रहते हैं; उनके पराक्रमकी कोई सीमा नहीं है। राजेन्द्र! जब कल्पका अन्त होता है, तब वे ही अपना तमःप्रधान रौद्र रूप प्रकट करते हैं और अत्यन्त भयानक आकार धारण करके सम्पूर्ण प्राणियोंका संहार करते हैं। इस प्रकार सब भूतोंका नाश करके संसारको एकार्णवके जलमें निमग्न कर वे सर्वरूपधारी भगवान् स्वयं शेषनागकी शय्यापर शयन करते हैं। फिर जागनेपर ब्रह्माका रूप धारण करके वे नये सिरेसे संसारकी सृष्टि करने लगते हैं। इस तरह एक ही भगवान् जनार्दन सृष्टि, पालन

* एक-दूसरेसे मिलनेपर सभी भूत शान्त, घोर और मूढ़ प्रतीत होते हैं। पृथक्-पृथक् देखनेपर तो पृथ्वी और जल शान्त हैं, तेज और वायु घोर हैं तथा आकाश मूढ़ है।

और संहार करनेके कारण ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव नाम धारण करते हैं।* वे प्रभु स्रष्टा होकर स्वयं अपनी ही सृष्टि करते हैं, पालक होकर पालनीय रूपसे अपना ही पालन करते हैं और संहारकारी होकर स्वयं अपना ही संहार करते हैं। पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—सब वे ही हैं, क्योंकि अविनाशी विष्णु ही सब भूतोंके ईश्वर और विश्वरूप हैं। इसलिये प्राणियोंमें स्थित सर्ग आदि भी उन्हींके सहायक हैं।

ब्रह्माजीकी आयु तथा युग आदिका कालमान, भगवान् वराहद्वारा पृथ्वीका रसातलसे उद्धार और ब्रह्माजीके द्वारा रचे हुए विविध सर्गोंका वर्णन

पुलस्त्यजी कहते हैं—राजन्! ब्रह्माजी सर्वज्ञ एवं साक्षात् नारायणके स्वरूप हैं। वे उपचारसे—आरोप द्वारा ही 'उत्पन्न हुए' कहलाते हैं। वास्तवमें तो वे नित्य ही हैं। अपने निजी मानसे उनकी आयु सौ वर्षकी मानी गयी है। वह ब्रह्माजीकी आयु 'पर' कहलाती है, उसके आधे भागको परार्ध कहते हैं। पद्रह निमेषकी एक काष्ठा होती है। तीस काष्ठाओंकी एक कला और तीस कलाओंका एक मुहूर्त होता है। तीस मुहूर्तोंके कालको मनुष्यका एक दिन-रात माना गया है। तीस दिन रातका एक मास होता है। एक मासमें दो पक्ष होते हैं। छ महीनोंका एक अयन और दो अयनोंका एक वर्ष होता है। अयन दो हैं, दक्षिणायन और उत्तरायण। दक्षिणायन देवताओंकी रात्रि है और उत्तरायण उनका दिन है। देवताओंके बारह हजार वर्षोंके चार युग होते हैं, जो क्रमश सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुगके नामसे प्रसिद्ध हैं। अब इन युगोका वर्ष विभाग सुनो। पुरातत्त्वके ज्ञाता विद्वान् पुरुष कहते हैं कि सत्ययुग आदिका परिमाण क्रमश चार, तीन, दो और एक हजार दिव्य वर्ष हैं। प्रत्येक युगके आरम्भमें उतने ही सौ वर्षोंकी सन्ध्या कही जाती है और युगके अन्तमें सन्ध्यांश होता है। सन्ध्यांशका मान भी उतना ही है, जितना सन्ध्याका। नृपश्रेष्ठ! सन्ध्या और सन्ध्यांशके बीचका जो समय है, उसीको युग समझना चाहिये। वही सत्ययुग और त्रेता आदिके नामसे प्रसिद्ध है। सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग—ये सब मिलकर चतुर्युग कहलाते हैं। ऐसे एक हजार चतुर्युगोंको ब्रह्माका एक दिन कहा जाता है।†

राजन्! ब्रह्माके एक दिनमें चौदह मनु होते हैं। उनके समयका परिमाण सुनो। सप्तर्षि, देवता, इन्द्र, मनु और मनुके पुत्र—ये एक ही समयमें उत्पन्न होते हैं तथा अन्तमें साथ ही साथ इनका संहार भी होता है। इकहत्तर चतुर्युगसे कुछ अधिक कालका एक मन्वन्तर होता है।‡ यही मनु और देवताओं आदिका समय है। इस प्रकार दिव्य वर्षगणनाके अनुसार आठ लाख, बावन हजार वर्षोंका एक मन्वन्तर होता है।

* सृष्टिस्थित्यन्तकरणाद् ब्रह्मविष्णुशिवात्मक । स संज्ञां याति भगवानेक एव जनार्दन ॥ (२।११४)

† युगों तथा ब्रह्माके दिनकी वर्ष संख्या इस प्रकार समझनी चाहिये। सत्ययुगका मान चार हजार दिव्य वर्ष है, उसके आरम्भमें चार सौ वर्षोंकी सन्ध्या और अन्तमें चार सौ वर्षोंका सन्ध्यांश होता है इस प्रकार सन्ध्या और सन्ध्यांशसहित सत्ययुगकी अवधि चार हजार आठ सौ (४८००) दिव्य वर्षोंकी है। इसी तरह त्रेताका युगमान ३००० दिव्य वर्ष, सन्ध्या मान ३०० वर्ष और सन्ध्यांश मान ३०० वर्ष है अत उसकी पूरी अवधि ३६०० दिव्य वर्षोंकी हुई। द्वापरका युगमान २००० वर्ष, सन्ध्या मान २०० वर्ष, और सन्ध्यांश मान २०० वर्ष है, अत उसका मान २४०० दिव्य वर्षोंका हुआ। कलियुगका युग मान १००० वर्ष सन्ध्या मान १०० वर्ष और सन्ध्यांश मान १०० वर्ष है, इसलिये उसकी आयु १२०० दिव्य वर्षोंकी हुई। देवताओंका वर्ष मानव वर्षसे ३६० गुना अधिक होता है, अत मानववर्षके अनुसार कलियुगकी आयु ४, ३२, ००० वर्षोंकी, द्वापरकी ८, ६४, ००० वर्षोंकी, त्रेताकी १२, ९६, ००० वर्षोंकी तथा सत्ययुगकी आयु १७, २८, ००० वर्षोंकी है। इनका कुल योग ४३, २०, ००० वर्ष हुआ। यह एक चतुर्युगका मान है। ऐसे एक हजार चतुर्युगोंका अर्थात् हमारे ४, ३२, ००, ००, ००० (चार अरब बत्तीस करोड़) वर्षोंका ब्रह्माका एक दिन होता है।

‡ ब्रह्माजीके एक दिनमें चौदह मन्वन्तर होते हैं, इकहत्तर चतुर्युगोंके हिसाबसे चौदह मन्वन्तरोंमें ९९४ चतुर्युग होते हैं। परन्तु ब्रह्माका दिन एक हजार चतुर्युगोंका माना गया है, अत छ चतुर्युग और बचे। छ चतुर्युगका चौदहवाँ भाग कुछ कम पाँच हजार एक सौ तीन दिव्य वर्षोंका होता है। इस प्रकार एक मन्वन्तरमें इकहत्तर चतुर्युगके अतिरिक्त इतने दिव्य वर्ष और अधिक होते हैं।

महामते ! मानव-वर्षोंसे गणना करनेपर मन्वन्तरका काल-मान पूरे तीस करोड़, सरसठ लाख, बीस हजार वर्ष होता है। इससे अधिक नहीं।* इस कालको चौदह गुना करनेपर ब्रह्माके एक दिनका मान होता है। उसके अन्तमें नैमित्तिक नामवाला ब्राह्म-प्रलय होता है। उस समय भूर्लोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक—सम्पूर्ण त्रिलोकी दग्ध होने लगती है और महर्लोकमें निवास करनेवाले पुरुष आँचसे सन्तप्त होकर जनलोकमें चले जाते हैं। दिनके बराबर ही अपनी रात बीत जानेपर ब्रह्माजी पुनः संसारकी सृष्टि करते हैं। इस प्रकार [पक्ष, मास आदिके क्रमसे धीरे-धीरे] ब्रह्माजीका एक वर्ष व्यतीत होता है तथा इसी क्रमसे उनके सौ वर्ष भी पूरे हो जाते हैं। सौ वर्ष ही उन महात्माकी पूरी आयु है।

भीष्मजीने कहा—महामुने ! कल्पके आदिमें नारायण-संज्ञक भगवान् ब्रह्माने जिस प्रकार सम्पूर्ण भूतोंकी सृष्टि की, उसका आप वर्णन कीजिये।

पुलस्त्यजीने कहा—राजन् ! सबकी उत्पत्तिके कारण और अनादि भगवान् ब्रह्माजीने जिस प्रकार प्रजावर्गकी सृष्टि की, वह बताता हूँ; सुनो। जब पिछले कल्पका अन्त हुआ, उस समय रात्रिमें सोकर उठनेपर सत्त्वगुणके उद्रेकसे युक्त प्रभु ब्रह्माजीने देखा कि सम्पूर्ण लोक सूना हो रहा है। तब उन्होंने यह जानकर कि पृथ्वी एकार्णवके जलमें डूब गयी है और इस समय पानीके भीतर ही स्थित है, उसको निकालनेकी इच्छासे कुछ देरतक विचार किया। फिर वे यज्ञमय वाराहका स्वरूप धारण कर जलके भीतर प्रविष्ट हुए। भगवानको पाताललोकमें आया देख पृथ्वीदेवी भक्तिसे विनम्र हो गयीं और उनकी स्तुति करने लगीं।

पृथ्वी बोलीं—भगवन् ! आप सर्वभूतस्वरूप परमात्मा हैं, आपको बारंबार नमस्कार है। आप इस पाताललोकसे मेरा उद्धार कीजिये। पूर्वकालमें मैं आपसे ही उत्पन्न हुई थी। परमात्मन् ! आपको नमस्कार है। आप सबके अन्तर्यामी हैं, आपको प्रणाम है। प्रधान (कारण) और व्यक्त (कार्य) आपके ही स्वरूप हैं। काल भी आप ही हैं, आपको नमस्कार है। प्रभो ! जगत्की सृष्टि आदिके समय आप ही ब्रह्मा, विष्णु और रुद्ररूप धारण करके सम्पूर्ण भूतोंकी उत्पत्ति, पालन और संहार करते हैं, यद्यपि आप इन सबसे परे हैं। मुमुक्षु पुरुष आपकी आराधना करके मुक्त हो परब्रह्म परमात्माको प्राप्त हो गये हैं। भला, आप वासुदेवकी आराधना किये बिना कौन मोक्ष पा सकता है। जो मनसे ग्रहण करने योग्य, नेत्र आदि इन्द्रियोंद्वारा अनुभव करने योग्य तथा बुद्धिके द्वारा विचारणीय है, वह सब आपहीका रूप है। नाथ ! आप ही मेरे उपादान हैं, आप ही आधार हैं, आपने ही मेरी सृष्टि की है तथा मैं आपहीकी शरणमें हूँ; इसीलिये इस जगत्के लोग मुझे 'माधवी' कहते हैं।

पृथ्वीने जब इस प्रकार स्तुति की, तब उन परम कान्तिमान् भगवान् धरणीधरने घर्घर स्वरमें गर्जना की। सामवेद ही उनकी उस ध्वनिके रूपमें प्रकट हुआ। उनके नेत्र खिले



* यह वर्ष-संख्या पूरे इकहत्तर चतुर्युगोंका मन्वन्तर मानकर निकाली गयी है; इस हिसाबसे ब्रह्माजीके दिनका मान ४, २९, ४०, ८०, ००० (चार अरब, उनतीस करोड़, चालीस लाख, अस्सी हजार), मानव-वर्ष होता है। परन्तु पहले कह आये हैं कि इकहत्तर चतुर्युगसे कुछ अधिक कालका मन्वन्तर होता है। वह अधिक काल है—छः चतुर्युगका चौदहवां भाग। उसको भी जोड़ लेनेपर मन्वन्तरका काल ऊपर दी हुई संख्यासे अधिक होगा और उस हिसाबसे ब्रह्माजीका दिनमान चार अरब, बत्तीस करोड़ वर्षोंका ही होगा।

हुए कमलके समान शोभा पा रहे थे तथा शरीर कमलके पत्तेके समान श्याम रंगका था। उन महावराहरूपधारी भगवान्‌ने पृथ्वीको अपनी दाढ़ोंपर उठा लिया और रसातलसे वे ऊपरकी ओर उठे। उस समय उनके मुखसे निकली हुई साँसके आघातसे उछले हुए उस प्रलयकालीन जलने जनलोकमें रहनेवाले सनन्दन आदि मुनियोंको भिगोकर निष्पाप कर दिया। [निष्पाप तो वे थे ही, उन्हें और भी पवित्र बना दिया।] भगवान् महावराहका उदर जलसे भीगा हुआ था। जिस समय वे अपने वेदमय शरीरको कँपाते हुए पृथ्वीको लेकर उठने लगे, उस समय आकाशमें स्थित महर्षिगण उनकी स्तुति करने लगे।

ऋषियोंने कहा—जनेश्वरोंके भी परमेश्वर केशव! आप सबके प्रभु हैं। गदा, शङ्ख, उत्तम खड्ग और चक्र धारण करनेवाले हैं। सृष्टि, पालन और संहारके कारण तथा ईश्वर भी आप ही हैं। जिसे परम पद कहते हैं, वह भी आपसे भिन्न नहीं है। प्रभो! आपका प्रभाव अतुलनीय है। पृथ्वी और आकाशके बीच जितना अन्तर है, वह सब आपके ही शरीरसे व्याप्त है। इतना ही नहीं, यह सम्पूर्ण जगत् भी आपसे व्याप्त है। भगवन्! आप इस विश्वका हित-साधन कीजिये। जगदीश्वर! एकमात्र आप ही परमात्मा हैं, आपके सिवा दूसरा कोई नहीं है। आपकी ही महिमा है, जिससे यह चराचर जगत् व्याप्त हो रहा है। यह सारा जगत् ज्ञानस्वरूप है, तो भी अज्ञानी मनुष्य इसे पदार्थ रूप देखते हैं, इसीलिये उन्हें संसार समुद्रमें भटकना पड़ता है। परन्तु परमेश्वर! जो लोग विज्ञानवेत्ता हैं, जिनका अन्तःकरण शुद्ध है, वे समस्त संसारको ज्ञानमय ही देखते हैं, आपका स्वरूप ही समझते हैं। सर्वभूतस्वरूप परमात्मन्! आप प्रसन्न होइये। आपका स्वरूप अप्रमेय है। प्रभो! भगवन्! आप सबके उद्भवके लिये इस पृथ्वीका उद्धार एवं सम्पूर्ण जगत्‌का कल्याण कीजिये।

राजन्! सनकादि मुनि जब इस प्रकार स्तुति कर रहे थे, उस समय पृथ्वीको धारण करनेवाले परमात्मा महावराह शीघ्र ही इस वसुन्धराको ऊपर उठा लाये और उसे महासागरके जलपर स्थापित किया। उस जलराशिके ऊपर यह पृथ्वी एक बहुत बड़ी नौकाकी भाँति स्थित हुई। तत्पश्चात् भगवान्‌ने पृथ्वीके कई विभाग करके सात द्वीपोंका निर्माण किया तथा भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक और महर्लोक—इन चारों लोकोंकी पूर्ववत् कल्पना की। तदनन्तर ब्रह्माजीने भगवान्‌से कहा, 'प्रभो! मैंने इस समय जिन प्रधान प्रधान असुरोंको वरदान दिया है, उनको देवताओंकी भलाईके लिये आप मार डालें। मैं जो सृष्टि रचूँगा, उसका आप पालन करें।' उनके ऐसा कहनेपर भगवान् विष्णु 'तथास्तु' कहकर चले गये और ब्रह्माजीने देवता आदि प्राणियोंकी सृष्टि आरम्भ की। महत्तत्त्वकी उत्पत्तिको ही ब्रह्माकी प्रथम सृष्टि समझना चाहिये। तन्मात्राओंका आविर्भाव दूसरी सृष्टि है, उसे भूतसर्ग भी कहते हैं। वैकारिक अर्थात् सात्त्विक अहङ्कारसे जो इन्द्रियोंकी उत्पत्ति हुई है, वह तीसरी सृष्टि है, उसीका दूसरा नाम ऐन्द्रिय सर्ग है। इस प्रकार यह प्राकृत सर्ग है, जो अबुद्धिपूर्वक उत्पन्न हुआ है। चौथी सृष्टिका नाम है मुख्य सर्ग। पर्वत और वृक्ष आदि स्थावर वस्तुओंको मुख्य कहते हैं। तिर्यक्स्रोत कहकर जिनका वर्णन किया गया है, वे (पशु पक्षी, कीट पतङ्ग आदि) ही पाँचवीं सृष्टिके अन्तर्गत हैं, उन्हें तिर्यक् योनि भी कहते हैं। तत्पश्चात् ऊर्ध्वरेता देवताओंका सर्ग है, वही छठी सृष्टि है और उसीको देवसर्ग भी कहते हैं। तदनन्तर सातवीं सृष्टि अर्वाक्स्रोताओंकी है, वही मानव सर्ग कहलाता है। आठवाँ अनुग्रह सर्ग है, वह सात्त्विक भी है और तामस भी। इन आठ सर्गोंमेंसे अन्तिम पाँच वैकृत सर्ग माने गये हैं तथा आरम्भके तीन सर्ग प्राकृत बताये गये हैं। नवाँ कौमार सर्ग है, वह प्राकृत भी है वैकृत भी। इस प्रकार जगत्‌की रचनामें प्रवृत्त हुए जगदीश्वर प्रजापतिके ये प्राकृत और वैकृत नामक नौ सर्ग तुम्हें बतलाये गये, जो जगत्‌के मूल कारण हैं। अब तुम और क्या सुनना चाहते हो?

भीष्मजीने कहा—गुरुदेव! आपने देवताओं आदिकी सृष्टि थोड़ेमें ही बतायी है। मुनिश्रेष्ठ! अब मैं उसे आपके मुखसे विस्तारके साथ सुनना चाहता हूँ।

पुलस्त्यजीने कहा—राजन्! सम्पूर्ण प्रजा अपने पूर्वकृत शुभाशुभ कर्मोंसे प्रभावित रहती है, अतः प्रलयकालमें सबका संहार हो जानेपर भी वह उन कर्मोंके संस्कारसे मुक्त नहीं हो पाती। जब ब्रह्माजी सृष्टिकार्यमें प्रवृत्त हुए, उस समय उनसे देवताओंसे लेकर स्थावरपर्यन्त चार प्रकारकी प्रजा उत्पन्न हुई। वे चारों [ब्रह्माजीके मानसिक सङ्कल्पसे प्रकट होनेके कारण] मानसी प्रजा कहलायीं। तदनन्तर प्रजापतिने देवता, असुर, पितर और मनुष्य—इन चार प्रकारके प्राणियोंकी तथा जलकी भी सृष्टि करनेकी इच्छासे अपने शरीरका उपयोग किया। उस समय सृष्टिकी इच्छावाले

युक्तात्मा प्रजापतिकी जङ्घासे पहले दुरात्मा असुरोंकी उत्पत्ति हुई। उनकी सृष्टिके पश्चात् भगवान् ब्रह्माने अपनी वयस् (आयु)से इच्छानुसार वयों (पक्षियों)को उत्पन्न किया। फिर अपनी भुजाओंसे भेड़ों और मुखसे बकरोंकी रचना की। इसी प्रकार अपने पेटसे गायों और भैंसोंको तथा पैरोंसे घोड़े, हाथी, गदहे, नीलगाय, हरिन, ऊँट, खच्चर तथा दूसरे-दूसरे पशुओंकी सृष्टि की। ब्रह्माजीकी रोमावलियोंसे फल, मूल तथा भाँति-भाँतिके अन्नोंका प्रादुर्भाव हुआ। गायत्री छन्द, ऋग्वेद, त्रिवृत्स्तोम, रथन्तर तथा अग्निष्टोम यज्ञको प्रजापतिने अपने पूर्ववर्ती मुखसे प्रकट किया। यजुर्वेद, त्रिष्टुप् छन्द, पञ्चदशस्तोम, बृहत्साम और उक्थकी दक्षिणवाले मुखसे रचना की। सामवेद, जगती छन्द, सप्तदशस्तोम, वैरूप और अतिरात्रभागकी सृष्टि पश्चिम मुखसे की तथा एकविंशस्तोम, अथर्ववेद, आप्तोर्याम, अनुष्टुप् छन्द और वैराजको उत्तरवर्ती मुखसे उत्पन्न किया। छोटे-बड़े जितने भी प्राणी हैं, सब प्रजापतिके विभिन्न अङ्गोंसे उत्पन्न हुए। कल्पके आदिमें प्रजापति ब्रह्माने देवताओं, असुरों, पितरों और मनुष्योंकी सृष्टि करके फिर यक्ष, पिशाच, गन्धर्व, अप्सरा, सिद्ध, किन्नर, राक्षस, सिंह, पक्षी, मृग और सर्पोंको उत्पन्न किया। नित्य और अनित्य जितना भी यह चराचर जगत् है, सबको आदिकर्ता भगवान् ब्रह्माने उत्पन्न किया। उन उत्पन्न हुए प्राणियोंमेंसे जिन्होंने पूर्वकल्पमें जैसे कर्म किये थे, वे पुनः बारंबार जन्म लेकर वैसे ही कर्मोंमें प्रवृत्त होते हैं। इस प्रकार भगवान् विधाताने ही इन्द्रियोंके विषयों, भूतों और शरीरोंमें विभिन्नता एवं पृथक्-पृथक् व्यवहार उत्पन्न किया। उन्होंने कल्पके आरम्भमें वेदके अनुसार देवता आदि प्राणियोंके नाम, रूप और कर्तव्यका विस्तार किया। ऋषियों तथा अन्यान्य प्राणियोंके भी वेदानुकूल नाम और उनके यथायोग्य कर्मोंको भी ब्रह्माजीने ही निश्चित किया। जिस प्रकार भिन्न-भिन्न ऋतुओंके बारंबार आनेपर उनके विभिन्न प्रकारके चिह्न पहलेके समान ही प्रकट होते हैं, उसी प्रकार सृष्टिके आरम्भमें सारे पदार्थ पूर्वकल्पके अनुसार ही दृष्टिगोचर होते हैं। सृष्टिके लिये इच्छुक तथा सृष्टिकी शक्तिसे युक्त ब्रह्माजी कल्पके आदिमें बारंबार ऐसी ही सृष्टि किया करते हैं।

यज्ञके लिये ब्राह्मणादि वर्णों तथा अन्नकी सृष्टि, मरीचि आदि प्रजापति, रुद्र तथा स्वायम्भुव मनु आदिकी उत्पत्ति और उनकी संतान-परम्पराका वर्णन

भीष्मजीने कहा—ब्रह्मन्! आपने अर्वाक्स्रोत नामक सर्गका, जो मानव सर्गके नामसे भी प्रसिद्ध है, संक्षेपसे वर्णन किया; अब उसीको विस्तारके साथ कहिये। ब्रह्माजीने मनुष्योंकी सृष्टि किस प्रकार की? महामुने! प्रजापतिने चारों वर्णों तथा उनके गुणोंको कैसे उत्पन्न किया? और ब्राह्मणादि वर्णोंके कौन-कौन-से कर्म माने गये हैं? इन सब बातोंका वर्णन कीजिये।

पुलस्त्यजी बोले—कुरुश्रेष्ठ! सृष्टिकी इच्छा रखनेवाले ब्रह्माजीने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—इन चार वर्णोंको उत्पन्न किया। इनमें ब्राह्मण मुखसे, क्षत्रिय वक्षःस्थलसे, वैश्य जाँघोंसे और शूद्र ब्रह्माजीके पैरोंसे उत्पन्न हुए। महाराज! ये चारों वर्ण यज्ञके उत्तम साधन हैं; अतः ब्रह्माजीने यज्ञानुष्ठानकी सिद्धिके लिये ही इन सबकी सृष्टि की। यज्ञसे तृप्त होकर देवतालोग जलकी वृष्टि करते हैं, जिससे मनुष्योंकी भी तृप्ति होती है; अतः धर्ममय यज्ञ सदा ही कल्याणका हेतु है। जो लोग सदा अपने वर्णोचित कर्ममें लगे रहते हैं, जिन्होंने धर्म-विरुद्ध आचरणोंका परित्याग कर दिया है तथा जो सन्मार्गपर चलनेवाले हैं, वे श्रेष्ठ मनुष्य ही यज्ञका यथावत् अनुष्ठान करते हैं। राजन्! [यज्ञके द्वारा] मनुष्य इस मानव देहके त्यागके पश्चात् स्वर्ग और अपवर्ग भी प्राप्त कर सकते हैं तथा और भी जिस-जिस स्थानको पानेकी उन्हें इच्छा हो, उसी-उसीमें वे जा सकते हैं। नृपश्रेष्ठ! ब्रह्माजीके द्वारा चातुर्वर्ण्य-व्यवस्थाके अनुसार रची हुई प्रजा उत्तम श्रद्धाके साथ श्रेष्ठ आचारका पालन करने लगी। वह इच्छानुसार जहाँ चाहती रहती थी; उसे किसी प्रकारकी बाधा नहीं सताती थी। समस्त प्रजाका अन्तःकरण शुद्ध था। वह स्वभावसे ही परम पवित्र थी। धर्मानुष्ठानके कारण उसकी पवित्रता और भी बढ़ गयी थी। प्रजाओंके पवित्र अन्तःकरणमें भगवान् श्रीहरिका निवास होनेके कारण सबको शुद्ध ज्ञान प्राप्त होता था, जिससे सब लोग श्रीहरिके 'परब्रह्म' नामक परम पदका साक्षात्कार कर लेते थे।

तदनन्तर प्रजा जीविकाके साधन उद्योग-धंधे और खेती आदिका काम करने लगी। राजन्! धान, जौ, गेहूँ, छोटे धान्य, तिल, कँगनी, ज्वार, कोदो, चेना, उड़द, मूँग, मसूर, मटर, कुलथी, अरहर, चना और सन—ये सत्रह ग्रामीण अन्नोंकी जातियाँ हैं। ग्रामीण और जंगली दोनों प्रकारके मिलाकर चौदह अन्न यज्ञके उपयोगमें आनेवाले माने गये हैं। उनके नाम ये हैं। धान, जौ, उड़द, गेहूँ, महीन धान्य, तिल, सातवाँ कँगनी और आठवीं कुलथी—ये ग्रामीण अन्न हैं तथा साँवाँ, तिनीका चावल, जर्तिल (वनतिल), गवेधु, वेणुयव और मक्का—ये छः जंगली अन्न हैं। ये चौदह अन्न यज्ञानुष्ठानकी सामग्री हैं तथा यज्ञ ही इनकी उत्पत्तिका प्रधान हेतु है। यज्ञके साथ ये अन्न प्रजाकी उत्पत्ति और वृद्धिके परम कारण हैं, इसलिये इहलोक और परलोकके ज्ञाता विद्वान् पुरुष इन्हींके द्वारा यज्ञोंका अनुष्ठान करते रहते हैं। नृपश्रेष्ठ! प्रतिदिन किया जानेवाला यज्ञानुष्ठान मनुष्योंका परम उपकारक तथा उन्हें शान्ति प्रदान करनेवाला होता है। [कृषि आदि जीविकाके साधनोंके सिद्ध हो जानेपर] प्रजापतिने प्रजाके स्थान और गुणोंके अनुसार उनमें धर्म मर्यादाकी स्थापना की। फिर वर्ण और आश्रमोंके पृथक् पृथक् धर्म निश्चित किये तथा स्वधर्मका भलीभाँति पालन करनेवाले सभी वर्णोंके लिये पुण्यमय लोकोंकी रचना की।

योगियोंको अमृतस्वरूप ब्रह्मधामकी प्राप्ति होती है, जो परम पद माना गया है। जो योगी सदा एकान्तमें रहकर यत्नपूर्वक ध्यानमें लगे रहते हैं, उन्हें वह उत्कृष्ट पद प्राप्त होता है, जिसका ज्ञानीजन ही साक्षात्कार कर पाते हैं। तामिस्र, अन्धतामिस्र, महारौरव, रौरव, घोर असिपत्रवन, कालसूत्र और अवीचिमान् आदि जो नरक हैं, वे वेदोंकी निन्दा, यज्ञोंका उच्छेद तथा अपने धर्मका परित्याग करनेवाले पुरुषोंके स्थान बताये गये हैं।

ब्रह्माजीने पहले मनके संकल्पसे ही चराचर प्राणियोंकी सृष्टि की, किन्तु जब इस प्रकार उनकी सारी प्रजा [पुत्र, पौत्र आदिके क्रमसे] अधिक न बढ़ सकी, तब उन्होंने अपने ही सदृश अन्य मानस पुत्रोंको उत्पन्न किया। उनके नाम हैं—भृगु, पुलह, क्रतु, अङ्गिरा, मरीचि, दक्ष, अत्रि और वसिष्ठ। पुराणमें ये नौ* ब्रह्मा निश्चित किये गये हैं। इन भृगु आदिके भी पहले जिन सनन्दन आदि पुत्रोंको ब्रह्माजीने जन्म दिया था, उनके मनमें पुत्र उत्पन्न करनेकी इच्छा नहीं हुई; इसलिये वे सृष्टि रचनाके कार्यमें नहीं फँसे। उन सबको स्वभावतः विज्ञानकी प्राप्ति हो गयी थी। वे मात्सर्य आदि दोषोंसे रहित और वीतराग थे। इस प्रकार संसारकी सृष्टिके कार्यसे उनके उदासीन हो जानेपर महात्मा ब्रह्माजीको महान् क्रोध हुआ, उनकी भौंहें तन गयीं और ललाट क्रोधसे उद्दीप्त हो उठा। इसी समय उनके ललाटसे मध्याह्नकालीन सूर्यके समान तेजस्वी रुद्र प्रकट हुए। उनका आधा शरीर स्त्रीका था और आधा पुरुषका। वे बड़े प्रचण्ड थे और उनका शरीर बड़ा विशाल था। तब ब्रह्माजी उन्हें यह आदेश देकर कि 'तुम अपने शरीरके दो भाग करो' वहाँसे अन्तर्धान हो गये। उनके ऐसा कहनेपर रुद्रने अपने शरीरके स्त्री और पुरुषरूप दोनों भागोंको पृथक् पृथक् कर दिया और फिर पुरुष भागको ग्यारह रूपोंमें विभक्त किया। इसी प्रकार स्त्रीभागको भी अनेकों रूपोंमें प्रकट किया। स्त्री और पुरुष दोनों भागोंके वे भिन्न भिन्न रूप सौम्य, क्रूर, शान्त, श्याम और गौर आदि नाना प्रकारके थे।

तत्पश्चात् ब्रह्माजीने अपनेसे उत्पन्न, अपने ही स्वरूपभूत स्वायम्भुवको प्रजापालनके लिये प्रथम मनु बनाया। स्वायम्भुव मनुने शतरूपा नामकी स्त्रीको, जो तपस्याके कारण पापरहित थी, अपनी पत्नीके रूपमें स्वीकार किया। देवी शतरूपाने स्वायम्भुव मनुसे दो पुत्र और दो कन्याओंको जन्म दिया। पुत्रोंके नाम थे—प्रियव्रत और उत्तानपाद तथा कन्याएँ प्रसूति और आकूतिके नामसे प्रसिद्ध हुईं। मनुने प्रसूतिका विवाह दक्षके साथ और आकूतिका रुचि प्रजापतिके साथ कर दिया। दक्षने प्रसूतिके गर्भसे चौबीस कन्याएँ उत्पन्न कीं। उनके नाम हैं—श्रद्धा, लक्ष्मी, धृति, पुष्टि, तुष्टि, मेधा, क्रिया, बुद्धि, लज्जा, वपु, शान्ति, सिद्धि और तेरहवीं कीर्ति। इन दक्ष कन्याओंको भगवान् धर्मने अपनी पत्नियोंके रूपमें ग्रहण किया। इनसे छोटी ग्यारह कन्याएँ और थीं, जो ख्याति, सती, सम्भूति, स्मृति, प्रीति, क्षमा, सन्नति, अनसूया, ऊर्जा, स्वाहा और स्वधा नामसे प्रसिद्ध हुईं। नृपश्रेष्ठ! इन ख्याति आदि कन्याओंको क्रमशः भृगु, शिव, मरीचि, अङ्गिरा और मैंने (पुलस्त्य) तथा पुलह, क्रतु, अत्रि, वसिष्ठ, अग्नि तथा पितरोंने ग्रहण किया। श्रद्धाने कामको, लक्ष्मीने दर्पको, धृतिने नियमको, तुष्टिने सन्तोषको और पुष्टिने लोभको जन्म दिया।

* सम्भवतः पुलस्त्यजीको मिलाकर ही नौ ब्रह्मा माने गये हैं।

मेधाने श्रुतको, क्रियाने दण्ड, नय और विनयको, बुद्धिने बोधको, लज्जाने विनयको, वपुने अपने पुत्र व्यवसायको, शान्तिने क्षेमको, सिद्धिने सुखको और कीर्तिने यशको उत्पन्न किया। ये ही धर्मके पुत्र हैं। कामसे उसकी पत्नी नन्दीने हर्ष नामक पुत्रको जन्म दिया, यह धर्मका पौत्र था। भृगुकी पत्नी ख्यातिने लक्ष्मीको जन्म दिया, जो देवाधिदेव भगवान् नारायणकी पत्नी हैं। भगवान् रुद्रने दक्षसुता सतीको पत्नीरूपमें ग्रहण किया, जिन्होंने अपने पितापर खीझकर शरीर त्याग दिया।

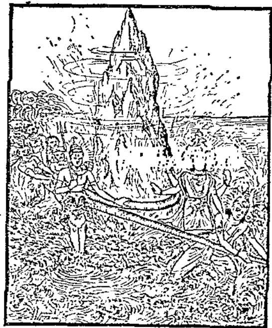
अधर्मकी स्त्रीका नाम हिंसा है। उससे अनृत नामक पुत्र और निकृति नामवाली कन्याकी उत्पत्ति हुई। फिर उन दोनोंने भय और नरक नामक पुत्र और माया तथा वेदना नामकी कन्याओंको उत्पन्न किया। माया भयकी और वेदना नरककी पत्नी हुई। उनमेंसे मायाने समस्त प्राणियोंका संहार करनेवाले मृत्यु नामक पुत्रको जन्म दिया और वेदनासे नरकके अंशसे दुःखकी उत्पत्ति हुई। फिर मृत्युसे व्याधि, जरा, शोक, तृष्णा और क्रोधका जन्म हुआ। ये सभी अधर्मस्वरूप हैं और दुःखोत्तर नामसे प्रसिद्ध हैं। इनके न कोई स्त्री है न पुत्र। ये सब-के-सब नैष्ठिक ब्रह्मचारी हैं। राजकुमार भीष्म! ये ब्रह्माजीके रौद्र रूप हैं और ये ही संसारके नित्य प्रलयमें कारण होते हैं।

लक्ष्मीजीके प्रादुर्भावकी कथा, समुद्र-मन्थन और अमृत-प्राप्ति

भीष्मजीने कहा—मुने! मैंने तो सुना था लक्ष्मीजी क्षीर-समुद्रसे प्रकट हुई हैं; फिर आपने यह कैसे कहा कि वे भृगुकी पत्नी ख्यातिके गर्भसे उत्पन्न हुई?

पुलस्त्यजी बोले—राजन्! तुमने मुझसे जो प्रश्न किया है, उसका उत्तर सुनो। लक्ष्मीजीके जन्मका सम्बन्ध समुद्रसे है, यह बात मैंने भी ब्रह्माजीके मुखसे सुन रखी है। एक समयकी बात है, दैत्यों और दानवोंने बड़ी भारी सेना लेकर देवताओंपर चढ़ाई की। उस युद्धमें दैत्योंके सामने देवता परास्त हो गये। तब इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता अग्निको आगे करके ब्रह्माजीकी शरणमें गये। वहाँ उन्होंने अपना सारा हाल ठीक-ठीक कह सुनाया। ब्रह्माजीने कहा—'तुमलोग मेरे साथ भगवान्‌की शरणमें चलो।' यह कहकर वे सम्पूर्ण देवताओंको साथ ले क्षीर-सागरके उत्तर-तटपर गये और भगवान् वासुदेवको सम्बोधित करके बोले—'विष्णो! शीघ्र उठिये और इन देवताओंका कल्याण कीजिये। आपकी सहायता न मिलनेसे दानव इन्हें बारंबार परास्त करते हैं।' उनके ऐसा कहनेपर कमलके समान नेत्रवाले भगवान् अन्तर्यामी पुरुषोत्तमने देवताओंके शरीरकी अपूर्व अवस्था देखकर कहा—'देवगण! मैं तुम्हारे तेजकी वृद्धि करूँगा। मैं जो उपाय बतलाता हूँ, उसे तुमलोग करो। दैत्योंके साथ *मिलकर सब प्रकारकी ओषधियाँ ले आओ और उन्हें क्षीर*-सागरमें डाल दो। फिर मन्दराचलको मथानी और वासुकि नागको नेती (रस्सी) बनाकर समुद्रका मन्थन करते हुए उससे अमृत निकालो। इस कार्यमें मैं तुमलोगोंकी सहायता करूँगा। समुद्रका मन्थन करनेपर जो अमृत निकलेगा, उसका पान करनेसे तुमलोग बलवान् और अमर हो जाओगे।'

देवाधिदेव भगवान्‌के ऐसा कहनेपर सम्पूर्ण देवता दैत्योंके साथ सन्धि करके अमृत निकालनेके यत्नमें लग गये। देव, दानव और दैत्य सब मिलकर सब प्रकारकी ओषधियाँ ले आये और उन्हें क्षीर-सागरमें डालकर मन्दराचलको मथानी एवं वासुकि नागको नेती बनाकर बड़े वेगसे मन्थन करने लगे। भगवान् विष्णुकी प्रेरणासे सब देवता एक साथ



रहकर वासुकिकी पूँछकी ओर हो गये और दैत्योंको उन्होंने वासुकिके सिरकी ओर खड़ा कर दिया। मौखकी मुखकी साँस तथा विषाग्निसे झुलस जानेके

निस्तेज हो गये। क्षीर-समुद्रके बीचमें ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ भगवान् ब्रह्मा तथा महातेजस्वी महादेवजी कच्छप रूपधारी श्रीविष्णुभगवान्‌की पीठपर खड़े हो अपनी भुजाओंसे कमलकी भाँति मन्दराचलको पकड़े हुए थे तथा स्वयं भगवान् श्रीहरि कूर्मरूप धारण करके क्षीर-सागरके भीतर देवताओं और दैत्योंके बीचमें स्थित थे। [वे मन्दराचलको अपनी पीठपर लिये डूबनेसे बचाते थे।] तदनन्तर जब देवता और दानवोंने क्षीर-समुद्रका मन्थन आरम्भ किया, तब पहले-पहल उससे देवपूजित सुरभि (कामधेनु) का आविर्भाव हुआ, जो हविष्य (घी-दूध) की उत्पत्तिका स्थान मानी गयी है। तत्पश्चात् वारुणी (मदिरा) देवी प्रकट हुई, जिसके मदभरे नेत्र घूम रहे थे। वह पग-पगपर लड़खड़ाती चलती थी। उसे अपवित्र मानकर देवताओंने त्याग दिया। तब वह असुरोंके पास जाकर बोली—'दानवो! मैं बल प्रदान करनेवाली देवी हूँ, तुम मुझे ग्रहण करो।' दैत्योंने उसे ग्रहण कर लिया। इसके बाद पुनः मन्थन आरम्भ होनेपर पारिजात (कल्पवृक्ष) उत्पन्न हुआ, जो अपनी शोभासे देवताओंका आनन्द बढ़ानेवाला था। तदनन्तर साठ करोड़ अप्सराएँ प्रकट हुईं, जो देवता और दानवोंकी सामान्यरूपसे भोग्या हैं। जो लोग पुण्यकर्म करके देवलोकमें जाते हैं, उनका भी उनके ऊपर समान अधिकार होता है। अप्सराओंके बाद शीतल किरणोंवाले चन्द्रमाका प्रादुर्भाव हुआ, जो देवताओंको आनन्द प्रदान करनेवाले थे। उन्हें भगवान् शङ्करने अपने लिये माँगते हुए कहा—'देवताओ! ये चन्द्रमा मेरी जटाओंके आभूषण होंगे, अतः मैंने इन्हें ले लिया।' ब्रह्माजीने 'बहुत अच्छा' कहकर शङ्करजीकी बातका अनुमोदन किया। तत्पश्चात् कालकूट नामक भयंकर विष प्रकट हुआ, उससे देवता और दानव सबको बड़ी पीड़ा हुई। तब महादेवजीने स्वेच्छासे उस विषको लेकर पी लिया। उसके पीनेसे उनके कण्ठमें काला दाग पड़ गया, तभीसे वे महेश्वर नीलकण्ठ कहलाने लगे। क्षीर-सागरसे निकले हुए उस विषका जो अंश पीनेसे बच गया था, उसे नागों (सर्पों) ने ग्रहण कर लिया।

तदनन्तर अपने हाथमें अमृतसे भरा हुआ कमण्डलु लिये धन्वन्तरिजी प्रकट हुए। वे श्वेत वस्त्र धारण किये हुए थे। वैद्यराजके दर्शनसे सबका मन स्वस्थ एवं प्रसन्न हो गया। इसके बाद उस समुद्रसे उच्चैःश्रवा घोड़ा और ऐरावत नामका हाथी—ये दोनों क्रमशः प्रकट हुए। इसके पश्चात् क्षीर-सागरसे लक्ष्मीदेवीका प्रादुर्भाव हुआ, जो खिले हुए कमलपर विराजमान थीं और हाथमें कमल लिये थीं। उनकी प्रभा चारों ओर छिटक रही थी। उस समय महर्षियोंने श्रीसूक्तका पाठ करते हुए बड़ी प्रसन्नताके साथ उनका स्तवन किया। साक्षात् क्षीर-समुद्रने [दिव्य पुरुषके रूपमें] प्रकट होकर लक्ष्मीजीको एक सुन्दर माला भेंट की, जिसके कमल कभी मुरझाते नहीं थे। विश्वकर्माने उनके समस्त अङ्गोंमें आभूषण पहना दिये। स्नानके पश्चात् दिव्य माला और दिव्य वस्त्र धारण करके जब वे सब प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित हुईं, तब इन्द्र आदि देवता तथा विद्याधर आदिने भी उन्हें प्राप्त करनेकी इच्छा की। तब ब्रह्माजीने भगवान् विष्णुसे कहा—'वासुदेव! मेरे द्वारा दी हुई इस लक्ष्मीदेवीको आप ही ग्रहण करें। मैंने देवताओं और दानवोंको मना कर दिया है—वे इन्हें पानेकी इच्छा नहीं करेंगे। आपने जो स्थिरतापूर्वक इस समुद्र-मन्थनके कार्यको सम्पन्न किया है, इससे आपपर मैं बहुत सन्तुष्ट हूँ।' यों कहकर ब्रह्माजी लक्ष्मीजीसे बोले—'देवि! तुम भगवान् केशवके पास जाओ। मेरे दिये हुए पतिको पाकर अनन्त वर्षोंतक आनन्दका उपभोग करो।'

ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर लक्ष्मीजी समस्त देवताओंके देखते-देखते श्रीहरिके वक्षःस्थलमें चली गयीं और भगवान्से बोलीं—'देव! आप कभी मेरा परित्याग न करें। सम्पूर्ण जगत्के प्रियतम! मैं सदा आपके आदेशका पालन करती हुई आपके वक्षःस्थलमें निवास करूँगी।' यह कहकर लक्ष्मीजीने कृपापूर्ण दृष्टिसे देवताओंकी ओर देखा, इससे उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। इधर लक्ष्मीसे परित्यक्त होनेपर दैत्योंको बड़ा उद्वेग हुआ। उन्होंने झपटकर धन्वन्तरिके हाथसे अमृतका पात्र छीन लिया। तब विष्णुने मायासे सुन्दरी स्त्रीका रूप धारण करके दैत्योंको लुभाया और उनके निकट जाकर कहा—'यह अमृतका कमण्डलु मुझे दे दो।' उस त्रिभुवनसुन्दरी रूपवती नारीको देखकर दैत्योंका चित्त कामके वशीभूत हो गया। उन्होंने चुपचाप वह अमृत उस सुन्दरीके हाथमें दे दिया और स्वयं उसका मुँह ताकने लगे। दानवोंसे अमृत लेकर भगवान्ने देवताओंको दे दिया, और इन्द्र आदि देवता तत्काल उस अमृतको पी गये। यह देख दैत्यगण भाँति-भाँतिके अस्त्र-शस्त्र और

तलवारें हाथमें लेकर देवताओंपर टूट पड़े; परन्तु देवता अमृत पीकर बलवान् हो चुके थे, उन्होंने दैत्य-सेनाको परास्त कर दिया। देवताओंकी मार पड़नेपर दैत्योंने भागकर चारों दिशाओंकी शरण ली और कितने ही पातालमें घुस गये। तब सम्पूर्ण देवता आनन्दमग्न हो शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान् श्रीविष्णुको प्रणाम करके स्वर्गलोकको चले गये।

तबसे सूर्यदेवकी प्रभा स्वच्छ हो गयी। वे अपने मार्गसे चलने लगे। भगवान् अग्निदेव भी मनोहर दीप्तिसे युक्त हो प्रज्वलित होने लगे तथा सब प्राणियोंका मन धर्ममें संलग्न रहने लगा। भगवान् विष्णुसे सुरक्षित होकर समस्त त्रिलोकी श्रीसम्पन्न हो गयी। उस समय समस्त लोकोंको धारण करनेवाले ब्रह्माजीने देवताओंसे कहा—'देवगण! मैंने तुम्हारी रक्षाके लिये भगवान् श्रीविष्णुको तथा देवताओंके स्वामी उमापति महादेवजीको नियत किया है; वे दोनों तुम्हारे योग-क्षेमका निर्वाह करेंगे। तुम सदा उनकी उपासना करते रहना; क्योंकि वे तुम्हारा कल्याण करनेवाले हैं। उपासना करनेसे ये दोनों महानुभाव सदा तुम्हारे क्षेमके साधक और वरदायक होंगे।' यों कहकर भगवान् ब्रह्मा अपने धामको चले गये। उनके जानेके बाद इन्द्रने देवलोक-की राह ली। तत्पश्चात् श्रीहरि और शङ्करजी भी अपने-अपने धाम—वैकुण्ठ एवं कैलासमें जा पहुँचे। तदनन्तर देवराज इन्द्र तीनों लोकोंकी रक्षा करने लगे। महाभाग! इस प्रकार लक्ष्मीजी क्षीरसागरसे प्रकट हुई थीं। यद्यपि वे सनातनी देवी हैं, तो भी एक समय भृगुकी पत्नी ख्यातिके गर्भसे भी उन्होंने जन्म ग्रहण किया था।

सतीका देहत्याग और दक्ष-यज्ञ-विध्वंस

भीष्मजीने पूछा—ब्रह्मन्! दक्षकन्या सती तो बड़ी शुभलक्षणा थीं, उन्होंने अपने शरीरका त्याग क्यों किया? तथा भगवान् रुद्रने किस कारणसे दक्षके यज्ञका विध्वंस किया?

पुलस्त्यजीने कहा—भीष्म! प्राचीन कालकी बात है, दक्षने गङ्गाद्वारमें यज्ञ किया। उसमें देवता, असुर, पितर और महर्षि—सब बड़ी प्रसन्नताके साथ पधारे। इन्द्रसहित देवता, नाग, यक्ष, गरुड, लताएँ, ओषधियाँ, कश्यप, भगवान् अत्रि, मैं, पुलह, क्रतु, प्राचेतस, अङ्गिरा तथा महातपस्वी वसिष्ठजी भी उपस्थित हुए। वहाँ सब ओरसे बराबर वेदी बनाकर उसके ऊपर चातुर्होत्रकी* स्थापना हुई। उस यज्ञमें महर्षि वसिष्ठ होता, अङ्गिरा अध्वर्यु, बृहस्पति उद्गाता तथा नारदजी ब्रह्मा हुए। जब यज्ञकर्म आरम्भ हुआ और अग्निमें हवन होने लगा, उस समयतक देवताओंके आनेका क्रम जारी रहा। स्थावर और जङ्गम—सभी प्रकारके प्राणी वहाँ उपस्थित थे। इसी समय ब्रह्माजी अपने पुत्रोंके साथ आकर यज्ञके सभासद् हुए तथा साक्षात् भगवान् श्रीविष्णु भी यज्ञकी रक्षाके लिये वहाँ पधारे। आठों वसु, बारहों आदित्य, दोनों अश्विनीकुमार, उनचासों मरुद्गण तथा चौदहों मनु भी वहाँ आये थे। इस प्रकार यज्ञ होने लगा, अग्निमें आहुतियाँ पड़ने लगीं। वहाँ भक्ष्य-भोज्य सामग्रीका बहुत ही सुन्दर और भारी ठाट-बाट था। ऐश्वर्य-की पराकाष्ठा दिखायी देती थी। चारों ओरसे दस योजन भूमि यज्ञके समारोहसे पूर्ण थी। वहाँ एक विशाल वेदी बनायी गयी थी, जहाँ सब लोग एकत्रित थे। शुभलक्षणा सतीने इन सारे आयोजनोंको देखा और यज्ञमें आये हुए इन्द्र आदि संपूर्ण देवताओंको लक्ष्य किया। इसके बाद वे अपने पितासे विनययुक्त वचन बोलीं।

सतीने कहा—पिताजी! आपके यज्ञमें सम्पूर्ण देवता और ऋषि पधारे हैं। देवराज इन्द्र अपनी धर्मपत्नी शचीके साथ ऐरावतपर चढ़कर आये हैं। पापियोंका दमन करनेवाले तथा धर्मात्माओंके रक्षक परमधर्मिष्ठ यमराज भी धूमोर्णाके साथ दृष्टिगोचर हो रहे हैं। जल-जन्तुओंके स्वामी वरुणदेव अपनी पत्नी गौरीके साथ इस यज्ञमण्डपमें सुशोभित हैं। यक्षोंके राजा कुबेर भी अपनी पत्नीके साथ आये हैं। देवताओंके मुखस्वरूप अग्निदेवने भी यज्ञ-मण्डपमें पदार्पण किया है। वायु देवता अपने उनचास गणोंके साथ और लोक-पावन सूर्यदेव अपनी भार्या संज्ञाके साथ पधारे हैं। महान् यशस्वी चन्द्रमा भी सपत्नीक आये हैं। आठों वसु और दोनों अश्विनी-कुमार भी उपस्थित हैं। इनके सिवा वृक्ष, वनस्पति, गन्धर्व, अप्सराएँ, विद्याधर, भूतोंके समुदाय, वेताल, यक्ष, राक्षस, भयङ्कर कर्म करनेवाले पिशाच तथा दूसरे-दूसरे प्राण-धारी जीव भी यहाँ मौजूद हैं। भगवान् कश्यप, शिष्यों-

* होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा—इन चारोंके द्वारा सम्पन्न होनेवाले यज्ञको चातुर्होत्र कहते हैं।

सहित वसिष्ठजी, पुलस्त्य, पुलह, सनकादि महर्षि तथा भूमण्डलके समस्त पुण्यात्मा राजा यहाँ पधारे हैं। अधिक क्या कहूँ, ब्रह्माजीकी बनायी हुई सारी सृष्टि ही यहाँ आ पहुँची है। ये हमारी बहिनें हैं, ये भानजे हैं और ये बहनोई हैं। ये सब-के-सब अपनी-अपनी स्त्री, पुत्र और बान्धवोंके साथ यहाँ उपस्थित दिखायी देते हैं। आपने दान मानादिके द्वारा इन सबका यथावत् सत्कार किया है। केवल मेरे पति भगवान् शङ्कर ही इस यज्ञमण्डपमें नहीं पधारे हैं, उनके बिना यह सारा आयोजन मुझे सूना-सा ही जान पड़ता है। मैं समझती हूँ आपने मेरे पतिको निमन्त्रित नहीं किया है, निश्चय ही आप उन्हें भूल गये हैं। इसका क्या कारण है? मुझे सब बातें बताइये।

पुलस्त्यजी कहते हैं—प्रजापति दक्षने सतीके वचन सुने। सती उन्हें प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय थीं। उन्होंने पतिके स्नेहमें डूबी हुई परम सौभाग्यवती पतिव्रता सतीको गोदमें बिठा लिया और गम्भीर होकर कहा—'बेटी! सुनो, जिस कारणसे आज मैंने तुम्हारे पतिको निमन्त्रित नहीं किया है, वह सब ठीक-ठीक बताता हूँ। वे अपने शरीरमें राख लपेटे रहते हैं। त्रिशूल और दण्ड लिये नग धड़ग सदा श्मशानभूमिमें ही विचरा करते हैं। व्याघ्रचर्म पहनते और हाथीका चमड़ा ओढ़ते हैं। कंधेपर नरमुण्डोंकी माला और हाथमें खट्वाङ्ग—यही उनके आभूषण हैं। वे नागराज वासुकिको यज्ञोपवीतके रूपमें धारण किये रहते हैं और इसी रूपमें वे सदा इस पृथ्वीपर भ्रमण करते हैं। इसके सिवा और भी बहुत से घृणित कार्य तुम्हारे पति देवता करते रहते हैं। यह सब मेरे लिये बड़ी लज्जाकी बात है। भला, इन देवताओंके निकट वे उस अभद्र वेषमें कैसे बैठ सकते हैं। जैसा उनका वस्त्र है, उसे पहनकर वे इस यज्ञमण्डपमें आने योग्य नहीं हैं। बेटी! इन्हीं दोषोंके कारण तथा लोक-लज्जाके भयसे मैंने उन्हें नहीं बुलाया। जब यज्ञ समाप्त हो जायगा, तब मैं तुम्हारे पतिको ले आऊँगा और त्रिलोकीमें सबसे बढ़-चढ़कर उनकी पूजा करूँगा, साथ ही तुम्हारा भी यथावत् सत्कार करूँगा। अतः इसके लिये तुम्हें खेद या क्रोध नहीं करना चाहिये।'

भीष्म! प्रजापति दक्षके ऐसा कहनेपर सतीको बड़ा शोक हुआ, उनकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं। वे पिताकी निन्दा करती हुई बोलीं—'तात! भगवान् शङ्कर ही सम्पूर्ण जगत्के स्वामी हैं, वे ही सबसे श्रेष्ठ माने गये हैं। समस्त देवताओंको जो ये उत्तमोत्तम स्थान प्राप्त हुए हैं, ये सब परम बुद्धिमान् महादेवजीके ही दिये हुए हैं। भगवान् शिवमें जितने गुण हैं, उनका पूर्णतया वर्णन करनेमें ब्रह्माजीकी जिह्वा भी समर्थ नहीं है। वे ही सबके धाता (धारण करने वाले) और विधाता (नियामक) हैं। वे ही दिशाओंके पालक हैं। भगवान् रुद्रके प्रसादसे ही इन्द्रको स्वर्गका आधिपत्य प्राप्त हुआ है। यदि रुद्रमें देवत्व है, यदि वे सर्वत्र व्यापक और कल्याणस्वरूप हैं, तो इस सत्यके प्रभावसे शङ्करजी आपके यज्ञका विध्वंस कर डालें।'

इतना कहकर सती योगस्थ हो गयीं—उन्होंने ध्यान लगाया और अपने ही शरीरसे प्रकट हुई अग्निके द्वारा



अपनेको भस्म कर दिया। उस समय देवता, असुर, नाग, गन्धर्व और गुह्यक 'यह क्या! यह क्या!' कहते ही रह गये, किन्तु क्रोधमें भरी हुई सतीने गङ्गाके तटपर अपने देहका त्याग कर दिया। गङ्गाजीके पश्चिमी तटपर वह स्थान आज भी 'सौनक तीर्थ' के नामसे प्रसिद्ध है। भगवान् रुद्रने जब यह समाचार सुना, तब अपनी पत्नीकी मृत्युसे उन्हें बड़ा दुःख हुआ और उनके मनमें समस्त देवताओंके देखते-देखते उस यज्ञको नष्ट कर डालनेका विचार उत्पन्न हुआ। फिर तो उन्होंने दक्षयज्ञका विनाश करनेके लिये करोड़ों गणोंको आज्ञा दी। उनमें विनायक-सम्बन्धी ग्रह, भूत, प्रेत तथा

पिशाच—सब थे। यज्ञमण्डपमें पहुँचकर उन्होंने सब देवताओंको परास्त किया और उन्हें भगाकर उस यज्ञको तहस-नहस कर डाला। यज्ञ नष्ट हो जानेसे दक्षका सारा उत्साह जाता रहा। वे उद्योगशून्य होकर देवाधिदेव पिनाकधारी भगवान् शिवके पास डरते-डरते गये और इस प्रकार बोले—'देव! मैं आपके प्रभावको नहीं जानता था; आप देवताओंके प्रभु और ईश्वर हैं। इस जगत्के अधीश्वर भी आप ही हैं; आपने सम्पूर्ण देवताओंको जीत लिया। महेश्वर! अब मुझपर कृपा कीजिये और अपने सब गणोंको लौटाइये।'

दक्ष प्रजापतिने भगवान् शङ्करकी शरणमें जाकर जब इस प्रकार उनकी स्तुति और आराधना की, तब भगवान्ने कहा—'प्रजापते! मैंने तुम्हें यज्ञका पूरा-पूरा फल दे दिया। तुम अपनी सम्पूर्ण कामनाओंकी सिद्धिके लिये यज्ञका उत्तम फल प्राप्त करोगे।' भगवान्के ऐसा कहनेपर दक्षने उन्हें प्रणाम किया और सब गणोंके देखते-देखते वे अपने निवास-स्थानको चले गये। उस समय भगवान् शिव अपनी पत्नीके वियोगसे गङ्गाद्वारमें ही जाकर रहने लगे। 'हाय! मेरी प्रिया कहाँ चली गयी!' इस प्रकार कहते हुए वे सदा सतीके चिन्तनमें लगे रहते थे। तदनन्तर एक दिन देवर्षि नारद महादेवजीके समीप आये और इस प्रकार बोले—'देवेश्वर! आपकी पत्नी सतीदेवी, जो आपको प्राणोंके समान प्रिय थीं, देहत्यागके पश्चात् इस समय हिमवान्की कन्या होकर प्रकट हुई हैं। मेनाके गर्भसे उनका आविर्भाव हुआ है। वे लोकके तात्त्विक अर्थको जाननेवाली थीं। उन्होंने इस समय दूसरा शरीर धारण किया है।'

नारदजीकी बात सुनकर महादेवजीने ध्यानस्थ हो देखा कि सती अवतार ले चुकी हैं। इससे उन्होंने अपनेको कृत-कृत्य माना और स्वस्थचित्त होकर रहने लगे। फिर जब पार्वतीदेवी यौवनावस्थाको प्राप्त हुईं, तब शिवजीने पुनः उनके साथ विवाह किया। भीष्म! पूर्वकालमें जिस प्रकार दक्षका यज्ञ नष्ट हुआ था, उसका इस रूपमें मैंने तुमसे वर्णन किया है।

देवता, दानव, गन्धर्व, नाग और राक्षसोंकी उत्पत्तिका वर्णन

भीष्मजीने कहा—गुरुदेव! देवताओं, दानवों, गन्धर्वों, नागों और राक्षसोंकी उत्पत्तिका आप विस्तारके साथ वर्णन कीजिये।

पुलस्त्यजी बोले—कुरुनन्दन! कहते हैं पहलेके प्रजा-वर्गकी सृष्टि संकल्पसे, दर्शनसे तथा स्पर्श करनेसे होती थी; किन्तु प्रचेताओंके पुत्र दक्ष प्रजापतिके बाद मैथुनसे प्रजाकी उत्पत्ति होने लगी। दक्षने आदिमें जिस प्रकार प्रजाकी सृष्टि की, उसका वर्णन सुनो। जब वे [पहलेके नियमानुसार सङ्कल्प आदिसे] देवता, ऋषि और नागोंकी सृष्टि करने लगे किन्तु प्रजाकी वृद्धि नहीं हुई, तब उन्होंने मैथुनके द्वारा अपनी पत्नी वीरिणीके गर्भसे साठ कन्याओंको जन्म दिया। उनमेंसे उन्होंने दस धर्मको, तेरह कश्यपको, सत्ताईस चन्द्रमाको, चार अरिष्टनेमिको, दो भृगुपुत्रको, दो बुद्धिमान् कृशाश्वको तथा दो महर्षि अङ्गिराको ब्याह दीं। वे सब देवताओंकी जननी हुईं। उनके वंश-विस्तारका आरम्भसे ही वर्णन करता हूँ, सुनो। अरुन्धती, वसु, जामी, लंबा, भानु, मरुत्वती, सङ्कल्पा, मुहूर्ता, साध्या और विश्वा—ये दस धर्मकी पत्नियाँ बतायी गयी हैं। इनके पुत्रोंके नाम सुनो। विश्वाके गर्भसे विश्वेदेव हुए। साध्याने साध्य नामक देवताओंको जन्म दिया। मरुत्वतीसे मरुत्वान् नामक देवताओंकी उत्पत्ति हुई। वसुके पुत्र आठ वसु कहलाये। भानुसे भानु और मुहूर्तासे मुहूर्ताभिमानी देवता उत्पन्न हुए। लंबासे घोष, जामीसे नागवीथी नामकी कन्या तथा अरुन्धतीके गर्भसे पृथ्वीपर होनेवाले समस्त प्राणी उत्पन्न हुए। सङ्कल्पासे सङ्कल्पोंका जन्म हुआ। अब वसुकी सृष्टिका वर्णन सुनो। जो देवगण अत्यन्त प्रकाशमान और सम्पूर्ण दिशाओंमें व्यापक हैं, वे वसु कहलाते हैं; उनके नाम सुनो। आप, ध्रुव, सोम, धर, अनिल, अनल, प्रत्यूष और प्रभास—ये आठ वसु हैं। 'आप' के चार पुत्र हैं—शान्त, वैतण्ड, साम्ब और मुनिबभ्रु। ये सब यज्ञरक्षाके अधिकारी हैं। ध्रुवके पुत्र काल और सोमके पुत्र वर्चा हुए। धरके दो पुत्र हुए—द्रविण और हव्यवाह। अनिलके पुत्र प्राण, रमण और शिशिर थे। अनलके कई पुत्र हुए, जो प्रायः अग्निके समान गुणवाले थे। अग्निपुत्र कुमारका जन्म सरकंडोंमें हुआ। उनके शाख, उपशाख और नैगमेय—ये तीन पुत्र हुए। कृत्तिकाओंकी सन्तान होनेके कारण

कुमारको कार्तिकेय भी कहते हैं। प्रत्यूषके पुत्र देवल नामके मुनि हुए। प्रभासके प्रजापति विश्वकर्माका जन्म हुआ, जो शिल्पकलाके ज्ञाता हैं। वे महल, घर, उद्यान, प्रतिमा, आभूषण, तालाब, उपवन और कूप आदिका निर्माण करनेवाले हैं। देवताओंके कारीगर-वे ही हैं।

अजैकपाद, अहिर्बुध्न्य, विरूपाक्ष, रैवत, हर, बहुरूप, त्र्यम्बक, सावित्र, जयन्त, पिनाकी और अपराजित—ये ग्यारह रुद्र कहे गये हैं; ये गणोंके स्वामी हैं। इनके मानस सङ्कल्पसे उत्पन्न चौरासी करोड़ पुत्र हैं, जो रुद्रगण कहलाते हैं। वे श्रेष्ठ त्रिशूल धारण किये रहते हैं। उन सबको अविनाशी माना गया है। जो गणेश्वर सम्पूर्ण दिशाओंमें रहकर सबकी रक्षा करते हैं, वे सब सुरभिके गर्भसे उत्पन्न उन्हींके पुत्र पौत्रादि हैं। अब मैं कश्यपजीकी स्त्रियोंसे उत्पन्न पुत्र पौत्रोंका वर्णन करूँगा। अदिति, दिति, दनु, अरिष्टा, सुरसा, सुरभि, विनता, ताम्रा, क्रोधवशा, इरा, कद्रू, खसा और मुनि—ये कश्यपजीकी पत्नियोंके नाम हैं। इनके पुत्रोंका वर्णन सुनो। चाक्षुष मन्वन्तरमें जो तुषित नामसे प्रसिद्ध देवता थे, वे ही वैवस्वत मन्वन्तरमें बारह आदित्य हुए। उनके नाम हैं—इन्द्र, धाता, भग, त्वष्टा, मित्र, वरुण, अर्यमा, विवस्वान्, सविता, पूषा, अंशुमान् और विष्णु। ये सहस्रों किरणोंसे सुशोभित बारह आदित्य माने गये हैं। इन श्रेष्ठ पुत्रोंको देवी अदितिने मरीचिनन्दन कश्यपके अंशसे उत्पन्न किया था। कृशाश्व नामक ऋषिसे जो पुत्र हुए, उन्हें देव प्रहरण कहते हैं। ये देवगण प्रत्येक मन्वन्तर और प्रत्येक कल्पमें उत्पन्न एवं विलीन होते रहते हैं।

भीष्म! हमारे सुननेमें आया है कि दितिने कश्यपजीसे दो पुत्र प्राप्त किये, जिनके नाम थे—हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष। हिरण्यकशिपुसे चार पुत्र उत्पन्न हुए—प्रह्लाद, अनुह्लाद, संह्लाद और ह्लाद। प्रह्लादके चार पुत्र हुए—आयुष्मान्, शिबि, बाष्कलि और चौथा विरोचन। विरोचनको बलि नामक पुत्रकी प्राप्ति हुई। बलिके सौ पुत्र हुए। उनमें बाण जेठा था। गुणोंमें भी वह सबसे बढ़ा चढ़ा था। बाणके एक हजार बाँहें थीं तथा वह सब प्रकारके अस्त्र चलानेकी कलामें भी पूरा प्रवीण था। त्रिशूलधारी भगवान् शङ्कर उसकी तपस्यासे सन्तुष्ट होकर उसके नगरमें निवास करते थे। बाणासुरको 'महाकाल'की पदवी तथा साक्षात् पिनाकधारी भगवान् शिवकी समानता प्राप्त हुई—वह महादेवजीका सहचर हुआ। हिरण्याक्षके उलूक, शकुनि, भूतसन्तापन और महाभीम—ये चार पुत्र थे। इनसे सत्ताईस करोड़ पुत्र-पौत्रोंका विस्तार हुआ। वे सभी महाबली, अनेक-रूपधारी तथा अत्यन्त तेजस्वी थे। दनुने कश्यपजीसे सौ पुत्र प्राप्त किये। वे सभी वरदान पाकर उन्मत्त थे। उनमें सबसे ज्येष्ठ और अधिक बलवान् विप्रचित्ति था। दनुके शेष पुत्रोंके नाम स्वर्भानु और वृषपर्वा आदि थे। स्वर्भानुसे सुप्रभा और पुलोमा नामक दानवसे शची नामकी कन्या हुई। मयके तीन कन्याएँ हुईं—उपदानवी, मन्दोदरी और कुहू। वृषपर्वाके दो कन्याएँ थीं—सुन्दरी शर्मिष्ठा और चन्द्रा। वैश्वानरके भी दो पुत्रियाँ थीं—पुलोमा और कालका। ये दोनों ही बड़ी शक्तिशालिनी तथा अधिक सन्तानोंकी जननी हुईं। इन दोनोंसे साठ हजार दानवोंकी उत्पत्ति हुई। पुलोमाके पुत्र पौलोम और कालकाके कालखञ्ज (या कालकेय) कहलाये। ब्रह्माजीसे वरदान पाकर ये मनुष्योंके लिये अवध्य हो गये थे और हिरण्यपुरमें निवास करते थे, फिर भी ये अर्जुनके हाथसे मारे गये।*

विप्रचित्तिने सिंहिकाके गर्भसे एक भयङ्कर पुत्रको जन्म दिया, जो सैंहिकेय (राहु) के नामसे प्रसिद्ध था। हिरण्यकशिपुकी बहिन सिंहिकाके कुल तेरह पुत्र थे, जिनके नाम ये हैं—कंस, शङ्ख, नल, वातापि, इल्वल, नमुचि, खसृम, अञ्जन, नरक, कालनाभ, परमाणु, कल्पवीर्य तथा दनुवंशविवर्धन। संह्लाद दैत्यके वंशमें निवातकवचोंका जन्म हुआ। वे गन्धर्व, नाग, राक्षस एवं सम्पूर्ण प्राणियोंके लिये अवध्य थे। परन्तु वीरवर अर्जुनने संग्राम भूमिमें उन्हें भी बलपूर्वक मार डाला। ताम्राने कश्यपजीके वीर्यसे छ कन्याओंको जन्म दिया, जिनके नाम हैं—शुकी, श्येनी, भासी, सुग्रीवी, गृध्रिका और शुचि। शुकीने शुक और उलूक नामवाले पक्षियोंको उत्पन्न किया। श्येनीने श्येनों (बाजों) को तथा भासीने कुरर नामक पक्षियोंको जन्म दिया। गृध्रीसे गृध्र और सुग्रीवीसे कबूतर उत्पन्न हुए तथा शुचिने हंस, सारस, कारण्ड एवं प्लव नामके पक्षियोंको जन्म दिया। यह ताम्राके वंशका वर्णन हुआ। अब विनताकी सन्तानोंका वर्णन सुनो। पक्षियोंमें श्रेष्ठ गरुड और अरुण विनताके पुत्र हैं तथा उनके एक सौदामनी नामकी कन्या भी है, जो यह आकाशमें चमकती दिखायी देती है। अरुणके दो पुत्र हुए—सम्पाति और जटायु। सम्पातिके पुत्रोंका नाम बभ्रु और शीघ्रग हैं। इनमें शीघ्रग

* यहाँ तथा आगेके प्रसङ्गोंमें भी पुलस्त्यजी भविष्यकी बात भूतकालकी भाँति कह रहे हैं—यही समझना चाहिये।

विख्यात हैं। जटायुके भी दो पुत्र हुए—कर्णिकार और शतगामी। ये दोनों ही प्रसिद्ध थे। इन पक्षियोंके असंख्य पुत्र-पौत्र हुए।

सुरसाके गर्भसे एक हजार सर्पोंकी उत्पत्ति हुई तथा उत्तम व्रतका पालन करनेवाली कद्रूने हजार मस्तकवाले एक सहस्र नागोंको पुत्रके रूपमें प्राप्त किया। उनमें छब्बीस नाग प्रधान एवं विख्यात हैं—शेष, वासुकि, कर्कोटक, शङ्ख, ऐरावत, कम्बल, धनञ्जय, महानील, पद्म, अश्वतर, तक्षक, एलापत्र, महापद्म, धृतराष्ट्र, बलाहक, शङ्खपाल, महाशङ्ख, पुष्पदन्त, सुभावन, शङ्खरोमा, नहुष, रमण, पाणिनि, कपिल, दुर्मुख तथा पतञ्जलिमुख। इन सबके पुत्र-पौत्रोंकी संख्याका अन्त नहीं है। इनमेंसे अधिकांश नाग पूर्वकालमें राजा जनमेजयके यज्ञ-मण्डपमें जला दिये गये। क्रोधवशाने अपने ही नामके क्रोधवशसंज्ञक राक्षससमूहको उत्पन्न किया। उनकी बड़ी-बड़ी दाढ़ें थीं। उनमेंसे दस लाख क्रोधवश भीमसेनके हाथसे मारे गये। सुरभिने कश्यपजीके अंशसे रुद्रगण, गाय, भैंस तथा सुन्दरी स्त्रियोंको जन्म दिया। मुनिसे मुनियोंका समुदाय तथा अप्सराएँ प्रकट हुईं। अरिष्टाने बहुत-से किन्नरों और गन्धर्वोंको जन्म दिया। इरासे तृण, वृक्ष, लताएँ और झाड़ियाँ—इन सबकी उत्पत्ति हुई। खसाने करोड़ों राक्षसों और यक्षोंको जन्म दिया। भीष्म! ये सैकड़ों और हजारों कोटियाँ कश्यपजीकी सन्तानोंकी हैं। यह स्वारोचिष मन्वन्तरकी सृष्टि बतायी गयी है। सबसे पीछे दितिने कश्यपजीसे उनचास मरुद्गणोंको उत्पन्न किया, जो सब-के-सब धर्मके ज्ञाता और देवताओंके प्रिय हैं।

मरुद्गणोंकी उत्पत्ति, भिन्न-भिन्न समुदायके राजाओं तथा चौदह मन्वन्तरोंका वर्णन

भीष्मजीने पूछा—ब्रह्मन्! दितिके पुत्र मरुद्गणोंकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई? वे देवताओंके प्रिय कैसे हो गये? देवता तो दैत्योंके शत्रु हैं, फिर उनके साथ मरुद्गणोंकी मैत्री क्योंकर सम्भव हुई?

पुलस्त्यजीने कहा—भीष्म! पहले देवासुर-संग्राममें भगवान् श्रीविष्णु और देवताओंके द्वारा अपने पुत्र-पौत्रोंके मारे जानेपर दितिको बड़ा शोक हुआ। वे आर्त्त होकर परम उत्तम भूलोकमें आयीं और सरस्वतीके तटपर पुष्कर नामके शुभ एवं महान् तीर्थमें रहकर सूर्यदेवकी आराधना करने लगीं। उन्होंने बड़ी उग्र तपस्या की। दैत्य-माता दिति ऋषियोंके नियमोंका पालन करतीं और फल खाकर रहती थीं। वे कृच्छ्र-चान्द्रायण आदि कठोर व्रतोंके पालनद्वारा तपस्या करने लगीं। जरा और शोकसे व्याकुल होकर उन्होंने सौ वर्षोंसे कुछ अधिक कालतक तप किया। उसके बाद वसिष्ठ आदि महर्षियोंसे पूछा—'मुनिवरो! क्या कोई ऐसा भी व्रत है, जो मेरे पुत्रशोकको नष्ट करनेवाला तथा इहलोक और परलोकमें भी सौभाग्यरूप फल प्रदान करनेवाला हो? यदि हो तो, बताइये।' वसिष्ठ आदि महर्षियोंने ज्येष्ठकी पूर्णिमाका व्रत बताया तथा दितिने भी उस व्रतका साङ्गोपाङ्ग वर्णन सुनकर उसका यथावत् अनुष्ठान किया। उस व्रतके माहात्म्यसे प्रभावित होकर कश्यपजी बड़ी प्रसन्नताके साथ दितिके आश्रमपर आये। दितिका शरीर तपस्यासे कठोर हो गया था। किन्तु कश्यपजीने उन्हें पुनः रूप और लावण्यसे युक्त कर दिया और उनसे वर माँगनेका अनुरोध किया। तब दितिने वर माँगते हुए कहा—'भगवन्! मैं इन्द्रका वध करनेके लिये एक ऐसे पुत्रकी याचना करती हूँ, जो समृद्धिशाली, अत्यन्त तेजस्वी तथा समस्त देवताओंका संहार करनेवाला हो।'

कश्यपने कहा—'शुभे! मैं तुम्हें इन्द्रका घातक एवं बलिष्ठ पुत्र प्रदान करूँगा।' तत्पश्चात् कश्यपने दितिके उदरमें गर्भ स्थापित किया और कहा—'देवि! तुम्हें सौ वर्षोंतक इसी तपोवनमें रहकर इस गर्भकी रक्षाके लिये यत्न करना चाहिये। गर्भिणीको सन्ध्याके समय भोजन नहीं करना चाहिये तथा वृक्षकी जड़के पास न तो कभी जाना चाहिये और न ठहरना ही चाहिये। वह जलके भीतर न घुसे, सूने घरमें न प्रवेश करे। बाँबीपर खड़ी न हो। कभी मनमें उद्वेग न लाये। सूने घरमें बैठकर नख अथवा राखसे भूमिपर रेखा न खींचे, न तो सदा अलसाकर पड़ी रहे और न अधिक परिश्रम ही करे। भूसी, कोयले, राख, हड्डी और खपड़ेपर न बैठे। लोगोंसे कलह करना छोड़ दे, अँगड़ाई न ले, बाल खोलकर खड़ी न हो और कभी भी अपवित्र न रहे। उत्तरकी ओर अथवा नीचे सिर करके कभी न सोये। नंगी होकर, उद्वेगमें

धोये भी शयन करना मना है। अमङ्गलयुक्त वचन मुँहसे न निकाले, अधिक हँसी मजाक भी न करे। गुरुजनोंके साथ सदा आदरका बर्ताव करे, माङ्गलिक कार्योंमें लगी रहे, सर्वौषधियोंसे युक्त जलके द्वारा स्नान करे। अपनी रक्षाका प्रबन्ध रखे। गुरुजनोंकी सेवा करे और वाणीसे सबका सत्कार करती रहे। स्वामीके प्रिय और हितमें तत्पर रहकर सदा प्रसन्नमुखी बनी रहे। किसी भी अवस्थामें कभी पतिकी निन्दा न करे।'

यह कहकर कश्यपजी सब प्राणियोंके देखते देखते वहाँसे अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर, पतिकी बातें सुनकर दिति विधि पूर्वक उनका पालन करने लगीं। इससे इन्द्रको बड़ा भय हुआ। वे देवलोक छोड़कर दितिके पास आये और उनकी सेवाकी इच्छासे वहाँ रहने लगे। इन्द्रका भाव विपरीत था, वे दितिका छिद्र ढूँढ रहे थे। बाहरसे तो उनका मुख प्रसन्न था, किन्तु भीतरसे वे भयके मारे विकल थे। वे ऊपरसे ऐसा भाव जताते थे, मानो दितिके कार्य और अभिप्रायको जानते ही न हों। परन्तु वास्तवमें अपना काम बनाना चाहते थे। तदनन्तर, जब सौ वर्षकी समाप्तिमें तीन ही दिन बाकी रह गये, तब दितिको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे अपनेको कृतार्थ मानने लगीं तथा उनका हृदय विस्मयविमुग्ध रहने लगा। उस दिन वे पैर धोना भूल गयीं और बाल खोले हुए ही सो गयीं। इतना ही नहीं, निद्राके भारसे दबी होनेके कारण दिनमें उनका सिर कभी नीचेकी ओर हो गया। यह अवसर पाकर शचीपति इन्द्र दितिके गर्भमें प्रवेश कर गये और अपने वज्रके द्वारा उन्होंने उस गर्भस्थ बालकके सात टुकड़े कर डाले। तब वे सातों टुकड़े सूर्यके समान तेजस्वी सात कुमारोंके रूपमें परिणत हो गये और रोने लगे। उस समय दानवशत्रु इन्द्रने उन्हें रोनेसे मना किया तथा पुनः उनमेंसे एक एकके सात सात टुकड़े कर दिये। इस प्रकार उनचास कुमारोंके रूपमें होकर वे जोर जोरसे रोने लगे। तब इन्द्रने 'मा रुदध्वम्' (मत रोओ) ऐसा कहकर उन्हें बारबार रोनेसे रोका और मन ही मन सोचा कि ये बालक धर्म और ब्रह्माजीके प्रभावसे पुनः जीवित हो गये हैं। इस पुण्यके योगसे ही इन्हें जीवन मिला है, ऐसा जानकर वे इस निश्चयपर पहुँचे कि 'यह पौर्णमासी व्रतका फल है। निश्चय ही इस व्रतका अथवा ब्रह्माजीकी पूजाका यह परिणाम है कि वज्रसे मारे जानेपर भी इनका विनाश नहीं हुआ। ये एकसे अनेक हो गये, फिर भी उदरकी रक्षा हो रही है। इसमें सन्देह नहीं कि ये अवध्य हैं, इसलिये ये देवता हो जायँ। जब ये रो रहे थे, उस समय मैंने इन गर्भके बालकोंको 'मा रुद' कहकर चुप कराया है, इसलिये ये 'मरुत्' नामसे प्रसिद्ध होकर कल्याणके भागी बनें।

ऐसा विचार कर इन्द्रने दितिसे कहा—'माँ! मेरा अपराध क्षमा करो, मैंने अर्थशास्त्रका सहारा लेकर यह दुष्कर्म किया है।' इस प्रकार बारबार कहकर उन्होंने दितिको प्रसन्न किया और मरुद्गणोंको देवताओंके समान बना दिया। तत्पश्चात् देवराजने पुत्रोंसहित दितिको विमानपर बिठाया और उनको साथ लेकर वे स्वर्गको चले गये। मरुद्गण यज्ञ भागके अधिकारी हुए, उन्होंने असुरोंसे मेल नहीं किया, इसलिये वे देवताओंके प्रिय हुए।

भीष्मजीने कहा—ब्रह्मन्! आपने आदिसर्ग और प्रतिसर्गका विस्तारके साथ वर्णन किया। अब जिनके जो स्वामी हों, उनका वर्णन कीजिये।

पुलस्त्यजी बोले—राजन्! जब पृथु इस पृथ्वीके सम्पूर्ण राज्यपर अभिषिक्त होकर सबके राजा हुए, उस समय ब्रह्माजीने चन्द्रमाको अन्न, ब्राह्मण, व्रत और तपस्याका अधिपति बनाया। हिरण्यगर्भको नक्षत्र, तारे, पक्षी, वृक्ष, झाड़ी और लता आदिका स्वामी बनाया। वरुणको जलका, कुबेरको धनका, विष्णुको आदित्योंका और अग्निको वसुओंका अधिपति बनाया। दक्षको प्रजापतियोंका, इन्द्रको देवताओंका, प्रह्लादको दैत्यों और दानवोंका, यमराजको पितरोंका, शूलपाणि भगवान् शङ्करको पिशाच, राक्षस, पशु, भूत, यक्ष और वेतालराजों का, हिमालयको पर्वतोंका, समुद्रको नदियोंका, चित्ररथको गन्धर्व, विद्याधर और किन्नरोंका, भयङ्कर पराक्रमी वासुकिको नागोंका, तक्षकको सर्पोंका, गजराज ऐरावतको दिग्गजोंका, गरुड़को पक्षियोंका, उच्चैःश्रवाको घोड़ोंका, सिंहको मृगोंका, साँड़को गौओंका तथा प्लक्ष (पाकर) को सम्पूर्ण वनस्पतियों का अधीश्वर बनाया। इस प्रकार पूर्वकालमें ब्रह्माजीने इन सभी अधिपतियोंको भिन्न भिन्न वर्गके राजपदपर अभिषिक्त किया था।

कौरवनन्दन! पहले स्वायम्भुव मन्वन्तरमें याम्य नामसे प्रसिद्ध देवता थे। मरीचि आदि मुनि ही सप्तर्षि माने जाते थे। आग्नीध्र, अग्निबाहु, विभु, सवन, ज्योतिष्मान्, द्युतिमान्, हव्य, मेधा, मेधातिथि और वसु—ये दस स्वायम्भुव मनुके पुत्र हुए, जिन्होंने अपने वंशका विस्तार किया। ये प्रतिसर्ग की सृष्टि करके परमपदको प्राप्त हुए। यह स्वायम्भुव

मन्वन्तरका वर्णन हुआ । इसके बाद स्वारोचिष मन्वन्तर आया । स्वारोचिष मनुके चार पुत्र हुए, जो देवताओंके समान तेजस्वी थे । उनके नाम हैं—नभ, नभस्य, प्रसृति और भावन । इनमेंसे भावन अपनी कीर्तिका विस्तार करनेवाला था । दत्तात्रेय, अत्रि, च्यवन, स्तम्ब, प्राण, कश्यप तथा बृहस्पति—ये सात सप्तर्षि हुए । उस समय तुषित नामके देवता थे । हवीन्द्र, सुकृत, मूर्ति, आप और ज्योतीरथ—ये वसिष्ठके पाँच पुत्र ही स्वारोचिष मन्वन्तरमें प्रजापति थे । यह द्वितीय मन्वन्तरका वर्णन हुआ । इसके बाद औत्तम मन्वन्तरका वर्णन करूँगा । तीसरे मनुका नाम था औत्तमि । उन्होंने दस पुत्र उत्पन्न किये, जिनके नाम हैं—ईष, ऊर्ज, तनूज, शुचि, शुक्र, मधु, माधव, नभस्य, नभ तथा सह । इनमें सह सबसे छोटा था । ये सब-के-सब उदार और यशस्वी थे । उस समय भानुसंज्ञक देवता और ऊर्ज नामके सप्तर्षि थे । कौकिभिण्डि, कुतुण्ड, दाल्भ्य, शङ्ख, प्रवाहित, मित और सम्मित—ये सात योगवर्धन ऋषि थे । चौथा मन्वन्तर तामसके नामसे प्रसिद्ध है । उसमें कवि, पृथु, अग्नि, अकपि, कपि, जन्य तथा धामा—ये सात मुनि ही सप्तर्षि थे । साध्यगण देवता थे । अकल्मष, तपोधन्वा, तपोमूल, तपोधन, तपोराशि, तपस्य, सुतपस्य, परन्तप, तपोभागी और तपोयोगी—ये दस तामस मनुके पुत्र थे, जो धर्म और सदाचारमें तत्पर तथा अपने वंशका विस्तार करनेवाले थे । अब पाँचवें रैवत मन्वन्तरका वृत्तान्त श्रवण करो । देवबाहु, सुबाहु, पर्जन्य, सोमप, मुनि, हिरण्यरोमा और सप्ताश्व—ये सात रैवत मन्वन्तरके सप्तर्षि माने गये हैं । भूतरजा तथा प्रकृति नामवाले देवता थे तथा वरुण, तत्त्वदर्शी, चितिमान्, हव्यप, कवि, मुक्त, निरुत्सुक, सत्त्व, विमोह और प्रकाशक—ये दस रैवत मनुके पुत्र हुए, जो धर्म, पराक्रम और बलसे सम्पन्न थे । इसके बाद चाक्षुष मन्वन्तरमें भृगु, सुधामा, विरज, विष्णु, नारद, विवस्वान् और अभिमानी—ये सात सप्तर्षि हुए । उस समय लेख नामसे प्रसिद्ध देवता थे । इनके सिवा ऋभु, पृथग्भूत, वारिमूल और दिवौका नामके देवता भी थे । इस प्रकार चाक्षुष मन्वन्तरमें देवताओंकी पाँच योनियाँ थीं । चाक्षुष मनुके दस पुत्र हुए, जो रुरु आदि नामसे प्रसिद्ध थे ।

अब सातवें मन्वन्तरका वर्णन करूँगा, जिसे वैवस्वत मन्वन्तर कहते हैं । इस समय [वैवस्वत मन्वन्तर ही चल रहा है, इसमें] अत्रि, वसिष्ठ, कश्यप, गौतम, योगी भरद्वाज, विश्वामित्र और जमदग्नि—ये सात ऋषि ही सप्तर्षि हैं । ये धर्मकी व्यवस्था करके परमपदको प्राप्त होते हैं । अब भविष्यमें होनेवाले सावर्ण्य मन्वन्तरका वर्णन किया जाता है । उस समय अश्वत्थामा, ऋष्यशृङ्ग, कौशिक्य, गालव, शतानन्द, काश्यप तथा परशुराम—ये सप्तर्षि होंगे । धृति, वरीयान्, यवसु, सुवर्ण, धृष्टि, चरिष्णु, आद्य, सुमति, वसु तथा पराक्रमी शुक्र—ये भविष्यमें होनेवाले सावर्णि मनुके पुत्र बतलाये गये हैं । इसके सिवा रौच्य आदि दूसरे-दूसरे मनुओंके भी नाम आते हैं । प्रजापति रुचिके पुत्रका नाम रौच्य होगा । इसी प्रकार भूतिके पुत्र भौत्य नामके मनु कहलायेंगे । तदनन्तर मेरुसावर्णि नामक मनुका अधिकार होगा । वे ब्रह्माके पुत्र माने गये हैं । मेरुसावर्णिके बाद क्रमशः ऋभु, वीतधामा और विष्वक्सेन नामक मनु होंगे । राजन् ! इस प्रकार मैंने तुम्हें भूत और भविष्य मनुओंका परिचय दिया है । इन चौदह मनुओंका अधिकार कुल मिलाकर एक हजार चतुर्युगतक रहता है । अपने-अपने मन्वन्तरमें इस सम्पूर्ण चराचर जगत्‌को उत्पन्न करके कल्पका संहार होनेपर ये ब्रह्माजीके साथ मुक्त हो जाते हैं । ये मनु प्रति एक सहस्र चतुर्युगीके बाद नष्ट होते रहते हैं तथा ब्रह्मा आदि विष्णुका सायुज्य प्राप्त करते हैं ।

पृथुके चरित्र तथा सूर्यवंशका वर्णन

भीष्मजीने पूछा—ब्रह्मन् ! सुना जाता है, पूर्वकालमें बहुत-से राजा इस पृथ्वीका उपभोग कर चुके हैं । पृथ्वीके सम्बन्धसे ही राजाओंको पार्थिव या पृथ्वीपति कहते हैं । परन्तु इस भूमिकी जो 'पृथ्वी' संज्ञा है, वह किसके सम्बन्धसे हुई है ? भूमिको यह पारिभाषिक संज्ञा किस लिये दी गयी अथवा उसका 'गौ' नाम भी क्यों पड़ा, यह मुझे बताइये ।

पुलस्त्यजीने कहा—स्वायम्भुव मनुके वंशमें एक अङ्ग नामके प्रजापति थे । उन्होंने मृत्युकी कन्या सुनीथाके साथ विवाह किया था । सुनीथाका मुख बड़ा कुरूप था । उससे वेन नामक पुत्र हुआ, जो सदा अधर्ममें ही लगा रहता था । वह लोगोंकी बुराई करता और परायी स्त्रियोंको हड़प लेता था । एक दिन महर्षियोंने उसकी भलाई और जगत्‌के उपकारके लिये उसे बहुत कुछ समझाया-बुझाया;

किन्तु उसका अन्तःकरण अशुद्ध होनेके कारण उसने उनकी बात नहीं मानी, प्रजाको अभयदान नहीं दिया। तब ऋषियोंने शाप देकर उसे मार डाला। फिर अराजकताके भयसे पीड़ित होकर पापरहित ब्राह्मणोंने वेनके शरीरका बलपूर्वक मन्थन किया। मन्थन करनेपर उसके शरीरसे पहले म्लेच्छ जातियाँ उत्पन्न हुईं, जिनका रंग काले अञ्जनके समान था। तत्पश्चात् उसके दाहिने हाथसे एक दिव्य तेजोमय शरीरधारी धर्मात्मा पुरुषका प्रादुर्भाव हुआ, जो धनुष, बाण और गदा धारण किये हुए थे तथा रत्नमय कवच एवं अङ्गदादि आभूषणोंसे विभूषित थे। वे पृथुके नामसे प्रसिद्ध हुए। उनके रूपमें साक्षात् भगवान् विष्णु ही अवतीर्ण हुए थे। ब्राह्मणोंने उन्हें राज्यपर अभिषिक्त किया। राजा होनेपर उन्होंने देखा कि इस भूतलसे धर्म उठ गया है। न कहीं स्वाध्याय होता है, न वषट्कार (यज्ञादि)। तब वे क्रोध करके अपने बाणसे पृथ्वीको विदीर्ण कर डालनेके लिये उद्यत हो गये। यह देख पृथ्वी गौका रूप धारण करके भाग खड़ी हुई। उसे भागते देख पृथुने भी उसका पीछा किया। तब वह एक स्थानपर खड़ी होकर बोली—'राजन्! मेरे लिये क्या आज्ञा होती है?' पृथुने कहा—'सुव्रते! सम्पूर्ण चराचर जगत्के लिये जो अभीष्ट वस्तु है, उसे शीघ्र प्रस्तुत करो।' पृथ्वीने 'बहुत अच्छा' कहकर स्वीकृति दे दी। तब राजाने स्वायम्भुव मनुको बछड़ा बनाकर अपने हाथमें पृथ्वीका दूध दुहा। वही दूध अन्न हुआ, जिससे सारी प्रजा जीवन धारण करती है। तत्पश्चात् ऋषियोंने भी भूमिरूपिणी गौका दोहन किया। उस समय चन्द्रमा ही बछड़ा बने थे। दुहनेवाले थे बृहस्पति, दुग्धका पात्र था वेद और तपस्या ही दूध थी। फिर देवताओंने भी वसुधाको दुहा। उस समय मित्र देवता दोग्धा हुए, इन्द्र बछड़ा बने तथा ओज और बल ही दूधके रूपमें प्रकट हुआ। देवताओंका दोहनपात्र सुवर्णका था और पितरोंका चाँदीका। पितरोंकी ओरसे अन्तकने दुहनेका काम किया, यमराज बछड़ा बने और स्वधा ही दूधके रूपमें प्राप्त हुई। नागोंने तूँबीको पात्र बनाया और तक्षकको बछड़ा। धृतराष्ट्रनामक नागने दोग्धा बनकर विषरूपी दुग्धका दोहन किया। असुरोंने लोहेके बर्तनमें इस पृथ्वीसे मायारूप दूध दुहा। उस समय प्रह्लादकुमार विरोचन बछड़ा बने थे और त्रिमूर्धाने दुहनेका काम किया था। यक्ष अन्तर्धान होनेकी विद्या प्राप्त करना चाहते थे, इसलिये उन्होंने कुबेरको बछड़ा बनाकर कच्चे बर्तनमें उस अन्तर्धान विद्याको ही वसुधासे दुग्धके रूपमें दुहा। गन्धर्वों और अप्सराओंने चित्ररथको बछड़ा बनाकर कमलके पत्तेमें पृथ्वीसे सुगन्धोंका दोहन किया। उनकी ओरसे अथर्ववेदके पारगामी विद्वान् सुरुचिने दूध दुहनेका कार्य किया था। इस प्रकार दूसरे लोगोंने भी अपनी-अपनी रुचिके अनुसार पृथ्वीसे आयु, धन और सुखका दोहन किया। पृथुके शासन-कालमें कोई भी मनुष्य न दरिद्र था न रोगी, न निर्धन था न पापी तथा न कोई उपद्रव था न पीड़ा। सब सदा प्रसन्न रहते थे। किसीको दुःख या शोक नहीं था। महाबली पृथुने लोगोंके हितकी इच्छासे अपने धनुषकी नोकसे बड़े-बड़े पर्वतोंको उखाड़कर हटा दिया और पृथ्वीको समतल बनाया। पृथुके राज्यमें गाँव बसाने या किले बनवानेकी आवश्यकता नहीं थी। किसीको शस्त्र धारण करनेका भी कोई प्रयोजन नहीं था। मनुष्योंको विनाश एवं वैषम्यका दुःख नहीं देखना पड़ता था। अर्थशास्त्रमें किसीका आदर नहीं था। सब लोग धर्ममें ही संलग्न रहते थे। इस प्रकार मैंने तुमसे पृथ्वीके दोहन-पात्रोंका वर्णन किया तथा जैसा-जैसा दूध दुहा गया था, वह भी बता दिया। राजा पृथु बड़े विज्ञ थे, जिनकी जैसी रुचि थी, उसीके अनुसार उन्होंने सबको दूध प्रदान किया। यह प्रसङ्ग यज्ञ और श्राद्ध सभी अवसरोंपर सुनानेके योग्य है, इसे मैंने तुम्हें सुना दिया। यह भूमि धर्मात्मा पृथुकी कन्या मानी गयी, इसीसे विद्वान् पुरुष 'पृथ्वी' कहकर इसकी स्तुति करते हैं।

भीष्मजीने कहा—ब्रह्मन्! आप तत्त्वके ज्ञाता हैं, अब क्रमशः सूर्यवंश और चन्द्रवंशका पूरा-पूरा एवं यथार्थ वर्णन कीजिये।

पुलस्त्यजीने कहा—राजन्! पूर्वकालमें कश्यपजीसे अदितिके गर्भसे विवस्वान् नामक पुत्र हुए। विवस्वान्के तीन स्त्रियाँ थीं—संज्ञा, राज्ञी और प्रभा। राज्ञीने रैवत नामका पुत्र उत्पन्न किया। प्रभासे प्रभातकी उत्पत्ति हुई। संज्ञा विश्वकर्माकी पुत्री थी। उसने वैवस्वत मनुको जन्म दिया। कुछ काल पश्चात् संज्ञाके गर्भसे यम और यमुना नामक दो जुड़वी सन्तानें पैदा हुईं। तदनन्तर वह विवस्वान् (सूर्य) के तेजोमय स्वरूपको न सह सकी, अतः उसने अपने शरीरसे अपने ही समान रूपवाली एक नारीको प्रकट किया। उसका नाम छाया हुआ। छाया सामने खड़ी होकर बोली—'देवि! मेरे लिये क्या आज्ञा है?' संज्ञाने कहा—'छाया! तुम मेरे स्वामीकी सेवा करो, साथ



ही मेरे बच्चोंका भी माताकी भाँति स्नेहपूर्वक पालन करना।' 'तथास्तु' कहकर छाया भगवान् सूर्यके पास गयी। वह उनसे अपनी कामना पूर्ण करना चाहती थी। सूर्यने भी यह समझकर कि यह उत्तम व्रतका पालन करनेवाली संज्ञा ही है बड़े आदरके साथ उसकी कामना की। छायाने सूर्यसे सावर्ण मनुको उत्पन्न किया। उनका वर्ण भी वैवस्वत मनुके समान होनेके कारण उनका नाम सावर्ण मनु पड़ गया। तत्पश्चात् भगवान् भास्करने छायाके गर्भसे क्रमशः शनैश्चर नामक पुत्र तथा तपती और विष्टि नामकी कन्याओंको जन्म दिया।

एक समय महायशस्वी यमराज वैराग्यके कारण पुष्कर तीर्थमें गये और वहाँ फल, फेन एवं वायुका आहार करते हुए कठोर तपस्या करने लगे। उन्होंने सौ वर्षोंतक तपस्याके द्वारा ब्रह्माजीकी आराधना की। उनके तपके प्रभावसे देवेश्वर ब्रह्माजी सन्तुष्ट हो गये; तब यमराजने उनसे लोकपालका पद, अक्षय पितृलोकका राज्य तथा धर्माधर्ममय जगत्की देख-रेखका अधिकार माँगा। इस प्रकार उन्हें ब्रह्माजीसे लोकपालपदवी प्राप्त हुई। साथ ही उन्हें पितृलोकका राज्य और धर्माधर्मके निर्णयका अधिकार भी मिल गया।

छायाके पुत्र शनैश्चर भी तपके प्रभावसे ग्रहोंकी समानताको प्राप्त हुए। यमुना और तपती—ये दोनों सूर्य-कन्याएँ नदी हो गयीं। विष्टिका स्वरूप बड़ा भयंकर था; वह कालरूपसे स्थित हुई। वैवस्वत मनुके दस महाबली पुत्र हुए, उन सबमें 'इल' ज्येष्ठ थे। शेष पुत्रोंके नाम इस प्रकार हैं—इक्ष्वाकु, कुशनाभ, अरिष्ट, धृष्ट, नरिष्यन्त, करूष, महाबली शर्याति, पृषध्र तथा नाभाग। ये सभी दिव्य मनुष्य थे। राजा मनु अपने ज्येष्ठ और धर्मात्मा पुत्र 'इल' को राज्यपर अभिषिक्त करके स्वयं पुष्करके तपोवनमें तपस्या करनेके लिये चले गये। तदनन्तर उनकी तपस्याको सफल करनेके लिये वरदाता ब्रह्माजी आये और बोले—'मनो! तुम्हारा कल्याण हो, तुम अपनी इच्छाके अनुसार वर माँगो।'

मनुने कहा—स्वामिन्! आपकी कृपासे पृथ्वीके सम्पूर्ण राजा धर्मपरायण, ऐश्वर्यशाली तथा मेरे अधीन हों। 'तथास्तु' कहकर देवेश्वर ब्रह्माजी वहीं अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर, मनु अपनी राजधानीमें आकर पूर्ववत् रहने लगे। इसके बाद राजा इल अर्थसिद्धिके लिये इस भूमण्डलपर विचरने लगे। वे सम्पूर्ण द्वीपोंमें घूम-घूमकर वहाँके राजाओंको अपने वशमें करते थे। एक दिन प्रतापी इल रथमें बैठकर भगवान् शङ्करके महान् उपवनमें गये, जो कल्पवृक्षकी लताओंसे व्याप्त एवं 'शरवण' के नामसे प्रसिद्ध था। उसमें देवाधिदेव चन्द्रार्धशेखर भगवान् शिव पार्वतीजीके साथ क्रीडा करते हैं। पूर्वकालमें महादेवजीने उमाके साथ 'शरवण' के भीतर प्रतिज्ञापूर्वक यह बात कही थी कि 'पुरुष नामधारी जो कोई भी जीव हमारे वनमें आ जायगा, वह इस दस योजनके घेरेमें पैर रखते ही स्त्रीरूप हो जायगा।' राजा इल इस प्रतिज्ञाको नहीं जानते थे, इसीलिये 'शरवण' में चले गये। वहाँ पहुँचनेपर वे सहसा स्त्री हो गये तथा उनका घोड़ा भी उसी समय घोड़ी बन गया। राजाके जो-जो पुरुषोचित अङ्ग थे, वे सभी स्त्रीके आकारमें परिणत हो गये। इससे उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। अब वे 'इला' नामकी स्त्री थे।

इला उस वनमें घूमती हुई सोचने लगी, 'मेरे माता-पिता और भ्राता कौन हैं?' वह इसी उधेड़-बुनमें पड़ी थी, इतनेमें ही चन्द्रमाके पुत्र बुधने उसे देखा। [इलाकी दृष्टि भी बुधके ऊपर पड़ी।] सुन्दरी इलाका मन बुधके रूपपर मोहित हो गया; उधर बुध भी उसे देखकर कामपीड़ित हो गये और उसकी प्राप्तिके लिये यत्न करने लगे। उस समय बुध ब्रह्मचारीके वेषमें थे। वे वनके बाहर पेड़ोंके झुरमुटमें छिपकर इलाको बुलाने लगे—'सुन्दरी! यह साँझका समय, विहारकी बेला है, जो बीती जा रही है; आओ, मेरे घरको लीप-पोतकर फूलोंसे सजा दो।' इला बोली—'तपोधन! मैं यह सब कुछ भूल गयी हूँ। बताओ, मैं कौन हूँ? तुम कौन हो? मेरे स्वामी कौन हैं तथा मेरे कुलका परिचय क्या है?' बुधने कहा—'सुन्दरी! तुम इला हो, मैं तुम्हें चाहनेवाला बुध हूँ। मैंने बहुत विद्या पढ़ी है। तेजस्वीके कुलमें मेरा जन्म हुआ है। मेरे पिता ब्राह्मणोंके राजा चन्द्रमा हैं।'

बुधकी यह बात सुनकर इलाने उनके घरमें प्रवेश किया। वह सब प्रकारके भोगोंसे सम्पन्न था और अपने वैभवसे इन्द्रभवनको मात कर रहा था। वहाँ रहकर इला बहुत समयतक बुधके साथ वनमें रमण करती रही। उधर इलके भाई इक्ष्वाकु आदि मनुकुमार अपने राजाकी खोज करते हुए उस शरवणके निकट आ पहुँचे। उन्होंने नाना प्रकारके स्तोत्रोंसे पार्वती और महादेवजीका स्तवन किया। तब वे दोनों प्रकट होकर बोले—'राजकुमारो! मेरी यह प्रतिज्ञा तो टल नहीं सकती; किन्तु इस समय एक उपाय हो सकता है। इक्ष्वाकु अश्वमेध यज्ञ करें और उसका फल हम दोनोंको

अर्पण कर दे। ऐसा करनेसे वीरवर इल 'किम्पुरुष' हो जायँगे, इसमें तनिक भी सन्देहकी बात नहीं है।'

'बहुत अच्छा, प्रभो!' यह कहकर मनुकुमार लौट गये। फिर इक्ष्वाकुने अश्वमेध यज्ञ किया। इससे इला 'किम्पुरुष' हो गयी। वे एक महीने पुरुष और एक महीने स्त्रीके रूपमें रहने लगे। बुधके भवनमें [स्त्रीरूपसे] रहते समय इलने गर्भ धारण किया था। उस गर्भसे उन्होंने अनेक गुणोंसे युक्त पुत्रको जन्म दिया। उस पुत्रको उत्पन्न करके बुध स्वर्गलोकको चले गये। वह प्रदेश इलके नामपर 'इलावृतवर्ष' के नामसे प्रसिद्ध हुआ। ऐल चन्द्रमाके वंशज तथा चन्द्रवंशका विस्तार करनेवाले राजा हुए। इस प्रकार इलाकुमार पुरूरवा चन्द्रवंशकी तथा राजा इक्ष्वाकु सूर्यवंशकी वृद्धि करनेवाले बताये गये हैं। 'इल' किम्पुरुष अवस्थामें 'सुद्युम्न' भी कहलाते थे। तदनन्तर सुद्युम्नसे तीन पुत्र और हुए, जो किसीसे परास्त होनेवाले नहीं थे। उनके नाम उत्कल, गय तथा हरिताश्व थे। हरिताश्व बड़े पराक्रमी थे। उत्कलकी राजधानी उत्कला (उड़ीसा) हुई और गयकी राजधानी गया मानी गयी है। इसी प्रकार हरिताश्वको कुरु प्रदेशके साथ ही साथ दक्षिण दिशाका राज्य दिया गया। सुद्युम्न अपने पुत्र पुरूरवाको प्रतिष्ठानपुर (पैठन) के राज्यपर अभिषिक्त करके स्वयं दिव्य वर्षके फलोंका उपभोग करनेके लिये इलावृतवर्षमें चले गये।

[सुद्युम्नके बाद] इक्ष्वाकु ही मनुके सबसे बड़े पुत्र थे। उन्हें मध्यदेशका राज्य प्राप्त हुआ। इक्ष्वाकुके सौ पुत्रोंमें पंद्रह श्रेष्ठ थे। वे मेरुके उत्तरीय प्रदेशमें राजा हुए। उनके सिवा एक सौ चौदह पुत्र और हुए, जो मेरुके दक्षिणवर्ती देशोंके राजा बताये गये हैं। इक्ष्वाकुके ज्येष्ठ पुत्रसे ककुत्स्थ नामक पुत्र हुआ। ककुत्स्थका पुत्र सुयोधन था। सुयोधनका पुत्र पृथु और पृथुका विश्वावसु हुआ। उसका पुत्र आर्द्र तथा आर्द्रका पुत्र युवनाश्व हुआ। युवनाश्वका पुत्र महापराक्रमी शावस्त हुआ, जिसने अङ्गदेशमें शावस्ती नामकी पुरी बसायी। शावस्तसे बृहदश्व और बृहदश्वसे कुवलाश्वका जन्म हुआ। कुवलाश्व धुन्धु नामक दैत्यका विनाश करके धुन्धुमारके नामसे विख्यात हुए। उनके तीन पुत्र हुए—दृढाश्व, दण्ड तथा कपिलाश्व। धुन्धुमारके पुत्रोंमें प्रतापी कपिलाश्व अधिक प्रसिद्ध थे। दृढाश्वका प्रमोद और प्रमोदका पुत्र हर्यश्व। हर्यश्वसे निकुम्भ और निकुम्भसे सहताश्वका जन्म हुआ। सहताश्वके दो पुत्र हुए—अकृताश्व तथा रणाश्व। रणाश्वके पुत्र युवनाश्व और युवनाश्वके मान्धाता थे। मान्धाताके तीन पुत्र हुए—पुरुकुत्स, धर्मसेतु तथा मुचुकुन्द। इनमें मुचुकुन्दकी ख्याति विशेष थी। वे इन्द्रके मित्र और प्रतापी राजा थे। पुरुकुत्सका पुत्र सम्भूत था, जिसका विवाह नर्मदाके साथ हुआ था। सम्भूतसे सम्भूति और सम्भूतिसे त्रिधन्वाका जन्म हुआ। त्रिधन्वाका पुत्र त्रैयारुण नामसे विख्यात हुआ। उसके पुत्रका नाम सत्यव्रत था। उससे सत्यरथका जन्म हुआ। सत्यरथके पुत्र हरिश्चन्द्र थे। हरिश्चन्द्रसे रोहित हुआ। रोहितसे वृक और वृकसे बाहुकी उत्पत्ति हुई। बाहुके पुत्र परम धर्मात्मा राजा सगर हुए। सगरकी दो स्त्रियाँ थीं—प्रभा और भानुमती। इन दोनोंने पुत्रकी इच्छासे और्व नामक अग्निकी आराधना की। इससे सन्तुष्ट होकर और्वने उन दोनोंको इच्छानुसार वरदान देते हुए कहा—'एक रानी साठ हजार पुत्र पा सकती है और दूसरीको एक ही पुत्र मिलेगा, जो वंशकी रक्षा करनेवाला होगा [इन दो वरोंमेंसे जिसको जो पसंद आवे, वह उसे ले ले]।' प्रभाने बहुत से पुत्रोंको लेना स्वीकार किया तथा भानुमतीको एक ही पुत्र—असमञ्जसकी प्राप्ति हुई। तदनन्तर प्रभाने, जो यदुकुलकी कन्या थी, साठ हजार पुत्रोंको उत्पन्न किया, जो अश्वकी खोजके लिये पृथ्वीको खोदते समय भगवान् विष्णुके अवतार महात्मा कपिलके कोपसे दग्ध हो गये। असमञ्जका पुत्र अंशुमान्‌के नामसे विख्यात हुआ। उसका पुत्र दिलीप था। दिलीपसे भगीरथका जन्म हुआ, जिन्होंने तपस्या करके भागीरथी गङ्गाको इस पृथ्वीपर उतारा था। भगीरथके पुत्रका नाम नाभाग हुआ। नाभागके अम्बरीष और अम्बरीषके पुत्र सिन्धुद्वीप हुए। सिन्धुद्वीपसे अयुतायु और अयुतायुसे ऋतुपर्णका जन्म हुआ। ऋतुपर्णसे कल्माषपाद और कल्माषपादसे सर्वकर्माकी उत्पत्ति हुई। सर्वकर्माका आरण्य और आरण्यका पुत्र निघ्न हुआ। निघ्नके दो उत्तम पुत्र हुए—अनुमित्र और रघु। अनुमित्र शत्रुओंका नाश करनेके लिये वनमें चला गया। रघुसे दिलीप और दिलीपसे अज हुए। अजसे दीर्घबाहु और दीर्घबाहुसे प्रजापालकी उत्पत्ति हुई। प्रजापालसे दशरथका जन्म हुआ। उनके चार पुत्र हुए। वे सब के सब भगवान् नारायणके स्वरूप थे। उनमें राम सबसे बड़े थे, जिन्होंने रावणको मारा और रघुवंशका विस्तार किया तथा भृगुवंशियोंमें श्रेष्ठ वाल्मीकिने रामायणके रूपमें जिनके चरित्रका चित्रण किया। रामके

दो पुत्र हुए—कुश और लव। ये दोनों ही इक्ष्वाकु-वंशका विस्तार करनेवाले थे। कुशसे अतिथि और अतिथिसे निषधका जन्म हुआ। निषधसे नल, नलसे नभा, नभासे पुण्डरीक और पुण्डरीकसे क्षेमधन्वाकी उत्पत्ति हुई। क्षेमधन्वाका पुत्र देवानीक हुआ। वह वीर और प्रतापी था। उसका पुत्र अहीनगु हुआ। अहीनगुसे सहस्राश्वका जन्म हुआ। सहस्राश्वसे चन्द्रावलोक, चन्द्रावलोकसे तारापीड, तारापीडसे चन्द्रगिरि, चन्द्रगिरिसे चन्द्र तथा चन्द्रसे श्रुतायु हुए, जो महाभारत-युद्धमें मारे गये। नल नामके दो राजा प्रसिद्ध हैं—एक तो वीरसेनके पुत्र थे और दूसरे निषधके। इस प्रकार इक्ष्वाकुवंशके प्रधान-प्रधान राजाओंका वर्णन किया गया।

पितरों तथा श्राद्धके विभिन्न अङ्गोंका वर्णन

भीष्मजीने कहा—भगवन्! अब मैं पितरोंके उत्तम वंशका वर्णन सुनना चाहता हूँ।

पुलस्त्यजी बोले—राजन्! बड़े हर्षकी बात है; मैं तुम्हें आरम्भसे ही पितरोंके वंशका वर्णन सुनाता हूँ, सुनो। स्वर्गमें पितरोंके सात गण हैं। उनमें तीन तो मूर्तिरहित हैं और चार मूर्तिमान्। ये सब-के-सब अमिततेजस्वी हैं। इनमें जो मूर्तिरहित पितृगण हैं, वे वैराज प्रजापतिकी सन्तान हैं; अतः वैराज नामसे प्रसिद्ध हैं। देवगण उनका यजन करते हैं। अब पितरोंकी लोक-सृष्टिका वर्णन करता हूँ, श्रवण करो। सोमपथ नामसे प्रसिद्ध कुछ लोक हैं, जहाँ कश्यपके पुत्र पितृगण निवास करते हैं। देवतालोग सदा उनका सम्मान किया करते हैं। अग्निष्वात्त नामसे प्रसिद्ध यज्वा पितृगण उन्हीं लोकोंमें निवास करते हैं। स्वर्गमें विभ्राज नामके जो दूसरे तेजस्वी लोक हैं, उनमें बर्हिषद्-संज्ञक पितृगण निवास करते हैं। वहाँ मोरोंसे जुते हुए हजारों विमान हैं तथा संकल्पमय वृक्ष भी हैं, जो संकल्पके अनुसार फल प्रदान करनेवाले हैं। जो लोग इस लोकमें अपने पितरोंके लिये श्राद्ध करते हैं, वे उन विभ्राज नामके लोकोंमें जाकर समृद्धिशाली भवनोंमें आनन्द भोगते हैं तथा वहाँ मेरे सैकड़ों पुत्र विद्यमान रहते हैं, जो तपस्या और योगबलसे सम्पन्न, महात्मा, महान् सौभाग्यशाली और भक्तोंको अभयदान देनेवाले हैं। मार्तण्डमण्डल नामक लोकमें मरीचिगर्भ नामके पितृगण निवास करते हैं। वे अङ्गिरा मुनिके पुत्र हैं और लोकमें हविष्मान् नामसे भी विख्यात हैं; वे राजाओंके पितर हैं और स्वर्ग तथा मोक्षरूप फल प्रदान करनेवाले हैं। तीर्थोंमें श्राद्ध करनेवाले श्रेष्ठ क्षत्रिय उन्हींके लोकमें जाते हैं। कामदुघ नामसे प्रसिद्ध जो लोक हैं, वे इच्छानुसार भोगकी प्राप्ति करानेवाले हैं। उनमें सुस्वध नामके पितर निवास करते हैं। लोकमें वे आज्यप नामसे विख्यात हैं और प्रजापति कर्दमके पुत्र हैं। पुलहके बड़े भाईसे उत्पन्न वैश्यगण उन पितरोंकी पूजा करते हैं। श्राद्ध करनेवाले पुरुष उस लोकमें पहुँचनेपर एक ही साथ हजारों जन्मोंके परिचित माता, भाई, पिता, सास, मित्र, सम्बन्धी तथा बन्धुओंका दर्शन करते हैं। इस प्रकार पितरोंके तीन गण बताये गये। अब चौथे गणका वर्णन करता हूँ। ब्रह्मलोकके ऊपर सुमानस नामके लोक स्थित हैं, जहाँ सोमप नामसे प्रसिद्ध सनातन पितरोंका निवास है। वे सब-के-सब धर्ममय स्वरूप धारण करनेवाले तथा ब्रह्माजीसे भी श्रेष्ठ हैं। स्वधासे उनकी उत्पत्ति हुई है। वे योगी हैं; अतः ब्रह्मभावको प्राप्त होकर सृष्टि आदि करके सब इस समय मानसरोवरमें स्थित हैं। इन पितरोंकी कन्या नर्मदा नामकी नदी है, जो अपने जलसे समस्त प्राणियोंको पवित्र करती हुई पश्चिम समुद्रमें जा मिलती है। उन सोमप नामवाले पितरोंसे ही सम्पूर्ण प्रजासृष्टिका विस्तार हुआ है, ऐसा जानकर मनुष्य सदा धर्मभावसे उनका श्राद्ध करते हैं। उन्हींके प्रसादसे योगका विस्तार होता है।

आदि सृष्टिके समय इस प्रकार पितरोंका श्राद्ध प्रचलित हुआ। श्राद्धमें उन सबके लिये चाँदीके पात्र अथवा चाँदीसे युक्त पात्रका उपयोग होना चाहिये। 'स्वधा' शब्दके उच्चारण-पूर्वक पितरोंके उद्देश्यसे किया हुआ श्राद्ध-दान पितरोंको सर्वदा सन्तुष्ट करता है। विद्वान् पुरुषोंको चाहिये कि वे अग्निहोत्री एवं सोमपायी ब्राह्मणोंके द्वारा अग्निमें हवन कराकर पितरोंको तृप्त करें। अग्निके अभावमें ब्राह्मणके हाथमें अथवा जलमें या शिवजीके स्थानके समीप पितरोंके निमित्त दान करे; ये ही पितरोंके लिये निर्मल स्थान हैं।

पितृकार्यमें दक्षिण दिशा उत्तम मानी गयी है। यज्ञोपवीतको अपसव्य अर्थात् दाहिने कंधेपर करके किया हुआ तर्पण, तिलदान तथा 'स्वधा' के उच्चारणपूर्वक किया हुआ श्राद्ध—ये सदा पितरोंको तृप्त करते हैं। कुश, उड़द, साठी धानका चावल, गायका दूध, मधु, गायका घी, सावाँ, अगहनीका चावल, जौ, तीनाका चावल, मूँग, गन्ना और सफेद फूल—ये सब वस्तुएँ पितरोंको सदा प्रिय हैं।

अब ऐसे पदार्थ बताता हूँ, जो श्राद्धमें सर्वदा वर्जित हैं। मसूर, सन, मटर, राजमाष, कुलथी, कमल, बिल्व, मदार, धतूरा, पारिभद्राट, रूषक, भेड़-बकरीका दूध, कोदो, दारवरट, कैथ, महुआ और अलसी—ये सब निषिद्ध हैं। अपनी उन्नति चाहनेवाले पुरुषको श्राद्धमें इन वस्तुओंका उपयोग कभी नहीं करना चाहिये। जो भक्तिभावसे पितरोंको प्रसन्न करता है, उसे पितर भी सन्तुष्ट करते हैं। वे पुष्टि, आरोग्य, सन्तान एवं स्वर्ग प्रदान करते हैं। पितृकार्य देवकार्यसे भी बढ़कर है, अतः देवताओंको तृप्त करनेसे पहले पितरोंको ही सन्तुष्ट करना श्रेष्ठ माना गया है। कारण, पितृगण शीघ्र ही प्रसन्न हो जाते हैं, सदा प्रिय वचन बोलते हैं, भक्तोंपर प्रेम रखते हैं और उन्हें सुख देते हैं। पितर पर्वोंके देवता हैं अर्थात् प्रत्येक पर्वपर पितरोंका पूजन करना उचित है। हविष्मान्‌संज्ञक पितरोंके अधिपति सूर्यदेव ही श्राद्धके देवता माने गये हैं।

भीष्मजीने कहा—ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ पुलस्त्यजी! आपके मुँहसे यह सारा विषय सुनकर मेरी इसमें बड़ी भक्ति हो गयी है, अतः अब मुझे श्राद्धका समय, उसकी विधि तथा श्राद्धका स्वरूप बतलाइये। श्राद्धमें कैसे ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये? तथा किनको छोड़ना चाहिये? श्राद्धमें दिया हुआ अन्न पितरोंके पास कैसे पहुँचता है? किस विधिसे श्राद्ध करना उचित है? और वह किस तरह उन पितरोंको तृप्त करता है?

पुलस्त्यजी बोले—राजन्! अन्न और जलसे अथवा दूध एवं फल-मूल आदिसे पितरोंको सन्तुष्ट करते हुए प्रतिदिन श्राद्ध करना चाहिये। श्राद्ध तीन प्रकारका होता है—नित्य, नैमित्तिक और काम्य। पहले नित्य श्राद्धका वर्णन करता हूँ। उसमें अर्घ्य और आवाहनकी क्रिया नहीं होती। उसे अदैव समझना चाहिये—उसमें विश्वेदेवोंको भाग नहीं दिया जाता। पर्वके दिन जो श्राद्ध किया जाता है, उसे पार्वण कहते हैं। पार्वण श्राद्धमें जो ब्राह्मण निमन्त्रित करने योग्य हैं, उनका वर्णन करता हूँ, श्रवण करो। जो पञ्चाग्निका सेवन करनेवाला, स्नातक, त्रिसौपर्ण[1], वेदके व्याकरण आदि छहों अङ्गोंका ज्ञाता, श्रोत्रिय (वेदज्ञ), श्रोत्रियका पुत्र, वेदके विधिवाक्योंका विशेषज्ञ, सर्वज्ञ (सब विषयोंका ज्ञाता), वेदका स्वाध्यायी, मन्त्र जपनेवाला, ज्ञानवान्, त्रिणाचिकेत[2], त्रिमधु[3], अन्य शास्त्रोंमें भी परिनिष्ठित, पुराणोंका विद्वान्, स्वाध्यायशील, ब्राह्मणभक्त, पिताकी सेवा करनेवाला, सूर्यदेवताका भक्त, वैष्णव, ब्रह्मवेत्ता, योगशास्त्रका ज्ञाता, शान्त, आत्मज्ञ, अत्यन्त शीलवान् तथा शिवभक्तिपरायण हो, ऐसा ब्राह्मण श्राद्धमें निमन्त्रण पानेका अधिकारी है। ऐसे ब्राह्मणोंको यत्नपूर्वक श्राद्धमें भोजन कराना चाहिये। अब जो लोग श्राद्धमें वर्जनीय हैं, उनका वर्णन सुनो। पतित, पतितका पुत्र, नपुंसक, चुगलखोर और अत्यन्त रोगी—ये सब श्राद्धके समय धर्मज्ञ पुरुषोंद्वारा त्याग देने योग्य हैं। श्राद्धके पहले दिन अथवा श्राद्धके ही दिन विनयशील ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करे। निमन्त्रण दिये हुए ब्राह्मणोंके शरीरमें पितरोंका आवेश हो जाता है। वे वायुरूपसे उनके भीतर प्रवेश करते हैं और ब्राह्मणोंके बैठनेपर स्वयं भी उनके साथ बैठे रहते हैं।

किसी ऐसे स्थानको, जो दक्षिण दिशाकी ओर नीचा हो, गोबरसे लीपकर वहाँ श्राद्ध आरम्भ करे अथवा गोशालामें या जलके समीप श्राद्ध करे। आहिताग्नि पुरुष पितरोंके लिये चरु (खीर) बनाये और यह कहकर कि इससे पितरोंका श्राद्ध करूँगा, वह सब दक्षिण दिशामें रख दे। तदनन्तर उसमें घृत और मधु आदि मिलाकर अपने सामनेकी ओर तीन निर्वापस्थान (पिण्डदानकी वेदियाँ) बनाये। उनकी लंबाई एक बित्ता और चौड़ाई चार अङ्गुलकी होनी चाहिये। साथ ही, खैरकी तीन दर्वी

---

१ 'ब्रह्ममेतु माम्' इत्यादि तीन अनुवाकोंका नियमपूर्वक अध्ययन करनेवाला त्रिसौपर्ण कहलाता है।

२ द्वितीय कठके अन्तर्गत 'अयं वाव यः पवते' इत्यादि तीन अनुवाकोंको त्रिणाचिकेत कहते हैं। उसका स्वाध्याय अथवा अनुष्ठान करनेवाला पुरुष भी त्रिणाचिकेत कहलाता है।

३ 'मधु वाता ऋतायते' इत्यादि तीनों ऋचाओंका पाठ और अनुगमन करनेवालेको त्रिमधु कहते हैं।

(कलछुल) बनवावे, जो चिकनी हों तथा जिनमें चाँदीका संसर्ग हो। उनकी लंबाई एक-एक रत्निकी[1] और आकार हाथके समान सुन्दर होना उचित है। जलपात्र, कांस्यपात्र, प्रोक्षण, समिधा, कुश, तिलपात्र, उत्तम वस्त्र, गन्ध, धूप, चन्दन—ये सब वस्तुएँ धीरे-धीरे दक्षिण दिशामें रखे। उस समय जनेऊ दाहिने कंधेपर होना चाहिये। इस प्रकार सब सामान एकत्रित करके घरके पूर्व गोबरसे लिपी हुई पृथ्वीपर गोमूत्रसे मण्डल बनावे और अक्षत तथा फूलसहित जल लेकर तथा जनेऊको क्रमशः बायें एवं दाहिने कंधेपर छोड़कर ब्राह्मणोंके पैर धोये तथा बारंबार उन्हें प्रणाम करे। तदनन्तर, विधिपूर्वक आचमन कराकर उन्हें बिछाये हुए दर्भयुक्त आसनोंपर बिठावे और उनसे मन्त्रोच्चारण करावे। सामर्थ्यशाली पुरुष भी देवकार्य (वैश्वदेव श्राद्ध) में दो और पितृकार्यमें तीन ब्राह्मणोंको ही भोजन कराये अथवा दोनों श्राद्धोंमें एक-एक ब्राह्मणको ही जिमाये। विद्वान् पुरुषको श्राद्धमें अधिक विस्तार नहीं करना चाहिये। पहले विश्वेदेव-सम्बन्धी और फिर पितृ-सम्बन्धी विद्वान् ब्राह्मणोंकी अर्घ्य आदिसे विधिवत् पूजा करे तथा उनकी आज्ञा लेकर अग्निमें यथाविधि हवन करे। विद्वान् पुरुष गृह्यसूत्रमें बतायी हुई विधिके अनुसार घृतयुक्त चरुका अग्नि और सोमकी तृप्तिके उद्देश्यसे समयपर हवन करे। इस प्रकार देवताओंकी तृप्ति करके वह श्राद्धकर्ता श्रेष्ठ ब्राह्मण साक्षात् अग्निका स्वरूप माना जाता है। देवताके उद्देश्यसे किया जानेवाला हवन आदि प्रत्येक कार्य जनेऊको बायें कंधेपर रखकर ही करना चाहिये। तत्पश्चात् पितरोंके निमित्त करनेयोग्य पर्युक्षण (सेचन) आदि सारा कार्य विज्ञ पुरुषको जनेऊको दायें कंधेपर करके—अपसव्य भावसे करना उचित है। हवन तथा विश्वेदेवोंको अर्पण करनेसे बचे हुए अन्नको लेकर उसके कई पिण्ड बनावे और एक-एक पिण्डको दाहिने हाथमें लेकर तिल और जलके साथ उसका दान करना चाहिये। संकल्पके समय जल-पात्रमें रखे हुए जलको बायें हाथकी सहायतासे दायें हाथमें ढाल लेना चाहिये। श्राद्धकालमें पूर्ण प्रयत्नके साथ अपने मन और इन्द्रियोंको काबूमें रखे और मात्सर्यका त्याग कर दे। [पिण्डदानकी विधि इस प्रकार है—] पिण्ड देनेके लिये बनायी हुई वेदियोंपर यत्नपूर्वक रेखा बनावे। इसके बाद अवनेजन-पात्रमें जल लेकर उसे रेखाङ्कित वेदीपर गिरावे। [यह अवनेजन अर्थात् स्नान-शोधनकी क्रिया है।] फिर दक्षिणाभिमुख होकर वेदीपर कुश बिछावे और एक-एक करके सब पिण्डोंको क्रमशः उन कुशोंपर रखे। उस समय [पिता-पितामह आदिमेंसे जिस-जिसके उद्देश्यसे पिण्ड दिया जाता हो, उस-उस] पितरके नाम-गोत्र आदिका उच्चारण करते हुए संकल्प पढ़ना चाहिये। पिण्डदानके पश्चात् अपने दायें हाथको पिण्डाधारभूत कुशोंपर पोंछना चाहिये। यह लेपभागभोजी पितरोंका भाग है। उस समय ऐसे ही मन्त्रका जप अर्थात् 'लेपभागभुजः पितरस्तृप्यन्तु' इत्यादि वाक्योंका उच्चारण करना उचित है। इसके बाद पुनः प्रत्यवनेजन करे अर्थात् अवनेजनपात्रमें जल लेकर उससे प्रत्येक पिण्डको नहलावे। फिर जलयुक्त पिण्डोंको नमस्कार करके श्राद्धकल्पोक्त वेद-मन्त्रोंके द्वारा पिण्डोंपर पितरोंका आवाहन करे और चन्दन, धूप आदि पूजन-सामग्रियोंके द्वारा उनकी पूजा करे। तत्पश्चात् आहवनीयादि अग्नियोंके प्रतिनिधिभूत एक-एक ब्राह्मणको जलके साथ एक-एक दर्वी[1] प्रदान करे। फिर विद्वान् पुरुष पितरोंके उद्देश्यसे पिण्डोंके ऊपर कुश रखे तथा पितरोंका विसर्जन करे। तदनन्तर, क्रमशः सभी पिण्डोंमेंसे थोड़ा-थोड़ा अंश निकालकर सबको एकत्र करे और ब्राह्मणोंको यत्नपूर्वक पहले वही भोजन करावे; क्योंकि उन पिण्डोंका अंश ब्राह्मण-लोग ही भोजन करते हैं। इसीलिये अमावास्याके दिन किये हुए पार्वण श्राद्धको 'अन्वाहार्य' कहा गया है। पहले अपने हाथमें पवित्रीसहित तिल और जल लेकर पिण्डोंके आगे छोड़ दे और कहे—'एषां स्वधा अस्तु' (ये पिण्ड स्वधा-स्वरूप हो जायँ)। इसके बाद परम पवित्र और उत्तम अन्न परोसकर उसकी प्रशंसा करते हुए उन ब्राह्मणोंको भोजन करावे। उस समय भगवान् श्रीनारायणका स्मरण करता रहे और क्रोधी स्वभावको सर्वथा त्याग दे। ब्राह्मणोंको तृप्त जानकर विकिरान्न दान करे; यह सब वर्णोंके लिये उचित है। विकिरान्न-दानकी विधि यह है। तिलसहित अन्न और जल लेकर उसे कुशके ऊपर पृथ्वीपर रख दे। जब ब्राह्मण आचमन कर लें तो पुनः पिण्डोंपर जल गिरावे। फूल, अक्षत, जल छोड़ना और स्वधावाचन आदि सारा कार्य पिण्डके ऊपर करे। पहले देवश्राद्धकी समाप्ति करके फिर पितृश्राद्धकी समाप्ति करे, अन्यथा श्राद्धका नाश हो जाता है। इसके बाद नतमस्तक होकर ब्राह्मणोंकी प्रदक्षिणा करके उनका विसर्जन करे।

यह आहिताग्नि पुरुषोंके लिये अन्वाहार्य पार्वण श्राद्ध

१. मुट्ठी बँधे हुए हाथकी लंबाईको रत्नि कहते हैं।

१. खदिर (खैर) की बनी हुई कलछुल।

पितृकार्यमें दक्षिण दिशा उत्तम मानी गयी है। यज्ञोपवीतको अपसव्य अर्थात् दाहिने कंधेपर करके किया हुआ तर्पण, तिलदान तथा 'स्वधा' के उच्चारणपूर्वक किया हुआ श्राद्ध—ये सदा पितरोंको तृप्त करते हैं। कुश, उड़द, साठी धानका चावल, गायका दूध, मधु, गायका घी, सावाँ, अगहनीका चावल, जौ, तीनाका चावल, मूँग, गन्ना और सफेद फूल—ये सब वस्तुएँ पितरोंको सदा प्रिय हैं।

अब ऐसे पदार्थ बताता हूँ, जो श्राद्धमें सर्वदा वर्जित हैं। मसूर, सन, मटर, राजमाष, कुल्थी, कमल, बिल्व, मदार, धतूरा, पारिभद्राट, रूपक, भेड़-बकरीका दूध, कोदो, दारवरट, कैथ, महुआ और अलसी—ये सब निषिद्ध हैं। अपनी उन्नति चाहनेवाले पुरुषको श्राद्धमें इन वस्तुओंका उपयोग कभी नहीं करना चाहिये। जो भक्ति भावसे पितरोंको प्रसन्न करता है, उसे पितर भी सन्तुष्ट करते हैं। वे पुष्टि, आरोग्य, सन्तान एवं स्वर्ग प्रदान करते हैं। पितृकार्य देवकार्यसे भी बढ़कर है, अतः देवताओंको तृप्त करनेसे पहले पितरोंको ही सन्तुष्ट करना श्रेष्ठ माना गया है। कारण, पितृगण शीघ्र ही प्रसन्न हो जाते हैं, सदा प्रिय वचन बोलते हैं, भक्तोंपर प्रेम रखते हैं और उन्हें सुख देते हैं। पितर पर्वोंके देवता हैं अर्थात् प्रत्येक पर्वपर पितरोंका पूजन करना उचित है। हविष्मान्संज्ञक पितरोंके अधिपति सूर्यदेव ही श्राद्धके देवता माने गये हैं।

भीष्मजीने कहा—ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ पुलस्त्यजी! आपके मुँहसे यह सारा विषय सुनकर मेरी इसमें बड़ी भक्ति हो गयी है, अतः अब मुझे श्राद्धका समय, उसकी विधि तथा श्राद्धका स्वरूप बतलाइये। श्राद्धमें कैसे ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये? तथा किनको छोड़ना चाहिये? श्राद्धमें दिया हुआ अन्न पितरोंके पास कैसे पहुँचता है? किस विधिसे श्राद्ध करना उचित है? और वह किस तरह उन पितरोंको तृप्त करता है?

पुलस्त्यजी बोले—राजन्! अन्न और जलसे अथवा दूध एवं फल-मूल आदिसे पितरोंको सन्तुष्ट करते हुए प्रतिदिन श्राद्ध करना चाहिये। श्राद्ध तीन प्रकारका होता है—नित्य, नैमित्तिक और काम्य। पहले नित्य श्राद्धका वर्णन करता हूँ। उसमें अर्घ्य और आवाहनकी क्रिया नहीं होती। उसे अदैव समझना चाहिये—उसमें विश्वेदेवोंको भाग नहीं दिया जाता। पर्वके दिन जो श्राद्ध किया जाता है, उसे पार्वण कहते हैं। पार्वण श्राद्धमें जो ब्राह्मण निमन्त्रित करने योग्य हैं, उनका वर्णन करता हूँ, श्रवण करो। जो पञ्चाग्निका सेवन करनेवाला, स्नातक, त्रिसौपर्ण[1], वेदके व्याकरण आदि छहों अङ्गोंका ज्ञाता, श्रोत्रिय (वेदज्ञ), श्रोत्रियका पुत्र, वेदके विधिवाक्योंका विशेषज्ञ, सर्वज्ञ (सब विषयोंका ज्ञाता), वेदका स्वाध्यायी, मन्त्र जपनेवाला, ज्ञानवान्, त्रिणाचिकेत[2], त्रिमधु[3], अन्य शास्त्रोंमें भी परिनिष्ठित, पुराणोंका विद्वान्, स्वाध्यायशील, ब्राह्मणभक्त, पिताकी सेवा करनेवाला, सूर्यदेवताका भक्त, वैष्णव, ब्रह्मवेत्ता, योगशास्त्रका ज्ञाता, शान्त, आत्मज्ञ, अत्यन्त शीलवान् तथा शिवभक्तिपरायण हो, ऐसा ब्राह्मण श्राद्धमें निमन्त्रण पानेका अधिकारी है। ऐसे ब्राह्मणोंको यत्नपूर्वक श्राद्धमें भोजन कराना चाहिये। अब जो लोग श्राद्धमें वर्जनीय हैं, उनका वर्णन सुनो। पतित, पतितका पुत्र, नपुंसक, चुगलखोर और अत्यन्त रोगी—ये सब श्राद्धके समय धर्मज्ञ पुरुषोंद्वारा त्याग देने योग्य हैं। श्राद्धके पहले दिन अथवा श्राद्धके ही दिन विनयशील ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करे। निमन्त्रण दिये हुए ब्राह्मणोंके शरीरमें पितरोंका आवेश हो जाता है। वे वायुरूपसे उनके भीतर प्रवेश करते हैं और ब्राह्मणोंके बैठनेपर स्वयं भी उनके साथ बैठे रहते हैं।

किसी ऐसे स्थानको, जो दक्षिण दिशाकी ओर नीचा हो, गोबरसे लीपकर वहाँ श्राद्ध आरम्भ करे अथवा गोशालामें या जलके समीप श्राद्ध करे। आहिताग्नि पुरुष पितरोंके लिये चरु (खीर) बनाये और यह कहकर कि इससे पितरोंका श्राद्ध करूँगा, वह सब दक्षिण दिशामें रख दे। तदनन्तर उसमें घृत और मधु आदि मिलाकर अपने सामनेकी ओर तीन निर्वापस्थान (पिण्डदानकी वेदियाँ) बनाये। उनकी लंबाई एक बित्ता और चौड़ाई चार अङ्गुलकी होनी चाहिये। साथ ही, खैरकी तीन दर्वी

१ 'ब्रह्ममेतु माम्' इत्यादि तीन अनुवाकोंका नियमपूर्वक अध्ययन करनेवाला त्रिसौपर्ण कहलाता है।

२ द्वितीय कठके अन्तर्गत 'अयं वाव यः पवते' इत्यादि तीन अनुवाकोंको त्रिणाचिकेत कहते हैं। उसका स्वाध्याय अथवा अनुष्ठान करनेवाला पुरुष भी त्रिणाचिकेत कहलाता है।

३ 'मधु वाता ऋतायते' इत्यादि तीनों ऋचाओंका पाठ और अनुगमन करनेवालेको त्रिमधु कहते हैं।

(कल्छुल) बनवावे, जो चिकनी हों तथा जिनमें चाँदीका संसर्ग हो। उनकी लंबाई एक-एक रत्नि[1]की और आकार हाथके समान सुन्दर होना उचित है। जलपात्र, कांस्यपात्र, प्रोक्षण, समिधा, कुश, तिलपात्र, उत्तम वस्त्र, गन्ध, धूप, चन्दन—ये सब वस्तुएँ धीरे-धीरे दक्षिण दिशामें रखे। उस समय जनेऊ दाहिने कंधेपर होना चाहिये। इस प्रकार सब सामान एकत्रित करके घरके पूर्व गोबरसे लिपी हुई पृथ्वीपर गोमूत्रसे मण्डल बनावे और अक्षत तथा फूलसहित जल लेकर तथा जनेऊको क्रमशः बायें एवं दाहिने कंधेपर छोड़कर ब्राह्मणोंके पैर धोये तथा बारंबार उन्हें प्रणाम करे। तदनन्तर, विधिपूर्वक आचमन कराकर उन्हें बिछाये हुए दर्भयुक्त आसनोंपर बिठावे और उनसे मन्त्रोच्चारण करावे। सामर्थ्यशाली पुरुष भी देवकार्य (वैश्वदेव श्राद्ध) में दो और पितृकार्यमें तीन ब्राह्मणोंको ही भोजन कराये अथवा दोनों श्राद्धोंमें एक-एक ब्राह्मणको ही जिमाये। विद्वान् पुरुषको श्राद्धमें अधिक विस्तार नहीं करना चाहिये। पहले विश्वेदेव-सम्बन्धी और फिर पितृ-सम्बन्धी विद्वान् ब्राह्मणोंकी अर्घ्य आदिसे विधिवत् पूजा करे तथा उनकी आज्ञा लेकर अग्निमें यथाविधि हवन करे। विद्वान् पुरुष गृह्यसूत्रमें बतायी हुई विधिके अनुसार घृतयुक्त चरुका अग्नि और सोमकी तृप्तिके उद्देश्यसे समयपर हवन करे। इस प्रकार देवताओंकी तृप्ति करके वह श्राद्धकर्ता श्रेष्ठ ब्राह्मण साक्षात् अग्निका स्वरूप माना जाता है। देवताके उद्देश्यसे किया जानेवाला हवन आदि प्रत्येक कार्य जनेऊको बायें कंधेपर रखकर ही करना चाहिये। तत्पश्चात् पितरोंके निमित्त करनेयोग्य पर्युक्षण (सेचन) आदि सारा कार्य विज्ञ पुरुषको जनेऊको दायें कंधेपर करके—अपसव्य भावसे करना उचित है। हवन तथा विश्वेदेवोंको अर्पण करनेसे बचे हुए अन्नको लेकर उसके कई पिण्ड बनावे और एक-एक पिण्डको दाहिने हाथमें लेकर तिल और जलके साथ उसका दान करना चाहिये। संकल्पके समय जल-पात्रमें रखे हुए जलको बायें हाथकी सहायतासे दायें हाथमें ढाल लेना चाहिये। श्राद्धकालमें पूर्ण प्रयत्नके साथ अपने मन और इन्द्रियोंको काबूमें रखे और मात्सर्यका त्याग कर दे। [पिण्डदानकी विधि इस प्रकार है—] पिण्ड देनेके लिये बनायी हुई वेदियोंपर यत्नपूर्वक रेखा बनावे। इसके बाद अवनेजन-पात्रमें जल लेकर उसे रेखाङ्कित वेदीपर गिरावे। [यह अवनेजन अर्थात् स्थान-शोधनकी क्रिया है।] फिर दक्षिणाभिमुख होकर वेदीपर कुश बिछावे और एक-एक करके सब पिण्डोंको क्रमशः उन कुशोंपर रखे। उस समय [पिता-पितामह आदिमेंसे जिस-जिसके उद्देश्यसे पिण्ड दिया जाता हो, उस-उस] पितरके नाम-गोत्र आदिका उच्चारण करते हुए संकल्प पढ़ना चाहिये। पिण्डदानके पश्चात् अपने दायें हाथको पिण्डाधारभूत कुशोंपर पोंछना चाहिये। यह लेपभागभोजी पितरोंका भाग है। उस समय ऐसे ही मन्त्रका जप अर्थात् 'लेपभागभुजः पितरस्तृप्यन्तु' इत्यादि वाक्योंका उच्चारण करना उचित है। इसके बाद पुनः प्रत्यवनेजन करे अर्थात् अवनेजनपात्रमें जल लेकर उससे प्रत्येक पिण्डको नहलावे। फिर जलयुक्त पिण्डोंको नमस्कार करके श्राद्धकल्पोक्त वेद-मन्त्रोंके द्वारा पिण्डोंपर पितरोंका आवाहन करे और चन्दन, धूप आदि पूजन-सामग्रियोंके द्वारा उनकी पूजा करे। तत्पश्चात् आहवनीयादि अग्नियोंके प्रतिनिधिभूत एक-एक ब्राह्मणको जलके साथ एक-एक दर्वी[1] प्रदान करे। फिर विद्वान् पुरुष पितरोंके उद्देश्यसे पिण्डोंके ऊपर कुश रखे तथा पितरोंका विसर्जन करे। तदनन्तर, क्रमशः सभी पिण्डोंमेंसे थोड़ा-थोड़ा अंश निकालकर सबको एकत्र करे और ब्राह्मणोंको यत्नपूर्वक पहले वही भोजन करावे; क्योंकि उन पिण्डोंका अंश ब्राह्मण-लोग ही भोजन करते हैं। इसीलिये अमावास्याके दिन किये हुए पार्वण श्राद्धको 'अन्वाहार्य' कहा गया है। पहले अपने हाथमें पवित्रीसहित तिल और जल लेकर पिण्डोंके आगे छोड़ दे और कहे—'एषां स्वधा अस्तु' (ये पिण्ड स्वधा-स्वरूप हो जायँ)। इसके बाद परम पवित्र और उत्तम अन्न परोसकर उसकी प्रशंसा करते हुए उन ब्राह्मणोंको भोजन करावे। उस समय भगवान् श्रीनारायणका स्मरण करता रहे और क्रोधी स्वभावको सर्वथा त्याग दे। ब्राह्मणोंको तृप्त जानकर विकिरान्न दान करे; यह सब वर्णोंके लिये उचित है। विकिरान्न-दानकी विधि यह है। तिलसहित अन्न और जल लेकर उसे कुशके ऊपर पृथ्वीपर रख दे। जब ब्राह्मण आचमन कर लें तो पुनः पिण्डोंपर जल गिरावे। फूल, अक्षत, जल छोड़ना और स्वधावाचन आदि सारा कार्य पिण्डके ऊपर करे। पहले देवश्राद्धकी समाप्ति करके फिर पितृश्राद्धकी समाप्ति करे, अन्यथा श्राद्धका नाश हो जाता है। इसके बाद नतमस्तक होकर ब्राह्मणोंकी प्रदक्षिणा करके उनका विसर्जन करे।

यह आहिताग्नि पुरुषोंके लिये अन्वाहार्य पार्वण श्राद्ध

१. मुट्ठी बँधे हुए हाथकी लंबाईको रत्नि कहते हैं।

१. खदिर (खैर) की बनी हुई कल्छुल।

बतलाया गया। अमावास्याके पर्वपर किये जानेके कारण यह पार्वण कहलाता है। यही नैमित्तिक श्राद्ध है। श्राद्धके पिण्ड गाय या बकरीको खिला दे अथवा ब्राह्मणोंको दे दे अथवा अग्नि या जलमें छोड़ दे। यह भी न हो तो खेतमें बिखेर दे अथवा जलकी धारामें बहा दे। [सन्तानकी इच्छा रखनेवाली] पत्नी विनीत भावसे आकर मध्यम अर्थात् पितामहके पिण्डको ग्रहण करे और उसे खा जाय। उस समय 'आधत्त पितरो गर्भम्' इत्यादि मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये। श्राद्ध और पिण्डदान आदिकी स्थिति तभीतक रहती है, जबतक ब्राह्मणोंका विसर्जन नहीं हो जाता। इनके विसर्जनके पश्चात् पितृकार्य समाप्त हो जाता है। उसके बाद बलिवैश्वदेव करना चाहिये। तदनन्तर अपने बन्धु-बान्धवोंके साथ पितरों द्वारा सेवित प्रसादस्वरूप अन्न भोजन करे। श्राद्ध करनेवाले यजमान तथा श्राद्धभोजी ब्राह्मण दोनोंको उचित है कि वे दुबारा भोजन न करें, राह न चलें, मैथुन न करें, साथ ही उस दिन स्वाध्याय, कलह और दिनमें शयन—इन सबको सर्वथा त्याग दें। इस विधिसे किया हुआ श्राद्ध धर्म, अर्थ और काम—तीनोंकी सिद्धि करनेवाला होता है। कन्या, कुम्भ और वृष राशिपर सूर्यके रहते कृष्णपक्षमें प्रतिदिन श्राद्ध करना चाहिये। जहाँ जहाँ सपिण्डीकरणरूप श्राद्ध करना हो, वहाँ अग्निहोत्र करनेवाले पुरुषको सदा इसी विधिसे करना चाहिये।

अब मैं ब्रह्माजीके बताये हुए साधारण श्राद्धका वर्णन करूँगा, जो भोग और मोक्षरूप फल प्रदान करनेवाला है। उत्तरायण और दक्षिणायनके प्रारम्भके दिन, विषुव नामक योग (तुला और मेषकी संक्रान्ति) में [जब कि दिन और रात बराबर होते हैं], प्रत्येक अमावास्याको, प्रति संक्रान्तिके दिन, अष्टका (पौष, माघ, फाल्गुन तथा आश्विन मासके कृष्णपक्षकी अष्टमी तिथि) में, पूर्णिमाको, आर्द्रा, मघा और रोहिणी—इन नक्षत्रोंमें, श्राद्धके योग्य उत्तम पदार्थ और सुपात्र ब्राह्मणके प्राप्त होनेपर, व्यतीपात, विष्टि और वैधृति योगके दिन, वैशाखकी तृतीयाको, कार्तिककी नवमीको, माघकी पूर्णिमा तथा भाद्रपदकी त्रयोदशी तिथिको भी श्राद्धका अनुष्ठान करना चाहिये। उपर्युक्त तिथियाँ युगादि कहलाती हैं। ये पितरोंका उपकार करनेवाली हैं। इसी प्रकार मन्वन्तरादि तिथियोंमें भी विद्वान् पुरुष श्राद्धका अनुष्ठान करे। आश्विन शुक्ला नवमी, कार्तिक शुक्ला द्वादशी, चैत्र तथा भाद्रपदकी शुक्ला तृतीया, फाल्गुनकी अमावास्या, पौषकी शुक्ला एकादशी, आषाढ शुक्ला दशमी, माघशुक्ला सप्तमी, श्रावण कृष्णा अष्टमी, आषाढ, कार्तिक, फाल्गुन और ज्येष्ठकी पूर्णिमा—इन तिथियोंको मन्वन्तरादि कहते हैं। ये दिये हुए दानको अक्षय कर देनेवाली हैं। विज्ञ पुरुषको चाहिये कि वैशाखकी पूर्णिमाको, ग्रहणके दिन, किसी उत्सवके अवसरपर और महालय (आश्विन कृष्णपक्ष) में तीर्थ, मन्दिर, गोशाला, द्वीप, उद्यान तथा घर आदिमें लिपे पुते एकान्त स्थानमें श्राद्ध करे।'

[अब श्राद्धके क्रमका वर्णन किया जाता है—] पहले विश्वेदेवोंके लिये आसन देकर जौ और पुष्पोंसे उनकी पूजा करे। [विश्वेदेवोंके दो आसन होते हैं, एकपर पिता पितामहादिसम्बन्धी विश्वेदेवोंका आवाहन होता है और दूसरेपर मातामहादिसम्बन्धी विश्वेदेवोंका।] उनके लिये दो अर्घ्य-पात्र (सिकोरे या दोने) जौ और जल आदिसे भर दे और उन्हें कुशकी पवित्रीपर रखे। 'शन्नोदेवीरभीष्टये' इत्यादि मन्त्रसे जल तथा 'यवोऽसि—' इत्यादिके द्वारा जौके दानोंको उन पात्रोंमें छोड़ना चाहिये। फिर गन्ध पुष्प आदिसे पूजा करके वहाँ विश्वेदेवोंकी स्थापना करे और 'विश्वे देवास—' इत्यादि दो मन्त्रोंसे विश्वेदेवोंका आवाहन करके उनके ऊपर जौ छोड़े। जौ छोड़ते समय इस प्रकार कहे—'जौ! तुम सब अन्नोंके राजा हो। तुम्हारे देवता वरुण हैं—वरुणसे ही तुम्हारी उत्पत्ति हुई है, तुम्हारे अदर मधुका मेल है। तुम सम्पूर्ण पापोंको दूर करनेवाले, पवित्र एवं मुनियोंद्वारा प्रशंसित अन्न हो।'* फिर अर्घ्यपात्रको चन्दन और फूलोंसे सजाकर 'या दिव्या आप —' इस मन्त्रको पढ़ते हुए विश्वेदेवोंको अर्घ्य दे। इसके बाद उनकी पूजा करके गन्ध आदि निवेदन कर पितृयज्ञ (पितृश्राद्ध) आरम्भ करे। पहले पिता आदिके लिये कुशके तीन आसनोंकी कल्पना करके फिर तीन अर्घ्यपात्रोंका पूजन करे—उन्हें पुष्प आदिसे सजावे। प्रत्येक अर्घ्यपात्रको कुशकी पवित्रीसे युक्त करके 'शन्नोदेवीरभीष्टये—' इस मन्त्रसे सबमें जल छोड़े। फिर 'तिलोऽसि सोमदेवत्यो—' इस मन्त्रसे तिल छोड़कर [बिना मन्त्रके ही] चन्दन और पुष्प आदि भी छोड़े। अर्घ्यपात्र पीपल आदिकी लकड़ीका, पत्तेका या चाँदीका बनवावे अथवा समुद्रसे निकले हुए शङ्ख आदिसे अर्घ्यपात्रका काम ले। सोने, चाँदी और ताँबेका पात्र पितरोंको अभीष्ट

---

* यवोऽसि धान्यराजस्त्वं वारुणो मधुमिश्रितः ।
निर्णोदः सर्वपापानां पवित्रमृषिसंस्तुतम् ॥

होता है। चाँदीकी तो चर्चा सुनकर भी पितर प्रसन्न हो जाते हैं। चाँदीका दर्शन अथवा चाँदीका दान उन्हें प्रिय है। यदि चाँदीके बने हुए अथवा चाँदीसे युक्त पात्रमें जल भी रखकर पितरोंको श्रद्धापूर्वक दिया जाय तो वह अक्षय हो जाता है। इसलिये पितरोंके पिण्डोंपर अर्घ्य चढ़ानेके लिये चाँदीका ही पात्र उत्तम माना गया है। चाँदी भगवान् श्रीशङ्करके नेत्रसे प्रकट हुई है, इसलिये वह पितरोंको अधिक प्रिय है।

इस प्रकार उपर्युक्त वस्तुओंमेंसे जो सुलभ हो, उसके अर्घ्यपात्र बनाकर उन्हें ऊपर बताये अनुसार जल, तिल और गन्ध-पुष्प आदिसे सुसज्जित करे; तत्पश्चात् 'या दिव्या आपः—' इस मन्त्रको पढ़कर पिताके नाम और गोत्र आदिका उच्चारण करके अपने हाथमें कुश ले ले। फिर इस प्रकार कहे—'पितॄन् आवाहयिष्यामि'—'पितरोंका आवाहन करूँगा।' तब निमन्त्रणमें आये हुए ब्राह्मण 'तथास्तु' कहकर श्राद्धकर्ताको आवाहनके लिये आज्ञा प्रदान करें। इस प्रकार ब्राह्मणोंकी अनुमति लेकर 'उशन्तस्त्वा निधीमहि—' 'आयन्तु नः पितरः—' इन दो ऋचाओंका पाठ करते हुए वह पितरोंका आवाहन करे। तदनन्तर, 'या दिव्या आपः—' इस मन्त्रसे पितरोंको अर्घ्य देकर प्रत्येकके लिये गन्ध-पुष्प आदि पूजोपचार एवं वस्त्र चढ़ावे तथा पृथक्-पृथक् संकल्प पढ़कर उन्हें समर्पित करे। [अर्घ्यदानकी प्रक्रिया इस प्रकार है—] पहले अनुलोम क्रमसे अर्थात् पिताके उद्देश्यसे दिये हुए अर्घ्यपात्रका जल पितामहके अर्घ्यपात्रमें डाले और फिर पितामहके अर्घ्यपात्रका सारा जल प्रपितामहके अर्घ्यपात्रमें डाल दे, फिर विलोमक्रमसे अर्थात् प्रपितामहके अर्घ्यपात्रको पितामहके अर्घ्यपात्रमें रखे और उन दोनों पात्रोंको उठाकर पिताके अर्घ्यपात्रमें रखे। इस प्रकार तीनों अर्घ्यपात्रोंको एक-दूसरेके ऊपर करके पिताके आसनके उत्तर भागमें 'पितृभ्यः स्थानमसि' ऐसा कहकर उन्हें ढुलका दे—उलटकर रख दे। ऐसा करके अन्न परोसनेका कार्य करे।

परोसनेके समय भी पहले अग्निकार्य करना चाहिये अर्थात् थोड़ा-सा अन्न निकालकर 'अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा' और 'सोमाय पितृमते स्वाहा'—इन दो मन्त्रोंसे अग्नि और सोम देवताके लिये अग्निमें दो बार आहुति डाले। इसके बाद दोनों हाथोंसे अन्न निकालकर परोसे। परोसते समय 'उशन्तस्त्वा निधीमहि—' इत्यादि मन्त्रका उच्चारण करता रहे। उत्तम, गुणकारी शाक आदि तथा नाना प्रकारके भक्ष्य पदार्थोंके साथ दही, दूध, गौका घृत और शक्कर आदिसे युक्त अन्न पितरोंके लिये तृप्तिकारक होता है। मधु मिलाकर तैयार किया हुआ कोई भी पदार्थ तथा गायका दूध और घी मिलायी हुई खीर आदि पितरोंके लिये दी जाय तो वह अक्षय होती है—ऐसा आदि देवता पितरोंने स्वयं अपने ही मुखसे कहा है। इस प्रकार अन्न परोसकर पितृसम्बन्धी ऋचाओंका पाठ सुनावे। इसके सिवा सभी तरहके पुराण; ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य और रुद्र-सम्बन्धी भाँति-भाँतिके स्तोत्र; इन्द्र, रुद्र और सोमदेवताके सूक्त; पावमानी ऋचाएँ; बृहद्रथन्तर; ज्येष्ठसामका गौरव-गान; शान्तिकाध्याय, मधुब्राह्मण, मण्डलब्राह्मण तथा और भी जो कुछ ब्राह्मणोंको तथा अपनेको प्रिय लगे वह सब सुनाना चाहिये। महाभारतका भी पाठ करना चाहिये; क्योंकि वह पितरोंको अत्यन्त प्रिय है। ब्राह्मणोंके भोजन कर लेनेपर जो अन्न और जल आदि शेष रहे, उसे उनके आगे जमीनपर बिखेर दे। यह उन जीवोंका भाग है, जो संस्कार आदिसे हीन होनेके कारण अधम गतिको प्राप्त हुए हैं।

ब्राह्मणोंको तृप्त जानकर उन्हें हाथ-मुँह धोनेके लिये जल प्रदान करे। इसके बाद गायके गोबर और गोमूत्रसे लिपी हुई भूमिपर दक्षिणाग्र कुश बिछाकर उनके ऊपर यत्नपूर्वक पितृयज्ञकी भाँति विधिवत् पिण्डदान करे। पिण्डदानके पहले पितरोंके नाम-गोत्रका उच्चारण करके उन्हें अवनेजनके लिये जल देना चाहिये। फिर पिण्ड देनेके बाद पिण्डोंपर प्रत्यवनेजनका जल गिराकर उनपर पुष्प आदि चढ़ाना चाहिये। सव्यापसव्यका विचार करके प्रत्येक कार्यका सम्पादन करना उचित है। पिताके श्राद्धकी भाँति माताका श्राद्ध भी हाथमें कुश लेकर विधिवत् सम्पन्न करे। दीप जलावे, पुष्प आदिसे पूजा करे। ब्राह्मणोंके आचमन कर लेनेपर स्वयं भी आचमन करके एक-एक बार सबको जल दे। फिर फूल और अक्षत देकर तिलसहित अक्षय्योदक दान करे। फिर नाम और गोत्रका उच्चारण करते हुए शक्तिके अनुसार दक्षिणा दे। गौ, भूमि, सोना, वस्त्र और अच्छे-अच्छे बिछौने दे। कृपणता छोड़कर पितरोंकी प्रसन्नताका सम्पादन करते हुए जो-जो वस्तु ब्राह्मणोंको, अपनेको तथा पिताको भी प्रिय हो, वही-वही वस्तु दान करे। तत्पश्चात् स्वधावाचन करके विश्वेदेवोंको जल अर्पण करे और ब्राह्मणोंसे आशीर्वाद ले। विद्वान् पुरुष पूर्वाभिमुख होकर कहे—'अघोराः पितरः सन्तु (मेरे पितर शान्त एवं मङ्गलमय हों)।' यजमानके ऐसा कहनेपर ब्राह्मणलोग

'तथा सन्तु (तुम्हारे पितर ऐसे ही हों)'—ऐसा कहकर अनुमोदन करें। फिर श्राद्धकर्ता कहे—'गोत्रं नो वर्धताम्' (हमारा गोत्र बढ़े)। यह सुनकर ब्राह्मणोंको 'तथास्तु' (ऐसा ही हो) इस प्रकार उत्तर देना चाहिये। फिर यजमान कहे—'दातारो मेऽभिवर्धन्ताम्, वेदा सन्ततिरेव च—एता सत्या आशिष स तु (मेरे दाता बढ़ें, साथ ही मेरे कुलमें वेदोंके अध्ययन और सुयोग्य सन्तानकी वृद्धि हो—ये सारे आशीर्वाद सत्य हों)'। यह सुनकर ब्राह्मण कहें—'सन्तु सत्या आशिष (ये आशीर्वाद सत्य हों)'। इसके बाद भक्तिपूर्वक पिण्डोंको उठाकर सूँघे और स्वस्तिवाचन करे। फिर भाई-बन्धु और स्त्री पुत्रके साथ प्रदक्षिणा करके आठ पग चले। तदनन्तर लौटकर प्रणाम करे। इस प्रकार श्राद्धकी विधि पूरी करके मन्त्रवेत्ता पुरुष अग्नि प्रज्वलित करनेके पश्चात् बलिवैश्वदेव तथा नैत्यिक बलि अर्पण करे। तदनन्तर भृत्य, पुत्र, बान्धव तथा अतिथियोंके साथ बैठकर वही अन्न भोजन करे, जो पितरोंको अर्पण किया गया हो। जिसका यज्ञोपवीत नहीं हुआ है, ऐसा पुरुष भी इस श्राद्धको प्रत्येक पर्वपर कर सकता है। इसे साधारण [या नैमित्तिक] श्राद्ध कहते हैं। यह सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है। राजन्! स्त्रीरहित या विदेशस्थित मनुष्य भी भक्तिपूर्ण हृदयसे इस श्राद्धका अनुष्ठान करनेका अधिकारी है। यही नहीं, शूद्र भी इसी विधिसे श्राद्ध कर सकता है, अन्तर इतना ही है कि वह वेदमन्त्रोंका उच्चारण नहीं कर सकता।

तीसरा अर्थात् काम्य श्राद्ध आभ्युदयिक है, इसे वृद्धि श्राद्ध भी कहते हैं। उत्सव और आनन्दके अवसरपर, संस्कारके समय, यज्ञमें तथा विवाह आदि माङ्गलिक कार्योंमें यह श्राद्ध किया जाता है। इसमें पहले माताओंकी अर्थात् माता, पितामही और प्रपितामहीकी पूजा होती है। इनके बाद पितरों—पिता, पितामह और प्रपितामहका पूजन किया जाता है। अन्तमें मातामह आदिकी पूजा होती है। अन्य श्राद्धोंकी भाँति इसमें भी विश्वेदेवोंकी पूजा आवश्यक है। दक्षिणावर्तक क्रमसे पूजोपचार चढ़ाना चाहिये। आभ्युदयिक श्राद्धमें दही, अक्षत, फल और जलसे ही पूर्वाभिमुख होकर पितरोंको पिण्डदान दिया जाता है। 'सम्पन्नम्' का उच्चारण करके अर्घ्य और पिण्डदान देना चाहिये। इसमें युगल ब्राह्मणोंको अर्घ्य दान दे तथा युगल (सपत्नीक) ब्राह्मणोंकी ही वस्त्र और सुवर्ण आदिके द्वारा पूजा करे। तिलका काम जौसे लेना चाहिये तथा सारा कार्य पूर्ववत् करना चाहिये। श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके द्वारा सब प्रकारके मङ्गलपाठ करावे। इस प्रकार शूद्र भी कर सकता है। यह वृद्धिश्राद्ध सबके लिये सामान्य है। बुद्धिमान् शूद्र 'पितृ नम' इत्यादि नमस्कार-मन्त्रके द्वारा ही दान आदि कार्य करे। भगवान्‌का कथन है कि शूद्रके लिये दान ही प्रधान है, क्योंकि दानसे उसकी समस्त कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं।

एकोद्दिष्ट आदि श्राद्धोंकी विधि तथा श्राद्धोपयोगी तीर्थोंका वर्णन

पुलस्त्यजी कहते हैं—राजन्! अब मैं एकोद्दिष्ट श्राद्धका वर्णन करूँगा, जिसे पूर्वकालमें ब्रह्माजीने बतलाया था। साथ ही यह भी बताऊँगा कि पिताके मरनेपर पुत्रोंको किस प्रकार अशौचका पालन करना चाहिये। ब्राह्मणोंमें मरणाशौच दस दिनतक रखनेकी आज्ञा है, क्षत्रियोंमें बारह दिन, वैश्योंमें पंद्रह दिन तथा शूद्रोंमें एक महीनेका विधान है। यह अशौच सपिण्ड (सात पीढ़ीतक) के प्रत्येक मनुष्यपर लागू होता है। यदि किसी बालककी मृत्यु चूडाकरणके पहले हो जाय तो उसका अशौच एक रातका कहा गया है। उसके बाद उपनयनके पहलेतक तीन राततक अशौच रहता है। जननाशौचमें भी सब वर्णोंके लिये यही व्यवस्था है। अस्थि सञ्चयनके बाद अशौचग्रस्त पुरुषके शरीरका स्पर्श किया जा सकता है। प्रेतके लिये बारह दिनोंतक प्रतिदिन पिण्ड दान करना चाहिये, क्योंकि वह उसके लिये पाथेय (राहखर्च) है, इसलिये उसे पाकर प्रेतको बड़ी प्रसन्नता होती है। द्वादशाहके बाद ही प्रेतको यमपुरीमें ले जाया जाता है, तबतक वह घरपर ही रहता है। अतः दस राततक प्रतिदिन उसके लिये आकाशमें दूध देना चाहिये, इससे सब प्रकारके दाहकी शान्ति होती है तथा मार्गके परिश्रमका भी निवारण होता है। दशाहके बाद ग्यारहवें दिन, जब कि सूतक निवृत्त हो जाता है, अपने गोत्रके ग्यारह ब्राह्मणोंको ही बुलाकर भोजन कराना चाहिये। अशौचकी समाप्तिके दूसरे दिन एकोद्दिष्ट श्राद्ध करे। इसमें न तो आवाहन होता है न अग्नौकरण (अग्निमें हवन)। विश्वे

देवोंका पूजन आदि भी नहीं होता। एक ही पवित्री, एक ही अर्घ और एक ही पिण्ड देनेका विधान है। अर्घ और पिण्ड आदि देते समय प्रेतका नाम लेकर 'तवोपतिष्ठताम्' (तुम्हें प्राप्त हो) ऐसा कहना चाहिये। तत्पश्चात् तिल और जल छोड़ना चाहिये। अपने किये हुए दानका जल ब्राह्मणके हाथमें देना चाहिये तथा विसर्जनके समय 'अभिरम्यताम्' कहना चाहिये। शेष कार्य अन्य श्राद्धोंकी ही भाँति जानना चाहिये। उस दिन विधिपूर्वक शय्यादान, फल-वस्त्रसमन्वित काञ्चनपुरुषकी पूजा तथा द्विज-दम्पतिका पूजन भी करना आवश्यक है।

एकादशाह श्राद्धमें कभी भोजन नहीं करना चाहिये। यदि भोजन कर ले तो चान्द्रायण व्रत करना उचित है। सुयोग्य पुत्रको पिताकी भक्तिसे प्रेरित होकर सदा ही एकोद्दिष्ट श्राद्ध करना चाहिये। एकादशाहके दिन वृषोत्सर्ग करे, उत्तम कपिला गौ दान दे और उसी दिनसे आरम्भ करके एक वर्षतक प्रतिदिन भक्ष्य-भोज्यके साथ तिल और जलसे भरा हुआ घड़ा दान करना चाहिये। [इसीको कुम्भदान कहते हैं।] तदनन्तर, वर्ष पूरा होनेपर सपिण्डीकरण श्राद्ध होना चाहिये। सपिण्डीकरणके बाद प्रेत [प्रेतत्वसे मुक्त होकर] पार्वणश्राद्धका अधिकारी होता है तथा गृहस्थके वृद्धिसम्बन्धी कार्योंमें आभ्युदयिक श्राद्धका भागी होता है। सपिण्डीकरण श्राद्ध देवश्राद्धपूर्वक करना चाहिये अर्थात् उसमें पहले विश्वेदेवोंकी, फिर पितरोंकी पूजा होती है। सपिण्डीकरणमें जब पितरोंका आवाहन करे तो प्रेतका आसन उनसे अलग रखे। फिर चन्दन, जल और तिलसे युक्त चार अर्घ्यपात्र बनावे तथा प्रेतके अर्घ्यपात्रका जल तीन भागोंमें विभक्त करके पितरोंके अर्घ्य-पात्रोंमें डाले। इसी प्रकार पिण्डदान करनेवाला पुरुष चार पिण्ड बनाकर 'ये समानाः-' इत्यादि दो मन्त्रोंके द्वारा प्रेतके पिण्डको तीन भागोंमें विभक्त करे [और एक-एक भागको पितरोंके तीन पिण्डोंमें मिला दे]। इसी विधिसे पहले अर्घ्यको और फिर पिण्डोंको सङ्कल्पपूर्वक समर्पित करे। तदनन्तर, वह चतुर्थ व्यक्ति अर्थात् प्रेत पितरोंकी श्रेणीमें सम्मिलित हो जाता है और अग्निष्वात्त आदि पितरोंके बीचमें बैठकर उत्तम अमृतका उपभोग करता है। इसलिये सपिण्डीकरण श्राद्धके बाद उस (प्रेत) को पृथक् कुछ नहीं दिया जाता। पितरोंमें ही उसका भाग भी देना चाहिये तथा उन्हींके पिण्डोंमें स्थित होकर वह अपना भाग ग्रहण करता है। तबसे लेकर जब-जब संक्रान्ति और ग्रहण आदि पर्व आवें, तब-तब तीन पिण्डोंका ही श्राद्ध करना चाहिये। केवल मृत्यु-तिथिको केवल उसीके लिये एकोद्दिष्ट श्राद्ध करना उचित है। पिताके क्षयाहके दिन जो एकोद्दिष्ट नहीं करता, वह सदाके लिये पिताका हत्यारा और भाईका विनाश करनेवाला माना गया है। क्षयाह-तिथिको [एकोद्दिष्ट न करके] पार्वणश्राद्ध करनेवाला मनुष्य नरकगामी होता है। मृत व्यक्तिको जिस प्रकार प्रेतयोनिसे छुटकारा मिले और उसे स्वर्गादि उत्तम लोकोंकी प्राप्ति हो, इसके लिये विधिपूर्वक आमश्राद्ध[1] करना चाहिये। कच्चे अन्नसे ही अग्नौकरणकी क्रिया करे और उसीसे पिण्ड भी दे। पहले या तीसरे महीनेमें भी जब मृत व्यक्तिका पिता आदि तीन पुरुषोंके साथ सपिण्डीकरण हो जाता है, तब प्रेतत्वके बन्धनसे उसकी मुक्ति हो जाती है। मुक्त होनेपर उससे लेकर तीन पीढ़ीतकके पितर सपिण्ड कहलाते हैं, तथा चौथा सपिण्डकी श्रेणीसे निकलकर लेपभागी हो जाता है। कुशमें हाथ पोंछनेसे जो अंश प्राप्त होता है, वही उसके उपभोगमें आता है। पिता, पितामह और प्रपितामह—ये तीन पिण्डभागी होते हैं; और इनसे ऊपर चतुर्थ व्यक्ति अर्थात् वृद्धप्रपितामहसे लेकर तीन पीढ़ीतकके पूर्वज लेपभागभोजी माने जाते हैं। [छः तो ये हुए,] इनमें सातवाँ है स्वयं पिण्ड देनेवाला पुरुष। ये ही सात पुरुष सपिण्ड कहलाते हैं।

भीष्मजीने पूछा—ब्रह्मन्! हव्य और कव्यका दान मनुष्योंको किस प्रकार करना चाहिये? पितृलोकमें उन्हें कौन ग्रहण करते हैं? यदि इस मर्त्यलोकमें ब्राह्मण श्राद्धके अन्नको खा जाते हैं अथवा अग्निमें उसका हवन कर दिया जाता है तो शुभ और अशुभ योनियोंमें पड़े हुए प्रेत उस अन्नको कैसे खाते हैं—उन्हें वह किस प्रकार मिल पाता है?

पुलस्त्यजी बोले—राजन्! पिता वसुके, पितामह रुद्रके तथा प्रपितामह आदित्यके स्वरूप हैं—ऐसी वेदकी श्रुति है। पितरोंके नाम और गोत्र ही उनके पास हव्य और कव्य पहुँचानेवाले हैं। मन्त्रकी शक्ति तथा हृदयकी भक्तिसे श्राद्धका सार-भाग पितरोंको प्राप्त होता है। अग्निष्वात्त आदि दिव्य पितर पिता-पितामह आदिके अधिपति हैं—वे ही उनके पास श्राद्धका अन्न पहुँचानेकी व्यवस्था करते हैं। पितरोंमेंसे जो लोग कहीं जन्म ग्रहण कर लेते हैं, उनके भी

१. कच्चे अन्नके द्वारा श्राद्ध।

'तथा सन्तु (तुम्हारे पितर ऐसे ही हों)'—ऐसा कहकर अनुमोदन करें। फिर श्राद्धकर्ता कहे—'गोत्रं नो वर्धताम्' (हमारा गोत्र बढ़े)। यह सुनकर ब्राह्मणोंको 'तथास्तु' (ऐसा ही हो) इस प्रकार उत्तर देना चाहिये। फिर यजमान कहे—'दातारो मेऽभिवर्धन्ताम्, वेदा सन्ततिरेव च—एता सत्या आशिष सन्तु (मेरे दाता बढ़ें, साथ ही मेरे कुलमें वेदोंके अध्ययन और सुयोग्य सन्तानकी वृद्धि हो—ये सारे आशीर्वाद सत्य हों)।' यह सुनकर ब्राह्मण कहें—'सन्तु सत्या आशिष (ये आशीर्वाद सत्य हों)।' इसके बाद भक्तिपूर्वक पिण्डोंको उठाकर सूँघे और स्वस्तिवाचन करे। फिर भाई-बन्धु और स्त्री पुत्रके साथ प्रदक्षिणा करके आठ पग चले। तदनन्तर लौटकर प्रणाम करे। इस प्रकार श्राद्धकी विधि पूरी करके मन्त्रवेत्ता पुरुष अग्नि प्रज्वलित करनेके पश्चात् बलिवैश्वदेव तथा नैत्यिक बलि अर्पण करे। तदनन्तर भृत्य, पुत्र, बान्धव तथा अतिथियोंके साथ बैठकर वही अन्न भोजन करे, जो पितरोंको अर्पण किया गया हो। जिसका यज्ञोपवीत नहीं हुआ है, ऐसा पुरुष भी इस श्राद्धको प्रत्येक पर्वपर कर सकता है। इसे साधारण [या नैमित्तिक] श्राद्ध कहते हैं। यह सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है। राजन्! स्त्रीरहित या विदेशस्थित मनुष्य भी भक्तिपूर्ण हृदयसे इस श्राद्धका अनुष्ठान करनेका अधिकारी है। यही नहीं, शूद्र भी इसी विधिसे श्राद्ध कर सकता है, अन्तर इतना ही है कि वह वेदमन्त्रोंका उच्चारण नहीं कर सकता।

तीसरा अर्थात् काम्य श्राद्ध आभ्युदयिक है, इसे वृद्धि श्राद्ध भी कहते हैं। उत्सव और आनन्दके अवसरपर, संस्कारके समय, यज्ञमें तथा विवाह आदि माङ्गलिक कार्योंमें यह श्राद्ध किया जाता है। इसमें पहले माताओंकी अर्थात् माता, पितामही और प्रपितामहीकी पूजा होती है। इनके बाद पितरों—पिता, पितामह और प्रपितामहका पूजन किया जाता है। अन्तमें मातामह आदिकी पूजा होती है। अन्य श्राद्धोंकी भाँति इसमें भी विश्वेदेवोंकी पूजा आवश्यक है। दक्षिणावर्तक क्रमसे पूजोपचार चढ़ाना चाहिये। आभ्युदयिक श्राद्धमें दही, अक्षत, फल और जलसे ही पूर्वाभिमुख होकर पितरोंको पिण्डदान दिया जाता है। 'सम्पन्नम्' का उच्चारण करके अर्घ्य और पिण्डदान देना चाहिये। इसमें युगल ब्राह्मणोंको अर्घ्य दान दे तथा युगल (सपत्नीक) ब्राह्मणोंकी ही वस्त्र और सुवर्ण आदिके द्वारा पूजा करे। तिलका काम जौसे लेना चाहिये तथा सारा कार्य पूर्ववत् करना चाहिये। श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके द्वारा सब प्रकारके मङ्गलपाठ करावे। इस प्रकार शूद्र भी कर सकता है। यह वृद्धिश्राद्ध सबके लिये सामान्य है। बुद्धिमान् शूद्र 'पितृभ्यो नमः' इत्यादि नमस्कार मन्त्रके द्वारा ही दान आदि कार्य करे। भगवान्का कथन है कि शूद्रके लिये दान ही प्रधान है, क्योंकि दानसे उसकी समस्त कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं।

एकोद्दिष्ट आदि श्राद्धोंकी विधि तथा श्राद्धोपयोगी तीर्थोंका वर्णन

पुलस्त्यजी कहते हैं—राजन्! अब मैं एकोद्दिष्ट श्राद्धका वर्णन करूँगा, जिसे पूर्वकालमें ब्रह्माजीने बतलाया था। साथ ही यह भी बताऊँगा कि पिताके मरनेपर पुत्रोंको किस प्रकार अशौचका पालन करना चाहिये। ब्राह्मणोंमें मरणाशौच दस दिनतक रखनेकी आज्ञा है, क्षत्रियोंमें बारह दिन, वैश्योंमें पंद्रह दिन तथा शूद्रोंमें एक महीनेका विधान है। यह अशौच सपिण्ड (सात पीढ़ीतक) के प्रत्येक मनुष्यपर लागू होता है। यदि किसी बालककी मृत्यु चूडाकरणके पहले हो जाय तो उसका अशौच एक रातका कहा गया है। उसके बाद उपनयनके पहलेतक तीन राततक अशौच रहता है। जननाशौचमें भी सब वर्णोंके लिये यही व्यवस्था है। अस्थि सञ्चयनके बाद अशौचग्रस्त पुरुषके शरीरका स्पर्श किया जा सकता है। प्रेतके लिये बारह दिनोंतक प्रतिदिन पिण्ड दान करना चाहिये, क्योंकि वह उसके लिये पाथेय (राहखर्च) है, इसलिये उसे पाकर प्रेतको बड़ी प्रसन्नता होती है। द्वादशाहके बाद ही प्रेतको यमपुरीमें ले जाया जाता है, तबतक वह घरपर ही रहता है। अतः दस राततक प्रतिदिन उसके लिये आकाशमें दूध देना चाहिये; इससे सब प्रकारके दाहकी शान्ति होती है तथा मार्गके परिश्रमका भी निवारण होता है। दशाहके बाद ग्यारहवें दिन, जब कि सूतक निवृत्त हो जाता है, अपने गोत्रके ग्यारह ब्राह्मणोंको ही बुलाकर भोजन कराना चाहिये। अशौचकी समाप्तिके दूसरे दिन एकोद्दिष्ट श्राद्ध करे। इसमें न तो आवाहन होता है न अग्नौकरण (अग्निमें हवन)। विश्वे

देवोंका पूजन आदि भी नहीं होता। एक ही पवित्री, एक ही अर्घ और एक ही पिण्ड देनेका विधान है। अर्घ और पिण्ड आदि देते समय प्रेतका नाम लेकर 'तवोपतिष्ठताम्' (तुम्हें प्राप्त हो) ऐसा कहना चाहिये। तत्पश्चात् तिल और जल छोड़ना चाहिये। अपने किये हुए दानका जल ब्राह्मणके हाथमें देना चाहिये तथा विसर्जनके समय 'अभिरम्यताम्' कहना चाहिये। शेष कार्य अन्य श्राद्धोंकी ही भाँति जानना चाहिये। उस दिन विधिपूर्वक शय्यादान, फल-वस्त्रसमन्वित काञ्चनपुरुषकी पूजा तथा द्विज-दम्पतिका पूजन भी करना आवश्यक है।

एकादशाह श्राद्धमें कभी भोजन नहीं करना चाहिये। यदि भोजन कर ले तो चान्द्रायण व्रत करना उचित है। सुयोग्य पुत्रको पिताकी भक्तिसे प्रेरित होकर सदा ही एकोद्दिष्ट श्राद्ध करना चाहिये। एकादशाहके दिन वृषोत्सर्ग करे, उत्तम कपिला गौ दान दे और उसी दिनसे आरम्भ करके एक वर्षतक प्रतिदिन भक्ष्य-भोज्यके साथ तिल और जलसे भरा हुआ घड़ा दान करना चाहिये। [इसीको कुम्भदान कहते हैं।] तदनन्तर, वर्ष पूरा होनेपर सपिण्डीकरण श्राद्ध होना चाहिये। सपिण्डीकरणके बाद प्रेत [प्रेतत्वसे मुक्त होकर] पार्वणश्राद्धका अधिकारी होता है तथा गृहस्थके वृद्धिसम्बन्धी कार्योंमें आभ्युदयिक श्राद्धका भागी होता है। सपिण्डीकरण श्राद्ध देवश्राद्धपूर्वक करना चाहिये अर्थात् उसमें पहले विश्वेदेवोंकी, फिर पितरोंकी पूजा होती है। सपिण्डीकरणमें जब पितरोंका आवाहन करे तो प्रेतका आसन उनसे अलग रखे। फिर चन्दन, जल और तिलसे युक्त चार अर्घ्यपात्र बनावे तथा प्रेतके अर्घ्यपात्रका जल तीन भागोंमें विभक्त करके पितरोंके अर्घ्य-पात्रोंमें डाले। इसी प्रकार पिण्डदान करनेवाला पुरुष चार पिण्ड बनाकर 'ये समानाः-' इत्यादि दो मन्त्रोंके द्वारा प्रेतके पिण्डको तीन भागोंमें विभक्त करे [और एक-एक भागको पितरोंके तीन पिण्डोंमें मिला दे]। इसी विधिसे पहले अर्घ्यको और फिर पिण्डोंको सङ्कल्पपूर्वक समर्पित करे। तदनन्तर, वह चतुर्थ व्यक्ति अर्थात् प्रेत पितरोंकी श्रेणीमें सम्मिलित हो जाता है और अग्निष्वात्त आदि पितरोंके बीचमें बैठकर उत्तम अमृतका उपभोग करता है। इसलिये सपिण्डीकरण श्राद्धके बाद उस (प्रेत) को पृथक् कुछ नहीं दिया जाता। पितरोंमें ही उसका भाग भी देना चाहिये तथा उन्हींके पिण्डोंमें स्थित होकर वह अपना भाग ग्रहण करता है। तबसे लेकर जब-जब संक्रान्ति और ग्रहण आदि पर्व आवें, तब-तब तीन पिण्डोंका ही श्राद्ध करना चाहिये। केवल मृत्यु-तिथिको केवल उसीके लिये एकोद्दिष्ट श्राद्ध करना उचित है। पिताके क्षयाहके दिन जो एकोद्दिष्ट नहीं करता, वह सदाके लिये पिताका हत्यारा और भाईका विनाश करनेवाला माना गया है। क्षयाह-तिथिको [एकोद्दिष्ट न करके] पार्वणश्राद्ध करनेवाला मनुष्य नरकगामी होता है। मृत व्यक्तिको जिस प्रकार प्रेतयोनिसे छुटकारा मिले और उसे स्वर्गादि उत्तम लोकोंकी प्राप्ति हो, इसके लिये विधिपूर्वक आमश्राद्ध[1] करना चाहिये। कच्चे अन्नसे ही अग्नौ-करणकी क्रिया करे और उसीसे पिण्ड भी दे। पहले या तीसरे महीनेमें भी जब मृत व्यक्तिका पिता आदि तीन पुरुषोंके साथ सपिण्डीकरण हो जाता है, तब प्रेतत्वके बन्धनसे उसकी मुक्ति हो जाती है। मुक्त होनेपर उससे लेकर तीन पीढ़ीतकके पितर सपिण्ड कहलाते हैं, तथा चौथा सपिण्डकी श्रेणीसे निकलकर लेपभागी हो जाता है। कुशमें हाथ पोंछनेसे जो अंश प्राप्त होता है, वही उसके उपभोगमें आता है। पिता, पितामह और प्रपितामह—ये तीन पिण्डभागी होते हैं; और इनसे ऊपर चतुर्थ व्यक्ति अर्थात् वृद्धप्रपितामहसे लेकर तीन पीढ़ीतकके पूर्वज लेपभागभोजी माने जाते हैं। [छः तो ये हुए,] इनमें सातवाँ है स्वयं पिण्ड देनेवाला पुरुष। ये ही सात पुरुष सपिण्ड कहलाते हैं।

भीष्मजीने पूछा—ब्रह्मन्! हव्य और कव्यका दान मनुष्योंको किस प्रकार करना चाहिये? पितृलोकमें उन्हें कौन ग्रहण करते हैं? यदि इस मर्त्यलोकमें ब्राह्मण श्राद्धके अन्नको खा जाते हैं अथवा अग्निमें उसका हवन कर दिया जाता है तो शुभ और अशुभ योनियोंमें पड़े हुए प्रेत उस अन्नको कैसे खाते हैं—उन्हें वह किस प्रकार मिल पाता है?

पुलस्त्यजी बोले—राजन्! पिता वसुके, पितामह रुद्रके तथा प्रपितामह आदित्यके स्वरूप हैं—ऐसी वेदकी श्रुति है। पितरोंके नाम और गोत्र ही उनके पास हव्य और कव्य पहुँचानेवाले हैं। मन्त्रकी शक्ति तथा हृदयकी भक्तिसे श्राद्ध-का सार-भाग पितरोंको प्राप्त होता है। अग्निष्वात्त आदि दिव्य पितर पिता-पितामह आदिके अधिपति हैं—वे ही उनके पास श्राद्धका अन्न पहुँचानेकी व्यवस्था करते हैं। पितरोंमेंसे जो लोग कहीं जन्म ग्रहण कर लेते हैं, उनके भी

१. कच्चे अन्नके द्वारा श्राद्ध।

कुछ-न-कुछ नाम, गोत्र तथा देश आदि तो होते ही हैं, [दिव्य पितरोंको उनका ज्ञान होता है और वे उसी पतेपर सभी वस्तुएँ पहुँचा देते हैं ।] अतः यह भेंट-पूजा आदिके रूपमें दिया हुआ सब सामान प्राणियोंके पास पहुँचकर उन्हें तृप्त करता है । यदि शुभ कर्मोंके योगसे पिता और माता दिव्ययोनिको प्राप्त हुए हों तो श्राद्धमें दिया हुआ अन्न अमृत होकर उस अवस्थामें भी उन्हें प्राप्त होता है । वही दैत्ययोनिमें भोगरूपसे, पशुयोनिमें तृणरूपसे, सर्पयोनिमें वायुरूपसे तथा यक्षयोनिमें पान रूपसे उपस्थित होता है । इसी प्रकार यदि माता-पिता मनुष्य योनिमें हों तो उन्हें अन्न-पान आदि अनेक रूपोंमें श्राद्धान्नकी प्राप्ति होती है । यह श्राद्ध कर्म पुण्य कहा गया है, इसका फल है ब्रह्मकी प्राप्ति । राजन् ! श्राद्धसे प्रसन्न हुए पितर आयु, पुत्र, धन, विद्या, राज्य, लौकिक सुख, स्वर्ग तथा मोक्ष भी प्रदान करते हैं ।

भीष्मजीने पूछा—ब्रह्मन् ! श्राद्धकर्ता पुरुष दिनके किस भागमें श्राद्धका अनुष्ठान करे तथा किन तीर्थोंमें किया हुआ श्राद्ध अधिक फल देनेवाला होता है ?

पुलस्त्यजी बोले—राजन् ! पुष्कर नामका तीर्थ सब तीर्थोंमें श्रेष्ठतम माना गया है । वहाँ किया हुआ दान, होम, [श्राद्ध,] और जप निश्चय ही अक्षय फल प्रदान करनेवाला होता है । वह तीर्थ पितरों और ऋषियोंको सदा ही परम प्रिय है । इसके सिवा नन्दा, ललिता तथा मायापुरी (हरिद्वार) भी पुष्करके ही समान उत्तम तीर्थ हैं । मित्रपद और केदार तीर्थ भी श्रेष्ठ हैं । गङ्गासागर नामक तीर्थको परम शुभदायक और सर्वतीर्थमय बतलाया जाता है । ब्रह्मसर तीर्थ और शतद्रु (सतलज) नदीका जल भी शुभ है । नैमिषारण्य नामक तीर्थ तो सब तीर्थोंका फल देनेवाला है । वहाँ गोमतीमें गङ्गाका सनातन स्रोत प्रकट हुआ है । नैमिषारण्य में भगवान् यज्ञ-वराह और देवाधिदेव शूलपाणि विराजते हैं । जहाँ सोनेका दान दिया जाता है, वहाँ महादेवजीकी अठारह भुजावाली मूर्ति है । पूर्वकालमें जहाँ धर्मचक्रकी नेमि जीर्ण-शीर्ण होकर गिरी थी, वही स्थान नैमिषारण्यके नामसे प्रसिद्ध हुआ । वहाँ सब तीर्थोंका निवास है । जो वहाँ जाकर देवाधिदेव वराहका दर्शन करता है, वह धर्मात्मा पुरुष भगवान् श्रीनारायणके धाममें जाता है । कोकामुख नामक क्षेत्र भी एक प्रधान तीर्थ है । यह इन्द्रलोकका मार्ग है । वहाँ भी ब्रह्माजीके पितृतीर्थका दर्शन होता है । वहाँ भगवान् ब्रह्माजी पुष्करारण्यमें विराजमान हैं । ब्रह्माजीका दर्शन अत्यन्त उत्तम एवं मोक्षरूप फल प्रदान करनेवाला है । कृत नामक महान् पुण्यमय तीर्थ सब पापोंका नाशक है । वहाँ आदिपुरुष नरसिंहस्वरूप भगवान् जनार्दन स्वयं ही स्थित हैं । इक्षुमती नामक तीर्थ पितरोंको सदा प्रिय है । गङ्गा और यमुनाके सङ्गम (प्रयाग) में भी पितर सदा सन्तुष्ट रहते हैं । कुरुक्षेत्र अत्यन्त पुण्यमय तीर्थ है । वहाँका पितृ-तीर्थ सम्पूर्ण अभीष्ट फलोंको देनेवाला है ।

राजन् ! नीलकण्ठ नामसे विख्यात तीर्थ भी पितरोंका तीर्थ है । इसी प्रकार परम पवित्र भद्रसर तीर्थ, मानसरोवर, मन्दाकिनी, अच्छोदा, विपाशा (व्यास नदी), पुण्यसलिला सरस्वती, सर्वमित्रपद, महाफलदायक वैद्यनाथ, अत्यन्त पावन क्षिप्रानदी, कालिञ्जर गिरि, तीर्थोद्भेद, हरोद्भेद, गर्भभेद, महालय, भद्रेश्वर, विष्णुपद, नर्मदाद्वार तथा गयातीर्थ—ये सब पितृतीर्थ हैं । महर्षियोंका कथन है कि इन तीर्थोंमें पिण्डदान करनेसे समान फलकी प्राप्ति होती है । ये स्मरण करने मात्रसे लोगोंके सारे पाप हर लेते हैं, फिर जो इनमें पिण्डदान करते हैं, उनकी तो बात ही क्या है । ओङ्कारतीर्थ, कावेरीनदी, कपिलाका जल, चण्डवेगा नदीमें मिली हुई नदियोंके सङ्गम तथा अमरकण्टक—ये सब पितृतीर्थ हैं । अमरकण्टकमें किये हुए स्नान आदि पुण्यकार्य कुरुक्षेत्रकी अपेक्षा दसगुना उत्तम फल देनेवाले हैं । विख्यात शुक्रतीर्थ एवं उत्तम सोमेश्वरतीर्थ अत्यन्त पवित्र और सम्पूर्ण व्याधियोंको हरनेवाले हैं । वहाँ श्राद्ध करने, दान देने, तथा होम, स्वाध्याय, जप और निवास करनेसे अन्य तीर्थोंकी अपेक्षा कोटिगुना अधिक फल होता है ।

इनके अतिरिक्त एक कायावरोहण नामक तीर्थ है, जहाँ किसी ब्राह्मणके उत्तम भवनमें देवाधिदेव त्रिशूलधारी भगवान् शङ्करका तेजस्वी अवतार हुआ था । इसीलिये वह स्थान परम पुण्यमय तीर्थ बन गया । चर्मण्वती नदी, शूलतापी, पयोष्णी, पयोष्णी-सङ्गम, महौषधी, चारणा, नागतीर्थप्रवर्तिनी, पुण्यसलिला महावेणा नदी, महाशाल तीर्थ, गोमती, वरुणा, अग्नितीर्थ, भैरवतीर्थ, भृगुतीर्थ, गौरीतीर्थ, वैनायकतीर्थ, वस्त्रेश्वरतीर्थ, पापहरतीर्थ, पावनसलिला वेत्रवती (बेतवा) नदी, महारुद्रतीर्थ, महालिङ्गतीर्थ, दशार्णा, महानदी, शतरुद्रा, शताह्वा, पितृपदपुर, अङ्गारवाहिका नदी, शोण (सोन) और घर्घर (घाघरा) नामवाले दो नद, परम पावन कालिका नदी और शुभदायिनी पितरा नदी—ये

समस्त पितृतीर्थ स्नान और दानके लिये उत्तम माने गये हैं। इन तीर्थोंमें जो पिण्ड आदि दिया जाता है, वह अनन्त फल देनेवाला माना गया है। शतावटा नदी, ज्वाला, शरद्री नदी, श्रीकृष्णतीर्थ—द्वारकापुरी, उदक्सरस्वती, मालवती नदी, गिरिकर्णिका, दक्षिण-समुद्रके तटपर विद्यमान धूतपापतीर्थ, गोकर्णतीर्थ, गजकर्णतीर्थ, परम उत्तम चक्रनदी, श्रीशैल, शाकतीर्थ, नारसिंहतीर्थ, महेन्द्र पर्वत तथा पावन-सलिला महानदी—इन सब तीर्थोंमें किया हुआ श्राद्ध भी सदा अक्षय फल प्रदान करनेवाला माना गया है। ये दर्शन-मात्रसे पुण्य उत्पन्न करनेवाले तथा तत्काल समस्त पापोंको हर लेनेवाले हैं।

पुण्यमयी तुङ्गभद्रा, चक्ररथी, भीमेश्वरतीर्थ, कृष्णवेणा, कावेरी, अञ्जना, पावनसलिला गोदावरी, उत्तम त्रिसन्ध्या-तीर्थ और समस्त तीर्थोंसे नमस्कृत त्र्यम्बकतीर्थ, जहाँ 'भीम' नामसे प्रसिद्ध भगवान् शङ्कर स्वयं विराजमान हैं, अत्यन्त उत्तम हैं। इन सबमें दिया हुआ दान कोटिगुना अधिक फल देनेवाला है। इनके स्मरण करने मात्रसे पापोंके सैकड़ों टुकड़े हो जाते हैं। परम पावन श्रीपर्णा नदी, अत्यन्त उत्तम व्यास-तीर्थ, मत्स्यनदी, राका, शिवधारा, विख्यात भवतीर्थ, सनातन पुण्यतीर्थ, पुण्यमय रामेश्वरतीर्थ, वेणायु, अमलपुर, प्रसिद्ध मङ्गलतीर्थ, आत्मदर्शतीर्थ, अलम्बुषतीर्थ, वस्त्रातेश्वर-तीर्थ, गोकामुखतीर्थ, गोवर्धन, हरिश्चन्द्र, पुरश्चन्द्र, पृथूदक, सहस्राक्ष, हिरण्याक्ष, कदली नदी, नामधेयतीर्थ, सौमित्रिसङ्गम-तीर्थ, इन्द्रनील, महानाद तथा प्रियमेलक—ये भी श्राद्धके लिये अत्यन्त उत्तम माने गये हैं। इनमें सम्पूर्ण देवताओंका निवास बताया जाता है। इन सबमें दिया हुआ दान कोटिगुना अधिक फल देनेवाला होता है। पावन नदी बाहुदा, शुभकारी सिद्धवट, पाशुपततीर्थ, पर्यटिका नदी—इन सबमें किया हुआ श्राद्ध भी सौ करोड़ गुना फल देता है। इसी प्रकार पञ्चतीर्थ और गोदावरी नदी भी पवित्र तीर्थ हैं। गोदावरी दक्षिण-वाहिनी नदी है। उसके तटपर हजारों शिवलिङ्ग हैं। वहीं जामदग्न्यतीर्थ और उत्तम मोदायतनतीर्थ हैं, जहाँ गोदावरी नदी प्रतीकके भयसे सदा प्रवाहित होती रहती है। इसके सिवा हव्य-कव्य नामका तीर्थ भी है। वहाँ किये हुए श्राद्ध, होम और दान सौ करोड़ गुना अधिक फल देनेवाले होते हैं। सहस्रलिङ्ग और राघवेश्वर नामक तीर्थका माहात्म्य भी ऐसा ही है। वहाँ किया हुआ श्राद्ध अनन्तगुना फल देता है। शालग्रामतीर्थ, प्रसिद्ध शोणपात (सोनपत)-तीर्थ, वैश्वानराशयतीर्थ, सारस्वततीर्थ, स्वामितीर्थ, मलंदरा नदी, पुण्यसलिला कौशिकी, चन्द्रका, विदर्भा, वेगा, प्राङ्मुखा, कावेरी, उत्तराङ्ग और जालन्धर गिरि—इन तीर्थोंमें किया हुआ श्राद्ध अक्षय हो जाता है। लोहदण्ड-तीर्थ, चित्रकूट, सभी स्थानोंमें गङ्गानदीके दिव्य एवं कल्याणमय तट, कुब्जाम्रक, उर्वशी-पुलिन, संसारमोचन और ऋणमोचन तीर्थ—इनमें किया हुआ श्राद्ध अनन्त हो जाता है। अट्टहासतीर्थ, गौतमेश्वरतीर्थ, वसिष्ठतीर्थ, भारततीर्थ, ब्रह्मावर्त, कुशावर्त, हंसतीर्थ, प्रसिद्ध पिण्डारकतीर्थ, शङ्खोद्धारतीर्थ, भाण्डेश्वरतीर्थ, बिल्वकतीर्थ, नीलपर्वत, सब तीर्थोंका राजाधिराज बदरीतीर्थ, वसुधारातीर्थ, रामतीर्थ, जयन्ती, विजय तथा शुक्लतीर्थ—इनमें पिण्डदान करनेवाले पुरुष परम पदको प्राप्त होते हैं।

मातृगृहतीर्थ, करवीरपुर तथा सब तीर्थोंका स्वामी सप्त-गोदावरी नामक तीर्थ भी अत्यन्त पावन हैं। जिन्हें अनन्त फल प्राप्त करनेकी इच्छा हो, उन पुरुषोंको इन तीर्थोंमें पिण्डदान करना चाहिये। मगध देशमें गया नामकी पुरी तथा राजगृह नामक वन पावन तीर्थ हैं। वहीं च्यवन मुनिका आश्रम, पुनःपुना (पुनपुन) नदी और विषयाराधन-तीर्थ—ये सभी पुण्यमय स्थान हैं। राजेन्द्र! लोगोंमें यह किंवदन्ती प्रचलित है कि एक समय सब मनुष्य यही कहते हुए तीर्थों और मन्दिरोंमें आये थे कि 'क्या हमारे कुलमें कोई ऐसा पुत्र उत्पन्न होगा, जो गयाकी यात्रा करेगा? जो वहाँ जायगा, वह सात पीढ़ी तकके पूर्वजोंको और सात पीढ़ीतककी होनेवाली सन्तानोंको तार देगा।' मातामह आदिके सम्बन्धमें भी यह सनातन श्रुति चिरकालसे प्रसिद्ध है; वे कहते हैं—'क्या हमारे वंशमें एक भी ऐसा पुत्र होगा, जो अपने पितरोंकी हड्डियोंको ले जाकर गङ्गामें डाले, सात-आठ तिलोंसे भी जलाञ्जलि दे तथा पुष्करारण्य, नैमिषारण्य और धर्मारण्यमें पहुँचकर भक्तिपूर्वक श्राद्ध एवं पिण्डदान करे?' गया क्षेत्रके भीतर जो धर्मपृष्ठ, ब्रह्मसर तथा गयाशीर्ष-वट नामक तीर्थोंमें पितरोंको पिण्डदान किया जाता है, वह अक्षय होता है। जो घरपर श्राद्ध करके गया-तीर्थकी यात्रा करता है, वह मार्गमें पैर रखते ही नरकमें पड़े हुए पितरोंको तुरंत स्वर्गमें पहुँचा देता है। उसके कुलमें कोई प्रेत नहीं होता। गयामें पिण्डदानके प्रभावसे प्रेतत्वसे छुटकारा मिल जाता है। [गयामें] एक मुनि थे, जो अपने दोनों हाथोंके अग्रभागमें भरा हुआ ताम्रपात्र लेकर

पानी देते थे, इससे आमोंकी सिंचाई भी होती थी और उनके पितर भी तृप्त होते थे। इस प्रकार एक ही क्रिया दो प्रयोजनोंको सिद्ध करनेवाली हुई। गयामें पिण्डदानसे बढ़कर दूसरा कोई दान नहीं है, क्योंकि वहाँ एक ही पिण्ड देनेसे पितर तृप्त होकर मोक्षको प्राप्त होते हैं। कोई-कोई मुनीश्वर अन्नदानको श्रेष्ठ बतलाते हैं और कोई वस्त्रदानको उत्तम कहते हैं। वस्तुतः गयाके उत्तम तीर्थोंमें मनुष्य जो कुछ भी दान करते हैं, वह धर्मका हेतु और श्रेष्ठ कहा गया है।

यह तीर्थोंका संग्रह मैंने संक्षेपमें बतलाया है, विस्तारसे तो इसे बृहस्पतिजी भी नहीं कह सकते; फिर मनुष्यकी तो बात ही क्या है। सत्य तीर्थ है, दया तीर्थ है और इन्द्रियोंका निग्रह भी तीर्थ है। मनोनिग्रहको भी तीर्थ कहा गया है। सबेरे तीन मुहूर्त (छः घड़ी) तक प्रातःकाल रहता है। उसके बाद तीन मुहूर्ततकका समय सङ्गव कहलाता है। तत्पश्चात् तीन मुहूर्ततक मध्याह्न होता है। उसके बाद उतने ही समयतक अपराह्न रहता है। फिर तीन मुहूर्ततक सायाह्न होता है। सायाह्न-कालमें श्राद्ध नहीं करना चाहिये, क्योंकि वह राक्षसी वेला है; अतः सभी कर्मोंके लिये निन्दित है। दिनके पंद्रह मुहूर्त बतलाये गये हैं। उनमें आठवाँ मुहूर्त, जो दोपहरके बाद पड़ता है, 'कुतप' कहलाता है। उस समयसे धीरे-धीरे सूर्यका ताप मन्द पड़ता जाता है। वह अनन्त फल देनेवाला काल है। उसीमें श्राद्धका आरम्भ उत्तम माना जाता है। खड्गपात्र, कुतप, नेपालदेशीय कम्बल, सुवर्ण, कुश, तिल तथा आठवाँ दौहित्र (पुत्रीका पुत्र)—ये कुत्सित अर्थात् पापको सन्ताप देनेवाले हैं, इसलिये इन आठोंको 'कुतप' कहते हैं। कुतप मुहूर्तके बाद चार मुहूर्त तक अर्थात् कुल पाँच मुहूर्त स्वधा वाचन (श्राद्ध) के लिये उत्तम काल है। कुश और काले तिल भगवान् श्रीविष्णुके शरीरसे उत्पन्न हुए हैं। मनीषी पुरुषोंने श्राद्धका लक्षण और काल इसी प्रकार बताया है। तीर्थवासियोंको तीर्थके जलमें प्रवेश करके पितरोंके लिये तिल और जलकी अञ्जलि देनी चाहिये। एक हाथमें कुश लेकर घरमें श्राद्ध करना चाहिये। यह तीर्थ श्राद्धका विवरण पुण्यदायक, पवित्र, आयु बढ़ानेवाला तथा समस्त पापोंका निवारण करनेवाला है। इसे स्वयं ब्रह्माजीने अपने श्रीमुखसे कहा है। तीर्थनिवासियोंको श्राद्धके समय इस अध्यायका पाठ करना चाहिये। यह सब पापोंकी शान्तिका साधन और दरिद्रताका नाशक है।

चन्द्रमाकी उत्पत्ति तथा यदुवंश एवं सहस्रार्जुनके प्रभावका वर्णन

भीष्मजीने पूछा—समस्त शास्त्रोंके ज्ञाता पुलस्त्यजी! चन्द्रवंशकी उत्पत्ति कैसे हुई? उस वंशमें कौन-कौन से राजा अपनी कीर्तिका विस्तार करनेवाले हुए?

पुलस्त्यजीने कहा—राजन्! पूर्वकालमें ब्रह्माजीने महर्षि अत्रिको सृष्टिके लिये आज्ञा दी। तब उन्होंने सृष्टिकी शक्ति प्राप्त करनेके लिये अनुत्तर[१] नामका तप किया। वे अपने मन और इन्द्रियोंके संयममें तत्पर होकर परमानन्दमय ब्रह्मका चिन्तन करने लगे। एक दिन महर्षिके नेत्रोंसे कुछ जलकी बूँदें टपकने लगीं, जो अपने प्रकाशसे सम्पूर्ण चराचर जगत्को प्रकाशित कर रही थीं। दिशाओं [की अधिष्ठात्री देवियों] ने स्त्रीरूपमें आकर पुत्र पानेकी इच्छासे उस जलको ग्रहण कर लिया। उनके उदरमें वह जल गर्भरूपसे स्थित हुआ। दिशाएँ उसे धारण करनेमें असमर्थ हो गयीं, अतः उन्होंने उस गर्भको त्याग दिया। तब ब्रह्माजीने उनके छोड़े हुए गर्भको एकत्रित करके उसे एक तरुण पुरुषके रूपमें प्रकट किया, जो सब प्रकारके आयुधोंको धारण करनेवाला था। फिर वे उस तरुण पुरुषको देवशक्ति सम्पन्न सहस्र नामक रथपर बिठाकर अपने लोकमें ले गये। तब ब्रह्मर्षियोंने कहा—'ये हमारे स्वामी हैं।' तदनन्तर ऋषि, देवता, गन्धर्व और अप्सराएँ उनकी स्तुति करने लगीं। उस समय उनका तेज बहुत बढ़ गया। उस तेजके विस्तारसे इस पृथ्वीपर दिव्य ओषधियाँ उत्पन्न हुईं। इसीसे चन्द्रमा ओषधियोंके स्वामी हुए तथा द्विजोंमें भी उनकी गणना हुई। वे शुक्लपक्षमें बढ़ते और कृष्णपक्षमें सदा क्षीण होते रहते हैं। कुछ कालके बाद प्रचेताओंके पुत्र प्रजापति दक्षने अपनी सत्ताईस कन्याएँ, जो रूप और लावण्यसे युक्त तथा अत्यन्त तेजस्विनी थीं, चन्द्रमाको पत्नीरूपमें अर्पण कीं। तत्पश्चात् चन्द्रमाने केवल श्रीविष्णुके ध्यानमें तत्पर होकर चिरकालतक बड़ी भारी तपस्या की। इससे प्रसन्न

१. जिससे बढ़ा दूसरा कोई तप न हो, वह लोकोत्तर तपस्या ही 'अनुत्तर' तपके नामसे कही गयी है।

होकर परमात्मा श्रीनारायणदेवने उनसे वर माँगनेको कहा। तब चन्द्रमाने यह वर माँगा—'मैं इन्द्रलोकमें राजसूय यज्ञ करूँगा। उसमें आपके साथ ही सम्पूर्ण देवता मेरे मन्दिरमें प्रत्यक्ष प्रकट होकर यज्ञभाग ग्रहण करें। शूलधारी भगवान् श्रीशङ्कर मेरे यज्ञकी रक्षा करें।' 'तथास्तु' कहकर भगवान् श्रीविष्णुने स्वयं ही राजसूय यज्ञका समारोह किया। उसमें अत्रि होता, भृगु अध्वर्यु और ब्रह्माजी उद्गाता हुए। साक्षात् भगवान् श्रीहरि ब्रह्मा बनकर यज्ञके द्रष्टा हुए तथा सम्पूर्ण देवताओंने सदस्यका काम सँभाला। यज्ञ पूर्ण होनेपर चन्द्रमाको दुर्लभ ऐश्वर्य मिला और वे अपनी तपस्याके प्रभावसे सातों लोकोंके स्वामी हुए।

चन्द्रमासे बुधकी उत्पत्ति हुई। ब्रह्मर्षियोंके साथ ब्रह्माजीने बुधको भूमण्डलके राज्यपर अभिषिक्त करके उन्हें ग्रहोंकी समानता प्रदान की। बुधने इलाके गर्भसे एक धर्मात्मा पुत्र उत्पन्न किया, जिसने सौसे भी अधिक अश्वमेध यज्ञोंका अनुष्ठान किया। वह पुरूरवाके नामसे विख्यात हुआ। सम्पूर्ण जगत्के लोगोंने उसके सामने मस्तक झुकाया। पुरूरवाने हिमालयके रमणीय शिखरपर ब्रह्माजीकी आराधना करके लोकेश्वरका पद प्राप्त किया। वे सातों द्वीपोंके स्वामी हुए। केशी आदि दैत्योंने उनकी दासता स्वीकार की। उर्वशी नामकी अप्सरा उनके रूपपर मोहित होकर उनकी पत्नी हो गयी। राजा पुरूरवा सम्पूर्ण लोकोंके हितैषी राजा थे। उन्होंने सातों द्वीप, वन, पर्वत और काननोंसहित समस्त भूमण्डलका धर्मपूर्वक पालन किया। उर्वशीने पुरूरवाके वीर्यसे आठ पुत्रोंको जन्म दिया। उनके नाम ये हैं—आयु, दृढायु, वश्यायु, धनायु, धृतिमान्, वसु, दिविजात और सुबाहु—ये सभी दिव्य बल और पराक्रमसे सम्पन्न थे। इनमेंसे आयुके पाँच पुत्र हुए—नहुष, वृद्धशर्मा, रजि, दम्भ और विपाप्मा। ये पाँचों वीर महारथी थे। रजिके सौ पुत्र हुए, जो राजेयके नामसे विख्यात थे। राजन्! रजिने तपस्याद्वारा पापके सम्पर्कसे रहित भगवान् श्रीनारायणकी आराधना की। इससे सन्तुष्ट होकर श्रीविष्णुने उन्हें वरदान दिया, जिससे रजिने देवता, असुर और मनुष्योंको जीत लिया।

अब मैं नहुषके पुत्रोंका परिचय देता हूँ। उनके सात पुत्र हुए और वे सब-के-सब धर्मात्मा थे। उनके नाम ये हैं—यति, ययाति, संयाति, उद्भव, पर, वियति और विश्वसाति। ये सातों अपने वंशका यश बढ़ानेवाले थे। उनमें यति कुमारावस्थामें ही वानप्रस्थ योगी हो गये। ययाति राज्यका पालन करने लगे। उन्होंने एकमात्र धर्मकी ही शरण ले रखी थी। दानवराज वृषपर्वाकी कन्या शर्मिष्ठा तथा शुक्राचार्यकी पुत्री सती देवयानी—ये दोनों उनकी पत्नियाँ थीं। ययातिके पाँच पुत्र थे। देवयानीने यदु और तुर्वसु नामके दो पुत्रोंको जन्म दिया तथा शर्मिष्ठाने द्रुह्यु, अनु और पूरु नामक तीन पुत्र उत्पन्न किये। उनमें यदु और पूरु—ये दोनों अपने वंशका विस्तार करनेवाले हुए। यदुसे यादवोंकी उत्पत्ति हुई, जिनमें पृथ्वीका भार उतारने और पाण्डवोंका हित करनेके लिये भगवान् बलराम और श्रीकृष्ण प्रकट हुए हैं। यदुके पाँच पुत्र हुए, जो देवकुमारोंके समान थे। उनके नाम थे—सहस्रजित्, क्रोष्टु, नील, अञ्जिक और रघु। इनमें सहस्रजित् ज्येष्ठ थे। उनके पुत्र राजा शतजित् हुए। शतजित्के हैहय, हय और उत्तालहय—ये तीन पुत्र हुए, जो बड़े धर्मात्मा थे। हैहयका पुत्र धर्मनेत्रके नामसे विख्यात हुआ। धर्मनेत्रके कुन्ति, कुन्तिके संहत और संहतके महिष्मान् नामक पुत्र हुआ। महिष्मान्से भद्रसेन नामक पुत्रका जन्म हुआ, जो बड़ा प्रतापी था। वह काशीपुरीका राजा था। भद्रसेनके पुत्र राजा दुर्दर्श हुए। दुर्दर्शके पुत्र भीम और भीमके बुद्धिमान् कनक हुए। कनकके कृताग्नि, कृतवीर्य, कृतधर्मा और कृतौजा—ये चार पुत्र हुए, जो संसारमें विख्यात थे। कृतवीर्यका पुत्र अर्जुन हुआ, जो एक हजार भुजाओंसे सुशोभित एवं सातों द्वीपोंका राजा था। राजा कार्तवीर्यने दस हजार वर्षोंतक दुष्कर तपस्या करके भगवान् दत्तात्रेयजीकी आराधना की। पुरुषोत्तम दत्तात्रेयजीने उन्हें चार वरदान दिये। राजाओंमें श्रेष्ठ अर्जुनने पहले तो अपने लिये एक हजार भुजाएँ माँगीं। दूसरे वरके द्वारा उन्होंने यह प्रार्थना की कि 'मेरे राज्यमें लोगोंको अधर्मकी बात सोचते हुए भी मुझसे भय हो और वे अधर्मके मार्गसे हट जायँ।' तीसरा वरदान इस प्रकार था—'मैं युद्धमें पृथ्वीको जीतकर धर्मपूर्वक बलका संग्रह करूँ।' चौथे वरके रूपमें उन्होंने यह माँगा कि 'संग्राममें लड़ते-लड़ते मैं अपनी अपेक्षा श्रेष्ठ वीरके हाथसे मारा जाऊँ।' राजा अर्जुनने सातों द्वीप और नगरोंसे युक्त तथा सातों समुद्रोंसे घिरी हुई इस सारी पृथ्वीको क्षात्रधर्मके अनुसार जीत लिया था। उस बुद्धिमान् नरेशके इच्छा करते ही हजार भुजाएँ प्रकट हो जाती थीं। महाबाहु अर्जुनके सभी यज्ञोंमें पर्याप्त दक्षिणा बाँटी जाती थी। सबमें सुवर्णमय यूप (स्तम्भ) और सोनेकी ही वेदियाँ बनायी जाती थीं। उन यज्ञोंमें सम्पूर्ण देवता सज-

धजकर विमानोंपर बैठकर प्रत्यक्ष दर्शन देते थे। महाराज कार्तवीर्यने पचासी हजार वर्षोंतक एकछत्र राज्य किया। वे चक्रवर्ती राजा थे। योगी होनेके कारण अर्जुन समय-समयपर मेघके रूपमें प्रकट हो वृष्टिके द्वारा प्रजाको सुख पहुँचाते थे। प्रत्यञ्चाके आघातसे उनकी भुजाओंकी त्वचा कठोर हो गयी थी। जब वे अपनी हजारों भुजाओंके साथ संग्राममें खड़े होते थे, उस समय सहस्रों किरणोंसे सुशोभित शरत्कालीन सूर्यके समान तेजस्वी जान पड़ते थे। परम कान्तिमान् महाराज अर्जुन माहिष्मतीपुरीमें निवास करते थे और वर्षाकालमें समुद्रका वेग भी रोक देते थे। उनकी हजारों भुजाओंके आलोडनसे समुद्र क्षुब्ध हो उठता था और उस समय पातालवासी महान् असुर दुबक छिपकर निश्चेष्ट हो जाते थे।

एक समयकी बात है, वे अपने पाँच बाणोंसे अभिमानी रावणको सेनासहित मूर्च्छित करके माहिष्मतीपुरीमें ले आये। वहाँ ले जाकर उन्होंने रावणको कैदमें डाल दिया। तब मैं (पुलस्त्य) अर्जुनको प्रसन्न करनेके लिये गया। राजन्! मेरी बात मानकर उन्होंने मेरे पौत्रको छोड़ दिया और उसके साथ मित्रता कर ली। किन्तु विधाताका बल और पराक्रम अद्भुत है, जिसके प्रभावसे भृगुनन्दन परशुरामजीने राजा कार्तवीर्यकी हजारों भुजाओंको सोनेके तालवनकी भाँति संग्राममें काट डाला। कार्तवीर्य अर्जुनके सौ पुत्र थे, किन्तु उनमें पाँच महारथी, अस्त्रविद्यामें निपुण, बलवान्, शूर, धर्मात्मा और महान् व्रतका पालन करनेवाले थे। उनके नाम थे—शूरसेन, शूर, धृष्ट, कृष्ण और जयध्वज। जयध्वजका पुत्र महाबली तालजङ्घ हुआ। तालजङ्घके सौ पुत्र हुए, जिनकी तालजङ्घके नामसे ही प्रसिद्धि हुई। उन हैहयवंशीय राजाओंके पाँच कुल हुए—वीतिहोत्र, भोज, अवन्ति, तुण्डकेर और विक्रान्त। ये सब के सब तालजङ्घ ही कहलाये। वीतिहोत्रका पुत्र अनन्त हुआ, जो बड़ा पराक्रमी था। उसके दुर्जय नामक पुत्र हुआ, जो शत्रुओंका संहार करनेवाला था।

यदुवंशके अन्तर्गत क्रोष्टु आदिके वंश तथा श्रीकृष्णावतारका वर्णन

पुलस्त्यजी कहते हैं—राजेन्द्र! अब यदुपुत्र क्रोष्टुके वंशका, जिसमें श्रेष्ठ पुरुषोंने जन्म लिया था, वर्णन सुनो। क्रोष्टुके ही कुलमें वृष्णिवंशावतंस भगवान् श्रीकृष्णका अवतार हुआ है। क्रोष्टुके पुत्र महामना वृजिनीवान् हुए। उनके पुत्रका नाम स्वाति था। स्वातिसे कुशङ्कुका जन्म हुआ। कुशङ्कुसे चित्ररथ उत्पन्न हुए, जो शशबिन्दु नामसे विख्यात चक्रवर्ती राजा हुए। शशबिन्दुके दस हजार पुत्र हुए। वे बुद्धिमान्, सुन्दर, प्रचुर वैभवशाली और तेजस्वी थे। उनमें भी सौ प्रधान थे। उन सौ पुत्रोंमें भी, जिनके नामके साथ 'पृथु' शब्द जुड़ा था, वे महान् बलवान् थे। उनके पूरे नाम इस प्रकार हैं—पृथुश्रवा, पृथुयशा, पृथुतेजा, पृथूद्भव, पृथुकीर्ति और पृथुमति। पुराणोंके ज्ञाता पुरुष उन सबमें पृथुश्रवाको श्रेष्ठ बतलाते हैं। पृथुश्रवासे उशना नामक पुत्र हुआ, जो शत्रुओंको सन्ताप देनेवाला था। उशनाका पुत्र शिनेयु हुआ, जो सज्जनोंमें श्रेष्ठ था। शिनेयुका पुत्र रुक्मकवच नामसे प्रसिद्ध हुआ, वह शत्रुसेनाका विनाश करनेवाला था। राजा रुक्मकवचने एक बार अश्वमेध यज्ञका आयोजन किया और उसमें दक्षिणाके रूपमें यह सारी पृथ्वी ब्राह्मणोंको दे दी। उसके रुक्मेषु, पृथुरुक्म, ज्यामघ, परिघ और हरि—ये पाँच पुत्र उत्पन्न हुए, जो महान् बलवान् और पराक्रमी थे। उनमेंसे परिघ और हरिको उनके पिताने विदेह देशके राज्यपर स्थापित किया। रुक्मेषु राजा हुआ और पृथुरुक्म उसके अधीन होकर रहने लगा। उन दोनोंने मिलकर अपने भाई ज्यामघको घरसे निकाल दिया। ज्यामघ ऋक्षवान् पर्वतपर जाकर जंगली फल मूलोंसे जीवन निर्वाह करते हुए वहाँ रहने लगे। ज्यामघकी स्त्री शैब्या बड़ी सती साध्वी स्त्री थी। उससे विदर्भ नामक पुत्र हुआ। विदर्भसे तीन पुत्र हुए—क्रथ, कैशिक और लोमपाद। राजकुमार क्रथ और कैशिक बड़े विद्वान् थे तथा लोमपाद परम धर्मात्मा थे। तत्पश्चात् राजा विदर्भने और भी अनेकों पुत्र उत्पन्न किये, जो युद्ध कर्ममें कुशल तथा शूरवीर थे। लोमपादका पुत्र बभ्रु और बभ्रुका पुत्र हेति हुआ। कैशिकके चिदि नामक पुत्र हुआ, जिससे चैद्य राजाओंकी उत्पत्ति बतलायी जाती है।

विदर्भका जो क्रथ नामक पुत्र था, उससे कुन्तिका जन्म हुआ, कुन्तिसे धृष्ट और धृष्टसे धृष्टकी उत्पत्ति हुई। धृष्ट प्रतापी राजा था। उसके पुत्रका नाम निर्वृति था। वह परम धर्मात्मा और शत्रुवीरोंका नाशक था। निर्वृतिके दाशार्ह नामक पुत्र हुआ, जिसका दूसरा नाम विदूरथ था। दाशार्हका पुत्र भीम और भीमका जीमूत हुआ। जीमूतके पुत्रका नाम

विकल था। विकलसे भीमरथ नामक पुत्रकी उत्पत्ति हुई। भीमरथका पुत्र नवरथ, नवरथका दृढरथ और दृढरथका पुत्र शकुनि हुआ। शकुनिसे करम्भ और करम्भसे देवरातका जन्म हुआ। देवरातके पुत्र महायशस्वी राजा देवक्षत्र हुए। देवक्षत्रका पुत्र देवकुमारके समान अत्यन्त तेजस्वी हुआ। उसका नाम मधु था। मधुसे कुरुवशका जन्म हुआ। कुरुवशके पुत्रका नाम पुरुष था। वह पुरुषोंमें श्रेष्ठ हुआ। उससे विदर्भकुमारी भद्रवतीके गर्भसे जन्तुका जन्म हुआ। जन्तुका दूसरा नाम पुरुद्वसु था। जन्तुकी पत्नीका नाम वेत्रकी था। उसके गर्भसे सत्त्वगुणसम्पन्न सात्वतकी उत्पत्ति हुई, जो सात्वतवंशकी कीर्तिका विस्तार करनेवाले थे। सत्त्वगुण-सम्पन्न सात्वतसे उनकी रानी कौसल्याने भजिन, भजमान, दिव्य राजा देवावृध, अन्धक, महाभोज और वृष्णि नामके पुत्रोंको उत्पन्न किया। इनसे चार वंशोंका विस्तार हुआ। उनका वर्णन सुनो। भजमानकी पत्नी सृञ्जयकुमारी सृञ्जयीके गर्भसे भाज नामक पुत्रकी उत्पत्ति हुई। भाजसे भाजकोंका जन्म हुआ। भाजकी दो स्त्रियाँ थीं। उन दोनोंने बहुत-से पुत्र उत्पन्न किये। उनके नाम हैं—विनय, करुण और वृष्णि। इनमें वृष्णि शत्रुके नगरोंपर विजय पानेवाले थे। भाज और उनके पुत्र—सभी भाजक नामसे प्रसिद्ध हुए; क्योंकि भजमानसे इनकी उत्पत्ति हुई थी।

देवावृधसे बभ्रुनामक पुत्रका जन्म हुआ, जो सभी उत्तम गुणोंसे सम्पन्न था। पुराणोंके ज्ञाता विद्वान् पुरुष महात्मा देवावृधके गुणोंका बखान करते हुए इस वंशके विषयमें इस प्रकार अपना उद्गार प्रकट करते हैं—'देवावृध देवताओंके समान हैं और बभ्रु समस्त मनुष्योंमें श्रेष्ठ हैं। देवावृध और बभ्रुके उपदेशसे छिहत्तर हजार मनुष्य मोक्षको प्राप्त हो चुके हैं।' बभ्रुसे भोजका जन्म हुआ, जो यज्ञ, दान और तपस्यामें धीर, ब्राह्मणभक्त, उत्तम व्रतोंका दृढ़तापूर्वक पालन करनेवाले, रूपवान् तथा महातेजस्वी थे। शरकान्तकी कन्या मृतकावती भोजकी पत्नी हुई। उसने भोजसे कुकुर, भजमान, समीक और बलबर्हिष—ये चार पुत्र उत्पन्न किये। कुकुरके पुत्र धृष्णुके धृति, धृतिके कपोतरोमा, कपोतरोमाके नैमित्ति, नैमित्तिके सुसुत और सुसुतके पुत्र नरि हुए। नरि बड़े विद्वान् थे। उनका दूसरा नाम चन्दनोदकदुन्दुभि बतलाया जाता है। उनसे अभिजित् और अभिजित्से पुनर्वसु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। शत्रुविजयी पुनर्वसुसे दो सन्तानें हुईं; एक पुत्र और एक कन्या। पुत्रका नाम आहुक था और कन्याका आहुकी। भोजवंशमें कोई असत्यवादी, तेजोहीन, यज्ञ न करनेवाला, हजारसे कम दान करनेवाला, अपवित्र और मूर्ख नहीं था। भोजसे बढ़कर कोई हुआ ही नहीं। यह भोजवंश आहुकतक आकर समाप्त हो गया।

आहुकने अपनी बहिन आहुकीका व्याह अवन्ती देशमें किया था। आहुककी एक पुत्री भी थी, जिसने दो पुत्र उत्पन्न किये। उनके नाम हैं—देवक और उग्रसेन। वे दोनों देवकुमारों-के समान तेजस्वी हैं। देवकके चार पुत्र हुए, जो देवताओंके समान सुन्दर और वीर हैं। उनके नाम हैं—देववान्, उपदेव, सुदेव और देवरक्षक। उनके सात बहिनें थीं, जिनका व्याह देवकने वसुदेवजीके साथ कर दिया। उन सातोंके नाम इस प्रकार हैं—देवकी, श्रुतदेवा, यशोदा, श्रुतिश्रवा, श्रीदेवा, उपदेवा और सुरूपा। उग्रसेनके नौ पुत्र हुए। उनमें कंस सबसे बड़ा था। शेषके नाम इस प्रकार हैं—न्यग्रोध, सुनामा, कङ्क, शङ्कु, सुभू, राष्ट्रपाल, बद्धमुष्टि और सुमुष्टिक। उनके पाँच बहिनें थीं—कंसा, कंसवती, सुरभी, राष्ट्रपाली और कङ्का। ये सब-की-सब बड़ी सुन्दरी थीं। इस प्रकार सन्तानों-सहित उग्रसेनतक कुकुर-वंशका वर्णन किया गया।

[भोजके दूसरे पुत्र] भजमानके विदूरथ हुआ, वह रथियोंमें प्रधान था। उसके दो पुत्र हुए—राजाधिदेव और शूर। राजाधिदेवके भी दो पुत्र हुए—शोणाश्व और श्वेतवाहन। वे दोनों वीर पुरुषोंके सम्माननीय और क्षत्रिय-धर्मका पालन करनेवाले थे। शोणाश्वके पाँच पुत्र हुए। वे सभी शूरवीर और युद्धकर्ममें कुशल थे। उनके नाम इस प्रकार हैं—शमी, गदवर्मा, निमूर्त, चक्रजित् और शुचि। शमीके पुत्र प्रतिक्षत्र, प्रतिक्षत्रके भोज और भोजके हृदिक हुए। हृदिकके दस पुत्र हुए, जो भयानक पराक्रम दिखानेवाले थे। उनमें कृतवर्मा सबसे बड़ा था। उससे छोटोंके नाम शतधन्वा, देवार्ह, सुभानु, भीषण, महाबल, अजात, विजात, कारक और करम्भक हैं। देवार्हका पुत्र कम्बलबर्हिष हुआ, वह विद्वान् पुरुष था। उसके दो पुत्र हुए—समौजा और असमौजा। अजातके पुत्रसे भी समौजा नामके दो पुत्र उत्पन्न हुए। समौजाके तीन पुत्र हुए, जो परम धार्मिक और पराक्रमी थे। उनके नाम हैं—सुदश, सुरांश और कृष्ण।

[सात्वतके कनिष्ठ पुत्र] वृष्णिके वंशमें अनमित्र नामके प्रसिद्ध राजा हो गये हैं, वे अपने पिताके कनिष्ठ पुत्र थे। उनसे शिनि नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। अनमित्रसे वृष्णिवीर युधाजित्का

भी जन्म हुआ। उनके सिवा दो वीर पुत्र और हुए, जो ऋषभ और क्षत्रके नामसे विख्यात हुए। उनमेंसे ऋषभने काशिराजकी पुत्रीको पत्नीके रूपमें ग्रहण किया। उससे जयन्तकी उत्पत्ति हुई। जयन्तने जयन्ती नामकी सुन्दरी भार्याके साथ विवाह किया। उनके गर्भसे एक सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ, जो सदा यज्ञ करनेवाला, अत्यन्त धैर्यवान्, शास्त्रज्ञ और अतिथियोंका प्रेमी था। उसका नाम अक्रूर था। अक्रूर यज्ञकी दीक्षा ग्रहण करनेवाले और बहुत-सी दक्षिणा देनेवाले थे। उन्होंने रत्नकुमारी शैब्याके साथ विवाह किया और उसके गर्भसे ग्यारह महाबली पुत्रोंको उत्पन्न किया। अक्रूरने पुनः शूरसेना नामकी पत्नीके गर्भसे देववान् और उपदेव नामक दो और पुत्रोंको जन्म दिया। इसी प्रकार उन्होंने अश्विनी नामकी पत्नीसे भी कई पुत्र उत्पन्न किये।

[विदूरथकी पत्नी] ऐक्ष्वाकीने मीढुष नामक पुत्रको जन्म दिया। उनका दूसरा नाम शूर भी था। शूरने भोजाके गर्भसे दस पुत्र उत्पन्न किये। उनमें आनकदुन्दुभि नामसे प्रसिद्ध महाबाहु वसुदेव ज्येष्ठ थे। उनके सिवा शेष पुत्रोंके नाम इस प्रकार हैं—देवभाग, देवश्रवा, अनाधृष्टि, कुनि, नन्दि, सकृद्यशा, श्याम, समीद्ध और शमस्यु। शूरसे पाँच सुन्दरी कन्याएँ भी उत्पन्न हुईं, जिनके नाम हैं—श्रुतकीर्ति, पृथा, श्रुतदेवी, श्रुतश्रवा और राजाधिदेवी। ये पाँचों वीर पुत्रोंकी जननी थीं। श्रुतदेवीका विवाह वृद्ध नामक राजाके साथ हुआ। उसने कारूष नामक पुत्र उत्पन्न किया। श्रुतकीर्तिने केकयनरेशके अंशसे मन्तर्दन को जन्म दिया। श्रुतश्रवा चेदिराजकी पत्नी थी। उसके गर्भसे सुनीथ (शिशुपाल)का जन्म हुआ। राजाधिदेवीके गर्भसे धर्मकी भार्या अभिमर्दिताने जन्म ग्रहण किया। शूरकी राजा कुन्तिभोजके साथ मैत्री थी, अतः उन्होंने अपनी कन्या पृथाको उन्हें गोद दे दिया। इस प्रकार वसुदेवकी बहिन पृथा कुन्तिभोजकी कन्या होनेके कारण कुन्तीके नामसे प्रसिद्ध हुई। कुन्तिभोजने महाराज पाण्डुके साथ कुन्तीका विवाह किया। कुन्तीसे तीन पुत्र उत्पन्न हुए—युधिष्ठिर, भीमसेन और अर्जुन। अर्जुन इन्द्रके समान पराक्रमी हैं। वे देवताओंके कार्य सिद्ध करनेवाले, सम्पूर्ण दानवोंके नाशक तथा इन्द्रके लिये भी अवध्य हैं। उन्होंने दानवोंका संहार किया है। पाण्डुकी दूसरी रानी माद्रवती (माद्री)के गर्भसे दो पुत्रोंकी उत्पत्ति सुनी गयी है, जो नकुल और सहदेव नामसे प्रसिद्ध हैं। वे दोनों रूपवान् और सत्त्वगुणी हैं। वसुदेवजीकी दूसरी पत्नी रोहिणीने, जो पुरुवंशकी कन्या हैं, ज्येष्ठ पुत्रके रूपमें बलरामको उत्पन्न किया। तत्पश्चात् उनके गर्भसे रणप्रेमी सारण, दुर्धर, दमन और लंबी ठोढ़ीवाले पिण्डारक उत्पन्न हुए। वसुदेवजीकी पत्नी जो देवकी देवी हैं, उनके गर्भसे पहले छः महाबाहु प्रजापतिके अंशभूत बालक उत्पन्न हुए। फिर [कंसके द्वारा उनके मारे जानेपर] श्रीकृष्णका अवतार हुआ। विजय, रोचमान, वर्द्धमान और देवल—ये सभी महात्मा उपदेवीके गर्भसे उत्पन्न हुए हैं। श्रुतदेवीने महाभाग गवेषणको जन्म दिया, जो संग्राममें पराजित होनेवाले नहीं थे।

[अब श्रीकृष्णके प्रादुर्भावकी कथा कही जाती है।] जो श्रीकृष्णके जन्म और वृद्धिकी कथाका प्रतिदिन पाठ या श्रवण करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।* पूर्वकालमें जो प्रजाओंके स्वामी थे, वे ही महादेव श्रीकृष्ण लीलाके लिये इस समय मनुष्योंमें अवतीर्ण हुए हैं। पूर्वजन्ममें देवकी और वसुदेवजीने तपस्या की थी, उसीके प्रभावसे वसुदेवजीके द्वारा देवकीके गर्भसे भगवान्‌का प्रादुर्भाव हुआ। उस समय उनके नेत्र कमलके समान शोभा पा रहे थे। उनके चार भुजाएँ थीं। उनका दिव्य रूप



मनुष्योंका मन मोहनेवाला था। श्रीवत्ससे चिह्नित एवं शङ्ख

* कृष्णस्य जन्माभ्युदयं यः कीर्तयति नित्यशः।
शृणोति वा नरो नित्यं सर्वपापैः प्रमुच्यते॥
(१३। १३८)

चक्र आदि लक्षणोंसे युक्त भगवान्‌के दिव्य विग्रहको देखकर वसुदेवजी बोले—'प्रभो! इस रूपको छिपा लीजिये। मैं कंससे डरा हुआ हूँ, इसीलिये ऐसा कहता हूँ। उसने मेरे छः पुत्रोंको, जो देखनेमें बहुत ही सुन्दर थे, मार डाला है।' वसुदेवजीकी बात सुनकर भगवान्‌ने अपने दिव्यरूपको छिपा लिया। फिर भगवान्‌की आज्ञा लेकर वसुदेवजी उन्हें नन्दके घर ले गये और नन्द गोपको देकर बोले—'आप इस बालककी रक्षा करें; क्योंकि इससे सम्पूर्ण यादवोंका कल्याण होगा। देवकीका यह बालक जबतक कंसका वध नहीं करेगा, तबतक इस पृथ्वीपर भार बढ़ानेवाले अमङ्गलमय उपद्रव होते रहेंगे। भूतलपर जितने दुष्ट राजा हैं, उन सबका यह संहार करेगा। यह बालक साक्षात् भगवान् है। ये भगवान् कौरव-पाण्डवोंके युद्धमें सम्पूर्ण क्षत्रियोंके एकत्रित होनेपर अर्जुनके सारथिका काम करेंगे और पृथ्वीको क्षत्रिय-हीन करके उसका उपभोग एवं पालन करेंगे और अन्तमें समस्त यदुवंशको देवलोकमें पहुँचायेंगे।'

भीष्मने पूछा—ब्रह्मन्! ये वसुदेव कौन थे? यशस्विनी देवकीदेवी कौन थीं तथा ये नन्दगोप और उनकी पत्नी महाव्रता यशोदा कौन थीं? जिसने बालकरूपमें भगवान्‌को जन्म दिया और जिसने उनका पालन-पोषण किया, उन दोनों स्त्रियोंका परिचय दीजिये।

पुलस्त्यजी बोले—राजन्! पुरुष वसुदेवजी कश्यप हैं और उनकी प्रिया देवकी अदिति कही गयी हैं। कश्यप ब्रह्माजीके अंश हैं और अदिति पृथ्वीका। इसी प्रकार द्रोण-नामक वसु ही नन्दगोपके नामसे विख्यात हुए हैं तथा उनकी पत्नी धरा यशोदा हैं। देवी देवकीने पूर्वजन्ममें अजन्मा परमेश्वरसे जो कामना की थी, उसकी वह कामना महाबाहु श्रीकृष्णने पूर्ण कर दी। यज्ञानुष्ठान बंद हो गया था, धर्मका उच्छेद हो रहा था; ऐसी अवस्थामें धर्मकी स्थापना और पापी असुरोंका संहार करनेके लिये भगवान् श्रीविष्णु वृष्णि-कुलमें प्रकट हुए हैं। रुक्मिणी, सत्यभामा, नग्नजित्‌की पुत्री सत्या, सुमित्रा, शैब्या, गान्धार-राजकुमारी लक्ष्मणा, सुभीमा, मद्रराजकुमारी कौसल्या और विरजा आदि सोलह हजार देवियाँ श्रीकृष्णकी पत्नियाँ हैं। रुक्मिणीने दस पुत्र उत्पन्न किये; वे सभी युद्धकर्ममें कुशल हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—महाबली प्रद्युम्न, रणशूर चारुदेष्ण, सुचारु, चारुभद्र, सदश्व, ह्रस्व, चारुगुप्त, चारुभद्र, चारुक और चारुहास। इनमें प्रद्युम्न सबसे बड़े और चारुहास सबसे छोटे हैं। रुक्मिणीने एक कन्याको भी जन्म दिया, जिसका नाम चारुमती है। सत्यभामासे भानु, भीमरथ, क्षण, रोहित, दीप्तिमान्, ताम्रबन्ध और जलन्धम—ये सात पुत्र उत्पन्न हुए। इन सातोंके एक छोटी बहिन भी है। जाम्बवतीके पुत्र साम्ब हुए, जो बड़े ही सुन्दर हैं। ये सौर-शास्त्रके प्रणेता तथा प्रतिमा एवं मन्दिरके निर्माता हैं। मित्रविन्दाने सुमित्र, चारुमित्र और मित्रविन्दको जन्म दिया। मित्रबाहु और सुनीथ आदि सत्याके पुत्र हैं। इस प्रकार श्रीकृष्ण-के हजारों पुत्र हुए। प्रद्युम्नके विदर्भकुमारी रुक्मवती-के गर्भसे अनिरुद्ध नामक परम बुद्धिमान् पुत्र उत्पन्न हुआ। अनिरुद्धजी संग्राममें उत्साहपूर्वक युद्ध करनेवाले वीर हैं। अनिरुद्धसे मृगकेतनका जन्म हुआ। राजा सुपार्श्वकी पुत्री काम्याने साम्बसे तरस्वी नामक पुत्र प्राप्त किया। प्रमुख वीर एवं महात्मा यादवोंकी संख्या तीन करोड़ साठ लाखके लगभग है। वे सभी अत्यन्त पराक्रमी और महाबली हैं। उन सबकी देवताओंके अंशसे उत्पत्ति हुई है। देवासुर-संग्राममें जो महाबली असुर मारे गये थे, वे इस मनुष्यलोकमें उत्पन्न होकर सबको कष्ट दे रहे थे; उन्हींका संहार करनेके लिये भगवान् यदुकुलमें अवतीर्ण हुए हैं। महात्मा यादवोंके एक सौ एक कुल हैं। भगवान् श्रीकृष्ण ही उन सबके नेता और स्वामी हैं तथा सम्पूर्ण यादव भी भगवान्‌की आज्ञाके अधीन रहकर ऋद्धि-सिद्धिसे सम्पन्न हो रहे हैं।*



* भीष्मजी भगवान् श्रीकृष्णसे अवस्थामें बहुत बड़े थे। ऐसी दशामें जिस समय उनके साथ पुलस्त्यजीका संवाद हो रहा था, उस समय संभवतः श्रीकृष्णका जन्म न हुआ हो। फिर भी पुलस्त्यजी त्रिकालदर्शी ऋषि हैं, इसलिये उनके लिये भावी घटनाओंका भी वर्तमान अथवा भूतकी भाँति वर्णन करना अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता।

पुरुषोंको ही वहाँ निवास करना चाहिये या स्त्रियोंको भी? अथवा सभी वर्णों एवं आश्रमोंके लोग वहाँ निवास कर सकते हैं?

पुलस्त्यजी बोले—राजन्! सभी वर्णों एवं आश्रमोंके पुरुषों और स्त्रियोंको भी उस तीर्थमें निवास करना चाहिये। सबको अपने-अपने धर्म और आचारका पालन करते हुए दम्भ और मोहका परित्याग करके रहना उचित है। सभी मन, वाणी और कर्मसे ब्रह्माजीके भक्त एवं जितेन्द्रिय हों। कोई किसीके प्रति दोष-दृष्टि न करे। सब मनुष्य सम्पूर्ण प्राणियोंके हितैषी हों; किसीके भी हृदयमें खोटा भाव नहीं रहना चाहिये।

भीष्मजीने पूछा—ब्रह्मन्! क्या करनेसे मनुष्य इस लोकमें ब्रह्माजीका भक्त कहलाता है? मनुष्योंमें कैसे लोग ब्रह्मभक्त माने गये हैं? यह मुझे बताइये।

पुलस्त्यजी बोले—राजन्! भक्ति तीन प्रकारकी कही गयी है—मानस, वाचिक और कायिक। इसके सिवा भक्तिके तीन भेद और हैं—लौकिक, वैदिक तथा आध्यात्मिक। ध्यान-धारणापूर्वक बुद्धिके द्वारा वेदार्थका जो विचार किया जाता है, उसे मानस भक्ति कहते हैं। यह ब्रह्माजीकी प्रसन्नता बढ़ानेवाली है। मन्त्र-जप, वेदपाठ तथा आरण्यकोंके जपसे होनेवाली भक्ति वाचिक कहलाती है। मन और इन्द्रियोंको रोकनेवाले व्रत, उपवास, नियम, कृच्छ्र, सान्तपन तथा चान्द्रायण आदि भिन्न-भिन्न व्रतोंसे, ब्रह्मकृच्छ्रनामक उपवाससे एवं अन्यान्य शुभ नियमोंके अनुष्ठानसे जो भगवान्‌की आराधना की जाती है, उसको कायिक भक्ति कहते हैं। यह द्विजातियोंकी त्रिविध भक्ति बतायी गयी। गायके घी, दूध और दही, रत्न, दीप, कुश, जल, चन्दन, माला, विविध धातुओं तथा पदार्थ, काले अगरकी सुगन्धसे युक्त एवं घी और गूगलसे बने हुए धूप, आभूषण, सुवर्ण और रत्न आदिसे निर्मित विचित्र-विचित्र हार, नृत्य, वाद्य, संगीत, सब प्रकारके जंगली फल-मूलोंके उपहार तथा भक्ष्य-भोज्य आदि नैवेद्य अर्पण करके मनुष्य ब्रह्माजीके उद्देश्यसे जो पूजा करते हैं, वह लौकिक भक्ति मानी गयी है। ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेदके मन्त्रोंका जप और संहिताओंका अध्ययन आदि कर्म यदि ब्रह्माजीके उद्देश्यसे किये जाते हैं, तो वह वैदिक भक्ति कहलाती है। वेद-मन्त्रोंके उच्चारणपूर्वक हविष्यकी आहुति देकर जो क्रिया सम्पन्न की जाती है, वह भी वैदिक भक्ति मानी गयी है। अमावास्या अथवा पूर्णिमाको जो अग्निहोत्र किया जाता है, यज्ञोंमें जो उत्तम दक्षिणा दी जाती है, तथा देवताओंको जो पुरोडाश और चरु अर्पण किये जाते हैं—ये सब वैदिक भक्तिके अन्तर्गत हैं। इष्टि, धृति, यज्ञ-सम्बन्धी सोमपान तथा अग्नि, पृथ्वी, वायु, आकाश, चन्द्रमा, मेघ और सूर्यके उद्देश्यसे किये हुए जितने कर्म हैं, उन सबके देवता ब्रह्माजी ही हैं।

राजन्! ब्रह्माजीकी आध्यात्मिक भक्ति दो प्रकारकी मानी गयी है—एक सांख्यज और दूसरी योगज। इन दोनोंका भेद सुनो। प्रधान (मूल प्रकृति) आदि प्राकृत तत्त्व संख्यामें चौबीस हैं। वे सब-के-सब जड एवं भोग्य हैं। उनका भोक्ता पुरुष पचीसवाँ तत्त्व है, वह चेतन है। इस प्रकार संख्यापूर्वक प्रकृति और पुरुषके तत्त्वको ठीक-ठीक जानना सांख्यज भक्ति है। इसे सत्पुरुषोंने सांख्य-शास्त्रके अनुसार आध्यात्मिक भक्ति माना है। अब ब्रह्माजीकी योगज भक्तिका वर्णन सुनो। प्रतिदिन प्राणायामपूर्वक ध्यान लगाये, इन्द्रियोंका संयम करे और समस्त इन्द्रियोंको विषयोंकी ओरसे खींचकर हृदयमें धारण करके प्रजानाथ ब्रह्माजीका इस प्रकार ध्यान करे। हृदयके भीतर कमल है, उसकी कर्णिकापर ब्रह्माजी विराजमान हैं। वे रक्त वस्त्र धारण किये हुए हैं, उनके नेत्र सुन्दर हैं। सब ओर उनके मुख प्रकाशित हो रहे हैं। ब्रह्मसूत्र (यज्ञोपवीत) कमरके ऊपरतक लटका हुआ है, उनके शरीरका वर्ण लाल है, चार भुजाएँ शोभा पा रही हैं तथा हाथोंमें वरद और अभयकी मुद्राएँ हैं। इस प्रकारके ध्यानकी स्थिरता योगजन्य मानस सिद्धि है; यही ब्रह्माजीके प्रति होनेवाली पराभक्ति मानी गयी है। जो भगवान् ब्रह्माजीमें ऐसी भक्ति रखता है, वह ब्रह्मभक्त कहलाता है।

राजन्! अब पुष्कर क्षेत्रमें निवास करनेवाले पुरुषोंके पालन करने योग्य आचारका वर्णन सुनो। पूर्वकालमें जब विष्णु आदि देवताओंका वहाँ समागम हुआ था, उस समय सबकी उपस्थितिमें ब्रह्माजीने स्वयं ही क्षेत्रनिवासियोंके कर्तव्यको विस्तारके साथ बतलाया था। पुष्कर क्षेत्रमें निवास करनेवालोंको उचित है कि वे ममता और अहंकारको पास न आने दें। आसक्ति और संग्रहकी वृत्तिका परित्याग करें। बन्धु-बान्धवोंके प्रति भी उनके मनमें आसक्ति नहीं रहनी चाहिये। वे ढेले, पत्थर और सुवर्णको समान समझें।

पुष्कर तीर्थकी महिमा, वहाँ वास करनेवाले लोगोंके लिये नियम तथा आश्रम-धर्मका निरूपण

पुलस्त्यजी कहते हैं—राजन् ! मेरु गिरिके शिखरपर श्रीनिधान नामक एक नगर है, जो नाना प्रकारके रत्नोंसे सुशोभित, अनेक आश्चर्योंका घर तथा बहुतेरे वृक्षोंसे हरा भरा है। भाँति भाँतिकी अद्भुत धातुओंसे उसकी बड़ी विचित्र शोभा होती है। वह स्वच्छ स्फटिक मणिके समान निर्मल दिखायी देता है। वहाँ ब्रह्माजीका वैराज नामक भवन है, जहाँ देवताओंको सुख देनेवाली कान्तिमती नामकी सभा है। वह मुनि समुदायसे सेवित तथा ऋषि-महर्षियोंसे भरी रहती है। एक दिन देवेश्वर ब्रह्माजी उसी सभामें बैठकर जगत्का निर्माण करनेवाले परमेश्वरका ध्यान कर रहे थे।



ध्यान करते-करते उनके मनमें यह विचार उठा कि 'मैं किस प्रकार यज्ञ करूँ ? भूतलपर कहाँ और किस स्थानपर मुझे यज्ञ करना चाहिये ? काशी, प्रयाग, तुङ्गा (तुङ्गभद्रा), नैमिषारण्य, पुष्कर, काञ्ची, भद्रा, देविका, कुरुक्षेत्र, सरस्वती और प्रभास आदि बहुत से तीर्थ हैं। भूमण्डलमें चारों ओर जितने पुण्य तीर्थ और क्षेत्र हैं, उन सबको मेरी आज्ञासे रुद्रने प्रकट किया है। जिसमें मेरी उत्पत्ति हुई है, भगवान् श्रीविष्णुकी नाभिसे प्रकट हुए उस कमलको ही वेदपाठी ऋषि पुष्कर तीर्थ कहते हैं (पुष्कर तीर्थ उसीका व्यक्तरूप है)। इस प्रकार विचार करते करते प्रजापति ब्रह्माके मनमें यह बात आयी कि अब मैं पृथ्वीपर चलूँ। यह सोचकर वे अपनी उत्पत्तिके प्राचीन स्थानपर आये और वहाँके उत्तम वनमें प्रविष्ट हुए, जो नाना प्रकारके वृक्षों और लताओंसे व्याप्त एवं भाँति भाँतिके फूलोंसे सुशोभित था। वहाँ पहुँचकर उन्होंने क्षेत्रकी स्थापना की, जिसका यथार्थरूपसे वर्णन करता हूँ। चन्द्रनदीके उत्तर प्राची सरस्वतीतक और नन्दन नामक स्थानसे पूर्व कल्प्य या कल्पनामक स्थानतक जितनी भूमि है, वह सब पुष्कर तीर्थके नामसे प्रसिद्ध है। इसमें लोककर्ता ब्रह्माजीने यज्ञ करनेके निमित्त वेदी बनायी। ब्रह्माजीने वहाँ तीन पुष्करोंकी कल्पना की। प्रथम ज्येष्ठ पुष्कर तीर्थ समझना चाहिये, जो तीनों लोकोंको पवित्र करनेवाला और विख्यात है। उसके देवता साक्षात् ब्रह्माजी हैं। दूसरा मध्यम पुष्कर है, जिसके देवता विष्णु हैं तथा तीसरा कनिष्ठ पुष्कर है, जिसके देवता भगवान् रुद्र हैं। यह पुष्कर नामक वन आदि, प्रधान एवं गुह्य क्षेत्र है। वेदमें भी इसका वर्णन आता है। इस तीर्थमें भगवान् ब्रह्मा सदा निवास करते हैं। उन्होंने भूमण्डलके इस भागपर बड़ा अनुग्रह किया है। पृथ्वीपर विचरनेवाले सम्पूर्ण जीवोंपर कृपा करनेके लिये ही ब्रह्माजीने इस तीर्थको प्रकट किया है। यहाँकी यज्ञवेदीको उन्होंने सुवर्ण और हीरेसे मढ़ा दिया तथा नाना प्रकारके रत्नोंसे सुसज्जित करके उसके फर्शको सब प्रकारसे सुशोभित एवं विचित्र बना दिया। तत्पश्चात् लोकपितामह भगवान् ब्रह्माजी वहाँ आनन्दपूर्वक रहने लगे। साथ ही भगवान् श्रीविष्णु, रुद्र, आठों वसु, दोनों अश्विनीकुमार, मरुद्गण तथा स्वर्गवासी देवता भी देवराज इन्द्रके साथ वहाँ आकर विहार करने लगे। यह तीर्थ सम्पूर्ण लोकोंपर अनुग्रह करनेवाला है। मैंने इसकी यथार्थ महिमाका तुमसे वर्णन किया है। जो ब्राह्मण अग्निहोत्र परायण होकर संहिताके क्रमसे विधिपूर्वक मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए इस तीर्थमें वेदोंका पाठ करते हैं, वे सब लोग ब्रह्माजीके कृपापात्र होकर उन्हींके समीप निवास करते हैं।

भीष्मजीने पूछा—भगवन् ! तीर्थनिवासी मनुष्योंको पुष्कर वनमें किस विधिसे रहना चाहिये ? क्या केवल

पुरुषोंको ही वहाँ निवास करना चाहिये या स्त्रियोंको भी? अथवा सभी वर्णों एवं आश्रमोंके लोग वहाँ निवास कर सकते हैं?

पुलस्त्यजी बोले—राजन्! सभी वर्णों एवं आश्रमोंके पुरुषों और स्त्रियोंको भी उस तीर्थमें निवास करना चाहिये। सबको अपने-अपने धर्म और आचारका पालन करते हुए दम्भ और मोहका परित्याग करके रहना उचित है। सभी मन, वाणी और कर्मसे ब्रह्माजीके भक्त एवं जितेन्द्रिय हों। कोई किसीके प्रति दोष-दृष्टि न करे। सब मनुष्य सम्पूर्ण प्राणियोंके हितैषी हों; किसीके भी हृदयमें खोटा भाव नहीं रहना चाहिये।

भीष्मजीने पूछा—ब्रह्मन्! क्या करनेसे मनुष्य इस लोकमें ब्रह्माजीका भक्त कहलाता है? मनुष्योंमें कैसे लोग ब्रह्मभक्त माने गये हैं? यह मुझे बताइये।

पुलस्त्यजी बोले—राजन्! भक्ति तीन प्रकारकी कही गयी है—मानस, वाचिक और कायिक। इसके सिवा भक्तिके तीन भेद और हैं—लौकिक, वैदिक तथा आध्यात्मिक। ध्यान-धारणापूर्वक बुद्धिके द्वारा वेदार्थका जो विचार किया जाता है, उसे मानस भक्ति कहते हैं। यह ब्रह्माजीकी प्रसन्नता बढ़ानेवाली है। मन्त्र-जप, वेदपाठ तथा आरण्यकोंके जपसे होनेवाली भक्ति वाचिक कहलाती है। मन और इन्द्रियोंको रोकनेवाले व्रत, उपवास, नियम, कृच्छ्र, सान्तपन तथा चान्द्रायण आदि भिन्न-भिन्न व्रतोंसे, ब्रह्मकृच्छ्रनामक उपवाससे एवं अन्यान्य शुभ नियमोंके अनुष्ठानसे जो भगवान्‌की आराधना की जाती है, उसको कायिक भक्ति कहते हैं। यह द्विजातियोंकी त्रिविध भक्ति बतायी गयी। गायके घी, दूध और दही, रत्न, दीप, कुश, जल, चन्दन, माला, विविध धातुओं तथा पदार्थ, काले अगरकी सुगन्धसे युक्त एवं घी और गूगलसे बने हुए धूप, आभूषण, सुवर्ण और रत्न आदिसे निर्मित विचित्र-विचित्र हार, नृत्य, वाद्य, संगीत, सब प्रकारके जंगली फल-मूलोंके उपहार तथा भक्ष्य-भोज्य आदि नैवेद्य अर्पण करके मनुष्य ब्रह्माजीके उद्देश्यसे जो पूजा करते हैं, वह लौकिक भक्ति मानी गयी है। ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेदके मन्त्रोंका जप और संहिताओंका अध्यापन आदि कर्म यदि ब्रह्माजीके उद्देश्यसे किये जाते हैं, तो वह वैदिक भक्ति कहलाती है। वेद-मन्त्रोंके उच्चारणपूर्वक हविष्यकी आहुति देकर जो क्रिया सम्पन्न की जाती है, वह भी वैदिक भक्ति मानी गयी है। अमावास्या अथवा पूर्णिमाको जो अग्निहोत्र किया जाता है, यज्ञोंमें जो उत्तम दक्षिणा दी जाती है, तथा देवताओंको जो पुरोडाश और चरु अर्पण किये जाते हैं—ये सब वैदिक भक्तिके अन्तर्गत हैं। इष्टि, धृति, यज्ञ-सम्बन्धी सोमपान तथा अग्नि, पृथ्वी, वायु, आकाश, चन्द्रमा, मेघ और सूर्यके उद्देश्यसे किये हुए जितने कर्म हैं, उन सबके देवता ब्रह्माजी ही हैं।

राजन्! ब्रह्माजीकी आध्यात्मिक भक्ति दो प्रकारकी मानी गयी है—एक सांख्यज और दूसरी योगज। इन दोनोंका भेद सुनो। प्रधान (मूल प्रकृति) आदि प्राकृत तत्त्व संख्यामें चौबीस हैं। वे सब-के-सब जड एवं भोग्य हैं। उनका भोक्ता पुरुष पचीसवाँ तत्त्व है, वह चेतन है। इस प्रकार संख्यापूर्वक प्रकृति और पुरुषके तत्त्वको ठीक-ठीक जानना सांख्यज भक्ति है। इसे सत्पुरुषोंने सांख्य-शास्त्रके अनुसार आध्यात्मिक भक्ति माना है। अब ब्रह्माजीकी योगज भक्तिका वर्णन सुनो। प्रतिदिन प्राणायामपूर्वक ध्यान लगाये, इन्द्रियोंका संयम करे और समस्त इन्द्रियोंको विषयोंकी ओरसे खींचकर हृदयमें धारण करके प्रजानाथ ब्रह्माजीका इस प्रकार ध्यान करे। हृदयके भीतर कमल है, उसकी कर्णिकापर ब्रह्माजी विराजमान हैं। वे रक्त वस्त्र धारण किये हुए हैं, उनके नेत्र सुन्दर हैं। सब ओर उनके मुख प्रकाशित हो रहे हैं। ब्रह्मसूत्र (यज्ञोपवीत) कमरके ऊपरतक लटका हुआ है, उनके शरीरका वर्ण लाल है, चार भुजाएँ शोभा पा रही हैं तथा हाथोंमें वरद और अभयकी मुद्राएँ हैं। इस प्रकारके ध्यानकी स्थिरता योगजन्य मानस सिद्धि है; यही ब्रह्माजीके प्रति होनेवाली पराभक्ति मानी गयी है। जो भगवान् ब्रह्माजीमें ऐसी भक्ति रखता है, वह ब्रह्मभक्त कहलाता है।

राजन्! अब पुष्कर क्षेत्रमें निवास करनेवाले पुरुषोंके पालन करने योग्य आचारका वर्णन सुनो। पूर्वकालमें जब विष्णु आदि देवताओंका वहाँ समागम हुआ था, उस समय सबकी उपस्थितिमें ब्रह्माजीने स्वयं ही क्षेत्रनिवासियोंके कर्तव्यको विस्तारके साथ बतलाया था। पुष्कर क्षेत्रमें निवास करनेवालोंको उचित है कि वे ममता और अहंकारको पास न आने दें। आसक्ति और संग्रहकी वृत्तिका परित्याग करें। बन्धु-बान्धवोंके प्रति भी उनके मनमें आसक्ति नहीं रहनी चाहिये। वे ढेले, पत्थर और सुवर्णको समान समझें।

पुष्कर तीर्थकी महिमा, वहाँ वास करनेवाले लोगोंके लिये नियम तथा आश्रम-धर्मका निरूपण

पुलस्त्यजी कहते हैं—राजन् ! मेरु गिरिके शिखरपर श्रीनिधान नामक एक नगर है, जो नाना प्रकारके रत्नोंसे सुशोभित, अनेक आश्चर्योंका घर तथा बहुतेरे वृक्षोंसे हरा भरा है। भाँति भाँतिकी अद्भुत धातुओंसे उसकी बड़ी विचित्र शोभा होती है। वह स्वच्छ स्फटिक मणिके समान निर्मल दिखायी देता है। वहाँ ब्रह्माजीका वैराज नामक भवन है, जहाँ देवताओंको सुख देनेवाली कान्तिमती नामकी सभा है। वह मुनिसमुदायसे सेवित तथा ऋषि महर्षियोंसे भरी रहती है। एक दिन देवेश्वर ब्रह्माजी उसी सभामें बैठकर जगत्का निर्माण करनेवाले परमेश्वरका ध्यान कर रहे थे।



ध्यान करते-करते उनके मनमें यह विचार उठा कि 'मैं किस प्रकार यज्ञ करूँ ? भूतलपर कहाँ और किस स्थानपर मुझे यज्ञ करना चाहिये ? काशी, प्रयाग, तुङ्गा (तुङ्गभद्रा), नैमिषारण्य, पुष्कर, काञ्ची, भद्रा, देविका, कुरुक्षेत्र, सरस्वती और प्रभास आदि बहुत-से तीर्थ हैं। भूमण्डलमें चारों ओर जितने पुण्य तीर्थ और क्षेत्र हैं, उन सबको मेरी आज्ञासे रुद्रने प्रकट किया है। जिससे मेरी उत्पत्ति हुई है, भगवान् श्रीविष्णुकी नाभिसे प्रकट हुए उस कमलको ही वेदपाठी ऋषि पुष्कर तीर्थ कहते हैं (पुष्कर तीर्थ उसीका व्यक्तरूप है)। इस प्रकार विचार करते करते प्रजापति ब्रह्माके मनमें यह बात आयी कि अब मैं पृथ्वीपर चलूँ। यह सोचकर वे अपनी उत्पत्तिके प्राचीन स्थानपर आये और वहाँके उत्तम वनमें प्रविष्ट हुए, जो नाना प्रकारके वृक्षों और लताओंसे व्याप्त एवं भाँति भाँतिके फूलोंसे सुशोभित था। वहाँ पहुँचकर उन्होंने क्षेत्रकी स्थापना की, जिसका यथार्थरूपसे वर्णन करता हूँ। चन्द्रनदीके उत्तर प्राची सरस्वतीतक और नन्दन नामक स्थानसे पूर्व कम्य या कल्पनामक स्थानतक जितनी भूमि है, वह सब पुष्कर तीर्थके नामसे प्रसिद्ध है। इसमें लोककर्ता ब्रह्माजीने यज्ञ करनेके निमित्त वेदी बनायी। ब्रह्माजीने वहाँ तीन पुष्करोंकी कल्पना की। प्रथम ज्येष्ठ पुष्कर तीर्थ समझना चाहिये, जो तीनों लोकोंको पवित्र करनेवाला और विख्यात है। उसके देवता साक्षात् ब्रह्माजी हैं। दूसरा मध्यम पुष्कर है, जिसके देवता विष्णु हैं तथा तीसरा कनिष्ठ पुष्कर है, जिसके देवता भगवान् रुद्र हैं। यह पुष्कर नामक वन आदि, प्रधान एवं गुह्य क्षेत्र है। वेदमें भी इसका वर्णन आता है। इस तीर्थमें भगवान् ब्रह्मा सदा निवास करते हैं। उन्होंने भूमण्डलके इस भागपर बड़ा अनुग्रह किया है। पृथ्वीपर विचरनेवाले सम्पूर्ण जीवोंपर कृपा करनेके लिये ही ब्रह्माजीने इस तीर्थको प्रकट किया है। यहाँकी यज्ञवेदीको उन्होंने सुवर्ण और हीरेसे मढ़ा दिया तथा नाना प्रकारके रत्नोंसे सुसज्जित करके उसके फर्शको सब प्रकारसे सुशोभित एवं विचित्र बना दिया। तत्पश्चात् लोकपितामह भगवान् ब्रह्माजी वहाँ आनन्दपूर्वक रहने लगे। साथ ही भगवान् श्रीविष्णु, रुद्र, आठों वसु, दोनों अश्विनीकुमार, मरुद्गण तथा स्वर्गवासी देवता भी देवराज इन्द्रके साथ वहाँ आकर विहार करने लगे। यह तीर्थ सम्पूर्ण लोकोंपर अनुग्रह करनेवाला है। मैंने इसकी यथार्थ महिमाका तुमसे वर्णन किया है। जो ब्राह्मण अग्निहोत्र परायण होकर संहिताके क्रमसे विधिपूर्वक मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए इस तीर्थमें वेदोंका पाठ करते हैं, वे सब लोग ब्रह्माजीके कृपापात्र होकर उन्हींके समीप निवास करते हैं।

भीष्मजीने पूछा—भगवन् ! तीर्थनिवासी मनुष्योंको पुष्कर वनमें किस विधिसे रहना चाहिये ? क्या केवल

पुरुषोंको ही वहाँ निवास करना चाहिये या स्त्रियोंको भी ? अथवा सभी वर्णों एवं आश्रमोंके लोग वहाँ निवास कर सकते हैं ?

पुलस्त्यजी बोले—राजन् ! सभी वर्णों एवं आश्रमोंके पुरुषों और स्त्रियोंको भी उस तीर्थमें निवास करना चाहिये। सबको अपने-अपने धर्म और आचारका पालन करते हुए दम्भ और मोहका परित्याग करके रहना उचित है। सभी मन, वाणी और कर्मसे ब्रह्माजीके भक्त एवं जितेन्द्रिय हों। कोई किसीके प्रति दोष-दृष्टि न करे। सब मनुष्य सम्पूर्ण प्राणियोंके हितैषी हों; किसीके भी हृदयमें खोटा भाव नहीं रहना चाहिये।

भीष्मजीने पूछा—ब्रह्मन् ! क्या करनेसे मनुष्य इस लोकमें ब्रह्माजीका भक्त कहलाता है ? मनुष्योंमें कैसे लोग ब्रह्मभक्त माने गये हैं ? यह मुझे बताइये।

पुलस्त्यजी बोले—राजन् ! भक्ति तीन प्रकारकी कही गयी है—मानस, वाचिक और कायिक। इसके सिवा भक्तिके तीन भेद और हैं—लौकिक, वैदिक तथा आध्यात्मिक। ध्यान-धारणापूर्वक बुद्धिके द्वारा वेदार्थका जो विचार किया जाता है, उसे मानस भक्ति कहते हैं। यह ब्रह्माजीकी प्रसन्नता बढ़ानेवाली है। मन्त्र-जप, वेदपाठ तथा आरण्यकोंके जपसे होनेवाली भक्ति वाचिक कहलाती है। मन और इन्द्रियोंको रोकनेवाले व्रत, उपवास, नियम, कृच्छ्र, सान्तपन तथा चान्द्रायण आदि भिन्न-भिन्न व्रतोंसे, ब्रह्मकृच्छ्रनामक उपवाससे एवं अन्यान्य शुभ नियमोंके अनुष्ठानसे जो भगवान्‌की आराधना की जाती है, उसको कायिक भक्ति कहते हैं। यह द्विजातियोंकी त्रिविध भक्ति बतायी गयी। गायके घी, दूध और दही, रत्न, दीप, कुश, जल, चन्दन, माला, विविध धातुओं तथा पदार्थ, काले अगरकी सुगन्धसे युक्त एवं घी और गूगलसे बने हुए धूप, आभूषण, सुवर्ण और रत्न आदिसे निर्मित विचित्र-विचित्र हार, नृत्य, वाद्य, संगीत, सब प्रकारके जंगली फल-मूलोंके उपहार तथा भक्ष्य-भोज्य आदि नैवेद्य अर्पण करके मनुष्य ब्रह्माजीके उद्देश्यसे जो पूजा करते हैं, वह लौकिक भक्ति मानी गयी है। ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेदके मन्त्रोंका जप और संहिताओंका अध्यापन आदि कर्म यदि ब्रह्माजीके उद्देश्यसे किये जाते हैं, तो वह वैदिक भक्ति कहलाती है। वेद-मन्त्रोंके उच्चारणपूर्वक हविष्यकी आहुति देकर जो क्रिया सम्पन्न की जाती है, वह भी वैदिक भक्ति मानी गयी है। अमावास्या अथवा पूर्णिमाको जो अग्निहोत्र किया जाता है, यज्ञोंमें जो उत्तम दक्षिणा दी जाती है, तथा देवताओंको जो पुरोडाश और चरु अर्पण किये जाते हैं—ये सब वैदिक भक्तिके अन्तर्गत हैं। इष्टि, धृति, यज्ञ-सम्बन्धी सोमपान तथा अग्नि, पृथ्वी, वायु, आकाश, चन्द्रमा, मेघ और सूर्यके उद्देश्यसे किये हुए जितने कर्म हैं, उन सबके देवता ब्रह्माजी ही हैं।

राजन् ! ब्रह्माजीकी आध्यात्मिक भक्ति दो प्रकारकी मानी गयी है—एक सांख्यज और दूसरी योगज। इन दोनोंका भेद सुनो। प्रधान (मूल प्रकृति) आदि प्राकृत तत्त्व संख्यामें चौबीस हैं। वे सब-के-सब जड एवं भोग्य हैं। उनका भोक्ता पुरुष पचीसवाँ तत्त्व है, वह चेतन है। इस प्रकार संख्यापूर्वक प्रकृति और पुरुषके तत्त्वको ठीक-ठीक जानना सांख्यज भक्ति है। इसे सत्पुरुषोंने सांख्य-शास्त्रके अनुसार आध्यात्मिक भक्ति माना है। अब ब्रह्माजीकी योगज भक्तिका वर्णन सुनो। प्रतिदिन प्राणायामपूर्वक ध्यान लगावे, इन्द्रियोंका संयम करे और समस्त इन्द्रियोंको विषयोंकी ओरसे खींचकर हृदयमें धारण करके प्रजानाथ ब्रह्माजीका इस प्रकार ध्यान करे। हृदयके भीतर कमल है, उसकी कर्णिकापर ब्रह्माजी विराजमान हैं। वे रक्त वस्त्र धारण किये हुए हैं, उनके नेत्र सुन्दर हैं। सब ओर उनके मुख प्रकाशित हो रहे हैं। ब्रह्मसूत्र (यज्ञोपवीत) कमरके ऊपरतक लटका हुआ है, उनके शरीरका वर्ण लाल है, चार भुजाएँ शोभा पा रही हैं तथा हाथोंमें वरद और अभयकी मुद्राएँ हैं। इस प्रकारके ध्यानकी स्थिरता योगजन्य मानस सिद्धि है; यही ब्रह्माजीके प्रति होनेवाली पराभक्ति मानी गयी है। जो भगवान् ब्रह्माजीमें ऐसी भक्ति रखता है, वह ब्रह्मभक्त कहलाता है।

राजन् ! अब पुष्कर क्षेत्रमें निवास करनेवाले पुरुषोंके पालन करने योग्य आचारका वर्णन सुनो। पूर्वकालमें जब विष्णु आदि देवताओंका वहाँ समागम हुआ था, उस समय सबकी उपस्थितिमें ब्रह्माजीने स्वयं ही क्षेत्रनिवासियोंके कर्तव्यको विस्तारके साथ बतलाया था। पुष्कर क्षेत्रमें निवास करनेवालोंको उचित है कि वे ममता और अहंकारको पास न आने दें। आसक्ति और संग्रहकी वृत्तिका परित्याग करें। बन्धु-बान्धवोंके प्रति भी उनके मनमें आसक्ति नहीं रहनी चाहिये। वे ढेले, पत्थर और सुवर्णको समान समझें।

प्रतिदिन नाना प्रकारके शुभ कर्म करते हुए सम्पूर्ण प्राणियोंको अभय दान दें। नित्य प्राणायाम और परमेश्वरका ध्यान करें। जपके द्वारा अपने अन्तःकरणको शुद्ध बनायें। यति धर्मके कर्तव्योंका पालन करें। सांख्ययोगकी विधिको जानें तथा सम्पूर्ण मर्यादाओंका उच्छेद करके ब्रह्मका बोध प्राप्त करें। क्षेत्रनिवासी ब्राह्मण इसी नियमसे रहकर वहाँ यज्ञ करते हैं।

अब पुष्कर वनमें मृत्युको प्राप्त होनेवाले लोगोंको जो फल मिलता है, उसे सुनो। वे लोग अक्षय ब्रह्म-सायुज्यको प्राप्त होते हैं, जो दूसरोंके लिये सर्वथा दुर्लभ है। उन्हें उस पदवी प्राप्ति होती है, जहाँ जानेपर पुनः मृत्यु प्रदान करनेवाला जन्म नहीं ग्रहण करना पड़ता। वे पुनरावृत्तिके पथका परित्याग करके ब्रह्मसम्बन्धिनी परा विद्यामें स्थित हो जाते हैं।

भीष्मजीने कहा—ब्रह्मन्! पुष्कर तीर्थमें निवास करनेवाली स्त्रियाँ, म्लेच्छ, शूद्र, पशु-पक्षी, मृग, गूँगे, जड़, अंधे तथा बहरे प्राणी, जो तपस्या और नियमोंसे दूर हैं, किस गतिको प्राप्त होते हैं—यह बतानेकी कृपा करें।

पुलस्त्यजी बोले—भीष्म! पुष्कर क्षेत्रमें मरनेवाले म्लेच्छ, शूद्र, स्त्री, पशु, पक्षी और मृग आदि सभी प्राणी ब्रह्मलोकको प्राप्त होते हैं। वे दिव्य शरीर धारण करके सूर्यके समान तेजस्वी विमानोंपर बैठकर ब्रह्मलोककी यात्रा करते हैं। तिर्यग्योनिमें पड़े हुए—पशु-पक्षी, कीड़े-मकोड़े, चींटियाँ, थलचर, जलचर, स्वेदज, अण्डज, उद्भिज्ज और जरायुज आदि प्राणी यदि पुष्कर वनमें प्राण-त्याग करते हैं तो सूर्यके समान कान्तिमान् विमानोंपर बैठकर ब्रह्मलोकमें जाते हैं। जैसे समुद्रके समान दूसरा कोई जलाशय नहीं है, वैसे ही पुष्करके समान दूसरा कोई तीर्थ नहीं है।* अब मैं तुम्हें अन्य देवताओंका परिचय देता हूँ, जो इस पुष्कर क्षेत्रमें सदा विद्यमान रहते हैं। भगवान् श्रीविष्णुके साथ इन्द्रादि सम्पूर्ण देवता, गणेश, कार्तिकेय, चन्द्रमा, सूर्य और देवी—ये सब सम्पूर्ण जगत्का हित करनेके लिये ब्रह्माजीके निवास स्थान पुष्कर क्षेत्रमें सदा विद्यमान रहते हैं। इस तीर्थमें निवास करनेवाले लोग सत्ययुगमें बारह वर्षोंतक, त्रेतामें एक वर्षतक तथा द्वापरमें एक मासतक तीर्थ-सेवन करनेसे जिस फलको पाते थे, उसे कलियुगमें एक दिन-रातके तीर्थ-सेवनसे ही प्राप्त कर लेते हैं।† यह बात देवाधिदेव ब्रह्माजीने पूर्वकालमें मुझसे (पुलस्त्यजीसे) स्वयं ही कही थी। पुष्करसे बढ़कर इस पृथ्वीपर दूसरा कोई क्षेत्र नहीं है, इसलिये पूरा प्रयत्न करके मनुष्यको इस पुष्कर वनका सेवन करना चाहिये। ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी—ये सब लोग अपने-अपने शास्त्रोक्त धर्मका पालन करते हुए इस क्षेत्रमें परम गतिको प्राप्त करते हैं।

धर्म और अर्थके तत्त्वको जाननेवाले पुरुषको चाहिये कि वह अपनी आयुके एक चौथाई भागतक दूसरेकी निन्दासे बचकर ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए गुरु अथवा गुरुपुत्रके समीप निवास करे तथा गुरुकी सेवासे जो समय बचे, उसमें अध्ययन करे; श्रद्धा और आदरपूर्वक गुरुका आश्रय ले। गुरुके घरमें रहते समय गुरुके सोनेके पश्चात् शयन करे और उनके उठनेसे पहले उठ जाय। शिष्यके करनेयोग्य जो कुछ सेवा आदि कार्य हो, वह सब पूरा करके ही शिष्यको गुरुके पास खड़ा होना चाहिये। वह सदा गुरुका किङ्कर होकर सब प्रकारकी सेवाएँ करे। सब कार्योंमें कुशल हो। पवित्र, कार्यदक्ष और गुणवान् बने। गुरुको प्रिय लगनेवाला उत्तर दे। इन्द्रियोंको जीतकर शान्तभावसे गुरुकी ओर देखे। गुरुके भोजन करनेसे पहले भोजन और जलपान करनेसे पहले जलपान न करे। गुरु खड़े हों तो स्वयं भी बैठे नहीं। उनके सोये बिना शयन भी न करे। उत्तान हाथोंके द्वारा गुरुके चरणोंका स्पर्श करे। गुरुके दाहिने पैरको अपने दाहिने हाथसे और बायें पैरको बायें हाथसे धीरे-धीरे दबाये और इस प्रकार प्रणाम करके गुरुसे कहे—'भगवन्! मुझे पढ़ाइये। प्रभो! यह कार्य मैंने पूरा कर लिया है और इस कार्यको मैं अभी करूँगा।' इस प्रकार पहले कार्य करे और फिर किया हुआ सारा काम गुरुको बता दे। मैंने ब्रह्मचारीके नियमोंका यहाँ विस्तारके साथ वर्णन किया है, गुरुभक्त शिष्यको इन सभी नियमोंका पालन करना चाहिये। इस प्रकार अपनी शक्तिके अनुसार गुरुकी प्रसन्नताका सम्पादन करते हुए शिष्यको कर्तव्य कर्ममें लगे रहना उचित है। वह एक, दो, तीन या चारों वेदोंको

* यथा महोदधेस्तुल्यो न चान्योऽस्ति जलाशयः।
तथा वै पुष्करस्यापि समं तीर्थं न विद्यते॥
(१५। २७३-७४)

† कृते तु द्वादशैर्वर्षैस्त्रेतायां हायनेन तु।
मासेन द्वापरे भीष्म अहोरात्रेण तत्कलौ॥
(१५। २८०-८१)

अर्थसहित गुरुमुखसे अध्ययन करे । भिक्षाके अन्नसे जीविका चलावे और धरतीपर शयन करे । वेदोक्त व्रतोंका पालन करता रहे और गुरु-दक्षिणा देकर विधिपूर्वक अपना समावर्तन-संस्कार करे । फिर धर्मपूर्वक प्राप्त हुई स्त्रीके साथ गार्हपत्यादि अग्नियोंकी स्थापना करके प्रतिदिन हवनादिके द्वारा उनका पूजन करे ।

आयुका [प्रथम भाग ब्रह्मचर्याश्रममें बितानेके पश्चात्] दूसरा भाग गृहस्थ-आश्रममें रहकर व्यतीत करे । गृहस्थ ब्राह्मण यज्ञ करना, यज्ञ कराना, वेद पढ़ना, वेद पढ़ाना तथा दान देना और दान लेना—इन छः कर्मोंका अनुष्ठान करे । उससे भिन्न वानप्रस्थी विप्र केवल यजन, अध्ययन और दान—इन तीन कर्मोंका ही अनुष्ठान करे तथा चतुर्थ आश्रममें रहनेवाला ब्रह्मनिष्ठ संन्यासी जपयज्ञ और अध्ययन—इन दो ही कर्मोंसे सम्बन्ध रखे । गृहस्थके व्रतसे बढ़कर दूसरा कोई महान् तीर्थ नहीं बताया गया है । गृहस्थ पुरुष कभी केवल अपने खानेके लिये भोजन न बनाये [देवता और अतिथियोंके उद्देश्यसे ही रसोई करे] । पशुओंकी हिंसा न करे । दिनमें कभी नींद न ले । रातके पहले और पिछले भागमें भी न सोये । दिन और रात्रिकी सन्धिमें (सूर्योदय एवं सूर्यास्तके समय) भोजन न करे । झूठ न बोले । गृहस्थके घरमें कभी ऐसा नहीं होना चाहिये कि कोई ब्राह्मण अतिथि आकर भूखा रह जाय और उसका यथावत् सत्कार न हो । अतिथिको भोजन करानेसे देवता और पितर संतुष्ट होते हैं; अतः गृहस्थ पुरुष सदा ही अतिथियोंका सत्कार करे । जो वेद-विद्या और व्रतमें निष्णात, श्रोत्रिय, वेदोंके पारगामी, अपने कर्मसे जीविका चलानेवाले, जितेन्द्रिय, क्रियावान् और तपस्वी हैं, उन्हीं श्रेष्ठ पुरुषोंके सत्कारके लिये हव्य और कव्यका विधान किया गया है । जो नश्वर पदार्थोंके प्रति आसक्त है, अपने कर्मसे भ्रष्ट हो गया है, अग्निहोत्र छोड़ चुका है, गुरुकी झूठी निन्दा करता है और असत्यभाषणमें आग्रह रखता है, वह देवताओं और पितरोंको अर्पण करनेयोग्य अन्नके पानेका अधिकारी नहीं है । गृहस्थकी सम्पत्तिमें सभी प्राणियोंका भाग होता है । जो भोजन नहीं बनाते, उन्हें भी गृहस्थ पुरुष अन्न दे । वह प्रतिदिन 'विघस' और 'अमृत' भोजन करे । यज्ञसे (देवताओं और पितर आदिको अर्पण करनेसे) बचा हुआ अन्न हविष्यके समान एवं अमृत माना गया है । तथा जो कुटुम्बके सभी मनुष्योंके भोजन कर लेनेके पश्चात् उनसे बचा हुआ अन्न ग्रहण करता है; उसे 'विघसाशी' ('विघस' अन्न भोजन करनेवाला) कहा गया है ।

गृहस्थ पुरुषको केवल अपनी ही स्त्रीसे अनुराग रखना चाहिये । वह मनको अपने वशमें रखे, किसीके गुणोंमें दोष न देखे और अपनी सम्पूर्ण इन्द्रियोंको काबूमें रखे । ऋत्विक्, पुरोहित, आचार्य, मामा, अतिथि, शरणागत, वृद्ध, बालक, रोगी, वैद्य, कुटुम्बी, सम्बन्धी, बान्धव, माता, पिता, दामाद, भाई, पुत्र, स्त्री, बेटी तथा दास-दासियोंके साथ विवाद नहीं करना चाहिये । जो इनसे विवाद नहीं करता, वह सब प्रकारके पापोंसे मुक्त हो जाता है । जो अनुकूल बर्तावके द्वारा इन्हें अपने वशमें कर लेता है, वह सम्पूर्ण लोकोंपर विजय पा जाता है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है । आचार्य ब्रह्मलोकका स्वामी है, पिता प्रजापति-लोकका प्रभु है, अतिथि सम्पूर्ण लोकोंका ईश्वर है, ऋत्विक् वेदोंका अधिष्ठान और प्रभु होता है । दामाद अप्सराओंके लोकका अधिपति है । कुटुम्बी विश्वेदेवसम्बन्धी लोकोंके अधिष्ठाता हैं । सम्बन्धी और बान्धव दिशाओंके तथा माता और मामा भूलोकके स्वामी हैं । वृद्ध, बालक और रोगी मनुष्य आकाशके प्रभु हैं । पुरोहित ऋषिलोकके और शरणागत साध्यलोकोंके अधिपति हैं । वैद्य अश्विनीकुमारोंके लोकका तथा भाई वसुलोकका स्वामी है । पत्नी वायुलोककी ईश्वरी तथा कन्या अप्सराओंके घरकी स्वामिनी है । बड़ा भाई पिताके समान होता है । पत्नी और पुत्र अपने ही शरीर हैं । दासवर्ग परछाईंके समान हैं तथा कन्या अत्यन्त दीन—दयाके योग्य मानी गयी है । इसलिये उपर्युक्त व्यक्ति कोई अपमानजनक बात भी कह दें तो उसे चुपचाप सह लेना चाहिये । कभी क्रोध या दुःख नहीं करना चाहिये । गृहस्थ-धर्म-परायण विद्वान् पुरुषको एक ही साथ बहुत-से काम नहीं आरम्भ करने चाहिये । धर्मज्ञको उचित है कि वह किसी एक ही काममें लगकर उसे पूरा करे ।

गृहस्थ ब्राह्मणकी तीन जीविकाएँ हैं, उनमें उत्तरोत्तर श्रेष्ठ एवं कल्याणकारक हैं । पहली है—कुम्भधान्य वृत्ति, जिसमें एक घड़ेसे अधिक धान्यका संग्रह न करके जीवन-निर्वाह किया जाता है । दूसरी उञ्छशिल वृत्ति है, जिसमें खेती कट जानेपर खेतोंमें गिरी हुई अनाजकी बालें चुनकर लायी जाती हैं और उन्हींसे जीवन-निर्वाह किया जाता है । तीसरी कापोती वृत्ति है, जिसमें खलिहान और बाजारसे अन्नके बिखरे हुए दाने चुनकर लाये जाते हैं तथा उन्हींसे

जीविका चलायी जाती है। जहाँ इन तीन वृत्तियोंसे जीविका चलानेवाले पूजनीय ब्राह्मण निवास करते हैं, उस राष्ट्रकी वृद्धि होती है। जो ब्राह्मण गृहस्थकी इन तीन वृत्तियोंसे जीवन निर्वाह करता है और मनमें कष्टका अनुभव नहीं करता, वह दस पीढ़ीतकके पूर्वजोंको तथा आगे होनेवाली सन्तानोंकी भी दस पीढ़ियोंको पवित्र कर देता है।

अब तीसरे आश्रम—वानप्रस्थका वर्णन करता हूँ, सुनो। गृहस्थ पुरुष जब यह देख ले कि मेरे शरीरमें झुर्रियाँ पड़ गयी हैं, सिरके बाल सफेद हो गये हैं और पुत्रके भी पुत्र हो गया है, तब वह वनमें चला जाय। जिन्हें गृहस्थ आश्रमके नियमोंसे निर्वेद हो गया है, अतएव जो वानप्रस्थकी दीक्षा लेकर गृहस्थ आश्रमका त्याग कर चुकते हैं, पवित्र स्थानमें निवास करते हैं, जो बुद्धि बलसे सम्पन्न तथा सत्य, शौच और क्षमा आदि सद्गुणोंसे युक्त हैं, उन पुरुषोंके कल्याणमय नियमों का वर्णन सुनो। प्रत्येक द्विजको अपनी आयुका तीसरा भाग वानप्रस्थ आश्रममें रहकर व्यतीत करना चाहिये। वानप्रस्थ आश्रममें भी वह उन्हीं अग्नियोंका सेवन करे, जिनका गृहस्थ आश्रममें सेवन करता था। देवताओंका पूजन करे, नियमपूर्वक रहे, नियमित भोजन करे, भगवान् श्रीविष्णुमें भक्ति रखे तथा यज्ञके सम्पूर्ण अङ्गोंका पालन करते हुए प्रतिदिन अग्निहोत्रका अनुष्ठान करे। धान और जौ वही ग्रहण करे, जो बिना जोती हुई जमीनमें अपने आप पैदा हुआ हो। इसके सिवा नीवार (तीना) और विघस अन्नको भी वह पा सकता है। उसे अग्निमें देवताओंके निमित्त हविष्य भी अर्पण करना चाहिये। वानप्रस्थीलोग वर्षाके समय खुले मैदानमें आकाशके नीचे बैठते हैं, हेमन्त ऋतुमें जलका आश्रय लेते हैं और ग्रीष्ममें पञ्चाग्नि सेवनरूप तपस्या करते हैं। उनमेंसे कोई तो धरतीपर लोटते हैं, कोई पंजोंके बल खड़े रहते हैं और कोई-कोई एक स्थानपर एक आसनसे बैठे रह जाते हैं। कोई दाँतोंसे ही ऊखलका काम लेते हैं—दूसरे किसी साधनद्वारा फोड़ी हुई वस्तु नहीं ग्रहण करते। कोई पत्थरसे कूटकर खाते हैं, कोई जौके आटेको पानीमें उबाल कर उसीको शुक्लपक्ष या कृष्णपक्षमें एक बार पी लेते हैं। कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो समयपर अपने आप प्राप्त हुई वस्तुको ही भक्षण करते हैं। कोई मूल, कोई फल और कोई फूल खाकर ही नियमित जीवन व्यतीत करते हैं। इस प्रकार वे न्यायपूर्वक वैखानसों (वानप्रस्थियों) के नियमोंका दृढ़तापूर्वक पालन करते हैं। वे मनीषी पुरुष ऊपर बताये हुए तथा अन्यान्य नाना प्रकारके नियमोंकी दीक्षा लेते हैं।

चौथा आश्रम सन्यास है। यह उपनिषदोंद्वारा प्रतिपादित धर्म है। गृहस्थ और वानप्रस्थ आश्रम प्राय साधारण—मिलते जुलते माने गये हैं, किन्तु सन्यास इनसे भिन्न—विलक्षण होता है। तात! प्राचीन युगमें सर्वार्थदर्शी ब्राह्मणोंने सन्यास धर्मका आश्रय लिया था। अगस्त्य, सप्तर्षि, मधुच्छन्दा, गवेषण, साङ्कृति, सुदिव, भाण्डि, यवप्रोथ, कृतश्रम, अहोवीर्य, काम्य, स्थाणु, मेधातिथि, बुध, मनोवाक, शिनीवाक, शून्यपाल और अकृतश्रम—ये धर्म तत्त्वके यथार्थ ज्ञाता थे। इन्हें धर्मके स्वरूपका साक्षात्कार हो गया था। इनके सिवा, धर्मकी निपुणताका ज्ञान रखनेवाले, उग्रतपस्वी ऋषियोंके जो यायावर नामसे प्रसिद्ध गण हैं, वे सभी विषयोंसे उपरत हो मायाके बन्धनको तोड़कर वनमें चले गये थे। मुमुक्षुको उचित है कि वह सर्वस्व दक्षिणा देकर—सबका त्याग करके सद्यस्कारी (तत्काल आत्मकल्याण करनेवाला) बने। आत्माका ही यजन करे, विषयोंसे उपरत हो आत्मामें ही रमण करे तथा आत्मापर ही निर्भर करे। सब प्रकारके संग्रहका परित्याग करके भावनाके द्वारा गार्हपत्यादि अग्नियोंकी आत्मामें स्थापना कर और उसमें तदनुरूप यज्ञोंका सर्वदा अनुष्ठान करता रहे।

चतुर्थ आश्रम सबसे श्रेष्ठ बताया गया है। वह तीनों आश्रमोंके ऊपर है। उसमें अनेक प्रकारके उत्तम गुणोंका निवास है। वही सबकी चरम सीमा—परम आधार है। ब्रह्मचर्य आदि तीन आश्रमोंमें क्रमशः रहनेके पश्चात् काषाय वस्त्र धारण करके सन्यास ले ले। सर्वस्व त्यागरूप सन्यास सबसे उत्तम आश्रम है। सन्यासीको चाहिये कि वह मोक्षकी सिद्धिके लिये अकेले ही धर्मका अनुष्ठान करे, किसीको साथ न रखे। जो ज्ञानवान् पुरुष अकेला विचरता है, वह सबका त्याग कर देता है, उसे स्वयं कोई हानि नहीं उठानी पड़ती। सन्यासी अग्निहोत्रके लिये अग्निका चयन न करे, अपने रहनेके लिये कोई घर न बनाये; केवल भिक्षा लेनेके लिये ही गाँवमें प्रवेश करे, कलके लिये किसी वस्तुका संग्रह न करे, मौन होकर शुद्धभावसे रहे तथा थोड़ा और नियमित भोजन करे। प्रतिदिन एक ही बार भोजन करे। भोजन करने और पानी पीनेके लिये कपाल (काठ या

नारियल आदिका पात्रविशेष) रखना, वृक्षकी जड़में निवास करना, मलिन वस्त्र धारण करना, अकेले रहना तथा सब प्राणियोंकी ओरसे उदासीनता रखना—ये भिक्षु (संन्यासी) के लक्षण हैं। जिस पुरुषके भीतर सबकी बातें समा जाती हैं—जो सबकी सह लेता है तथा जिसके पाससे कोई बात लौटकर पुनः वक्ताके पास नहीं जाती—जो कटु वचन कहनेवालेको भी कटु उत्तर नहीं देता, वही संन्यासाश्रममें रहनेका अधिकारी है। कभी किसीकी भी निन्दा न तो करे और न सुने ही। विशेषतः ब्राह्मणोंकी निन्दा तो किसी तरह न करे। ब्राह्मणका जो शुभकर्म हो, उसीकी सदा चर्चा करनी चाहिये। जो उसके लिये निन्दाकी बात हो, उसके विषयमें मौन रहना चाहिये। यही आत्मशुद्धिकी दवा है।

जो जिस किसी भी वस्तुसे अपना शरीर ढक लेता है, जो कुछ मिल जाय उसीको खाकर भूख मिटा लेता है तथा जहाँ कहीं भी सो रहता है, उसे देवता ब्राह्मण (ब्रह्मवेत्ता) समझते हैं। जो जन-समुदायको साँप समझकर, स्नेह-सम्बन्धको नरक जानकर तथा स्त्रियोंको मुर्दा समझकर उन सबसे डरता रहता है, उसे देवतालोग ब्राह्मण कहते हैं। जो मान या अपमान होनेपर स्वयं हर्ष अथवा क्रोधके वशीभूत नहीं होता, उसे देवतालोग ब्राह्मण मानते हैं। जो जीवन या मरणका अभिनन्दन न करके सदा कालकी ही प्रतीक्षा करता रहता है, उसे देवता ब्राह्मण मानते हैं। जिसका चित्त राग-द्वेषादिके वशीभूत नहीं होता, जो इन्द्रियोंको वशमें रखता है तथा जिसकी बुद्धि भी दूषित नहीं होती, वह मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो सम्पूर्ण प्राणियोंसे निर्भय है तथा समस्त प्राणी जिससे भय नहीं मानते, उस देहाभिमानसे मुक्त पुरुषको कहीं भी भय नहीं होता। जैसे हाथीके पदचिह्नमें अन्य समस्त पादचारी जीवोंके पदचिह्न समा जाते हैं, तथा जिस प्रकार सम्पूर्ण ज्ञान चित्तमें लीन हो जाते हैं, उसी प्रकार सारे धर्म और अर्थ अहिंसामें लीन रहते हैं। राजन्! जो हिंसाका आश्रय लेता है, वह सदा ही मृतकके समान है।

इस प्रकार जो सबके प्रति समानभाव रखता है, भलीभाँति धैर्य धारण किये रहता है, इन्द्रियोंको अपने वशमें रखता है तथा सम्पूर्ण भूतोंको त्राण देता है, वह ज्ञानी पुरुष उत्तम गतिको प्राप्त होता है। जिसका अन्तःकरण उत्तम ज्ञानसे परितृप्त है तथा जिसमें ममताका सर्वथा अभाव है, उस मनीषी पुरुषकी मृत्यु नहीं होती; वह अमृतत्वको प्राप्त हो जाता है। ज्ञानी मुनि सब प्रकारकी आसक्तियोंसे मुक्त होकर आकाशकी भाँति स्थित होता है। जो सबमें विष्णुकी भावना करनेवाला और शान्त होता है, उसे ही देवतालोग *ब्राह्मण मानते हैं। जिसका जीवन धर्मके लिये, धर्म* आत्मसन्तोषके लिये तथा दिन-रात पुण्यके लिये हैं, उसे देवतालोग ब्राह्मण समझते हैं। जिसके मनमें कोई कामना नहीं होती, जो कर्मोंके आरम्भका कोई संकल्प नहीं करता तथा नमस्कार और स्तुतिसे दूर रहता है, जिसने योगके द्वारा कर्मोंको क्षीण कर दिया है, उसे देवतालोग ब्राह्मण मानते हैं। सम्पूर्ण प्राणियोंको अभयकी दक्षिणा देना संसारमें समस्त दानोंसे बढ़कर है। जो किसीकी निन्दाका पात्र नहीं है तथा जो स्वयं भी दूसरोंकी निन्दा नहीं करता, वही ब्राह्मण परमात्माका साक्षात्कार कर पाता है। जिसके समस्त पाप नष्ट हो गये हैं, जो इहलोक और परलोकमें भी किसी वस्तुको पानेकी इच्छा नहीं करता, जिसका मोह दूर हो गया है, जो मिट्टीके ढेले और सुवर्णको समान दृष्टिसे देखता है, जिसने रोषको त्याग दिया है, जो निन्दा-स्तुति और प्रिय-अप्रियसे रहित होकर सदा उदासीनकी भाँति विचरता रहता है, वही वास्तवमें संन्यासी है।

पुष्कर क्षेत्रमें ब्रह्माजीका यज्ञ और सरस्वतीका प्राकट्य

भीष्मजीने कहा—ब्रह्मन्! आपके मुखसे यह सब प्रसङ्ग मैंने सुना; अब पुष्कर क्षेत्रमें जो ब्रह्माजीका यज्ञ हुआ था, उसका वृत्तान्त सुनाइये। क्योंकि इसका श्रवण करनेसे मेरे शरीर [और मन] की शुद्धि होगी।

पुलस्त्यजीने कहा—राजन्! भगवान् ब्रह्माजी पुष्कर क्षेत्रमें जब यज्ञ कर रहे थे, उस समय जो-जो बातें हुईं उन्हें बतलाता हूँ; सुनो। पितामहका यज्ञ आदि कृतयुगमें प्रारम्भ हुआ था। उस समय मरीचि, अङ्गिरा, मैं, पुलह, क्रतु और प्रजापति दक्षने ब्रह्माजीके पास जाकर उनके चरणोंमें मस्तक झुकाया। धाता, अर्यमा, सविता, वरुण, अंश, भग, इन्द्र, विवस्वान्, पूषा, त्वष्टा और पर्जन्य—आदि बारहों आदित्य भी वहाँ उपस्थित हो अपने

जाज्वल्यमान तेजसे प्रकाशित हो रहे थे। इन देवेश्वरोंने भी पितामहको प्रणाम किया। मृगव्याध, शर्व, महायशस्वी निर्ऋति, अजैकपाद, अहिर्बुध्न्य, पिनाकी, अपराजित, विश्वेश्वर भव, कपर्दी, स्थाणु और भगवान् भग—ये ग्यारह रुद्र भी उस यज्ञमें उपस्थित थे। दोनों अश्विनीकुमार, आठों वसु, महाबली मरुद्गण, विश्वेदेव और साध्य नामक देवता ब्रह्माजीके सम्मुख हाथ जोड़कर खड़े थे। शेषजीके वंशज वासुकि आदि बड़े बड़े नाग भी विद्यमान थे। तार्क्ष्य, अरिष्टनेमि, महाबली गरुड़, वारुणि तथा आरुणि—ये सभी विनता कुमार वहाँ पधारे थे। लोकपालक भगवान् श्रीनारायणने वहाँ स्वयं पदार्पण किया और समस्त महर्षियोंके साथ लोकगुरु ब्रह्माजीसे कहा—'जगत्पते! तुम्हारे ही द्वारा इस सम्पूर्ण संसारका विस्तार हुआ है, तुम्हींने इसकी सृष्टि की है, इसलिये तुम सम्पूर्ण लोकोंके ईश्वर हो। यहाँ हमलोगोंके करने योग्य जो तुम्हारा महान् कार्य हो, उसे करनेकी हमें आज्ञा दो।' देवर्षियोंके साथ भगवान् श्रीविष्णुने ऐसा कहकर देवेश्वर ब्रह्माजीको नमस्कार किया।

ब्रह्माजी वहाँ स्थित होकर सम्पूर्ण दिशाओंको अपने तेजसे प्रकाशित कर रहे थे तथा भगवान् श्रीविष्णु भी श्रीवत्स चिह्नसे सुशोभित एवं सुन्दर सुवर्णमय यज्ञोपवीतसे देदीप्यमान हो रहे थे। उनका एक एक रोम परम पवित्र है। वे सर्वसमर्थ हैं, उनका वक्षःस्थल विशाल तथा श्रीविग्रह सम्पूर्ण तेजोंका पुञ्ज जान पड़ता है। [देवताओं और ऋषियोंने उनकी इस प्रकार स्तुति की—] जो पुण्यात्माओंको उत्तम गति और पापियोंको दुर्गति प्रदान करनेवाले हैं, योगसिद्ध महात्मा पुरुष जिन्हें उत्तम योगस्वरूप मानते हैं, जिनको अणिमा आदि आठ ऐश्वर्य नित्य प्राप्त हैं, जिन्हें देवताओंमें सबसे श्रेष्ठ कहा जाता है, मोक्षकी अभिलाषा रखनेवाले संयमी ब्राह्मण योगसे अपने अन्तःकरणको शुद्ध करके जिन सनातन पुरुषको पाकर जन्म मरणके बन्धनसे मुक्त हो जाते हैं, चन्द्रमा और सूर्य जिनके नेत्र हैं तथा अनन्त आकाश जिनका विग्रह है, उन भगवान्की हम शरण लेते हैं। जो भगवान् सम्पूर्ण भूतोंकी उत्पत्ति और वृद्धि करनेवाले हैं, जो ऋषियों और लोकोंके स्रष्टा तथा देवताओंके ईश्वर हैं, जिन्होंने देवताओंका प्रिय और समस्त जगत्का पालन करनेके लिये चिरकालसे पितरोंको कव्य तथा देवताओंको उत्तम हविष्य अर्पण करनेका नियम प्रवर्तित किया है, उन देवश्रेष्ठ परमेश्वरको हम सादर प्रणाम करते हैं।

तदनन्तर वृद्ध एवं बुद्धिमान् देवता भगवान् श्रीब्रह्माजी यज्ञशालामें लोकपालक श्रीविष्णुभगवान्के साथ बैठकर शोभा पाने लगे। वह यज्ञमण्डप धन आदि सामग्रियों और ऋत्विजोंसे भरा था। परम प्रभावशाली भगवान् श्रीविष्णु धनुष हाथमें लेकर सब ओरसे उसकी रक्षा कर रहे थे। दैत्य और दानवोंके सरदार तथा राक्षसोंके समुदाय भी वहाँ उपस्थित थे। यज्ञ विद्या, वेद विद्या तथा पद और क्रमका ज्ञान रखनेवाले महर्षियोंके वेद घोषसे सारी सभा गूँज उठी। यज्ञमे स्तुति-कर्मके जानकार, शिक्षाके ज्ञाता, शब्दोंकी व्युत्पत्ति एवं अर्थका ज्ञान रखनेवाले और मीमांसाके युक्तियुक्त वाक्योंको समझनेवाले विद्वानोंके उच्चारण किये हुए शब्द सबको सुनायी देने लगे। इतिहास और पुराणोंके ज्ञाता, नाना प्रकारके विज्ञानको जानते हुए भी मौन रहनेवाले, संयमी तथा उत्तम व्रतोंका पालन करनेवाले विद्वानोंने वहाँ उपस्थित होकर जप और होममें लगे हुए मुख्य मुख्य ब्राह्मणोंको देखा। देवता और असुरोंके गुरु लोक पितामह ब्रह्माजी उस यज्ञभूमिमें विराजमान थे। सुर और असुर दोनों ही उनकी सेवामें खड़े थे। प्रजापति गण—दक्ष, वसिष्ठ, पुलह, मरीचि, अङ्गिरा, भृगु, अत्रि, गौतम तथा नारद—ये सब लोग वहाँ भगवान् ब्रह्माजीकी उपासना करते थे। आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, व्याकरण, छन्द शास्त्र, निरुक्त, कल्प, शिक्षा, आयुर्वेद, धनुर्वेद, मीमांसा, गणित, गजविद्या, अश्वविद्या और इतिहास—इन सभी अङ्गों पाङ्गोंसे विभूषित सम्पूर्ण वेद भी मूर्तिमान् होकर ओङ्कारयुक्त महात्मा ब्रह्माजीकी उपासना करते थे। नय, क्रतु, संकल्प, प्राण तथा अर्थ, धर्म, काम, हर्ष, शुक्र, बृहस्पति, संवर्त, बुध, शनैश्चर, राहु, समस्त ग्रह, मरुद्गण, विश्वकर्मा, पितृगण, सूर्य तथा चन्द्रमा भी ब्रह्माजीकी सेवामें उपस्थित थे। दुर्गम कष्टसे तारनेवाली गायत्री, समस्त वेद-शास्त्र, यम नियम, सम्पूर्ण अक्षर, लक्षण, भाष्य तथा सब शास्त्र देह धारण करके वहाँ विद्यमान थ। क्षण, लव, मुहूर्त, दिन, रात्रि, पक्ष, मास और सम्पूर्ण ऋतुएँ अर्थात् इनके देवता महात्मा ब्रह्माजीकी उपासना करते थे।

इनके सिवा अन्यान्य श्रेष्ठ देवियाँ—ह्री, कीर्ति, द्युति, प्रभा, धृति, क्षमा, भूति, नीति, विद्या, मति, श्रुति, स्मृति,

कान्ति, शान्ति, पुष्टि, क्रिया, नाच-गानमें कुशल समस्त दिव्य अप्सराएँ तथा सम्पूर्ण देव-माताएँ भी ब्रह्माजीकी सेवामें उपस्थित थीं। विप्रचित्ति, शिवि, शङ्कु, केतुमान्, प्रह्लाद, बलि, कुम्भ, संह्लाद, अनुह्लाद, वृषपर्वा, नमुचि, शम्बर, इन्द्रतापन, वातापि, केशी, राहु और वृत्र—ये तथा और भी बहुत-से दानव, जिन्हें अपने बलपर गर्व था, ब्रह्माजीकी उपासना करते हुए इस प्रकार बोले।

दानवोंने कहा—भगवन्! आपने ही हमलोगोंकी सृष्टि की है, हमें तीनों लोकोंका राज्य दिया है तथा देवताओंसे अधिक बलवान् बनाया है; पितामह! आपके इस यज्ञमें हमलोग कौन-सा कार्य करें? हम स्वयं ही कर्तव्यका निर्णय करनेमें समर्थ हैं; अदितिके गर्भसे पैदा हुए इन बेचारे देवताओंसे क्या काम होगा; ये तो सदा हमारेद्वारा मारे जाते और अपमानित होते रहते हैं। फिर भी आप तो हम सबके ही पितामह हैं; अतः देवताओंको भी साथ लेकर यज्ञ पूर्ण कीजिये। यज्ञ समाप्त होनेपर राज्यलक्ष्मीके विषयमें हमारा देवताओंके साथ फिर विरोध होगा, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। किन्तु इस समय हम चुपचाप इस यज्ञको देखेंगे—देवताओंके साथ युद्ध नहीं छेड़ेंगे।

पुलस्त्यजी कहते हैं—दानवोंके ये गर्वयुक्त वचन सुनकर इन्द्रसहित महायशस्वी भगवान् श्रीविष्णुने शङ्करजीसे कहा।

भगवान् श्रीविष्णु बोले—प्रभो! पितामहके यज्ञमें प्रधान-प्रधान दानव आये हैं। ब्रह्माजीने इनको भी इस यज्ञमें आमन्त्रित किया है। ये सब लोग इसमें विघ्न डालनेका प्रयत्न कर रहे हैं। परन्तु जबतक यज्ञ समाप्त न हो जाय तबतक हमलोगोंको क्षमा करना चाहिये। इस यज्ञके समाप्त हो जानेपर देवताओंको दानवोंके साथ युद्ध करना होगा। उस समय आपको ऐसा यत्न करना चाहिये, जिससे पृथ्वीपरसे दानवोंका नामो-निशान मिट जाय। आपको मेरे साथ रहकर इन्द्रकी विजयके लिये प्रयत्न करना उचित है। इन दानवोंका धन लेकर राहगीरों, ब्राह्मणों तथा दुःखी मनुष्योंमें बाँट दें।

भगवान् श्रीविष्णुकी यह बात सुनकर ब्रह्माजीने कहा—'भगवन्! आपकी बात सुनकर ये दानव कुपित हो सकते हैं; किन्तु इस समय इन्हें क्रोध दिलाना आपको भी अभीष्ट न होगा। अतः रुद्र एवं अन्य देवताओंके साथ आपको क्षमा करनी चाहिये। सत्ययुगके अन्तमें जब यह यज्ञ समाप्त हो जायगा, उस समय मैं आपलोगोंको तथा इन दानवोंको विदा कर दूँगा; उसी समय आप सब लोग सन्धि या विग्रह, जो उचित हो, कीजियेगा।'

पुलस्त्यजी कहते हैं—तदनन्तर भगवान् ब्रह्माजीने पुनः उन दानवोंसे कहा—'तुम्हें देवताओंके साथ किसी प्रकार विरोध नहीं करना चाहिये। इस समय तुम सब लोग परस्पर मित्रभावसे रहकर मेरा कार्य सम्पन्न करो।'

दानवोंने कहा—पितामह! आपके प्रत्येक आदेशका हमलोग पालन करेंगे। देवता हमारे छोटे भाई हैं, अतः उन्हें हमारी ओरसे कोई भय नहीं है।

दानवोंकी यह बात सुनकर ब्रह्माजीको बड़ा सन्तोष हुआ। थोड़ी ही देर बाद उनके यज्ञका वृत्तान्त सुनकर ऋषियोंका एक समुदाय आ पहुँचा। भगवान् श्रीविष्णुने उनका पूजन किया। पिनाकधारी महादेवजीने उन्हें आसन दिया तथा ब्रह्माजीकी आज्ञासे वसिष्ठजीने उन सबको अर्घ्य निवेदित करके उनका कुशल-क्षेम पूछा और पुष्कर क्षेत्रमें उन्हें निवासस्थान देकर कहा—'आपलोग आरामसे यहीं रहें।' तत्पश्चात् जटा और मृगचर्म धारण करनेवाले वे समस्त महर्षि ब्रह्माजीकी यज्ञ-सभाको सुशोभित करने लगे। उनमें कुछ महात्मा वालखिल्य थे, तथा कुछ लोग संप्रक्षालन (एक समयके लिये ही अन्न ग्रहण करनेवाले अथवा तत्त्वका विचार करनेवाले) थे। वे नाना प्रकारके नियमोंमें संलग्न तथा वेदीपर शयन करनेवाले थे। उन सभी तपस्वियोंने पुष्करके जलमें ज्यों ही अपना मुँह देखा, उसी क्षण वे अत्यन्त रूपवान् हो गये। फिर एक दूसरेकी ओर देखकर सोचने लगे—'यह कैसी बात है? इस तीर्थमें मुँहका प्रतिबिम्ब देखनेसे सबका सुन्दर रूप हो गया!' ऐसा विचार कर तपस्वियोंने उसका नाम 'मुखदर्शन तीर्थ' रख दिया। तत्पश्चात् वे नहाकर अपने-अपने नियमोंमें लग गये। उनके गुणोंकी कहीं उपमा नहीं थी। नरश्रेष्ठ! वे सभी वनवासी मुनि वहाँ रहकर अत्यन्त शोभा पाने लगे। उन्होंने अग्निहोत्र करके नाना प्रकारकी क्रियाएँ सम्पन्न कीं। तपस्यासे उनके पाप भस्म हो चुके थे। वे सोचने लगे कि 'यह सरोवर सबसे श्रेष्ठ है।' ऐसा विचार करके उन द्विजातियोंने उस सरोवरका 'श्रेष्ठ पुष्कर' नाम रखा।

तदनन्तर ब्राह्मणोंको दानके रूपमें नाना प्रकारके पात्र देनेके पश्चात् वे सभी द्विज वहाँ प्राची सरस्वतीका नाम सुनकर

उसमें स्नान करनेकी इच्छासे गये। तीर्थोंमें श्रेष्ठ सरस्वतीके तटपर बहुत-से द्विज निवास करते थे। नाना प्रकारके वृक्ष उस स्थानकी शोभा बढ़ा रहे थे। वह तीर्थ सभी प्राणियोंको मनोरम जान पड़ता था। अनेकों ऋषि-मुनि उसका सेवन करते थे। उन ऋषियोंमेंसे कोई वायु पीकर रहनेवाले थे और कोई जल पीकर। कुछ लोग फलाहारी थे और कुछ केवल पत्ते चबाकर रहनेवाले थे।

सरस्वतीके तटपर महर्षियोंके स्वाध्यायका शब्द गूँजता रहता था। मृगोंके सैकड़ों झुंड वहाँ विचरा करते थे। अहिंसक तथा धर्मपरायण महात्माओंसे उस तीर्थकी अधिक शोभा हो रही थी। पुष्कर तीर्थमें सरस्वती नदी सुप्रभा, काञ्चना, प्राची, नन्दा और विशाला नामसे प्रसिद्ध पाँच धाराओंमें प्रवाहित होती हैं। भूतलपर वर्तमान ब्रह्माजीकी सभामें—उनके विस्तृत यज्ञमण्डपमें जब द्विजातियोंका शुभागमन हो गया, देवतालोग पुण्याहवाचन तथा नाना प्रकारके नियमोंका पालन करते हुए जब यज्ञ कार्यके सम्पादनमें लग गये और पितामह ब्रह्माजी यज्ञकी दीक्षा ले चुके, उस समय सम्पूर्ण भोगोंकी समृद्धिसे युक्त यज्ञके द्वारा भगवान्‌का यजन आरम्भ हुआ। राजेन्द्र! उस यज्ञमें द्विजातियोंके पास उनकी मनचाही वस्तुएँ अपने-आप उपस्थित हो जाती थीं। धर्म और अर्थके साधनमें प्रवीण पुरुष भी स्मरण करते ही वहाँ आ जाते थे। देव, गन्धर्व गान करने लगे। अप्सराएँ नाचने लगीं। दिव्य बाजे बज उठे। उस यज्ञकी समृद्धिसे देवता भी सन्तुष्ट हो गये। मनुष्योंको तो वहाँका वैभव देखकर बड़ा ही विस्मय हुआ। पुष्कर तीर्थमें जब इस प्रकार ब्रह्माजीका यज्ञ होने लगा, उस समय ऋषियोंने सन्तुष्ट होकर सरस्वतीका सुप्रभा नामसे आवाहन किया। पितामहका सम्मान करती हुई वेगशालिनी सरस्वती नदीको उपस्थित देखकर मुनियोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। इस प्रकार नदियोंमें श्रेष्ठ सरस्वती ब्रह्माजीकी सेवा तथा मनीषी मुनियोंकी प्रसन्नताके लिये ही पुष्कर तीर्थमें प्रकट हुई थी। जो मनुष्य सरस्वतीके उत्तर-तटपर अपने शरीरका परित्याग करता है तथा प्राची सरस्वतीके तटपर जप करता है, वह पुनः जन्म-मृत्युको नहीं प्राप्त होता। सरस्वतीके जलमें डुबकी लगानेवालेको अश्वमेध यज्ञका पूरा-पूरा फल मिलता है। जो वहाँ नियम और उपवासके द्वारा अपने शरीरको सुखाता है, केवल जल या वायु पीकर अथवा पत्ते चबाकर तपस्या करता है, वेदीपर सोता है तथा यम और नियमोंका पृथक्-पृथक् पालन करता है, वह शुद्ध हो ब्रह्माजीके परम पदको प्राप्त होता है। जिन्होंने सरस्वती तीर्थमें तिलभर भी सुवर्णका दान किया है, उनका वह दान मेरुपर्वतके दानके समान फल देनेवाला है—यह बात पूर्वकालमें स्वयं प्रजापति ब्रह्माजीने कही थी। जो मनुष्य उस तीर्थमें श्राद्ध करेंगे, वे अपने कुलकी इक्कीस पीढ़ियोंके साथ स्वर्गलोकमें जायँगे। वह तीर्थ पितरोंको बहुत ही प्रिय है, वहाँ एक ही पिण्ड देनेसे उन्हें पूर्ण तृप्ति हो जाती है। वे पुष्करतीर्थके द्वारा उद्धार पाकर ब्रह्मलोकमें पधारते हैं। उन्हें फिर अन्न—भोगोंकी इच्छा नहीं होती, वे मोक्षमार्गमें चले जाते हैं। अब मैं सरस्वती नदी जिस प्रकार पूर्ववाहिनी हुई, वह प्रसङ्ग बतलाता हूँ, सुनो।

पहलेकी बात है, एक बार इन्द्र आदि समस्त देवताओंकी ओरसे भगवान् श्रीविष्णुने सरस्वतीसे कहा—'देवि! तुम पश्चिम-समुद्रके तटपर जाओ और इस बडवानलको ले जाकर समुद्रमें डाल दो। ऐसा करनेसे समस्त देवताओंका भय दूर हो जायगा। तुम माताकी भाँति देवताओंको अभय-दान दो।' सबको उत्पन्न करनेवाले भगवान् श्रीविष्णुकी ओरसे यह आदेश मिलनेपर देवी सरस्वतीने कहा—'भगवन्! मैं स्वाधीन नहीं हूँ, आप इस कार्यके लिये मेरे पिता ब्रह्माजीसे अनुरोध कीजिये। पिताजीकी आज्ञाके बिना मैं एक पग भी कहीं नहीं जा सकती।' सरस्वतीका अभिप्राय जानकर देवताओंने ब्रह्माजीसे कहा—'पितामह! आपकी कुमारी कन्या सरस्वती बड़ी साध्वी है—उसमें किसी प्रकारका दोष नहीं देखा गया है, अतः उसे छोड़कर दूसरा कोई नहीं है, जो बडवानलको ले जा सके।'

पुलस्त्यजी कहते हैं—देवताओंकी बात सुनकर ब्रह्माजीने सरस्वतीको बुलाया और उसे गोदमें लेकर उसका मस्तक सूँघा। फिर बड़े स्नेहके साथ कहा—'बेटी! तुम मेरी और इन समस्त देवताओंकी रक्षा करो। देवताओंके प्रभावसे तुम्हें इस कार्यके करनेपर बड़ा सम्मान प्राप्त होगा। इस बडवानलको ले जाकर खारे पानीके समुद्रमें डाल दो।' पिताके वियोगके कारण बालिकाके नेत्रोंमें आँसू छलछला आये। उसने ब्रह्माजीको प्रणाम करके कहा—'अच्छा, जाती हूँ।' उस समय सम्पूर्ण देवताओं तथा उसके पिताने भी कहा—'भय न करो।' इससे वह भय छोड़कर प्रसन्न चित्तसे जानेको तैयार हुई। उसकी यात्राके समय शङ्ख और नगारोंकी ध्वनि तथा मङ्गलघोष होने लगा, जिसकी

आवाजसे सारा जगत् गूँज उठा । सरस्वती अपने तेजसे सर्वत्र प्रकाश फैलाती हुई चली । उस समय गङ्गाजी उसके पीछे हो लीं । तब सरस्वतीने कहा—'सखी ! तुम कहाँ आती हो ? मैं फिर तुमसे मिलूँगी ।' सरस्वतीके ऐसा कहनेपर गङ्गाने मधुर वाणीमें कहा—'शुभे ! अब तो तुम जब पूर्व-दिशामें आओगी, तभी मुझे देख सकोगी । देवताओंसहित तुम्हारा दर्शन तभी मेरे लिये सुलभ हो सकेगा ।' यह सुनकर सरस्वतीने कहा—'शुचिस्मिते ! तब तुम भी उत्तराभिमुखी होकर शोकका परित्याग कर देना ।' गङ्गा बोलीं—'सखी ! मैं उत्तराभिमुखी होनेपर अधिक पवित्र मानी जाऊँगी और तुम पूर्वाभिमुखी होनेपर । उत्तरवाहिनी गङ्गा और पूर्ववाहिनी सरस्वतीमें जो मनुष्य श्राद्ध और दान करेंगे, वे तीनों ऋणोंसे मुक्त होकर मोक्षमार्गका आश्रय लेंगे—इसमें कोई अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है ।'

इसपर वह सरस्वती नदीरूपमें परिणत हो गयी । देवताओंके देखते-देखते एक पाकरके वृक्षकी जड़से प्रकट हुई । वह वृक्ष भगवान् विष्णुका स्वरूप है । सम्पूर्ण देवताओंने उसकी वन्दना की है । उसकी अनेकों शाखाएँ सब ओर फैली हुई हैं । वह दूसरे ब्रह्माजीकी भाँति शोभा पाता है । यद्यपि उस वृक्षमें एक भी फूल नहीं है, तो भी वह डालियोंपर बैठे हुए शुक आदि पक्षियोंके कारण फूलोंसे लदा-सा जान पड़ता है । सरस्वतीने उस पाकरके समीप स्थित होकर देवाधिदेव विष्णुसे कहा—'भगवन् ! मुझे बडवाग्नि समर्पित कीजिये, मैं आपकी आज्ञाका पालन करूँगी ।' उसके ऐसा कहनेपर भगवान् श्रीविष्णु बोले—'शुभे ! तुम्हें इस बडवानलको पश्चिम-समुद्रकी ओर ले जाते समय जलनेका कोई भय नहीं होगा ।'

पुलस्त्यजी कहते हैं—तदनन्तर भगवान् श्रीविष्णुने बडवानलको सोनेके घड़ेमें रखकर सरस्वतीको सौंप दिया । उसने उस घड़ेको अपने उदरमें रखकर पश्चिमकी ओर प्रस्थान किया । अदृश्य गतिसे चलती हुई वह महानदी पुष्करमें पहुँची और ब्रह्माजीने जिन-जिन कुण्डोंमें हवन किया था, उन सबको जलसे आप्लावित करके प्रकट हुई । इस प्रकार पुष्कर क्षेत्रमें परम पवित्र सरस्वती नदीका प्रादुर्भाव हुआ । जगत्को जीवनदान देनेवाली वायुने भी उसका जल लेकर वहाँके सब तीर्थोंमें डाल दिया । उस पुण्यक्षेत्रमें पहुँच-कर पुण्यसलिला सरस्वती मनुष्योंके पापोंका नाश करनेके लिये स्थित हो गयी । जो पुण्यात्मा मनुष्य पुष्कर तीर्थमें विद्यमान सरस्वतीका दर्शन करते हैं, वे नारकी जीवोंकी अधो-गतिका अनुभव नहीं करते । जो मनुष्य उसमें भक्ति-भावके साथ स्नान करते हैं, वे ब्रह्मलोकमें पहुँचकर ब्रह्माजीके साथ आनन्दका अनुभव करते हैं । जो मनुष्य ज्येष्ठ पुष्करमें स्नान करके पितरोंका तर्पण करता है, वह उन सबका नरकसे उद्धार कर देता है तथा स्वयं उसका भी चित्त शुद्ध हो जाता है । ब्रह्माजीके क्षेत्रमें पुण्यसलिला सरस्वतीको पाकर मनुष्य दूसरे किस तीर्थकी कामना करे—उससे बढ़कर दूसरा तीर्थ है ही कौन ? सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वह सब-का-सब ज्येष्ठ पुष्करमें एक बार डुबकी लगानेसे मिल जाता है । अधिक क्या कहा जाय—जिसने पुष्कर क्षेत्रका निवास, ज्येष्ठ कुण्डका जल तथा उस तीर्थमें मृत्यु—ये तीन बातें प्राप्त कर लीं, उसने परमगति पा ली । जो मनुष्य उत्तम काल, उत्तम क्षेत्र तथा उत्तम तीर्थमें स्नान और होम करके ब्राह्मणको दान देता है, वह अक्षय सुखका भागी होता है । कार्तिक और वैशाखके शुक्ल पक्षमें तथा चन्द्रमा और सूर्यके ग्रहणके समय स्नान करनेयोग्य कुरुजाङ्गलदेशमें जितने क्षेत्र और तीर्थ मुनीश्वरोंद्वारा बताये गये हैं, उन सबमें यह पुष्कर तीर्थ अधिक पवित्र है—ऐसा ब्रह्माजीने कहा है ।

जो पुरुष कार्तिककी पूर्णिमाको मध्यम कुण्ड (मध्यम पुष्कर)-में स्नान करके ब्राह्मणको धन देता है, उसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है । इसी प्रकार कनिष्ठ कुण्ड (अन्त्य पुष्कर)-में एकाग्रतापूर्वक स्नान करके जो ब्राह्मणको उत्तम अगहनीका चावल दान करता है, वह अग्निलोकमें जाता है तथा वहाँ इक्कीस पीढ़ियोंके साथ रहकर श्रेष्ठ फलका उपभोग करता है । इसलिये पुरुषको उचित है कि वह पूरा प्रयत्न करके पुष्कर तीर्थकी प्राप्तिके लिये—वहाँकी यात्रा करनेके लिये अपना विचार स्थिर करे । मति, स्मृति, प्रज्ञा, मेधा, बुद्धि और शुभ वाणी—ये छः सरस्वतीके पर्याय बतलाये गये हैं । जो पुष्करके वनमें, जहाँ प्राची सरस्वती है, जाकर उसके जलका दर्शन भर कर लेते हैं, उन्हें भी अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है तथा जो उसके भीतर गोता लगाकर स्नान करता है, वह तो ब्रह्माजीका अनुचर होता है । जो मनुष्य वहाँ विधिपूर्वक श्राद्ध करते हैं, वे पितरोंको दुःखदायी नरकसे निकालकर स्वर्गमें पहुँचा देते हैं । जो सरस्वतीमें स्नान करके पितरोंको कुश और तिलसे युक्त जल दान करते हैं, उनके पितर हर्षित हो नाचने लगते हैं । यह पुष्कर तीर्थ

सब तीर्थोंसे श्रेष्ठ माना गया है, क्योंकि यह आदि तीर्थ है। इसीलिये इस पृथ्वीपर यह समस्त तीर्थोंमें विख्यात है। यह मानो धर्म और मोक्षकी क्रीडास्थली है, निधि है। सरस्वतीसे युक्त होनेके कारण इसकी महिमा और भी बढ़ गयी है। जो लोग पुष्कर तीर्थमें सरस्वती नदीका जल पीते हैं, वे ब्रह्मा और महादेवजीके द्वारा प्रशंसित अक्षय लोकोंको प्राप्त होते हैं। धर्मके तत्त्वको जाननेवाले मुनियोंने जहाँ-जहाँ सरस्वतीदेवीका सेवन किया है, उन सभी स्थानोंमें वे परम पवित्ररूपसे स्थित हैं, किन्तु पुष्करमें वे अन्य स्थलों की अपेक्षा विशेष पवित्र मानी गयी हैं। पुण्यमयी सरस्वती नदी संसारमें सुलभ है, किन्तु कुरुक्षेत्र, प्रभासक्षेत्र और पुष्कर क्षेत्रमें तो वह बड़े भाग्यसे प्राप्त होती है। अतः वहाँ इसका दर्शन दुर्लभ बताया गया है। सरस्वती तीर्थ इस भूतलके समस्त तीर्थोंमें श्रेष्ठ होनेके साथ ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंका साधक है। अतः मनुष्यको चाहिये कि वह ज्येष्ठ, मध्यम तथा कनिष्ठ—तीनों पुष्करोंमें यत्नपूर्वक स्नान करके उनकी प्रदक्षिणा करे। तत्पश्चात् पवित्र भावसे प्रतिदिन पितामहका दर्शन करे। ब्रह्मलोकमें जानेकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको अनुलोमक्रमसे अर्थात् क्रमशः ज्येष्ठ, मध्यम एवं कनिष्ठ पुष्करमें तथा विलोम क्रमसे अर्थात् कनिष्ठ, मध्यम और ज्येष्ठ पुष्करमें स्नान करना चाहिये। इसी प्रकार वह उक्त तीनों पुष्करोंमेंसे किसी एकमें या सबमें नित्य स्नान करता रहे।

पुष्कर क्षेत्रमें तीन सुन्दर शिखर और तीन ही स्रोत हैं। वे सब-के-सब पुष्कर नामसे ही प्रसिद्ध हैं। उन्हें ज्येष्ठ पुष्कर, मध्यम पुष्कर और कनिष्ठ पुष्कर कहते हैं। जो मन और इन्द्रियोंको वशमें करके सरस्वतीमें स्नान करता और ब्राह्मणको एक उत्तम गौ दान देता है, वह शास्त्रीय आज्ञाके पालनसे शुद्धचित्त होकर अक्षय लोकों को पाता है। अधिक क्या कहें—जो रात्रिके समय भी स्नान करके वहाँ याचकको धन देता है, वह अनन्त सुखका भागी होता है। पुष्करमें तिल-दानकी मुनिलोग अधिक प्रशंसा करते हैं तथा कृष्णपक्षकी चतुर्दशीको वहाँ सदा ही स्नान करनेका विधान है।

भीष्मजी! पुष्कर वनमें पहुँचकर सरस्वती नदीके प्रकट होनेकी बात बतायी गयी। अब वह पुनः अदृश्य होकर वहाँसे पश्चिम दिशाकी ओर चली। पुष्करसे थोड़ी ही दूर जानेपर एक खजूरका वन मिला, जो फल और फूलोंसे सुशोभित था, सभी ऋतुओंके पुष्प उस वनस्थलीकी शोभा बढ़ा रहे थे। वह स्थान मुनियोंके भी मनको मोहनेवाला था। वहाँ पहुँचकर नदियोंमें श्रेष्ठ सरस्वतीदेवी पुनः प्रकट हुई। वहाँ वे 'नन्दा' के नामसे तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध हुई।

सरस्वतीके नन्दा नाम पड़नेका इतिहास और उसका माहात्म्य

सूतजी कहते हैं—यह सुनकर देवव्रत भीष्मने पुलस्त्य जीसे पूछा—"ब्रह्मन्! सरिताओंमें श्रेष्ठ नन्दा कोई दूसरी नदी तो नहीं है? मेरे मनमें इस बातको लेकर बड़ा कौतूहल हो रहा है कि सरस्वतीका नाम 'नन्दा' कैसे पड़ गया। जिस प्रकार और जिस कारणसे वह 'नन्दा' नामसे प्रसिद्ध हुई, उसे बतानेकी कृपा कीजिये।" भीष्मके इस प्रकार पूछनेपर पुलस्त्यजीने सरस्वतीका 'नन्दा' नाम क्यों पड़ा, इसका प्राचीन इतिहास सुनाना आरम्भ किया। वे बोले—भीष्म! पहलेकी बात है, पृथ्वीपर प्रभञ्जन नामसे प्रसिद्ध एक महाबली राजा हो गये हैं। एक दिन वे उस वनमें मृगोंका शिकार खेल रहे थे। उन्होंने देखा, एक झाड़ीके भीतर मृगी खड़ी है। वह राजाके ठीक सामने पड़ती थी। प्रभञ्जनने अत्यन्त तीक्ष्ण बाण चलाकर मृगीको बींध डाला। आहत हरिणीने चकित होकर चारों ओर दृष्टिपात किया। फिर हाथमें धनुष-बाण धारण किये राजाको खड़ा देख वह बोली—'ओ मूढ! यह तूने क्या किया? तुम्हारा यह कर्म पापपूर्ण है। मैं यहाँ नीचे मुँह किये खड़ी थी और निर्भय होकर अपने बच्चेको दूध पिला रही थी। इसी अवस्थामें तूने इस वनके भीतर मुझ निरपराध हरिणीको अपने वज्रके समान बाणका निशाना बनाया है। तेरी बुद्धि बड़ी खोटी है, इसलिये तू कच्चा मांस खानेवाले पशुकी योनिमें पड़ेगा। इस कण्टकाकीर्ण वनमें तू व्याघ्र हो जा।'

मृगीका यह शाप सुनकर सामने खड़े हुए राजाकी सम्पूर्ण इन्द्रियाँ व्याकुल हो उठीं। वे हाथ जोड़कर बोले—'कल्याणी! मैं नहीं जानता था कि तू बच्चेको दूध पिला रही है, अनजानमें मैंने तेरा वध किया है। अतः मुझपर प्रसन्न हो। मैं व्याघ्रयोनिको त्यागकर पुनः मनुष्य

शरीरको कब प्राप्त करूँगा ? अपने इस शापके उद्धारकी अवधि तो बता दो ।' राजाके ऐसा कहनेपर मृगी बोली—'राजन् ! आजसे सौ वर्ष बीतनेपर यहाँ नन्दा नामकी एक गौ आयेगी । उसके साथ तुम्हारा वार्तालाप होनेपर इस शापका अन्त हो जायगा ।'

पुलस्त्यजी कहते हैं—मृगीके कथनानुसार राजा प्रभञ्जन बाघ हो गये । उस व्याघ्रकी आकृति बड़ी ही घोर और भयानक थी। वह उस वनमें कालके वशीभूत हुए मृगों, अन्य चौपायों तथा मनुष्योंको भी मार-मारकर खाने और रहने लगा । वह अपनी निन्दा करते हुए कहता था, 'हाय ! अब मैं पुनः कब मनुष्य-शरीर धारण करूँगा ? अबसे नीच योनिमें डालनेवाला ऐसा निन्दनीय कर्म—महान् पाप नहीं करूँगा । अब इस योनिमें मेरे द्वारा पुण्य नहीं हो सकता । एकमात्र हिंसा ही मेरी जीवन-वृत्ति है, इसके द्वारा तो सदा दुःख ही प्राप्त होता है । किस प्रकार मृगीकी कही हुई बात सत्य हो सकती है ?'

जब व्याघ्रको उस वनमें रहते सौ वर्ष हो गये, तब एक दिन वहाँ गौओंका एक बहुत बड़ा झुंड उपस्थित हुआ । वहाँ घास और जलकी विशेष सुविधा थी, वही गौओंके आनेमें कारण हुई । आते ही गौओंके विश्रामके लिये बाड़ लगा दी गयी । ग्वालोंके रहनेके लिये भी साधारण घर और स्थानकी व्यवस्था की गयी । गोचरभूमि तो वहाँ थी ही । सबका पड़ाव पड़ गया । वनके पासका स्थान गौओंके रँभानेकी भारी आवाजसे गूँजने लगा । मतवाले गोप चारों ओरसे उस गो-समुदायकी रक्षा करते थे ।

गौओंके झुंडमें एक बहुत ही हृष्ट-पुष्ट तथा सन्तुष्ट रहनेवाली गाय थी, उसका नाम था नन्दा । वही उस झुंडमें प्रधान थी तथा सबके आगे निर्भय होकर चला करती थी । एक दिन वह अपने झुंडसे बिछुड़ गयी और चरते-चरते पूर्वोक्त व्याघ्रके सामने जा पहुँची । बाघ उसे देखते ही 'खड़ी रह, खड़ी रह' कहता हुआ उसकी ओर दौड़ा और निकट आकर बोला—'आज विधाताने तुझे मेरा ग्रास नियत किया है, क्योंकि तू स्वयं यहाँ आकर उपस्थित हुई है ।' बाघका यह रोंगटे खड़े कर देनेवाला निष्ठुर वचन सुनकर उस गायको चन्द्रमाके समान कान्तिवाले अपने सुन्दर बछड़ेकी याद आने लगी । उसका गला भर आया—वह गद्गद स्वरसे पुत्रके लिये हुङ्कार करने लगी । उस गौको अत्यन्त



दुखी होकर क्रन्दन करते देख बाघ बोला—'अरी गाय ! संसारमें सब लोग अपने कर्मोंका ही फल भोगते हैं । तू स्वयं मेरे पास आ पहुँची है, इससे जान पड़ता है तेरी मृत्यु आज ही नियत है । फिर व्यर्थ शोक क्यों करती है ? अच्छा, यह तो बता—तू रोयी किसलिये ?'

बाघका प्रश्न सुनकर नन्दाने कहा—'व्याघ्र ! तुम्हें नमस्कार है, मेरा सारा अपराध क्षमा करो । मैं जानती हूँ तुम्हारे पास आये हुए प्राणीकी रक्षा असम्भव है; अतः मैं अपने जीवनके लिये शोक नहीं करती । मृत्यु तो मेरी एक-न-एक दिन होगी ही [फिर उसके लिये क्या चिन्ता] । किन्तु मृगराज ! अभी नयी अवस्थामें मैंने एक बछड़ेको जन्म दिया है । पहली बियानका बच्चा होनेके कारण वह मुझे बहुत ही प्रिय है । मेरा बच्चा अभी दूध पीकर ही जीवन चलाता है । घासको तो वह सूँघता भी नहीं । इस समय वह गोष्ठमें बँधा है और भूखसे पीड़ित होकर मेरी राह देख रहा है । उसीके लिये मुझे बारंबार शोक हो रहा है । मेरे न रहनेपर मेरा बच्चा कैसे जीवन धारण करेगा ? मैं पुत्र-स्नेहके वशीभूत हो रही हूँ और उसे दूध पिलाना चाहती हूँ । [मुझे थोड़ी देरके लिये जाने दो ।] बछड़ेको पिलाकर प्यारसे उसका मस्तक चाटूँगी और उसे हिताहितकी जानकारीके लिये कुछ उपदेश करूँगी; फिर

अपनी सखियोंकी देख-रेखमें उसे सौंपकर तुम्हारे पास लौट आऊँगी। उसके बाद तुम इच्छानुसार मुझे खा जाना।'

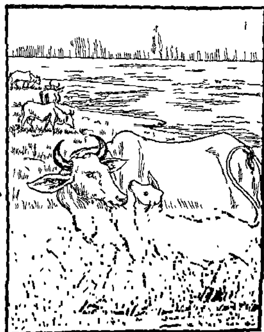
नन्दाकी बात सुनकर व्याघ्रने कहा—'अरी! अब तुझे पुत्रसे क्या काम है?' नन्दा बोली—'मृगेन्द्र! मैं पहले पहल बछड़ा ब्यायी हूँ [अतः उसके प्रति मेरी बड़ी ममता है, मुझे जाने दो]। सखियोंको, नन्हे बच्चेको, रक्षा करनेवाले ग्वालों और गोपियोंको तथा विशेषतः अपनी जन्मदायिनी माताको देखकर उन सबसे विदा लेकर आ जाऊँगी—मैं शपथपूर्वक यह बात कहती हूँ। यदि तुम्हे विश्वास हो, तो मुझे छोड़ दो। यदि मैं पुनः लौटकर न आऊँ तो मुझे वही पाप लगे, जो ब्राह्मण तथा माता पिताका वध करनेसे होता है। व्याधों, म्लेच्छों और जहर देनेवालोंको जो पाप लगता है, वही मुझे भी लगे। जो गोशालामें विघ्न डालते हैं, सोते हुए प्राणीको मारते हैं तथा जो एक बार अपनी कन्याका दान करके फिर उसे दूसरेको देना चाहते हैं, उन्हें जो पाप लगता है, वही मुझे भी लगे। जो अयोग्य बैलोंसे भारी बोझ उठवाता है, उसको लगनेवाला पाप मुझे भी लगे। जो कथा होते समय विघ्न डालता है और जिसके घरपर आया हुआ मित्र निराश लौट जाता है, उसको जो पाप लगता है, वही मुझे भी लगे, यदि मैं पुनः लौटकर न आऊँ। इन भयंकर पातकोंके भयसे मैं अवश्य आऊँगी।'

नन्दाकी ये शपथें सुनकर बाघको उसपर विश्वास हो गया। वह बोला—"गाय! तुम्हारी इन शपथोंसे मुझे विश्वास हो गया है। पर कुछ लोग तुमसे यह भी कहेंगे कि 'स्त्रीके साथ हास-परिहासमें, विवाहमें, गौको संकटसे बचानेमें तथा प्राण-संकट उपस्थित होनेपर जो शपथ की जाती है, उसकी उपेक्षासे पाप नहीं लगता।' किन्तु तुम इन बातोंपर विश्वास न करना। इस संसारमें कितने ही ऐसे नास्तिक हैं, जो मूर्ख होते हुए भी अपनेको पण्डित समझते हैं, वे तुम्हारी बुद्धिको क्षणभरमें भ्रममें डाल देंगे। जिनके चित्तपर अज्ञानका परदा पड़ा रहता है, वे क्षुद्र मनुष्य कुतर्कपूर्ण युक्तियों और दृष्टान्तोंसे दूसरोंको मोहमें डाल देते हैं। इसलिये तुम्हारी बुद्धिमें यह बात नहीं आनी चाहिये कि मैंने शपथोंद्वारा बाघको ठग लिया। तुमने ही मुझे धर्मका सारा मार्ग दिखाया है, अतः इस समय तुम्हारी जैसी इच्छा हो, करो।'

नन्दा बोली—साधो! तुम्हारा कथन ठीक है, तुम्हें कौन ठग सकता है। जो दूसरोंको ठगना चाहता है, वह तो अपने आपको ही ठगता है।

बाघने कहा—गाय! अब तुम जाओ। पुत्रवत्सले! अपने पुत्रको देखो, दूध पिलाओ, उसका मस्तक चाटो तथा माता, भाई, सखी, स्वजन एवं बन्धु-बान्धवोंका दर्शन करके सत्यको आगे रखकर शीघ्र ही यहाँ लौट आओ।

पुलस्त्यजी कहते हैं—वह पुत्रवत्सला धेनु बड़ी सत्यवादिनी थी। पूर्वोक्त प्रकारसे शपथ करके जब वह व्याघ्रकी आज्ञा ले चुकी, तब गोष्ठकी ओर चली। उसके मुखपर आँसुओंकी धारा बह रही थी। वह अत्यन्त दीन भावसे काँप रही थी। उसके हृदयमें बड़ा दुःख था। वह शोकके समुद्रमें डूबकर बारबार डँकराती थी। नदीके किनारे गोष्ठपर पहुँचकर उसने सुना, बछड़ा पुकार रहा है। आवाज कानमें पड़ते ही वह उसकी ओर दौड़ी और निकट पहुँचकर नेत्रोंसे आँसू बहाने लगी। माताको निकट पाकर बछड़ेने



शङ्कित होकर पूछा—'माँ! [आज क्या हो गया है!] मैं तुम्हें प्रसन्न नहीं देखता, तुम्हारे हृदयमें शान्ति नहीं दिखायी देती। तुम्हारी दृष्टिमें भी व्यग्रता है, आज तुम अत्यन्त डरी हुई दीख पड़ती हो।'

नन्दा बोली—बेटा! स्तन पान करो, यह हमलोगोंकी अन्तिम भेंट है, अबसे तुम्हें माताका दर्शन दुर्लभ हो जायगा। आज एक दिन मेरा दूध पीकर कल सबेरेसे किसका

पियोगे ! वत्स ! मुझे अभी लौट जाना है, मैं शपथ करके यहाँ आयी हूँ । भूखसे पीड़ित बाघको मुझे अपना जीवन अर्पण करना है ।

बछड़ा बोला—माँ ! तुम जहाँ जाना चाहती हो, वहाँ मैं भी चलूँगा । तुम्हारे साथ मेरा भी मर जाना ही अच्छा है । तुम न रहोगी तो मैं अकेले भी तो मर ही जाऊँगा, [फिर साथ ही क्यों न मरूँ ?] यदि बाघ तुम्हारे साथ मुझे भी मार डालेगा तो निश्चय ही मुझको वह उत्तम गति मिलेगी, जो मातृभक्त पुत्रोंको मिला करती है । अतः मैं तुम्हारे साथ अवश्य चलूँगा । मातासे बिछुड़े हुए बालकके जीवनका क्या प्रयोजन है ? केवल दूध पीकर रहनेवाले बच्चोंके लिये माताके समान दूसरा कोई बन्धु नहीं है । माताके समान रक्षक, माताके समान आश्रय, माताके समान स्नेह, माताके समान सुख तथा माताके समान देवता इहलोक और परलोकमें भी नहीं है । यह ब्रह्माजीका स्थापित किया हुआ परम धर्म है । जो पुत्र इसका पालन करते हैं, उन्हें उत्तम गति प्राप्त होती है।*

नन्दाने कहा—बेटा ! मेरी ही मृत्यु नियत है, तुम वहाँ न आना । दूसरेकी मृत्युके साथ अन्य जीवोंकी मृत्यु नहीं होती [जिसकी मृत्यु नियत है, उसीकी होती है] । तुम्हारे लिये माताका यह उत्तम एवं अन्तिम सन्देश है; मेरे वचनोंका पालन करते हुए यहीं रहो, यही मेरी सबसे बड़ी शुश्रूषा है । जलके समीप अथवा वनमें विचरते हुए कभी प्रमाद न करना; प्रमादसे समस्त प्राणी नष्ट हो जाते हैं । लोभवश कभी ऐसी घासको चरनेके लिये न जाना, जो किसी दुर्गम स्थानमें उगी हो; क्योंकि लोभसे इहलोक और परलोकमें भी सबका विनाश हो जाता है । लोभसे मोहित होकर लोग समुद्रमें, घोर वनमें तथा दुर्गम स्थानोंमें भी प्रवेश कर जाते हैं । लोभके कारण विद्वान् पुरुष भी भयंकर पाप कर बैठता है । लोभ, प्रमाद तथा हर एकके प्रति विश्वास कर लेना—इन तीन कारणोंसे जगत्‌का नाश होता है; अतः इन तीनों दोषोंका परित्याग करना चाहिये । बेटा ! सम्पूर्ण शिकारी जीवोंसे तथा म्लेच्छ और चोर आदिके द्वारा संकट प्राप्त होनेपर सदा प्रयत्नपूर्वक अपने शरीरकी रक्षा करनी चाहिये । पापयोनिवाले पशु-पक्षी अपने साथ एक स्थानपर निवास करते हों, तो भी उनके विपरीत चित्तका सहसा पता नहीं लगता । नखवाले जीवोंका, नदियोंका, सींगवाले पशुओंका, शस्त्र धारण करनेवालोंका, स्त्रियोंका तथा दूतोंका कभी विश्वास नहीं करना चाहिये । जिसपर पहले कभी विश्वास नहीं किया गया हो, ऐसे पुरुषपर तो विश्वास करे ही नहीं; जिसपर विश्वास जम गया हो, उसपर भी अत्यन्त विश्वास न करे; क्योंकि [अविश्वसनीयपर] विश्वास करनेसे जो भय उत्पन्न होता है, वह विश्वास करनेवालेका समूल नाश कर डालता है । औरोंकी तो बात ही क्या है, अपने शरीरका भी विश्वास नहीं करना चाहिये । भीरु स्वभाववाले बालकका भी विश्वास न करे; क्योंकि बालक डरानेधमकानेपर प्रमादवश गुप्त बात भी दूसरोंको बता सकते हैं ।* सर्वत्र और सदा सूँघते हुए ही चलना चाहिये; क्योंकि गन्धसे ही गौएँ भली-बुरी वस्तुकी परख कर पाती हैं । भयंकर वनमें कभी अकेला न रहे । सदा धर्मका ही चिन्तन करे । मेरी मृत्युसे तुम्हें घबराना नहीं चाहिये; क्योंकि एक-न-एक दिन सबकी मृत्यु निश्चित है । जैसे कोई पथिक छायाका आश्रय लेकर बैठ जाता है और विश्राम करके फिर वहाँसे चल देता है, उसी प्रकार प्राणियोंका समागम होता है ।†

* नास्ति मातृसमो नाथो नास्ति मातृसमा गतिः ।
नास्ति मातृसमः स्नेहो नास्ति मातृसमं सुखम् ॥
नास्ति मातृसमो देव इहलोके परत्र च ।
एवं वै परमं धर्मं प्रजापतिविनिर्मितम् ।
ये तिष्ठन्ति सदा पुत्रास्ते यान्ति परमां गतिम् ॥
(१८ । ३५३—५४)

* समुद्रमटवीं दुर्गं विशन्ते लोभमोहिताः ।
लोभादकार्यमत्युग्रं विद्वानपि समाचरेत् ॥
लोभात्प्रमादाद्विश्रम्भात्त्रिविधैः क्षीयते जगत् ।
तस्माल्लोभं न कुर्वीत न प्रमादं न विश्वसेत् ॥
आत्मा हि सततं पुत्र रक्षणीयः प्रयत्नतः ।
सर्वेभ्यः श्वापदेभ्यश्च म्लेच्छचौरादिसङ्कटे ॥
तिरश्चां पापयोनीनामेकत्र वसतामपि ।
विपरीतानि चित्तानि विज्ञायन्ते न पुत्रक ॥
नखिनां च नदीनां च शृङ्गिणां शस्त्रधारिणाम् ।
विश्वासो नैव कर्तव्यः स्त्रीणां प्रेष्यजनस्य च ॥
विश्वसेदविश्वस्ते विश्वस्ते नातिविश्वसेत् ।
विश्वासाद्भयमुत्पन्नं मूलादपि निकृन्तति ॥
न विश्वसेत् स्वदेहेऽपि बालेऽप्यभीतचेतसि ।
वक्ष्यन्ति गूढमप्यर्थं सुप्रमत्ते प्रमादतः ॥
(१८ । ३५९—६५)

† यथा हि पथिकः कश्चिच्छायामाश्रित्य तिष्ठति ।
विश्रम्य च पुनर्गच्छेत्तद्वद्भूतसमागमः ॥
(१८ । ३६८)

बेटा ! तुम शोक छोड़कर मेरे वचनोंका पालन करो।

पुलस्त्यजी कहते हैं—यह कहकर नन्दा पुत्रका मस्तक सूँघकर उसे चाटने लगी और अत्यन्त शोकके वशीभूत हो डबडबायी हुई आँखोंसे बारबार लबी साँस लेने लगी। तदनन्तर बारबार पुत्रको निहारकर वह अपनी माता, सखियों तथा गोपियोंके पास जाकर बोली—'माताजी! मैं अपने झुडके आगे चरती हुई चली जा रही थी। इतनेमें ही एक व्याघ्र मेरे पास आ पहुँचा। मैंने अनेकों सौगधें खाकर उसे लौट आनेका विश्वास दिलाया है, तब उसने मुझे छोड़ा है। मैं बेटेको देखने तथा आपलोगोंसे मिलनेके लिये चली आयी थी, अब फिर वहीं जा रही हूँ। माँ! मैंने अपने दुष्ट स्वभावके कारण तुम्हारा जो जो अपराध किया हो, वह सब क्षमा करना। अब अपने इस नातीको लड़का करके मानना। [*सखियोंकी ओर मुड़कर*] प्यारी सखियो! मैंने जानकर या अनजानमें यदि तुमसे कोई अप्रिय बात कह दी हो अथवा और कोई अपराध किया हो तो उसके लिये तुम सब मुझे क्षमा करना। तुम सब सम्पूर्ण सद्गुणोंसे युक्त हो। तुममे सब कुछ देनेकी शक्ति है। मेरे बालकपर सदा क्षमाभाव रखना। मेरा बच्चा दीन, अनाथ और व्याकुल है, इसकी रक्षा करना। मैं तुम्हीं लोगोंको इसे सौंप रही हूँ, अपने पुत्रकी ही भाँति इसका भी पोषण करना। अच्छा, अब क्षमा माँगती हूँ। मैं सत्यको अपना चुकी हूँ, अत व्याघ्रके पास जाऊँगी। सखियोंको मेरे लिये चिन्ता नहीं करनी चाहिये।'

नन्दाकी बात सुनकर उसकी माता और सखियोंको बड़ा दु ख हुआ। वे अत्यन्त आश्चर्य और विषादमें पड़कर बोलीं—'अहो! यह बड़े आश्चर्यकी बात है कि व्याघ्रके कहनेसे सत्यवादिनी नन्दा पुन उस भयङ्कर स्थानमे प्रवेश करना चाहती है। शपथ और सत्यके आश्रयसे शत्रुको धोखा दे अपने ऊपर आये हुए महान् भयका यत्नपूर्वक नाश करना चाहिये। जिस उपायसे आत्मरक्षा हो सके, वही कर्तव्य है। नन्दे! तुम्हे वहाँ नहीं जाना चाहिये। अपने नन्हे से शिशुको त्यागकर सत्यके लोभसे जो तू वहाँ जा रही है, यह तुम्हारे द्वारा अधर्म हो रहा है। इस विषयमें धर्मवादी ऋषियोंने पहले एक वचन कहा था, वह इस प्रकार है। प्राणसकट उपस्थित होनेपर शपथोंके द्वारा आत्मरक्षा करनेमे पाप नहीं लगता। जहाँ असत्य बोलनेसे प्राणियोंकी प्राणरक्षा होती हो, वहाँ वह असत्य भी सत्य है और सत्य भी असत्य है।'*

नन्दा बोली—बहिनो! दूसरोंके प्राण बचानेके लिये मैं भी असत्य कह सकती हूँ। किन्तु अपने लिये—अपने जीवनकी रक्षाके लिये मैं किसी तरह झूठ नहीं बोल सकती। जीव अकेले ही गर्भमे आता है, अकेले ही मरता है, अकेले ही उसका पालन-पोषण होता है तथा अकेले ही वह सुख दु ख भोगता है, अत मैं सदा सत्य ही बोलूँगी। सत्यपर ही ससार टिका हुआ है, धर्मकी स्थिति भी सत्यमें ही है। सत्यके कारण ही समुद्र अपनी मर्यादाका उल्लङ्घन नहीं करता। राजा बलि भगवान विष्णुको पृथ्वी देकर स्वय पातालमें चले गये और छलसे बाँधे जानेपर भी सत्यपर ही डटे रहे। गिरिराज विन्ध्य अपने सौ शिखरोंके साथ बढते बढते बहुत ऊँचे हो गये थे [यहाँतक कि उन्होंने सूर्यका मार्ग भी रोक लिया था], किन्तु सत्यमें बँध जानेके कारण ही वे [*महर्षि अगस्त्यके साथ किये गये*] अपने नियमको नहीं तोड़ते। स्वर्ग, मोक्ष तथा धर्म—सब सत्यमें ही प्रतिष्ठित हैं, जो अपने वचनका लोप करता है, उसने मानो सबका लोप कर दिया। सत्य अगाध जलसे भरा हुआ तीर्थ है, जो उस शुद्ध सत्यमय तीर्थमें स्नान करता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर परम गतिको प्राप्त होता है। एक हजार अश्वमेध यज्ञ और सत्यभाषण—ये दोनो यदि तराजूपर रक्खे जायँ तो एक हजार अश्वमेध यज्ञोंसे सत्यका ही पलड़ा भारी रहेगा। सत्य ही उत्तम तप है, सत्य ही उत्कृष्ट शास्त्रज्ञान है। सत्यभाषणमें किसी प्रकारका क्लेश नहा है। सत्य ही साधुपुरुषोंकी परखके लिये कसौटी है। वही सत्पुरुषोंकी वश परम्परागत सम्पत्ति है। सम्पूर्ण आश्रयोंमें सत्यका ही आश्रय श्रेष्ठ माना गया है। वह अत्यन्त कठिन होनेपर भी उसका पालन करना अपने हाथमें है। सत्य सम्पूर्ण जगत्के लिये आभूषणरूप है। जिस सत्यका उच्चारण करके म्लेच्छ भी स्वर्गमें पहुँच जाता है, उसका परित्याग कैसे किया जा सकता है।†

---

* उक्तमानृतं भवेद् यत्र प्राणिनां प्राणरक्षणम्।
अनृत तत्र सत्य स्यात् सत्यमप्यनृत भवेत्॥
(१८। ३९२)

† एक सक्लिश्यते गर्भे मरणे भरणे तथा।
भुङ्क्ते चैक सुख दु खमत सत्य वदाम्यहम्॥

सखियाँ बोलीं—नन्दे ! तुम सम्पूर्ण देवताओं और दैत्योंके द्वारा नमस्कार करनेयोग्य हो; क्योंकि तुम परम सत्यका आश्रय लेकर अपने प्राणोंका भी त्याग कर रही हो, जिनका त्याग बड़ा ही कठिन है । कल्याणी ! इस विषयमें हमलोग क्या कह सकती हैं । तुम तो धर्मका बीड़ा उठा रही हो । इस सत्यके प्रभावसे त्रिभुवनमें कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं है । इस महान् त्यागसे हमलोग यही समझती हैं कि तुम्हारा अपने पुत्रके साथ वियोग नहीं होगा । जिस नारीका चित्त कल्याणमार्गमें लगा हुआ है, उसपर कभी आपत्तियाँ नहीं आतीं ।

पुलस्त्यजी कहते हैं—तदनन्तर गोपियोंसे मिलकर तथा समस्त गो-समुदायकी परिक्रमा करके वहाँके देवताओं और वृक्षोंसे विदा ले नन्दा वहाँसे चल पड़ी । उसने पृथ्वी, वरुण, अग्नि, वायु, चन्द्रमा, दसों दिक्पाल, वनके वृक्ष, आकाशके नक्षत्र तथा ग्रह—इन सबको बारंबार प्रणाम करके कहा—'इस वनमें जो सिद्ध और वनदेवता निवास करते हैं, वे वनमें चरते हुए मेरे पुत्रकी रक्षा करें ।' इस प्रकार पुत्रके स्नेहवश बहुत-सी बातें कहकर नन्दा वहाँसे प्रस्थित हुई और उस स्थानपर पहुँची, जहाँ वह तीखी दाढ़ों और भयङ्कर आकृतिवाला मांसभक्षी बाघ मुँह बाये बैठा था । उसके पहुँचनेके साथ ही उसका बछड़ा भी अपनी पूँछ ऊपरको उठाये अत्यन्त वेगसे दौड़ता हुआ वहाँ आ गया और अपनी माता और व्याघ्र दोनोंके आगे खड़ा हो गया । पुत्रको आया



देख तथा सामने खड़े हुए मृत्युरूप बाघपर दृष्टि डालकर उस गौने कहा—'मृगराज ! मैं सत्यधर्मका पालन करती हुई तुम्हारे पास आ गयी हूँ; अब मेरे मांससे तुम इच्छानुसार अपनी तृप्ति करो ।'

व्याघ्र बोला—गाय ! तुम बड़ी सत्यवादिनी निकलीं । कल्याणी ! तुम्हारा स्वागत है । सत्यका आश्रय लेनेवाले प्राणियोंका कभी कोई अमङ्गल नहीं होता । तुमने लौटनेके लिये जो पहले सत्यपूर्वक शपथ की थी, उसे सुनकर मुझे बड़ा कौतूहल हुआ था कि यह जाकर फिर कैसे लौटेगी । तुम्हारे सत्यकी परीक्षाके लिये ही मैंने पुनः तुम्हें भेज दिया था । अन्यथा मेरे पास आकर तुम जीती-जागती कैसे लौट सकती थीं । मेरा वह कौतूहल पूरा हुआ । मैं तुम्हारे भीतर सत्य खोज रहा था, वह मुझे मिल गया । इस सत्यके प्रभावसे मैंने तुम्हें छोड़ दिया; आजसे तुम मेरी बहिन हुई और यह तुम्हारा पुत्र मेरा भानजा हो गया । शुभे ! तुमने अपने आचरणसे मुझ महान् पापीको यह उपदेश दिया है कि सत्यपर ही सम्पूर्ण लोक प्रतिष्ठित हैं ।

सत्ये प्रतिष्ठिता लोका धर्मः सत्ये प्रतिष्ठितः ।
उदधिः सत्यवाक्येन मर्यादां न विलङ्घति ॥
विष्णवे पृथिवीं दत्त्वा बलिः पातालमास्थितः ।
छद्मनापि बलिर्बद्धः सत्यवाक्येन तिष्ठति ॥
प्रवर्द्धमानः शैलेन्द्रः शतशृङ्गः समुच्छ्रितः ।
सत्येन संस्थितो विन्ध्यः प्रबन्धं नातिवर्तते ॥
स्वर्गो मोक्षस्तथा धर्मः सर्वे वाचि प्रतिष्ठिताः ।
यस्तां लोपयते वाचमशेषं तेन लोपितम् ॥

× × ×

अगाधसलिले शुद्धे सत्यतीर्थे क्षमाह्रदे ।
स्नात्वा पापविनिर्मुक्तः प्रयाति परमां गतिम् ॥
अश्वमेधसहस्रं च सत्यं च तुलया धृतम् ।
अश्वमेधसहस्राद्धि सत्यमेव विशिष्यते ॥
सत्यं साधु तपः श्रुतं च परमं क्लेशादिभिर्वर्जितं
साधूनां निकषं सतां कुलधनं सर्वाश्रयाणां वरम् ।
स्वाधीनं च सुदुर्लभं च जगतः साधारणं भूषणं
यम्लेच्छोऽप्यभिधाय गच्छति दिवं तत्त्यज्यते वा कथम् ॥
(१८ । ३९५–३९९, ४०३-४०४)

सत्यके ही आधारपर धर्म टिका हुआ है। कल्याणी! तृण और लताओंसहित भूमिके वे प्रदेश धन्य हैं, जहाँ तुम निवास करती हो। जो तुम्हारा दूध पीते हैं, वे धन्य हैं, कृतार्थ हैं, उन्होंने ही पुण्य किया है और उन्होंने ही जन्मका फल पाया है। देवताओंने मेरे सामने यह आदर्श रखा है, गौओंमें ऐसा सत्य है, यह देखकर अब मुझे अपने जीवनसे अरुचि हो गयी। अब मैं वह कर्म करूँगा, जिसके द्वारा पापसे छुटकारा पा जाऊँ। अबतक मैंने हजारों जीवोंको मारा और खाया है। मैं महान् पापी, दुराचारी, निर्दयी और हत्यारा हूँ। पता नहीं, ऐसा दारुण कर्म करके मुझे किन लोकोंमें जाना पड़ेगा। बहिन! इस समय मुझे अपने पापोंसे शुद्ध होनेके लिये जैसी तपस्या करनी चाहिये, उसे संक्षेपमें बताओ, क्योंकि अब विस्तारपूर्वक सुननेका समय नहा है।

गाय बोली—भाई बाघ! विद्वान् पुरुष सत्ययुगमें तपकी प्रशंसा करते हैं और त्रेतामें ज्ञान तथा उसके सहायक कर्मकी। द्वापरमें यज्ञको ही उत्तम बतलाते हैं, किन्तु कलियुगमें एकमात्र दान ही श्रेष्ठ माना गया है। सम्पूर्ण दानोंमें एक ही दान सर्वोत्तम है। वह है—सम्पूर्ण भूतोंको अभय दान। इससे बढ़कर दूसरा कोई दान नहीं है। जो समस्त चराचर प्राणियोंको अभय दान देता है, वह सब प्रकारके भयसे मुक्त होकर परब्रह्मको प्राप्त होता है। अहिंसाके समान न कोई दान है, न कोई तपस्या। जैसे हाथीके पदचिह्नमें अन्य सभी प्राणियोंके पदचिह्न समा जाते हैं, उसी प्रकार अहिंसाके द्वारा सभी धर्म प्राप्त हो जाते हैं। * योग एक ऐसा वृक्ष है, जिसकी छाया तीनों तापोंका विनाश करनेवाली है। धर्म और ज्ञान उस वृक्षके फूल हैं। स्वर्ग तथा मोक्ष उसके फल हैं। जो आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक—इन तीनों प्रकारके दुःखोंसे सन्तप्त हैं, वे इस योगवृक्षकी छायाका आश्रय लेते हैं। वहाँ जानेसे उन्हें उत्तम शान्ति प्राप्त होती है, जिससे फिर कभी दुःखोंके द्वारा वे बाधित नहीं होते। यही परम कल्याणका साधन है, जिसे मैंने संक्षेपसे बताया है। तुम्हें ये सभी बातें ज्ञात हैं, केवल मुझसे पूछ रहे हो।

बाघने कहा—पूर्वकालमें मैं एक राजा था, किन्तु एक मृगीके शापसे मुझे बाघका शरीर धारण करना पड़ा। तबसे निरन्तर प्राणियोंका वध करते रहनेके कारण मुझे सारी बातें भूल गयी थीं। इस समय तुम्हारे सम्पर्क और उपदेशसे फिर उनका स्मरण हो आया है, तुम भी अपने इस सत्यके प्रभावसे उत्तम गतिको प्राप्त होगी। अब मैं तुमसे एक प्रश्न और पूछता हूँ। मेरे सौभाग्यसे तुमने आकर मुझे धर्मका स्वरूप बताया, जो सत्पुरुषोंके मार्गमें प्रतिष्ठित है। कल्याणी! तुम्हारा नाम क्या है?

नन्दा बोली—मेरे यूथके स्वामीका नाम 'नन्द' है, उन्होंने ही मेरा नाम 'नन्दा' रख दिया है।

पुलस्त्यजी कहते हैं—नन्दाका नाम कानमें पड़ते ही राजा प्रभञ्जन शापसे मुक्त हो गये। उन्होंने पुनः बल और रूपसे सम्पन्न राजाका शरीर प्राप्त कर लिया। इसी समय सत्य



भाषण करनेवाली यशस्विनी नन्दाका दर्शन करनेके लिये

---

* तपः कृते प्रशंसन्ति त्रेतायां ज्ञानकर्म च।
द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे॥
सर्वेषामेव दानानामिदमेवैकमुत्तमम्।
अभयं सर्वभूतानां नास्ति दानमतः परम्॥
चराचराणां भूतानामभयं यः प्रयच्छति।
स सर्वभयसंत्यक्तः परं ब्रह्माधिगच्छति॥
नास्त्यहिंसासमं दानं नास्त्यहिंसासमं तपः।
यथा हस्तिपदे ह्यन्यत्पदं सर्वं प्रलीयते॥
सर्वे धर्मास्तथा व्याघ्र प्रलीयन्ते ह्यहिंसया।
(१८।४३७—४४१)

साक्षात् धर्म वहाँ आये और इस प्रकार बोले—'नन्दे ! मैं धर्म हूँ, तुम्हारी सत्य वाणीसे आकृष्ट होकर यहाँ आया हूँ। तुम मुझसे कोई श्रेष्ठ वर माँग लो।' धर्मके ऐसा कहनेपर नन्दाने यह वर माँगा—'धर्मराज ! आपकी कृपासे मैं पुत्र-सहित उत्तम पदको प्राप्त होऊँ तथा यह स्थान मुनियोंको धर्म-प्रदान करनेवाला शुभ तीर्थ बन जाय। देवेश्वर ! यह सरस्वती नदी आजसे मेरे ही नामसे प्रसिद्ध हो—इसका नाम 'नन्दा' पड़ जाय। आपने वर देनेको कहा, इसलिये मैंने यही वर माँगा है।'

[पुत्रसहित] देवी नन्दा तत्काल ही सत्यवादियों-के उत्तम लोकमें चली गयी। राजा प्रभञ्जनने भी अपने पूर्वोपार्जित राज्यको पा लिया। नन्दा सरस्वतीके तटसे स्वर्गको गयी थी, [तथा उसने धर्मराजसे इस आशयका वरदान भी माँगा था।] इसलिये विद्वानोंने वहाँ 'सरस्वती' का नाम नन्दा रख दिया। जो मनुष्य वहाँ आते समय सरस्वतीके नामका उच्चारणमात्र कर लेता है, वह जीवनभर सुख पाता है और मृत्युके पश्चात् देवता होता है। स्नान और जलपान करनेसे सरस्वती नदी मनुष्योंके लिये स्वर्गकी सीढ़ी बन जाती है। अष्टमीके दिन जो लोग एकाग्रचित्त होकर सरस्वतीमें स्नान करते हैं, वे मृत्युके बाद स्वर्गमें पहुँच-कर सुख भोगते हुए आनन्दित होते हैं। सरस्वती नदी सदा ही स्त्रियोंको सौभाग्य प्रदान करनेवाली है। तृतीयाको यदि उसका सेवन किया जाय तो वह विशेष सौभाग्यदायिनी होती है। उस दिन उसके दर्शनसे भी मनुष्यको पाप-राशिसे छुटकारा मिल जाता है। जो पुरुष उसके जलका स्पर्श करते हैं, उन्हें भी मुनीश्वर समझना चाहिये। वहाँ चाँदी दान करनेसे मनुष्य रूपवान् होता है। ब्रह्माकी पुत्री यह सरस्वती नदी परम पावन और पुण्यसलिला है, वही नन्दा नामसे प्रसिद्ध है। फिर जब यह स्वच्छ जलसे युक्त हो दक्षिण दिशाकी ओर प्रवाहित होती है, तब विपुला या विशाला नाम धारण करती है। वहाँसे कुछ ही दूर आगे जाकर यह पुनः पश्चिम दिशाकी ओर मुड़ गयी है। वहाँसे सरस्वतीकी धारा प्रकट देखी जाती है। उसके तटोंपर अत्यन्त मनोहर तीर्थ और देवमन्दिर हैं, जो मुनियों और सिद्ध पुरुषोंद्वारा भलीभाँति सेवित हैं। नन्दा तीर्थमें स्नान करके यदि मनुष्य सुवर्ण और पृथ्वी आदिका दान करे तो वह महान् अभ्युदयकारी तथा अक्षय फल प्रदान करनेवाला होता है।

पुष्करका माहात्म्य, अगस्त्याश्रम तथा महर्षि अगस्त्यके प्रभावका वर्णन

भीष्मजीने कहा—ब्रह्मन् ! अब आप मुझे यह बतानेकी कृपा करें कि वेदवेत्ता ब्राह्मण तीनों पुष्करोंकी यात्रा किस प्रकार करते हैं तथा उसके करनेसे मनुष्योंको क्या फल मिलता है।

पुलस्त्यजीने कहा—राजन् ! अब एकाग्रचित्त होकर तीर्थ-सेवनके महान् फलका श्रवण करो। जिसके हाथ, पैर और मन संयममें रहते हैं तथा जो विद्वान्, तपस्वी और कीर्तिमान् होता है, वही तीर्थ-सेवनका फल प्राप्त करता है। जो प्रतिग्रहसे दूर रहता है—किसीका दिया हुआ दान नहीं लेता, प्रारब्धवश जो कुछ प्राप्त हो जाय—उसीसे सन्तुष्ट रहता है तथा जिसका अहङ्कार दूर हो गया है, ऐसे मनुष्यको ही तीर्थ-सेवनका पूरा फल मिलता है। राजेन्द्र ! जो स्वभावतः क्रोधहीन, सत्यवादी, दृढ़तापूर्वक उत्तम व्रतका पालन करनेवाला तथा सम्पूर्ण प्राणियोंमें आत्मभाव रखनेवाला है, उसे तीर्थ-सेवनका फल प्राप्त होता है।* यह ऋषियोंका परम गोपनीय सिद्धान्त है।

राजेन्द्र ! पुष्कर तीर्थ करोड़ों ऋषियोंसे भरा है, उसकी लंबाई ढाई योजन (दस कोस) और चौड़ाई आधा योजन (दो कोस) है। यही उस तीर्थका परिमाण है। वहाँ जानेमात्रसे मनुष्यको राजसूय और अश्वमेध यज्ञका

---

* यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम्। विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते ॥
प्रतिग्रहादुपावृत्तः संतुष्टो येन केनचित्। अहंकारनिवृत्तश्च स तीर्थफलमश्नुते ॥
अक्रोधनश्च राजेन्द्र सत्यशीलो दृढव्रतः। आत्मोपमश्च भूतेषु स तीर्थफलमश्नुते ॥
(१९। ८—१०)

फल प्राप्त होता है। जहाँ अत्यन्त पवित्र सरस्वती नदीने ज्येष्ठ पुष्करमें प्रवेश किया है, वहाँ चैत्र शुक्ला चतुर्दशीको ब्रह्मा आदि देवताओं, ऋषियों, सिद्धों और चारणोंका आगमन होता है, अतः उक्त तिथिको देवताओं और पितरोंके पूजनमें प्रवृत्त हो मनुष्यको वहाँ स्नान करना चाहिये। इससे वह अभय पदको प्राप्त होता है और अपने कुलका भी उद्धार करता है। वहाँ देवताओं और पितरोंका तर्पण करके मनुष्य विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है। ज्येष्ठ पुष्करमें स्नान करनेसे उसका स्वरूप चन्द्रमाके समान निर्मल हो जाता है तथा वह ब्रह्मलोक एवं उत्तम गतिको प्राप्त होता है। मनुष्यलोकमें देवाधिदेव ब्रह्माजीका यह पुष्कर नामसे प्रसिद्ध तीर्थ त्रिभुवनमें विख्यात है। यह बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाला है। पुष्करमें तीनों सन्ध्याओंके समय—प्रातःकाल, मध्याह्न एवं सायंकालमें दस हजार करोड़ (एक खरब) तीर्थ उपस्थित रहते हैं तथा आदित्य, वसु, रुद्र, साध्य, मरुद्गण, गन्धर्व और अप्सराओंका भी प्रतिदिन आगमन होता है। वहाँ तपस्या करके कितने ही देवता, दैत्य तथा ब्रह्मर्षि दिव्य योगसे सम्पन्न एवं महान् पुण्यशाली हो गये। जो मनसे भी पुष्कर तीर्थके सेवनकी इच्छा करता है, उस मनस्वीके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। महाराज! उस तीर्थमें देवता और दानवोंके द्वारा सम्मानित भगवान् ब्रह्माजी सदा ही प्रसन्नतापूर्वक निवास करते हैं। वहाँ देवताओं और ऋषियोंने महान् पुण्यसे युक्त होकर इच्छानुसार सिद्धियाँ प्राप्त की हैं। जो मनुष्य देवताओं और पितरोंके पूजनमें तत्पर हो वहाँ स्नान करता है, उसके पुण्यको मनीषी पुरुष अश्वमेध यज्ञकी अपेक्षा दसगुना अधिक बतलाते हैं। पुष्करारण्यमें जाकर जो एक ब्राह्मणको भी भोजन कराता है, उसके उस अन्नसे एक करोड़ ब्राह्मणोंको पूर्ण तृप्तिपूर्वक भोजन करानेका फल होता है तथा उस पुण्यकर्मके प्रभावसे वह इहलोक और परलोकमें भी आनन्द मनाता है। [अन्न न हो तो] शाक, मूल अथवा फल—जिससे वह स्वयं जीवन-निर्वाह करता हो, वही—दोषदृष्टिका परित्याग करके श्रद्धापूर्वक ब्राह्मणको अर्पण करे। उसीके दानसे मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त करता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र—सभी इस तीर्थमें स्नान-दानादि पुण्यके अधिकारी हैं। ब्रह्माजीका पुष्कर नामक सरोवर परम पवित्र तीर्थ है। वह वानप्रस्थियों, सिद्धों तथा मुनियोंको भी पुण्य प्रदान करनेवाला है। परम पावन सरस्वती नदी पुष्करसे ही महासागरकी ओर गयी है। वहाँ महायोगी आदिदेव मधुसूदन सदा निवास करते हैं। वे आदिवराहके नामसे प्रसिद्ध हैं तथा सम्पूर्ण देवता उनकी पूजा करते रहते हैं। विशेषतः कार्तिककी पूर्णिमाको जो पुष्कर तीर्थकी यात्रा करता है, वह अक्षय फलका भागी होता है—ऐसा मैंने सुना है।

कुरुनन्दन! जो सायंकाल और सबेरे हाथ जोड़कर तीनों पुष्करोंका स्मरण करता है, उसे समस्त तीर्थोंमें आचमन करनेका फल प्राप्त होता है। स्त्री हो या पुरुष, पुष्करमें स्नान करने मात्रसे उसके जन्मभरका सारा पाप नष्ट हो जाता है। जैसे सम्पूर्ण देवताओंमें ब्रह्माजी श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार सब तीर्थोंमें पुष्कर ही आदि तीर्थ बताया गया है। जो पुष्करमें संयम और पवित्रताके साथ दस वर्षोंतक निवास करता हुआ ब्रह्माजीका दर्शन करता है, वह सम्पूर्ण यज्ञोंका फल प्राप्त कर लेता है और अन्तमें ब्रह्मलोकको जाता है। जो पूरे सौ वर्षोंतक अग्निहोत्र करता है और कार्तिककी एक ही पूर्णिमाको पुष्करमें निवास करता है, उन दोनोंका फल एक सा ही होता है। पुष्करमें निवास दुर्लभ है, पुष्करमें तपस्याका सुयोग मिलना कठिन है। पुष्करमें दान देनेका सौभाग्य भी मुश्किलसे प्राप्त होता है तथा वहाँकी यात्राका सुयोग भी दुर्लभ है।* वेदवेत्ता ब्राह्मण ज्येष्ठ पुष्करमें जाकर स्नान करनेसे मोक्षका भागी होता है और श्राद्धसे वह पितरोंको तार देता है। जो ब्राह्मण वहाँ जाकर नाममात्रके लिये भी सन्ध्योपासन करता है, उसे बारह वर्षोंतक सन्ध्योपासन करनेका फल प्राप्त हो जाता है। पूर्वकालमें ब्रह्माजीने स्वयं ही यह बात कही थी। जो अकेले भी कभी पुष्कर तीर्थमें चला जाय, उसको चाहिये कि झारीमें पुष्करका जल लेकर क्रमशः सन्ध्या-वन्दन कर ले, ऐसा करनेसे भी उसे बारह वर्षोंतक निरन्तर सन्ध्योपासन करनेका फल प्राप्त हो जाता है। जो पत्नीको पास बिठाकर दक्षिण दिशाकी ओर मुँह करके गायत्री मन्त्रका जप करते हुए वहाँ तर्पण करता है, उसके उस तर्पणद्वारा बारह वर्षोंतक पितरोंको पूर्ण तृप्ति बनी रहती है। फिर पिण्डदानपूर्वक

* पुष्करे दुष्करो वासः पुष्करे दुष्करं तपः ।
पुष्करे दुष्करं दानं गन्तुं चैव सुदुष्करम् ॥
(१९।४५४६)

श्राद्ध करनेसे अक्षय फलकी प्राप्ति होती है। इसीलिये विद्वान् पुरुष यह सोचकर स्त्रीके साथ विवाह करते हैं कि हम तीर्थमें जाकर श्रद्धापूर्वक पिण्डदान करेंगे। जो ऐसा करते हैं उनके पुत्र, धन, धान्य और सन्तानका कभी उच्छेद नहीं होता—यह निःसन्दिग्ध बात है।

राजन्! अब मैं तुमसे इस तीर्थके आश्रमोंका वर्णन करता हूँ, एकाग्रचित्त होकर सुनो। महर्षि अगस्त्यने इस तीर्थमें अपना आश्रम बनाया है, जो देवताओंके आश्रमकी समानता करता है। पूर्वकालमें यहाँ सप्तर्षियोंका भी आश्रम था। ब्रह्मर्षियों और मनुओंने भी यहाँ आश्रम बनाया था। यज्ञ-पर्वतके किनारे यहाँ नागोंकी रमणीय पुरी भी है। महाराज! मैं महामना अगस्त्यजीके प्रभावका संक्षेपसे वर्णन करता हूँ, ध्यान देकर सुनो। पहलेकी बात है—सत्ययुगमें कालकेय नामसे प्रसिद्ध दानव रहते थे। उनका स्वभाव अत्यन्त कठोर था तथा वे युद्धके लिये सदा उन्मत्त रहते थे। एक समय वे सभी दानव नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित हो वृत्रासुरको बीचमें करके इन्द्र आदि देवताओंपर चारों ओरसे चढ़ आये। तब देवतालोग इन्द्रको आगे करके ब्रह्माजीके पास गये। उन्हें हाथ जोड़कर खड़े देख ब्रह्माजीने कहा—"देवताओ! तुमलोग जो कार्य करना चाहते हो, वह सब मुझे मालूम है। मैं ऐसा उपाय बताऊँगा, जिससे तुम वृत्रासुरका वध कर सकोगे। दधीचि नामके एक महर्षि हैं, उनकी बुद्धि बड़ी ही उदार है। तुम सब लोग एक साथ जाकर उनसे वर माँगो। वे धर्मात्मा हैं, अतः प्रसन्नचित्त होकर तुम्हारी माँग पूरी करेंगे। तुम उनसे यही कहना कि 'आप त्रिभुवनका हित करनेके लिये अपनी हड्डियाँ हमें प्रदान करें।' निश्चय ही वे अपना शरीर त्याग कर तुम्हें हड्डियाँ अर्पण कर देंगे। उनकी हड्डियोंसे तुमलोग अत्यन्त भयंकर एवं सुदृढ़ वज्र तैयार करो, जो दिव्य शक्तिसे सम्पन्न उत्तम अस्त्र होगा। उससे बिजलीके समान गड़गड़ाहट पैदा होगी और वह महान्-से-महान् शत्रुका विनाश करनेवाला होगा। उसी वज्रसे इन्द्र वृत्रासुरका वध करेंगे।"

पुलस्त्यजी कहते हैं—ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर समस्त देवता उनकी आज्ञा ले इन्द्रको आगे करके दधीचिके आश्रमपर गये। वह सरस्वती नदीके उस पार बना हुआ था। नाना प्रकारके वृक्ष और लताएँ उसे घेरे हुए थीं। वहाँ पहुँचकर देवताओंने सूर्यके समान तेजस्वी महर्षि दधीचिका दर्शन किया और उनके चरणोंमें प्रणाम करके ब्रह्माजीके कथनानुसार वरदान माँगा। तब दधीचिने अत्यन्त



प्रसन्न होकर देवताओंको प्रणाम करके यह कार्य-साधक वचन कहा—'अहो! आज इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता यहाँ किसलिये पधारे हैं? मैं देखता हूँ आप सब लोगोंकी कान्ति फीकी पड़ गयी है, आपलोग पीडित जान पड़ते हैं। जिस कारणसे आपके हृदयको कष्ट पहुँच रहा है, उसे शान्तिपूर्वक बताइये।'

देवता बोले—महर्षे! यदि आपकी हड्डियोंका शस्त्र बनाया जाय तो उससे देवताओंका दुःख दूर हो सकता है।

दधीचिने कहा—देवताओ! जिससे आपलोगोंका हित होगा, वह कार्य मैं अवश्य करूँगा। आज आपलोगोंके लिये मैं अपने इस शरीरका भी त्याग करता हूँ।

ऐसा कहकर मनुष्योंमें श्रेष्ठ महर्षि दधीचिने सहसा अपने प्राणोंका परित्याग कर दिया। तब सम्पूर्ण देवताओंने आवश्यकताके अनुसार उनके शरीरसे हड्डियाँ निकाल लीं। इससे उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई और वे विजय पानेके लिये विश्वकर्माके पास जाकर बोले—'आप इन हड्डियोंसे वज्रका निर्माण कीजिये।' देवताओंके वचन सुनकर विश्वकर्माने बड़े हर्षके साथ प्रयत्नपूर्वक उग्र शक्ति-सम्पन्न वज्रास्त्रका

निर्माण किया और इन्द्रसे कहा—'देवेश्वर ! यह वज्र सब अस्त्र-शस्त्रोंमें श्रेष्ठ है, आप इसके द्वारा देवताओंके भयङ्कर शत्रु वृत्रासुरको भस्म कीजिये ।' उनके ऐसा कहनेपर इन्द्रको बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने शुद्ध भावसे उस वज्रको ग्रहण किया।

तदनन्तर इन्द्र देवताओंसे सुरक्षित हो, वज्र हाथमें लिये, वृत्रासुरका सामना करनेके लिये गये, जो पृथ्वी और आकाशको घेरकर खड़ा था। कालकेय नामके विशालकाय दानव हाथोंमें शस्त्र उठाये चारों ओरसे उसकी रक्षा कर रहे थे। फिर तो दानवोंके साथ देवताओंका भयंकर युद्ध प्रारम्भ हुआ। दो घड़ीतक तो ऐसी मार-काट हुई, जो सम्पूर्ण लोकको महान् भयमें डालनेवाली थी। वीरोंकी भुजाओंसे चलायी हुई तलवारें जब शत्रुके शरीरपर पड़ती थीं, तब बड़े जोरका शब्द होता था। आकाशसे पृथ्वीपर गिरते हुए मस्तक ताड़के फलोंके समान जान पड़ते थे। उनसे वहाँकी सारी भूमि पटी हुई दिखायी देती थी। उस समय सोनेके कवच पहने हुए कालकेय दानव दावानलसे जलते हुए वृक्षोंके समान प्रतीत होते थे। वे हाथोंमें परिघ लेकर देवताओंपर टूट पड़े। उन्होंने एक साथ मिलकर बड़े वेगसे धावा किया था। यद्यपि देवता भी एक साथ संगठित होकर ही युद्ध कर रहे थे, तो भी वे उन दानवोंके वेगको न सह सके। उनके पैर उखड़ गये, वे भयभीत होकर भाग खड़े हुए। देवताओंको डरकर भागते और वृत्रासुरको प्रबल होते देख हजार आँखोंवाले इन्द्रको बड़ी घबराहट हुई। इन्द्रकी ऐसी अवस्था देख सनातन भगवान् श्रीविष्णुने उनके भीतर अपने तेजका सञ्चार करके उनके बलको बढ़ाया। इन्द्रको श्रीविष्णुके तेजसे परिपूर्ण देख देवताओं तथा निर्मल अन्तःकरणवाले ब्रह्मर्षियोंने भी उनमें अपने-अपने तेजका सञ्चार किया। इस प्रकार भगवान् श्रीविष्णु, देवता तथा महाभाग महर्षियोंके तेजसे वृद्धिको प्राप्त होकर इन्द्र अत्यन्त बलवान् हो गये।

देवराज इन्द्रको सबल जान वृत्रासुरने बड़े जोरसे सिंहनाद किया। उसकी विकट गर्जनासे पृथ्वी, दिशाएँ, अन्तरिक्ष, द्युलोक और आकाशमें सभी काँप उठे। वह भयङ्कर सिंहनाद सुनकर इन्द्रको बड़ा सन्ताप हुआ। उनके हृदयमें भय समा गया और उन्होंने बड़ी उतावलीके साथ अपना महान् वज्रास्त्र उसके ऊपर छोड़ दिया। इन्द्रके वज्रका आघात पाकर वह महान् असुर निष्प्राण होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। तत्पश्चात् सम्पूर्ण देवता तुरत आगे बढ़कर वृत्रासुरके वधसे सन्तप्त हुए शेष दैत्योंको मारने लगे। देवताओंकी मार पड़नेपर वे महान् असुर भयसे पीड़ित हो वायुके समान वेगसे भागकर अगाध समुद्रमें जा छिपे। वहाँ एकत्रित होकर सब-के-सब तीनों लोकोंका नाश करनेके लिये आपसमें सलाह करने लगे। उनमें जो विचारक थे, उन्होंने नाना प्रकारके उपाय बतलाये—तरह-तरहकी युक्तियाँ सुझायीं। अन्ततोगत्वा यह निश्चय हुआ कि 'तपस्यासे ही सम्पूर्ण लोक टिके हुए हैं, इसलिये उसीका क्षय करनेके लिये शीघ्रता की जाय। पृथ्वीपर जो कोई भी तपस्वी, धर्मज्ञ और विद्वान् हों, उनका तुरत वध कर दिया जाय। उनके नष्ट हो जानेपर सम्पूर्ण जगत्‌का स्वयं ही नाश हो जायगा।'

उन सबकी बुद्धि मारी गयी थी, इसलिये उपर्युक्त प्रकारसे संसारके विनाशका निश्चय करके वे बहुत प्रसन्न हुए। समुद्ररूप दुर्गका आश्रय लेकर उन्होंने त्रिभुवनका विनाश आरम्भ किया। वे रातमें कुपित होकर निकलते और पवित्र आश्रमों तथा मन्दिरोंमें जो भी मुनि मिलते, उन्हें पकड़कर खा जाते थे। उन दुरात्माओंने वसिष्ठके आश्रममें जाकर आठ हजार आठ ब्राह्मणोंका भक्षण कर लिया तथा उस वनमें और भी जितने तपस्वी थे, उन्हें भी मौतके घाट उतार दिया। महर्षि च्यवनके पवित्र आश्रमपर, जहाँ बहुत-से द्विज निवास करते थे, जाकर उन्होंने फल-मूलका आहार करनेवाले सौ मुनियोंको अपना ग्रास बना लिया। इस प्रकार रातमें वे मुनियोंका संहार करते और दिनमें समुद्रके भीतर घुस जाते थे। भरद्वाजके आश्रमपर आकर उन दानवोंने वायु और जल पीकर संयम-नियमके साथ रहनेवाले बीस ब्रह्मचारियोंकी हत्या कर डाली। इस तरह बहुत दिनोंतक उन्होंने मुनियोंका भक्षण जारी रखा, किन्तु मनुष्योंको इन हत्यारोंका पता नहीं चला। उस समय कालेयोंके भयसे पीड़ित होकर सारा जगत् [धर्म-कर्मकी ओरसे] निरुत्साह हो गया। स्वाध्याय बंद हो गया। यज्ञ और उत्सव समाप्त हो गये। मनुष्योंकी संख्या दिनोंदिन क्षीण होने लगी। वे भयभीत होकर आत्मरक्षाके लिये दसों दिशाओंमें दौड़ने लगे, कोई द्विज गुफाओंमें छिप गये, दूसरोंने झरनोंकी शरण ली, कितनोंने भयसे व्याकुल होकर प्राण त्याग दिये। इस प्रकार यज्ञ और उत्सवोंसे रहित होकर जब सारा

जगत् नष्ट होने लगा, तब इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता व्यथित होकर भगवान् श्रीनारायणकी शरणमें गये और इस प्रकार स्तुति करने लगे।

देवता बोले—प्रभो! आप ही हमारे जन्मदाता और रक्षक हैं। आप ही संसारका भरण-पोषण करनेवाले हैं। चर और अचर—सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि आपसे ही हुई है। कमलनयन! पूर्वकालमें यह भूमि नष्ट होकर रसातलमें चली गयी थी। उस समय आपने ही वराहरूप धारण करके संसारके हितके लिये इसका समुद्रसे उद्धार किया था। पुरुषोत्तम! आदिदैत्य हिरण्यकशिपु बड़ा पराक्रमी था, तो भी आपने नरसिंहरूप धारण करके उसका वध कर डाला। इस प्रकार आपके बहुत-से ऐसे [अलौकिक] कर्म हैं, जिनकी गणना नहीं हो सकती। मधुसूदन! हमलोग भयभीत हो रहे हैं, अब आप ही हमारी गति हैं; इसलिये देवदेवेश्वर! हम आपसे लोककी रक्षाके लिये प्रार्थना करते हैं। सम्पूर्ण लोकोंकी, देवताओंकी तथा इन्द्रकी महान् भयसे रक्षा कीजिये। आपकी ही कृपासे [अण्डज, स्वेदज, जरायुज एवं उद्भिज्ज—] चार भागोंमें बँटी हुई सम्पूर्ण प्रजा जीवन धारण करती है। आपकी ही दयासे मनुष्य स्वस्थ होंगे और देवताओंकी हव्य-कव्योंसे तृप्ति होगी। इस प्रकार देव-मनुष्यादि सम्पूर्ण लोक एक-दूसरेके आश्रित हैं। आपके ही अनुग्रहसे इन सबका उद्वेग शान्त हो सकता है तथा आपके द्वारा ही इनकी पूर्णतया रक्षा होनी सम्भव है। भगवन्! संसारके ऊपर बड़ा भारी भय आ पहुँचा है। पता नहीं, कौन रात्रिमें जा-जाकर ब्राह्मणोंका वध कर डालता है। ब्राह्मणोंका क्षय हो जानेपर समूची पृथ्वीका नाश हो जायगा। अतः महाबाहो! जगत्पते! आप ऐसी कृपा करें, जिससे आपके द्वारा सुरक्षित होकर इन लोकोंका विनाश न हो।

भगवान् श्रीविष्णु बोले—देवताओ! मुझे प्रजाके विनाशका सारा कारण मालूम है। मैं तुम्हें भी बतलाता हूँ, निश्चिन्त होकर सुनो। कालकेय नामसे विख्यात जो दानवोंका समुदाय है, वह बड़ा ही निठुर है। उन दानवोंने ही परस्पर मिलकर सम्पूर्ण जगत्को कष्ट पहुँचाना आरम्भ किया है। वे इन्द्रके द्वारा वृत्रासुरको मारा गया देख अपनी जान बचानेके लिये समुद्रमें घुस गये थे। नाना प्रकारके ग्राहोंसे भरे हुए भयङ्कर समुद्रमें रहकर वे जगत्का विनाश करनेके लिये रातमें मुनियोंको खा जाते हैं। जबतक वे समुद्रके भीतर छिपे रहेंगे, तबतक उनका नाश होना असम्भव है, इसलिये अब तुमलोग समुद्रको सुखानेका कोई उपाय सोचो।

पुलस्त्यजी कहते हैं—भगवान् श्रीविष्णुके ये वचन सुनकर देवता ब्रह्माजीके पास आकर वहाँसे महर्षि अगस्त्यके आश्रमपर गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने मित्रावरुणके पुत्र परम तेजस्वी महात्मा अगस्त्य ऋषिको देखा। अनेकों महर्षि उनकी सेवामें लगे थे। उनमें प्रमादका लेश भी नहीं था। वे तपस्याकी राशि जान पड़ते थे। ऋषिलोग उनके अलौकिक कर्मोंकी चर्चा करते हुए उनकी स्तुति कर रहे थे।

देवता बोले—महर्षे! पूर्वकालमें जब राजा नहुषके द्वारा लोकोंको कष्ट पहुँच रहा था, उस समय आपने संसारके हितके लिये उन्हें इन्द्र-पदसे भ्रष्ट किया और इस प्रकार लोकका काँटा दूर करके आप जगत्के आश्रयदाता हुए। जिस समय पर्वतोंमें श्रेष्ठ विन्ध्याचल सूर्यके ऊपर क्रोध करके बढ़कर बहुत ऊँचा हो गया था; उस समय आपने ही उसे नत-मस्तक किया; तबसे आजतक आपकी आज्ञाका पालन करता हुआ वह पर्वत बढ़ता नहीं। जब सारा जगत् अन्धकारसे आच्छादित था और प्रजा मृत्युसे पीड़ित होने लगी, उस समय आपको ही अपना रक्षक समझकर प्रजा आपकी शरणमें आयी और उसे आपके द्वारा परम आनन्द एवं शान्तिकी प्राप्ति हुई। जब-जब हमलोगोंपर भयका आक्रमण हुआ, तब-तब सदा ही आपने हमें शरण दी है; इसलिये आज भी हम आपसे एक वरकी याचना करते हैं। आप वरदाता हैं [अतः हमारी इच्छा पूर्ण कीजिये]।

भीष्मजीने पूछा—महामुने! क्या कारण था, जिससे विन्ध्य पर्वत सहसा क्रोधसे मूर्च्छित हो बढ़कर बहुत ऊँचा हो गया था?

पुलस्त्यजीने कहा—सूर्य प्रतिदिन उदय और अस्तके समय सुवर्णमय महापर्वत गिरिराज मेरुकी परिक्रमा किया करते हैं। एक दिन सूर्यको देखकर विन्ध्याचलने उनसे कहा—'भास्कर! जिस प्रकार आप प्रतिदिन मेरुपर्वतकी परिक्रमा किया करते हैं, उसी प्रकार मेरी भी कीजिये।' यह सुनकर सूर्यने गिरिराज विन्ध्यसे कहा—'शैल! मैं अपनी इच्छासे मेरुकी परिक्रमा नहीं करता; जिन्होंने इस संसारकी सृष्टि की है, उन विधाताने ही मेरे लिये यह मार्ग नियत कर दिया है।' उनके ऐसा कहनेपर विन्ध्याचलको सहसा क्रोध हो आया और वह सूर्य तथा

चन्द्रमाका मार्ग रोकनेके लिये बढ़कर बहुत ऊँचा हो गया। तब इन्द्रादि सम्पूर्ण देवताओंने जाकर बढ़ते हुए गिरिराज विन्ध्याचलको रोका, किन्तु उसने उनकी बात नहीं मानी। तब वे महर्षि अगस्त्यके पास जाकर बोले—'मुनीश्वर! शैलराज विन्ध्य क्रोधके वशीभूत होकर सूर्य, चन्द्रमा तथा नक्षत्रोंका मार्ग रोक रहा है, उसे कोई निवारण नहीं कर पाता।'

देवताओंकी बात सुनकर ब्रह्मर्षि अगस्त्यजी विन्ध्यके पास गये और आदरपूर्वक बोले—'पर्वतश्रेष्ठ! मैं दक्षिण दिशामें जानेके लिये तुमसे मार्ग चाहता हूँ; जबतक मैं लौट कर न आऊँ, तबतक तुम नीचे रहकर ही मेरी प्रतीक्षा करो।' [मुनिकी बात मानकर विन्ध्याचलने वैसा ही किया।] महर्षि अगस्त्य दक्षिण दिशासे आजतक नहीं लौटे, इसीसे विन्ध्य पर्वत अब नहीं बढ़ता। भीष्म! तुम्हारे प्रश्नके अनुसार यह प्रसङ्ग मैंने सुना दिया, अब देवताओंने जिस प्रकार कालकेय दैत्योंका वध किया, वह वृत्तान्त सुनो।

देवताओंके वचन सुनकर महर्षि अगस्त्यने पूछा—'आपलोग किस लिये यहाँ आये हैं और मुझसे क्या वरदान चाहते हैं?' उनके इस प्रकार पूछनेपर देवताओंने कहा—'महात्मन्! हम आपसे एक अद्भुत वरदान चाहते हैं। महर्षे! आप कृपा करके समुद्रको पी जाइये। आपके ऐसा करनेपर हमलोग देवद्रोही कालकेय नामक दानवोंको उनके सगे सम्बन्धियोंसहित मार डालेंगे।' महर्षिने कहा—'बहुत अच्छा, देवराज! मैं आपलोगोंकी इच्छा पूर्ण करूँगा।' ऐसा कहकर वे देवताओं और तप सिद्ध मुनियोंके साथ जलनिधि समुद्रके पास गये। उनके इस अद्भुत कर्मको देखनेकी इच्छासे बहुतेर मनुष्य, नाग, गन्धर्व, यक्ष और किन्नर भी उन महात्माके पीछे पीछे गये। महर्षि सहसा समुद्रके तटपर जा पहुँचे। समुद्र भीषण गर्जना कर रहा था। वह अपनी उत्ताल तरङ्गोंसे नृत्य करता हुआ सा जान पड़ता था। महर्षि अगस्त्यके साथ सम्पूर्ण देवता, गन्धर्व, नाग और महाभाग मुनि जब महासागरके किनारे पहुँच गये, तब महर्षिने समुद्रको पी जानेकी इच्छासे उन सबको लक्ष्य करके कहा—'देवगण! सम्पूर्ण लोकोंका हित करनेके लिये इस समय मैं



इस महासागरको पिये लेता हूँ, अब आपलोगोंको जो कुछ करना हो, शीघ्र ही कीजिये।' यों कहकर वे सबके देखते देखते समुद्रको पी गये। यह देखकर इन्द्र आदि देवताओंको बड़ा विस्मय हुआ तथा वे महर्षिकी स्तुति करते हुए कहने लगे—'भगवन्! आप हमारे रक्षक और लोकोंको नया जन्म देनेवाले हैं। आपकी कृपासे देवताओंसहित सम्पूर्ण जगत्का कभी उच्छेद नहीं हो सकता।' इस प्रकार सम्पूर्ण देवता उनका सम्मान कर रहे थे। प्रधान प्रधान गन्धर्व हर्षनाद करते थे और महर्षिके ऊपर दिव्य पुष्पोंकी वर्षा हो रही थी। उन्होंने समूचे महासागरको जलशून्य कर दिया। जब समुद्रमें एक बूँद भी पानी न रहा, तब सम्पूर्ण देवता हर्षमें भरकर हाथोंमें दिव्य आयुध लिये दानवोंपर प्रहार करने लगे। महाबली देवताओंका वेग असुरोंके लिये असह्य हो गया। उनकी मार खाकर भी वे भीमकाय दानव दो घड़ीतक घमासान युद्ध करते रहे, किन्तु वे पवित्रात्मा मुनियोंकी तपस्यासे दग्ध हो चुके थे, इसलिये पूर्ण शक्ति लगाकर यत्न करते रहनेपर भी देवताओंके हाथसे मारे गये। जो मरनेसे बच रहे, वे पृथ्वी फाड़कर पातालमें घुस गये। दानवोंको मारा गया देख देवताओंने नाना प्रकारके वचनों द्वारा मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यका स्तवन किया तथा इस प्रकार कहा—

देवता बोले—महाभाग! आपकी कृपासे संसारके

लोगोंको बड़ा सुख मिला। कालकेय दानव बड़े ही क्रूर और पराक्रमी थे, वे सब आपकी शक्तिसे मारे गये। लोकरक्षक महर्षे! अब इस समुद्रको भर दीजिये। आपने जो जल पी लिया है, वह सब इसमें वापस छोड़ दीजिये।

उनके ऐसा कहनेपर मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजी बोले—'वह जल तो मैंने पचा लिया, अब समुद्रको भरनेके लिये आपलोग कोई दूसरा उपाय सोचें।' महर्षिकी बात सुनकर देवताओंको विस्मय भी हुआ और विषाद भी। वहाँ इकट्ठे हुए सब लोग एक दूसरेकी अनुमति ले मुनिवर अगस्त्यजीको प्रणाम करके जैसे आये थे, वैसे ही लौट गये। देवतालोग समुद्रको भरनेके विषयमें परस्पर विचार करते हुए ब्रह्माजीके पास गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने हाथ जोड़ ब्रह्माजीको प्रणाम किया और समुद्रके पुनः भरनेका उपाय पूछा। तब लोकपितामह ब्रह्माने उनसे कहा—'देवताओ! तुम सब लोग इच्छानुसार अपने-अपने अभीष्ट स्थानको लौट जाओ, अब बहुत दिनोंके बाद समुद्र अपनी पूर्वावस्थाको प्राप्त होगा। महाराज भगीरथ अपने कुटुम्बीजनोंको तारनेके लिये गङ्गाजीको लायेंगे और उन्हींके जलसे पुनः समुद्रको भर देंगे।'

ऐसा कहकर ब्रह्माजीने देवताओं और ऋषियोंको भेज दिया।

सप्तर्षि-आश्रमके प्रसङ्गमें सप्तर्षियोंके अलोभका वर्णन तथा ऋषियोंके मुखसे अन्नदान एवं दम आदि धर्मोंकी प्रशंसा

पुलस्त्यजी कहते हैं—राजन्! अब मैं तुम्हारे लिये सप्तर्षियोंके आश्रमका वर्णन करूँगा। अत्रि, वसिष्ठ, मैं, पुलह, क्रतु, अङ्गिरा, गौतम, सुमति, सुमुख, विश्वामित्र, स्थूलशिरा, संवर्त, प्रतर्दन, रैभ्य, बृहस्पति, च्यवन, कश्यप, भृगु, दुर्वासा, जमदग्नि, मार्कण्डेय, गालव, उशना, भरद्वाज, यवक्रीत, स्थूलाक्ष, मकराक्ष, कण्व, मेधातिथि, नारद, पर्वत, स्वगन्धी, तृणाम्बु, शबल, धौम्य, शतानन्द, अकृतव्रण, जमदग्निकुमार परशुराम, अष्टक तथा कृष्णद्वैपायन—ये सभी ऋषि-महर्षि अपने पुत्रों और शिष्योंके साथ पुष्करमें आकर सप्तर्षियोंके आश्रममें रह चुके हैं तथा सबने इन्द्रिय-संयम और शौच-सन्तोषादि नियमोंके पालनपूर्वक पूरी चेष्टाके साथ तपस्या की है, जिसके फलस्वरूप उनमें इन्द्रिय-जय, धैर्य, सत्य, क्षमा, सरलता, दया और दान आदि सद्गुणोंकी प्रतिष्ठा हुई है। पूर्वकालकी बात है, समाधिके द्वारा सनातन ब्रह्मलोकपर विजय प्राप्त करनेकी अभिलाषा रखनेवाले सप्तर्षिगण तीर्थस्थानोंका दर्शन करते हुए इस पृथ्वीपर विचर रहे थे। इसी बीचमें एक बार बड़ा भारी सूखा पड़ा, जिसके कारण भूखसे पीड़ित होकर सम्पूर्ण जगत्के लोग बड़े कष्टमें पड़ गये। उसी समय उन ऋषियोंको भी कष्ट उठाते देख तत्कालीन राजाने, जो प्रजाकी देख-भालके लिये भ्रमण कर रहे थे, दुखी होकर कहा—'मुनिवरो! ब्राह्मणोंके लिये प्रतिग्रह उत्तम वृत्ति है; अतः आपलोग मुझसे दान ग्रहण करें—अच्छे-अच्छे गाँव, धान और जौ आदि अन्न, घृत-दुग्धादि रस, तरह-तरहके रत्न, सुवर्ण तथा दूध देनेवाली गौएँ ले लें।'

ऋषियोंने कहा—राजन्! प्रतिग्रह बड़ी भयंकर वृत्ति है। वह स्वादमें मधुके समान मधुर, किन्तु परिणाममें विषके समान घातक है। इस बातको स्वयं जानते हुए भी तुम क्यों हमें लोभमें डाल रहे हो? दस कसाइयोंके समान एक चक्री (कुम्हार या तेली), दस चक्रियोंके समान एक शराब बेचनेवाला, दस शराब बेचनेवालोंके समान एक वेश्या और दस वेश्याओंके समान एक राजा होता है। जो प्रतिदिन दस हजार हत्याग्रहोंका सञ्चालन करता है, वह शौण्डिक है; राजा भी उसीके समान माना गया है। अतः राजाका प्रतिग्रह अत्यन्त भयङ्कर है। जो ब्राह्मण लोभसे मोहित होकर राजाका प्रतिग्रह स्वीकार करता है, वह तामिस्र आदि घोर नरकोंमें पकाया जाता है।*

* दशसूनासमश्चक्री दशचक्रिसमो ध्वजः। दशध्वजसमा वेश्या दशवेश्यासमो नृपः॥
दशसूनासहस्राणि यो वाहयति शौण्डिकः। तेन तुल्यस्ततो राजा घोरस्तस्य प्रतिग्रहः॥
यो राज्ञः प्रतिगृह्णाति ब्राह्मणो लोभमोहितः। तामिस्रादिषु घोरेषु नरकेषु स पच्यते॥
(१९। २३६—३८)

93, 6-29

अतः महाराज ! तुम अपने दानके साथ ही यहाँसे पधारो। तुम्हारा कल्याण हो। यह दान दूसरोंको देना।

यह कहकर वे सप्तर्षि वनमें चले गये। तदनन्तर राजाकी आज्ञासे उसके मन्त्रियोंने गूलरके फलोंमें सोना भरकर उन्हें पृथ्वीपर बिखेर दिया। सप्तर्षि अन्नके दाने बीनते हुए वहाँ पहुँचे, तो उन फलोंको भी उन्होंने हाथमें उठाया।

उन्हें भारी जानकर अत्रिने कहा—'ये फल ग्रहण करने योग्य नहीं हैं। हमारी ज्ञानशक्तिपर मोहका पर्दा नहीं पड़ा है, हम मन्दबुद्धि नहीं हो गये हैं। हम समझदार हैं, ज्ञानी हैं, अतः इस बातको भलीभाँति समझते हैं कि ये गूलरके फल सुवर्णसे भरे हैं। धन इसी लोकमें आनन्ददायक होता है, मृत्युके बाद तो वह बड़े ही कटु परिणामको उत्पन्न करता है, अतः जो सुख एवं अनन्त पदकी इच्छा रखता हो, उसे तो इसे कदापि नहीं लेना चाहिये।'*

वसिष्ठजीने कहा—इस लोकमें धनसञ्चयकी अपेक्षा तपस्याका सञ्चय ही श्रेष्ठ है। जो सब प्रकारके लौकिक संग्रहोंका परित्याग कर देता है, उसके सारे उपद्रव शान्त हो जाते हैं। संग्रह करनेवाला कोई भी मनुष्य ऐसा नहीं है, जो सुखी रह सके। ब्राह्मण जैसे-जैसे प्रतिग्रहका त्याग करता है, वैसे ही-वैसे सन्तोषके कारण उसके ब्रह्मतेजकी वृद्धि होती है। एक ओर अकिञ्चनता और दूसरी ओर राज्यको तराजूपर रखकर तोला गया तो राज्यकी अपेक्षा अकिञ्चनताका ही पलड़ा भारी रहा, इसलिये जितात्मा पुरुषके लिये कुछ भी संग्रह न करना ही श्रेष्ठ है।

कश्यपजी बोले—धन-सम्पत्ति मोहमें डालनेवाली होती है। मोह नरकमें गिराता है, इसलिये कल्याण चाहनेवाले पुरुषको अनर्थके साधन अर्थका दूरसे ही परित्याग कर देना चाहिये। जिसको धर्मके लिये धन संग्रहकी इच्छा होती है, उसके लिये उस इच्छाका त्याग ही श्रेष्ठ है, क्योंकि कीचड़को लगाकर धोनेकी अपेक्षा उसका स्पर्श न करना ही उत्तम है। धनके द्वारा जिस धर्मका साधन किया जाता है, वह क्षयशील माना गया है। दूसरेके लिये जो धनका परित्याग है, वही अक्षय धर्म है, वही मोक्षकी प्राप्ति करानेवाला है।

भरद्वाजने कहा—जब मनुष्यका शरीर जीर्ण होता है, तब उसके दाँत और बाल भी पक जाते हैं, किन्तु धन और जीवनकी आशा बूढ़े होनेपर भी जीर्ण नहीं होती—वह सदा नयी ही बनी रहती है। जैसे दर्जी सूईसे वस्त्रमें सूतका प्रवेश करा देता है, उसी प्रकार तृष्णारूपी सूईसे संसाररूपी सूतका विस्तार होता है। तृष्णाका कहीं ओर-छोर नहीं है, उसका पेट भरना कठिन होता है, वह सैकड़ों दोषोंको ढोये फिरती है, उसके द्वारा बहुत-से अधर्म होते हैं। अतः तृष्णाका परित्याग ही उचित है।

गौतम बोले—इन्द्रियोंके लोभग्रस्त होनेसे सभी मनुष्य सङ्कटमें पड़ जाते हैं। जिसके चित्तमें सन्तोष है, उसके लिये सर्वत्र धन-सम्पत्ति भरी हुई है, जिसके पैर जूतेमें हैं, उसके लिये सारी पृथ्वी मानो चमड़ेसे मढ़ी है। सन्तोषरूपी अमृतसे तृप्त एवं शान्त चित्तवाले पुरुषोंको जो सुख प्राप्त है, वह धनके लोभसे इधर-उधर दौड़नेवाले लोगोंको कहाँसे प्राप्त हो सकता है। असन्तोष ही सबसे बढ़कर दुःख है और सन्तोष ही सबसे बड़ा सुख है, अतः सुख चाहनेवाले पुरुषको सदा सन्तुष्ट रहना चाहिये।*

विश्वामित्रने कहा—किसी कामनाकी पूर्ति चाहनेवाले मनुष्यकी यदि एक कामना पूर्ण होती है, तो दूसरी नयी उत्पन्न होकर उसे पुनः बाणके समान बींधने लगती है। भोगोंकी इच्छा उपभोगके द्वारा कभी शान्त नहीं होती, प्रत्युत घी डालनेसे प्रज्वलित होनेवाली अग्निकी भाँति वह अधिकाधिक बढ़ती ही जाती है। भोगोंकी अभिलाषा रखनेवाला पुरुष मोहवश कभी सुख नहीं पाता।

जमदग्नि बोले—जो प्रतिग्रह लेनेकी शक्ति रखते हुए भी उसे नहीं ग्रहण करता, वह दानी पुरुषोंको मिलनेवाले सनातन लोकोंको प्राप्त होता है। जो ब्राह्मण राजासे धन लेता है, वह महर्षियोंद्वारा शोक करने योग्य है, उस मूर्खको नरक-यातनाका भय नहीं दिखायी देता। प्रतिग्रह

---

* इहैवार्थं वसु प्रीत्यै प्रेत्य वै कटुकोदयम्।
तस्मान्न ग्राह्यमेवैतत्सुखमक्षयमिच्छता॥
(१९। २४३)

* सर्वत्र सम्पदस्तस्य सन्तुष्टं यस्य मानसम्।
उपानद्गूढपादस्य ननु चर्मावृतेव भूः॥
सन्तोषामृततृप्तानां यत्सुखं शान्तचेतसाम्।
कुतस्तद्धनलुब्धानामितश्चेतश्च धावताम्॥
असन्तोषः परं दुःखं सन्तोषः परमं सुखम्।
सुखार्थी पुरुषस्तस्मात्सन्तुष्टः सततं भवेत्॥
(१९। २५९—६१)

लेनेमें समर्थ होकर भी उसमें प्रवृत्त नहीं होना चाहिये; क्योंकि प्रतिग्रहसे ब्राह्मणोंका ब्रह्मतेज नष्ट हो जाता है।

अरुन्धतीने कहा—तृष्णाका आदि-अन्त नहीं है, वह सदा शरीरके भीतर व्याप्त रहती है। दुष्ट बुद्धिवाले पुरुषोंके लिये जिसका त्याग करना कठिन है, जो शरीरके जीर्ण होनेपर भी जीर्ण नहीं होती तथा जो प्राणान्तकारी रोगके समान है, उस तृष्णाका त्याग करनेवालेको ही सुख मिलता है।

पशुसख बोले—धर्मपरायण विद्वान् पुरुष जैसा आचरण करते हैं, आत्मकल्याणकी इच्छा रखनेवाले विद्वान् पुरुषको वैसा ही आचरण करना चाहिये।

ऐसा कहकर दृढ़तापूर्वक नियमोंका पालन करनेवाले वे सभी महर्षि उन सुवर्णयुक्त फलोंको छोड़ अन्यत्र चले गये। घूमते-घामते वे मध्य पुष्करमें गये, जहाँ अकस्मात् आये हुए शुनःसख नामक परिव्राजकसे उनकी भेंट हुई। उसके साथ वे किसी वनमें गये। वहाँ उन्हें एक बहुत बड़ा सरोवर दिखायी दिया, जिसका जल कमलोंसे आच्छादित था। वे सब-के-सब उस सरोवरके किनारे बैठ गये और कल्याणका चिन्तन करने लगे। उस समय शुनःसखने क्षुधासे पीड़ित उन समस्त मुनियोंसे इस प्रकार कहा—'महर्षियो! आप सब लोग बताइये, भूखकी पीड़ा कैसी होती है?'

ऋषियोंने कहा—शक्ति, खड्ग, गदा, चक्र, तोमर और बाणोंसे पीड़ित किये जानेपर मनुष्यको जो वेदना होती है, वह भी भूखकी पीड़ाके सामने मात हो जाती है। दमा, खाँसी, क्षय, ज्वर और मृगी आदि रोगोंसे कष्ट पाते हुए मनुष्यको भी भूखकी पीड़ा उन सबकी अपेक्षा अधिक जान पड़ती है। जिस प्रकार सूर्यकी किरणोंसे पृथ्वीका सारा जल खींच लिया जाता है, उसी प्रकार पेटकी आगसे शरीरकी समस्त नाड़ियाँ सूख जाती हैं। क्षुधासे पीड़ित मनुष्यको आँखोंसे कुछ सूझ नहीं पड़ता, उसका सारा अङ्ग जलता और सूखता जाता है। भूखकी आग प्रज्वलित होनेपर मनुष्य गूँगा, बहरा, जड, पङ्गु, भयंकर तथा मर्यादाहीन हो जाता है। लोग क्षुधासे पीड़ित होनेपर पिता-माता, स्त्री, पुत्र, कन्या, भाई तथा स्वजनोंका भी परित्याग कर देते हैं। भूखसे व्याकुल मनुष्य न पितरोंकी भलीभाँति पूजा कर सकता है न देवताओंकी, न गुरुजनोंका सत्कार कर सकता है न ऋषियों तथा अभ्यागतोंका। इस प्रकार अन्न न मिलनेपर देहधारी प्राणियोंमें ये सभी दोष आ जाते हैं। इसलिये संसारमें अन्नसे बढ़कर न तो कोई पदार्थ हुआ है, न होगा। अन्न ही संसारका मूल है। सब कुछ अन्नके ही आधारपर टिका हुआ है। पितर, देवता, दैत्य, यक्ष, राक्षस, किन्नर, मनुष्य और पिशाच—सभी अन्नमय माने गये हैं; इसलिये अन्न-दान करनेवालेको अक्षय तृप्ति और सनातन स्थिति प्राप्त होती है। तप, सत्य, जप, होम, ध्यान, योग, उत्तम गति, स्वर्ग और सुखकी प्राप्ति—ये सब कुछ अन्नसे ही सुलभ होते हैं। चन्दन, अगर, धूप और शीतकालमें ईंधनका दान अन्नदानके सोलहवें हिस्सेके बराबर भी नहीं हो सकता। अन्न ही प्राण, बल और तेज है। अन्न ही पराक्रम है, अन्नसे ही तेजकी उत्पत्ति और वृद्धि होती है। जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक भूखेको अन्न देता है, वह ब्रह्मस्वरूप होकर ब्रह्माजीके साथ आनन्द मनाता है। जो एकाग्रचित्त होकर अमावास्याको श्राद्धमें अन्नदानका माहात्म्यमात्र सुनाता है, उसके पितर आजीवन सन्तुष्ट रहते हैं।

इन्द्रिय-संयम और मनोनिग्रहसे युक्त ब्राह्मण सुखी एवं धर्मके भागी होते हैं। दम, दान एवं यम—ये तीनों तत्त्वार्थदर्शी पुरुषोंद्वारा बताये हुए धर्म हैं। इनमें भी विशेषतः दम ब्राह्मणोंका सनातन धर्म है। दम तेजको बढ़ाता है, दम परम पवित्र और उत्तम है। दमसे पुरुष पापरहित एवं तेजस्वी होता है। संसारमें जो कुछ नियम, धर्म, शुभ कर्म अथवा सम्पूर्ण यज्ञोंके फल हैं, उन सबकी अपेक्षा दमका महत्त्व अधिक है। दमके बिना दानरूपी क्रियाकी यथावत् शुद्धि नहीं हो सकती। दमसे ही यज्ञ और दमसे ही दानकी प्रवृत्ति होती है। जिसने इन्द्रियोंका दमन नहीं किया, उसके वनमें रहनेसे क्या लाभ। तथा जिसने मन और इन्द्रियोंका भलीभाँति दमन किया है, उसको [घर छोड़कर] किसी आश्रममें रहनेकी क्या आवश्यकता है। जितेन्द्रिय पुरुष जहाँ-जहाँ निवास करता है, उसके लिये वही-वही स्थान वन एवं महान् आश्रम है। जो उत्तम शील और आचरणमें रत है, जिसने अपनी इन्द्रियोंको काबूमें कर लिया है तथा जो सदा सरल भावसे रहता है, उसको आश्रमोंसे क्या प्रयोजन? विषयासक्त मनुष्योंसे वनमें भी दोष बन जाते हैं तथा घरमें रहकर भी यदि पाँचों इन्द्रियोंका निग्रह कर लिया जाय तो वह तपस्या ही है। जो सदा शुभ कर्ममें ही प्रवृत्त होता है, उस वीतराग पुरुषके लिये घर ही तपोवन है। केवल शब्द-

शास्त्र-व्याकरणके चिन्तनमें लगे रहनेवालेका मोक्ष नहीं होता तथा लोगोंका मन बहलानेमें ही जिसकी प्रवृत्ति है, उसको भी मुक्ति नहीं मिलती। जो एकान्तमें रहकर दृढ़तापूर्वक नियमोंका पालन करता, इन्द्रियोंकी आसक्तिको दूर हटाता, अध्यात्मतत्त्वके चिन्तनमें मन लगाता और सर्वदा अहिंसा-व्रतका पालन करता है, उसीका मोक्ष निश्चित है। जितेन्द्रिय पुरुष सुखसे सोता और सुखसे जागता है। वह सम्पूर्ण भूतोंके प्रति समान भाव रखता है। उसके मनमें हर्ष-शोक आदि विकार नहीं आते। छेड़ा हुआ सिंह, अत्यन्त रोषमें भरा हुआ सर्प तथा सदा कुपित रहनेवाला शत्रु भी वैसा अनिष्ट नहीं कर सकता, जैसा संयमरहित चित्त कर डालता है।

मांसभक्षी प्राणियों तथा अजितेन्द्रिय मनुष्योंसे लोगोंको सदा भय रहता है; अतः उनके निवारणके लिये ब्रह्माजीने दण्डका विधान किया है। दण्ड ही प्राणियोंकी रक्षा और प्रजाका पालन करता है। वही पापियोंको पापसे रोकता है। दण्ड सबके लिये दुर्जय होता है। वह सब प्राणियोंको भय पहुँचानेवाला है। दण्ड ही मनुष्योंका शासक है, उसीपर धर्म टिका हुआ है। सम्पूर्ण आश्रमों और समस्त भूतोंमें दम ही उत्तम व्रत माना गया है। उदारता, कोमल स्वभाव, सन्तोष, दोष-दृष्टिका अभाव, गुरु-शुश्रूषा, प्राणियोंपर दया और चुगली न करना—इन्हींको शान्त बुद्धिवाले संतों और ऋषियोंने दम कहा है। धर्म, मोक्ष तथा स्वर्ग—ये सभी दमके अधीन हैं। जो अपना अपमान होनेपर क्रोध नहीं करता और सम्मान होनेपर हर्षसे फूल नहीं उठता, जिसकी दृष्टिमें दुःख और सुख समान हैं, उस धीर पुरुषको प्रशान्त कहते हैं। जिसका अपमान होता है, वह साधु पुरुष तो सुखसे सोता और सुखसे जागता है तथा उसकी बुद्धि कल्याणमयी होती है। परन्तु अपमान करनेवाला मनुष्य स्वयं नष्ट हो जाता है। अपमानित पुरुषको चाहिये कि वह कभी अपमान करनेवालेकी बुराई न सोचे। अपने धर्मपर दृष्टि रखते हुए भी दूसरोंके धर्मकी निन्दा न करे।*

* अवमाने न कुप्येत सम्माने न प्रहृष्यति।
समदुःखसुखो धीरः प्रशान्त इति कीर्त्यते॥
सुखं ह्यवमतः शेते सुखं चैव प्रबुध्यति।
श्रेयस्तरमतिस्तिष्ठेदवमन्ता विनश्यति॥
अवमानी तु न ध्यायेत्तस्य पापं कदाचन।
स्वधर्ममपि चावेक्ष्य परधर्मं न दूषयेत्॥
(१९। ३३२—३४)

जो इन्द्रियोंका दमन करना नहीं जानते, वे व्यर्थ ही शास्त्रोंका अध्ययन करते हैं; क्योंकि मन और इन्द्रियोंका संयम ही शास्त्रका मूल है, यही सनातन धर्म है। सम्पूर्ण व्रतोंका आधार दम ही है। छहों अङ्गोंसहित पढ़े हुए वेद भी दमसे हीन पुरुषको पवित्र नहीं कर सकते। जिसने इन्द्रियोंका दमन नहीं किया, उसके सांख्य, योग, उत्तम कुल, जन्म और तीर्थ-स्नान—सभी व्यर्थ हैं। योगवेत्ता द्विजको चाहिये कि वह अपमानको अमृतके समान समझकर उससे प्रसन्नताका अनुभव करे। और सम्मानको विषके तुल्य मानकर उससे घृणा करे। अपमानसे उसके तपकी वृद्धि होती है और सम्मानसे क्षय। पूजा और सत्कार पानेवाला ब्राह्मण दुही हुई गायकी तरह खाली हो जाता है। जैसे गौ घास और जल पीकर फिर पुष्ट हो जाती है, उसी प्रकार ब्राह्मण जप और होमके द्वारा पुनः ब्रह्मतेजसे सम्पन्न हो जाता है। संसारमें निन्दा करनेवालेके समान दूसरा कोई मित्र नहीं है, क्योंकि वह पाप लेकर अपना पुण्य दे जाता है।* निन्दा करनेवालोंकी स्वयं निन्दा न करे। अपने मनको रोके। जो उस समय अपने चित्तको वशमें कर लेता है, वह मानो अमृतसे स्नान करता है। वृक्षोंके नीचे रहना, साधारण वस्त्र पहनना, अकेले रहना, किसीकी अपेक्षा न रखना और ब्रह्मचर्यका पालन करना—ये सब परमगतिको प्राप्त कराने वाले होते हैं। जिसने काम और क्रोधको जीत लिया, वह जंगलमें जाकर क्या करेगा? अभ्याससे शास्त्रकी, शीलसे कुलकी, सत्यसे क्रोधकी तथा मित्रके द्वारा प्राणोंकी रक्षा की जाती है। जो पुरुष उत्पन्न हुए क्रोधको अपने मनसे रोक लेता है, वह उस क्षमाके द्वारा सबको जीत लेता है। जो क्रोध और भयको जीतकर शान्त रहता है, पृथ्वीपर उसके समान वीर और कौन है। यह ब्रह्माजीका बताया हुआ गूढ़ उपदेश है। प्यारे! हमने धर्मका हृदय—सारतत्त्व तुम्हें बतलाया है।

यज्ञ करनेवालोंके लोक दूसरे हैं, तपस्वियोंके लोक दूसरे हैं तथा इन्द्रिय-संयम और मनोनिग्रह करनेवाले लोगोंके लोक दूसरे ही हैं। वे सभी परम सम्मानित हैं। क्षमा करनेवालों पर एक ही दोष लागू होता है, दूसरा नहीं, वह यह कि क्षमाशील पुरुषको लोग शक्तिहीन मान बैठते हैं। किन्तु

* आक्रोशकसमो लोके सुहृदन्यो न विद्यते।
यस्तु दुष्कृतमादाय सुकृतं स्वं प्रयच्छति॥
(१९। ३४४)

इसे दोष नहीं मानना चाहिये, क्योंकि बुद्धिमानोंका बल क्षमा ही है। जो शान्ति अथवा क्षमाको नहीं जानता, वह इष्ट (यज्ञ आदि) और पूर्त (तालाब आदि खुदवाना) दोनोंके फलोंसे वञ्चित हो जाता है। क्रोधी मनुष्य जो जप, होम और पूजन करता है, वह सब फूटे हुए घड़ेसे जलकी भाँति नष्ट हो जाता है। जो पुरुष प्रातःकाल उठकर प्रतिदिन इस पुण्यमय दमाध्यायका पाठ करता है, वह धर्मकी नौकापर आरूढ़ होकर सारी कठिनाइयोंको पार कर जाता है। जो द्विज सदा ही इस पुण्यप्रद दमाध्यायको दूसरोंको सुनाता है, वह ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है तथा वहाँसे कभी नहीं गिरता।

धर्मका सार सुनो और सुनकर उसे धारण करो—जो बात अपनेको प्रतिकूल जान पड़े, उसे दूसरोंके लिये भी काममें न लाये। जो परायी स्त्रीको माताके समान, पराये धनको मिट्टीके ढेलेके समान और सम्पूर्ण भूतोंको अपने आत्माके समान जानता है, वही ज्ञानी है। जिसकी रसोई बलिवैश्वदेवके लिये और जीवन परोपकारके लिये है, वही विद्वान् है। जैसे धातुओंमें सुवर्ण उत्तम है, वैसे ही परोपकार सबसे श्रेष्ठ धर्म है, वही सर्वस्व है। सम्पूर्ण प्राणियोंके हितका ध्यान रखनेवाला पुरुष अमृतत्व प्राप्त करता है।

पुलस्त्यजी कहते हैं—इस प्रकार ऋषियोंने शुनःसखके सामने धर्मके सार-तत्त्वका प्रतिपादन करके उसके साथ वहाँसे दूसरे वनमें प्रवेश किया। वहाँ भी उन्हें एक बहुत विस्तृत जलाशय दिखायी दिया, जो पद्म और उत्पलोंसे आच्छादित था। उस सरोवरमें उतरकर उन्होंने मृणाल उखाड़े और उन्हें ढेर-के-ढेर किनारेपर रखकर जलसे सम्पन्न होनेवाली पुण्यक्रिया—सन्ध्या-तर्पण आदि करने लगे। तत्पश्चात् जब वे जलसे बाहर निकले तो उन मृणालोंको न देखकर परस्पर इस प्रकार कहने लगे।

ऋषि बोले—हम सब लोग क्षुधासे कष्ट पा रहे हैं—ऐसी दशामें किस पापी और क्रूरने मृणालोंको चुरा लिया?

जब इस तरह कुछ पता न लगा तब सबसे पहले कश्यपजी बोले—जिसने मृणालकी चोरी की हो, उसे सर्वत्र सब कुछ चुरानेका, थाती रखी हुई वस्तुपर जी ललचानेका और झूठी गवाही देनेका पाप लगे। वह दम्भपूर्वक धर्मका आचरण और राजाका सेवन करने, मद्य और मांसका सेवन करने, सदा झूठ बोलने, सूदसे जीविका चलाने और रुपया लेकर लड़की बेचनेके पापका भागी हो।

वसिष्ठजीने कहा—जिसने उन मृणालोंको चुराया हो, उसे ऋतुकालके बिना ही मैथुन करने, दिनमें सोने, एक दूसरेके यहाँ जाकर अतिथि बनने, जिस गाँवमें एक ही कुँआ हो वहाँ निवास करने, ब्राह्मण होकर शूद्रजातिकी स्त्रीसे सम्बन्ध रखनेका पाप लगे और ऐसे लोगोंको जिन लोकोंमें जाना पड़ता है, वहीं वह भी जाय।

भरद्वाज बोले—जिसने मृणाल चुराये हों, वह सबके प्रति क्रूर, धनके अभिमानी, सबसे डाह रखनेवाले, चुगलखोर और रस बेचनेवालेकी गति प्राप्त करे।

गौतमने कहा—जिसने मृणालोंकी चोरी की हो, वह सदा शूद्रका अन्न खानेवाले, परस्त्रीगामी और घरमें दूसरोंको न देकर अकेले मिष्टान्न भोजन करनेवालेके समान पापका भागी हो।

विश्वामित्र बोले—जो मृणाल चुरा ले गया हो, वह सदा काम-परायण, दिनमें मैथुन करनेवाले, नित्य पातकी, परायी निन्दा करनेवाले और परस्त्रीगामीकी गति प्राप्त करे।

जमदग्निने कहा—जिसने मृणालोंकी चोरी की हो, वह दुर्बुद्धि मनुष्य अपने माता-पिताका अपमान करनेके, अपनी कन्याके दिये हुए धनसे अपनी जीविका चलानेके, सदा दूसरेकी रसोईमें भोजन करनेके, परस्त्रीसे सम्पर्क रखनेके और गौओंकी बिक्री करनेके पापका भागी हो।

पराशरजी बोले—जिसने मृणाल चुराये हों, वह दूसरोंका दास एवं जन्म-जन्म क्रोधी हो तथा सब प्रकारके धर्म-कर्मोंसे हीन हो।

शुनःसखने कहा—जिसने मृणालोंकी चोरी की हो, वह न्यायपूर्वक वेदाध्ययन करे, अतिथियोंमें प्रीति रखनेवाला गृहस्थ हो, सदा सत्य बोले, विधिवत् अग्निहोत्र करे, प्रतिदिन यज्ञ करे और अन्तमें ब्रह्मलोकको जाय।

ऋषियोंने कहा—शुनःसख! तुमने जो शपथ की है, वह तो द्विजातिमात्रको अभीष्ट ही है; अतः तुम्हींने हम सबके मृणालोंकी चोरी की है।

शुनःसख बोले—ब्राह्मणो! मैंने ही आपलोगोंके मुँहसे धर्म सुननेकी इच्छासे ये मृणाल छिपा दिये थे। मुझे आप

इन्द्र समझें। मुनिवरो! आपने लोभके परित्यागसे अक्षय लोकोंपर विजय पायी है। अतः इस विमानपर बैठिये, अब हमलोग स्वर्गलोकको चलें।

तब महर्षियोंने इन्द्रको पहचानकर उनसे इस प्रकार कहा।

ऋषि बोले—देवराज! जो मनुष्य यहाँ आकर मध्यम पुष्करमें स्नान करे और तीन राततक यहाँ उपवासपूर्वक निवास करे, उसे अक्षय फलकी प्राप्ति होती है। वनवासी महर्षियोंके लिये जो बारह वर्षोंकी यज्ञ दीक्षा बतायी गयी है, उसका पूरा पूरा फल उस मनुष्यको भी मिल जाता है। उसकी कभी दुर्गति नहीं होती। वह सदा अपने कुलवालोंके साथ आनन्दका अनुभव करता है तथा ब्रह्मलोकमें जाकर ब्रह्माजीके एक दिनतक (कल्पभर) वहाँ निवास करता है।



नाना प्रकारके व्रत, स्नान और तर्पणकी विधि तथा अन्नादि पर्वतोंके दानकी प्रशंसामें राजा धर्ममूर्तिकी कथा



पुलस्त्यजी कहते हैं—राजन्! ज्येष्ठ पुष्करमें गौ, मध्यम पुष्करमें भूमि और कनिष्ठ पुष्करमें सुवर्ण देना चाहिये। यही वहाँके लिये दक्षिणा है। प्रथम पुष्करके देवता श्रीब्रह्माजी, दूसरेके भगवान् श्रीविष्णु तथा तीसरेके श्रीरुद्र हैं। इस प्रकार तीनों देवता वहाँ पृथक्-पृथक् स्थित हैं। अब मैं सब व्रतोंमें उत्तम महापातकनाशन नामक व्रतका वर्णन करता हूँ। यह भगवान् शङ्करका बताया हुआ व्रत है। रात्रिको अन्न तैयार करके कुटुम्बवाले ब्राह्मणको बुलाये और उसे भोजन कराकर एक गौ, सुवर्णमय चक्रसे युक्त त्रिशूल तथा दो वस्त्र—धोती और चद्दर दान करे। जो मनुष्य इस प्रकार पुण्य करता है, वह शिवलोकमें जाकर आनन्दका अनुभव करता है। यही महापातकनाशन व्रत है। जो एक दिन एकभक्तव्रती रहकर—एक ही अन्नका भोजन कर दूसरे दिन तिलमयी धेनु और वृषभका दान करता है, वह भगवान् शङ्करके पदको प्राप्त होता है। यह पाप और शोकोंका नाश करनेवाला 'रुद्रव्रत' है। जो एक वर्षतक एक दिनका अन्तर दे रात्रिमें भोजन करता है तथा वर्ष पूरा होनेपर नील कमल, सुवर्णमय कमल और चीनीसे भरा हुआ पात्र एवं बैल दान करता है, वह भगवान् श्रीविष्णुके धामको प्राप्त होता है। यह 'नीलव्रत' कहलाता है। जो मनुष्य आषाढ़से लेकर चार महीनोंतक तेलकी मालिश छोड़ देता है और भोजनकी सामग्री दान करता है, वह भगवान् श्रीहरिके धाममें जाता है। यह मनुष्योंको प्रसन्न करनेवाला होनेके कारण 'प्रीतिव्रत' कहलाता है। जो चैतके महीनेमें दही, दूध, घी और गुड़का त्याग करता और गौरीकी प्रसन्नताके उद्देश्यसे ब्राह्मण दम्पतीका पूजन करके उन्हें महीन वस्त्र और रससे भरे पात्र दान करता है, उसपर गौरीदेवी प्रसन्न होती हैं। यह 'गौरीव्रत' भवानीका लोक प्रदान करनेवाला है। जो आषाढ़ आदि चातुर्मास्यमें कोई भी फल नहीं खाता तथा चौमासा बीतनेपर घी और गुड़के साथ एक घड़ा एवं कार्तिककी पूर्णिमाको पुनः कुछ सुवर्ण ब्राह्मणको दान देता है, वह रुद्रलोकको प्राप्त होता है। यह 'शिवव्रत' कहलाता है।

जो मनुष्य हेमन्त और शिशिरमें पुष्पोंका सेवन छोड़ देता है तथा अपनी शक्तिके अनुसार सोनेके तीन फूल बनवाकर फाल्गुनकी पूर्णिमाको भगवान् श्रीशिव और श्रीविष्णुकी प्रसन्नताके लिये उनका दान करता है, वह परमपदको प्राप्त होता है। यह 'सौम्यव्रत' कहलाता है। जो फाल्गुनसे आरम्भ करके प्रत्येक मासकी तृतीयाको नमक छोड़ देता है और वर्ष पूर्ण होनेपर भवानीकी प्रसन्नताके लिये ब्राह्मण दम्पतीका पूजन करके उन्हें शय्या और आवश्यक सामग्रियोंसहित गृह दान करता है, वह एक कल्पतक गौरीलोकमें निवास करता है। इसे 'सौभाग्यव्रत' कहते हैं। जो द्विज एक वर्षतक मौनभावसे सन्ध्या करता है और वर्षके अन्तमें घीका घड़ा, दो वस्त्र—धोती और चद्दर, तिल और घण्टा ब्राह्मणको दान करता है, वह सारस्वतलोकको प्राप्त होता है, जहाँसे फिर इस संसारमें लौटना नहीं पड़ता। यह रूप और विद्या प्रदान करनेवाला 'सारस्वत' नामक व्रत है। प्रतिदिन गोबरका मण्डल बनाकर उसमें अक्षतोंद्वारा कमल बनाये। उसके ऊपर भगवान् श्रीशिव या श्रीविष्णुकी प्रतिमा रखकर उसे घीसे स्नान कराये, फिर विधिवत् पूजन करे। इस प्रकार जब एक वर्ष बीत जाय, तब साम गान करनेवाले ब्राह्मणको शुद्ध सोनेका बना हुआ आठ अङ्गुलका कमल और तिलकी धेनु दान करे। ऐसा करनेवाला पुरुष शिवलोकमें प्रतिष्ठित होता है। यह 'सामव्रत' कहा गया है।

नवमी तिथिको एकभक्त रहकर—एक ही अन्नका भोजन करके कुमारी कन्याओंको भक्तिपूर्वक भोजन कराये तथा गौ, सुवर्ण, सिला हुआ अंगा, धोती, चद्दर तथा सोनेका सिंहासन ब्राह्मणको दान करे; इससे वह शिवलोकको जाता है। अरबों जन्मतक सुरूपवान् होता है। शत्रु उसे कभी परास्त नहीं कर पाते। यह मनुष्योंको सुख देनेवाला 'वीरव्रत' नामका व्रत है। चैतसे आरम्भ कर चार महीनोंतक प्रतिदिन लोगोंको बिना माँगे जल पिलाये और इस व्रतकी समाप्ति होनेपर अन्न-वस्त्रसहित जलसे भरा हुआ माट, तिलसे पूर्ण पात्र तथा सुवर्ण दान करे। ऐसा करनेवाला पुरुष ब्रह्मलोकमें सम्मानित होता है। यह उत्तम 'आनन्दव्रत' है। जो पुरुष मांसका बिल्कुल परित्याग करके व्रतका आचरण करे और उसकी पूर्तिके निमित्त गौ तथा सोनेका मृग दान करे, वह अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त करता है। इसका नाम 'अहिंसाव्रत' है। एक कल्पतक इसका फल भोगकर अन्तमें मनुष्य राजा होता है। माघके महीनेमें सूर्योदयके पहले स्नान करके द्विज-दम्पतीका पूजन करे तथा उन्हें भोजन कराकर यथाशक्ति वस्त्र और आभूषण दान दे। यह 'सूर्यव्रत' है। इसका अनुष्ठान करनेवाला पुरुष एक कल्पतक सूर्यलोकमें निवास करता है। आषाढ़ आदि चार महीनोंमें प्रतिदिन प्रातःस्नान करे और फिर कार्तिककी पूर्णिमाके दिन ब्राह्मणोंको भोजन कराकर गोदान दे तो वह मनुष्य भगवान् श्रीविष्णुके धामको प्राप्त होता है। वह 'विष्णुव्रत' है। जो एक अयनसे दूसरे अयनतक पुष्प और घृतका सेवन छोड़ देता है और व्रतके अन्तमें फूलोंका हार, घी और घृतमिश्रित खीर ब्राह्मणको दान करता है, वह शिवलोकमें जाता है। इसका नाम 'शीलव्रत' है। जो [नियत कालतक] प्रतिदिन सन्ध्याके समय दीप-दान करता है तथा घी और तेलका सेवन नहीं करता, फिर व्रत समाप्त होनेपर ब्राह्मणको दीपक, चक्र, शूल, सोना और धोती-चद्दर दान करता है, वह इस संसारमें तेजस्वी होता है तथा अन्तमें रुद्रलोकको जाता है। यह 'दीप्तिव्रत' है। जो कार्तिकसे आरम्भ करके प्रत्येक मासकी तृतीयाको रातके समय गोमूत्रमें पकायी हुई जौकी लप्सी खाकर रहता है और वर्ष समाप्त होनेपर गोदान करता है, वह एक कल्पतक गौरीलोकमें निवास करता है तथा उसके बाद इस लोकमें राजा होता है। इसका नाम 'रुद्रव्रत' है। यह सदा कल्याण करनेवाला है। जो चार महीनोंतक चन्दन लगाना छोड़ देता है तथा अन्तमें सीपी, चन्दन, अक्षत और दो श्वेत वस्त्र—धोती और चद्दर ब्राह्मणको दान करता है, वह वरुणलोकमें जाता है। यह 'दृढव्रत' कहलाता है।

सोनेका ब्रह्माण्ड बनाकर उसे तिलकी ढेरीमें रखे तथा 'मैं अहङ्काररूपी तिलका दान करनेवाला हूँ' ऐसी भावना करके घीसे अग्निको तथा दक्षिणासे ब्राह्मणको तृप्त करे। फिर माला, वस्त्र तथा आभूषणोंद्वारा ब्राह्मण-दम्पतीका पूजन करके विश्वात्माकी तृप्तिके उद्देश्यसे किसी शुभ दिनको अपनी शक्तिके अनुसार तीन तोलेसे अधिक सोना तथा तिलसहित ब्रह्माण्ड ब्राह्मणको दान करे। ऐसा करनेवाला पुरुष पुनर्जन्मसे रहित ब्रह्मपदको प्राप्त होता है। इसका नाम 'ब्रह्मव्रत' है। यह मनुष्योंको मोक्ष देनेवाला है। जो तीन दिन केवल दूध पीकर रहता है और अपनी शक्तिके अनुसार एक तोलेसे अधिक सोनेका कल्पवृक्ष बनवाकर उसे एक सेर चावलके साथ ब्राह्मणको दान करता है, वह भी ब्रह्मपदको प्राप्त होता है। यह 'कल्पवृक्षव्रत' है। जो एक महीनेतक उपवास करके ब्राह्मणको सुन्दर गौ दान करता है, वह भगवान् श्रीविष्णुके धामको प्राप्त होता है। इसका नाम 'भीमव्रत' है। जो बीस तोलेसे अधिक सोनेकी पृथ्वी बनवाकर दान करता है और दिनभर दूध पीकर रहता है, वह रुद्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है। यह 'धनप्रद' नामक व्रत है। यह सात सौ कल्पोंतक अपना फल देता रहता है। माघ अथवा चैतकी तृतीयाको गुड़की गौ बनाकर दान करे। इसका नाम 'गुडव्रत' है। इसका अनुष्ठान करनेवाला पुरुष गौरीलोकमें सम्मान पाता है।

अब परम आनन्द प्रदान करनेवाले महाव्रतका वर्णन करता हूँ। जो पंद्रह दिन उपवास करके ब्राह्मणको दो कपिला गौएँ दान करता है, वह देवता और असुरोंसे पूजित हो ब्रह्मलोकमें जाता है तथा कल्पके अन्तमें सबका सम्राट् होता है। इसका नाम 'प्रभाव्रत' भी है। जो एक वर्षतक केवल एक ही अन्न-का भोजन करता है और भक्ष्य पदार्थोंके साथ जलका घड़ा दान करता है, वह कल्पपर्यन्त शिवलोकमें निवास करता है। इसे 'प्राप्तिव्रत' कहते हैं। जो प्रत्येक अष्टमीको रात्रिमें एक बार भोजन करता है और वर्ष समाप्त होनेपर दूध देनेवाली गौका दान करता है, वह इन्द्रलोकमें जाता है। इसे 'सुगतिव्रत' कहते हैं। जो वर्षा आदि चार ऋतुओंमें ब्राह्मणको ईंधन देता है और अन्तमें घी तथा गौका दान करता है, वह परब्रह्मको प्राप्त होता है। यह सब पापोंका नाश करनेवाला 'वैश्वानरव्रत' है।

जो एक वर्षतक प्रतिदिन खीर खाकर रहता है और व्रत समाप्त होनेपर ब्राह्मणको एक गाय और एक बैल दान करता है; वह एक कल्पतक लक्ष्मीलोकमें निवास करता है। इसका नाम 'देवीव्रत' है। जो प्रत्येक सप्तमीको एक बार रात्रिमें भोजन करता है और वर्ष समाप्त होनेपर दूध देनेवाली गौ दान करता है, उसे सूर्यलोककी प्राप्ति होती है। यह 'भानुव्रत' है। जो प्रत्येक चतुर्थीको एक बार रात्रिमें भोजन करता और वर्षके अन्तमें सोनेका हाथी दान करता है, उसे शिवलोककी प्राप्ति होती है। यह 'वैनायकव्रत' है। जो चौमासेभर बड़े-बड़े फलोंका परित्याग करके कार्तिकमें सोनेके फलका दान करता है तथा हवन कराकर उसके अन्तमें ब्राह्मणको गाय-बैल देता है, उसे सूर्यलोककी प्राप्ति होती है। यह 'सौरव्रत' है। जो बारह द्वादशियोंको उपवास करके अपनी शक्तिके अनुसार गौ, वस्त्र और सुवर्णके द्वारा ब्राह्मणोंकी पूजा करता है, वह परम पदको प्राप्त होता है। यह 'विष्णुव्रत' है। जो प्रत्येक चतुर्दशीको एक बार रातमें भोजन करता और वर्षकी समाप्ति होनेपर एक गाय और एक बैल दान करता है, उसे रुद्रलोककी प्राप्ति होती है। इसे 'त्र्यम्बक व्रत' कहते हैं। जो सात रात उपवास करके ब्राह्मणको घीसे भरा हुआ घड़ा दान करता है, वह ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है। इसका नाम 'वरव्रत' है। जो काशी जाकर दूध देनेवाली गौका दान करता है, वह एक कल्पतक इन्द्रलोकमें निवास करता है। यह 'मित्रव्रत' है। जो एक वर्षतक ताम्बूलका सेवन छोड़कर अन्तमें गोदान करता है, वह वरुणलोकको जाता है। इसका नाम 'वारुणव्रत' है। जो चान्द्रायणव्रत करके सोनेका चन्द्रमा बनवाकर दान देता है, उसे चन्द्रलोककी प्राप्ति होती है। यह 'चन्द्रव्रत' कहलाता है। जो ज्येष्ठ मासमें पञ्चाग्नि तपकर अन्तमें अष्टमी या चतुर्दशीको सोनेकी गौका दान करता है, वह स्वर्गको जाता है। यह 'रुद्रव्रत' कहलाता है। जो प्रत्येक तृतीयाको शिवमन्दिरमें जाकर एक बार हाथ जोड़ता है और वर्ष पूर्ण होनेपर दूध देनेवाली गौ दान करता है, उसे देवीलोककी प्राप्ति होती है। इसका नाम 'भवानीव्रत' है।

जो माघभर गीला वस्त्र पहनता और सप्तमीको गोदान करता है, वह कल्पपर्यन्त स्वर्गमें निवास करके अन्तमें इस पृथ्वीपर राजा होता है। इसे 'तापकव्रत' कहते हैं। जो तीन रात उपवास करके फाल्गुनकी पूर्णिमाको घरका दान करता है, उसे आदित्यलोककी प्राप्ति होती है। यह 'धामव्रत' है। जो व्रत रहकर तीनों सन्ध्याओंमें—प्रातः, मध्याह्न एवं सायंकालमें भूषणोंद्वारा ब्राह्मण दम्पतीकी पूजा करता है, उसे मोक्ष मिलता है। यह 'मोक्षव्रत' है। जो शुक्ल पक्षकी द्वितीयाके दिन ब्राह्मणको नमकसे भरा हुआ पात्र, वस्त्रसे ढका हुआ काँसेका बर्तन तथा दक्षिणा देता है और व्रत समाप्त होनेपर गोदान करता है, वह भगवान् श्रीशिवके लोकमें जाता है तथा एक कल्पके बाद राजाओंका भी राजा होता है। इसका नाम 'सोमव्रत' है। जो हर प्रतिपदाको एक ही अन्नका भोजन और वर्ष समाप्त होनेपर कमलका दान करता है, वह वैश्वानरलोकमें जाता है। इसे 'अग्निव्रत' कहते हैं। जो प्रत्येक दशमीको एक ही अन्नका भोजन और वर्ष समाप्त होनेपर दस गौएँ तथा सोनेका दीप दान करता है, वह ब्रह्माण्डका स्वामी होता है। इसका नाम 'विश्वव्रत' है। यह बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाला है। जो स्वयं कन्या दान करता तथा दूसरेकी कन्याओंका विवाह करा देता है, वह अपनी इक्कीस पीढ़ियोंसहित ब्रह्मलोकमें जाता है। कन्या दानसे बढ़कर दूसरा कोई दान नहीं है। विशेषतः पुष्करमें और वहाँ भी कार्तिकी पूर्णिमाको जो कन्या दान करेंगे, उनका स्वर्गमें अक्षय वास होगा। जो मनुष्य जलमें खड़े होकर तिलकी पीठीके बने हुए हाथीको रत्नोंसे विभूषित करके ब्राह्मणको दान देते हैं, उन्हें इन्द्रलोककी प्राप्ति होती है। जो भक्तिपूर्वक इन उत्तम व्रतोंका वर्णन पढ़ता और सुनता है, वह सौ मन्वन्तरोंतक गन्धर्वोंका स्वामी होता है।

स्नानके बिना न तो शरीर ही निर्मल होता है और न मनकी ही शुद्धि होती है, अतः मनकी शुद्धिके लिये सबसे पहले स्नानका विधान है। घरमें रखे हुए अथवा तुरतके निकाले हुए जलसे स्नान करना चाहिये। [किसी जलाशय या नदीका स्नान सुलभ हो तो और उत्तम है।] मन्त्रवेत्ता विद्वान् पुरुषको मूलमन्त्रके द्वारा तीर्थकी कल्पना कर लेनी चाहिये। 'ॐ नमो नारायणाय'—यह मूलमन्त्र बताया गया है। पहले हाथमें कुश लेकर विधिपूर्वक आचमन करे तथा मन और इन्द्रियोंको संयममें रखते हुए बाहर भीतरसे पवित्र रहे। फिर चार हाथका चौकोर मण्डल बनाकर उसमें निम्नाङ्कित वाक्योंद्वारा भगवती गङ्गाका

आवाहन करे—'गङ्गे! तुम भगवान् श्रीविष्णुके चरणोंसे प्रकट हुई हो; श्रीविष्णु ही तुम्हारे देवता हैं, इसीलिये तुम्हें वैष्णवी कहते हैं। देवि! तुम जन्मसे लेकर मृत्युतक समस्त पापोंसे मेरी रक्षा करो। स्वर्ग, पृथ्वी और अन्तरिक्षमें कुल साढ़े तीन करोड़ तीर्थ हैं, यह वायु देवताका कथन है। माता जाह्नवी! वे सभी तीर्थ तुम्हारे भीतर मौजूद हैं। देवलोकमें तुम्हारा नाम नन्दिनी और नलिनी है। इनके सिवा दक्षा, पृथ्वी, सुभगा, विश्वकाया, शिवा, अमृता, विद्याधरी, महादेवी, लोक-प्रसादिनी, क्षेमा, जाह्नवी, शान्ता और शान्तिप्रदायिनी आदि तुम्हारे अनेकों नाम हैं।'* जहाँ स्नानके समय इन पवित्र नामोंका कीर्तन होता है, वहाँ त्रिपथगामिनी भगवती गङ्गा उपस्थित हो जाती हैं।

सात बार उपर्युक्त नामोंका जप करके सम्पुटके आकारमें दोनों हाथोंको जोड़कर उनमें जल ले। तीन, चार, पाँच या सात बार मस्तकपर डाले; फिर विधिपूर्वक मृत्तिकाको अभिमन्त्रित करके अपने अङ्गोंमें लगाये। अभिमन्त्रित करनेका मन्त्र इस प्रकार है—

अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे।
मृत्तिके हर मे पापं यन्मया दुष्कृतं कृतम्॥
उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना।
नमस्ते सर्वलोकानां प्रभवारणि सुव्रते॥
(२०। १५५—१५७)

'वसुन्धरे! तुम्हारे ऊपर अश्व और रथ चला करते हैं। भगवान् श्रीविष्णुने भी वामनरूपसे तुम्हें एक पैरसे नापा था। मृत्तिके! मैंने जो बुरे कर्म किये हों, मेरे उन सब पापोंको तुम हर लो। देवि! भगवान् श्रीविष्णुने सैकड़ों भुजाओंवाले वराहका रूप धारण करके तुम्हें जलसे बाहर निकाला था। तुम सम्पूर्ण लोकोंकी उत्पत्तिके लिये अरणीके समान हो। सुव्रते! तुम्हें मेरा नमस्कार है।'

इस प्रकार मृत्तिका लगाकर पुनः स्नान करे। फिर विधिवत् आचमन करके उठे और शुद्ध सफेद धोती एवं चद्दर धारण कर त्रिलोकीको तृप्त करनेके लिये तर्पण करे। सबसे पहले ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और प्रजापतिका तर्पण करे। तत्पश्चात् देवता, यक्ष, नाग, गन्धर्व, श्रेष्ठ अप्सराएँ, क्रूर सर्प, गरुड़ पक्षी, वृक्ष, जम्भक आदि असुर, विद्याधर, मेघ, आकाशचारी जीव, निराधार जीव, पापी जीव तथा धर्मपरायण जीवोंको तृप्त करनेके लिये मैं जल देता हूँ—यह कहकर उन सबको जलाञ्जलि दे।* देवताओंका तर्पण करते समय यज्ञोपवीतको बायें कंधेपर डाले रहे, तत्पश्चात् उसे गलेमें मालाकी भाँति कर ले और मनुष्यों, ऋषियों तथा ऋषिपुत्रोंका भक्तिपूर्वक तर्पण करे। 'सनक, सनन्दन, सनातन, कपिल, आसुरि, वोढु और पञ्चशिख—ये सभी मेरे दिये जलसे सदा तृप्त हों।' ऐसी भावना करके जल दे।† इसी प्रकार मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेता, वसिष्ठ, भृगु, नारद तथा सम्पूर्ण देवर्षियों एवं ब्रह्मर्षियोंका अक्षत-सहित जलके द्वारा तर्पण करे। इसके बाद यज्ञोपवीतको दायें कंधेपर करके बायें घुटनेको पृथ्वीपर टेककर बैठे; फिर अग्निष्वात्त, सौम्य, हविष्मान्, ऊष्मप, सुकाली, बर्हिषद् तथा आज्यप नामके पितरोंका तिल और चन्दनयुक्त जलसे भक्तिपूर्वक तर्पण करे। इसी प्रकार हाथोंमें कुश लेकर पवित्र भावसे परलोकवासी पिता, पितामह आदि और मातामह आदिका, नाम-गोत्रका उच्चारण करते हुए तर्पण करे। इस क्रमसे विधि और भक्तिके साथ सबका तर्पण करके निम्नाङ्कित मन्त्रका उच्चारण करे—

---

* विष्णुपादप्रसूतासि वैष्णवी विष्णुदेवता।
पाहि नस्त्वेनसस्तस्मादाजन्ममरणान्तिकात्॥
तिस्रः कोट्योऽर्द्धकोटी च तीर्थानां वायुरब्रवीत्।
दिवि भूम्यन्तरिक्षे च तानि ते सन्ति जाह्नवि॥
नन्दिनीत्येव ते नाम देवेषु नलिनीति च।
दक्षा पृथ्वी च सुभगा विश्वकाया शिवामृता॥
विद्याधरी महादेवी तथा लोकप्रसादिनी।
क्षेमा च जाह्नवी चैव शान्ता शान्तिप्रदायिनी॥
(२०। १४९—१५२)

* देवा यक्षास्तथा नागा गन्धर्वाप्सरसां वराः॥
क्रूराः सर्पाः सुपर्णाश्च तरवो जम्भकादयः।
विद्याधरा जलधरास्तथैवाकाशगामिनः॥
निराधाराश्च ये जीवाः पापे धर्मे रताश्च ये।
तेषामाप्यायनं चैव दीयते सलिलं मया॥
(२०। १५९—६१)

† सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः।
कपिलश्चासुरिश्चैव वोढुः पञ्चशिखस्तथा॥
सर्वे ते तृप्तिमायान्तु मद्दत्तेनाम्बुना सदा।
(२०। १६२—६४)

येऽबान्धवा बान्धवा ये येऽन्यजन्मनि बान्धवाः ॥
ते तृप्तिमखिला यान्तु येऽप्यस्मत्तोयकाङ्क्षिणः ।
(२० । १६९-७०)

'जो लोग मेरे बान्धव न हों, जो मेरे बान्धव हों तथा जो दूसरे किसी जन्ममें मेरे बान्धव रहे हों, वे सब मेरे दिये हुए जलसे तृप्त हों उनके सिवा और भी जो कोई प्राणी मुझसे जलकी अभिलाषा रखते हों, वे भी तृप्ति लाभ करें।' [ऐसा कहकर उनके उद्देश्यसे जल गिराये।]

तत्पश्चात् विधिपूर्वक आचमन करके अपने आगे पुष्प और अक्षतोंसे कमलकी आकृति बनाये। फिर यत्नपूर्वक सूर्यदेवके नामोंका उच्चारण करते हुए अक्षत, पुष्प और रक्तचन्दनमिश्रित जलसे अर्घ्य दे । अर्घ्यदानका मन्त्र इस प्रकार है—

नमस्ते विश्वरूपाय नमस्ते ब्रह्मरूपिणे ।
सहस्ररश्मये नित्यं नमस्ते सर्वतेजसे ॥
नमस्ते रुद्रवपुषे नमस्ते भक्तवत्सल ।
पद्मनाभ नमस्तेऽस्तु कुण्डलाङ्गदभूषित ॥
नमस्ते सर्वलोकेषु सुप्तांस्तान् प्रतिबुध्यसे ।
सुकृतं दुष्कृतं चैव सर्वं पश्यसि सर्वदा ॥
सत्यदेव नमस्तेऽस्तु प्रसीद मम भास्कर ।
दिवाकर नमस्तेऽस्तु प्रभाकर नमोऽस्तु ते ॥
(२० । १७२—७५)

'भगवन् सूर्य ! आप विश्वरूप और ब्रह्मस्वरूप हैं, इन दोनों रूपोंमें आपको नमस्कार है । आप सहस्रों किरणोंसे सुशोभित और सबके तेजरूप हैं, आपको सदा नमस्कार है । भक्तवत्सल ! रुद्ररूपधारी आप परमेश्वरको बारंबार नमस्कार है । कुण्डल और अङ्गद आदि आभूषणोंसे विभूषित पद्मनाभ ! आपको नमस्कार है। भगवन् ! आप सम्पूर्ण लोकोंके सोये हुए जीवोंको जगाते हैं, आपको मेरा प्रणाम है । आप सदा सबके पाप-पुण्यको देखा करते हैं । सत्यदेव ! आपको नमस्कार है। भास्कर ! मुझपर प्रसन्न होइये । दिवाकर ! आपको नमस्कार है । प्रभाकर ! आपको नमस्कार है ।'

इस प्रकार सूर्यदेवको नमस्कार करके तीन बार उनकी प्रदक्षिणा करे । फिर द्विज, गौ और सुवर्णका स्पर्श करके अपने घरमें जाय और वहाँ भगवान्‌की पावन प्रतिमाका पूजन करे । तदनन्तर [भगवान्‌को भोग लगाकर बलि-वैश्वदेव करनेके पश्चात्] पहले ब्राह्मणोंको भोजन करा पीछे स्वयं भोजन करे । इस विधिसे नित्यकर्म करके समस्त ऋषियोंने सिद्धि प्राप्त की है ।

पुलस्त्यजी कहते हैं—राजन् ! पूर्वकालकी बात है—बृहत् नामक कल्पमें धर्ममूर्ति नामके एक राजा थे, जिनकी इन्द्रके साथ मित्रता थी । उन्होंने सहस्रों दैत्योंका वध किया था । सूर्य और चन्द्रमा भी उनके तेजके सामने प्रभाहीन जान पड़ते थे । उन्होंने सैकड़ों शत्रुओंको परास्त किया था । वे इच्छानुसार रूप धारण कर सकते थे । मनुष्योंसे उनकी कभी पराजय नहीं हुई थी । उनकी पत्नीका नाम था भानुमती । वह त्रिभुवनमें सबसे सुन्दरी थी । उसने लक्ष्मीकी भाँति अपने रूपसे देवसुन्दरियोंको भी मात कर दिया था । भानुमती ही राजाकी पटरानी थी । वे उसे प्राणोंसे भी बढ़कर मानते थे । एक दिन राजसभामें बैठे हुए महाराज धर्ममूर्तिने विस्मय-विमुग्ध हो अपने पुरोहित मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठको प्रणाम करके पूछा—'भगवन् ! किस धर्मके प्रभावसे मुझे सर्वोत्तम लक्ष्मीकी प्राप्ति हुई है ? मेरे शरीरमें जो सदा उत्तम और विपुल तेज भरा रहता है—इसका क्या कारण है ?'

वसिष्ठजीने कहा—राजन् ! प्राचीन कालमें एक लीलावती नामकी वेश्या थी, जो सदा भगवान् शंकरके भजनमें तत्पर रहती थी । एक बार उसने पुष्करमें चतुर्दशीको नमकका पहाड़ बनाकर सोनेकी बनी देवप्रतिमाके साथ विधिपूर्वक दान किया था । शूद्र नामका एक सुनार था, जो लीलावतीके घरमें नौकरका काम करता था । उसीने बड़ी श्रद्धाके साथ मुख्य मुख्य देवताओंकी सुवर्णमयी प्रतिमाएँ बनायी थीं, जो देखनेमें अत्यन्त सुन्दर तथा शोभासम्पन्न थीं । धर्मका काम समझकर उसने उन प्रतिमाओंके बनानेकी मजदूरी नहीं ली थी । उस नमकके पर्वतपर जो सोनेके वृक्ष लगाये गये थे, उन्हें उस सुनारकी स्त्रीने तपाकर देदीप्यमान बना दिया था । [सुनारकी पत्नी भी लीलावतीके घर परिचारिकाका काम करती थी ।] उन्हीं दोनोंने ब्राह्मणोंकी सेवासे लेकर सारा कार्य सम्पन्न किया था । तदनन्तर दीर्घ कालके पश्चात् लीलावती वेश्या सब पापोंसे मुक्त होकर शिवजीके धामको चली गयी तथा वह सुनार, जो दरिद्र होनेपर भी अत्यन्त सात्त्विक था और जिसने वेश्यासे मजदूरी नहीं ली थी, आप ही हैं । उसी पुण्यके प्रभावसे आज सातों द्वीपोंके स्वामी तथा हजारों सूर्योंके समान तेजस्वी हुए हैं ।

सुनारकी ही भाँति उसकी पत्नीने भी सोनेके वृक्षों और देव-मूर्तियोंको कान्तिमान् बनाया था, इसलिये वही आपकी महारानी भानुमती हुई है। प्रतिमाओंको जगमग बनानेके कारण महारानीका रूप अत्यन्त सुन्दर हुआ है। और उसी पुण्यके प्रभावसे आप मनुष्यलोकमें अपराजित हुए हैं तथा आपको आरोग्य और सौभाग्यसे युक्त राजलक्ष्मी प्राप्त हुई है; इसलिये आप भी विधिपूर्वक धान्य-पर्वत आदि दस प्रकारके पर्वत बनाकर उनका दान कीजिये।

पुलस्त्यजी कहते हैं—राजा धर्ममूर्तिने 'बहुत अच्छा' कहकर वसिष्ठजीके वचनोंका आदर किया और अनाज आदिके पर्वत बनाकर उन सबका विधिपूर्वक दान किया। तत्पश्चात् वे देवताओंसे पूजित होकर महादेवजीके परम धामको चले गये। जो मनुष्य इस प्रसङ्गका भक्तिपूर्वक श्रवण करता है, वह भी पापरहित हो स्वर्गलोकमें जाता है। राजन्! अन्नादि पर्वतोंके दानका पाठमात्र करनेसे दुःस्वप्नोंका नाश हो जाता है; फिर जो इस पुष्कर क्षेत्रमें शान्तचित्त होकर सब प्रकारके पर्वतोंका स्वयं दान करता है, उसको मिलनेवाले फलका क्या वर्णन हो सकता है!

भीमद्वादशी-व्रतका विधान

भीष्मजीने कहा—विप्रवर! भगवान् शङ्करने जिन वैष्णव-धर्मोंका उपदेश किया है, उनका मुझसे वर्णन कीजिये। वे कैसे हैं और उनका फल क्या है?

पुलस्त्यजी बोले—राजन्! प्राचीन रथन्तर कल्पकी बात है, पिनाकधारी भगवान् शङ्कर मन्दराचलपर विराजमान थे। उस समय महात्मा ब्रह्माजीने स्वयं ही उनके पास जाकर



पूछा—'परमेश्वर! थोड़ी-सी तपस्यासे मनुष्योंको मोक्षकी प्राप्ति कैसे हो सकती है?' ब्रह्माजीके इस प्रकार प्रश्न करनेपर जगत्‌की उत्पत्ति एवं वृद्धि करनेवाले विश्वात्मा उमानाथ शिव मनको प्रिय लगनेवाले वचन बोले।

महादेवजीने कहा—एक समय द्वारकाकी सभामें अमित तेजस्वी भगवान् श्रीकृष्ण वृष्णिवंशी पुरुषों, विद्वानों, कौरवों और देव-गन्धर्वोंके साथ बैठे हुए थे। धर्मसे सम्बन्ध रखनेवाली पौराणिक कथाएँ हो रही थीं। इसी समय भीमसेनने भगवान्‌से परमपदकी प्राप्तिके विषयमें पूछा। उनका प्रश्न सुनकर भगवान् श्रीवासुदेवने कहा—'भीम! मैं तुम्हें एक पापविनाशिनी तिथिका परिचय देता हूँ। उस दिन निम्नाङ्कित विधिसे उपवास करके तुम श्रीविष्णुके परम धामको प्राप्त करो। जिस दिन माघ मासकी दशमी तिथि आये, उस दिन समस्त शरीरमें घी लगाकर तिल-मिश्रित जलसे स्नान करे तथा 'ॐ नमो नारायणाय' इस मन्त्रसे भगवान् श्रीविष्णुका पूजन करे। 'कृष्णाय नमः' कहकर दोनों चरणोंकी और 'सर्वात्मने नमः' कहकर मस्तककी पूजा करे। 'वैकुण्ठाय नमः' इस मन्त्रसे कण्ठकी और 'श्रीवत्स-धारिणे नमः' इससे हृदयकी अर्चा करे। फिर 'शङ्खिने नमः', 'चक्रिणे नमः', 'गदिने नमः', 'वरदाय नमः' तथा 'सर्वं नारायणः' (सब कुछ नारायण ही हैं)—ऐसा कहकर आवाहन आदिके क्रमसे भगवान्‌की पूजा करे। इसके बाद 'दामोदराय नमः' कहकर उदरका, 'पञ्चजनाय नमः' इस मन्त्रसे कमरका, 'सौभाग्यनाथाय नमः' इससे दोनों जाँघोंका, 'भूतधारिणे नमः' से दोनों घुटनोंका, 'नीलाय नमः' इस मन्त्रसे पिंडलियों (घुटनेसे नीचेके भाग) का और 'विश्वसृजे नमः' इससे पुनः दोनों चरणोंका पूजन करे। तत्पश्चात् 'देव्यै नमः', 'शान्त्यै नमः', 'लक्ष्म्यै नमः', 'श्रियै नमः',

'तुष्ट्यै नमः', 'पुष्ट्यै नमः', 'व्युष्ट्यै नमः'—इन मन्त्रोंसे भगवती लक्ष्मीकी पूजा करे। इसके बाद 'वायुवेगाय नमः', 'पक्षिणे नमः', 'विषप्रमथनाय नमः', 'विहङ्गनाथाय नमः'—इन मन्त्रोंके द्वारा गरुड़की पूजा करनी चाहिये।

इसी प्रकार गन्ध, पुष्प, धूप तथा नाना प्रकारके पक्वान्नों द्वारा श्रीकृष्णकी, महादेवजीकी तथा गणेशजीकी भी पूजा करे। फिर गौके दूधकी बनी हुई खीर लेकर घीके साथ मौनपूर्वक भोजन करे। भोजनके अनन्तर विद्वान् पुरुष सौ पग चलकर बरगद अथवा खैरकी दाँतन ले उसके द्वारा दाँतोंको साफ करे, फिर मुँह धोकर आचमन करे। सूर्यास्त होनेके बाद उत्तराभिमुख बैठकर सायङ्कालकी सन्ध्या करे। उसके अन्तमें यह कहे—'भगवान् श्रीनारायणको नमस्कार है। भगवन्! मैं आपकी शरणमें आया हूँ।'* [इस प्रकार प्रार्थना करके रात्रिमें शयन करे।]

दूसरे दिन एकादशीको निराहार रहकर भगवान् केशवकी पूजा करे और रातभर बैठा रहकर शेषशायी भगवान्की आराधना करे। फिर अग्निमें घीकी आहुति देकर प्रार्थना करे कि 'हे पुण्डरीकाक्ष! मैं द्वादशीको श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके साथ ही खीरका भोजन करूँगा। मेरा यह व्रत निर्विघ्नतापूर्वक पूर्ण हो।' यह कहकर इतिहास पुराणकी कथा सुननेके पश्चात् शयन करे। सबेरा होनेपर नदीमें जाकर प्रसन्नतापूर्वक स्नान करे। पाखण्डियोंके संसर्गसे दूर रहे। विधिपूर्वक सन्ध्योपासन करके पितरोंका तर्पण करे। फिर शेषशायी भगवान्को प्रणाम करके घरके सामने भक्तिपूर्वक एक मण्डपका निर्माण कराये। उसके भीतर चार हाथकी सुन्दर वेदी बनवाये। वेदीके ऊपर दस हाथका तोरण लगाये। फिर सुदृढ़ खम्भोंके आधारपर एक कलश रखे, उसमें नीचेकी ओर उड़दके दानेके बराबर छेद कर दे। तदनन्तर उसे जलसे भरे और स्वयं उसके नीचे काला मृगचर्म बिछाकर बैठ जाय। कलशसे गिरती हुई धाराको सारी रात अपने मस्तकपर धारण करे। वेदवेत्ता ब्राह्मणोंने धाराओंकी अधिकताके अनुपातसे फलमें भी अधिकता बतलायी है, इसलिये व्रत करनेवाले द्विजको चाहिये कि प्रयत्नपूर्वक उसे धारण करे। दक्षिण दिशाकी ओर अर्धचन्द्रके समान, पश्चिमकी ओर गोल तथा उत्तरकी ओर पीपलके पत्तेकी आकृतिका मण्डल बनवाये। वैष्णव द्विजको मध्यमें कमलके आकारका मण्डल बनवाना चाहिये। पूर्वकी ओर जो वेदीका स्थान है, उसके दक्षिण ओर भी एक दूसरी वेदी बनवाये। भगवान् श्रीविष्णुके ध्यानमें तत्पर हो पूर्वोक्त जलकी धाराको बराबर मस्तकपर धारण करता रहे। दूसरी वेदी भगवान्की स्थापनाके लिये हो। उसके ऊपर कर्णिकासहित कमलकी आकृति बनाये और उसके मध्यभागमें भगवान् पुरुषोत्तमको विराजमान करे। उनके निमित्त एक कुण्ड बनवाये, जो हाथ भर लंबा, उतना ही चौड़ा और उतना ही गहरा हो। उसके ऊपरी किनारेपर तीन मेखलाएँ बनवाये। उसमें यथास्थान योनि और मुखके चिह्न बनवाये। तदनन्तर ब्राह्मण [कुण्डमें अग्नि प्रज्वलित करके] जौ, घी और तिलोंका श्रीविष्णु सम्बन्धी मन्त्रोंद्वारा हवन करे। इस प्रकार वहाँ विधिपूर्वक वैष्णवयागका सम्पादन करे। फिर कुण्डके मध्यमें यत्नपूर्वक घीकी धारा गिराये, देवाधिदेव भगवान्के श्रीविग्रह पर दूधकी धारा छोड़े तथा अपने मस्तकपर पूर्वोक्त जलधाराको धारण करे। घीकी धारा मटरकी दालके बराबर मोटी होनी चाहिये। परन्तु दूध और जलकी धाराको अपनी इच्छाके अनुसार मोटी या पतली किया जा सकता है। ये धाराएँ रातभर अविच्छिन्न रूपसे गिरती रहनी चाहिये। फिर जलसे भरे हुए तरह कलशोंकी स्थापना करे। वे नाना प्रकारके भक्ष्य पदार्थोंसे युक्त और श्वेत वस्त्रोंसे अलङ्कृत होने चाहिये। उनके साथ चँदोवा, उदुम्बर पात्र तथा पञ्चरत्नका होना भी आवश्यक है। वहाँ चार ऋग्वेदी ब्राह्मण उत्तरकी ओर मुख करके हवन करें, चार यजुर्वेदी विप्र रुद्राध्यायका पाठ करें तथा चार सामवेदी ब्राह्मण वैष्णव सामका गायन करते रहें। उपर्युक्त बारहों ब्राह्मणोंको वस्त्र, पुष्प, चन्दन, अँगूठी, कड़े, सोनेकी जंजीर, वस्त्र तथा शय्या आदि देकर उनका पूर्ण सत्कार करे। इस कार्यमें धनकी कृपणता न करे।

इस प्रकार गीत और माङ्गलिक शब्दोंके साथ रात्रि व्यतीत करे। उपाध्याय (आचार्य या पुरोहित) को सब वस्तुएँ अन्य ब्राह्मणोंकी अपेक्षा दूनी मात्रामें अर्पण करे। रात्रिके बाद जब निर्मल प्रभातका उदय हो, तब शयनसे उठकर [नित्यकर्मके पश्चात्] तेरह गौएँ दान करनी चाहिये। उनके साथकी समस्त सामग्री सोनेकी होनी चाहिये। वे सब-की-सब दूध देनेवाली और सुशीला हों। उनके सींग सोनेसे और खुर चाँदीसे मँढ़े हुए हों तथा उन सबको वस्त्र ओढ़ाकर चन्दनसे विभूषित किया गया हो। गौओंके साथ काँसीका दोहनपात्र भी होना चाहिये। गोदानके पश्चात् ब्राह्मणोंको भक्तिपूर्वक भक्ष्य भोज्य पदार्थोंसे तृप्त करके

* नमो नारायणायेति त्वामहं शरणं गतः।

नाना प्रकारके वस्त्र दान करे। फिर स्वयं भी क्षार लवण-से रहित अन्नका भोजन करके ब्राह्मणोंको विदा करे। पुत्र और स्त्रीके साथ आठ पगतक उनके पीछे-पीछे जाय और इस प्रकार प्रार्थना करे—'हमारे इस कार्यसे देवताओंके स्वामी भगवान् श्रीविष्णु, जो सबका क्लेश दूर करनेवाले हैं, प्रसन्न हों। श्रीशिवके हृदयमें श्रीविष्णु हैं और श्रीविष्णुके हृदयमें श्रीशिव विराजमान हैं। मैं इन दोनोंमें अन्तर नहीं देखता—इस धारणासे मेरा कल्याण हो।'* यह कहकर उन कलशों, गौओं, शय्याओं तथा वस्त्रोंको सब ब्राह्मणोंके घर पहुँचवा दे। अधिक शय्याएँ सुलभ न हों तो गृहस्थ पुरुष एक ही शय्याको सब सामानोंसे सुसज्जित करके दान करे। भीमसेन! वह दिन इतिहास और पुराणोंके श्रवणमें ही बिताना चाहिये। अतः तुम भी सत्त्वगुणका आश्रय ले, मात्सर्यका त्याग करके इस व्रतका अनुष्ठान करो। यह बहुत गुप्त व्रत है, किन्तु स्नेहवश मैंने तुम्हें बता दिया है। वीर! तुम्हारे द्वारा इसका अनुष्ठान होनेपर यह व्रत तुम्हारे ही नामसे प्रसिद्ध होगा। इसे लोग 'भीमद्वादशी' कहेंगे। यह भीमद्वादशी सब पापोंको हरनेवाली और शुभकारिणी होगी। प्राचीन कल्पोंमें इस व्रतको 'कल्याणिनी' व्रत कहा जाता था। इसका स्मरण और कीर्तनमात्र करनेसे देवराज इन्द्रका सारा पाप नष्ट हो गया था। इसीके अनुष्ठानसे मेरी प्रिया सत्यभामाने मुझे पति-रूपमें प्राप्त किया। इस कल्याणमयी तिथिको सूर्यदेवने सहस्रों धाराओंसे स्नान किया था, जिससे उन्हें तेजोमय शरीरकी प्राप्ति हुई। इन्द्रादि देवताओं तथा करोड़ों दैत्योंने भी इस व्रतका अनुष्ठान किया है। यदि एक मुखमें दस हजार करोड़ (एक खरब) जिह्वाएँ हों, तो भी इसके फलका पूरा वर्णन नहीं किया जा सकता।

महादेवजी कहते हैं—ब्रह्मन्! कलियुगके पापोंको नष्ट करनेवाली एवं अनन्त फल प्रदान करनेवाली इस कल्याण-मयी तिथिकी महिमाका वर्णन यादवराजकुमार भगवान् श्रीकृष्ण अपने श्रीमुखसे करेंगे। जो इसके व्रतका अनुष्ठान करता है, उसके नरकमें पड़े हुए पितरोंका भी यह उद्धार करनेमें समर्थ है। जो अत्यन्त भक्तिके साथ इस कथाको सुनता तथा दूसरोंके उपकारके लिये पढ़ता है, वह भगवान् श्रीविष्णुका भक्त और इन्द्रका भी पूज्य होता है। पूर्व कल्पमें जो माघ मासकी द्वादशी परम पूजनीय कल्याणिनी तिथिके नामसे प्रसिद्ध थी, वही पाण्डुनन्दन भीमसेनके व्रत करनेपर अनन्त पुण्यदायिनी 'भीमद्वादशी'के नामसे प्रसिद्ध होगी।

आदित्य-शयन और रोहिणी-चन्द्र-शयन-व्रत, तडागकी प्रतिष्ठा, वृक्षारोपणकी विधि तथा सौभाग्य-शयन व्रतका वर्णन

भीष्मजीने पूछा—ब्रह्मन्! जो अभ्यास न होनेके कारण अथवा रोगवश उपवास करनेमें असमर्थ है किन्तु उसका फल चाहता है, उसके लिये कौन-सा व्रत उत्तम है—यह बताइये।

पुलस्त्यजीने कहा—राजन्! जो लोग उपवास करनेमें असमर्थ हैं, उनके लिये वही व्रत अभीष्ट है, जिसमें दिनभर उपवास करके रात्रिमें भोजनका विधान हो; मैं ऐसे महान् व्रतका परिचय देता हूँ, सुनो। उस व्रतका नाम है—आदित्य-शयन। उसमें विधिपूर्वक भगवान् शङ्करकी पूजा की जाती है। पुराणोंके ज्ञाता महर्षि जिन नक्षत्रोंके योगमें इस व्रतका उपदेश करते हैं, उन्हें बताता हूँ। जब सप्तमी तिथिको हस्त नक्षत्रके साथ रविवार हो अथवा सूर्यकी संक्रान्ति हो, वह तिथि समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाली होती है। उस दिन सूर्यके नामोंसे भगवती पार्वती और महादेवजीकी पूजा करनी चाहिये। सूर्यदेवकी प्रतिमा तथा शिवलिङ्गका भी भक्तिपूर्वक पूजन करना उचित है। हस्त नक्षत्रमें 'सूर्याय नमः'का उच्चारण करके सूर्यदेवके चरणोंकी, चित्रा नक्षत्रमें 'अर्काय नमः' कहकर उनके गुल्फों (घुट्ठियों)की, स्वाती नक्षत्रमें 'पुरुषोत्तमाय नमः'से पिंडलियोंकी, विशाखामें 'धात्रे नमः'से घुटनोंकी तथा अनुराधामें 'सहस्रभानवे नमः'से दोनों जाँघोंकी पूजा करनी चाहिये। ज्येष्ठा नक्षत्रमें 'अनङ्गाय नमः'से गुह्य प्रदेशकी, मूलमें 'इन्द्राय नमः' और 'भीमाय नमः'से कटिभागकी, पूर्वाषाढा और उत्तराषाढामें 'त्वष्ट्रे नमः' और 'सप्ततुरङ्गमाय नमः'से नाभिकी, श्रवणमें 'तीक्ष्णांशवे नमः'से उदरकी, धनिष्ठा

* प्रीयतामत्र देवेशः केशवः क्लेशनाशनः ॥
शिवस्य हृदये विष्णुर्विष्णोश्च हृदये शिवः । यथान्तरं न पश्यामि तथा मे स्वस्ति चायुषः ॥
(२३ । ५९-६०)

'विकर्तनाय नमः'से दोनों बगलोंकी और शतभिषा नक्षत्रमें 'ध्वान्तविनाशनाय नमः'से सूर्यके वक्षःस्थलकी पूजा करनी चाहिये। पूर्वा और उत्तरा भाद्रपदामें 'चण्डकराय नमः'से दोनों भुजाओंका, रेवतीमें 'साम्नामधीशाय नमः'से दोनों हाथोंका, अश्विनीमें 'सप्ताश्वधुरन्धराय नमः'से नखोंका और भरणीमें 'दिवाकराय नमः'से भगवान् सूर्यके कण्ठका पूजन करे। कृत्तिकामें ग्रीवाकी, रोहिणीमें ओठोंकी, मृगशिरामें जिह्वाकी तथा आर्द्रामें 'हरये नमः'से सूर्यदेवके दाँतोंकी अर्चना करे। पुनर्वसुमें 'सवित्रे नमः'से शङ्करजीकी नासिकाका, पुष्यमें 'अम्भोरुहवल्लभाय नमः'से ललाटका तथा 'वेदशरीरधारिणे नमः'से बालोंका, आश्लेषामें 'विबुधप्रियाय नमः'से मस्तकका, मघामें दोनों कानोंका, पूर्वा फाल्गुनीमें 'गोब्राह्मणनन्दनाय नमः'से शम्भुके सम्पूर्ण अङ्गोंका तथा उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्रमें 'विश्वेश्वराय नमः'से उनकी दोनों भौंहोंका पूजन करे। 'पाश, अङ्कुश, कमल, त्रिशूल, कपाल, सर्प, चन्द्रमा तथा धनुष धारण करनेवाले श्रीमहादेवजीको नमस्कार है।'* 'गयासुर, कामदेव, त्रिपुर और अन्धकासुर आदिके विनाशके मूल कारण भगवान् श्रीशिवको प्रणाम है।'† इत्यादि वाक्योंका उच्चारण करके प्रत्येक अङ्गकी पूजा करनेके पश्चात् 'विश्वेश्वराय नमः'से भगवान्‌के मस्तकका पूजन करना चाहिये। तदनन्तर अन्न भोजन करना उचित है। भोजनमें तेल और खारे नमकका सम्पर्क नहीं रहना चाहिये। मांस और उच्छिष्ट अन्नका तो कदापि सेवन न करे।

राजन्! इस प्रकार रात्रिमें शुद्ध भोजन करके पुनर्वसु नक्षत्रमें दान करना चाहिये। किसी बर्तनमें एक सेर अगहनीका चावल, गूलरकी लकड़ीका पात्र तथा घृत रखकर सुवर्णके साथ उसे ब्राह्मणको दान करे। सातवें दिनके पारणमें और दिनोंकी अपेक्षा एक जोड़ा वस्त्र अधिक दान करना चाहिये। चौदहवें दिनके पारणमें गुड़, खीर और घृत आदिके द्वारा ब्राह्मणको भक्तिपूर्वक भोजन कराये। तदनन्तर कर्णिकासहित सोनेका अष्टदल कमल बनवाये, जो आठ अङ्गुलका हो तथा जिसमें पद्मरागमणि (नीलम) की पत्तियाँ अङ्कित की गयी हों। फिर सुन्दर शय्या तैयार कराये, जिसपर सुन्दर बिछौने बिछाकर तकिया रखा गया हो और ऊपरसे चँदोवा तना हो। शय्याके ऊपर पंखा रखा गया हो। उसके आस पास खड़ाऊँ, जूता, छत्र, चँवर, आसन और दर्पण रखे गये हों। फल, वस्त्र, चन्दन तथा आभूषणोंसे वह शय्या सुशोभित होनी चाहिये। ऊपर बताये हुए सोनेके कमलको उस शय्यापर रख दे। इसके बाद मन्त्रोच्चारणपूर्वक दूध देनेवाली अत्यन्त सीधी कपिला गौका दान करे। वह गौ उत्तम गुणोंसे सम्पन्न, वस्त्राभूषणोंसे सुशोभित और बछड़े-सहित होनी चाहिये। उसके खुर चाँदीसे और सींग सोनेसे मँढ़े होने चाहिये तथा उसके साथ काँसीकी दोहनी होनी चाहिये। दिनके पूर्वभागमें ही दान करना उचित है। समयका उल्लङ्घन कदापि नहीं करना चाहिये। शय्यादानके पश्चात् इस प्रकार प्रार्थना करे—'सूर्यदेव! जिस प्रकार आपकी शय्या कान्ति, धृति, श्री और पुष्टिसे कभी सूनी नहीं होती, वैसे ही मेरी भी वृद्धि हो। वेदोंके विद्वान् आपके सिवा और किसीको निष्पाप नहीं जानते, इसलिये आप सम्पूर्ण दुःखोंसे भरे हुए इस संसार सागरसे मेरा उद्धार कीजिये।' इसके पश्चात् भगवान्‌की प्रदक्षिणा करके उन्हें प्रणाम करनेके अनन्तर विसर्जन करे। शय्या और गौ आदिको ब्राह्मणके घर पहुँचा दे।

भगवान् शङ्करके इस व्रतकी चर्चा दुराचारी और दम्भी पुरुषके सामने नहीं करनी चाहिये। जो गौ, ब्राह्मण, देवता, अतिथि और धार्मिक पुरुषोंकी विशेषरूपसे निन्दा करता है, उसके सामने भी इसको प्रकट न करे। भगवान्‌के भक्त और जितेन्द्रिय पुरुषके समक्ष ही यह आनन्ददायी एवं कल्याणमय गूढ़ रहस्य प्रकाशित करनेके योग्य है। वेदवेत्ता पुरुषोंका कहना है कि यह व्रत महापातकी मनुष्योंके भी पापोंका नाश कर देता है। जो पुरुष इस व्रतका अनुष्ठान करता है, उसका बन्धु, पुत्र, धन और स्त्रीसे कभी वियोग नहीं होता तथा वह देवताओंका आनन्द बढ़ानेवाला माना जाता है। इसी प्रकार जो नारी भक्तिपूर्वक इस व्रतका पालन करती है, उसे कभी रोग, दुःख और मोहका शिकार नहीं होना पड़ता। प्राचीन कालमें महर्षि वसिष्ठ, अर्जुन, कुबेर तथा इन्द्रने इस व्रतका आचरण किया था। इस व्रतके कीर्तनमात्रसे सारे पाप नष्ट हो जाते हैं, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। जो पुरुष इस आदित्यशयन नामक व्रतके माहात्म्य एवं विधिका पाठ या श्रवण करता है, वह इन्द्रका प्रियतम होता है तथा जो इस व्रतका अनुष्ठान करता है, वह नरकमें भी पड़े हुए समस्त पितरोंको स्वर्गलोकमें पहुँचा देता है।

भीष्मजीने कहा—मुने! अब आप चन्द्रमाके व्रतका वर्णन कीजिये।

---

* पाशाङ्कुशपद्मशूलकपालसर्पेन्दुधनुर्धराय नमः।

† गयासुरानङ्गपुरान्धकादिविनाशमूलाय नमः शिवाय।

पुलस्त्यजी बोले—राजन् ! तुमने बड़ी उत्तम बात पूछी है। अब मैं तुम्हें वह गोपनीय व्रत बतलाता हूँ, जो अक्षय स्वर्गकी प्राप्ति करानेवाला है तथा जिसे पुराणवेत्ता विद्वान् ही जानते हैं। इस लोकमें 'रोहिणी-चन्द्र-शयन' नामक व्रत बड़ा ही उत्तम है। इसमें चन्द्रमाके नामोंद्वारा भगवान् नारायणकी प्रतिमाका पूजन करना चाहिये। जब कभी सोमवारके दिन पूर्णिमा तिथि हो अथवा पूर्णिमाको रोहिणी नक्षत्र हो, उस दिन मनुष्य सवेरे पञ्चगव्य और सरसोंके दानोंसे युक्त जलसे स्नान करे तथा विद्वान् पुरुष 'आप्यायस्व०' इत्यादि मन्त्रको आठ सौ बार जपे। यदि शूद्र भी इस व्रतको करे तो अत्यन्त भक्तिपूर्वक 'सोमाय नमः', 'वरदाय नमः', 'विष्णवे नमः'—इन मन्त्रोंका जप करे और पाखण्डियोंसे—विधर्मियोंसे बातचीत न करे। जप करनेके पश्चात् घर आकर फल-फूल आदिके द्वारा भगवान् श्रीमधुसूदनकी पूजा करे। साथ ही चन्द्रमाके नामोंका उच्चारण करता रहे। 'सोमाय शान्ताय नमः' कहकर भगवान्‌के चरणोंका, 'अनन्तधाम्ने नमः'का उच्चारण करके उनके घुटनों और पिंडलियोंका, 'जलोदराय नमः'से दोनों जाँघोंका, 'कामसुखप्रदाय नमः'से चन्द्रस्वरूप भगवान्‌के कटिभागका, 'अमृतोदराय नमः'से उदरका, 'शशाङ्काय नमः'से नाभिका, 'चन्द्राय नमः'से मुखमण्डलका, 'द्विजानामधिपाय नमः'से दाँतोंका, 'चन्द्रमसे नमः'से मुँहका, 'कौमोदवनप्रियाय नमः'से ओठोंका, 'वनौषधीनामधिनाथाय नमः'से नासिकाका, 'आनन्दबीजाय नमः'से दोनों भौंहोंका, 'इन्दीवरव्यासकराय नमः'से भगवान् श्रीकृष्णके कमल-सदृश नेत्रोंका, 'समस्तासुरवन्दिताय दैत्यनिषूदनाय नमः'से दोनों कानोंका, 'उदधिप्रियाय नमः'से चन्द्रमाके ललाटका, 'सुषुम्नाधिपतये नमः'से केशोंका, 'शशाङ्काय नमः'से मस्तकका और 'विश्वेश्वराय नमः'से भगवान् मुरारिके किरीटका पूजन करे। फिर 'रोहिणीनामधेयलक्ष्मीसौभाग्यसौख्यामृतसागराय पद्मश्रिये नमः' (रोहिणी नाम धारण करनेवाली लक्ष्मीके सौभाग्य और सुखरूप अमृतके समुद्र तथा कमलकी-सी कान्तिवाले भगवान्‌को नमस्कार है)—इस मन्त्रका उच्चारण करके भगवान्‌के सामने मस्तक झुकाये। तत्पश्चात् सुगन्धित पुष्प, नैवेद्य और धूप आदिके द्वारा इन्दुपत्नी रोहिणीदेवीका भी पूजन करे।

इसके बाद रात्रिके समय भूमिपर शयन करे और सवेरे उठकर स्नानके पश्चात् 'पापविनाशनाय नमः' का उच्चारण करके ब्राह्मणको घृत और सुवर्णसहित जलसे भरा कलश दान करे। फिर दिनभर उपवास करनेके पश्चात् गोमूत्र पीकर मांसवर्जित एवं खारे नमकसे रहित अन्नके इकतीस ग्रास घीके साथ भोजन करे। तदनन्तर दो घड़ीतक इतिहास, पुराण आदिका श्रवण करे। राजन् ! चन्द्रमाको कदम्ब, नील कमल, केवड़ा, जाती पुष्प, कमल, शतपत्रिका, बिना कुम्हलाये कुब्जके फूल, सिन्दुवार, चमेली, अन्यान्य श्वेत पुष्प, करवीर तथा चम्पा—ये ही फूल चढ़ाने चाहिये। उपर्युक्त फूलोंकी जातियोंमेंसे एक-एकको श्रावण आदि महीनोंमें क्रमशः अर्पण करे। जिस महीनेमें व्रत शुरू किया जाय, उस समय जो भी पुष्प सुलभ हों, उन्हींके द्वारा श्रीहरिका पूजन करना चाहिये।

इस प्रकार एक वर्षतक इस व्रतका विधिवत् अनुष्ठान करके समाप्तिके समय शयनोपयोगी सामग्रियोंके साथ शय्या दान करे। रोहिणी और चन्द्रमाकी सुवर्णमयी मूर्ति बनवाये। उनमें चन्द्रमा छः अङ्गुलके और रोहिणी चार अङ्गुलकी होनी चाहिये। आठ मोतियोंसे युक्त श्वेत नेत्रोंवाली उन प्रतिमाओंको अक्षतसे भरे हुए काँसीके पात्रमें रखकर दुग्धपूर्ण कलशके ऊपर स्थापित कर दे। फिर वस्त्र और दोहनीके साथ दूध देनेवाली गौ, शङ्ख तथा पात्र प्रस्तुत करे। उत्तम गुणोंसे युक्त ब्राह्मण-दम्पतीको बुलाकर उन्हें आभूषणोंसे अलङ्कृत करे तथा मनमें यह भावना रखे कि ब्राह्मण-दम्पतीके रूपमें ये रोहिणीसहित चन्द्रमा ही विराजमान हैं। तत्पश्चात् उनकी इस प्रकार प्रार्थना करे—'चन्द्रदेव ! आप ही सबको परम आनन्द और मुक्ति प्रदान करनेवाले हैं। आपकी कृपासे मुझे भोग और मोक्ष दोनों प्राप्त हों।' [इस प्रकार विनय करके शय्या, प्रतिमा तथा धेनु आदि सब कुछ ब्राह्मणको दान कर दे।]

राजन् ! जो संसारसे भयभीत होकर मोक्ष पानेकी इच्छा रखता है, उसके लिये यही एक व्रत सर्वोत्तम है। यह रूप और आरोग्य प्रदान करनेवाला है। यही पितरोंको सर्वदा प्रिय है। जो इसका अनुष्ठान करता है, वह त्रिभुवनका अधिपति होकर इक्कीस सौ कल्पोंतक चन्द्रलोकमें निवास करता है। उसके बाद विद्युत् होकर मुक्त हो जाता है। चन्द्रमाके नाम-कीर्तनद्वारा भगवान् श्रीमधुसूदनकी पूजाका यह प्रसङ्ग जो पढ़ता अथवा सुनता है, उसे भगवान् उत्तम बुद्धि प्रदान करते हैं तथा वह भगवान् श्रीविष्णुके धाममें जाकर देवसमूहके द्वारा पूजित होता है।

भीष्मजीने कहा—ब्रह्मन् ! अब मुझे तालाब, बगीचा,

कुआँ, बावली, पुष्करिणी तथा देवमन्दिरकी प्रतिष्ठा आदिका विधान बतलाइये।

पुलस्त्यजी बोले—महाबाहो ! सुनो, तालाब आदिकी प्रतिष्ठाका जो विधान है, उसका इतिहास-पुराणोंमें इस प्रकार वर्णन है। उत्तरायण आनेपर शुभ शुक्लपक्षमें ब्राह्मणद्वारा कोई पवित्र दिन निश्चित करा ले। उस दिन ब्राह्मणोंका वरण करे और तालाबके समीप, जहाँ कोई अपवित्र वस्तु न हो, चार हाथ लंबी और उतनी ही चौड़ी चौकोर वेदी बनाये। वेदी सब ओर समतल हो और चारों दिशाओंमें उसका मुख हो। फिर सोलह हाथका मण्डप तैयार कराये, जिसके चारों ओर एक-एक दरवाजा हो। वेदीके सब ओर कुण्डोंका निर्माण कराये। कुण्डोंकी संख्या नौ, सात या पाँच होनी चाहिये। कुण्डोंकी लंबाई-चौड़ाई एक-एक रत्निकी हो तथा वे सभी तीन-तीन मेखलाओंसे सुशोभित हों। उनमें यथास्थान योनि और मुख भी बने होने चाहिये। योनिकी लंबाई एक बित्ता और चौड़ाई छः-सात अंगुलकी हो। मेखलाएँ तीन पर्व ऊँची और एक हाथ लंबी होनी चाहिये। वे चारों ओरसे एक समान—एक रंगकी बनी हों। सबके समीप ध्वजा और पताकाएँ लगायी जायँ। मण्डपके चारों ओर क्रमशः पीपल, गूलर, पाकर और बरगदकी शाखाओंके दरवाजे बनाये जायँ। वहाँ आठ होता, आठ द्वारपाल तथा आठ जप करनेवाले ब्राह्मणोंका वरण किया जाय। वे सभी ब्राह्मण वेदोंके पारगामी विद्वान् होने चाहिये। सब प्रकारके शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न, मन्त्रोंके ज्ञाता, जितेन्द्रिय, कुलीन, शीलवान् एवं श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको ही इस कार्यमें नियुक्त करना चाहिये। प्रत्येक कुण्डके पास कलश, यज्ञ-सामग्री, निर्मल आसन और दिव्य एवं विस्तृत ताम्रपात्र प्रस्तुत रहें।

तदनन्तर प्रत्येक देवताके लिये नाना प्रकारकी बलि (दही, अक्षत आदि उत्तम भक्ष्य पदार्थ) उपस्थित करे। विद्वान् आचार्य मन्त्र पढ़कर उन सामग्रियोंके द्वारा पृथ्वीपर सब देवताओंके लिये बलि समर्पण करे। अरत्निके बराबर एक यूप (यज्ञस्तम्भ) स्थापित किया जाय, जो किसी दूधवाले वृक्षकी शाखाका बना हुआ हो। ऐश्वर्य चाहनेवाले पुरुषको यजमानके शरीरके बराबर ऊँचा यूप स्थापित करना चाहिये। उसके बाद पचीस ऋत्विजोंका वरण करके उन्हें सोनेके आभूषणोंसे विभूषित करे। सोनेके बने कुण्डल, बाजूबंद, कड़े, अँगूठी, पवित्री तथा नाना प्रकारके वस्त्र—ये सभी आभूषण प्रत्येक ऋत्विजको बराबर-बराबर दे और आचार्यको दूना अर्पण करे। इसके सिवा उन्हें शय्या तथा अपनेको प्रिय लगनेवाली अन्यान्य वस्तुएँ भी प्रदान करे। सोनेका बना हुआ कछुआ और मगर, चाँदीके मत्स्य और दुन्दुभ, ताँबेके केंकड़ा और मेढक तथा लोहेके दो सूँस बनवाकर सबको सोनेके पात्रमें रखे। इसके बाद यजमान वेदज्ञ विद्वानोंकी बतायी हुई विधिके अनुसार सर्वौषधिमिश्रित जलसे स्नान करके श्वेत वस्त्र और श्वेत माला धारण करे। फिर श्वेत चन्दन लगाकर पत्नी और पुत्र-पौत्रोंके साथ पश्चिम द्वारसे यज्ञ-मण्डपमें प्रवेश करे। उस समय माङ्गलिक शब्द होने चाहिये और भेरी आदि बाजे बजने चाहिये।

तदनन्तर विद्वान् पुरुष पाँच रंगके चूर्णोंसे मण्डल बनाये और उसमें सोलह अरोंसे युक्त चक्र चिह्नित करे। उसके गर्भमें कमलका आकार बनाये। चक्र देखनेमें सुन्दर और चौकोर हो। चारों ओरसे गोल होनेके साथ ही मध्यभागमें अधिक शोभायमान जान पड़ता हो। उस चक्रको वेदीके ऊपर स्थापित करके उसके चारों ओर प्रत्येक दिशामें मन्त्रपाठपूर्वक ग्रहों और लोकपालोंकी स्थापना करे। फिर मध्यभागमें वरुण-सम्बन्धी मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए एक कलश स्थापित करे और उसीके ऊपर ब्रह्मा, शिव, विष्णु, गणेश, लक्ष्मी तथा पार्वतीकी भी स्थापना करे। इसके पश्चात् सम्पूर्ण लोकोंकी शान्तिके लिये भूतसमुदायको स्थापित करे। इस प्रकार पुष्प, चन्दन और फलोंके द्वारा सबकी स्थापना करके कलशोंके भीतर पञ्चरत्न छोड़कर उन्हें वस्त्रोंसे आवेष्टित कर दे। फिर पुष्प और चन्दनके द्वारा उन्हें अलङ्कृत करके द्वार-रक्षाके लिये नियुक्त ब्राह्मणोंसे वेदपाठ करनेके लिये कहे और स्वयं आचार्यका पूजन करे। पूर्व दिशाकी ओर दो ऋग्वेदी, दक्षिणद्वारपर दो यजुर्वेदी, पश्चिमद्वारपर दो सामवेदी तथा उत्तरद्वारपर दो अथर्ववेदी विद्वानोंको रखना चाहिये। यजमान मण्डलके दक्षिण भागमें उत्तराभिमुख होकर बैठे और द्वार-रक्षक विद्वानोंसे कहे—'आपलोग वेदपाठ करें।' फिर यज्ञ करानेवाले आचार्यसे कहे—'आप यज्ञ प्रारम्भ करायें।' तत्पश्चात् जप करनेवाले ब्राह्मणोंसे कहे—'आपलोग उत्तम मन्त्रका जप करते रहें।' इस प्रकार सबको प्रेरित करके मन्त्रज्ञ पुरुष अग्निको प्रज्वलित करे तथा मन्त्र-पाठपूर्वक घी और समिधाओंकी आहुति दे। ऋत्विजोंको

१ कोहनीसे लेकर मुट्ठी बँधे हुए हाथतककी लंबाईको 'रत्नि' या 'अरत्नि' कहते हैं।

२. अँगुलियोंके पोरको 'पर्व' कहते हैं।

भी वरुण-सम्बन्धी मन्त्रोंद्वारा सब ओरसे हवन करना चाहिये। ग्रहोंके निमित्त विधिवत् आहुति देकर उस यज्ञ-कर्ममें इन्द्र, शिव, मरुद्गण और लोकपालोंके निमित्त भी विधिपूर्वक होम करे।

पूर्व द्वारपर नियुक्त ऋग्वेदी ब्राह्मण शान्ति, रुद्र, पवमान, सुमङ्गल तथा पुरुष-सम्बन्धी सूक्तोंका पृथक्-पृथक् जप करे। दक्षिण द्वारपर स्थित यजुर्वेदी विद्वान् इन्द्र, रुद्र, सोम, कूष्माण्ड, अग्नि तथा सूर्य-सम्बन्धी सूक्तोंका जप करे। पश्चिम द्वारपर रहनेवाले सामवेदी ब्राह्मण वैराजसाम, पुरुष-सूक्त, सुपर्णसूक्त, रुद्रसंहिता, शिशुसूक्त, पञ्चनिधनसूक्त, गायत्रसाम, ज्येष्ठसाम, वामदेव्यसाम, बृहत्साम, रौरवसाम, रथन्तरसाम, गोव्रत, विकीर्ण, रक्षोघ्न और यम-सम्बन्धी सामोंका गान करें। उत्तर द्वारके अथर्ववेदी विद्वान् मन-ही-मन भगवान् वरुणदेवकी शरण ले शान्ति और पुष्टि-सम्बन्धी मन्त्रोंका जप करें। इस प्रकार पहले दिन मन्त्रोंद्वारा देवताओंकी स्थापना करके हाथी और घोड़ेके पैरोंके नीचेकी, जिसपर रथ चलता हो—ऐसी सड़ककी, बाँबीकी, दो नदियोंके संगमकी, गोशालाकी तथा साक्षात् गौओंके पैरके नीचेकी मिट्टी लेकर कलशोंमें छोड़ दे। उसके बाद सर्वौषधि, गोरोचन, सरसोंके दाने, चन्दन और गूगल भी छोड़े। फिर पञ्चगव्य (दधि, दूध, घी, गोबर और गोमूत्र) मिलाकर उन कलशोंके जलसे यजमानका विधिपूर्वक अभिषेक करे। अभिषेकके समय विद्वान् पुरुष वेदमन्त्रोंका पाठ करते रहें।

इस प्रकार शास्त्रविहित कर्मके द्वारा रात्रि व्यतीत करके निर्मल प्रभातका उदय होनेपर हवनके अन्तमें ब्राह्मणोंको सौ, पचास, छत्तीस अथवा पचीस गौ दान करे। तदनन्तर शुद्ध एवं सुन्दर लग्न आनेपर वेदपाठ, संगीत तथा नाना प्रकारके बाजोंकी मनोहर ध्वनिके साथ एक गौको सुवर्णसे अलङ्कृत करके तालाबके जलमें उतारे और उसे सामगान करनेवाले ब्राह्मणको दान कर दे। तत्पश्चात् पञ्चरत्नोंसे युक्त सोनेका पात्र लेकर उसमें पूर्वोक्त मगर और मछली आदिको रखे और उसे किसी बड़ी नदीसे मँगाये हुए जलसे भर दे। फिर उस पात्रको दही-अक्षतसे विभूषित करके वेद और वेदाङ्गोंके विद्वान् चार ब्राह्मण हाथसे पकड़ें और यजमानकी प्रेरणासे उसे उत्तराभिमुख उलटकर तालाबके जलमें डाल दें। इस प्रकार 'आपो मयो०' इत्यादि मन्त्रके द्वारा उसे जलमें डालकर पुनः सब लोग यज्ञ-मण्डपमें आ जायँ और यजमान सदस्योंकी पूजा करके सब ओर देवताओंके उद्देश्यसे बलि अर्पण करे। इसके बाद लगातार चार दिनोंतक हवन होना चाहिये। चौथे दिन चतुर्थी-कर्म करना उचित है। उसमें भी यथाशक्ति दक्षिणा देनी चाहिये। चतुर्थी-कर्म पूर्ण करके यज्ञ-सम्बन्धी जितने पात्र और सामग्री हों, उन्हें ऋत्विजोंमें बराबर बाँट देना चाहिये। फिर मण्डपको भी विभाजित करे। सुवर्णपात्र और शय्या किसी ब्राह्मणको दान कर दे। इसके बाद अपनी शक्तिके अनुसार हजार, एक सौ आठ, पचास अथवा बीस ब्राह्मणोंको भोजन कराये। पुराणोंमें तालाबकी प्रतिष्ठाके लिये यही विधि बतलायी गयी है। कुआँ, बावली और पुष्करिणी-के लिये भी यही विधि है। देवताओंकी प्रतिष्ठामें भी ऐसा ही विधान समझना चाहिये। मन्दिर और बगीचे आदिके प्रतिष्ठा-कार्यमें केवल मन्त्रोंका ही भेद है। विधि-विधान प्रायः एक-से ही हैं। उपर्युक्त विधिका यदि पूर्णतया पालन करनेकी शक्ति न हो तो आधे व्ययसे भी यह कार्य सम्पन्न हो सकता है। यह बात ब्रह्माजीने कही है।

जिस पोखरेमें केवल वर्षाकालमें ही जल रहता है, वह सौ अग्निष्टोम यज्ञोंके बराबर फल देनेवाला होता है। जिसमें शरत्कालतक जल रहता हो, उसका भी यही फल है। हेमन्त और शिशिरकालतक रहनेवाला जल क्रमशः वाजपेय और अतिरात्र नामक यज्ञका फल देता है। वसन्तकालतक टिकनेवाले जलको अश्वमेध यज्ञके समान फलदायक बतलाया गया है। तथा जो जल ग्रीष्मकालतक मौजूद रहता है, वह राजसूय यज्ञसे भी अधिक फल देनेवाला होता है।

महाराज! जो मनुष्य पृथ्वीपर इन विशेष धर्मोंका पालन करता है—विधिपूर्वक कुआँ, बावली, पोखरा आदि खुदवाता है तथा मन्दिर, बगीचा आदि बनवाता है, वह शुद्धचित्त होकर ब्रह्माजीके लोकमें जाता है और वहाँ अनेकों कल्पोंतक दिव्य आनन्दका अनुभव करता है। दो परार्द्ध (ब्रह्माजीकी आयु) तक वहाँका सुख भोगनेके पश्चात् ब्रह्माजीके साथ ही योगबलसे श्रीविष्णुके परम पदको प्राप्त होता है।

भीष्मजीने कहा—ब्रह्मन्! अब आप मुझे विस्तारके साथ वृक्ष लगानेकी यथार्थ विधि बतलाइये। विद्वानोंको किस विधिसे वृक्ष लगाने चाहिये?

पुलस्त्यजी बोले—राजन्! बगीचेमें वृक्षोंके लगानेकी विधि मैं तुम्हें बतलाता हूँ। तालाबकी प्रतिष्ठाके विषयमें जो विधान बतलाया गया है, उसीके समान सारी विधि पूर्ण करके

वृक्षके पौधोंको सर्वौषधिमिश्रित जलसे सींचे। फिर उनके ऊपर दही और अक्षत छोड़े। उसके बाद उन्हें पुष्प मालाओंसे अलङ्कृत करके वस्त्रमें लपेट दे। वहाँ गूगलका धूप देना श्रेष्ठ माना गया है। वृक्षोंको पृथक्-पृथक् ताम्रपात्रमें रखकर उन्हें सप्तधान्यसे आवृत करे तथा उनके ऊपर वस्त्र और चन्दन चढ़ाये। फिर प्रत्येक वृक्षके पास कलश स्थापन करके उन कलशोंकी पूजा करे। और रातमें द्विजातियोंद्वारा इन्द्रादि लोकपालों तथा वनस्पतिका विधिवत् अधिवास कराये। तदनन्तर दूध देनेवाली एक गौको लाकर उसे श्वेत वस्त्र ओढ़ाये। उसके मस्तकपर सोनेकी कलगी लगाये, सींगोंको सोनेसे मँढ़ा दे। उसकी दुहनेके लिये काँसेकी दोहनी प्रस्तुत करे। इस प्रकार अत्यन्त शोभासम्पन्न उस गौको उत्तराभिमुख खड़ी करके वृक्षोंके बीचसे छोड़े। तत्पश्चात् श्रेष्ठ ब्राह्मण बाजों और मङ्गलगीतोंकी ध्वनिके साथ अभिषेकके मन्त्र—तीनों वेदोंकी वरुणसम्बन्धिनी ऋचाएँ पढ़ते हुए उक्त कलशोंके जलसे यजमानका अभिषेक करें। अभिषेकके पश्चात् नहाकर यज्ञकर्ता पुरुष श्वेत वस्त्र धारण करे और अपनी सामर्थ्यके अनुसार गौ, सोनेकी जंजीर, कड़े, अँगूठी, पवित्री, वस्त्र, शय्या, शय्योपयोगी सामान तथा चरणपादुका देकर एकाग्र चित्तवाले सम्पूर्ण ऋत्विजोंका पूजन करे। इसके बाद चार दिनोंतक दूधसे अभिषेक तथा घी, जौ और काले तिलोंसे होम करे। होममें पलाश (ढाक)की लकड़ी उत्तम मानी गयी है। वृक्षारोपणके पश्चात् चौथे दिन विशेष उत्सव करे। उसमें अपनी शक्तिके अनुसार पुनः दक्षिणा दे। जो-जो वस्तु अपनेको अधिक प्रिय हो, ईर्ष्या छोड़कर उसका दान करे। आचार्यको दूनी दक्षिणा दे तथा प्रणाम करके यज्ञकी समाप्ति करे।

जो विद्वान् उपर्युक्त विधिसे वृक्षारोपणका उत्सव करता है, उसकी सारी कामनाएँ पूर्ण होती हैं तथा वह अक्षय फलका भागी होता है। राजेन्द्र! जो इस प्रकार वृक्षकी प्रतिष्ठा करता है, वह जबतक तीस हजार इन्द्र समाप्त हो जाते हैं, तबतक स्वर्गलोकमें निवास करता है। उसके शरीरमें जितने रोम होते हैं, अपने पहले और पीछेकी उतनी ही पीढ़ियोंका वह उद्धार कर देता है तथा उसे पुनरावृत्तिसे रहित परम सिद्धि प्राप्त होती है। जो मनुष्य प्रतिदिन इस प्रसङ्गको सुनता या सुनाता है, वह भी देवताओंद्वारा सम्मानित और ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित होता है। वृक्ष पुत्रहीन पुरुषको पुत्रवान् होनेका फल देते हैं। इतना ही नहीं, वे अधिदेवतारूपसे तीर्थोंमें जाकर वृक्ष लगानेवालोंको पिण्ड भी देते हैं। अतः भीष्म! तुम यत्नपूर्वक पीपलके वृक्ष लगाओ। वह अकेला ही तुम्हें एक हजार पुत्रोंका फल देगा। पीपलका पेड़ लगानेसे मनुष्य धनी होता है। अशोक शोकका नाश करनेवाला है। पाकर यज्ञका फल देनेवाला बताया गया है। नीमका वृक्ष आयु प्रदान करनेवाला माना गया है। जामुन कन्या देनेवाला कहा गया है। अनारका वृक्ष पत्नी प्रदान करता है। पीपल रोगका नाशक और पलाश ब्रह्मतेज प्रदान करनेवाला है। जो मनुष्य बहेड़ेका वृक्ष लगाता है, वह प्रेत होता है। अङ्कोल लगानेसे वंशकी वृद्धि होती है। खैरका वृक्ष लगानेसे आरोग्यकी प्राप्ति होती है। नीम लगानेवालोंपर भगवान् सूर्य प्रसन्न होते हैं। बेलके वृक्षमें भगवान् शङ्करका और गुलाबके पेड़में देवी पार्वतीका निवास है। अशोक वृक्षमें अप्सराएँ और कुन्द (मोगरा)के पेड़में श्रेष्ठ गन्धर्व निवास करते हैं। बेतका वृक्ष लुटेरोंको भय प्रदान करनेवाला है। चन्दन और कटहलके वृक्ष क्रमशः पुण्य और लक्ष्मी देनेवाले हैं। चम्पाका वृक्ष सौभाग्य प्रदान करता है। ताड़का वृक्ष सन्तानका नाश करनेवाला है। मौलसिरीसे कुलकी वृद्धि होती है। नारियल लगानेवाला अनेक स्त्रियोंका पति होता है। दाखका पेड़ सर्वाङ्गसुन्दरी स्त्री प्रदान करनेवाला है। केवड़ा शत्रुका नाश करनेवाला है। इसी प्रकार अन्यान्य वृक्ष भी जिनका यहाँ नाम नहीं लिया गया है, यथायोग्य फल प्रदान करते हैं। जो लोग वृक्ष लगाते हैं, उन्हें [परलोकमें] प्रतिष्ठा प्राप्त होती है।

पुलस्त्यजी कहते हैं—राजन्! इसी प्रकार एक दूसरा व्रत बतलाता हूँ, जो समस्त मनोवाञ्छित फलोंको देनेवाला है। उसका नाम है—सौभाग्यशयन। इसे पुराणोंके विद्वान् ही जानते हैं। पूर्वकालमें जब भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक तथा महर्लोक आदि सम्पूर्ण लोक दग्ध हो गये, तब समस्त प्राणियोंका सौभाग्य एकत्रित होकर वैकुण्ठमें जा भगवान् श्रीविष्णुके वक्षःस्थलमें स्थित हो गया। तदनन्तर दीर्घकालके पश्चात् जब पुनः सृष्टि-रचनाका समय आया, तब प्रकृति और पुरुषसे युक्त सम्पूर्ण लोकोंके अहङ्कारसे आवृत हो जानेपर श्रीब्रह्माजी तथा भगवान् श्रीविष्णुमें स्पर्धा जाग्रत् हुई। उस समय एक पीले रंगकी भयङ्कर अग्निज्वाला प्रकट हुई। उससे भगवान्का वक्षःस्थल तप उठा, जिससे वह सौभाग्यपुञ्ज वहाँसे गलित हो गया। श्रीविष्णुके वक्षः

स्थलका वह सौभाग्य अभी रसरूप होकर धरतीपर गिरने नहीं पाया था कि ब्रह्माजीके बुद्धिमान् पुत्र दक्षने उसे आकाशमें ही रोककर पी लिया। दक्षके पीते ही वह अद्भुत रूप और लावण्य प्रदान करनेवाला सिद्ध हुआ। प्रजापति दक्षका बल और तेज बहुत बढ़ गया। उनके पीनेसे बचा हुआ जो अंश पृथ्वीपर गिर पड़ा, वह आठ भागोंमें बँट गया। उनमेंसे सात भागोंसे सात सौभाग्यदायिनी ओषधियाँ उत्पन्न हुईं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—ईख, तरुराज, निष्पाव, राजधान्य (शालि या अगहनी), गोक्षीर (क्षीरजीरक), कुसुम्भ और कुसुम। आठवाँ नमक है। इन आठोंकी सौभाग्याष्टक संज्ञा कहते हैं।

योग और ज्ञानके तत्त्वको जाननेवाले ब्रह्मपुत्र दक्षने पूर्वकालमें जिस सौभाग्य-रसका पान किया था, उसके अंशसे उन्हें सती नामकी एक कन्या उत्पन्न हुई। नील कमलके समान मनोहर शरीरवाली वह कन्या लोकमें ललिताके नामसे भी प्रसिद्ध है। पिनाकधारी भगवान् शङ्करने उस त्रिभुवनसुन्दरी देवीके साथ विवाह किया। सती तीनों लोकोंकी सौभाग्यरूपा हैं। वे भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाली हैं। उनकी आराधना करके नर या नारी क्या नहीं प्राप्त कर सकती।

भीष्मजीने पूछा—मुने! जगद्धात्री सतीकी आराधना कैसे की जाती है? जगत्की शान्तिके लिये जो विधान हो, वह मुझे बतानेकी कृपा कीजिये।

पुलस्त्यजी बोले—चैत्र मासके शुक्ल पक्षकी तृतीयाको दिनके पूर्व भागमें मनुष्य तिलमिश्रित जलसे स्नान करे। उस दिन परम सुन्दरी भगवती सतीका विश्वात्मा भगवान् शङ्करके साथ वैवाहिक मन्त्रोंद्वारा विवाह हुआ था; अतः तृतीयाको सती देवीके साथ ही भगवान् शङ्करका भी पूजन करे। पञ्चगव्य तथा चन्दनमिश्रित जलके द्वारा गौरी और भगवान् चन्द्रशेखरकी प्रतिमाको स्नान कराकर धूप, दीप, नैवेद्य तथा नाना प्रकारके फलोंद्वारा उन दोनोंकी पूजा करनी चाहिये। 'पार्वतीदेव्यै नमः', 'शिवाय नमः' इन मन्त्रोंसे क्रमशः पार्वती और शिवके चरणोंका; 'जयायै नमः', 'शिवाय नमः' से दोनोंकी घुट्टियोंका; 'त्र्यम्बकाय नमः', 'भवान्यै नमः' से पिंडलियोंका; 'भद्रेश्वराय नमः', 'विजयायै नमः' से घुटनोंका; 'हरिकेशाय नमः', 'वरदायै नमः' से जाँघोंका; 'ईशाय शङ्कराय नमः', 'रत्यै नमः' से दोनोंके कटिभागका; 'कोटिन्यै नमः', 'शूलिने नमः' से कुक्षिभागका; 'शूलपाणये नमः', 'मङ्गलायै नमः' से उदरका; 'सर्वात्मने नमः', 'ईशान्यै नमः' से दोनों स्तनोंका; 'चिदात्मने नमः', 'रुद्राण्यै नमः' से कण्ठका; 'त्रिपुरघ्नाय नमः', 'अनन्तायै नमः' से दोनों हाथोंका; 'त्रिलोचनाय नमः', 'कालानलप्रियायै नमः' से बाँहोंका; 'सौभाग्यभवनाय नमः' से आभूषणोंका; 'स्वधायै नमः', 'ईश्वराय नमः' से दोनोंके मुखमण्डलका; 'अशोकवनवासिन्यै नमः'—इस मन्त्रसे ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले ओठोंका; 'स्थाणवे नमः', 'चन्द्रमुखप्रियायै नमः' से मुँहका; 'अर्द्धनारीश्वराय नमः', 'असिताङ्ग्यै नमः' से नासिकाका; 'उग्राय नमः', 'ललितायै नमः' से दोनों भौंहोंका; 'शर्वाय नमः', 'वासुदेव्यै नमः' से केशोंका; 'श्रीकण्ठनाथाय नमः' से केवल शिवके बालोंका; तथा 'भीमोग्ररूपिण्यै नमः', 'सर्वात्मने नमः' से दोनोंके मस्तकोंका पूजन करे। इस प्रकार शिव और पार्वतीकी विधिवत् पूजा करके उनके आगे सौभाग्याष्टक रखे। निष्पाव, कुसुम्भ, क्षीरजीरक, तरुराज, इक्षु, लवण, कुसुम तथा राजधान्य—इन आठ वस्तुओंको देनेसे सौभाग्यकी प्राप्ति होती है; इसलिये इनकी 'सौभाग्याष्टक' संज्ञा है। इस प्रकार शिव-पार्वतीके आगे सब सामग्री निवेदन करके चैतमें सिंघाड़ा खाकर रातको भूमिपर शयन करे। फिर सबेरे उठकर स्नान और जप करके पवित्र हो माला, वस्त्र और आभूषणोंके द्वारा ब्राह्मण-दम्पतीका पूजन करे। इसके बाद सौभाग्याष्टक-सहित शिव और पार्वतीकी सुवर्णमयी प्रतिमाओंको ललिता देवीकी प्रसन्नताके लिये ब्राह्मणको निवेदन करे। दानके समय इस प्रकार कहे—'ललिता, विजया, भद्रा, भवानी, कुमुदा, शिवा, वासुदेवा, गौरी, मङ्गला, कमला, सती और उमा—ये प्रसन्न हों।'

बारह महीनोंकी प्रत्येक द्वादशीको भगवान् श्रीविष्णुकी तथा उनके साथ लक्ष्मीजीकी भी पूजा करे। इसी प्रकार परलोकमें उत्तम गति चाहनेवाले पुरुषको प्रत्येक मासकी पूर्णिमाको सावित्रीसहित ब्रह्माजीकी विधिवत् आराधना करनी चाहिये। तथा ऐश्वर्यकी कामनावाले मनुष्यको सौभाग्याष्टकका दान भी करना चाहिये। इस प्रकार एक वर्षतक इस व्रतका विधिपूर्वक अनुष्ठान करके पुरुष, स्त्री या कुमारी भक्तिके साथ रात्रिमें शिवजीकी पूजा करे। व्रतकी समाप्तिके समय सम्पूर्ण सामग्रियोंसे युक्त शय्या,

शिव-पार्वतीकी सुवर्णमयी प्रतिमा, बैल और गौका दान करे। कृपणता छोड़कर दृढ निश्चयके साथ भगवान्‌का पूजन करे। जो स्त्री इस प्रकार उत्तम सौभाग्यशयन नामक व्रतका अनुष्ठान करती है, उसकी कामनाएँ पूर्ण होती हैं। अथवा [यदि वह निष्काम भावसे इस व्रतको करती है तो] उसे नित्य पदकी प्राप्ति होती है। इस व्रतका आचरण करनेवाले पुरुषको एक फलका परित्याग कर देना चाहिये। प्रतिमास इसका आचरण करनेवाला पुरुष यश और कीर्ति प्राप्त करता है। राजन्! सौभाग्यशयनका दान करनेवाला पुरुष कभी सौभाग्य, आरोग्य, सुन्दर रूप, वस्त्र, अलङ्कार और आभूषणोंसे वञ्चित नहीं होता। जो बारह, आठ या सात वर्षोंतक सौभाग्यशयन व्रतका अनुष्ठान करता है, वह ब्रह्मलोकनिवासी पुरुषोंद्वारा पूजित होकर दस हजार कल्पोंतक वहाँ निवास करता है। इसके बाद वह विष्णुलोक तथा शिवलोकमें भी जाता है। जो नारी या कुमारी इस व्रतका पालन करती है, वह भी ललितादेवीके अनुग्रहसे लालित होकर पूर्वोक्त फलको प्राप्त करती है। जो इस व्रतकी कथाका श्रवण करता है अथवा दूसरोंको इसे करनेकी सलाह देता है, वह भी विद्याधर होकर चिरकालतक स्वर्गलोकमें निवास करता है। पूर्वकालमें इस अद्भुत व्रतका अनुष्ठान कामदेवने, राजा शतधन्वाने, वरुणदेवने, भगवान सूर्यने तथा धनके स्वामी कुबेरने भी किया था।

तीर्थमहिमाके प्रसङ्गमें वामन-अवतारकी कथा, भगवान्‌का बाष्कलि दैत्यसे त्रिलोकीके राज्यका अपहरण

भीष्मजीने कहा—ब्रह्मन्! अब मैं तीर्थोंका अद्भुत माहात्म्य सुनना चाहता हूँ, जिसे सुनकर मनुष्य संसार बन्धनसे मुक्त हो जाता है। आप विस्तारके साथ उसका वर्णन करें।

पुलस्त्यजी बोले—राजन्! ऐसे अनेकों पावन तीर्थ हैं, जिनका नाम लेनेसे भी बड़े बड़े पातकोंका नाश हो जाता है। तीर्थोंका दर्शन करना, उनमें स्नान करना, वहाँ जाकर बार बार डुबकी लगाना तथा समस्त तीर्थोंका स्मरण करना—ये मनोवाञ्छित फलको देनेवाले हैं। भीष्म! पर्वत, नदियाँ, क्षेत्र, आश्रम और मानस आदि सरोवर—सभी तीर्थ कहे गये हैं, जिनमें तीर्थ यात्राके उद्देश्यसे जानेवाले पुरुषको पग पगपर अश्वमेध आदि यज्ञोंका फल होता है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

भीष्मजीने पूछा—द्विजश्रेष्ठ! मैं आपसे भगवान् श्रीविष्णुका चरित्र सुनना चाहता हूँ। सर्वसमर्थ एवं सर्वव्यापक श्रीविष्णुने यज्ञ पर्वतपर जा वहाँ अपने चरण रखकर किस दानवका दमन किया था? महामुने! ये सारी बातें मुझे बताइये।

पुलस्त्यजी बोले—वत्स! तुमने बड़ी उत्तम बात पूछी है, एकाग्रचित्त होकर सुनो। प्राचीन सत्ययुगकी बात है—बलिष्ठ दानवोंने समूचे स्वर्गपर अधिकार जमा लिया था। इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवताओंको जीतकर उनसे त्रिभुवनका राज्य छीन लिया था। उनमें बाष्कलि नामका दानव सबसे बलवान् था। उसने समस्त दानवोंको यज्ञका भोक्ता बना दिया। इससे इन्द्रको बड़ा दुःख हुआ। वे अपने जीवनसे निराश हो चले। उन्होंने सोचा—'ब्रह्माजीके वरदानसे दानवराज बाष्कलि मेरे तथा सम्पूर्ण देवताओंके लिये युद्धमें अवध्य हो गया है। अतः मैं ब्रह्मलोकमें चलकर भगवान् ब्रह्माजीकी ही शरण लूँगा। उनके सिवा और कोई मुझे सहारा देनेवाला नहीं है।' ऐसा विचार कर देवराज इन्द्र सम्पूर्ण देवताओंको साथ ले तुरत उस स्थानपर गये, जहाँ भगवान् ब्रह्माजी विराजमान थे।

इन्द्र बोले—देव! क्या आप हमारी दशा नहीं जानते; अब हमारा जीवन कैसे रहेगा? प्रभो! आपके वरदानसे दैत्योंने हमारा सर्वस्व छीन लिया। मैं दुरात्मा बाष्कलिकी सारी करतूतें पहले ही आपको बता चुका हूँ। पितामह! आप ही हमारे पिता हैं। हमारी रक्षाके लिये शीघ्र ही कोई उपाय कीजिये। संसारसे वेदपाठ और यज्ञ-यागादि उठ गये। उत्सव और मङ्गलकी बातें जाती रहीं। सबने अध्ययन करना छोड़ दिया है। दण्डनीति भी उठा दी गयी है। इन सब कारणोंसे संसारके प्राणी किसी तरह साँसमात्र ले रहे हैं। जगत् पीडाग्रस्त तो था ही, अब और भी कष्टतर दशाको पहुँच गया है। इतने समयमें हमलोगोंको बड़ी ग्लानि उठानी पड़ी है।

ब्रह्माजीने कहा—देवराज! मैं जानता हूँ, बाष्कलि

बड़ा नीच है और वरदान पाकर घमंडसे भर गया है। यद्यपि तुमलोगोंके लिये वह अजेय है, तथापि मैं समझता हूँ भगवान् श्रीविष्णु उसे अवश्य ठीक कर देंगे।

पुलस्त्यजी कहते हैं—उस समय ब्रह्माजी समाधिमें स्थित हो गये। उनके चिन्तन करनेपर ध्यानमात्रसे चतुर्भुज भगवान् श्रीविष्णु थोड़े ही समयमें सबके देखते-देखते वहाँ आ पहुँचे।

भगवान् श्रीविष्णु बोले—ब्रह्मन्! इस ध्यानको छोड़ो। जिसके लिये तुम ध्यान करते हो, वही मैं साक्षात् तुम्हारे पास आ गया हूँ।

ब्रह्माजीने कहा—स्वामीने यहाँ आकर मुझे दर्शन दिया, यह बहुत बड़ी कृपा हुई। जगत्‌के लिये जगदीश्वरको जितनी चिन्ता है, उतनी और किसको हो सकती है। मेरी उत्पत्ति भी आपने जगत्‌के लिये ही की थी और जगत्‌की यह दशा है; अतः उसके लिये भगवान्‌का यह शुभागमन वास्तवमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। प्रभो! विश्वके पालनका कार्य आपके ही अधीन है। इस इन्द्रका राज्य बाष्कलिने छीन लिया है। चराचर प्राणियोंके सहित त्रिलोकीको अपने अधिकारमें कर लिया है। केशव! अब आप ही सलाह देकर अपने इस सेवककी सहायता कीजिये।

भगवान् श्रीवासुदेवने कहा—ब्रह्मन्! तुम्हारे वरदानसे वह दानव इस समय अवध्य है, तथापि उसे बुद्धिके द्वारा बन्धनमें डालकर परास्त किया जा सकता है। मैं दानवोंका विनाश करनेके लिये वामनरूप धारण करूँगा। ये इन्द्र मेरे साथ बाष्कलिके घर चलें और वहाँ पहुँचकर मेरे लिये इस प्रकार वरकी याचना करें—'राजन्! इस बौने ब्राह्मणके लिये तीन पग भूमिका दान दीजिये। महाभाग! इनके लिये मैं आपसे याचना करता हूँ।' ऐसा कहनेपर वह दानवराज अपना प्राणतक दे सकता है। पितामह! उस दानवका दान स्वीकार करके पहले उसे राज्यसे वञ्चित करूँगा, फिर उसे बाँधकर पातालका निवासी बनाऊँगा।

यों कहकर भगवान् श्रीविष्णु अन्तर्द्धान हो गये। तदनन्तर कार्य-साधनके अनुकूल समय आनेपर सम्पूर्ण प्राणियोंपर दया करनेवाले देवाधिदेव भगवान्‌ने देवताओंका हित करनेके लिये अदितिका पुत्र होनेका विचार किया। भगवान्‌ने जिस दिन गर्भमें प्रवेश किया, उस दिन स्वच्छ वायु बहने लगी। सम्पूर्ण प्राणी बिना किसी उपद्रवके अपने-अपने इच्छित पदार्थ प्राप्त करने लगे। वृक्षोंसे फूलोंकी वर्षा होने लगी, समस्त दिशाएँ निर्मल हो गयीं तथा सभी मनुष्य सत्य-परायण हो गये। देवी अदितिने एक हजार दिव्य वर्षोंतक भगवान्‌को गर्भमें धारण किया। इसके बाद वे भूतभावन प्रभु वामनरूपमें प्रकट हुए। उनके अवतार लेते ही नदियोंका जल स्वच्छ हो गया। वायु सुगन्ध बिखेरने लगी। उस तेजस्वी पुत्रके प्रकट होनेसे महर्षि कश्यपको भी बड़ा आनन्द हुआ। तीनों लोकोंमें निवास करनेवाले समस्त प्राणियोंके मनमें अपूर्व उत्साह भर गया। भगवान् जनार्दनका प्रादुर्भाव होते ही स्वर्गलोकमें नगारे बज उठे। अत्यन्त हर्षोल्लासके कारण त्रिलोकीके मोह और दुःख नष्ट हो गये। गन्धर्वोंने अत्यन्त उच्च स्वरसे संगीत आरम्भ किया। कोई ऊँचे स्वरसे भगवान्‌की जय-जयकार करने लगे, कोई अत्यन्त हर्षमें भरकर जोर-जोरसे गर्जना करते हुए बारंबार भगवान्‌को साधुवाद देने लगे तथा कुछ लोग जन्म, भय, बुढ़ापा और मृत्युसे छुटकारा पानेके लिये उनका ध्यान करने लगे। इस प्रकार यह सम्पूर्ण जगत् सब ओरसे अत्यन्त प्रसन्न हो उठा।

देवतालोग मन-ही-मन विचार करने लगे—'ये साक्षात् परमात्मा श्रीविष्णु हैं। ब्रह्माजीके अनुरोधसे जगत्‌की रक्षाके लिये इन जगदीश्वरने यह छोटा-सा शरीर धारण किया है। ये ही ब्रह्मा, ये ही विष्णु और ये ही महेश्वर हैं। देवता, यज्ञ और स्वर्ग—सब कुछ ये ही हैं, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। यह सम्पूर्ण चराचर जगत् भगवान् श्रीविष्णुसे व्याप्त है। ये एक होते हुए भी पृथक् शरीर धारण करके ब्रह्माके नामसे विख्यात हैं। जिस प्रकार बहुत-से रंगोंवाली वस्तुओंका सान्निध्य होनेपर स्फटिक मणि विचित्र-सी प्रतीत होने लगती है, वैसे ही मायामय गुणोंके संसर्गसे स्वयम्भू परमात्माकी नाना रूपोंमें प्रतीति होती है। जैसे एक ही गार्हपत्य अग्नि दक्षिणाग्नि तथा आहवनीयाग्नि आदि भिन्न-भिन्न संज्ञाओंको प्राप्त होती है, उसी प्रकार ये एक ही श्रीविष्णु ब्रह्मा आदि अनेक नाम एवं रूपोंमें उपलब्ध होते हैं। ये भगवान् सब तरहसे देवताओंका कार्य सिद्ध करेंगे।'

शुद्ध चित्तवाले देवगण जब इस प्रकार सोच रहे थे, उसी समय भगवान् वामन इन्द्रके साथ बाष्कलिके घर गये। उन्होंने दूरसे ही बाष्कलिकी नगरीको देखा, जो परकोटेसे

घिरी थी। सब प्रकारके रत्नोंसे सजे हुए ऊँचे-ऊँचे सफेद महल, जो आकाशचारी प्राणियोंके लिये भी अगम्य थे, उस पुरीकी शोभा बढा रहे थे। नगरकी सड़कें बड़ी ही सुन्दर एवं क्रमबद्ध बनायी गयी थीं। कोई ऐसा पुष्प नहीं, ऐसी विद्या नहीं, ऐसा शिल्प नहीं तथा ऐसी कला नहीं, जो बाष्कलिकी नगरीमें मौजूद न रही हो। वहीं रहकर दानवराज बाष्कलि चराचर प्राणियोंसहित समस्त त्रिलोकीका पालन करता था। वह धर्मका ज्ञाता, कृतज्ञ, सत्यवादी और जितेन्द्रिय था। सभी प्राणी उससे सुगमतापूर्वक मिल सकते थे। न्याय-अन्यायका निर्णय करनेमें उसकी बुद्धि बड़ी ही कुशल थी। वह ब्राह्मणोंका भक्त, शरणागतोंका रक्षक तथा दीन और अनाथोंपर दया करनेवाला था। मन्त्र शक्ति, प्रभु शक्ति और उत्साहशक्ति—इन तीनों शक्तियोंसे वह सम्पन्न था। सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और समाश्रय—राजनीतिके इन छः गुणोंका अवसरके अनुकूल उपयोग करनेमें उसका सदा उत्साह रहता था। वह सबसे मुसकराकर बात करता था। वेद और वेदाङ्गोंके तत्त्वका उसे पूर्ण ज्ञान था। वह यज्ञोंका अनुष्ठान करनेवाला, तपस्या-परायण, उदार, सुशील, संयमी, प्राणियोंकी हिंसासे विरत, माननीय पुरुषोंको आदर देनेवाला, शुद्धहृदय, प्रसन्नमुख, पूजनीय पुरुषोंका पूजन करनेवाला, सम्पूर्ण विषयोंका ज्ञाता, दुर्दमनीय, सौभाग्यशाली, देखनेमें सुन्दर, अन्नका बहुत बड़ा संग्रह रखनेवाला, बड़ा धनी और बहुत बड़ा दानी था। वह धर्म, अर्थ और काम—तीनोंके साधनमें संलग्न रहता था। बाष्कलि त्रिलोकीका एक श्रेष्ठ पुरुष था। वह सदा अपनी नगरीमें ही रहता था। उसमें देवता और दानवोंके भी घमंडको चूर्ण करनेकी शक्ति थी। ऐसे गुणोंसे विभूषित होकर वह त्रिभुवनकी समस्त प्रजाका पालन करता था। उस दानवराजके राज्यमें कोई भी अधर्म नहीं होने पाता था। उसकी प्रजामें कोई भी ऐसा नहीं था जो दीन, रोगी, अल्पायु, दुःखी, मूर्ख, कुरूप, दुर्भाग्यशाली और अपमानित हो।

इन्द्रको आते देख दानवोंने जाकर राजा बाष्कलिसे कहा—'प्रभो! बड़े आश्चर्यकी बात है कि आज इन्द्र एक बौने ब्राह्मणके साथ अकेले ही आपकी पुरीमें आ रहे हैं। इस समय हमारे लिये जो कर्तव्य हो, उसे शीघ्र बताइये।' उनकी बात सुनकर बाष्कलिने कहा—'दानवो! इस नगरमें देवराजको आदरके साथ ले आना चाहिये। वे आज हमारे पूजनीय अतिथि हैं।'

पुलस्त्यजी कहते हैं—दानवराज बाष्कलि दानवोंसे ऐसा कहकर फिर स्वयं इन्द्रसे मिलनेके लिये अकेला ही राजमहलसे बाहर निकल पड़ा और अपने शोभा-सम्पन्न नगरकी सातवीं ड्योढ़ीपर जा पहुँचा। इतनेमें ही उधरसे भगवान् वामन और इन्द्र भी आ पहुँचे। दानवराजने बड़े प्रेमसे उनकी ओर देखा और प्रणाम करके अपनेको कृतार्थ माना। वह हर्षमें भरकर सोचने लगा—'मेरे समान धन्य दूसरा कोई नहीं है, क्योंकि आज मैं त्रिभुवनकी राज्यलक्ष्मीसे सम्पन्न होकर इन्द्रको याचकके रूपमें अपने घरपर आया देखता हूँ। ये मुझसे कुछ याचना करेंगे। घरपर आये हुए इन्द्रको मैं अपनी स्त्री, पुत्र, महल तथा अपने प्राण भी दे डालूँगा, फिर त्रिलोकीके राज्यकी तो बात ही क्या है।' यह सोचकर उसने सामने आ इन्द्रको अङ्कमें भरकर बड़े आदरके साथ गले लगाया और अपने राजभवनके भीतर ले जाकर अर्घ्य तथा आचमनीय आदिसे उन दोनोंका यत्नपूर्वक पूजन किया। इसके बाद बाष्कलि



बोला—'इन्द्र! आज मैं आपको अपने घरपर स्वयं आया देखता हूँ, इससे मेरा जन्म सफल हो गया, मेरे सभी मनोरथ पूर्ण हो गये। प्रभो! मेरे पास आपका किस प्रयोजनसे आगमन हुआ? मुझे सारी बात बताइये।

आपने यहाँतक आनेका कष्ट उठाया, इसे मैं बड़े आश्चर्यकी बात समझता हूँ।'

इन्द्रने कहा—बाष्कले! मैं जानता हूँ, दानव-वंशके श्रेष्ठ पुरुषोंमें तुम सबसे प्रधान हो। तुम्हारे पास मेरा आना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। तुम्हारे घरपर आये हुए याचक कभी विमुख नहीं लौटते। तुम याचकोंके लिये कल्पवृक्ष हो। तुम्हारे समान दाता कोई नहीं है। तुम प्रभामें सूर्यके समान हो। गम्भीरतामें सागरकी समानता करते हो। क्षमाशीलताके कारण तुम्हारी पृथ्वीके साथ तुलना की जाती है। ये ब्राह्मणदेवता वामन कश्यपजीके उत्तम कुलमें उत्पन्न हैं। इन्होंने मुझसे तीन पग भूमिके लिये याचना की है; किन्तु बाष्कले! मेरा त्रिभुवनका राज्य तो तुमने पराक्रम करके छीन लिया है। अब मैं निराधार और निर्धन हूँ। इन्हें देनेके लिये मेरे पास कोई भूमि नहीं है। इसलिये तुमसे याचना करता हूँ। याचक मैं नहीं, ये हैं। दानवेन्द्र! यदि तुम्हें अभीष्ट हो तो इन वामनजीको तीन पग भूमि दे दो।

बाष्कलिने कहा—देवेन्द्र! आप भले पधारे, आपका कल्याण हो। जरा अपनी ओर तो देखिये; आप ही सबके परम आश्रय हैं। पितामह ब्रह्माजी त्रिभुवनकी रक्षाका भार आपके ऊपर डालकर सुखसे बैठे हैं और ध्यान-धारणासे युक्त हो परमपदका चिन्तन करते हैं। भगवान् श्रीविष्णु भी अनेकों संग्रामोंसे थककर जगत्‌की चिन्ता छोड़ आपके ही भरोसे क्षीर-सागरका आश्रय ले सुखकी नींद सो रहे हैं। उमानाथ भगवान् शङ्कर भी आपको ही सारा भार सौंपकर कैलास पर्वतपर विहार करते हैं। मुझसे भिन्न बहुत-से दानवोंको, जो बलवानोंसे भी बलवान् थे, आपने अकेले ही मार गिराया। बारह आदित्य, ग्यारह रुद्र, दोनों अश्विनीकुमार, आठ वसु तथा सनातन देवता धर्म—ये सब लोग आपके ही बाहुबलका आश्रय ले स्वर्गलोकमें यज्ञका भाग ग्रहण करते हैं। आपने उत्तम दक्षिणाओंसे सम्पन्न सौ यज्ञोंद्वारा भगवान्‌का यजन किया है। वृत्र और नमुचि—आपके ही हाथसे मारे गये हैं। आपने ही पाक नामक दैत्यका दमन किया है। सर्वसमर्थ भगवान् विष्णुने आपकी ही आज्ञासे दैत्यराज हिरण्यकशिपुको अपनी जाँघपर बिठाकर मार डाला था। आप ऐरावतके मस्तकपर बैठकर वज्र हाथमें लिये जब संग्राम-भूमिमें आते हैं, उस समय आपको देखते ही सब दानव भाग जाते हैं। पूर्वकालमें आपने बड़े-बड़े बलिष्ठ दानवोंपर विजय पायी है। देवराज! आप ऐसे प्रभावशाली हैं। आपके सामने मेरी क्या गिनती हो सकती है। आपने मेरा उद्धार करनेकी इच्छासे ही यहाँ पदार्पण किया है। निस्सन्देह मैं आपकी आज्ञाका पालन करूँगा। मैं निश्चयपूर्वक कहता हूँ, आपके लिये अपने प्राण भी दे दूँगा। देवेश्वर! आपने मुझसे इतनी-सी भूमिकी बात क्यों कही? यह स्त्री, पुत्र, गौएँ तथा और जो कुछ भी धन मेरे पास है, वह सब एवं त्रिलोकीका सारा राज्य इन ब्राह्मणदेवताको दे दीजिये। आप ऐसा करके मुझपर तथा मेरे पूर्वजोंपर कृपा करेंगे, इसमें तनिक भी संशय नहीं है। क्योंकि भावी प्रजा कहेगी—'पूर्वकालमें राजा बाष्कलिने अपने घरपर आये हुए इन्द्रको त्रिलोकीका राज्य दे दिया था।' [आप ही क्यों,] दूसरा भी कोई याचक यदि मेरे पास आये तो वह सदा ही मुझे अत्यन्त प्रिय होगा। आप तो उन सबमें मेरे लिये विशेष आदरणीय हैं; अतः आपको कुछ भी देनेमें मुझे कोई विचार नहीं करना है। परन्तु देवराज! मुझे इस बातसे बड़ी लज्जा हो रही है कि इन ब्राह्मणदेवताके विशेष प्रार्थना करनेपर आप मुझसे तीन ही पग भूमि माँग रहे हैं। मैं इन्हें अच्छे-अच्छे गाँव दूँगा और आपको स्वर्गका राज्य अर्पण कर दूँगा। वामनजीको स्त्री और भूमि दोनों दान करूँगा। आप मुझपर कृपा करके यह सब स्वीकार करें।

पुलस्त्यजी कहते हैं—राजन्! दानवराज बाष्कलिके ऐसा कहनेपर उसके पुरोहित शुक्राचार्यने उससे कहा—'महाराज! तुम्हें उचित-अनुचितका बिल्कुल ज्ञान नहीं है; किसको कब क्या देना चाहिये—इस बातसे तुम अनभिज्ञ हो। अतः मन्त्रियोंके साथ भलीभाँति विचार करके युक्तायुक्तका निर्णय करनेके पश्चात् तुम्हें कोई कार्य करना चाहिये। तुमने इन्द्रसहित देवताओंको जीतकर त्रिलोकीका राज्य प्राप्त किया है। अपने वचनको पूरा करते ही तुम बन्धनमें पड़ जाओगे। राजन्! ये जो वामन हैं, इन्हें साक्षात् सनातन विष्णु

ही समझो। इनके लिये तुम्हें कुछ नहीं देना चाहिये; क्योंकि इन्होंने ही तो पहले तुम्हारे वंशका उच्छेद कराया है और आगे भी करायेंगे। इन्होंने मायासे दानवोंको परास्त किया है और मायासे ही इस समय बौने ब्राह्मणका रूप बनाकर तुम्हें दर्शन दिया है; अतः अब बहुत कहनेकी आवश्यकता नहीं है। इन्हें कुछ न दो। [तीन पग तो बहुत है,] मक्खीके पैरके बराबर भी भूमि देना न स्वीकार करो। यदि मेरी बात नहीं मानोगे तो शीघ्र ही तुम्हारा नाश हो जायगा; यह मैं तुम्हें सच्ची बात कह रहा हूँ।'

बाष्कलिने कहा—गुरुदेव! मैंने धर्मकी इच्छासे इन्हें सब कुछ देनेकी प्रतिज्ञा कर ली है। प्रतिज्ञाका पालन अवश्य करना चाहिये, यह सत्पुरुषोंका सनातन धर्म है। यदि ये भगवान् विष्णु हैं और मुझसे दान लेकर देवताओंको समृद्धिशाली बनाना चाहते हैं, तब तो मेरे समान धन्य दूसरा कोई नहीं होगा। ध्यानपरायण योगी निरन्तर ध्यान करते रहनेपर भी जिनका दर्शन जल्दी नहीं पाते, उन्होंने ही यदि मुझे दर्शन दिया है, तब तो इन देवेश्वरने मुझे और भी धन्य बना दिया। जो लोग हाथमें कुश और जल लेकर दान देते हैं, वे भी 'मेरे दानसे सनातन परमात्मा भगवान् विष्णु प्रसन्न हों' इस वचनके कहनेपर मोक्षके भागी होते हैं। इस कार्यको निश्चित रूपसे करनेके लिये मेरा जो दृढ़ संकल्प हुआ है, उसमें आपका उपदेश ही कारण है। बचपनमें आपने एक बार उपदेश दिया था, जिसे मैंने अच्छी तरह अपने हृदयमें धारण कर लिया था। वह उपदेश इस प्रकार था—'शत्रु भी यदि घरपर आ जाय तो उसके लिये कोई वस्तु अदेय नहीं है—उसे कुछ भी देनेसे इनकार नहीं करना चाहिये।'* गुरुदेव! यही सोचकर मैंने इन्द्रके लिये स्वर्गका राज्य और वामनजीके लिये अपने प्राणतक दे डालनेका निश्चय कर लिया है। जिस दानके देनेमें कुछ भी कष्ट नहीं होता, ऐसा दान तो संसारमें सभी लोग देते हैं।

यह सुनकर गुरुजीने लज्जासे अपना मुँह नीचा कर लिया। तब बाष्कलिने इन्द्रसे कहा—'देव! आपके माँगनेपर मैं सारी पृथ्वी दे सकता हूँ; यदि इन्हें तीन ही पग भूमि देनी पड़ी तो यह मेरे लिये लज्जाकी बात होगी।'

इन्द्रने कहा—दानवराज! तुम्हारा कहना सत्य है, किन्तु इन ब्राह्मणदेवताने मुझसे तीन ही पग भूमिकी याचना की है। इनको इतनी ही भूमिकी आवश्यकता है। मैंने भी इन्हींके लिये तुमसे याचना की है। अतः इन्हें यही वर प्रदान करो।

बाष्कलिने कहा—देवराज! आप वामनको मेरी ओरसे तीन पग भूमि दे दीजिये और आप भी चिरकालतक वहाँ सुखसे निवास कीजिये।

पुलस्त्यजी कहते हैं—यह कहकर बाष्कलिने हाथमें जल ले 'साक्षात् श्रीहरि मुझपर प्रसन्न हों' ऐसा कहते हुए वामनजीको तीन पग भूमि दे दी। दानवराजके दान करते ही श्रीहरिने वामनरूप त्याग दिया और देवताओंका हित करनेकी इच्छासे सम्पूर्ण लोकोंको नाप लिया। वे यज्ञ पर्वतपर पहुँचकर उत्तरकी ओर मुँह करके खड़े हो गये। उस समय दानवलोक भगवान्के बायें चरणके नीचे आ गया। तब जगदीश्वरने पहला पग सूर्यलोकमें रखा और दूसरा ध्रुवलोकमें। फिर अद्भुत कर्म करनेवाले भगवान्ने तीसरे पगसे ब्रह्माण्डपर आघात किया। उनके अँगूठेके अग्रभागसे लगकर ब्रह्माण्ड-कटाह फूट गया, जिससे बहुत सा जल बाहर निकला। उसे ही भगवान् श्रीविष्णुके चरणोंसे



प्रकट होनेवाली वैष्णवी नदी गङ्गा कहते हैं। गङ्गाजी

* शत्रावपि गृहायाते नास्त्यदेयं तु किंचन। (२५। १७१)

अनेक कारणवश भगवान् श्रीविष्णुके चरणोंसे प्रकट हुई हैं। उनके द्वारा चराचर प्राणियोंसहित समस्त त्रिलोकी व्याप्त है। तत्पश्चात् भगवान् श्रीवामनने बाष्कलिसे कहा—'मेरे तीन पग पूर्ण करो।' बाष्कलिने कहा—'भगवन्! आपने पूर्वकालमें जितनी बड़ी पृथ्वी बनायी थी, उसमेंसे मैंने कुछ भी छिपाया नहीं है। पृथ्वी छोटी है और आप महान् हैं। मुझमें सृष्टि उत्पन्न करनेकी शक्ति नहीं है [जिससे कि दूसरी पृथ्वी बनाकर आपके तीन पग पूर्ण करूँ]। देव! आप-जैसे प्रभुओंकी इच्छा-शक्ति ही मनोवाञ्छित कार्य करनेमें समर्थ होती है।'

सत्यवादी बाष्कलिको निरुत्तर जानकर भगवान् श्रीविष्णु बोले—'दानवराज! बोलो, मैं तुम्हारी कौन-सी इच्छा पूर्ण करूँ? तुम्हारा दिया हुआ संकल्पका जल मेरे हाथमें आया है, इसलिये तुम वर पानेके योग्य हो। वरदानके उत्तम पात्र हो। तुम्हें जिस वस्तुकी इच्छा हो, माँगो; मैं उसे दूँगा।

बाष्कलिने कहा—देवेश्वर! मैं आपकी भक्ति चाहता हूँ। मेरी मृत्यु भी आपके ही हाथसे हो, जिससे मुझे आपके परमधाम श्वेतद्वीपकी प्राप्ति हो, जो तपस्वियोंके लिये भी दुर्लभ है।

पुलस्त्यजी कहते हैं—बाष्कलिके ऐसा कहनेपर भगवान् श्रीविष्णुने कहा—तुम एक कल्पतक ठहरे रहो। जिस समय वराहरूप धारण करके मैं रसातलमें प्रवेश करूँगा, उसी समय तुम्हारा वध करूँगा; इससे तुम मेरे रूपमें लीन हो जाओगे।' भगवान्के ऐसे वचन सुनकर वह दानव उनके सामनेसे चला गया। भगवान् भी उससे त्रिलोकीका राज्य छीनकर अन्तर्धान हो गये। बाष्कलि पाताललोकका निवासी होकर सुखपूर्वक रहने लगा। बुद्धिमान् इन्द्र तीनों लोकोंका पालन करने लगे। यह जगद्गुरु भगवान् श्रीविष्णुके वामन-अवतारका वर्णन है, इसमें श्रीगङ्गाजीके प्रादुर्भावकी कथा भी आ गयी है। यह प्रसङ्ग सब पापोंका नाश करनेवाला है। यह मैंने श्रीविष्णुके तीनों पगोंका इतिहास बतलाया है, जिसे सुनकर मनुष्य इस संसारमें सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है। श्रीविष्णुके पगोंका दर्शन कर लेनेपर उसके दुःस्वप्न, दुश्चिन्ता और घोर पाप शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। पापी मनुष्य प्रत्येक युगमें यज्ञ-पर्वतपर स्थित श्रीविष्णुके चरणोंका दर्शन करके पापसे छुटकारा पा जाते हैं। भीष्म! जो मनुष्य मौन होकर यज्ञ-पर्वतपर चढ़ता है अथवा तीनों पुष्करोंकी यात्रा करता है, उसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है। वह सब पापोंसे मुक्त हो मृत्युके पश्चात् श्रीविष्णुधाममें जाता है।

भीष्मजी बोले—भगवन्! यह तो बड़े आश्चर्यकी बात है कि वामनजीके द्वारा दानवराज बाष्कलि बन्धनमें डाला गया। मैंने तो श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके मुखसे ऐसी कथा सुन रखी है कि भगवान्ने वामनरूप धारण करके राजा बलिको बाँधा था और विरोचनकुमार बलि आजतक पाताल-लोकमें मौजूद हैं। अतः आप मुझसे बलिके बाँधे जानेकी कथाका वर्णन कीजिये।

पुलस्त्यजी बोले—नृपश्रेष्ठ! मैं तुम्हें सब बातें बताता हूँ, सुनो। पहली बारकी कथा तो तुम सुन ही चुके हो। दूसरी बार वर्तमान वैवस्वत मन्वन्तरमें भी भगवान् श्रीविष्णुने त्रिलोकीको अपने चरणोंसे नापा था। उस समय उन देवाधिदेवने अकेले ही यज्ञमें जाकर राजा बलिको बाँधा और भूमिको नापा था। उस अवसरपर भगवान्का पुनः वामन-अवतार हुआ तथा पुनः उन्होंने त्रिविक्रमरूप धारण किया था। वे पहले वामन होकर फिर अवामन (विराट्) हो गये।

सत्सङ्गके प्रभावसे पाँच प्रेतोंका उद्धार और पुष्कर तथा प्राची सरस्वतीका माहात्म्य

भीष्मजीने पूछा—ब्रह्मन्! किस कर्मके परिणामसे मनुष्य प्रेत-योनिमें जाता है, तथा किस कर्मके द्वारा वह उससे छुटकारा पाता है—यह मुझे बतानेकी कृपा कीजिये।

पुलस्त्यजी बोले—राजन्! मैं तुम्हें ये सब बातें विस्तारसे बतलाता हूँ, सुनो; जिस कर्मसे जीव प्रेत होता है तथा जिस कर्मके द्वारा देवताओंके लिये भी दुस्तर घोर नरकमें पड़ा हुआ प्राणी भी उससे मुक्त हो जाता है, उसका वर्णन करता हूँ। प्रेत-योनिमें पड़े हुए मनुष्य सत्पुरुषोंके साथ वार्तालाप तथा पुण्यतीर्थोंका बारंबार कीर्तन करनेसे उससे

छुटकारा पा जाते हैं। भीष्म ! सुना जाता है—प्राचीन कालमें कठिन नियमोंका पालन करनेवाले एक ब्राह्मण थे, जो 'पृथु' नामसे सर्वत्र विख्यात थे। वे सदा सन्तुष्ट रहा करते थे। उन्हें योगका ज्ञान था। वे प्रतिदिन स्वाध्याय, होम और जप-यज्ञमें संलग्न रहकर समय व्यतीत करते थे। उन्हें परमात्माके तत्त्वका बोध था। वे शम (मनोनिग्रह), दम (इन्द्रियसंयम) और क्षमासे युक्त रहते थे। उनका चित्त अहिंसाधर्ममें स्थित था। वे सदा अपने कर्तव्यका ज्ञान रखते थे। ब्रह्मचर्य, तपस्या, पितृकार्य (श्राद्ध तर्पण) और वैदिक कर्मोंमें उनकी प्रवृत्ति थी। वे परलोकका भय मानते और सत्य भाषणमें रत रहते थे। सबसे मीठे वचन बोलते और अतिथियोंके सत्कारमें मन लगाते थे। सुख दुःखादि सम्पूर्ण द्वन्द्वोंका परित्याग करनेके लिये सदा योगाभ्यासमें तत्पर रहते थे। अपने कर्तव्यके पालन और स्वाध्यायमें लगे रहना उनका नित्यका नियम था। इस प्रकार संसारको जीतनेकी इच्छासे वे सदा शुभ कर्मका अनुष्ठान किया करते थे। ब्राह्मणदेवताको वनमें निवास करते अनेकों वर्ष व्यतीत हो गये। एक बार उनका ऐसा विचार हुआ कि मैं तीर्थ-यात्रा करूँ, तीर्थोंके पावन जलसे अपने शरीरको पवित्र बनाऊँ। ऐसा सोचकर उन्होंने सूर्योदयके समय शुद्ध चित्तसे पुष्कर तीर्थमें स्नान किया और गायत्रीका जप तथा नमस्कार करके यात्राके लिये चल पड़े। जाते जाते एक जंगलके बीच कण्टकाकीर्ण भूमिमें, जहाँ न पानी था न वृक्ष, उन्होंने अपने सामने पाँच पुरुषोंको खड़े देखा, जो बड़े ही भयङ्कर थे। उन विकट आकार तथा पापपूर्ण दृष्टिवाले अत्यन्त घोर प्रेतोंको देखकर उनके हृदयमें कुछ भयका सञ्चार हो आया; फिर भी वे निश्चलभावसे खड़े रहे। यद्यपि उनका चित्त भयसे उद्विग्न हो रहा था, तथापि उन्होंने धैर्य धारण करके मधुर शब्दोंमें पूछा—'विकराल मुखवाले प्राणियो ! तुमलोग कौन हो ? किसके द्वारा कौन-सा ऐसा कर्म बन गया है, जिससे तुम्हें इस विकृत रूपकी प्राप्ति हुई है ?'



प्रेतोंने कहा—हम भूख और प्याससे पीड़ित हो सर्वदा महान् दुःखसे घिरे रहते हैं। हमारा ज्ञान और विवेक नष्ट हो गया है, हम सभी अचेत हो रहे हैं। हमें इतना भी ज्ञान नहीं है कि कौन दिशा किस ओर है। दिशाओंके बीचकी अवान्तर दिशाओंको भी नहीं पहचानते। आकाश, पृथ्वी तथा स्वर्गका भी हमें ज्ञान नहीं है। यह तो दुःखकी बात हुई। सुख इतना ही है कि सूर्योदय देखकर हमें प्रभात-सा प्रतीत हो रहा है। हममेंसे एकका नाम पर्युषित है, दूसरेका नाम सूचीमुख है, तीसरेका नाम शीघ्रग, चौथेका रोधक और पाँचवेंका लेखक है।

ब्राह्मणने पूछा—तुम्हारे नाम कैसे पड़ गये ? क्या कारण है, जिससे तुमलोगोंको ये नाम प्राप्त हुए हैं ?

प्रेतोंमेंसे एकने कहा—मैं सदा स्वादिष्ट भोजन किया करता था और ब्राह्मणोंको पर्युषित (बासी) अन्न देता था; इसी हेतुको लेकर मेरा नाम पर्युषित पड़ा है। मेरे इस साथीने अन्न आदिके अभिलाषी बहुत-से ब्राह्मणोंकी हिंसा की है, इसलिये इसका नाम सूचीमुख पड़ा है। यह तीसरा प्रेत भूखे ब्राह्मणके याचना करनेपर भी [उसे कुछ देनेके भयसे] शीघ्रतापूर्वक वहाँसे चला गया था, इसलिये इसका नाम शीघ्रग हो गया। यह चौथा प्रेत ब्राह्मणों-

को देनेके भयसे उद्विग्न होकर सदा अपने घरपर ही स्वादिष्ठ भोजन किया करता था; इसलिये यह रोधक कहलाता है। तथा हमलोगोंमें सबसे बड़ा पापी जो यह पाँचवाँ प्रेत है, यह याचना करनेपर चुपचाप खड़ा रहता था या धरती कुरेदने लगता था, इसलिये इसका नाम लेखक पड़ गया। लेखक बड़ी कठिनाईसे चलता है। रोधकको सिर नीचा करके चलना पड़ता है। शीघ्रग पङ्गु हो गया है। सूची (हिंसा करनेवाले) का सूईके समान मुँह हो गया है तथा मुझ पर्युषितकी गर्दन लंबी और पेट बड़ा हो गया है। अपने पापके प्रभावसे मेरा अण्डकोष भी बढ़ गया है तथा दोनों ओठ भी लंबे होनेके कारण लटक गये हैं। यही हमारे प्रेतयोनिमें आनेका वृत्तान्त है, जो सब मैंने तुम्हें बता दिया। यदि तुम्हारी इच्छा हो तो कुछ और भी पूछो। पूछनेपर उस बातको भी बतायेंगे।

ब्राह्मण बोले—इस पृथ्वीपर जितने भी जीव रहते हैं, उन सबकी स्थिति आहारपर ही निर्भर है। अतः मैं तुम-लोगोंका भी आहार जानना चाहता हूँ।

प्रेत बोले—विप्रवर ! हमारे आहारकी बात सुनिये। हमलोगोंका आहार सभी प्राणियोंके लिये निन्दित है। उसे सुनकर आप भी बारंबार निन्दा करेंगे। बलगम, पेशाब, पाखाना और स्त्रीके शरीरका मैल—इन्हींसे हमारा भोजन चलता है। जिन घरोंमें पवित्रता नहीं है, वहीं प्रेत भोजन करते हैं। जो घर स्त्रियोंके द्वारा दग्ध और छिन्न-भिन्न हैं, जिनके सामान इधर-उधर बिखरे पड़े रहते हैं तथा मल-मूत्रके द्वारा जो घृणित अवस्थाको पहुँच चुके हैं, उन्हीं घरोंमें प्रेत भोजन करते हैं। जिन घरोंमें मानसिक लज्जाका अभाव है, पतितोंका निवास है तथा जहाँके निवासी लूट-पाटका काम करते हैं, वहीं प्रेत भोजन करते हैं। जहाँ बलिवैश्वदेव तथा वेद-मन्त्रोंका उच्चारण नहीं होता, होम और व्रत नहीं होते, वहाँ प्रेत भोजन करते हैं। जहाँ गुरुजनोंका आदर नहीं होता, जिन घरोंमें स्त्रियोंका प्रभुत्व है, जहाँ क्रोध और लोभने अधिकार जमा लिया है, वहीं प्रेत भोजन करते हैं। तात ! मुझे अपने भोजनका परिचय देते लज्जा हो रही है, अतः इससे अधिक मैं कुछ नहीं कह सकता। तपोधन ! तुम नियमोंका दृढ़तापूर्वक पालन करनेवाले हो, इसलिये प्रेतयोनि-से दुःखी होकर हम तुमसे पूछ रहे हैं। बताओ, कौन-सा कर्म करनेसे जीव प्रेतयोनिमें नहीं पड़ता ?

ब्राह्मणने कहा—जो मनुष्य एक रात्रिका, तीन रात्रियोंका तथा कृच्छ्र-चान्द्रायण आदि अन्य व्रतोंका अनुष्ठान करता है, वह कभी प्रेतयोनिमें नहीं पड़ता। जो प्रतिदिन तीन, पाँच या एक अग्निका सेवन करता है तथा जिसके हृदयमें सम्पूर्ण प्राणियोंके प्रति दया भरी हुई है, वह मनुष्य प्रेत नहीं होता। जो मान और अपमानमें, सुवर्ण और मिट्टीके ढेलेमें तथा शत्रु और मित्रमें समान भाव रखता है, वह प्रेत नहीं होता। देवता, अतिथि, गुरु तथा पितरोंकी पूजामें सदा प्रवृत्त रहनेवाला मनुष्य भी प्रेतयोनिमें नहीं पड़ता। शुक्लपक्षमें मङ्गलवारके दिन चतुर्थी तिथि आनेपर उसमें जो श्रद्धापूर्वक श्राद्ध करता है, वह मनुष्य प्रेत नहीं होता। जिसने क्रोधको जीत लिया है, जिसमें डाहका सर्वथा अभाव है, जो तृष्णा और आसक्तिसे रहित, क्षमावान् और दानशील है, वह प्रेतयोनिमें नहीं जाता। जो गौ, ब्राह्मण, तीर्थ, पर्वत, नदी और देवताओंको प्रणाम करता है, वह मनुष्य प्रेत नहीं होता।

प्रेत बोले—महामुने ! आपके मुखसे नाना प्रकारके धर्म सुननेको मिले; हम दुखी जीव हैं, इसलिये पुनः पूछते हैं—जिस कर्मसे प्रेतयोनिमें जाना पड़ता है, वह हमें बताइये।

ब्राह्मणने कहा—यदि कोई द्विज और विशेषतः ब्राह्मण शूद्रका अन्न खाकर उसे पेटमें लिये ही मर जाय तो वह प्रेत होता है। जो आश्रमधर्मका त्याग करके मदिरा पीता, परायी स्त्रीका सेवन करता तथा प्रतिदिन मांस खाता है, उस मनुष्यको प्रेत होना पड़ता है। जो ब्राह्मण यज्ञके अनधिकारी पुरुषोंसे यज्ञ करवाता, अधिकारी पुरुषोंका त्याग करता और शूद्रकी सेवामें रत रहता है, वह प्रेतयोनिमें जाता है। जो मित्रकी धरोहरको हड़प लेता, शूद्रका भोजन बनाता, विश्वासघात करता और कूटनीतिका आश्रय लेता है, वह निश्चय ही प्रेत होता है। ब्रह्महत्यारा, गोघाती, चोर, शराबी, गुरुपत्नीके साथ सम्भोग करनेवाला तथा भूमि और कन्याका अपहरण करनेवाला निश्चय ही प्रेत होता है। जो पुरोहित नास्तिकतामें प्रवृत्त होकर अनेकों ऋत्विजोंके लिये मिली हुई दक्षिणाको अकेले ही हड़प लेता है, उसे निश्चय ही प्रेत होना पड़ता है।

विप्रवर पृथु जब इस प्रकार उपदेश कर रहे थे, उसी समय आकाशमें सहसा नगारे बजने लगे। हजारों देवताओंके हाथसे छोड़े हुए फूलोंकी वर्षा होने लगी। प्रेतोंके लिये चारों ओरसे विमान आ गये। आकाशवाणी हुई—'इन

ब्राह्मणदेवताके साथ वार्तालाप और पुण्यकथाका कीर्तन करनेसे तुम सब प्रेतोंको दिव्यगति प्राप्त हुई है।' [इस प्रकार सत्सङ्गके प्रभावसे उन प्रेतोंका उद्धार हो गया।] गङ्गानन्दन! यदि तुम्हें कल्याण-साधनकी आवश्यकता है तो तुम आलस्य छोड़कर पूर्ण प्रयत्न करके सत्पुरुषोंके साथ वार्तालाप—सत्सङ्ग करो। यह पाँच प्रेतोंकी कथा सम्पूर्ण धर्मोंका तिलक है। जो मनुष्य इसका एक लाख पाठ करता है, उसके वशमें कोई प्रेत नहीं होता। जो अत्यन्त श्रद्धा और भक्तिके साथ इस प्रसङ्गका बारबार श्रवण करता है, वह भी प्रेतयोनिमें नहीं पड़ता।

भीष्मजीने पूछा—ब्रह्मन्! पुष्करकी स्थिति अन्तरिक्षमें क्योंकर बतलायी जाती है? धर्मशील मुनि इस लोकमें उसे कैसे प्राप्त करते हैं और किस किसने प्राप्त किया है?

पुलस्त्यजी बोले—राजन्! एक समयकी बात है—दक्षिणभारतके निवासी एक करोड़ ऋषि पुष्कर तीर्थमें स्नान करनेके लिये आये, किन्तु पुष्कर आकाशमें स्थित हो गया। यह जानकर वे समस्त मुनि प्राणायाममें तत्पर हो परब्रह्मका ध्यान करते हुए बारह वर्षोंतक वहीं खड़े रह गये। तब ब्रह्माजी, इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता तथा ऋषि महर्षि आकाशमें अलक्षित होकर उन्हें [पुष्कर प्राप्तिके लिये] अत्यन्त दुष्कर नियम बताते हुए बोले—'द्विजगण! तुम लोग मन्त्रद्वारा पुष्करका आवाहन करो। 'आपो हि ष्ठामयो' इत्यादि तीन ऋचाओंका जप करनेसे यह तीर्थ तुम्हारे समीप आ जायगा और अघमर्षण-मन्त्रका जप करनेसे पूर्ण फलदायक होगा।' उन ब्रह्मर्षियोंकी बात समाप्त होनेपर उन सब मुनियोंने वैसा ही किया। ऐसा करनेसे वे परम पावन बन गये—उन्हें पुष्कर प्राप्तिका पूरा पूरा फल मिल गया।

राजन्! जो कार्तिककी पूर्णिमाको पुष्करमें स्नान करता है, वह परम पवित्र हो जाता है। ब्रह्माजीके सहित पुष्कर तीर्थ सबको पुण्य प्रदान करनेवाला है। वहाँ आनेवाले सभी वर्णोंके लोग अपने पुण्यकी वृद्धि करते हैं। वे मन्त्रज्ञानके बिना ही ब्राह्मणोंके तुल्य हो जाते हैं, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। यदि कार्तिककी पूर्णिमाको कृत्तिका नक्षत्र हो तो उसे स्नान-दानके लिये अत्यन्त उत्तम समझना चाहिये। यदि उस दिन भरणी नक्षत्र हो तो भी वह तिथि मुनियोंद्वारा परम पुण्यदायिनी बतलायी गयी है और यदि उस तिथिको रोहिणी नक्षत्र हो तो वह महाकार्तिकी पूर्णिमा कहलाती है। उस दिनका स्नान देवताओंके लिये भी दुर्लभ है। यदि शनिवार, रविवार तथा बृहस्पतिवार—इन तीनों दिनोंमेंसे किसी दिन उपर्युक्त तीन नक्षत्रोंमेंसे कोई नक्षत्र हो तो उस दिन पुष्करमें स्नान करनेवालेको निश्चय ही अश्वमेध यज्ञका पुण्य होता है। उस दिन किया हुआ दान और पितरोंका तर्पण अक्षय होता है। यदि सूर्य विशाखा नक्षत्रपर और चन्द्रमा कृत्तिका नक्षत्रपर हों तो पद्मक नामका योग होता है, यह पुष्करमें अत्यन्त दुर्लभ माना गया है। जो आकाशसे उतरे हुए ब्रह्माजीके इस शुभतीर्थमें स्नान करते हैं, उन्हें महान् अभ्युदयशाली लोकोंकी प्राप्ति होती है। महाराज! उन्हें दूसरे किसी पुण्यके करने न-करनेकी लालसा नहीं रहती। यह मैंने सच्ची बात कही है। पुष्कर इस पृथ्वीपर सब तीर्थोंमें श्रेष्ठ बताया गया है। संसारमें इससे बढ़कर पुण्यतीर्थ दूसरा कोई नहीं है। कार्तिककी पूर्णिमाको यह विशेष पुण्यदायक होता है। वहाँ उदुम्बर वनसे सरस्वतीका आगमन हुआ है और उसीके जलसे मुनिजन सेवित पुष्कर तीर्थ भरा हुआ है। सरस्वती ब्रह्माजीकी पुत्री है। वह पुण्यसलिला एवं पुण्यदायिनी नदी है। वटस्तम्भसे विस्तृत आकार धारण करके वह उत्तरकी ओर प्रवाहित हुई है। इस रूपमें कुछ दूर जाकर वह फिर पश्चिमकी ओर बहने लगती है। और वहाँसे प्राणियोंपर दया करनेके लिये अदृश्यभावका परित्याग करके स्वच्छ जलकी धारा बहाती हुई प्रकट रूपमें स्थित होती है। कनका, सुप्रभा, नन्दा, प्राची और सरस्वती—ये पाँच स्रोत पुष्करमें विद्यमान हैं। इसलिये ब्रह्माजीने सरस्वतीको पञ्चस्रोता कहा है। उसके तटपर अत्यन्त सुन्दर तीर्थ और मन्दिर हैं, जो सब ओरसे सिद्धों और मुनियोंद्वारा सेवित हैं। उन सब तीर्थोंमें सरस्वती ही धर्मकी हेतु है। वहाँ स्नान करने, जल पीने तथा सुवर्ण आदि दान करनेसे महानदी सरस्वती अक्षय फल उत्पन्न करती है।

मुनीश्वरगण अन्न और वस्त्रका दान श्रेष्ठ बतलाते हैं, जो मनुष्य सरस्वती-तटवर्ती तीर्थोंमें उक्त वस्तुओंका दान करते हैं, उनका दान धर्मका साधक और अत्यन्त उत्तम माना गया है। जो स्त्री या पुरुष संयमसे रहकर प्रयत्नपूर्वक उन तीर्थोंमें उपवास करते हैं, वे ब्रह्मलोकमें जाकर यथेष्ट आनन्दका अनुभव करते हैं। जो स्थावर या जङ्गम प्राणी प्रारब्ध कर्मका क्षय हो जानेपर सरस्वतीके तटपर मृत्युको प्राप्त होते हैं, वे सब हठात् यज्ञके सम्पूर्ण श्रेष्ठ फल प्राप्त करते हैं। जिनका चित्त जन्म और मृत्यु आदिके दुःखसे पीड़ित

है, उन मनुष्योंके लिये सरस्वती नदी धर्मको उत्पन्न करनेवाली अरणीके समान है। अतः मनुष्योंको प्रयत्नपूर्वक उत्तम फल प्रदान करनेवाली महानदी सरस्वतीका सब प्रकारसे सेवन करना चाहिये। जो सरस्वतीके पवित्र जलका नित्य पान करते हैं, वे मनुष्य नहीं, इस पृथ्वीपर रहनेवाले देवता हैं। द्विजलोग यज्ञ, दान एवं तपस्यासे जिस फलको प्राप्त करते हैं, वह यहाँ स्नान करनेमात्रसे शूद्रोंको भी सुलभ हो जाता है। महापातकी मनुष्य भी पुष्कर तीर्थके दर्शनमात्रसे पापरहित हो जाते हैं और शरीर छूटनेपर स्वर्गको जाते हैं। पुष्करमें उपवास करनेसे पौण्डरीक यज्ञका फल मिलता है। जो वहाँ अपनी शक्तिके अनुसार प्रतिमास भक्तिपूर्वक ब्राह्मणको तिलका दान करता है, वह वैकुण्ठधामको प्राप्त होता है। जो मनुष्य वहाँ शुद्ध वृत्तिसे रहकर तीन राततक उपवास करते हैं और ब्राह्मणोंको धन देते हैं, वे मरनेके पश्चात् ब्रह्माका रूप धारण कर विमानपर आरूढ़ हो ब्रह्माजीके साथ सायुज्य मोक्षको प्राप्त होते हैं।

पुष्करमें गङ्गोद्भेद तीर्थ है, जहाँ नदियोंमें श्रेष्ठ गङ्गाजी सरस्वतीको देखनेके लिये आयी थीं। उस समय वहाँ आकर गङ्गाजीने कहा—'सखी! तुम बड़ी सौभाग्यशालिनी हो। तुमने देवताओंका वह दुष्कर कार्य किया है, जिसे दूसरा कोई कभी नहीं कर सकता था। महाभागे! इसीलिये देवता भी तुम्हारा दर्शन करने आये हैं। तुम मन, वाणी, शरीर और क्रियाद्वारा इनका सत्कार करो।'

पुलस्त्यजी कहते हैं—गङ्गाजीके ऐसा कहनेपर ब्रह्मकुमारी सरस्वती उन सुरेश्वरोंकी पूजा करके फिर अपनी सखियोंसे मिली। ज्येष्ठ और मध्यम पुष्करके बीच उनका विश्वविख्यात समागम हुआ था। वहाँ सरस्वतीका मुख पश्चिम दिशाकी ओर और गङ्गाका उत्तरकी ओर है। तदनन्तर, पुष्करमें आये हुए समस्त देवता सरस्वतीके दुष्कर कर्मका महत्त्व समझकर उसकी स्तुति करने लगे।

देवता बोले—देवि! तुम्हीं धृति, तुम्हीं मति, तुम्हीं लक्ष्मी, तुम्हीं विद्या और तुम्हीं परागति हो। श्रद्धा, परानिष्ठा, बुद्धि, मेधा, धृति और क्षमा भी तुम्हीं हो। तुम्हीं सिद्धि हो, तुम्हीं स्वाहा और स्वधा हो तथा तुम्हीं परम पवित्र मत (सिद्धान्त) हो। सन्ध्या, रात्रि, प्रभा, भूति, मेधा, श्रद्धा, सरस्वती, यज्ञविद्या, महाविद्या, गुह्यविद्या, सुन्दर आन्वीक्षिकी (तर्कविद्या), त्रयीविद्या (वेदत्रयी) और दण्डनीति—ये सब तुम्हारे ही नाम हैं। समुद्रको जानेवाली श्रेष्ठ नदी! तुम्हें नमस्कार है। पुण्यसलिला सरस्वती! तुम्हें नमस्कार है। पापोंसे छुटकारा दिलानेवाली देवी! तुम्हें नमस्कार है। वराङ्गने! तुम्हें नमस्कार है।

देवताओंने जब इस प्रकार उस दिव्य देवीका स्तवन किया, तब वह पूर्वाभिमुख होकर स्थित हुई। ब्रह्माजीके कथनानुसार वही प्राची सरस्वती है। सम्पूर्ण देवताओंसे युक्त होनेके कारण देवी सरस्वती सब तीर्थोंमें प्रधान हैं। वहाँ सुवावट नामका एक पितामह-सम्बन्धी तीर्थ है, जिसके दर्शनमात्रसे महापातकी पुरुष भी शुद्ध हो जाते हैं और ब्रह्माजीके समीप रहकर दिव्य भोग भोगते हैं। जो नरश्रेष्ठ वहाँ उपवास करते हैं, वे मृत्युके पश्चात् हंसयुक्त विमानपर आरूढ़ हो निर्भयतापूर्वक शिवलोकको जाते हैं। जो लोग वहाँ शुद्ध अन्तःकरणवाले ब्रह्मज्ञानी महात्माओंको थोड़ा भी दान करते हैं, उनका वह दान उन्हें सौ जन्मोंतक फल देता रहता है। जो मनुष्य वहाँ टूटे-फूटे तीर्थोंका जीर्णोद्धार करते हैं, वे ब्रह्मलोकमें जाकर सुखी एवं आनन्दित होते हैं। जो मनुष्य वहाँ ब्रह्माजीकी भक्तिके परायण हो पूजा, जप और होम करते हैं, उन्हें वह सब कुछ अनन्त पुण्यफल प्रदान करता है। उस तीर्थमें दीप-दान करनेसे ज्ञान-नेत्रकी प्राप्ति होती है, मनुष्य अतीन्द्रिय पदमें स्थित होता है और धूप-दानसे उसे ब्रह्मधाम प्राप्त होता है। अधिक क्या कहा जाय, प्राची सरस्वती और गङ्गाके सङ्गममें जो कुछ दिया जाता है, वह जीते-जी तथा मरनेके बाद भी अक्षय फल प्रदान करनेवाला होता है। वहाँ स्नान, जप और होम करनेसे अनन्त फलकी सिद्धि होती है।

भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने भी उस तीर्थमें आकर मार्कण्डेयजीके कथनानुसार अपने पिता दशरथजीके लिये पिण्ड-दान और श्राद्ध किया था। वहाँ एक चौकोर बावली है, जहाँ पिण्डदान करनेवाले मनुष्य हंसयुक्त विमानसे स्वर्गको जाते हैं। यज्ञवेत्ताओंमें श्रेष्ठ ब्रह्माजीने उस तीर्थके ऊपर उत्तम दक्षिणाओंसे युक्त पितृमेध यज्ञ (श्राद्ध) किया था। उसमें उन्होंने वसुओंको पितर, रुद्रोंको पितामह और आदित्योंको प्रपितामह नियत किया था। फिर उन तीनोंको बुलाकर कहा—'आपलोग सदा यहाँ विराजमान रहकर पिण्डदान आदि ग्रहण किया करें।' वहाँ जो पितृकार्य किया जाता है, उसका अक्षय फल होता है। पितर और पितामह सन्तुष्ट होकर उन्हें उत्तम जीविकाकी प्राप्तिके लिये आशीर्वाद देते हैं। वहाँ तर्पण करनेसे पितरोंकी तृप्ति

होती है और पिण्डदान करनेसे उन्हें स्वर्ग मिलता है। इसलिये सब कुछ छोड़कर प्राची सरस्वती तीर्थमें तुम पिण्डदान करो। प्रत्येक पुत्रका उचित है कि वह वहाँ जाकर अपने समस्त पितरोंको यत्नपूर्वक तृप्त करे। वहाँ प्राचीनेश्वर भगवान्‌का स्थान है। उसके सामने आदितीर्थ प्रतिष्ठित है, जो दर्शनमात्रसे मोक्ष प्रदान करनेवाला है। वहाँके जलका स्पर्श करके मनुष्य जन्म-मृत्युके बन्धनसे छुटकारा पा जाता है। उसमें स्नान करनेसे वह ब्रह्माजीका अनुचर होता है। जो मनुष्य आदितीर्थमें स्नान करके एकाग्रतापूर्वक थोड़े-से अन्नका भी दान करता है, वह स्वर्गलोकको प्राप्त होता है। जो विद्वान् वहाँ स्नान करके ब्रह्माजीके भक्तोंको सुवर्ण और खिचड़ी दान करता है, वह स्वर्गलोकमें सुखी एवं आनन्दित होता है। जहाँ प्राची सरस्वती विद्यमान हैं, वहाँ मनुष्य दूसरे साधनकी खोज क्यों करते हैं। प्राची सरस्वतीमें स्नान करनेसे जिस फलकी प्राप्ति होती है, उसीके लिये तो जप-तप आदि साधन किये जाते हैं। जो भगवती प्राची सरस्वतीका पवित्र जल पीते हैं, उन्हें मनुष्य नहीं, देवता समझना चाहिये—यह मार्कण्डेय मुनिका कथन है। सरस्वती नदीके तटपर पहुँचकर स्नान करनेका कोई नियम नहीं है। भोजनके बाद अथवा भोजनके पहले, दिनमें अथवा रात्रिमें भी स्नान किया जा सकता है। वह तीर्थ अन्य सब तीर्थोंकी अपेक्षा प्राचीन और श्रेष्ठ माना गया है। वह प्राणियोंके पापोंका नाशक और पुण्यजनक बतलाया गया है।

मार्कण्डेयजीके दीर्घायु होनेकी कथा और श्रीरामचन्द्रजीका लक्ष्मण और सीताके साथ पुष्करमें जाकर पिताका श्राद्ध करना तथा अजगन्ध शिवकी स्तुति करके लौटना

भीष्मजीने पूछा—मुने! मार्कण्डेयजीने वहाँ भगवान् श्रीरामचन्द्रजीको किस प्रकार उपदेश दिया तथा किस समय और कैसे उनका समागम हुआ? मार्कण्डेयजी किसके पुत्र हैं, वे कैसे महान् तपस्वी हुए तथा उनके इस नामका क्या रहस्य है? महामुने! इन सब बातोंका यथार्थ रूपसे वर्णन कीजिये।

पुलस्त्यजीने कहा—राजन्! मैं तुम्हें मार्कण्डेयजीके जन्मकी उत्तम कथा सुनाता हूँ। प्राचीन कल्पकी बात है, मृकण्डु नामसे विख्यात एक मुनि थे, जो महर्षि भृगुके पुत्र थे। वे महाभाग मुनि अपनी पत्नीके साथ वनमें रहकर तपस्या करते थे। वनमें रहते समय ही उनके एक पुत्र हुआ। धीरे-धीरे उसकी अवस्था पाँच वर्षकी हुई। वह बालक होनेपर भी गुणोंमें बहुत बढ़ा-चढ़ा था। एक दिन जब वह बालक आँगनमें घूम रहा था, किसी सिद्ध ज्ञानीने उसकी ओर देखा और बहुत देरतक ठहरकर उसके जीवनके विषयमें विचार किया। बालकके पिताने पूछा—'मेरे पुत्रकी कितनी आयु है?' सिद्ध बोला—'मुनीश्वर! विधाताने तुम्हारे पुत्रकी जो आयु निश्चित की है, उसमें अब केवल छः महीने और शेष रह गये हैं। मैंने यह सच्ची बात बतायी है, इसके लिये आपको शोक नहीं करना चाहिये।'

भीष्म! उस सिद्ध ज्ञानीकी बात सुनकर बालकके पिताने उसका उपनयन संस्कार कर दिया और कहा—'बेटा! तुम जिस किसी मुनिको देखो, प्रणाम करो।' पिताके ऐसा कहने पर वह बालक अत्यन्त हर्षमें भरकर सबको प्रणाम करने लगा। धीरे-धीरे पाँच महीने, पच्चीस दिन और बीत गये। तदनन्तर निर्मल स्वभाववाले सप्तर्षिगण उस मार्गसे पधारे। बालकने उन्हें देखकर उन सबको प्रणाम किया। सप्तर्षियोंने उस बालकको 'आयुष्मान् भव, सौम्य!' कहकर दीर्घायु होनेका आशीर्वाद दिया। इतना कहनेके बाद जब उन्होंने उसकी आयुपर विचार किया, तब पाँच ही दिनकी आयु शेष जानकर उन्हें बड़ा भय हुआ। वे उस बालक



को लेकर ब्रह्माजीके पास गये और उसे उनके सामने रख



पुष्करके पथमें—

कर उन्होंने ब्रह्माजीको प्रणाम किया। बालकने भी ब्रह्माजीके चरणोंमें मस्तक झुकाया। तब ब्रह्माजीने ऋषियोंके समीप ही उसे चिरायु होनेका आशीर्वाद दिया। पितामहका वचन सुनकर ऋषियोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। तत्पश्चात् ब्रह्माजीने उनसे पूछा—'तुमलोग किस कामसे यहाँ आये हो, तथा यह बालक कौन है? बताओ।' ऋषियोंने कहा—'यह बालक मृकण्डुका पुत्र है, इसकी आयु क्षीण हो चुकी है। इसका सबको प्रणाम करनेका स्वभाव हो गया है। एक दिन दैवात् तीर्थयात्राके प्रसङ्गसे हमलोग उधर जा निकले। यह पृथ्वीपर घूम रहा था। हमने इसकी ओर देखा और इसने हम सब लोगोंको प्रणाम किया। उस समय हमलोगोंके मुखसे बालकके प्रति यह वाक्य निकल गया—'चिरायुर्भव, पुत्र! (बेटा! चिरजीवी होओ।)' [आपने भी ऐसा ही कहा है।] अतः देव! आपके साथ हमलोग झूठे क्यों बनें?'

ब्रह्माजीने कहा—ऋषियो! यह बालक मार्कण्डेय आयुमें मेरे समान होगा। यह कल्पके आदि और अन्तमें भी श्रेष्ठ मुनियोंसे घिरा हुआ सदा जीवित रहेगा।

पुलस्त्यजी कहते हैं—इस प्रकार सप्तर्षियोंने ब्रह्माजीसे वरदान दिलवाकर उस बालकको पुनः पृथ्वीतलपर भेज दिया और स्वयं तीर्थयात्राके लिये चले गये। उनके चले जानेपर मार्कण्डेय अपने घर आये और पितासे इस प्रकार बोले—'तात! मुझे ब्रह्मवादी मुनिलोग ब्रह्मलोकमें ले गये थे। वहाँ ब्रह्माजीने मुझे दीर्घायु बना दिया। इसके बाद ऋषियोंने बहुत-से वरदान देकर मुझे यहाँ भेज दिया। अतः आपके लिये जो चिन्ताका कारण था, वह अब दूर हो गया। मैं लोककर्ता ब्रह्माजीकी कृपासे कल्पके आदि और अन्तमें तथा आगे आनेवाले कल्पमें भी जीवित रहूँगा। इस पृथ्वीपर पुष्कर तीर्थ ब्रह्मलोकके समान है; अतः अब मैं वहीं जाऊँगा।'

मार्कण्डेयजीके वचन सुनकर मुनिश्रेष्ठ मृकण्डुको बड़ा हर्ष हुआ। वे एक क्षणतक चुपचाप आनन्दकी साँस लेते रहे। इसके बाद मनके द्वारा धैर्य धारण कर इस प्रकार बोले—'बेटा! आज मेरा जन्म सफल हो गया तथा आज ही मेरा जीवन धन्य हुआ है; क्योंकि तुम्हें सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि करनेवाले भगवान् ब्रह्माजीका दर्शन प्राप्त हुआ। तुम-जैसे वंशधर पुत्रको पाकर वास्तवमें मैं पुत्रवान् हुआ हूँ। वत्स! जाओ, पुष्करमें विराजमान देवेश्वर ब्रह्माजीका दर्शन करो। उन जगदीश्वरका दर्शन कर लेनेपर मनुष्योंको बुढ़ापा और मृत्युका द्वार नहीं देखना पड़ता। उन्हें सभी प्रकारके सुख प्राप्त होते हैं तथा उनका तप और ऐश्वर्य भी अक्षय हो जाते हैं। तात! जिस कार्यको मैं भी न कर सका, मेरे किसी कर्मसे जिसकी सिद्धि न हो सकी, उसे तुमने बिना यत्नके ही सिद्ध कर लिया। सबके प्राण लेनेवाली मृत्युको भी जीत लिया। अतः दूसरा कोई मनुष्य इस पृथ्वीपर तुम्हारी समानता नहीं कर सकता। पाँच वर्षकी अवस्थामें ही तुमने मुझे पूर्ण सन्तुष्ट कर दिया; अतः मेरे वरदानके प्रभावसे तुम चिरजीवी महात्माओंके आदर्श माने जाओगे, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। मेरा तो ऐसा आशीर्वाद है ही, तुम्हारे लिये और सब लोग भी यही कहते हैं कि 'तुम अपनी इच्छाके अनुसार उत्तम लोकोंमें जाओगे।'

पुलस्त्यजी कहते हैं—इस प्रकार ऋषियों और गुरुजनोंका अनुग्रह प्राप्त करके मृकण्डुनन्दन मार्कण्डेयजीने पुष्कर तीर्थमें जाकर एक आश्रम स्थापित किया, जो मार्कण्डेय-आश्रमके नामसे प्रसिद्ध है। वहाँ स्नान करके पवित्र हो मनुष्य वाजपेय यज्ञका फल प्राप्त करता है। उसका अन्तःकरण सब पापोंसे मुक्त हो जाता है तथा उसे दीर्घ आयु प्राप्त होती है। अब मैं दूसरे प्राचीन इतिहासका वर्णन करता हूँ। श्रीरामचन्द्रजीने जिस प्रकार पुष्कर तीर्थका निर्माण किया, वह प्रसङ्ग आरम्भ करता हूँ। पूर्वकालमें श्रीरामचन्द्रजी जब सीता और लक्ष्मणके साथ चित्रकूटसे चलकर महर्षि अत्रिके आश्रमपर पहुँचे, तब वहाँ उन्होंने मुनिश्रेष्ठ अत्रिसे पूछा—'महामुने! इस पृथ्वीपर कौन-कौन-से पुण्यमय तीर्थ अथवा कौन-सा ऐसा क्षेत्र है, जहाँ जाकर मनुष्यको अपने बन्धुओंके वियोगका दुःख नहीं उठाना पड़ता? भगवन्! यदि ऐसा कोई स्थान हो तो वह मुझे बताइये।'

अत्रि बोले—रघुवंशका विस्तार करनेवाले वत्स श्रीराम! तुमने बड़ा उत्तम प्रश्न किया है। मेरे पिता ब्रह्माजीके द्वारा निर्मित एक उत्तम तीर्थ है, जो पुष्कर नामसे विख्यात है। वहाँ दो प्रसिद्ध पर्वत हैं, जिन्हें मर्यादा-पर्वत और यज्ञ-पर्वत कहते हैं। उन दोनोंके बीचमें तीन कुण्ड हैं, जिनके नाम क्रमशः ज्येष्ठ पुष्कर, मध्यम पुष्कर और कनिष्ठ पुष्कर हैं। वहाँ जाकर अपने पिता दशरथको तुम पिण्डदानसे तृप्त करो। वह तीर्थोंमें श्रेष्ठ तीर्थ और क्षेत्रोंमें उत्तम क्षेत्र है। रघुनन्दन! वहाँ अवियोगा नामकी एक चौकोर बावली है तथा एक दूसरा

जलसे युक्त कुँआ है, जिसे सौभाग्य कूप कहते हैं। वहाँपर पिण्डदान करनेसे पितरोंकी मुक्ति हो जाती है। यह तीर्थ प्रलयपर्यन्त रहता है, ऐसा पितामहका कथन है।

पुलस्त्यजी कहते हैं—'बहुत अच्छा!' कहकर श्रीरामचन्द्रजीने पुष्कर जानेका विचार किया। वे ऋक्षवान् पर्वत, विदिशा नगरी तथा चर्मण्वती नदीको पार करके यज्ञ पर्वतके पास जा पहुँचे। फिर बड़े वेगसे उस पर्वतको भी पार करके वे मध्यम पुष्करमें गये। वहाँ स्नान करके उन्होंने मध्यम पुष्करके ही जलसे समस्त देवताओं और पितरोंका तर्पण किया। उसी समय मुनिश्रेष्ठ मार्कण्डेयजी अपने शिष्योंके साथ वहाँ आये। श्रीरामचन्द्रजीने जब उन्हें देखा तो सामने जाकर प्रणाम किया और बड़े आदरके साथ कहा—'मुने! मैं राजा दशरथका पुत्र हूँ, मुझे लोग राम कहते हैं। मैं महर्षि अत्रि की आज्ञासे अवियोगा नामकी बावलीका दर्शन करनेके लिये यहाँ आया हूँ। विप्रवर! बताइये, वह स्थान कहाँ है?'

मार्कण्डेयजीने कहा—रघुनन्दन! इसके लिये मैं आप को साधुवाद देता हूँ, आपका कल्याण हो। आपने यह बड़े पुण्य का कार्य किया कि तीर्थ यात्राके प्रसङ्गसे यहाँतक चले आये। यहाँसे अब आप आगे चलिये और 'अवियोगा' नामकी बावली का दर्शन कीजिये। वहाँ सबका सभी आत्मीयजनोंके साथ संयोग होता है। इहलोक या परलोकमें स्थित, जीवित या मृत—सभी प्रकारके बन्धुओंसे भेंट होती है।

मुनीश्वर मार्कण्डेयजीके ये वचन सुनकर श्रीरामचन्द्र जीने महाराज दशरथ, भरत, शत्रुघ्न, माताओं तथा अन्य पुरवासीजनोंका स्मरण किया। इस प्रकार सबका चिन्तन करते-करते सूर्य अस्त हो गया। तब श्रीरघुनाथजीने मुनियोंके साथ सायंकालका सन्ध्योपासन किया। तत्पश्चात् रात्रिमें भाई और पत्नीके साथ वहाँ शयन किया। जब रात्रिका अन्तिम प्रहर व्यतीत होने लगा, तब श्रीरघुनाथजीने स्वप्नमें देखा कि पिताजी तथा अन्य सम्बन्धियोंके साथ अयोध्यामें विराजमान हैं। वैवाहिक मङ्गल-कार्य समाप्त करके वे बहुत से बन्धु-बान्धवोंके साथ ऋषियोंसे घिरे बैठे हैं। साथमें पत्नी सीता भी मौजूद हैं।' लक्ष्मण और सीताने भी इसी रूपमें श्रीरघुनाथजीको देखा। सवेरा होनेपर उन्होंने मुनियोंसे सारी बातें निवेदन कीं, जिन्हें सुनकर ऋषियोंने कहा—'रघुनन्दन! यह स्वप्न सत्य है, परन्तु मृत पुरुषका जब स्वप्नमें दर्शन हो तो उसके लिये श्राद्ध करना आवश्यक माना गया है। सन्तानके अभ्युदयकी कामना रखनेवाले तथा अन्न चाहनेवाले पितर ही भक्त सन्तानको स्वप्नमें दर्शन देते हैं। आपका पितासे तो वियोग था ही, माता और भरतके साथ भी चौदह वर्षतक वियोग रहता। वीर! अब आप राजा दशरथका श्राद्ध कीजिये। ये सभी ऋषि-महर्षि आपके भक्त हैं और आपके शुभ कार्यमें सहयोग देनेके लिये प्रस्तुत हैं। मैं (मार्कण्डेय), जमदग्नि, भरद्वाज, लोमश, देवरात और शमीक—ये छः श्रेष्ठ द्विज श्राद्धमें उपस्थित रहेंगे। महाबाहो! आप केवल सामान जुटाइये। श्राद्धमें प्रधान वस्तु तो है इङ्गुदी (हिंगोट) की खली, बेर और आँवले। इनके साथ पके हुए बेल तथा भाँति-भाँतिके मूल होने चाहिये। इन सब वस्तुओंसे तथा श्राद्ध-सम्बन्धी दानके द्वारा आप ब्राह्मणोंको तृप्त कीजिये। सुव्रत! पुष्करके वनमें आकर जो नियमपूर्वक रहता और नियमित आहार करके [श्राद्ध आदि के द्वारा] पितरोंको तृप्त करता है, उसे अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है। श्रीराम! [आप श्राद्धकी सामग्री एकत्रित कराइये,] हमलोग स्नान करनेके लिये ज्येष्ठ पुष्करमें जा रहे हैं।'

श्रीरघुनाथजीसे ऐसा कहकर वे सभी ऋषि चले गये। तब श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मणसे कहा—'सुमित्रानन्दन! अच्छे अच्छे सतरे, कटहल, पारद, मीठे बेल, शालूक, कसेरू, पीली काबरा, अच्छे-अच्छे बेर, शक्कर-जैसे सिंघाड़े, पके बैर तथा और भी जो सामयिक फल हों, उन्हें श्राद्ध के लिये शीघ्र ही ले आओ।' श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञा पाकर लक्ष्मणने सारा सामान एकत्रित कर दिया। जानकीजीने भोजन बनाया और तैयार हो जानेपर श्रीरामचन्द्रजीको सूचित कर दिया। श्रीराम भी अवियोगा नामकी बावलीमें स्नान करके मुनियोंके आगमनकी प्रतीक्षा करने लगे। दुपहरी के बाद जब सूर्य ढलने लगे और कुतप नामकी बेला उपस्थित हुई, उस समय श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा निमन्त्रित सम्पूर्ण ऋषि वहाँ आ पहुँचे। मुनियोंको आया देख विदेहकुमारी सीता वहाँसे दूर हट गयीं और झाड़ियोंकी आड़में छिपकर बैठ गयीं। श्रीरामचन्द्रजीने स्मृतियोंमें बतायी हुई विधिके अनुसार ब्राह्मणोंको भोजन कराया तथा मनुष्योंके श्राद्धके लिये जो वैदिक क्रिया बतलायी गयी है, वह सब सम्पन्न की। फिर वैश्वदेव करके पुराणोक्त विधिका भी पालन किया। ब्राह्मणों



के भोजन कर चुकनेपर क्रमशः पिण्ड देनेके पश्चात् ब्राह्मणों-को विदा किया। उनके चले जानेपर श्रीरामचन्द्रजीने अपनी प्रिया सीतासे कहा—'प्रिये! यहाँ आये हुए मुनियोंको देखकर तुम छिप क्यों गयीं? इसका सारा कारण मुझे शीघ्र बताओ।'

सीता बोलीं—नाथ! मैंने जो आश्चर्य देखा, उसे [बताती हूँ,] सुनिये। आपके द्वारा नामोच्चारण होते ही स्वर्गीय महाराज यहाँ आकर उपस्थित हो गये। उनके साथ उन्हींके समान रूप-रेखावाले दो पुरुष और आये थे, जो सब प्रकारके आभूषण धारण किये हुए थे। वे तीनों ही ब्राह्मणों-के शरीरसे सटे हुए थे। रघुनन्दन! ब्राह्मणोंके अङ्गोंमें मुझे पितरोंके दर्शन हुए। उन्हें देखकर मैं लज्जाके मारे आपके पाससे हट गयी। इसीलिये आपने अकेले ही ब्राह्मणोंको भोजन कराया और विधिपूर्वक श्राद्धकी क्रिया भी सम्पन्न की। भला, मैं स्वर्गीय महाराजके सामने कैसे खड़ी होती। यह आपसे मैंने सच्ची बात बतायी है।

पुलस्त्यजी कहते हैं—यह सुनकर श्रीरघुनाथजी बहुत प्रसन्न हुए और प्रिय वचन बोलनेवाली प्रियतमा सीताको बड़े आदरके साथ हृदयसे लगा लिया। तत्पश्चात् श्रीराम और लक्ष्मण दोनों वीरोंने भोजन किया। उनके बाद जानकीजीने स्वयं भी भोजन किया। इस प्रकार दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण तथा सीताने वह रात वहीं बितायी। दूसरे दिन सूर्योदय होनेपर सबने जानेका निश्चय किया। श्रीरामचन्द्रजी पश्चिमकी ओर चले और एक कोस चलकर ज्येष्ठ पुष्करके पास जा पहुँचे। श्रीरघुनाथजी ज्यों ही जाकर पुष्करके पूर्वमें खड़े हुए, त्यों ही उन्हें देवदूतके कहे हुए ये वचन सुनायी दिये—'रघुनन्दन! आपका कल्याण हो। यह तीर्थ अत्यन्त दुर्लभ है। वीरवर! इस स्थानपर कुछ कालतक निवास कीजिये; क्योंकि आपको देवताओंका कार्य सिद्ध करना—देवशत्रुओंका वध करना है।' यह सुनकर श्रीरामचन्द्रजीके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई, उन्होंने लक्ष्मणसे कहा—'सुमित्रानन्दन! देवाधिदेव ब्रह्मा-जीने हमलोगोंपर अनुग्रह किया है। अतः मैं यहाँ आश्रम बनाकर एक मासतक रहना तथा शरीरकी शुद्धि करनेवाले उत्तम व्रतका आचरण करना चाहता हूँ।' लक्ष्मणने 'बहुत अच्छा' कहकर उनकी बातका अनुमोदन किया। तत्पश्चात् वहाँ अपना व्रत पूर्ण करके वे दोनों भाई चले और पुष्कर क्षेत्रकी सीमा मर्यादा-पर्वतके पास जा पहुँचे। वहाँ देवताओंके स्वामी पिनाकधारी देव-देव महादेवजीका स्थान था। वे वहाँ अजगन्धके नामसे प्रसिद्ध थे। श्रीरामचन्द्रजीने वहाँ जाकर त्रिनेत्रधारी भगवान् उमानाथको साष्टाङ्ग प्रणाम किया। उनके दर्शनसे श्रीरघुनाथजीके श्रीविग्रहमें रोमाञ्च हो आया। वे सात्त्विक भावमें स्थित हो गये। उन्होंने देवेश्वर भगवान् श्रीशिवको ही जगत्का कारण समझा और विनम्रभावसे स्थित हो उनकी स्तुति करने लगे।

श्रीरामचन्द्रजी बोले—

कृत्स्नस्य योऽस्य जगतः सचराचरस्य
कर्ता कृतस्य च तथा सुखदुःखहेतुः।
संहारहेतुरपि यः पुनरन्तकाले
तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि॥

जो चराचर प्राणियोंसहित इस सम्पूर्ण जगत्को उत्पन्न करनेवाले हैं, उत्पन्न हुए जगत्के सुख-दुःखमें एकमात्र कारण हैं तथा अन्तकालमें जो पुनः इस विश्वके संहारमें भी कारण बनते हैं, उन शरणदाता भगवान् श्रीशङ्करकी मैं शरण लेता हूँ।

यं योगिनो विगतमोहतमोरजस्का
भक्त्यैकतानमनसो विनिवृत्तकामाः।

ध्यायन्ति निश्चलधियोऽमितदिव्यभावं
तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥

जिनके हृदयसे मोह, तमोगुण और रजोगुण दूर हो गये हैं, भक्तिके प्रभावसे जिनका चित्त भगवान्‌के ध्यानमें लीन हो रहा है, जिनकी सम्पूर्ण कामनाएँ निवृत्त हो चुकी हैं और जिनकी बुद्धि स्थिर हो गयी है, ऐसे योगी पुरुष अपरिमेय दिव्यभावसे सम्पन्न जिन भगवान् शिवका निरन्तर ध्यान करते रहते हैं, उन शरणदाता भगवान् श्रीशङ्करकी मैं शरण लेता हूँ ।

यश्चेन्दुखण्डममलं विलसन्मयूखं
बद्ध्वा सदा प्रियतमां शिरसा बिभर्ति ।
यश्चार्धदेहमददाद् गिरिराजपुत्र्यै
तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥

जो सुन्दर किरणोंसे युक्त निर्मल चन्द्रमाकी कलाको जटाजूटमें बाँधकर अपनी प्रियतमा गङ्गाजीको मस्तकपर धारण करते हैं, जिन्होंने गिरिराजकुमारी उमाको अपना आधा शरीर दे दिया है, उन शरणदाता भगवान् श्रीशङ्करकी मैं शरण लेता हूँ ।

योऽयं सकृद्विमलचारुविलोलतोयां
गङ्गां महोर्मिविषमां गगनात् पतन्तीम् ।
मूर्ध्नाऽऽददे स्रजमिव प्रतिलोलपुष्पां
तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥

आकाशसे गिरती हुई गङ्गाको, जो स्वच्छ, सुन्दर एवं चञ्चल जलराशिसे युक्त तथा ऊँची-ऊँची लहरोंसे उल्लसित होनेके कारण भयङ्कर जान पड़ती थीं, जिन्होंने हिलते हुए फूलोंसे सुशोभित मालाकी भाँति सहसा अपने मस्तकपर धारण कर लिया, उन शरणदाता भगवान् श्रीशङ्करकी मैं शरण लेता हूँ ।

कैलासशैलशिखरं प्रतिकम्प्यमानं
कैलासशृङ्गसदृशेन दशाननेन ।
यः पादपद्मपरिवादनमादधान-
स्तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥

कैलास पर्वतके शिखरके समान ऊँचे शरीरवाले दशमुख रावणके द्वारा हिलायी जाती हुई कैलास गिरिकी चोटीको जिन्होंने अपने चरणकमलसे ताल देकर स्थिर कर दिया, उन शरणदाता भगवान् श्रीशङ्करकी मैं शरण लेता हूँ ।

येनासकृद् दितिसुताः समरे निरस्ता
विद्याधरोरगगणाश्च वरैः समग्राः ।
संयोजिता मुनिवराः फलमूलभक्षा-
स्तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥

जिन्होंने अनेकों बार दैत्योंको युद्धमें परास्त किया है और विद्याधर, नागगण तथा फल-मूलका आहार करनेवाले सम्पूर्ण मुनिवरोंको उत्तम वर दिये हैं, उन शरणदाता भगवान् श्रीशङ्करकी मैं शरण लेता हूँ ।

दग्ध्वाध्वरं च नयने च तथा भगस्य
पूष्णस्तथा दशनपङ्क्तिमपातयच्च ।
तस्तम्भ यः कुलिशयुक्तमहेन्द्रहस्तं
तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥

जिन्होंने दक्षका यज्ञ भस्म करके भग देवताकी आँखें फोड़ डालीं और पूषाके सारे दाँत गिरा दिये तथा वज्रसहित देवराज इन्द्रके हाथको भी स्तम्भित कर दिया—जड़वत् निश्चेष्ट बना दिया, उन शरणदाता भगवान् श्रीशङ्करकी मैं शरण लेता हूँ ।

एनस्कृतोऽपि विषयेष्वपि सक्तभावा
ज्ञानान्वयश्रुतगुणैरपि नैव युक्ताः ।
यं संश्रिताः सुखभुजः पुरुषा भवन्ति
तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥

जो पापकर्ममें निरत और विषयासक्त हैं, जिनमें उत्तम ज्ञान, उत्तम कुल, उत्तम शास्त्र-ज्ञान और उत्तम गुणोंका भी अभाव है—ऐसे पुरुष भी जिनकी शरणमें जानेसे सुखी हो जाते हैं, उन शरणदाता भगवान् श्रीशङ्करकी मैं शरण लेता हूँ ।

अत्रिप्रसूतिरविकोटिसमानतेजाः
संत्रासनं विबुधदानवसत्तमानाम् ।
यः कालकूटमपिबत् समुदीर्णवेगं
तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥

जो तेजमें करोड़ों चन्द्रमाओं और सूर्योंके समान हैं, जिन्होंने बड़े-बड़े देवताओं तथा दानवोंका भी दिल दहला देनेवाले कालकूट नामक भयङ्कर विषका पान कर लिया था, उन प्रचण्ड वेगशाली शरणदाता भगवान् श्रीशङ्करकी मैं शरण लेता हूँ ।

ब्रह्मेन्द्ररुद्रमरुतां च सषण्मुखानां
योऽदाद् वरांश्च बहुशो भगवान् महेशः ।

नन्दिं च मृत्युवदनात् पुनरुज्जहार
तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥

जिन भगवान् महेश्वरने कार्त्तिकेयके सहित ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र तथा मरुद्गणोंको अनेकों बार वर दिये हैं तथा नन्दीका मृत्युके मुखसे उद्धार किया, उन शरणदाता भगवान् श्रीशङ्करकी मैं शरण लेता हूँ।

आराधितः सुतपसा हिमवन्निकुञ्जे
धूम्रव्रतेन मनसापि परैरगम्यः।
सञ्जीवनीं समददाद् भृगवे महात्मा
तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥

जो दूसरोंके लिये मनसे भी अगम्य हैं, महर्षि भृगुने हिमालय पर्वतके निकुञ्जमें होमका धुआँ पीकर कठोर तपस्याके द्वारा जिनकी आराधना की थी तथा जिन महात्माने भृगुको [उनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर] सञ्जीवनी विद्या प्रदान की, उन शरणदाता भगवान् श्रीशङ्करकी मैं शरण लेता हूँ।

नानाविधैर्गजविडालसमानवक्त्रै-
र्दक्षाध्वरप्रमथनैर्बलिभिर्गणौघैः।
योऽभ्यर्च्यतेऽमरगणैश्च सलोकपालै-
स्तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥

हाथी और बिल्ली आदिकी-सी मुखाकृतिवाले तथा दक्ष-यज्ञका विनाश करनेवाले नाना प्रकारके महाबली गणोंद्वारा जिनकी निरन्तर पूजा होती रहती है तथा लोकपालोंसहित देवगण भी जिनकी आराधना किया करते हैं, उन शरणदाता भगवान् श्रीशङ्करकी मैं शरण लेता हूँ।

क्रीडार्थमेव भगवान् भुवनानि सप्त
नानानदीविहगपादपमण्डितानि।
सब्रह्मकानि व्यसृजत् सुकृताहितानि
तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥

जिन भगवान्ने अपनी क्रीडाके लिये ही अनेकों नदियों, पक्षियों और वृक्षोंसे सुशोभित एवं ब्रह्माजीसे अधिष्ठित सातों भुवनोंकी रचना की है तथा जिन्होंने सम्पूर्ण लोकोंको अपने पुण्यपर ही प्रतिष्ठित किया है, उन शरणदाता भगवान् श्रीशङ्करकी मैं शरण लेता हूँ।

यस्याखिलं जगदिदं वशवर्त्ति नित्यं
योऽष्टाभिरेव तनुभिर्भुवनानि भुङ्क्ते।
यः कारणं सुमहतामपि कारणानां
तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥

यह सम्पूर्ण विश्व सदा ही जिनकी आज्ञाके अधीन है, जो [जल, अग्नि, यजमान, सूर्य, चन्द्रमा, आकाश, वायु और प्रकृति — इन] आठ विग्रहोंसे समस्त लोकोंका उपभोग करते हैं तथा जो बड़े-से बड़े कारण-तत्त्वोंके भी महाकारण हैं, उन शरणदाता भगवान् श्रीशङ्करकी मैं शरण लेता हूँ।

शङ्खेन्दुकुन्दधवलं वृषभप्रवीर-
मारुह्य यः क्षितिधरेन्द्रसुतानुयातः।
यात्यम्बरे हिमविभूतिविभूषिताङ्ग-
स्तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥

जो अपने श्रीविग्रहको हिम और भस्मसे विभूषित करके शङ्ख, चन्द्रमा और कुन्दके समान श्वेत वर्णवाले वृषभश्रेष्ठ नन्दीपर सवार होकर गिरिराजकिशोरी उमाके साथ आकाशमें विचरते हैं, उन शरणदाता भगवान् श्रीशङ्करकी मैं शरण लेता हूँ।

शान्तं मुनिं यमनियोगपरायणं तै-
र्भीमैर्यमस्य पुरुषैः प्रतिनीयमानम्।
भक्त्या नतं स्तुतिपरं प्रसभं ररक्ष
तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥

यमराजकी आज्ञाके पालनमें लगे रहनेपर भी जिन्हें वे भयङ्कर यमदूत पकड़कर लिये जा रहे थे तथा जो भक्तिसे नम्र होकर स्तुति कर रहे थे, उन शान्त मुनिकी जिन्होंने बलपूर्वक यमदूतोंसे रक्षा की, उन शरणदाता भगवान् श्रीशङ्करकी मैं शरण लेता हूँ।

यः सव्यपाणिकमलाग्रनखेन देव-
स्तत् पञ्चमं प्रसभमेव पुरः सुराणाम्।
ब्राह्मं शिरस्तरुणपद्मनिभं चकर्त
तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥

जिन्होंने समस्त देवताओंके सामने ही ब्रह्माजीके उस पाँचवें मस्तकको, जो नवीन कमलके समान शोभा पा रहा था, अपने बायें हाथके नखसे बलपूर्वक काट डाला था, उन शरणदाता भगवान् श्रीशङ्करकी मैं शरण लेता हूँ।

यस्य प्रणम्य चरणौ वरदस्य भक्त्या
स्तुत्वा च वाग्भिरमलाभिरतन्द्रिताभिः।

दीप्तैर्न्मासि मुदते स्वकरैर्विवस्वा
त्वं शङ्कर शरणद शरणं व्रजामि ॥

'जिन वरदायक भगवान्‌के चरणोंमें भक्तिपूर्वक प्रणाम करके तथा आलस्यरहित निर्मल वाणीके द्वारा जिनकी स्तुति करके सूर्यदेव अपनी उद्दीप्त किरणोंसे जगत्‌का अन्धकार दूर करते हैं, उन शरणदाता भगवान् श्रीशङ्करकी मैं शरण लेता हूँ।

ये त्वां सुरोत्तम गुरुं पुरुषा विमूढा
जानन्ति नास्य जगतः सचराचरस्य।
ऐश्वर्यमाननिगमानुशयेन पश्चा-
त्ते यातना त्वनुभवन्त्यविशुद्धचित्ताः ॥

देवश्रेष्ठ! जो मलिनहृदय मूढ़ पुरुष ऐश्वर्य, मान प्रतिष्ठा तथा वेदविद्याके अभिमानके कारण आपको इस चराचर जगत्‌का गुरु नहीं जानते, वे मृत्युके पश्चात् नरककी यातना भोगते हैं।

पुलस्त्यजी कहते हैं—*श्रीरघुनाथजीके इस प्रकार स्तुति करनेपर हाथमें त्रिशूल धारण करनेवाले वृषभध्वज भगवान् श्रीशङ्करने सन्तुष्ट हो हर्षमें भरकर कहा—'रघुनन्दन! आपका कल्याण हो। मैं आपके ऊपर बहुत सन्तुष्ट हूँ। आपने विमल वंशमें अवतार लिया है। आप जगत्‌के वन्दनीय हैं। मानव शरीरमें प्रकट होनेपर भी वास्तवमें आप देवस्वरूप हैं। आपजैसे रक्षकके द्वारा सुरक्षित हो देवता अनन्त वर्षोंतक सुखी रहेंगे। चिरकालतक उनकी वृद्धि होती रहेगी। चौदहवाँ वर्ष बीतनेपर जब आप अयोध्याको लौट जायँगे, उस समय इस पृथ्वीपर रहनेवाले जो जो मनुष्य आपका दर्शन करेंगे, वे सभी सुखी होंगे तथा उन्हें अक्षय स्वर्गका निवास प्राप्त होगा। अतः आप देवताओंका महान् कार्य करके पुनः अयोध्यापुरीको लौट जाइये।*

यह सुनकर श्रीरघुनाथजी श्रीशङ्करजीको प्रणाम करके शीघ्र ही वहाँसे चल दिये। इन्द्रमार्गा नदीके पास पहुँचकर उन्होंने अपनी जगह बाँधी। फिर सब लोग महानदी नर्मदाके तटपर गये। वहाँ श्रीरामचन्द्रजीने लक्ष्मण और सीताके साथ स्नान किया तथा नर्मदाके जलसे देवताओं और अपने पितरोंका तर्पण किया। इसके बाद उन दोनों भाइयोंने एकाग्र मनसे भगवान् सूर्य तथा अन्यान्य देवताओंको बारबार मस्तक झुकाया। जैसे भगवान् श्रीशङ्कर पार्वती और कार्तिकेयके साथ स्नान करके शोभा पाते हैं, उसी प्रकार सीता और लक्ष्मणके साथ नर्मदामें नहाकर श्रीरामचन्द्रजी भी सुशोभित हुए।

ब्रह्माजीके यज्ञके ऋत्विजोंका वर्णन, सब देवताओंको ब्रह्माद्वारा वरदानकी प्राप्ति, श्रीविष्णु और श्रीशिवद्वारा ब्रह्माजीकी स्तुति तथा ब्रह्माजीके द्वारा भिन्न-भिन्न तीर्थोंमें अपने नामों और पुष्करकी महिमाका वर्णन

भीष्मजीने पूछा—ब्रह्मन्! लोकविधाता भगवान् ब्रह्माजीने किस समय यज्ञसम्बन्धी सामग्रियाँ एकत्रित करके उनसे यज्ञ करना आरम्भ किया? वह यज्ञ जैसा और जिस प्रकार हुआ था, वह सब मुझे बताइये।

पुलस्त्यजीने कहा—राजन्! यह तो मैं पहले ही बता चुका हूँ कि जब स्वायम्भुव मनु भूलोकके राज्य सिंहासनपर प्रतिष्ठित हुए, उस समय ब्रह्माजीने समस्त प्रजापतियोंको उत्पन्न करके कहा—'तुमलोग सृष्टि करो,' और स्वयं वे पुष्करमें जा यज्ञ-सामग्री एकत्रित करके अग्निशालामें स्थित हो यज्ञ करने लगे। ब्रह्माजी समस्त देवताओं, गन्धर्वों तथा अप्सराओंको भी वहाँ ले गये थे। ब्रह्मा, उद्गाता, होता और अध्वर्यु—ये चार प्रधानरूपसे यज्ञके निर्वाहक होते हैं। इनमेंसे प्रत्येकके साथ अन्य तीन व्यक्ति परिवाररूपमें रहते हैं, जिन्हें ये स्वयं ही निर्वाचित करते हैं। ब्रह्मा, ब्राह्मणाच्छंसी, पोता तथा आग्नीध्र—इन चार व्यक्तियोंका एक समुदाय होता है। इन सबको ब्रह्माका परिवार कहते हैं। ये चारों व्यक्ति आन्वीक्षिकी (तर्क शास्त्र) तथा वेदविद्यामें प्रवीण होते हैं। उद्गाता, प्रस्तोता, प्रतिहर्ता और सुब्रह्मण्य—इन चार व्यक्तियोंका दूसरा समुदाय उद्गाताका परिवार कहलाता है। होता, मैत्रावरुणि, अच्छावाक और ग्रावस्तुत्—इन चार व्यक्तियोंका तीसरा समुदाय उद्गाताका परिवार होता है। अध्वर्यु, प्रतिप्रस्थाता, नेष्टा और उन्नेता—इन चारोंका चौथा समुदाय अध्वर्युका परिवार माना गया है। शान्तनुनन्दन! वेदके प्रधान प्रधान विद्वानोंने ये सोलह

ऋत्विज् बताये हैं। स्वयम्भू ब्रह्माजीने तीन सौ छाछठ यज्ञोंकी सृष्टि की है। उन सबमें इतने ही ब्राह्मण ऋत्विज् बतलाये गये हैं। कोई-कोई ऊपर बताये हुए ऋत्विजोंके अतिरिक्त एक सदस्य और दस चमसाध्वर्युओंका निर्वाचन चाहते हैं।

ब्रह्माजीके यज्ञमें देवर्षि नारदको ब्रह्मा बनाया गया। गौतम ब्राह्मणाच्छंसी हुए। देवरातको पोता और देवलको आग्नीध्रके पदपर प्रतिष्ठित किया गया। अङ्गिराका उद्गाताके रूपमें वरण हुआ। पुलह प्रस्तोता बनाये गये। नारायण ऋषि प्रतिहर्ता हुए और अत्रि सुब्रह्मण्य कहलाये। उस यज्ञमें भृगु होता, वसिष्ठ मैत्रावरुणि, क्रतु अच्छावाक तथा च्यवन ग्रावस्तुत् बनाये गये। मैं (पुलस्त्य) अध्वर्यु था और शिवि प्रतिप्रस्थाता। बृहस्पति नेष्टा, सांशपायन उन्नेता और अपने पुत्र-पौत्रोंके साथ धर्म सदस्य थे। भरद्वाज, शमीक, पुरुकुत्स्य, युगन्धर, एणक, ताण्डिक, कोण, कुतप, गार्ग्य और वेदशिरा—ये दस चमसाध्वर्यु बनाये गये। कण्व आदि अन्य महर्षि तथा मार्कण्डेय और अगस्त्य मुनि अपने पुत्र, पौत्र, शिष्य तथा बान्धवोंके साथ उपस्थित होकर रात-दिन आलस्य छोड़कर उस यज्ञमें आवश्यक कार्य किया करते थे। मन्वन्तर व्यतीत होनेपर उस यज्ञका अवभृथ (यज्ञान्त-स्नान) हुआ। उस समय ब्रह्माको पूर्व दिशा, होताको दक्षिण दिशा, अध्वर्युको पश्चिम दिशा और उद्गाताको उत्तर दिशा दक्षिणाके रूपमें दी गयी। ब्रह्माजीने समूची त्रिलोकी ऋत्विजोंको दक्षिणाके रूपमें दे दी। बुद्धिमान् पुरुषोंको यज्ञकी सिद्धिके लिये एक सौ दूध देनेवाली गौएँ दान करनी चाहिये। उनमेंसे यज्ञका निर्वाह करनेवाले प्रथम समुदायके ऋत्विजोंको अड़तालीस, द्वितीय समुदायवालोंको चौबीस, तृतीय समुदायको सोलह और चतुर्थ समुदायको बारह गौएँ देनी उचित हैं। इस प्रकार आग्नीध्र आदिको दक्षिणा देनी चाहिये। इसी संख्यामें गाँव, दास-दासी तथा भेड़-बकरियाँ भी देनी चाहिये। अवभृथ-स्नानके बाद ब्राह्मणोंको षट्रस भोजन देना चाहिये। स्वायम्भुव मनुका कथन है कि यजमान यज्ञके अन्तमें अपना सर्वस्व दान कर दे। अध्वर्यु और सदस्योंको अपनी इच्छाके अनुसार जितना हो सके दान देना चाहिये।

तदनन्तर देवाधिदेव ब्रह्माजीने भगवान् श्रीविष्णुके साथ यज्ञान्त-स्नानके पश्चात् सब देवताओंको वरदान दिये। उन्होंने इन्द्रको देवताओंका, सूर्यको ग्रहोंसहित समस्त ज्योतिर्मण्डलका, चन्द्रमाको नक्षत्रोंका, वरुणको रसोंका, दक्षको प्रजापतियोंका, समुद्रको नदियोंका, धनाध्यक्ष कुबेरको यक्ष और राक्षसोंका, पिनाकधारी महादेवजीको सम्पूर्ण भूतगणोंका, मनुको मनुष्योंका, गरुड़को पक्षियोंका तथा वसिष्ठको ऋषियोंका स्वामी बनाया। इस प्रकार अनेकों वरदान देकर देवाधिदेव ब्रह्माजीने भगवान् विष्णु और शङ्करसे आदरपूर्वक कहा—'आप दोनों पृथ्वीके समस्त तीर्थोंमें परम पूजनीय होंगे। आपके बिना कभी कोई भी तीर्थ पवित्र नहीं होगा। जहाँ कहीं शिवलिङ्ग या विष्णुकी प्रतिमाका दर्शन होगा, वही तीर्थ परम पवित्र और श्रेष्ठ फल देनेवाला हो सकता है। जो लोग पुष्प आदि वस्तुओंकी भेंट चढ़ाकर आपलोगोंकी तथा मेरी पूजा करेंगे, उन्हें कभी रोगका भय नहीं होगा। जिन राज्योंमें मेरा तथा आपलोगोंका पूजन आदि होगा, वहाँ भी क्रियाएँ सफल होंगी। तथा और भी जिन-जिन फलोंकी प्राप्ति होगी, उन्हें सुनिये। वहाँकी प्रजाको कभी मानसिक चिन्ता, शारीरिक रोग, दैवी उपद्रव और क्षुधा आदिका भय नहीं होगा। प्रियजनोंसे वियोग और अप्रिय मनुष्योंसे संयोगकी भी सम्भावना नहीं होगी।' यह सुनकर भगवान् श्रीविष्णु ब्रह्माजीकी स्तुति करनेको उद्यत हुए।

भगवान् श्रीविष्णु बोले—जिनका कभी अन्त नहीं होता, जो विशुद्धचित्त और आत्मस्वरूप हैं, जिनके हजारों भुजाएँ हैं, जो सहस्र किरणोंवाले सूर्यकी भी उत्पत्तिके कारण हैं, जिनका शरीर और कर्म दोनों अत्यन्त शुद्ध हैं, उन सृष्टिकर्ता ब्रह्माजीको नमस्कार है। जो समस्त विश्वकी पीड़ा हरनेवाले, कल्याणकारी, सहस्रों सूर्य और अग्निके समान प्रचण्ड तेजस्वी, सम्पूर्ण विद्याओंके आश्रय, चक्रधारी तथा समस्त ज्ञानेन्द्रियोंको व्याप्त करके स्थित हैं, उन परमेश्वरको सदा नमस्कार है। प्रभो! आप अनादि देव हैं। अपनी महिमासे कभी च्युत नहीं होते। इसलिये 'अच्युत' हैं। आप शङ्कररूपसे शेषनागका मुकुट धारण करते हैं, इसलिये 'शेषशेखर' हैं। महेश्वर! आप ही भूत और वर्तमानके स्वामी हैं। सर्वेश्वर! आप मरुद्गणोंके, जगत्के, पृथ्वीके तथा समस्त भुवनोंके पति हैं। आपको सदा प्रणाम है। आप ही जलके स्वामी वरुण, क्षीरशायी नारायण, विष्णु, शङ्कर, पृथ्वीके स्वामी, विश्वका शासन करनेवाले, जगत्को नेत्र देनेवाले [अथवा जगत्को अपनी दृष्टिमें रखनेवाले], चन्द्रमा, सूर्य, अच्युत, वीर, विश्वस्वरूप, तर्कके अविषय, अमृतस्वरूप और अविनाशी हैं। प्रभो! आपने अपने तेजःस्वरूप प्रज्वलित अग्निकी

ज्वालासे समस्त भुवनमण्डलको व्याप्त कर रखा है। आप हमारी रक्षा करें। आपके मुख सब ओर हैं। आप समस्त देवताओंकी पीड़ा हरनेवाले हैं। अमृतस्वरूप और अविनाशी हैं। मैं आपके अनेकों मुख देख रहा हूँ। आप शुद्ध अन्तःकरणवाले पुरुषोंकी परमगति और पुराण पुरुष हैं। आप ही ब्रह्मा, शिव तथा जगत्‌के जन्मदाता हैं। आप ही सबके परदादा हैं। आपको नमस्कार है। आदिदेव! संसारचक्रमें अनेकों बार चक्कर लगानेके बाद उत्तम मार्गके अवलम्बन और विज्ञानके द्वारा जिन्होंने अपने शरीरको विशुद्ध बना लिया है, उन्हींको कभी आपकी उपासनाका सौभाग्य प्राप्त होता है। देववर! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। भगवन्! जो आपको प्रकृतिसे परे, अद्वितीय ब्रह्मस्वरूप समझता है, वही सर्वज्ञोंमें श्रेष्ठ है। गुणमय पदार्थोंमें आप विराट्‌रूपसे पहचाने जा सकते हैं तथा अन्तःकरणमें [बुद्धिके द्वारा] आपका सूक्ष्मरूपसे बोध होता है। भगवन्! आप जिह्वा, हाथ, पैर आदि इन्द्रियोंसे रहित होनेपर भी यज्ञ धारण करते हैं। गति और कर्मसे रहित होनेपर भी संसारी हैं। देव! इन्द्रियोंसे शून्य होनेपर भी आप सृष्टि कैसे करते हैं? भगवन्! विशुद्ध भाववाले याज्ञिक पुरुष संसार-बन्धनका उच्छेद करनेवाले यज्ञोंद्वारा आपका यजन करते हैं, परन्तु उन्हें स्थूल साधनसे सूक्ष्म परात्पर रूपका ज्ञान नहीं होता, अतः उनकी दृष्टिमें आपका यह चतुर्मुख स्वरूप ही रह जाता है। अद्भुत रूप धारण करनेवाले परमेश्वर! देवता आदि भी आपके उस परम स्वरूपको नहीं जानते, अतः वे भी कमलासनपर विराजमान उस पुरातन विग्रहकी ही आराधना करते हैं, जो अवतार धारण करनेसे उग्र प्रतीत होता है। आप विश्वकी रचना करनेवाले प्रजापतियोंके भी उत्पत्ति-स्थान हैं। विशुद्ध भाववाले योगीजन भी आपके तत्त्वको पूर्णरूपसे नहीं जानते। आप तपस्यामें विशुद्ध आदिपुरुष हैं। पुराणमें यह बात बारबार कही गयी है कि कमलासन ब्रह्माजी ही सबके पिता हैं, उन्हींसे सबकी उत्पत्ति हुई है। इसी रूपमें आपका चिन्तन भी किया जाता है। आपके उसी स्वरूपको मूढ़ मनुष्य अपनी बुद्धि लगाकर जानना चाहते हैं। वास्तवमें उनके भीतर बुद्धि है ही नहीं। अनेकों जन्मोंकी साधनासे वेदका ज्ञान, विवेकशील बुद्धि अथवा प्रकाश (ज्ञान) प्राप्त होता है। जो उस ज्ञानकी प्राप्तिका लोभी है, वह फिर मनुष्य-योनिमें नहीं जन्म लेता, वह तो देवता और गन्धर्वोंका स्वामी अथवा कल्याणस्वरूप हो जाता है। भक्तोंके लिये आप अत्यन्त सुलभ हैं, जो आपका त्याग कर देते हैं—आपसे विमुख होते हैं, वे नरकमें पड़ते हैं। प्रभो! आपके रहते इन सूर्य, चन्द्रमा, वसु, मरुद्गण और पृथ्वी आदिकी क्या आवश्यकता है, आपने ही अपने स्वरूपभूत तत्त्वोंसे इन सबका रूप धारण किया है। आपके आत्माका ही प्रभाव सर्वत्र विस्तृत है। भगवन्! आप अनन्त हैं—आपकी महिमाका अन्त नहीं है। आप मेरी की हुई यह स्तुति स्वीकार करें। मैंने हृदयको शुद्ध करके, समाहित हो, आपके स्वरूपके चिन्तनमें मनको लगाकर यह स्तवन किया है। प्रभो! आप सदा मेरे हृदयमें विराजमान रहते हैं, आपको नमस्कार है। आपका स्वरूप सबके लिये सुगम—सुबोध नहीं है, क्योंकि आप सबसे पृथक्—सबसे परे हैं।

ब्रह्माजी बोले—केशव! इसमें सन्देह नहीं कि आप सर्वज्ञ और ज्ञानकी राशि हैं। देवताओंमें आप सदा सबसे पहले पूजे जाते हैं।

भगवान् श्रीविष्णुके बाद रुद्रने भी भक्तिसे नतमस्तक होकर ब्रह्माजीका इस प्रकार स्तवन किया—'कमलके समान नेत्रोंवाले देवेश्वर! आपको नमस्कार है। आप संसारकी उत्पत्तिके कारण हैं और स्वयं कमलसे प्रकट हुए हैं, आपको नमस्कार है। प्रभो! आप देवता और असुरोंके भी पूर्वज हैं, आपको प्रणाम है। संसारकी सृष्टि करनेवाले आप परमात्माको नमस्कार है। सम्पूर्ण देवताओंके ईश्वर! आपको प्रणाम है। सबका मोह दूर करनेवाले जगदीश्वर! आपको नमस्कार है। आप विष्णुकी नाभिसे प्रकट हुए हैं, कमलके आसनपर आपका आविर्भाव हुआ है। आप मूँगेके समान लाल अङ्गों तथा कर-पल्लवोंसे शोभायमान हैं, आपको नमस्कार है।

'नाथ! आप किन-किन तीर्थस्थानोंमें विराजमान हैं तथा इस पृथ्वीपर आपके स्थान किन-किन नामसे प्रसिद्ध हैं?'

ब्रह्माजीने कहा—पुष्करमें मैं देवश्रेष्ठ ब्रह्माजीके नामसे प्रसिद्ध हूँ। गयामें मेरा नाम चतुर्मुख है। कान्यकुब्जमें देवगर्भ [या वेदगर्भ] और भृगुकक्ष (भृगुक्षेत्र) में पितामह कहलाता हूँ। कावेरीके तटपर

सृष्टिकर्ता, नन्दीपुरीमें बृहस्पति, प्रभासमें पद्मजन्मा, वानरी (किष्किन्धा) में सुरप्रिय, द्वारकामें ऋग्वेद, विदिशापुरीमें भुवनाधिप, पौण्ड्रकमें पुण्डरीकाक्ष, हस्तिनापुरमें पिङ्गाक्ष, जयन्तीमें विजय, पुष्करावतमें जयन्त, उग्रदेशमें पद्महस्त, श्यामलापुरीमें भवोरुद, अहिच्छत्रमें जयानन्द, कान्तिपुरीमें जनप्रिय, पाटलिपुत्र (पटना) में ब्रह्मा, ऋषिकुण्डमें मुनि, महिलारोप्यमें कुमुद, श्रीनिवासमें श्रीकण्ठ, कामरूप (आसाम) में शुभाकार, काशीमें शिवप्रिय, मल्लिकामें विष्णु, महेन्द्र पर्वतपर भार्गव, गोनर्द देशमें स्थविराकार, उज्जैनमें पितामह, कौशाम्बीमें महाबोधि, अयोध्यामें राघव, चित्रकूटमें मुनीन्द्र, विन्ध्यपर्वतपर वाराह, गङ्गाद्वार (हरिद्वार) में परमेष्ठी, हिमालयमें शङ्कर, देविकामें स्रुचाहस्त, चतुष्पथमें स्रुवहस्त, वृन्दावनमें पद्मपाणि, नैमिषारण्यमें कुशहस्त, गोप्लक्षमें गोपीन्द्र, यमुनातटपर सुचन्द्र, भागीरथीके तटपर पद्मतनु, जनस्थानमें जनानन्द, कोङ्कणदेशमें मद्राक्ष, काम्पिल्यमें कनकप्रिय, खेटकमें अन्नदाता, कुशस्थलमें शम्भु, लङ्कामें पुलस्त्य, काश्मीरमें हंसवाहन, अर्बुद (आबू) में वसिष्ठ, उत्पलावतमें नारद, मेधकमें श्रुतिदाता, प्रयागमें यजुषांपति, यज्ञ-पर्वतपर सामवेद, मधुरमें मधुरप्रिय, अङ्कोलकमें यज्ञगर्भ, ब्रह्मवाहमें सुतप्रिय, गोमन्तमें नारायण, विदर्भ (बरार) में द्विजप्रिय, ऋषिवेदमें दुराधर्ष, पम्पापुरीमें सुरमर्दन, विरजामें महारूप, राष्ट्रवर्द्धनमें सुरूप, मालवीमें पृथूदर, शाकम्भरीमें रसप्रिय, पिण्डारक क्षेत्रमें गोपाल, भोगवर्द्धनमें शुष्कन्ध, कादम्बकमें प्रजाध्यक्ष, समस्थलमें देवाध्यक्ष, भद्रपीठमें गङ्गाधर, सुपीठमें जलमाली, त्र्यम्बकमें त्रिपुराधीश, श्रीपर्वतपर त्रिलोचन, पद्मपुरमें महादेव, कलापमें वैधस, शृङ्गवेरपुरमें शौरि, नैमिषारण्यमें चक्रपाणि, दण्डपुरीमें विरूपाक्ष, धूतपातकमें गोतम, माल्यवान् पर्वतपर हंसनाथ, वालिकमें द्विजेन्द्र, इन्द्रपुरी (अमरावती) में देवनाथ, धूताषाढीमें धुरन्धर, लम्बामें हंसवाह, चण्डामें गरुडप्रिय, महोदयमें महायज्ञ, यूपकेतनमें सुयज्ञ, पद्मवनमें सिद्धेश्वर, विभामें पद्मबोधन, देवदारुवनमें लिङ्ग, उदकपथमें उमापति, मातृस्थानमें विनायक, अलकापुरीमें धनाधिप, त्रिकूटमें गोनर्द, पातालमें वासुकि, केदारक्षेत्रमें पद्माध्यक्ष, कूष्माण्डमें सुरतप्रिय, भूतवापीमें शुभाङ्ग, सावलीमें भयक, अक्षरमें पापहा, अम्बिकामें सुदर्शन, वरदामें महावीर, कान्तारमें दुर्गनाशन, पर्णादमें अनन्त, प्रकाशामें दिवाकर, विरजामें पद्मनाभ, वृकस्थलमें सुवृद्ध, वठकमें मार्कण्ड, रोहिणीमें नागकेतन, पद्मावतीमें पद्मगृह तथा गगनमें पद्मकेतन नामसे मैं प्रसिद्ध हूँ। त्रिपुरान्तक ! ये एक सौ आठ स्थान मैंने तुम्हें बताये हैं। इन स्थानोंमें तीनों सन्ध्याओंके समय मैं उपस्थित रहता हूँ। जो भक्तिमान् पुरुष इन स्थानोंमेंसे एकका भी दर्शन कर लेता है, वह परलोकमें निर्मल स्थान पाकर अनन्त वर्षोंतक आनन्दका अनुभव करता है। उसके मन, वाणी और शरीरके सभी पाप नष्ट हो जाते हैं—इसमें तनिक भी अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। और जो इन सभी तीर्थोंकी यात्रा करके मेरा दर्शन करता है, वह मोक्षका अधिकारी होकर मेरे लोकमें निवास करता है। जो पुष्प, नैवेद्य एवं धूप चढ़ाता और ब्राह्मणोंको [भोजनादिसे] तृप्त करता है, साथ ही जो स्थिरतापूर्वक ध्यान लगाता है, वह शीघ्र ही परमेश्वरको प्राप्त कर लेता है। उसे पुण्यका श्रेष्ठ फल तथा अन्तमें मोक्ष प्राप्त होता है। जो इन तीर्थोंकी यात्रा करता या कराता है अथवा जो इस प्रसङ्गको सुनता है, वह भी समस्त पापोंसे छुटकारा पा जाता है। शङ्कर ! इस विषयसे अधिक क्या कहा जाय—इन तीर्थोंकी यात्रा करनेसे अप्राप्य वस्तुकी प्राप्ति होती है और सारा पाप नष्ट हो जाता है। जिन्होंने पुष्कर तीर्थमें अपनी पत्नीके दिये हुए पुष्करके जलसे सन्ध्या करके गायत्रीका जप किया है, उन्होंने मानो सम्पूर्ण वेदोंका अध्ययन कर लिया।

पुष्कर तीर्थके पवित्र जलको झारी अथवा मिट्टीके करवेमें ले आकर सायंकालमें एकाग्र मनसे प्राणायामपूर्वक सन्ध्योपासन करना चाहिये। शङ्कर ! इस प्रकार सन्ध्या करनेका जो फल है, उसका अब श्रवण करो। उस पुरुषको एक ही दिनकी सन्ध्यासे बारह वर्षोंतक सन्ध्योपासन करनेका फल मिल जाता है। पुष्करमें स्नान करनेपर अश्वमेध यज्ञका फल होता है, दान करनेसे उसके दसगुने और उपवास करनेसे अनन्तगुने फलकी प्राप्ति होती है। यह बात मैंने स्वयं [भलीभाँति सोच-विचारकर] कही है। तीर्थसे अपने डेरेपर आकर शास्त्रीय विधिके अनुसार पिण्डदानपूर्वक पितरोंका श्राद्ध करना चाहिये। ऐसा करनेसे उसके पितर ब्रह्माके एक दिन (एक कल्प) तक तृप्त रहते हैं। शिवजी ! अपने डेरेमें आकर पिण्डदान करनेवालोंको तीर्थकी अपेक्षा अठगुना अधिक पुण्य होता है; क्योंकि वहाँ द्विजातियोंद्वारा दिये जाते हुए पिण्डदानपर नीच पुरुषोंकी दृष्टि नहीं पड़ती। एकान्त और सुरक्षित गृहमें ही पितरोंके श्राद्धका विधान है;

क्योंकि बाहर नीच पुरुषोंकी दृष्टिसे दूषित हो जानेपर वह पितरोंको नहीं पहुँचता। आत्मकल्याणकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको गुप्तरूपसे ही पिण्डदान करना चाहिये। यदि श्राद्धमें दिया जानेवाला पकान्न साधारण मनुष्य देख लेते हैं, तो उससे कभी पितरोंकी तृप्ति नहीं होती। मनुजीका कथन है कि 'तीर्थोंमें श्राद्धके लिये ब्राह्मणकी परीक्षा नहीं करनी चाहिये। जो भी अन्नकी इच्छासे अपने पास आ जाय, उसे भोजन करा देना चाहिये।' * श्राद्धके योग्य समय हो या न हो—तीर्थमें पहुँचते ही मनुष्यको सर्वदा स्नान, तर्पण और श्राद्ध करना चाहिये। पिण्डदान करना तो बहुत ही उत्तम है, वह पितरोंको अधिक प्रिय है। जब अपने वंशका कोई व्यक्ति तीर्थमें जाता है तब पितर बड़ी आशासे उसकी ओर देखते हैं, उससे जल पानेकी अभिलाषा रखते हैं, अतः इस कार्यमें विलम्ब नहीं करना चाहिये। और यदि दूसरा कोई इस कार्यको करना चाहता हो तो उसमें विघ्न नहीं डालना चाहिये। सत्ययुगमें पुष्करका, त्रेतामें नैमिषारण्यका, द्वापरमें कुरुक्षेत्र तथा कलियुगमें गङ्गाजीका आश्रय लेना चाहिये। अन्यत्रका किया हुआ पाप तीर्थमें जानेपर कम हो जाता है, किन्तु तीर्थका किया हुआ पाप अन्यत्र कहीं नहीं छूटता।† जो सबेरे और शामको हाथ जोड़कर पुष्कर तीर्थका स्मरण करता है, उसे समस्त तीर्थोंमें आचमन करनेका फल प्राप्त हो जाता है। जो पुष्करमें इन्द्रिय-संयमपूर्वक रहकर प्रातःकाल और सन्ध्याके समय आचमन करता है, उसे सम्पूर्ण यज्ञोंका फल प्राप्त होता है तथा वह ब्रह्मलोकको जाता है। जो बारह वर्ष, बारह दिन, एक मास अथवा पक्षभर भी पुष्करमें निवास करता है, वह परम गतिको प्राप्त करता है। इस पृथ्वीपर करोड़ों तीर्थ हैं। वे सब तीनों सन्ध्याओंके समय पुष्करमें उपस्थित रहते हैं। पिछले हजारों जन्मोंके तथा जन्मसे लेकर मृत्युपर्यन्त वर्तमान जीवनके जितने भी पाप हैं, उन सबको पुष्करमें एक बार स्नान करके मनुष्य भस्म कर डालता है।

श्रीरामके द्वारा शम्बूकका वध और मरे हुए ब्राह्मण बालकको जीवनकी प्राप्ति

पुलस्त्यजी बोले—राजन्! पूर्वकालमें स्वयं भगवान्‌ने जब रघुवंशमें अवतार लिया था तब वहाँ वे श्रीराम नामसे विख्यात हुए। तब उन्होंने लङ्कामें जाकर रावणको मारा और देवताओंका कार्य किया था। इसके बाद जब वे वनसे लौटकर पृथ्वीके राज्यसिंहासन पर स्थित हुए, उस समय उनके दरबारमें [अगस्त्य आदि] बहुत-से महात्मा ऋषि उपस्थित हुए। महर्षि अगस्त्यजीकी आज्ञासे द्वारपालने तुरंत जाकर महाराजको ऋषियोंके आगमनकी सूचना दी। सूर्यके समान तेजस्वी महर्षियोंको द्वारपर आया जान श्रीरामचन्द्रजीने द्वारपालसे कहा—'तुम शीघ्र ही उन्हें भीतर ले आओ।'

श्रीरामकी आज्ञासे द्वारपालने उन मुनियोंको सुखपूर्वक महलके भीतर पहुँचा दिया। उन्हें आया देख रघुनाथजी हाथ जोड़कर खड़े हो गये और उनके चरणोंमें प्रणाम करके उन्होंने उन सबको आसनोंपर बिठाया। तदनन्तर पुरोहित वसिष्ठजीने पाद्य, अर्घ्य और आचमनीय निवेदन करके उनका आतिथ्य-सत्कार किया। तत्पश्चात् श्रीरामचन्द्रजीने जब उनसे कुशल समाचार पूछा, तब वे वेदवेत्ता महर्षि [महर्षि अगस्त्यको आगे करके] इस प्रकार बोले—'महाबाहो! आपके प्रतापसे सर्वत्र कुशल है। रघुनन्दन! बड़े सौभाग्यकी बात है कि शत्रुदलका संहार करके लौटे हुए आपको हमलोग सकुशल देख रहे हैं। कुलघाती, पापी एवं दुरात्मा रावणने आपकी पत्नीको हर लिया था। वह उन्हींके तेजसे मारा गया। आपने उसे युद्धमें मार

* तीर्थेषु ब्राह्मणं नैव परीक्षेत कथंचन। अन्नार्थिनमनुप्राप्तं भोज्यं तु मनुरब्रवीत्॥ (२९। २१२)

† कृते युगे पुष्कराणि त्रेतायां नैमिषं स्मृतम्। द्वापरे च कुरुक्षेत्रं कलौ गङ्गां समाश्रयेत्॥
यदन्यत्रकृतं पापं तीर्थे तद्याति लाघवम्। न तीर्थकृतमन्यत्र क्वचित् पापं व्यपोहति॥ (२२८-२९)



डाला। रघुसिंह ! आपने जैसा कर्म किया है, वैसा कर्म करनेवाला इस संसारमें दूसरा कोई नहीं है। राजेन्द्र! हम सब लोग यहाँ आपसे वार्तालाप करनेके लिये आये हैं। इस समय आपका दर्शन करके हम पवित्र हो गये। आपके दर्शनसे हम वास्तवमें आज तपस्वी हुए हैं। आपने सबसे शत्रुता रखनेवाले रावणका वध करके हमारे आँसू पोंछे हैं और सब लोगोंको अभयदान दिया है। काकुत्स्थ ! आपके पराक्रमकी कोई थाह नहीं है। आपकी विजयसे वृद्धि हो रही है, यह बड़े आनन्दकी बात है। हमने आपका दर्शन और आपके साथ सम्भाषण कर लिया, अब हमलोग अपने-अपने आश्रमको जायँगे। रघुनन्दन ! आप भविष्यमें कभी हमारे आश्रमपर भी आइयेगा।'

पुलस्त्यजी कहते हैं—भीष्म ! ऐसा कहकर वे मुनि उसी समय अन्तर्धान हो गये। उनके चले जानेपर धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीने सोचा—"अहो ! मुनि अगस्त्यने मेरे सामने जो यह प्रस्ताव रखा है कि 'रघुनन्दन ! फिर कभी मेरे आश्रमपर भी आना' तब अवश्य ही मुझे महर्षि अगस्त्यके यहाँ जाना चाहिये और देवताओंकी कोई गुप्त बात हो तो उसे सुनना चाहिये। अथवा यदि वे कोई दूसरा काम बतायें तो उसे भी करना चाहिये।" ऐसा विचारकर महात्मा रघुनाथजी पुनः प्रजा-पालनमें लग गये। एक दिन एक बूढ़ा ब्राह्मण, जो उसी प्रान्तका रहनेवाला था, अपने मरे हुए पुत्रको लेकर राजद्वारपर आया और इस प्रकार कहने लगा—'बेटा ! मैंने पूर्वजन्ममें ऐसा कौन-सा पाप किया है, जिससे तुझ इकलौते पुत्रको आज मैं मौतके मुखमें पड़ा देख रहा हूँ। निश्चय ही यह महाराज श्रीरामका ही दोष है, जिसके कारण तेरी मृत्यु [इतनी जल्दी] आ गयी। रघुनन्दन ! अब मैं भी स्त्रीसहित प्राण त्याग दूँगा। फिर आपको बालहत्या, ब्रह्महत्या और स्त्रीहत्या—तीन पाप लगेंगे।

रघुनाथजीने उस ब्राह्मणकी दुःख और शोकसे भरी सारी बात सुनी। फिर उसे चुप कराकर महर्षि वसिष्ठजीसे पूछा—'गुरुदेव ! ऐसी अवस्थामें इस अवसरपर मुझे क्या करना चाहिये ? इस ब्राह्मणकी कही हुई बात सुनकर मैं किस प्रकार अपने दोषका मार्जन करूँ—कैसे इस बालकको जीवन-दान दूँ ?' [इतनेमें ही देवर्षि नारद वहाँ आ पहुँचे।] वे वसिष्ठके सामने खड़े हो अन्य ऋषियोंके समीप महाराज



श्रीरामसे बोले—'रघुनन्दन ! इस बालककी जिस प्रकार अकाल-मृत्यु हुई है, उसका कारण बताता हूँ; सुनिये। पहले सत्ययुगमें सब ओर ब्राह्मणोंकी ही प्रधानता थी। कोई ब्राह्मणेतर पुरुष तपस्वी नहीं होता था। उस समय सभी अकाल-मृत्युसे रहित और चिरजीवी होते थे। फिर त्रेतायुग आने-

पर ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनोंकी प्रधानता हो जाती है—दोनों ही तपमें प्रवृत्त होते हैं। द्वापरमें वैश्योंमें भी तपस्याका प्रचार हो जाता है। यह तीनों युगोंके धर्मकी विशेषता है। इन तीनों युगोंमें शूद्रजातिका मनुष्य तपस्या नहीं कर सकता, केवल कलियुगमें शूद्रजातिको भी तपस्याका अधिकार होगा। राजन्! इस समय आपके राज्यकी सीमापर एक खोटी बुद्धिवाला शूद्र अत्यन्त कठोर तपस्या कर रहा है। उसीके शास्त्रविरुद्ध आचरणके प्रभावसे इस बालककी मृत्यु हुई है। राजाके राज्य या नगरमें जो कोई भी अधर्म अथवा अनुचित कर्म करता है, उसके पापका चतुर्थांश राजाके हिस्सेमें आता है। अतः पुरुषश्रेष्ठ! आप अपने राज्यमें घूमिये और जहाँ कहा भी पाप होता दिखायी दे, उसे रोकनेका प्रयत्न कीजिये। ऐसा करनेसे आपके धर्म, बल और आयुकी वृद्धि होगी। साथ ही यह बालक भी जी उठेगा।

नारदजीके इस कथनपर श्रीरघुनाथजीको बड़ा आश्चर्य हुआ। वे अत्यन्त हर्षमें भरकर लक्ष्मणसे बोले—'सौम्य! जाकर उस श्रेष्ठ ब्राह्मणको सान्त्वना दो और उस बालकके शरीरको तेलसे भरी नावमें रखवा दो। जिस प्रकार भी उस निरपराध बालकके शरीरकी रक्षा हो सके, वह उपाय करना चाहिये।' उत्तम लक्षणोंसे युक्त सुमित्राकुमार लक्ष्मणको इस प्रकार आदेश देकर भगवान् श्रीरामने पुष्पक विमानका स्मरण किया। रघुनाथजीका अभिप्राय जानकर इच्छानुसार चलनेवाला वह स्वर्णभूषित विमान एक ही मुहूर्तमें उनके समीप आ पहुँचा और हाथ जोड़कर बोला—'महाराज! आपका आज्ञाकारी यह दास सेवामें उपस्थित है।' पुष्पककी सुन्दर उक्ति सुनकर महाराज श्रीराम महर्षि वसिष्ठको प्रणाम करके विमानपर आरूढ हुए और धनुष, भाथा एवं चमचमाता हुआ खड्ग लेकर तथा लक्ष्मण और भरतको नगरका भार सौंप दक्षिण दिशाकी ओर चल दिये। [दण्डकारण्यके पास पहुँचनेपर] एक पर्वतके दक्षिण किनारे बहुत बड़ा तालाब दिखायी दिया। रघुनाथजीने देखा—उस सरोवरके तटपर एक तपस्वी नीचा मुँह किये लटक रहा है और बड़ी कठोर तपस्या कर रहा है। भगवान् श्रीराम उस तपस्वीके पास जाकर बोले—'तापस! मैं दशरथका पुत्र राम हूँ और कौतूहलवश तुमसे एक प्रश्न पूछता हूँ। मैं यह जानना चाहता हूँ। तुम किसलिये तपस्या करते हो ठीक-ठीक बताओ—तुम ब्राह्मण हो या दुर्जय क्षत्रिय? तीसरे वर्णमें उत्पन्न वैश्य हो या शूद्र? तपस्या सत्यस्वरूप और नित्य है। उसका उद्देश्य है—स्वर्गादि उत्तम लोकोंकी प्राप्ति। तप सात्त्विक, राजस और तामस तीन प्रकारका होता है। ब्रह्माजीने जगत्‌के उपकारके लिये तपस्याकी सृष्टि की है। [अतः परोपकारके उद्देश्यसे किया हुआ तप 'सात्त्विक' होता है,] क्षत्रियोचित तेजकी प्राप्तिके लिये किया जानेवाला भयङ्कर तप 'राजस' कहलाता है तथा जो दूसरोंका नाश करनेके लिये [अपने शरीरको अस्वाभाविक रूपसे कष्ट देते हुए] तपस्या की जाती है, वह 'आसुर' (तामस) कही गयी है। तुम्हारा भाव आसुर जान पड़ता है, तथा मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि तुम द्विज नहीं हो।'

अनायास ही महान् कर्म करनेवाले श्रीरघुनाथजीके उपर्युक्त वचन सुनकर नीचे मस्तक करके लटका हुआ शूद्र उसी अवस्थामें बोला—'नृपश्रेष्ठ! आपका स्वागत है। रघुनन्दन! चिरकालके बाद मुझे आपका दर्शन हुआ है। मैं आपके पुत्रके समान हूँ, आप मेरे लिये पिताके तुल्य हैं। क्योंकि राजा तो सभीके पिता होते हैं। महाराज! आप हमारे पूजनीय हैं। हम आपके राज्यमें तपस्या करते हैं, उसमें आपका भी भाग है। विधाताने पहलेसे ही ऐसी व्यवस्था कर दी है। राजन्! आप धन्य हैं, जिनके राज्यमें तपस्वीलोग इस प्रकार सिद्धिकी इच्छा रखते हैं। मैं शूद्रयोनिमें उत्पन्न हुआ हूँ और कठोर तपस्यामें लगा हूँ। पृथ्वीनाथ! मैं झूठ नहीं बोलता, क्योंकि मुझे देवलोक प्राप्त करनेकी इच्छा है। काकुत्स्थ! मेरा नाम शम्बूक है।'

वह इस प्रकार बातें कर ही रहा था कि श्रीरघुनाथजीने म्यानसे चमचमाती हुई तलवार निकाली और उसका उज्ज्वल मस्तक धड़से अलग कर दिया। उस शूद्रके मारे जानेपर इन्द्र और अग्नि आदि देवता 'साधु-साधु' कहकर बारबार श्रीरामचन्द्रजीकी प्रशंसा करने लगे। आकाशसे श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर वायु देवताके छोड़े हुए दिव्य फूलोंकी सुगन्धभरी वृष्टि होने लगी। जिस क्षण यह शूद्र मारा गया, ठीक उसी समय वह बालक जी उठा।



महर्षि अगस्त्यद्वारा राजा श्वेतके उद्धारकी कथा

पुलस्त्यजी कहते हैं—तदनन्तर देवतालोग अपने बहुत-से विमानोंके साथ वहाँसे चल दिये। श्रीरामचन्द्रजीने भी शीघ्र ही महर्षि अगस्त्यके तपोवनकी ओर प्रस्थान किया। फिर श्रीरघुनाथजी पुष्पक विमानसे उतरे और मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यको प्रणाम करनेके लिये उनके समीप गये।

श्रीराम बोले—मुनिश्रेष्ठ! मैं दशरथका पुत्र राम आपको प्रणाम करनेके लिये सेवामें उपस्थित हुआ हूँ। आप अपनी सौम्य दृष्टिसे मेरी ओर निहारिये।

इतना कहकर उन्होंने बारंबार मुनिके चरणोंमें प्रणाम किया और कहा—'भगवन्! मैं शम्बूक नामक शूद्रका वध करके आपका दर्शन करनेकी इच्छासे यहाँ आया हूँ। कहिये, आपके शिष्य कुशलसे हैं न? इस वनमें तो कोई उपद्रव नहीं है?'

अगस्त्यजी बोले—रघुश्रेष्ठ! आपका स्वागत है। जगद्वन्द्य सनातन परमेश्वर! आपके दर्शनसे आज मैं इन मुनियोंसहित पवित्र हो गया। आपके लिये यह अर्घ्य प्रस्तुत है, इसे स्वीकार करें। आप अपने अनेकों उत्तम गुणोंके कारण सदा सबके सम्मानपात्र हैं। मेरे हृदयमें तो आप सदा ही विराजमान रहते हैं, अतः मेरे परम पूज्य हैं। आपने अपने धर्मसे ब्राह्मणके मरे हुए बालकको जिला दिया। भगवन्! आज रातको आप यहाँ मेरे पास रहिये। महामते! कल सबेरे आप पुष्पक विमानसे अयोध्याको लौट जाइयेगा। सौम्य! यह आभूषण विश्वकर्माका बनाया हुआ है। यह दिव्य आभरण है और अपने दिव्य रूप एवं तेजसे जगमगा रहा है। राजेन्द्र! आप इसे स्वीकार करके मेरा प्रिय कीजिये; क्योंकि प्राप्त हुई वस्तुका पुनः दान कर देनेसे महान् फलकी प्राप्ति बतायी गयी है।

श्रीरामने कहा—ब्रह्मन्! आपका दिया हुआ दान लेना मेरे लिये निन्दाकी बात होगी। क्षत्रिय जान-बूझकर ब्राह्मणका दिया हुआ दान कैसे ले सकता है, यह बात आप मुझे बताइये। किसी आपत्तिके कारण मुझे कष्ट हो—ऐसी बात भी नहीं है; फिर दान कैसे लूँ। इसे लेकर मुझे केवल दोषका भागी होना पड़ेगा, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

अगस्त्यजी बोले—श्रीराम! प्राचीन सत्ययुगमें जब अधिकांश मनुष्य ब्राह्मण ही थे, तथा समस्त प्रजा राजासे हीन थी, एक दिन सारी प्रजा पुराणपुरुष ब्रह्माजीके पास राजा प्राप्त करनेकी इच्छासे गयी और कहने लगी—'लोकेश्वर! जैसे देवताओंके राजा देवाधिदेव इन्द्र हैं, उसी प्रकार हमारे कल्याणके लिये भी इस समय एक ऐसा राजा नियत कीजिये, जिसे पूजा और भेंट देकर सब लोग पृथ्वीका उपभोग कर सकें।' तब देवताओंमें श्रेष्ठ ब्रह्माजीने इन्द्रसहित समस्त लोकपालोंको बुलाकर कहा—'तुम सब लोग अपने-अपने तेजका अंश यहाँ एकत्रित करो।' तब सम्पूर्ण लोकपालोंने मिलकर चार भाग दिये। वह भाग अक्षय था। उससे अक्षय राजाकी उत्पत्ति हुई। लोकपालोंके उस अंशको ब्रह्माजीने मनुष्योंके लिये एकत्रित किया। उसीसे राजाका प्रादुर्भाव हुआ, जो प्रजाओंके हित-साधनमें कुशल होता है। इन्द्रके भागसे राजा सबपर हुकूमत चलाता है। वरुणके अंशसे समस्त देहधारियोंका पोषण करता है। कुबेरके अंशसे वह याचकोंको धन देता है तथा राजामें जो यमराजका अंश है, उसके द्वारा वह प्रजाको दण्ड देता है। रघुश्रेष्ठ! उसी इन्द्रके भागसे आप भी मनुष्योंके राजा हुए हैं, इसलिये प्रभो! मेरा उद्धार करनेके लिये यह आभूषण ग्रहण कीजिये।

पुलस्त्यजी कहते हैं—राजन्! तब श्रीरघुनाथजीने महात्मा अगस्त्यके हाथसे वह दिव्य आभूषण ले लिया, जो बहुत ही विचित्र था और सूर्यकी तरह चमक रहा था। उसे लेकर वे निहारते रहे। फिर बारंबार विचार करने लगे—'ऐसे रत्न तो मैंने विभीषणकी लङ्कामें भी नहीं देखे।' इस प्रकार मन-ही-मन सोच-विचार करनेके बाद श्रीरामचन्द्रजीने महर्षि अगस्त्यसे उस दिव्य आभूषणकी प्राप्तिका वृत्तान्त पूछना आरम्भ किया।

श्रीराम बोले—ब्रह्मन्! यह रत्न तो बड़ा अद्भुत है। राजाओंके लिये भी यह अलभ्य ही है। आपको यह कहाँसे और कैसे मिल गया? तथा किसने इस आभूषणको बनाया है?

अगस्त्यजीने कहा—रघुनन्दन! पहले त्रेतायुगमें एक बहुत विशाल वन था। उसका व्यास सौ योजनका था। किन्तु उसमें न कोई पशु रहता था, न पक्षी।

उस वनके मध्यभागमें चार कोस लंबी एक झील थी, जो हंस और कारण्डव आदि पक्षियोंसे संकुल थी। वहाँ मैंने एक बड़े आश्चर्यकी बात देखी। सरोवरके पास ही एक बहुत बड़ा आश्रम था, जो बहुत पुराना होनेपर भी अत्यन्त पवित्र दिखायी देता था। किन्तु उसमें कोई तपस्वी नहीं था और न कोई और जीव भी थे। मैंने उस आश्रममें रहकर ग्रीष्मकालकी एक रात्रि व्यतीत की। सबेरे उठकर जब तालाबकी ओर चला तो रास्तेमें मुझे एक बहुत बड़ा मुर्दा दीख पड़ा, जिसका शरीर अत्यन्त हृष्ट-पुष्ट था। मालूम होता था, किसी तरुण पुरुषकी लाश है। उसे देखकर मैं सोचने लगा—'यह कौन है? इसकी मृत्यु कैसे हो गयी तथा यह इस महान् वनमें आया कैसे था? इन सारी बातोंका मुझे अवश्य पता लगाना चाहिये।' मैं खड़ा खड़ा यही सोच रहा था कि इतनेमें आकाशसे एक दिव्य एवं अद्भुत विमान उतरता दिखायी दिया। वह परम सुन्दर और मनके समान वेगशाली था। एक ही क्षणमें वह विमान सरोवरके निकट आ पहुँचा। मैंने देखा उस विमानसे एक दिव्य मनुष्य उतरा और सरोवरमें नहाकर उस मुर्देका मांस खाने लगा। भरपेट उस मोटे-ताजे मुर्देका मांस खाकर वह फिर सरोवरमें उतरा और उसकी शोभा निहारकर फिर शीघ्र ही स्वर्गकी ओर जाने लगा। उस शोभा-सम्पन्न देवोपम पुरुषको ऊपर जाते देख मैंने कहा—'स्वर्गलोकके निवासी महाभाग! [तनिक ठहरो]। मैं तुमसे एक बात पूछता हूँ—तुम्हारी यह कैसी अवस्था है? तुम कौन हो? देखनेमें तो तुम देवताके समान जान पड़ते हो, किन्तु तुम्हारा भोजन बहुत ही घृणित है। सौम्य! ऐसा भोजन क्यों करते हो और कहाँ रहते हो?'

रघुनन्दन! मेरी बात सुनकर उस स्वर्गवासी पुरुषने हाथ जोड़कर कहा—"विप्रवर! मेरा जैसा वृत्तान्त है, उसे आप सुनिये। पूर्वकालकी बात है विदर्भदेशमें मेरे महायशस्वी पिता राज्य करते थे। वे वसुदेवके नामसे त्रिलोकीमें विख्यात और परम धार्मिक थे। उनके दो स्त्रियाँ थीं। उन दोनोंसे एक एक करके दो पुत्र हुए। मैं उनका ज्येष्ठ पुत्र था। लोग मुझे श्वेत कहते थे। मेरे छोटे भाइका नाम सुरथ था। पिताकी मृत्युके बाद पुरवासियोंने विदर्भदेशके राज्यपर मेरा अभिषेक कर दिया। तब मैं वहाँ पूर्ण सावधानीके साथ राज्य सञ्चालन करने लगा। इस प्रकार राज्य और प्रजाका पालन करते मुझे कई हजार वर्ष बीत गये। एक दिन किसी निमित्तको लेकर मुझे प्रबल वैराग्य हो गया और मैं मरणपर्यन्त तपस्याका निश्चय करके इस तपोवनमें चला आया। राज्यपर मैंने अपने भाई महारथी सुरथका अभिषेक कर दिया था। फिर इस सरोवरपर आकर मैंने अत्यन्त कठोर तपस्या आरम्भ की। अस्सी हजार वर्षोंतक इस वनमें मेरी तपस्या चालू रही। उसके प्रभावसे मुझे भुवनोंमें सर्वश्रेष्ठ कल्याणमय ब्रह्मलोककी प्राप्ति हुई। किन्तु वहाँ पहुँचनेपर मुझे भूख और प्यास अधिक सताने लगी। मेरी इन्द्रियाँ तलमला उठीं। मैंने त्रिलोकीके सर्वश्रेष्ठ देवता ब्रह्माजीसे पूछा—'भगवन्! यह लोक तो भूख और प्याससे रहित सुना गया है, यह मुझे किस कर्मका फल प्राप्त हुआ है कि भूख और प्यास यहाँ भी मेरा पिण्ड नहीं छोड़तीं? देव! शीघ्र बताइये, मेरा आहार क्या है?' महामुने! इसपर ब्रह्माजीने बहुत देरतक सोचनेके बाद कहा—'तात! पृथ्वीपर कुछ दान किये बिना यहाँ कोई वस्तु खानेको नहीं मिलती। तुमने उस जन्ममें भिखमंगेको कभी भीखतक नहीं दी। [जब तुम राजभवनमें रहकर राज्य करते थे,] उस समय भूलसे या मोहवश तुम्हारे द्वारा किसी अतिथिको भोजन नहीं मिला है। इसलिये यहाँ रहते हुए भी तुम्हें भूख प्यासका कष्ट भोगना पड़ता है। राजेन्द्र! भाँति भाँतिके आहारोंसे जिसको तुमने भलीभाँति पुष्ट किया था, वह तुम्हारा उत्तम शरीर पड़ा हुआ है, उसीका मांस खाओ, उसीसे तुम्हारी तृप्ति होगी।'

"ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर मैंने पुनः उनसे निवेदन किया—'प्रभो! अपने शरीरका भक्षण कर लेनेपर भी फिर मेरे लिये दूसरा कोई आहार नहीं रह जाता है। जिससे इस शरीरकी भूख मिट सके तथा जो कभी चुकनेवाला न हो, ऐसा कोई भोजन मुझे देनेकी कृपा कीजिये।' तब ब्रह्माजीने कहा—'तुम्हारा शरीर ही अक्षय बना दिया गया है। उसे प्रतिदिन खाकर तुम तृप्तिका अनुभव करते रहोगे। इस प्रकार अपने ही शरीरका मांस खाते जब तुम्हें सौ वर्ष पूरे हो जायँगे, उस समय तुम्हारे विशाल एवं दुर्गम तपोवनमें महर्षि अगस्त्य पधारेंगे। उनके आनेपर तुम संकटसे छूट जाओगे। राजर्षे! वे इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवताओं और असुरोंका भी उद्धार करनेमें समर्थ हैं, फिर तुम्हारे इस घृणित आहारको छुड़ाना उनके लिये कौन बड़ी बात है।' भगवान् ब्रह्माजीका यह कथन सुनकर मैं अपने शरीरके मांसका घृणित भोजन करने लगा। विप्रवर! यह कभी नष्ट नहीं होता तथा इससे मेरी

पूर्ण तृप्ति भी हो जाती है। न जाने कब वे मुनि इस वनमें आकर मुझे दर्शन देंगे, यही सोचते हुए मुझे सौ वर्ष पूरे हो गये हैं। ब्रह्मन्! अब अगस्त्य मुनि ही मेरे सहायक होंगे, यह बिल्कुल निश्चित बात है।''

राजा श्वेतका यह कथन सुनकर तथा उनके उस घृणित आहारपर दृष्टि डालकर मैंने कहा—'अच्छा, तो तुम्हारे सौभाग्यसे मैं आ गया, अब निःसन्देह तुम्हारा उद्धार करूँगा।' तब वे मुझे पहचानकर दण्डकी भाँति मेरे सामने पृथ्वीपर पड़ गये। यह देख मैंने उन्हें उठा लिया और कहा—'बताओ, मैं तुम्हारा कौन-सा उपकार करूँ?'

राजा बोले—ब्रह्मन्! इस घृणित आहारसे तथा जिस पापके कारण मुझे यह प्राप्त हुआ है, उससे आज मेरा उद्धार कीजिये, जिससे मुझे अक्षय लोककी प्राप्ति हो सके। ब्रह्मर्षे! अपने उद्धारके लिये मैं यह दिव्य आभूषण आपकी भेंट करता हूँ। इसे लेकर मुझपर कृपा कीजिये।

रघुनन्दन! उस स्वर्गवासी राजाकी ये दुःखभरी बातें सुनकर उसके उद्धारकी दृष्टिसे ही वह दान मैंने स्वीकार किया लोभवश नहीं। उस आभूषणको लेकर ज्यों ही मैंने अपने हाथपर रखा, उसी समय उनका वह मुर्दा शरीर अदृश्य हो गया। फिर मेरी आज्ञा लेकर वे राजर्षि बड़ी प्रसन्नताके साथ विमानद्वारा ब्रह्मलोकको चले गये। इन्द्रके समान तेजस्वी राजर्षि श्वेतने ही मुझे यह सुन्दर आभूषण दिया था और इसे देकर वे पापसे मुक्त हो गये।

दण्डकारण्यकी उत्पत्तिका वर्णन

पुलस्त्यजी कहते हैं—अगस्त्यजीके ये अद्भुत वचन सुनकर श्रीरघुनाथजीने विस्मयके कारण पुनः प्रश्न किया—'महामुने! वह वन, जिसका विस्तार सौ योजनका था, पशु-पक्षियोंसे रहित, निर्जन, सूना और भयङ्कर कैसे हुआ?'

अगस्त्यजी बोले—राजन्! पूर्वकालके सत्ययुगकी बात है, वैवस्वत मनु इस पृथ्वीका शासन करनेवाले राजा थे। उनके पुत्रका नाम इक्ष्वाकु था। इक्ष्वाकु बड़े ही सुन्दर और अपने भाइयोंमें सबसे बड़े थे। महाराज उनको बहुत मानते थे। उन्होंने इक्ष्वाकुको भूमण्डलके राज्यपर अभिषिक्त करके कहा—'तुम पृथ्वीके राजवंशोंके अधिपति (सम्राट्) बनो।' रघुनन्दन! 'बहुत अच्छा' कहकर इक्ष्वाकुने पिताकी आज्ञा स्वीकार की। तब वे अत्यन्त सन्तुष्ट होकर बोले—'बेटा! अब तुम दण्डके द्वारा प्रजाकी रक्षा करो। किन्तु दण्डका अकारण प्रयोग न करना। मनुष्योंके द्वारा अपराधियोंको जो दण्ड दिया जाता है, वह शास्त्रीय विधिके अनुसार [उचित अवसरपर] प्रयुक्त होनेपर राजाको स्वर्गमें ले जाता है। इसलिये महाबाहो! तुम दण्डके समुचित प्रयोगके लिये सदा सचेष्ट रहना। ऐसा करनेपर संसारमें तुम्हारेद्वारा अवश्य परम धर्मका पालन होगा।'

इस प्रकार एकाग्र चित्तसे अपने पुत्र इक्ष्वाकुको बहुत-से उपदेश दे महाराज मनु बड़ी प्रसन्नताके साथ ब्रह्मलोकको सिधार गये। तत्पश्चात् राजा इक्ष्वाकुको यह चिन्ता हुई कि 'मैं कैसे पुत्र उत्पन्न करूँ?' इसके लिये उन्होंने नाना प्रकारके शास्त्रीय कर्म (यज्ञ-यागादि) किये और उनके द्वारा राजाको अनेकों पुत्रोंकी प्राप्ति हुई। देवकुमारके समान तेजस्वी राजा इक्ष्वाकुने पुत्रोंको जन्म देकर पितरोंको सन्तुष्ट किया। रघुनन्दन! इक्ष्वाकुके पुत्रोंमें जो सबसे छोटा था, वह [गुणोंमें] सबसे श्रेष्ठ था। वह शूर और विद्वान् तो था ही, प्रजाका आदर करनेके कारण सबके विशेष गौरवका पात्र हो गया था। उसके बुद्धिमान् पिताने उसका नाम दण्ड रखा और विन्ध्यगिरिके दो शिखरोंके बीचमें उसके रहनेके लिये एक नगर दे दिया। उस नगरका नाम मधुमत्त था। धर्मात्मा दण्डने बहुत वर्षोंतक वहाँका अकण्टक राज्य किया। तदनन्तर एक समय, जब कि चारों ओर चैत्र मासकी मनोरम छटा छा रही थी, राजा दण्ड भार्गव मुनिके रमणीय आश्रमके पास गया। वहाँ जाकर उसने देखा—भार्गव मुनिकी परम सुन्दरी कन्या, जिसके रूपकी कहीं तुलना नहीं थी, वनमें घूम रही है। उसे देखकर राजा दण्डके मनमें पापका उदय हुआ और वह कामबाणसे पीड़ित हो कन्याके पास जाकर बोला—'सुन्दरी! तुम कहाँसे आयी हो? शोभामयी! तुम किसकी कन्या हो? मैं कामसे पीड़ित होकर तुमसे ये बातें पूछ रहा हूँ। वरारोहे! मैं तुम्हारा दास हूँ। सुन्दरि! मुझ भक्तको अङ्गीकार करो।'

अरजा बोली—राजेन्द्र! आपको मालूम होना चाहिये कि मैं भार्गव-वंशकी कन्या हूँ। पुण्यात्मा शुक्राचार्यकी मैं ज्येष्ठ पुत्री हूँ, मेरा नाम अरजा है। पिताजी इस आश्रमपर ही निवास करते हैं। महाराज!

शुक्राचार्य मेरे पिता हैं और आप उनके शिष्य हैं। अतः धर्मके नाते मैं आपकी बहिन हूँ। इसलिये आपको मुझसे ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये। यदि दूसरे कोई दुष्ट पुरुष भी मुझपर कुदृष्टि करें तो आपको सदा उनके हाथसे मेरी रक्षा करनी चाहिये। मेरे पिता बड़े क्रोधी और भयङ्कर हैं। वे [अपने शापसे] आपको भस्म कर सकते हैं। अतः नृपश्रेष्ठ! आप मेरे महातेजस्वी पिताके पास जाइये और धर्मानुकूल बर्तावके द्वारा उनसे मेरे लिये याचना कीजिये। अन्यथा [इसके विपरीत आचरण करनेपर] आपपर महान् एवं घोर दुःख आ पड़ेगा। मेरे पिताका क्रोध उभड़ जानेपर वे समूची त्रिलोकीको भी जलाकर खाक कर सकते हैं।

दण्ड बोला—सुन्दरी! तुम्हें पा लेनेपर चाहे मेरा वध हो जाय अथवा वधसे भी महान् कष्ट भोगना पड़े [मुझे स्वीकार है]। भीरु! मैं तुम्हारा भक्त हूँ, मुझे स्वीकार करो।

ऐसा कहकर राजाने उस कन्याको बलपूर्वक बाहुपाशमें कस लिया और उस एकान्त वनमें, जहाँसे कहीं आवाज भी नहीं पहुँच सकती थी, उसे नगा कर दिया। बेचारी अबला उसकी भुजाओंसे छूटनेके लिये बहुत छटपटायी, परन्तु फिर भी उसने स्वेच्छानुसार उसके साथ भोग किया। राजा दण्ड वह अत्यन्त कठोरतापूर्ण और महाभयानक अपराध करके तुरत अपने नगरको चल दिया तथा भार्गव कन्या अरजा दीनभावसे रोती हुई अत्यन्त उद्विग्न हो आश्रमके समीप अपने देव-तुल्य पिताके पास आयी। उसके पिता अमित तेजस्वी देवर्षि शुक्राचार्य सरोवरपर स्नान करने गये थे। स्नान करके वे दो ही घड़ीमें शिष्योंसहित आश्रमपर लौट आये। [आश्रमपर आकर] उन्होंने देखा—अरजाकी दशा बड़ी दयनीय है, वह धूलमें सनी हुई है। [तुरत ही सारा रहस्य उनके ध्यानमें आ गया।] फिर तो शुक्रको बड़ा रोष हुआ, वे तीनों लोकोंको दग्ध सा करते हुए अपने शिष्योंको सुनाकर बोले—'धर्मके विपरीत आचरण करनेवाले अदूरदर्शी दण्डके ऊपर प्रज्वलित अग्निशिखाके समान भयङ्कर विपत्ति आ रही है; तुम सब लोग देखना—वह खोटी बुद्धिवाला पापी राजा अपने देश, भृत्य, सेना और वाहनसहित नष्ट हो जायगा। उसका राज्य सौ योजन लंबा-चौड़ा है, उस समूचे राज्यमें इन्द्र धूलकी बड़ी भारी वर्षा करेंगे। उस राज्यमें रहनेवाले स्थावर जङ्गम जितने भी प्राणी हैं, उन सबका उस धूलकी वर्षासे शीघ्र ही नाश हो जायगा। जहाँतक दण्डका राज्य है, वहाँतकके उपवनों और आश्रमोंमें अकस्मात् सात राततक धूलकी वर्षा होती रहेगी।'

क्रोधसे संतप्त होनेके कारण इस प्रकार शाप दे महर्षि शुक्रने आश्रमवासी शिष्योंसे कहा—'तुमलोग यहाँ रहने वाले सब लोगोंको इस राज्यकी सीमासे बाहर ले जाओ।' उनकी आज्ञा पाते ही आश्रमवासी मनुष्य शीघ्रतापूर्वक उस राज्यसे हट गये और सीमासे बाहर जाकर उन्होंने अपने डेरे डाल लिये। तदनन्तर, शुक्राचार्य अरजासे बोले—'ओ नीच बुद्धिवाली कन्या! तू अपने चित्तको एकाग्र करके सदा इस आश्रमपर ही निवास कर। यह चार कोसके विस्तारका सुन्दर शोभासम्पन्न सरोवर है। अरजे! तू रजोगुणसे रहित सात्त्विक जीवन व्यतीत करती हुई सौ वर्षोंतक यहीं रह।' महर्षिका यह आदेश सुन अरजाने 'तथास्तु' कहकर उनकी आज्ञा स्वीकार की। उस समय वह बहुत ही दुखी हो रही थी। शुक्राचार्यने कन्यासे उपर्युक्त बात कहकर वहाँसे दूसरे आश्रमके लिये प्रस्थान किया। ब्रह्मवादी महर्षिके कथनानुसार विन्ध्यगिरिके शिखरोंपर फैला हुआ राजा दण्डका समूचा राज्य एक सप्ताहके भीतर ही जलकर खाक हो गया। तबसे वह विशाल वन 'दण्डकारण्य' कहलाता है। रघुनन्दन! आपने जो मुझसे पूछा था, वह सारा प्रसङ्ग मैंने कह सुनाया, अब सन्ध्योपासनका समय बीता जा रहा है। ये महर्षिगण सब ओर जलसे भरे घड़े लेकर अर्घ्य दे भगवान् सूर्यकी पूजा कर रहे हैं। आप भी चलकर सन्ध्यावन्दन करें।

ऋषिकी आज्ञा मानकर श्रीरघुनाथजी सन्ध्योपासन करनेके लिये उस पवित्र सरोवरके तटपर गये। तदनन्तर आचमन एवं सायं-सन्ध्या करके श्रीरघुनाथजी महात्मा कुम्भजके आश्रममें गये। वहाँ उन्होंने बड़े आदरके साथ अधिक गुणकारी फल-मूल तथा रसीले साग भोजनके लिये अर्पण किये। नरश्रेष्ठ श्रीरामने बड़ी प्रसन्नताके साथ उस अमृतके समान मधुर भोजनका भोग लगाया और पूर्ण तृप्त होकर रात्रिमें वहीं शयन किया। सबेरे उठकर



उन्होंने अपना नित्यकर्म किया और वहाँसे विदा होनेके लिये महर्षिके पास गये। वहाँ जाकर उन्होंने मुनिको प्रणाम किया और कहा—'ब्रह्मन्! अब मैं आपसे विदा होना चाहता हूँ, आप आज्ञा देनेकी कृपा करें। महामुने! आज मैं आपके दर्शनसे कृतार्थ और अनुगृहीत हुआ।'

श्रीरामचन्द्रजीके ऐसे अद्भुत वचन कहनेपर तपस्वी अगस्त्यजीने अत्यन्त प्रसन्न होकर कहा—'श्रीराम! कल्याणमय अक्षरोंसे युक्त आपका यह वचन बड़ा ही अद्भुत है! रघुनन्दन! यह सम्पूर्ण प्राणियोंको पवित्र करनेवाला है। जो मनुष्य आपको दो घड़ी भी देख लेते हैं, वे समस्त प्राणियोंमें पवित्र हैं और देवता कहलाते हैं।* रघुश्रेष्ठ! आप समस्त देहधारियोंके लिये परम पावन हैं। आपका प्रभाव ऐसा ही है। जो लोग आपकी चर्चा करेंगे, उन्हें भी सिद्धि प्राप्त होगी। आप इस मार्गसे शान्त एवं निर्भय होकर जाइये और धर्मपूर्वक राज्यका पालन कीजिये; क्योंकि आप ही इस जगत्‌के एकमात्र सहारे हैं।'

महर्षिके ऐसा कहनेपर महाराज श्रीरामचन्द्रजीने हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया तथा अन्यान्य मुनिवरोंको भी, जो सब-के-सब तपस्याके धनी थे, सादर अभिवादन करके वे शान्तभावसे सुवर्णभूषित पुष्पक विमानपर चढ़ गये। यात्राके समय मुनिगणोंने सब ओरसे उनपर आशीर्वादोंकी वर्षा की। समस्त पुरुषार्थोंके ज्ञाता श्रीरघुनाथजी दोपहर होते-होते अयोध्यामें पहुँचकर सातवीं ड्योढ़ीमें उतरे। तत्पश्चात् उन्होंने इच्छानुसार चलनेवाले उस परम सुन्दर पुष्पक विमानको विदा कर दिया। फिर महाराजने द्वारपालोंसे कहा—'तुमलोग फुर्तीसे जाकर भरत और लक्ष्मणको मेरे आगमनकी सूचना दो और उन्हें अपने साथ ही लिवा लाओ; विलम्ब न करना।' द्वारपाल आज्ञाके अनुसार जाकर दोनों कुमारोंको बुला ले आये। श्रीरघुनाथजी अपने प्रियबन्धु भरत और लक्ष्मणको देखकर बड़े प्रसन्न हुए और उन्हें छातीसे लगाकर बोले—'मैंने ब्राह्मणके शुभ कार्यका यथावत् सम्पादन किया है। अब मैं [प्रतिमा-



स्थापन, देवालय-निर्माण आदि] पूर्त-धर्मका अनुष्ठान करूँगा। वीरो! मेरा कान्यकुब्ज देशमें जाकर भगवान् वामनकी प्रतिष्ठा करनेका विचार है।

---

* मुहूर्तमपि राम त्वां नेत्रेणेक्षन्ति ये नराः। पाविताः सर्वभूतेषु कथ्यन्ते त्रिदिवौकसः॥ (३४। ३८)

शुक्राचार्य मेरे पिता हैं और आप उनके शिष्य हैं। अतः धर्मके नाते मैं आपकी बहिन हूँ। इसलिये आपको मुझसे ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये। यदि दूसरे कोई दुष्ट पुरुष भी मुझपर कुदृष्टि करें तो आपको सदा उनके हाथसे मेरी रक्षा करनी चाहिये। मेरे पिता बड़े क्रोधी और भयङ्कर हैं। वे [अपने शापसे] आपको भस्म कर सकते हैं। अतः नृपश्रेष्ठ! आप मेरे महातेजस्वी पिताके पास जाइये और धर्मानुकूल बर्तावके द्वारा उनसे मेरे लिये याचना कीजिये। अन्यथा [इसके विपरीत आचरण करनेपर] आपपर महान् एवं घोर दुःख आ पड़ेगा। मेरे पिताका क्रोध उभड़ जानेपर वे समूची त्रिलोकीको भी जलाकर खाक कर सकते हैं।

दण्ड बोला—सुन्दरी! तुम्हें पा लेनेपर चाहे मेरा वध हो जाय अथवा वधसे भी महान् कष्ट भोगना पड़े [मुझे स्वीकार है]। भीरु! मैं तुम्हारा भक्त हूँ, मुझे स्वीकार करो।

ऐसा कहकर राजाने उस कन्याको बलपूर्वक बाहुपाशमें कस लिया और उस एकान्त वनमें, जहाँसे कहीं आवाज भी नहीं पहुँच सकती थी, उसे नंगा कर दिया। बेचारी अबला उसकी भुजाओंसे छूटनेके लिये बहुत छटपटायी, परन्तु फिर भी उसने स्वेच्छानुसार उसके साथ भोग किया। राजा दण्ड वह अत्यन्त कठोरतापूर्ण और महाभयानक अपराध करके तुरत अपने नगरको चल दिया तथा भार्गव कन्या अरजा दीनभावसे रोती हुई अत्यन्त उद्विग्न हो आश्रमके समीप अपने देव-तुल्य पिताके पास आयी। उसके पिता अमित तेजस्वी देवर्षि शुक्राचार्य सरोवरपर स्नान करने गये थे। स्नान करके वे दो ही घड़ीमें शिष्योंसहित आश्रमपर लौट आये। [आश्रमपर आकर] उन्होंने देखा—अरजाकी दशा बड़ी दयनीय है, वह धूलमें सनी हुई है। [तुरत ही सारा रहस्य उनके ध्यानमें आ गया।] फिर तो शुक्रको बड़ा रोष हुआ, वे तीनों लोकोंको दग्ध सा करते हुए अपने शिष्योंको सुनाकर बोले—'धर्मके विपरीत आचरण करनेवाले अदूरदर्शी दण्डके ऊपर प्रज्वलित अग्निशिखाके समान भयङ्कर विपत्ति आ रही है, तुम सब लोग देखना—वह खोटी बुद्धिवाला पापी राजा अपने देश, भृत्य, सेना और वाहनसहित नष्ट हो जायगा। उसका राज्य सौ योजन लंबा चौड़ा है, उस समूचे राज्यमें इन्द्र धूलकी बड़ी भारी वर्षा करेंगे। उस राज्यमें रहनेवाले स्थावर-जङ्गम जितने भी प्राणी हैं, उन सबका उस धूलकी वर्षासे शीघ्र ही नाश हो जायगा। जहाँतक दण्डका राज्य है, वहाँतकके उपवनों और आश्रमोंमें अकस्मात् सात राततक धूलकी वर्षा होती रहेगी।'

क्रोधसे संतप्त होनेके कारण इस प्रकार शाप दे महर्षि शुक्रने आश्रमवासी शिष्योंसे कहा—'तुमलोग यहाँ रहनेवाले सब लोगोंको इस राज्यकी सीमासे बाहर ले जाओ।' उनकी आज्ञा पाते ही आश्रमवासी मनुष्य शीघ्रतापूर्वक उस राज्यसे हट गये और सीमासे बाहर जाकर उन्होंने अपने डेरे डाल लिये। तदनन्तर, शुक्राचार्य अरजासे बोले—'ओ नीच बुद्धिवाली कन्या! तू अपने चित्तको एकाग्र करके सदा इस आश्रमपर ही निवास कर। यह चार कोसके विस्तारका सुन्दर शोभासम्पन्न सरोवर है। अरजे! तू रजोगुणसे रहित सात्त्विक जीवन व्यतीत करती हुई सौ वर्षोंतक यहीं रह।' महर्षिका यह आदेश सुन अरजाने 'तथास्तु' कहकर उनकी आज्ञा स्वीकार की। उस समय वह बहुत ही दुःखी हो रही थी। शुक्राचार्यने कन्यासे उपर्युक्त बात कहकर वहाँसे दूसरे आश्रमके लिये प्रस्थान किया। ब्रह्मवादी महर्षिके कथनानुसार विन्ध्यगिरिके शिखरोंपर फैला हुआ राजा दण्डका समूचा राज्य एक सप्ताहके भीतर ही जलकर खाक हो गया। तबसे वह विशाल वन 'दण्डकारण्य' कहलाता है। रघुनन्दन! आपने जो मुझसे पूछा था, वह सारा प्रसङ्ग मैंने कह सुनाया, अब सन्ध्योपासनका समय बीता जा रहा है। ये महर्षिगण सब ओर जलसे भरे घड़े लेकर अर्घ्य दे भगवान् सूर्यकी पूजा कर रहे हैं। आप भी चलकर सन्ध्यावन्दन करें।

ऋषिकी आज्ञा मानकर श्रीरघुनाथजी सन्ध्योपासन करनेके लिये उस पवित्र सरोवरके तटपर गये। तदनन्तर आचमन एवं सायंसन्ध्या करके श्रीरघुनाथजी महात्मा कुम्भजके आश्रममें गये। वहाँ उन्होंने बड़े आदरके साथ अधिक गुणकारी फल मूल तथा रसीले साग भोजनके लिये अर्पण किये। नरश्रेष्ठ श्रीरामने बड़ी प्रसन्नताके साथ उस अमृतके समान मधुर भोजनका भोग लगाया और पूर्ण तृप्त होकर रात्रिमें वहीं शयन किया। सबेरे उठकर



उन्होंने अपना नित्यकर्म किया और वहाँसे विदा होनेके लिये महर्षिके पास गये। वहाँ जाकर उन्होंने मुनिको प्रणाम किया और कहा—'ब्रह्मन्! अब मैं आपसे विदा होना चाहता हूँ, आप आज्ञा देनेकी कृपा करें। महामुने! आज मैं आपके दर्शनसे कृतार्थ और अनुगृहीत हुआ।'

श्रीरामचन्द्रजीके ऐसे अद्भुत वचन कहनेपर तपस्वी अगस्त्यजीने अत्यन्त प्रसन्न होकर कहा—'श्रीराम! कल्याणमय अक्षरोंसे युक्त आपका यह वचन बड़ा ही अद्भुत है! रघुनन्दन! यह सम्पूर्ण प्राणियोंको पवित्र करनेवाला है। जो मनुष्य आपको दो घड़ी भी देख लेते हैं, वे समस्त प्राणियोंमें पवित्र हैं और देवता कहलाते हैं।* रघुश्रेष्ठ! आप समस्त देहधारियोंके लिये परम पावन हैं। आपका प्रभाव ऐसा ही है। जो लोग आपकी चर्चा करेंगे, उन्हें भी सिद्धि प्राप्त होगी। आप इस मार्गसे शान्त एवं निर्भय होकर जाइये और धर्मपूर्वक राज्यका पालन कीजिये; क्योंकि आप ही इस जगत्के एकमात्र सहारे हैं।'

महर्षिके ऐसा कहनेपर महाराज श्रीरामचन्द्रजीने हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया तथा अन्यान्य मुनिवरोंको भी, जो सब-के-सब तपस्याके धनी थे, सादर अभिवादन करके वे शान्तभावसे सुवर्णभूषित पुष्पक विमानपर चढ़ गये। यात्राके समय मुनिगणोंने सब ओरसे उनपर आशीर्वादोंकी वर्षा की। समस्त पुरुषार्थोंके ज्ञाता श्रीरघुनाथजी दोपहर होते-होते अयोध्यामें पहुँचकर सातवीं ड्योढ़ीमें उतरे। तत्पश्चात् उन्होंने इच्छानुसार चलनेवाले उस परम सुन्दर पुष्पक विमानको विदा कर दिया। फिर महाराजने द्वारपालोंसे कहा—'तुमलोग फुर्तीसे जाकर भरत और लक्ष्मणको मेरे आगमनकी सूचना दो और उन्हें अपने साथ ही लिवा लाओ; विलम्ब न करना।' द्वारपाल आज्ञाके अनुसार जाकर दोनों कुमारोंको बुला ले आये। श्रीरघुनाथजी अपने प्रियबन्धु भरत और लक्ष्मणको देखकर बड़े प्रसन्न हुए और उन्हें छातीसे लगाकर बोले—'मैंने ब्राह्मणके शुभ कार्यका यथावत् सम्पादन किया है। अब मैं [प्रतिमा-



स्थापन, देवालय-निर्माण आदि] पूर्त-धर्मका अनुष्ठान करूँगा। वीरो! मेरा कान्यकुब्ज देशमें जाकर भगवान् वामनकी प्रतिष्ठा करनेका विचार है।

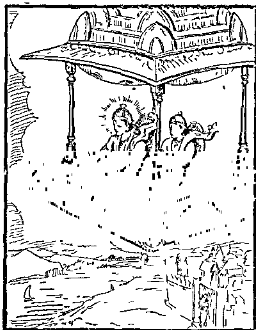
* मुहूर्तमपि राम त्वां नेत्रेणेक्षन्ति ये नराः। पाविताः सर्वभूतेषु कथ्यन्ते त्रिदिवौकसः॥ (३४ । ३८)

श्रीरामका लङ्का, रामेश्वर, पुष्कर एवं मथुरा होते हुए गङ्गातटपर जाकर भगवान् श्रीवामनकी स्थापना करना

भीष्मजीने पूछा—ब्रह्मर्षे! श्रीरामचन्द्रजीने कान्यकुब्ज देशमें भगवान् श्रीवामनकी प्रतिष्ठा किस प्रकार की, उन्हें श्रीवामनजीका विग्रह वहाँ प्राप्त हुआ—इन सब बातोंका विस्तारके साथ वर्णन कीजिये। भगवन्! श्रीरामचन्द्रजीके कीर्तनसे सम्बन्ध रखनेवाली कथा बड़ी ही मधुर, पावन तथा मनोरम होती है। आपने जो यह कथा सुनायी है, उससे मेरे हृदय और कानोंको बड़ा सुख मिला है। सारा संसार भगवान् श्रीरामको प्रेम और अनुरागसे देखता है; वे बड़े ही धर्मज्ञ थे। वे जब पृथ्वीका राज्य करते थे, उस समय सभी वृक्ष फल और रससे भरे रहते थे। पृथ्वी बिना जोते ही अन्न देती थी। उन महात्माका इस भूमण्डलपर कोई शत्रु नहीं था। अतः मुनिवर! मैं उन भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका सारा चरित्र सुनना चाहता हूँ।

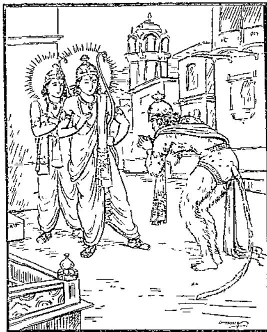
पुलस्त्यजी बोले—महाराज! धर्मके मार्गपर स्थित रहनेवाले श्रीरामचन्द्रजीने कुछ कालके पश्चात् जो महत्त्वपूर्ण कार्य किया, उसे एकाग्र मनसे सुनो। एक दिन श्रीरघुनाथजी मन-ही-मन इस बातका विचार करने लगे कि 'राक्षस-कुलोत्पन्न राजा विभीषण लङ्कामें रहकर सदा ही राज्य करते रहें—उसमें किसी प्रकारकी विघ्न-बाधा न पड़े, इसके लिये क्या उपाय हो सकता है। मुझे चलकर उन्हें हितकी बात बतानी चाहिये, जिससे उनका राज्य सदा कायम रहे।' अमित तेजस्वी श्रीरामचन्द्रजी जब इस प्रकार विचार कर रहे थे, उसी समय भरतजी वहाँ आये और श्रीरामको विचारमग्न देख यों बोले—'देव! आप क्या सोच रहे हैं? यदि कोई गुप्त बात न हो तो मुझे बतानेकी कृपा करें।' श्रीरघुनाथजीने कहा—'मेरी कोई भी बात तुमसे छिपानेयोग्य नहीं है। तुम और महायशस्वी लक्ष्मण मेरे बाहरी प्राण हो। मेरे मनमें इस समय सबसे बड़ी चिन्ता यह है कि विभीषण देवताओंके साथ कैसा बर्ताव करते हैं; क्योंकि देवताओंके हितके लिये ही मैंने रावणका वध किया था। इसलिये वत्स! जहाँ विभीषण हैं, वहाँ मैं जाना चाहता हूँ। लङ्कापुरीको देखकर राक्षसराजको उनके कर्तव्यका उपदेश करूँगा।'

भगवान् श्रीरामके ऐसा कहनेपर हाथ जोड़कर खड़े हुए भरतने कहा—'मैं भी आपके साथ चलूँगा।' श्रीरघुनाथजी बोले—'महाबाहो! अवश्य चलो।' फिर वे लक्ष्मणसे बोले—'वीर! तुम नगरमें रहकर हम दोनोंके लौटनेतक इसकी रक्षा करना।' लक्ष्मणको इस प्रकार आदेश देकर कौसल्याका आनन्द बढ़ानेवाले श्रीरामचन्द्रजीने पुष्पक विमानका स्मरण किया। विमानके आ जानेपर वे दोनों भाई उसपर आरूढ हुए। सबसे पहले वह विमान गान्धार



देशमें गया, वहाँ भगवान्ने भरतके दोनों पुत्रोंसे मिलकर उनकी राजनीतिका निरीक्षण किया। इसके बाद पूर्व दिशामें जाकर वे लक्ष्मणके पुत्रोंसे मिले। उनके नगरोंमें छः रातें व्यतीत करके दोनों भाई राम और भरत दक्षिण दिशाकी ओर चले। गङ्गा-यमुनाके संगम-स्थान प्रयागमें जाकर महर्षि भरद्वाजको प्रणाम करके वे अत्रिमुनिके आश्रमपर गये। वहाँ अत्रिमुनिसे बातचीत करके दोनों भाइयोंने जनस्थानकी यात्रा की। [जनस्थानमें प्रवेश करते हुए] श्रीरामचन्द्रजी बोले—"भरत! यही वह स्थान है, जहाँ दुरात्मा रावणने गृध्रराज जटायुको मारकर सीताका हरण किया था। जटायु हमारे पिताजीके मित्र थे। इस स्थानपर हमलोगोंका दुष्ट बुद्धिवाले कबन्धके साथ महान् युद्ध हुआ

था। कबन्धको मारकर हमने उसे आगमें जला दिया था। मरते समय उसने बताया कि सीता रावणके घरमें हैं। उसने यह भी कहा कि 'आप ऋष्यमूक पर्वतपर जाइये। वहाँ सुग्रीव नामके वानर रहते हैं, वे आपके साथ मित्रता करेंगे।' यही वह पम्पा सरोवर है, जहाँ शबरी नामकी तपस्विनी रहती थी। यही वह स्थान है, जहाँ सुग्रीवके लिये मैंने वालीको मारा था। वीर! वालीकी राजधानी किष्किन्धापुरी यह दिखायी दे रही है। इसीमें धर्मात्मा वानरराज सुग्रीव अन्यान्य वानरोंके साथ निवास करते हैं।' सुग्रीव उस समय अपने सभाभवनमें विराजमान थे। इतनेमें ही भरत और श्रीरामचन्द्रजी किष्किन्धापुरीमें जा पहुँचे। उन दोनों भाइयोंको उपस्थित देख सुग्रीवने उनके चरणोंमें प्रणाम किया। फिर उन दोनों



भाइयोंको सिंहासनपर बिठाकर सुग्रीवने अर्घ्य निवेदन किया और साथ ही अपने आपको भी उनके चरणोंमें अर्पित कर दिया। इस प्रकार जब परम धर्मात्मा श्रीरघुनाथजी सभामें विराजमान हुए तब अङ्गद, हनुमान्, नल, नील, पाटल और ऋक्षराज जाम्बवान् आदि सभी वानर-वीर सेनाओंसहित वहाँ आये। अन्तःपुरकी सभी स्त्रियाँ—रुमा और तारा आदि भी उपस्थित हुईं। सबको अनुपम आनन्द प्राप्त हुआ। सब लोग भगवान्को साधुवाद देने लगे और सबने भगवान्का दर्शन करके प्रेमाश्रुओंसे गद्गद हो उन्हें प्रणाम किया।

सुग्रीव बोले—महाराज! आप दोनोंने किस कार्यसे यहाँ पधारनेकी कृपा की है, यह शीघ्र बताइये।

सुग्रीवके इस प्रकार पूछनेपर श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे भरतने लङ्का-यात्राकी बात बतायी। तब सुग्रीवने कहा—'मैं भी आप दोनोंके साथ राक्षसराज विभीषणसे मिलनेके लिये लङ्कापुरीमें चलूँगा।' सुग्रीवके ऐसा कहनेपर श्रीरघुनाथजीने कहा—'चलो।' फिर सुग्रीव, श्रीराम और भरत—ये तीनों पुष्पक विमानपर बैठे। तुरंत ही वह विमान समुद्रके उत्तर-तटपर जा पहुँचा। उस समय श्रीरामने भरतसे कहा—"यही वह स्थान है, जहाँ राक्षसराज विभीषण अपने चार मन्त्रियोंको साथ लेकर प्राण बचानेके लिये मेरे पास आये थे। उसी समय लक्ष्मणने लङ्काके राज्यपर उनका अभिषेक किया था। यहाँ मैं समुद्रके इस पार तीन दिनतक इस आशासे ठहरा रहा कि यह मुझे दर्शन देगा और [सगरका पुत्र होनेके नाते] अपना कुटुम्बी समझकर मेरा कार्य करेगा। किन्तु तबतक इसने मुझे दर्शन नहीं दिया। यह देखकर चौथे दिन मैंने बड़े वेगसे धनुष चढ़ाकर हाथमें दिव्यास्त्र ले लिया। यह देख समुद्रको बड़ा भय हुआ और वह शरणार्थी होकर लक्ष्मणके पास पहुँचा। सुग्रीवने भी बहुत अनुनय-विनय की और कहा—'प्रभो! इसे क्षमा कर दीजिये।' तब मैंने वह बाण मरुदेशमें फेंक दिया। इसके बाद समुद्रने मुझसे कहा—'रघुनन्दन! आप मेरे ऊपर पुल बाँधकर जलराशिसे पूर्ण महासागरके पार चले जाइये।' तब मैंने वरुणके निवास-स्थान समुद्रपर यह महान् पुल बाँधा था। श्रेष्ठ वानरोंने मिलकर तीन ही दिनोंमें यह कार्य पूरा किया था। पहले दिन उन्होंने चौदह योजनतक पुल बाँधा, दूसरे दिन छत्तीस योजनतक और तीसरे दिन सौ योजनतकका पूरा पुल तैयार कर दिया। देखो, यह लङ्का दिखायी दे रही है। इसका परकोटा और नगरद्वार—सब सोनेके बने हुए हैं। यहाँ वानर-वीरोंने बहुत बड़ा घेरा डाला था। यहाँ नीलने राक्षसश्रेष्ठ प्रहस्तका वध किया था। इसी स्थानपर हनुमान्‌जीने धूम्राक्षको मार गिराया था। यहीं सुग्रीवने महोदर और अतिकायको मौतके घाट उतारा था। इसी स्थानपर मैंने कुम्भकर्णको और लक्ष्मणने इन्द्रजित्को मारा था। तथा यहीं मैंने राक्षसराज दशग्रीवका वध किया था। यहाँ लोकपितामह ब्रह्माजी मुझसे वार्तालाप करनेके

लिये पधारे थे । उनके साथ पार्वतीसहित त्रिशूलधारी भगवान् शङ्कर भी थे । हमारे पिता महाराज दशरथ भी स्वर्गलोकसे यहाँ पधारे थे। जानकीकी शुद्धि चाहनेवाले उन सभी लोगोंके समक्ष सीताने इस स्थानपर अग्निमें प्रवेश किया था और वे सर्वथा शुद्ध प्रमाणित हुई थीं। लङ्कापुरीके अधिष्ठाता देवताओंने भी सीताकी अग्नि परीक्षा देखी थी । पिताजीकी आज्ञासे मैंने सीताको स्वीकार किया । उसके बाद महाराजने मुझसे कहा—'बेटा ! अब अयोध्याको जाओ ।''

श्रीरामचन्द्रजी जब इस प्रकार बात कर रहे थे, पुष्पक विमान वहीं ठहरा रहा । उसी समय प्रधान प्रधान राक्षसोंने जो वहाँ उपस्थित थे, तुरत ही विभीषणके पास जा बड़े हर्षमें भरकर निवेदन किया—'राक्षसराज ! सुग्रीवके साथ भगवान् श्रीरामचन्द्रजी पधारे हैं, उनके साथ उन्हींकी सी आकृतिवाले एक दूसरे पुरुष भी हैं ।' 'श्रीरामचन्द्रजी नगरके समीप आ गये हैं' यह समाचार सुनकर विभीषणने [प्रिय सवाद सुनानेवाले] उन दूतोंका विशेष सत्कार किया तथा उन्हें धन देकर उनके सभी मनोरथ पूर्ण किये । फिर लङ्कापुरीको सजानेकी आज्ञा देकर वे मन्त्रियोंके साथ बाहर निकले । मेरु पर्वतपर उदित हुए सूर्यकी भाँति भगवान् श्रीरामको विमानपर बैठे देख विभीषणने उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम



किया और कहा—'भगवन् ! आज मेरा जन्म सफल हुआ, मेरे सभी मनोरथ पूर्ण हो गये, क्योंकि आज मुझे आपके विश्व-वन्द्य चरणोंका दर्शन मिला है।' इस प्रकार श्रीरघुनाथजीका अभिवादन करके वे भरत और सुग्रीवसे भी गले लगकर मिले । तदनन्तर उन्होंने स्वर्गसे भी बढ़कर सुशोभित लङ्कापुरीमें सबको प्रवेश कराया और सब प्रकारके रत्नोंसे सुशोभित रावणके जगमगाते हुए भवनमें उन्हें ठहराया। जब श्रीरामचन्द्रजी आसनपर विराजमान हो गये, तब विभीषणने अर्घ्य निवेदन करके हाथ जोड़कर सुग्रीव और भरतसे कहा—'यहाँ पधारे हुए भगवान् श्रीरामको भेंट करने योग्य कोई वस्तु मेरे पास नहीं है । यह लङ्कापुरी तो स्वयं भगवान्ने ही त्रिलोकीके लिये कण्टकरूप पापी शत्रुको मारकर मुझे प्रदान की है । यह पुरी ही नहीं, ये स्त्रियाँ, ये पुत्र तथा स्वयं मैं—यह सब कुछ भगवान्की सेवामें अर्पित है । भगवन् ! आपको नमस्कार है; आप इसे स्वीकार करें।'

तदनन्तर राजा विभीषणका मन्त्रिमण्डल और लङ्काके निवासी श्रीरामचन्द्रजीके दर्शनके लिये उत्सुक हो वहाँ आये और विभीषणसे बोले—'प्रभो ! हमें श्रीरामजीका दर्शन करा दीजिये ।' विभीषणने महाराज श्रीरामचन्द्रजीसे उनका परिचय कराया और श्रीरामकी आज्ञासे भरतने उन राक्षस पतियोंके द्वारा भेंटमें दिये हुए धन और रत्नराशिको ग्रहण किया । इस प्रकार राक्षसराजके भवनमें श्रीरघुनाथजीने तीन दिनतक निवास किया । चौथे दिन जब श्रीरामचन्द्रजी राजसभामें विराजमान थे, राजमाता कैकसीने विभीषणसे कहा—'बेटा ! मैं भी अपनी बहुओंके साथ चलकर श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन करूँगी, तुम उन्हें सूचना दे दो । ये महाभाग श्रीरघुनाथजी चार मूर्तियोंमें प्रकट हुए सनातन भगवान् श्रीविष्णु हैं तथा परम सौभाग्यवती सीता साक्षात् लक्ष्मी हैं। तुम्हारा बड़ा भाई उनके स्वरूपको नहीं पहचान पाया था। तुम्हारे पिताने देवताओंके सामने पहले ही कह दिया था कि भगवान् श्रीविष्णु रघुकुलमें राजा दशरथके पुत्ररूपसे अवतार लेंगे । वे ही दशग्रीव रावणका विनाश करेंगे ।'

विभीषण बोले—माँ ! तुम श्रीरघुनाथजीके समीप अवश्य जाओ । मैं पहले जाकर उन्हें सूचना देता हूँ ।

यों कहकर विभीषण जहाँ श्रीरामचन्द्रजी थे, वहाँ गये और वहाँ भगवान्का दर्शन करनेके लिये आये हुए सब लोगोंको विदा करके उन्होंने सभा भवनको सर्वथा एकान्त

बना दिया। फिर श्रीरामके सम्मुख खड़े होकर कहा—'महाराज ! मेरा निवेदन सुनिये; रावणको, कुम्भकर्णको तथा मुझको जन्म देनेवाली मेरी माता कैकसी आपके चरणोंका दर्शन चाहती है; आप कृपा करके उसे दर्शन दें।'

श्रीरामने कहा—'राक्षसराज ! [तुम्हारी माता मेरी भी माता ही हैं, अतः] मैं माताका दर्शन करनेकी इच्छासे स्वयं ही उनके पास चलूँगा। तुम शीघ्र मेरे आगे-आगे चलो।' ऐसा कहकर वे सिंहासनसे उठे और चल पड़े। कैकसीके पास पहुँचकर उन्होंने मस्तकपर अञ्जलि बाँध उसे प्रणाम करते हुए कहा—'देवि ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। [मित्रकी माता होनेके नाते] आप धर्मतः मेरी माता हैं। जैसे कौसल्या मेरी माता हैं, उसी प्रकार आप भी हैं।'



कैकसी बोली—वत्स ! तुम्हारी जय हो, तुम चिरकालतक जीवित रहो। वीर ! मेरे पतिने कहा था कि 'भगवान् श्रीविष्णु देवताओंका हित करनेके लिये रघुकुलमें मनुष्यरूपसे अवतार लेंगे। वे रावणका विनाश करके विभीषणको राज्य प्रदान करेंगे। वे दशरथनन्दन श्रीराम वालीका वध और समुद्रपर पुल बाँधने आदिका कार्य भी करेंगे।' इस समय स्वामीके वचनोंका स्मरण करके मैंने तुम्हें पहचान लिया। सीता लक्ष्मी हैं, तुम श्रीविष्णु हो और वानर देवता हैं। अच्छा, बेटा ! तुम्हें अमर यश प्राप्त हो।

विभीषणकी पत्नी सरमाने कहा—भगवन् ! यहीं अशोक-वाटिकामें आपकी प्रिया श्रीजानकी देवीकी मैंने पूरे एक वर्षतक सेवा की थी, वे मेरी सेवासे यहाँ सुखपूर्वक रही हैं। परंतप ! मैं प्रतिदिन श्रीसीताके चरणोंका स्मरण करती हूँ। रात-दिन यही सोचती रहती हूँ कि कब उनका दर्शन होगा। आप श्रीजनकनन्दिनीको अपने साथ ही यहाँ क्यों नहीं लेते आये ? उनके बिना अकेले आपकी शोभा नहीं हो रही है। आपके निकट सीता शोभा पाती हैं और सीताके समीप आप।

जब सरमा इस प्रकार बात कर रही थी, उस समय भरत मन-ही-मन सोचने लगे—'यह कौन स्त्री है, जो श्रीरघुनाथजीसे वार्तालाप कर रही है ?' श्रीरामचन्द्रजी भरतका अभिप्राय ताड़ गये, वे तुरंत ही बोले—'ये विभीषणकी पत्नी हैं, इनका नाम सरमा है। ये सीताकी प्रिय सखी हैं। वे इन्हें बहुत मानती हैं।' इतना कहकर वे सरमासे बोले—'कल्याणी ! अब तुम भी जाओ और पतिके गृहकी रक्षा करो।' इस प्रकार सीताकी प्यारी सखी सरमाको विदा करके श्रीरामने विभीषणसे कहा—'निष्पाप विभीषण ! तुम सदा देवताओंका प्रिय कार्य करना, कभी उनका अपराध न करना; तुम्हें देवराजके आज्ञानुसार ही चलना चाहिये। यदि लङ्कामें किसी तरह कोई मनुष्य चला आये तो राक्षसोंको उसका वध नहीं करना चाहिये, वरं मेरी ही भाँति उसका स्वागत-सत्कार करना चाहिये।'

विभीषणने कहा—'नरश्रेष्ठ ! आपकी आज्ञाके अनुसार ही मैं सारा कार्य करूँगा।' विभीषण जब इस प्रकार कह रहे थे, उसी समय वायुदेवताने आकर श्रीरामसे कहा—'महाभाग ! यहाँ भगवान् श्रीविष्णुकी वामन-मूर्ति है, जिसने पूर्वकालमें राजा बलिको बाँधा था। आप उसे ले जायँ और कान्यकुब्ज देशमें स्थापित कर दें।' वायु देवताके प्रस्तावमें श्रीरामचन्द्रजीकी सम्मति जान विभीषणने श्रीवामनभगवान्‌के विग्रहको सब प्रकारके रत्नोंसे विभूषित किया और लाकर भगवान् श्रीरामको समर्पित कर दिया। फिर उन्होंने इस प्रकार कहा—'रघुनन्दन ! जिस समय मेघनादने इन्द्रको परास्त किया था, उस समय विजय-चिह्नके रूपमें वह इस वामन-मूर्तिको [इन्द्रलोकसे] उठा लाया था। देवदेव ! अब आप इन भगवान्‌को ले जाइये और यथास्थान इन्हें स्थापित कीजिये।'

'तथास्तु' कहकर श्रीरघुनाथजी पुष्पक विमानपर

आरूढ हुए। उनके पीछे असंख्य धन, रत्न और देवश्रेष्ठ वामनजीको लेकर सुग्रीव और भरत भी विमानपर चढ़े। आकाशमें जाते समय श्रीरामने विभीषणसे कहा—'तुम यहीं रहो।' यह सुनकर विभीषणने श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—'प्रभो! आपने मुझे जो-जो आज्ञाएँ दी हैं, उन सबका मैं पालन करूँगा। परन्तु महाराज! इस सेतुके मार्गसे पृथ्वीके समस्त मानव यहाँ आकर मुझे सतायेंगे। ऐसी परिस्थितिमें मुझे क्या करना चाहिये?' विभीषणकी बात सुनकर श्रीरघुनाथजीने हाथमें धनुष ले सेतुके दो टुकड़े कर दिये। फिर तीन विभाग करके बीचका दस योजन उड़ा दिया। उसके बाद एक स्थानपर एक योजन और तोड़ दिया। तदनन्तर वेलावन (वर्तमान रामेश्वरक्षेत्र)में पहुँचकर श्रीरामचन्द्रजीने श्रीरामेश्वरके नामसे देवाधिदेव महादेवजीकी स्थापना की तथा उनका विधिवत् पूजन किया।



भगवान् रुद्र बोले—रघुनन्दन! मैं इस समय यहाँ साक्षात् रूपसे विराजमान हूँ। जबतक यह संसार, यह पृथ्वी और यह आपका सेतु कायम रहेगा, तबतक मैं भी यहाँ स्थिरतापूर्वक निवास करूँगा।

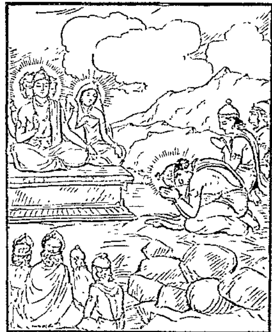
श्रीरामने कहा—भक्तोंको अभय करनेवाले देवदेवेश्वर! आपको नमस्कार है। दक्ष-यज्ञका विध्वंस करनेवाले गौरीपते! आपको नमस्कार है। आप ही शर्व[1], रुद्र[2], भव[3] और वरद[4] आदि नामोंसे प्रसिद्ध हैं। आपको नमस्कार है। आप पशुओं (जीवों) के स्वामी, नित्य उग्रस्वरूप तथा जटाजूट धारण करनेवाले हैं; आपको नमस्कार है। आप ही महादेव, भीम[5] और त्र्यम्बक (त्रिनेत्रधारी) कहलाते हैं; आपको नमस्कार है। प्रजापालक, सबके ईश्वर, भग देवताके नेत्र फोड़नेवाले तथा अन्धकासुरका वध करनेवाले भी आप ही हैं; आपको नमस्कार है। आप नीलकण्ठ, भीम, वेधा (विधाता), ब्रह्माजीके द्वारा स्तुत, कुमार कार्तिकेयके शत्रुका विनाश करनेवाले, कुमारको जन्म देनेवाले, विलोहित[6], धूम्र[7], शिव[8], क्रथन[9], नीलशिखण्ड[10], शूली (त्रिशूलधारी), दिव्यशायी,[11] उग्र और त्रिनेत्र आदि नामोंसे प्रसिद्ध हैं। सोना और धन आपका वीर्य है। आपका स्वरूप किसीके चिन्तनमें नहीं आ सकता। आप देवी पार्वतीके स्वामी हैं। सम्पूर्ण देवता आपकी स्तुति करते हैं। आप शरण लेने योग्य, कामना करने योग्य और सद्योजात[12] नामसे प्रसिद्ध हैं; आपको नमस्कार है। आपकी ध्वजामें वृषभका चिह्न है। आप मुण्डित भी हैं और जटाधारी भी। आप ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन करनेवाले, तपस्वी, शान्त, ब्राह्मणभक्त, जयस्वरूप, विश्वके आत्मा, संसारकी सृष्टि करनेवाले तथा सम्पूर्ण विश्वको व्याप्त करके स्थित हैं; आपको नमस्कार है। आप दिव्यस्वरूप, शरणागतका कष्ट दूर करनेवाले, भक्तोंपर सदा ही दया रखनेवाले तथा विश्वके तेज और मनमें व्याप्त रहनेवाले हैं; आपको बारंबार नमस्कार है।*

१. प्रलय-कालमें संसारका संहार करनेवाले। २. जगत्‌को रुलानेवाले। ३. संसारकी उत्पत्तिके कारण। ४. वर देनेवाले। ५. भयंकर रूप धारण करनेवाले। ६. लाल रंगवाले। ७. धुएँके समान रंगवाले। ८. कल्याणस्वरूप। ९. मारनेवाले। १०. नीले रंगका जटाजूट धारण करनेवाले। ११. दिव्यरूपसे शयन करनेवाले। १२. भक्तोंकी प्रार्थनासे तत्काल प्रकट होनेवाले।

* नमस्ते देवदेवेश भक्तानामभयंकर।
गौरीकान्त नमस्तुभ्यं दक्षयज्ञविनाशन॥
नमः शर्वाय रुद्राय भवाय वरदाय च।
पशूनां पतये नित्यमुग्राय च कपर्दिने॥
महादेवाय भीमाय त्र्यम्बकाय विशाम्पते।
ईशानाय भगघ्नाय नमोऽस्त्वन्धकघातिने॥

पुलस्त्यजी कहते हैं—इस प्रकार स्तुति करनेपर देवाधिदेव महादेवजीने अपने सामने खड़े हुए श्रीरामचन्द्रजीसे कहा—'रघुनन्दन! आपका कल्याण हो। कमलनयन परमेश्वर! आप देवताओंके भी आराध्य देव और सनातन पुरुष हैं। नररूपमें छिपे हुए साक्षात् नारायण हैं। इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये ही आपने अवतार ग्रहण किया था, सो अब इस अवतारका सारा कार्य आपने पूर्ण कर दिया है। आपके बनाये हुए मेरे इस स्थानपर समुद्रके समीप आकर जो मनुष्य मेरा दर्शन करेंगे, वे यदि महापापी होंगे तो भी उनके सारे पाप नष्ट हो जायँगे। ब्रह्महत्या आदि जो कोई भी घोर पाप हैं, वे मेरे दर्शनमात्रसे नष्ट हो जाते हैं—*इसमें अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता* नहीं है।* अच्छा, अब आप जाइये और गङ्गाजीके तटपर भगवान् श्रीवामनकी स्थापना कीजिये। पृथ्वीके आठ भाग करके [उन्हें पुत्रोंको सौंप दीजिये और स्वयं] अपने परम धामको पधारिये। भगवन्! आपको नमस्कार है।'

तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजी भगवान् शंकरको प्रणाम करके वहाँसे चल दिये। ऊपर-ही-ऊपर जब वे पुष्कर तीर्थके सामने पहुँचे तो उनके विमानकी गति रुक गयी। अब वह आगे नहीं बढ़ पाता था। तब श्रीरामचन्द्रजीने कहा—'सुग्रीव! इस निराधार आकाशमें स्थित होकर भी यह विमान कैसे आबद्ध हो गया है? इसका कुछ कारण अवश्य होगा, तुम नीचे जाकर पता लगाओ।' श्रीरघुनाथजीके आज्ञानुसार सुग्रीव विमानसे उतरकर जब पृथ्वीपर आये तो क्या देखते हैं कि देवताओं, सिद्धों और ब्रह्मर्षियोंके समुदायके साथ चारों वेदोंसे युक्त भगवान् ब्रह्माजी विराजमान हैं। यह देख वे विमानपर जाकर श्रीरामचन्द्रजीसे बोले—'भगवन्! यहाँ समस्त लोकोंके पितामह ब्रह्माजी लोकपालों, वसुओं, आदित्यों और मरुद्गणोंके साथ विराजमान हैं। इसी लिये पुष्पक विमान उन्हें लाँघकर नहीं जा रहा है।' तब श्रीरामचन्द्रजी सुवर्णभूषित पुष्पक विमानसे उतरे और देवी गायत्रीके साथ बैठे हुए भगवान् ब्रह्माको साष्टाङ्ग प्रणाम किया। इसके बाद वे प्रणतभावसे उनकी स्तुति करने लगे।



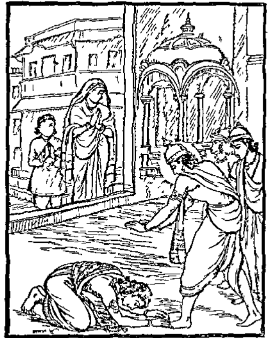
श्रीरामचन्द्रजीने कहा—मैं प्रजापतियों और देवताओंसे पूजित लोककर्ता ब्रह्माजीको नमस्कार करता हूँ। समस्त देवताओं, लोकों एवं प्रजाओंके स्वामी जगदीश्वरको प्रणाम करता हूँ। देवदेवेश्वर! आपको नमस्कार है। देवता और असुर दोनों ही आपकी वन्दना करते हैं। आप भूत, भविष्य और वर्तमान—तीनों कालोंके स्वामी हैं। आप

नीलग्रीवाय भीमाय वेधसे वेधसा स्तुत।
कुमारशत्रुनिघ्नाय कुमारजननाय च॥
विलोहिताय धूम्राय शिवाय क्रथनाय च।
नित्यं नीलशिखण्डाय शूलिने दिव्यशायिने॥
उग्राय च त्रिनेत्राय हिरण्यवसुरेतसे।
अचिन्त्यायाम्बिकाभर्त्रे सर्वदेवस्तुताय च॥
अभिगम्याय काम्याय सद्योजाताय वै नमः।
वृषध्वजाय मुण्डाय जटिने ब्रह्मचारिणे॥
तप्यमानाय शान्ताय ब्रह्मण्याय जयाय च।
विश्वात्मने विश्वसृजे विश्वमावृत्य तिष्ठते॥
नमो नमस्ते दिव्याय प्रपन्नार्तिहराय च।
भक्तानुकम्पिने नित्यं विश्वतेजोमनोगते॥
(३५। १३९—१४७)

* इह त्वया कृते स्थाने मदीये रघुनन्दन।
आगत्य मानवा राम पश्येयुरिह सागरे॥
महापातकयुक्ता ये तेषां पापं विनङ्क्ष्यति।
ब्रह्मवध्यादि पापानि दुष्टानि यानि कानिचित्॥
दर्शनादेव नश्यन्ति नात्र कार्या विचारणा।
(३५। १५२-१५४)

ही संहारकारी रुद्र हैं। आपके नेत्र भूरे रंगके हैं। आप ही बालक और आप ही वृद्ध हैं। गलेमें नीला चिह्न धारण करनेवाले महादेवजी तथा लंबे उदरवाले गणेशजी भी आपके ही स्वरूप हैं। आप वेदोंके कर्ता, नित्य, पशुपति (जीवोंके स्वामी), अविनाशी, हाथोंमें कुश धारण करनेवाले, हंससे चिह्नित ध्वजावाले, भोक्ता, रक्षक, शङ्कर, विष्णु, जटाधारी, मुण्डित, शिखाधारी एवं दण्ड धारण करनेवाले, महान् यशस्वी, भूतोंके ईश्वर, देवताओंके अधिपति, सबके आत्मा, सबको उत्पन्न करनेवाले, सर्वव्यापक, सबका संहार करनेवाले, सृष्टिकर्ता, जगद्गुरु, अविकारी, कमण्डलु धारण करनेवाले देवता, स्रुक्-स्रुवा आदि धारण करनेवाले, मृत्यु एवं अमृतस्वरूप, पारियात्र पर्वतरूप, उत्तम व्रतका पालन करनेवाले, ब्रह्मचारी, व्रतधारी, हृदय गुहामें निवास करनेवाले, उत्तम कमल धारण करनेवाले, अमर, दर्शनीय, बालसूर्यके समान अरुण कान्तिवाले, कमलपर वास करनेवाले, षड्विध ऐश्वर्यसे परिपूर्ण, सावित्रीके पति, अच्युत, दानवोंको वर देनेवाले, विष्णुसे वरदान प्राप्त करनेवाले, कर्मकर्ता, पापहारी, हाथमें अभय-मुद्रा धारण करनेवाले, अग्निरूप मुखवाले, अग्निमय ध्वजा धारण करनेवाले, मुनिस्वरूप, दिशाओंके अधिपति, आनन्दरूप, वेदोंकी सृष्टि करनेवाले, धर्मादि चारों पुरुषार्थोंके स्वामी, वानप्रस्थ, वनवासी, आश्रमों द्वारा पूजित, जगत्‌को धारण करनेवाले, कर्ता, पुरुष, शाश्वत, ध्रुव, धर्माध्यक्ष, विरूपाक्ष, मनुष्योंके गन्तव्य मार्ग, भूतभावन, ऋक्, साम और यजु—इन तीनों वेदोंको धारण करनेवाले, अनेक रूपोंवाले, हजारों सूर्योंके समान तेजस्वी, अज्ञानियोंको—विशेषतः दानवोंको मोह और बन्धनमें डालनेवाले, देवताओंके भी आराध्यदेव, देवताओंसे बढ़े चढ़े, कमलसे चिह्नित जटा धारण करनेवाले, धनुर्धर, भीमरूप और धर्मके लिये पराक्रम करनेवाले हैं।

ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ ब्रह्माजीने जब इस प्रकार स्तुति की गयी, तब वे विनीतभावसे खड़े हुए श्रीरामचन्द्रजीका हाथ पकड़कर बोले—'रघुनन्दन! आप साक्षात् श्रीविष्णु हैं। देवताओंका कार्य करनेके लिये इस पृथ्वीपर मनुष्यरूपमें अवतीर्ण हुए हैं। प्रभो! आप देवताओंका सम्पूर्ण कार्य कर चुके हैं। अब गङ्गाजीके दक्षिण किनारे श्रीवामन भगवान्‌की प्रतिमाको स्थापित करके आप अयोध्यापुरीको लौट जाइये और वहाँसे परमधामको सिधारिये।' ब्रह्माजीसे आज्ञा पाकर श्रीरामचन्द्रजीने उन्हें प्रणाम किया और पुष्पक विमानपर चढ़कर वहाँसे मथुरापुरीकी यात्रा की। वहाँ पुत्र और स्त्रीसहित शत्रुघ्नजीसे मिलकर श्रीरामचन्द्रजी भरत और सुग्रीवके साथ बहुत सन्तुष्ट हुए। शत्रुघ्नने भी अपने भाइयोंको उपस्थित देख उनके चरणोंमें मस्तक नवाकर प्रणाम किया। उनके पाँचों अङ्ग (दोनों हाथ, दोनों घुटने और मस्तक) धरतीका



स्पर्श करने लगे। श्रीरामचन्द्रजीने भाईको उठाकर छातीसे लगा लिया। तदनन्तर भरत और सुग्रीव भी शत्रुघ्नसे मिले। जब श्रीरामचन्द्रजी आसनपर विराजमान हुए, तब शत्रुघ्नने फुर्तीसे अर्घ्य निवेदन करके सेना-मन्त्री आदि आठों अङ्गोंसे युक्त अपने राज्यको उनके चरणोंमें अर्पित कर दिया। श्रीरामचन्द्रजीके आगमनका समाचार सुनकर समस्त मथुरावासी, जिनमें ब्राह्मणोंकी संख्या अधिक थी, उनके दर्शनके लिये आये। भगवान्‌ने समस्त सचिवों, वेदके विद्वानों और ब्राह्मणोंसे बातचीत करके, पाँच दिन मथुरामें रहकर वहाँसे जानेका विचार किया। उस समय श्रीरामने अत्यन्त प्रसन्न होकर शत्रुघ्नसे कहा—'तुमने जो कुछ मुझे अर्पण किया है, वह सब मैंने तुम्हें वापस दिया। अब मथुराके राज्यपर अपने दोनों पुत्रोंका अभिषेक करो।' ऐसा कहकर भगवान् श्रीराम वहाँसे चल दिये और दोपहर होते-होते गङ्गातटपर महोदय तीर्थपर जा पहुँचे। वहाँ भगवान् वामनजीको स्थापित करके वे ब्राह्मणों एवं भावी राजाओंसे बोले—'यह मैंने धर्मका सेतु

बनाया है, जो ऐश्वर्य एवं कल्याणकी वृद्धि करनेवाला है। समयानुसार इसका पालन करते रहना चाहिये। किसी प्रकार इसका उल्लङ्घन करना उचित नहीं है।' इसके बाद भगवान् श्रीराम वानरराज सुग्रीवको किष्किन्धा भेजकर अयोध्या लौट आये और पुष्पक विमानसे बोले—'अब तुम्हें यहाँ आनेकी आवश्यकता नहीं होगी; जहाँ धनके स्वामी कुबेर हैं, वहीं रहना।' तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजी सम्पूर्ण कार्योंसे निवृत्त हो गये। अब उन्होंने अपने लिये कोई कर्तव्य शेष नहीं समझा। भीष्म! इस प्रकार मैंने श्रीरामकी कथाके प्रसङ्गसे भगवान् श्रीवामनके प्राकट्यकी वार्ता भी तुम्हें कह दी।



भगवान् श्रीनारायणकी महिमा, युगोंका परिचय, प्रलयके जलमें मार्कण्डेयजीको भगवान्‌के दर्शन तथा भगवान्‌की नाभिसे कमलकी उत्पत्ति



भीष्मजी बोले—ब्रह्मन्! आपने भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी महिमाका वर्णन किया। अब पुनः उन्हीं श्रीविष्णुभगवान्‌के माहात्म्यका प्रतिपादन कीजिये। [उनकी नाभिसे] वह सुवर्णमय कमल कैसे उत्पन्न हुआ, प्राचीन कालमें वैष्णवी सृष्टि कमलके भीतर कैसे हुई? धर्मात्मन्! मैं श्रद्धापूर्वक सुननेके लिये बैठा हूँ, अतः आप मुझे भगवान् नारायणका यश अवश्य सुनायें।

पुलस्त्यजीने कहा—कुरुश्रेष्ठ! तुम उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए हो; अतः तुम्हारे हृदयमें जो भगवान् श्रीनारायणके सुयशको सुननेकी उत्कण्ठा हुई है, यह उचित ही है। पुराणोंमें जैसा वर्णन किया गया है, देवताओंके मुखसे जैसा सुना है तथा द्वैपायन व्यासजीने अपनी तपस्यासे देखकर जैसा बतलाया है, वह अपनी बुद्धिके अनुसार मैं तुमसे कहूँगा। यह विश्व परम पुरुष श्रीनारायणका स्वरूप है, इसे मेरे पिता ब्रह्माजी भी ठीक-ठीक नहीं जानते, फिर दूसरा कौन जान सकता है। वे भगवान् नारायण ही महर्षियोंके गुप्त रहस्य, सब कुछ देखने और जाननेवालोंके परमतत्त्व, अध्यात्मवेत्ताओंके अध्यात्म, अधिदैव तथा अधिभूत हैं। वे ही परमर्षियोंके परब्रह्म हैं। वेदोंमें प्रतिपादित यज्ञ उन्हींका स्वरूप है। विद्वान् पुरुष उन्हींको तप मानते हैं। जो कर्ता, कारक, मन, बुद्धि, क्षेत्रज्ञ, प्रणव, पुरुष, शासन करनेवाले और अद्वितीय समझे जाते हैं, जो पाँच प्रकारके प्राण (प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान); ध्रुव एवं अक्षर तत्त्व हैं, वे ही परमात्मा नाना प्रकारके भावोंद्वारा प्रतिपादित होते हैं। वे ही परब्रह्म हैं तथा वे ही भगवान् सबकी सृष्टि और संहार करते हैं। उन्हीं आदि पुरुषका हमलोग यजन करते हैं। जितनी कथाएँ हैं, जो-जो श्रुतियाँ हैं, जिसे धर्म कहते हैं, जो धर्मपरायण पुरुष हैं और जो विश्व तथा विश्वके स्वामी हैं, वे सब भगवान् नारायणके ही स्वरूप माने गये हैं। जो सत्य है, जो मिथ्या है, जो आदि, मध्य और अन्तमें है, जो सीमारहित भविष्य है, जो कोई चर-अचर प्राणी हैं तथा इनके अतिरिक्त भी जो कुछ वस्तु है, वह सब पुरुषोत्तम नारायण ही हैं।

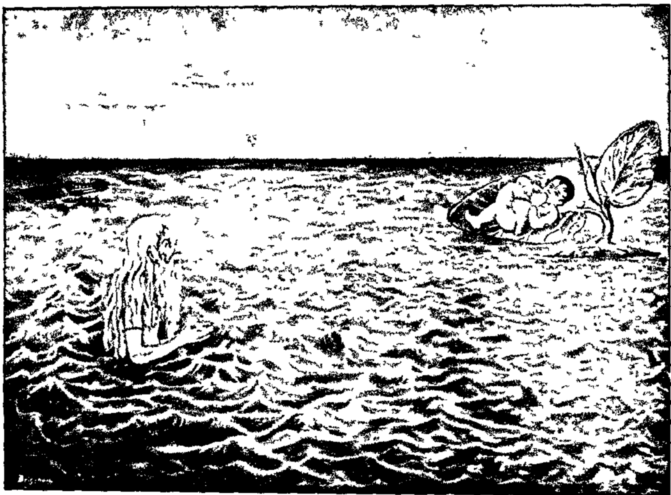
कुरुनन्दन! चार हजार दिव्य वर्षोंका सत्ययुग कहा गया है। उसकी सन्ध्या और सन्ध्यांश आठ सौ वर्षोंके माने गये हैं। उस युगमें धर्म अपने चारों चरणोंसे मौजूद रहता है और अधर्म एक ही पैरसे स्थित होता है। उस समय सब मनुष्य स्वधर्मपरायण और शान्त होते हैं। सत्ययुगमें सत्य, पवित्रता और धर्मकी वृद्धि होती है। श्रेष्ठ पुरुष जिसका आचरण करते हैं, वही कर्म उस समय सबके द्वारा किया और कराया जाता है। राजन्! सत्ययुगमें जन्मतः धार्मिक अथवा नीच कुलमें उत्पन्न सभी मनुष्योंका ऐसा ही धर्मानुकूल बर्ताव होता है। त्रेतायुग-का मान तीन हजार दिव्य वर्ष बतलाया जाता है। उसकी दोनों सन्ध्याएँ छः सौ वर्षोंकी होती हैं। उस समय धर्म तीन चरणोंसे और अधर्म दो पादोंसे स्थित रहता है। उस युगमें सत्य एवं शौचका पालन तथा यज्ञ-यागादिका अनुष्ठान होता है। त्रेतामें चारों वर्णोंके लोग केवल लोभके कारण विकारको प्राप्त होते हैं। वर्णधर्ममें विकार आनेसे आश्रमोंमें भी दुर्बलता आ जाती है। यह त्रेतायुगकी देवनिर्मित विचित्र गति है। द्वापर दो हजार दिव्य वर्षोंका होता है। इसकी सन्ध्याओंका मान चार सौ वर्षका बताया जाता है। उस समयके प्राणी रजोगुणसे अभिभूत होनेके कारण अधिक अर्थ-परायण, शठ, दूसरोंकी जीविकाका नाश करनेवाले तथा क्षुद्र होते हैं। द्वापरमें धर्म दो चरणोंसे और अधर्म तीन पादोंसे स्थित रहता है। दोनों सन्ध्याओंसहित कलियुगका मान

एक हजार दो सौ दिव्य वर्ष है । यह क्रूरताका युग है । इसमें अधर्म अपने चारों पादोंसे और धर्म एक ही चरणसे स्थित रहता है । उस समय मनुष्य कामी, तमोगुणी और नीच होते हैं । इस युगमें प्रायः कोई साधक, साधु और सत्यवादी नहीं होता । लोग नास्तिक होते हैं, ब्राह्मणोंके प्रति उनकी भक्ति नहीं होती । सब मनुष्य अहङ्कारके वशीभूत होते हैं । उनमें परस्पर प्रेम प्रायः बहुत ही कम होता है । कलियुगमें ब्राह्मणोंके आचरण प्रायः शूद्रोंके-से हो जाते हैं । आश्रमोंका ढंग भी बिगड़ जाता है । जब युगका अन्त होनेको आता है, उस समय तो वर्णोंके पहचाननेमें भी सन्देह हो जाता है—कौन मनुष्य किस वर्णका है, यह समझना कठिन हो जाता है । यह बारह हजार दिव्य वर्षोंका समय एक चतुर्युग (चौकड़ी) कहलाता है । इस प्रकारके हजार चतुर्युग बीतनेपर ब्रह्माका एक दिन होता है ।

इस प्रकार ब्रह्माकी भी आयु जब समाप्त हो जाती है, तब काल सम्पूर्ण प्राणियोंके शरीरकी आयु पूरी हुई जान जगत्‌का संहार करनेके लिये महाप्रलय आरम्भ करता है। योग शक्ति-सम्पन्न सर्वरूप भगवान् नारायण सूर्यरूप होकर अपनी प्रचण्ड किरणोंसे समुद्रोंको सोख लेते हैं । तदनन्तर श्रीहरि बलवान् वायुका रूप धारण कर सारे जगत्‌को कँपाते हुए प्राण, अपान और समान आदिके द्वारा आक्रमण करते हैं । घ्राणेन्द्रियका विषय, घ्राणेन्द्रिय तथा पार्थिव शरीर—ये गुण पृथ्वीमें समा जाते हैं । रसनेन्द्रिय, उसका विषय रस और स्नेह आदि जलके गुण जलमें लीन हो जाते हैं । नेत्रेन्द्रिय, उसका विषय रूप और मन्दता, पटुता आदि नेत्रके गुण—ये अग्नि-तत्त्वमें प्रवेश कर जाते हैं । वागिन्द्रिय और उसका विषय, स्पर्श और चेष्टा आदि वायुके गुण—ये वायुमें समा जाते हैं । श्रवणेन्द्रिय और उसका विषय शब्द तथा सुननेकी क्रिया आदि गुण आकाशमें विलीन हो जाते हैं । इस प्रकार कालरूप भगवान् एक ही मुहूर्तमें सम्पूर्ण लोकोंकी जीवन-यात्रा नष्ट कर देते हैं । मन, बुद्धि, चित्त और क्षेत्रज्ञ—ये परमेष्ठी ब्रह्माजीमें लीन हो जाते हैं और ब्रह्माजी भगवान् हृषीकेशमें लीन हो जाते हैं । पञ्च महाभूत भी उस अमित तेजस्वी विभुमें प्रवेश कर जाते हैं । सूर्य, वायु और आकाशके नष्ट हो जाने तथा सूक्ष्म जगत्‌के भी लीन हो जानेपर अमित पराक्रमी सनातन पुरुष भगवान् श्रीविष्णु सबको दग्ध करके अपनेमें समेटकर अकेले ही अनेक सहस्र युगोंतक एकार्णवके जलमें शयन करते हैं । उन अव्यक्त परमेश्वरके सम्बन्धमें कोई व्यक्त जीव यह नहीं जान पाता कि ये पुरुषरूप कौन हैं । उन देवश्रेष्ठके विषयमें उनके सिवा दूसरा कोई कुछ नहीं जानता ।

भीष्म ! एक समयकी बात सुनो, महामुनि मार्कण्डेयको एकार्णवके जलमें शयन करनेवाले भगवान् कौतूहलवश अपने मुँहमें लील गये । कई हजार वर्षोंकी आयुवाले वे महर्षि भगवान्‌के ही उत्कृष्ट तेजसे उनके उदरमें तीर्थयात्राके प्रसङ्गसे विचरते हुए पृथ्वीके समस्त तीर्थोंमें घूमते फिरे । अनेकों पुण्यतीर्थोंके जलसे युक्त वन और नाना प्रकारके आश्रम उन्हें दृष्टिगोचर हुए । उत्तम दक्षिणाओंसे सम्पन्न यज्ञोंद्वारा यजन करनेवाले यजमानों तथा यज्ञमें सम्मिलित सैकड़ों ब्राह्मणोंको भी उन्होंने भगवान्‌के उदरमें देखा । वहाँ ब्राह्मण आदि सभी वर्णोंके लोग सदाचारमें स्थित थे । चारों ही आश्रम अपनी अपनी मर्यादामें स्थित थे । इस प्रकार भगवान्‌के उदरमें समूची पृथ्वीपर विचरते बुद्धिमान् मार्कण्डेयजीको सौ वर्षोंसे कुछ अधिक समय बीत गया । तदनन्तर वे किसी समय पुनः भगवान्‌के मुखसे बाहर निकले । उस समय भी सब ओर एकार्णवका जल ही दिखायी देता था । समस्त दिशाएँ कुहरेसे आच्छादित थीं । जगत् सम्पूर्ण प्राणियोंसे रहित था । ऐसी अवस्थामें मार्कण्डेयजीने देखा—एक बरगदकी शाखापर एक छोटा-सा बालक सो रहा है । यह देखकर मुनिको बड़ा





मार्कण्डेय मुनिको बालमुकुन्दके दर्शन

आश्चर्य हुआ। वे उस बालकका वृत्तान्त जाननेके लिये उत्सुक हो गये। उनके मनमें यह संदेह हुआ कि मैंने कभी इसे देखा है। यह सोचकर वे उस पूर्व-परिचित बालकको देखनेके लिये आगे बढ़े। उस समय उनके नेत्र भयसे कातर हो रहे थे। उन्हें आते देख बालरूपधारी भगवान्‌ने कहा—'मार्कण्डेय! तुम्हारा स्वागत है। तुम डरो मत, मेरे पास चले आओ।'

मार्कण्डेय बोले—यह कौन है, जो मेरा तिरस्कार करता हुआ मुझे नाम लेकर पुकार रहा है?

भगवान्‌ने कहा—बेटा! मैं तुम्हारा पितामह, आयु प्रदान करनेवाला पुराणपुरुष हूँ। मेरे पास तुम क्यों नहीं आते? तुम्हारे पिता आङ्गिरस मुनिने पूर्वकालमें पुत्रकी कामनासे तीव्र तपस्या करके मेरी ही आराधना की थी। तब मैंने उन अमित तेजस्वी महर्षिको तुम्हारे-जैसा तेजस्वी पुत्र होनेका सच्चा वरदान दिया था।

यह सुनकर महातपस्वी मार्कण्डेयजीका हृदय प्रसन्नतासे भर गया, उनके नेत्र आश्चर्यसे खिल उठे। वे मस्तकपर अञ्जलि बाँधे नाम-गोत्रका उच्चारण करते हुए भक्तिपूर्वक भगवान्‌को नमस्कार करने लगे और बोले—'भगवन्! मैं आपकी मायाको यथार्थरूपसे जानना चाहता हूँ; इस एकार्णवके बीच आप बालरूप धरकर कैसे सो रहे हैं?'

श्रीभगवान्‌ने कहा—ब्रह्मन्! मैं नारायण हूँ। जिन्हें हजारों मस्तकों और हजारों चरणोंसे युक्त बताया जाता है, वह विराट् परमात्मा मेरा ही स्वरूप है। मैं सूर्यके समान वर्णवाला तेजोमय पुरुष हूँ। मैं देवताओंको हविष्य पहुँचानेवाला अग्नि हूँ और मैं ही सात घोड़ोंके रथवाला सूर्य हूँ। मैं ही इन्द्रपदपर प्रतिष्ठित होनेवाला इन्द्र और ऋतुओंमें परिवत्सर हूँ। सम्पूर्ण प्राणी तथा समस्त देवता मेरे ही स्वरूप हैं। मैं सर्पोंमें शेषनाग और पक्षियोंमें गरुड़ हूँ। सम्पूर्ण भूतोंका संहार करनेवाला काल भी मुझे ही समझना चाहिये। समस्त आश्रमोंमें निवास करनेवाले मनुष्योंका धर्म और तप मैं ही हूँ। मैं दया-परायण धर्म और दूधसे भरा हुआ महासागर हूँ तथा जो सत्यस्वरूप परम तत्त्व है, वह भी मैं ही हूँ। एकमात्र मैं ही प्रजापति हूँ। मैं ही सांख्य, मैं ही योग और मैं ही परमपद हूँ। यज्ञ, क्रिया और ब्राह्मणोंका स्वामी भी मैं ही हूँ। मैं ही अग्नि, मैं ही वायु, मैं ही पृथ्वी, मैं ही आकाश और मैं ही जल, समुद्र, नक्षत्र तथा दसों दिशाएँ हूँ। वर्षा, सोम, मेघ और हविष्य—इन सबके रूपमें मैं ही हूँ। क्षीरसागरके भीतर तथा समुद्रगत वडवाग्निके मुखमें भी मेरा ही निवास है। मैं ही संवर्तक अग्नि होकर सारा जल सोख लेता हूँ। मैं ही सूर्य हूँ। मैं ही परम पुरातन तथा सबका आश्रय हूँ। भविष्यमें भी सर्वत्र मैं ही प्रकट होऊँगा। तथा भावी सम्पूर्ण वस्तुओंकी उत्पत्ति मुझसे ही होती है। विप्रवर! संसारमें तुम जो कुछ देखते हो, जो कुछ सुनते हो और जो कुछ अनुभव करते हो, उन सबको मेरा ही स्वरूप समझो।* मैंने ही पूर्वकालमें विश्वकी सृष्टि की है तथा आज भी मैं ही करता हूँ। तुम मेरी ओर देखो। मार्कण्डेय! मैं ही प्रत्येक युगमें सम्पूर्ण जगत्‌की रक्षा करता हूँ। इन सारी बातोंको तुम अच्छी तरह समझ लो। यदि धर्मके सेवन या श्रवणकी इच्छा हो तो मेरे उदरमें रहकर सुखपूर्वक विचरो। मैं ही एक अक्षरका और मैं ही तीन अक्षरका मन्त्र हूँ। ब्रह्माजी भी मेरे ही स्वरूप हैं। धर्म-अर्थ-कामरूप त्रिवर्गसे परे ओङ्कारस्वरूप परमात्मा, जो सबको तात्त्विक दृष्टि प्रदान करनेवाले हैं, मैं ही हूँ।

इस प्रकार कहते हुए उन महाबुद्धिमान् पुराणपुरुष परमेश्वरने महामुनि मार्कण्डेयको तुरंत ही अपने मुँहमें ले लिया। फिर तो वे मुनिश्रेष्ठ भगवान्‌के उदरमें प्रवेश कर गये और नेत्रके सामने एकान्त स्थानमें धर्म श्रवण करनेकी इच्छासे बैठे हुए अविनाशी हंस भगवान्‌के पास उपस्थित हुए। भगवान् हंस अविनाशी और विविध शरीर धारण करनेवाले हैं। वे चन्द्रमा और सूर्यसे रहित प्रलयकालीन एकार्णवके जलमें धीरे-धीरे विचरते तथा जगत्‌की सृष्टि करनेका संकल्प लेकर विहार करते हैं। तदनन्तर विमलमति महात्मा हंसने लोक-रचनाका विचार किया। उस विश्वरूप परमात्माने विश्व-का चिन्तन किया। एवं भूतोंकी उत्पत्तिके विषयमें सोचा। उनके तेजसे अमृतके समान पवित्र जलका प्रादुर्भाव हुआ। अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले सर्वलोकविधाता महेश्वर श्रीहरिने उस महान् जलमें विधिवत् जलक्रीड़ा की। फिर उन्होंने अपनी नाभिसे एक कमल उत्पन्न किया, जो अनेकों रंगोंके कारण बड़ी शोभा पा रहा था। वह सुवर्णमय कमल सूर्यके समान तेजोमय प्रतीत होता था।



* यत्किञ्चित्पश्यसे विप्र यच्छृणोषि च किंचन ॥ यच्चानुभवसे लोके तत्सर्वं मामनुस्मर। (३६ । १३४–१३५)

मधु-कैटभका वध तथा सृष्टि-परम्पराका वर्णन

पुलस्त्यजी कहते हैं—तदनन्तर अनेक योजनके विस्तारवाले उस सुवर्णमय कमलमें, जो सब प्रकारके तेजोमय गुणोंसे युक्त और पार्थिव लक्षणोंसे सम्पन्न था, भगवान् श्रीविष्णुने योगियोंमें श्रेष्ठ, महान् तेजस्वी एवं समस्त लोकोंकी सृष्टि करनेवाले चतुर्मुख ब्रह्माजीको उत्पन्न किया। महर्षिगण उस कमलको श्रीनारायणकी नाभिसे उत्पन्न बतलाते हैं। उस कमलका जो सारभाग है, उसे पृथ्वी कहते हैं तथा उस सारभागमें भी जो अधिक भारी अंश हैं, उन्हें दिव्य पर्वत माना जाता है। कमलके भीतर एक और कमल है, जिसके भीतर एकार्णवके जलमें पृथ्वीकी स्थिति मानी गयी है। इस कमल के चारों ओर चार समुद्र हैं। विश्वमें जिनके प्रभावकी कहीं तुलना नहीं है, जिनकी सूर्यके समान प्रभा और वरुणके समान अपार कान्ति है तथा यह जगत् जिनका स्वरूप है, वे स्वयम्भू महात्मा ब्रह्माजी उस एकार्णवके जलमें धीरे धीरे पद्म रूप निधिकी रचना करने लगे। इसी समय तमोगुणसे उत्पन्न मधुनामका महान् असुर तथा रजोगुणसे प्रकट हुआ कैटभ नामधारी असुर—ये दोनों ब्रह्माजीके कार्यमें विघ्नरूप होकर उपस्थित हुए। यद्यपि वे क्रमशः तमोगुण और रजोगुणसे उत्पन्न हुए थे, तथापि तमोगुणका विशेष प्रभाव पड़नेके कारण दोनोंका स्वभाव तामस हो गया था। महान् बली तो वे थे ही, एकार्णवमें स्थित सम्पूर्ण जगत्को क्षुब्ध करने लगे। उन दोनोंके सब ओर मुख थे। एकार्णवके जलमें विचरते हुए जब वे पुष्करमें गये, तब वहाँ उन्हें अत्यन्त तेजस्वी ब्रह्माजीका दर्शन हुआ।

तब वे दोनों असुर ब्रह्माजीसे पूछने लगे—'तुम कौन हो? किसने तुम्हें सृष्टिकार्यमें नियुक्त किया है, वह तुम्हारा कौन है? कौन तुम्हारा स्रष्टा है और कौन रक्षक? तथा वह किस नामसे पुकारा जाता है?'

ब्रह्माजी बोले—असुरो! तुमलोग जिनके विषयमें पूछते हो, वे इस लोकमें एक ही कहे जाते हैं। जगत्में जितनी भी वस्तुएँ हैं, उन सबसे उनका संयोग है—वे सबमें व्याप्त हैं। [उनका कोई एक नाम नहीं है,] उनके अलौकिक कर्मोंके अनुसार अनेक नाम हैं।

यह सुनकर वे दोनों असुर सनातन देवता भगवान् श्रीविष्णुके समीप गये, जिनकी नाभिसे कमल प्रकट हुआ था तथा जो इन्द्रियोंके स्वामी हैं। वहाँ जा उन दोनोंने उन्हें सिर झुकाकर प्रणाम करते हुए कहा—'हम जानते हैं आप विश्वकी उत्पत्तिके स्थान, अद्वितीय तथा पुरुषोत्तम हैं। हमारे जन्मदाता भी आप ही हैं। हम आपको ही बुद्धिका भी कारण समझते हैं। देव! हम आपसे हितकारी वरदान चाहते हैं। शत्रुदमन! आपका दर्शन अमोघ है। समर विजयी वीर! हम आपको नमस्कार करते हैं।'

***श्रीभगवान् बोले**—असुरो! तुमलोग वर किसलिये माँगते हो? तुम्हारी आयु समाप्त हो चुकी है, फिर भी तुम दोनों जीवित रहना चाहते हो! यह बड़े आश्चर्यकी बात है।*

मधु-कैटभने कहा—प्रभो! जिस स्थानमें किसीकी मृत्यु न हुई हो, वहीं हमारा वध हो—हमें इसी वरदानकी इच्छा है।

श्रीभगवान् बोले—'ठीक है' इस प्रकार उन महान् असुरोंको वरदान देकर देवताओंके प्रभु सनातन श्रीविष्णुने अञ्जनके समान काले शरीरवाले मधु और कैटभको अपनी जाँघोंपर गिराकर मसल डाला। तदनन्तर ब्रह्माजी अपनी बाँहें ऊपर उठाये घोर तपस्यामें सलग्न हुए। भगवान् भास्करकी भाँति अन्धकारका नाश कर रहे थे और सत्यधर्मके परायण होकर अपनी किरणोंसे सूर्यके समान चमक रहे थे। किन्तु अकेले होनेके कारण उनका मन नहीं लगा, अतः उन्होंने अपने शरीरके आधे भागसे शुभलक्षणा भार्याको उत्पन्न किया। तत्पश्चात् पितामहने अपने ही समान पुत्रोंकी सृष्टिकी, जो सब-के-सब प्रजापति और लोकविख्यात योगी हुए।

ब्रह्माजीने [दस प्रजापतियोंके अतिरिक्त] लक्ष्मी, साध्या, शुभलक्षणा विश्वेशा, देवी तथा सरस्वती—इन पाँच कन्याओंको भी उत्पन्न किया। ये देवताओंमें भी श्रेष्ठ और आदरणीय मानी जाती हैं। धर्मोंके साक्षी ब्रह्माजीने ये पाँचों कन्याएँ धर्मको अर्पण कर दीं। ब्रह्माजीके आधे शरीरसे जो पत्नी प्रकट हुई थी, वह इच्छानुसार रूप धारण कर लेती थी। वह सुरभिके रूपमें ब्रह्माजीकी सेवामें उपस्थित हुई। लोकपूजित ब्रह्माजीने उसके साथ समागम किया, जिससे ग्यारह पुत्र उत्पन्न हुए। पितामहसे जन्म ग्रहण करनेवाले वे सभी बालक रोदन करते हुए दौड़े। अतः रोने और दौड़नेके कारण उनकी 'रुद्र' संज्ञा हुई। इसी प्रकार सुरभिके गर्भसे

गौ, यज्ञ तथा देवताओंकी भी उत्पत्ति हुई। बकरा, हंस और श्रेष्ठ ओषधियाँ (अन्न आदि) भी सुरभिसे ही उत्पन्न हुई हैं। धर्मसे लक्ष्मीने सोमको और साध्याने साध्य-नामक देवताओंको जन्म दिया। उनके नाम इस प्रकार हैं— भव, प्रभव, कृशाश्व, सुवह, अरुण, वरुण, विश्वामित्र, चल, ध्रुव, हविष्मान्, तनूज, विधान, अभिमत, वत्सर, भूति, सर्वासुरनिषूदन, सुपर्वा, बृहत्कान्त और महालोकनमस्कृत। देवी (वसु) ने वसु-संज्ञक देवताओंको उत्पन्न किया, जो इन्द्रका अनुसरण करनेवाले थे। धर्मकी चौथी पत्नी विश्वा (विश्वेशा) के गर्भसे विश्वेदेव नामक देवता उत्पन्न हुए। इस प्रकार यह धर्मकी सन्तानोंका वर्णन हुआ। विश्वेदेवोंके नाम इस प्रकार हैं—महाबाहु दक्ष, नरेश्वर पुष्कर, चाक्षुष मनु, महोरग, विश्वानुग, वसु, बाल, महायशस्वी निष्कल, अति सत्यपराक्रमी रुरुद तथा परम कान्तिमान् भास्कर। इन विश्वेदेव-संज्ञक पुत्रोंको देवमाता विश्वेशाने जन्म दिया है। मरुत्वतीने मरुत्वान् नामके देवताओंको उत्पन्न किया, जिनके नाम ये हैं—अग्नि, चक्षु, ज्योति, सावित्र, मित्र, अमर, शरवृष्टि, सुवर्ष, महाभुज, विराज, राज, विश्वायु, सुमति, अश्वगन्ध, चित्ररश्मि, निषध, आत्मविधि, चारित्र, पादमात्रग, बृहत्, बृहद्रूप तथा विष्णुसनाभिग। ये सब मरुत्वतीके पुत्र मरुद्गण कहलाते हैं। अदितिने कश्यपके अंशसे बारह आदित्योंको जन्म दिया।

इस प्रकार महर्षियोंद्वारा प्रशंसित सृष्टि-परम्पराका क्रमशः वर्णन किया गया। जो मनुष्य इस श्रेष्ठ पुराणको सदा सुनेगा और पर्वोंके अवसरपर इसका पाठ करेगा, वह इस लोकमें वैराग्यवान् होकर परलोकमें उत्तम फलोंका उपभोग करेगा। जो इस पौष्कर पर्वका—महात्मा ब्रह्माजीके प्रादुर्भावकी कथाका पाठ करता है, उसका कभी अमङ्गल नहीं होता। महाराज! श्रीव्यासदेवसे जैसे मैंने सुना है, उसी प्रकार तुम्हारे सामने मैंने इस प्रसङ्गका वर्णन किया है।



तारकासुरके जन्मकी कथा, तारककी तपस्या, उसके द्वारा देवताओंकी पराजय और ब्रह्माजीका देवताओंको सान्त्वना देना

भीष्मजीने पूछा—ब्रह्मन्! अत्यन्त बलवान् तारक नामके दैत्यकी उत्पत्ति कैसे हुई? कार्तिकेयजीने उस महान् असुरका संहार किस प्रकार किया? भगवान् रुद्रको उमाकी प्राप्ति किस प्रकार हुई? महामुने! ये सारी बातें जिस प्रकार हुई हों, सब मुझे सुनाइये।

पुलस्त्यजीने कहा—राजन्! जैसे अरणीसे अग्नि प्रकट होती है, उसी प्रकार दितिके गर्भसे दैत्योंकी उत्पत्ति हुई है। पूर्वकालमें उसी शुभलक्षणा दितिको महर्षि कश्यपने यह वरदान दिया था कि 'देवि! तुम्हें वज्राङ्ग नामका एक पुत्र होगा, जिसके सभी अङ्ग वज्रके समान सुदृढ़ होंगे।' वरदान पाकर देवी दितिने समयानुसार उस पुत्रको जन्म दिया, जो वज्रके द्वारा भी अच्छेद्य था। वह जन्मते ही समस्त शास्त्रोंमें पारङ्गत हो गया। उसने बड़ी भक्तिके साथ मातासे कहा—'माँ! मैं तुम्हारी किस आज्ञाका पालन करूँ?' यह सुनकर दितिको बड़ा हर्ष हुआ। वह दैत्यराजसे बोली—'बेटा! इन्द्रने मेरे बहुत-से पुत्रोंको मौतके घाट उतार दिया है। अतः उनका बदला लेनेके उद्देश्यसे तुम भी इन्द्रका वध करनेके लिये जाओ।' महाबली वज्राङ्ग 'बहुत अच्छा!' कहकर स्वर्गमें गया और अमोघ तेजवाले पाशसे इन्द्रको बाँधकर अपनी माँके पास ले आया—ठीक उसी तरह, जैसे कोई व्याध छोटे-से मृगको बाँध लाये। इसी समय ब्रह्माजी तथा महातपस्वी कश्यप मुनि उस स्थानपर आये, जहाँ वे दोनों माँ-बेटे निर्भय होकर खड़े थे। उन्हें देखकर ब्रह्मा और कश्यपजीने कहा—'बेटा! इन्हें छोड़ दो, ये देवताओंके राजा हैं; इन्हें लेकर तुम क्या करोगे? सम्मानित पुरुषका अपमान ही उसका वध कहा गया है। यदि शत्रु अपने शत्रुके हाथमें आ जाय और वह दूसरेके गौरवसे छुटकारा पाये तो वह जीता हुआ भी प्रतिदिन चिन्तामग्न रहनेके कारण मृतकके ही समान हो जाता है।' यह सुनकर वज्राङ्गने ब्रह्माजी और कश्यपजीके चरणोंमें प्रणाम करते हुए कहा—'मुझे इन्द्रको बाँधनेसे कोई मतलब नहीं है। मैंने तो माताकी आज्ञाका पालन किया है। देव! आप देवता और असुरोंके भी स्वामी तथा मेरे माननीय प्रपितामह हैं; अतएव आपकी आज्ञाका पालन अवश्य करूँगा। यह लीजिये, मैंने इन्द्रको मुक्त कर दिया। मेरा मन तपस्यामें लगता है, अतः मेरी तपस्या ही निर्विघ्न पूरी हो—यह आशीर्वाद प्रदान कीजिये।'

ब्रह्माजी बोले—वत्स ! तुम मेरी आज्ञाके अधीन रहकर तपस्या करो। तुम्हारे ऊपर कोई आपत्ति नहीं आ सकती। तुमने अपने इस शुद्ध भावसे जन्मका फल प्राप्त कर लिया।

यह कहकर ब्रह्माजीने बड़े-बड़े नेत्रोंवाली एक कन्या उत्पन्न की और उसे वज्राङ्गको पत्नीरूपमें अङ्गीकार करनेके लिये दे दिया। उस कन्याका नाम वराङ्गी बताकर ब्रह्माजी वहाँसे चले गये और वज्राङ्ग उसे साथ ले तपस्याके लिये वनमें चला गया। उस दैत्यराजके नेत्र कमलपत्रके समान विशाल एवं सुन्दर थे। उसकी बुद्धि शुद्ध थी तथा वह महान् तपस्वी था। उसने एक हजार वर्षोंतक बाँहें ऊपर उठाये खड़े होकर तपस्या की। तदनन्तर उसने एक हजार वर्षोंतक पानीके भीतर निवास किया। जलके भीतर प्रवेश कर जानेपर उसकी पत्नी वराङ्गी, जो बड़ी पतिव्रता थी, उसी सरोवरके तटपर चुपचाप बैठी रही और बिना कुछ खाये पिये घोर तपस्यामें प्रवृत्त हो गयी। उसके शरीरमें महान् तेज था। इसी बीचमें एक हजार वर्षोंका समय पूरा हो गया। तब ब्रह्माजी प्रसन्न होकर उस जलाशयके तटपर आये और वज्राङ्गसे इस प्रकार बोले—'दितिनन्दन ! उठो, मैं तुम्हारी सारी कामनाएँ पूरी करूँगा।'

उनके ऐसा कहनेपर वज्राङ्ग बोला—'भगवन् ! मेरे हृदयमें आसुर भाव न हो; मुझे अक्षय लोकोंकी प्राप्ति हो तथा जबतक यह शरीर रहे, तबतक तपस्यामें ही मेरा अनुराग बना रहे।' 'एवमस्तु' कहकर ब्रह्माजी अपने लोकको चले गये और संयमको स्थिर रखनेवाला वज्राङ्ग तपस्या समाप्त होनेपर जब घर लौटनेकी इच्छा करने लगा, तब उसे आश्रमपर अपनी स्त्री नहीं दिखायी दी। भूखसे आकुल होकर उसने पर्वतके घने जङ्गलमें फल-मूल लेनेके लिये प्रवेश किया। वहाँ जाकर देखा—उसकी पत्नी वृक्षकी ओटमें मुँह छिपाये दीनभावसे रो रही है। उसे इस अवस्थामें देख दितिकुमारने सान्त्वना देते हुए पूछा—'कल्याणी ! किसने तुम्हारा अपकार करके यमलोकमें जानेकी इच्छा की है ?'

वराङ्गी बोली—प्राणनाथ ! तुम्हारे जीते जी मेरी दशा अनाथकी-सी हो रही है। देवराज इन्द्रने भयंकर रूप धारण करके मुझे डराया है, आश्रमसे बाहर निकाल दिया है, मारा है और भूरि-भूरि कष्ट दिया है। मुझे अपने दुःखका अन्त नहीं दिखायी देता था, इसलिये मैं प्राण त्याग देनेका निश्चय कर चुकी थी। आप एक ऐसा पुत्र दीजिये, जो मुझे इस दुःखके समुद्रसे तार दे।

वराङ्गीके ऐसा कहनेपर दैत्यराज वज्राङ्गके नेत्र क्रोधसे चञ्चल हो उठे। यद्यपि वह महान् असुर देवराजसे बदला लेनेकी पूरी शक्ति रखता था, तथापि उस महाबलीने पुनः तप करनेका ही निश्चय किया। उसका संकल्प जानकर ब्रह्माजी वहाँ आये और उससे पूछने लगे—'बेटा ! तुम फिर किसलिये तपस्या करनेको उद्यत हुए हो ?' वज्राङ्गने कहा—'पितामह ! आपकी आज्ञा मानकर समाधिसे उठनेपर मैंने देखा—इन्द्रने वराङ्गीको बहुत त्रास पहुँचाया है, अतः यह मुझसे ऐसा पुत्र चाहती है, जो इसे इस विपत्तिसे उबार दे। दादाजी ! यदि आप मुझपर सन्तुष्ट हैं तो मुझे ऐसा पुत्र दीजिये।'

ब्रह्माजी बोले—वीर ! ऐसा ही होगा। अब तुम्हें तपस्या करनेकी आवश्यकता नहीं है। तुम्हारे तारक नामका एक महाबली पुत्र होगा।

ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर दैत्यराजने उन्हें प्रणाम किया और वनमें जाकर अपनी रानीको, जिसका हृदय दुःखी था, प्रसन्न किया। वे दोनों पति-पत्नी सफलमनोरथ होकर अपने आश्रममें गये। सुन्दरी वराङ्गी अपने पतिके द्वारा स्थापित किये हुए गर्भको पूरे एक हजार वर्षोंतक उदरमें ही धारण किये रही। इसके बाद उसने पुत्रको जन्म दिया। उस दैत्यके पैदा होते ही सारी पृथ्वी डोलने लगी—सर्वत्र भूकम्प होने लगा। महासागर विक्षुब्ध हो उठे। वराङ्गी पुत्रको देखकर हर्षसे भर गयी। दैत्यराज तारक जन्मते ही भयंकर पराक्रमी हो गया। कुजम्भ और महिष आदि मुख्य-मुख्य असुरोंने मिलकर उसे राजाके पदपर अभिषिक्त कर दिया। दैत्योंका महान् साम्राज्य प्राप्त करके दानवश्रेष्ठ तारकने कहा—'महाबली असुरो और दानवो ! तुम सब लोग मेरी बात सुनो। देवगण हमलोगोंके वंशका नाश करनेवाले हैं। जन्मगत स्वभावसे ही उनके साथ हमारा अटूट वैर बढ़ा हुआ है। अतः हम सब लोग देवताओंका दमन करनेके लिये तपस्या करेंगे।'

पुलस्त्यजी कहते हैं—राजन् ! यह सन्देश सुनाकर सबकी सम्मति ले तारकासुर पारियात्र पर्वतपर चला गया और वहाँ सौ वर्षोंतक निराहार रहकर, सौ वर्षोंतक पञ्चाग्नि सेवन कर, सौ वर्षोंतक केवल पत्ते चबाकर तथा सौ वर्षोंतक सिर्फ जल पीकर तपस्या करता रहा। इस प्रकार जब उसका शरीर अत्यन्त दुर्बल और तपका पुञ्ज हो गया, तब ब्रह्माजीने आकर कहा—'दैत्यराज ! तुमने उत्तम व्रतका पालन किया है,



वज्राङ्गको वर-प्रदान

कोई वर माँगो।' उसने कहा—'किसी भी प्राणीसे मेरी मृत्यु न हो।' तब ब्रह्माजीने कहा—'देहधारियोंके लिये मृत्यु निश्चित है; इसलिये तुम जिस किसी निमित्तसे भी, जिससे तुम्हें भय न हो, अपनी मृत्यु माँग लो।' तब दैत्यराज तारकने बहुत सोच-विचारकर सात दिनके बालकसे अपनी मृत्यु माँगी। उस समय वह महान् असुर घमंडसे मोहित हो रहा था। ब्रह्माजी 'तथास्तु' कहकर अपने धामको चले और दैत्य अपने घर लौट गया। वहाँ जाकर उसने अपने मन्त्रियोंसे कहा—'तुमलोग शीघ्र ही मेरी सेना तैयार करो।' ग्रसन नामका दानव दैत्यराज तारकका सेनापति था। उसने स्वामीकी बात सुनकर बहुत बड़ी सेना तैयार की। गम्भीर स्वरमें रणभेरी बजाकर उसने तुरंत ही बड़े-बड़े दैत्योंको एकत्रित किया, जिनमें एक-एक दैत्य प्रचण्ड पराक्रमी होनेके साथ ही दस-दस करोड़ दैत्योंका यूथपति था। जम्भ नामक दैत्य उन सबका अगुआ था और कुजम्भ उसके पीछे चलनेवाला था। इनके सिवा महिष, कुञ्जर, मेघ, कालनेमि, निमि, मन्थन, जम्भक और शुम्भ भी प्रधान थे। इस प्रकार ये दस दैत्यपति सेनानायक थे। उनके अतिरिक्त और भी सैकड़ों ऐसे दानव थे, जो अपनी भुजाओंपर पृथ्वीको तोलनेकी शक्ति रखते थे। दैत्योंमें सिंहके समान पराक्रमी तारकासुरकी वह सेना बड़ी भयङ्कर जान पड़ती थी। वह मतवाले गजराजों, घोड़ों और रथोंसे भरी हुई थी। पैदलोंकी संख्या भी बहुत थी और सेनामें सब ओर पताकाएँ फहरा रही थीं।'

इसी बीचमें देवताओंके दूत वायु असुरलोकमें आये और दानव-सेनाका उद्योग देखकर इन्द्रको उसका समाचार देनेके लिये गये। देवसभामें पहुँचकर उन्होंने देवताओंके बीचमें इस नयी घटनाका हाल सुनाया। उसे सुनकर महाबाहु देवराजने आँखें बंद करके बृहस्पतिजीसे कहा—'गुरुदेव! इस समय देवताओंके सामने दानवोंके साथ घोर संग्रामका अवसर उपस्थित होना चाहता है; इस विषयमें हमें क्या करना चाहिये। कोई नीतियुक्त बात बताइये।

बृहस्पतिजी बोले—सुरश्रेष्ठ! साम-नीति और चतुरङ्गिणी सेना—ये ही दो विजयाभिलाषी वीरोंकी सफलताके साधन सुने गये हैं। ये ही सनातन रक्षा-कवच हैं। नीतिके चार अङ्ग हैं— साम, भेद, दान और दण्ड। यदि आक्रमण करनेवाले शत्रु लोभी हों तो उनपर सामनीतिका प्रभाव नहीं पड़ता। यदि वे एकमतके और संगठित हों तो उनमें फूट भी नहीं डाली जा सकती तथा जो बलपूर्वक सर्वस्व छीन लेनेकी शक्ति रखते हैं, उनके प्रति दाननीतिके प्रयोगसे भी सफलता नहीं मिल सकती; अतः अब यहाँ एक ही उपाय शेष रह जाता है। वह है—दण्ड। यदि आपलोगोंको जँचे तो दण्डका ही प्रयोग करें।

बृहस्पतिजीके ऐसा कहनेपर इन्द्रने अपने कर्तव्यका निश्चय करके देवताओंकी सभामें इस प्रकार कहा—'स्वर्गवासियो! सावधान होकर मेरी बात सुनो—इस समय युद्धके लिये उद्योग करना ही उचित है; अतः मेरी सेना तैयार की जाय। यमराजको सेनापति बनाकर सम्पूर्ण देवता शीघ्र ही संग्रामके लिये निकलें।' यह सुनकर प्रधान-प्रधान देवता कवच बाँधकर तैयार हो गये। मातलिने देवराजका दुर्जय रथ जोतकर खड़ा किया। यमराज भैंसेपर सवार हो सेनाके आगे खड़े हुए। वे अपने प्रचण्ड किङ्करोंद्वारा सब ओरसे घिरे हुए थे। अग्नि, वायु, वरुण, कुबेर, चन्द्रमा तथा आदित्य—सब लोग युद्धके लिये उपस्थित हुए। देवताओंकी वह सेना तीनों लोकोंके लिये दुर्जय थी। उसमें तैंतीस करोड़ देवता एकत्रित थे। तदनन्तर युद्ध आरम्भ हुआ। अश्विनीकुमार, मरुद्गण, साध्यगण, इन्द्र, यक्ष और गन्धर्व—ये सभी महाबली एक साथ मिलकर दैत्यराज तारकपर प्रहार करने लगे। उन सबके हाथोंमें नाना प्रकारके दिव्यास्त्र थे। परन्तु तारकासुरका शरीर वज्र एवं पर्वतके समान सुदृढ़ था। देवताओंके हथियार उसपर काम नहीं करते थे। उन्हें प्रहार करते देख दानवराज तारक रथसे कूद पड़ा और करोड़ों देवताओंको उसने अपने हाथके पृष्ठभागसे ही मार गिराया। यह देख देवताओंकी बची-खुची सेना भयभीत हो उठी और युद्धकी सामग्री वहीं छोड़कर चारों दिशाओंमें भाग गयी। ऐसी परिस्थितिमें पड़ जानेपर देवताओंके हृदयमें बड़ा दुःख हुआ और वे जगद्गुरु ब्रह्माजीकी शरणमें जाकर सुन्दर अक्षरोंसे युक्त वाक्योंद्वारा उनकी स्तुति करने लगे।

देवता बोले—सत्त्वमूर्ते! आप प्रणवरूप हैं। अनन्त भेदोंसे युक्त जो यह विश्व है, उसके अङ्कुर आदिकी उत्पत्तिके लिये आप सबसे पहले ब्रह्मारूपमें प्रकट हुए हैं। तदनन्तर इस जगत्‌की रक्षाके लिये सत्त्वगुणके मूलभूत विष्णुरूपसे स्थित हुए हैं। इसके बाद इसके संहारकी इच्छासे आपने रुद्ररूप धारण किया। इस प्रकार एक होकर भी त्रिविध रूप धारण करनेवाले आप परमात्माको नमस्कार है।

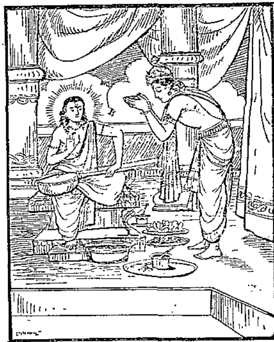
जगत्‌में जितने भी स्थूल पदार्थ हैं, उन सबके आदि कारण आप ही हैं, अतः आपने अपनी ही महिमासे सोच विचारकर हम देवताओंका नाम निर्देश किया है, साथ ही इस ब्रह्माण्डके दो भाग करके ऊर्ध्वलोकोंको आकाशमें तथा अधोलोकोंको पृथ्वीपर और उसके भीतर स्थापित किया है। इससे हमें यह जान पड़ता है कि विश्वका सारा अवकाश आपने ही बनाया है। आप देहके भीतर रहनेवाले अन्तर्यामी पुरुष हैं। आपके शरीरसे ही देवताओंका प्राकट्य हुआ है। आकाश आपका मस्तक, चन्द्रमा और सूर्य नेत्र, सर्पोंका समुदाय केश और दिशाएँ कानोंके छिद्र हैं। यज्ञ आपका शरीर, नदियाँ सन्धिस्थान, पृथ्वी चरण और समुद्र उदर हैं। भगवन्! आप भक्तोंको शरण देनेवाले, आपत्तिसे बचानेवाले तथा उनकी रक्षा करनेवाले हैं। आप सबके ध्यानके विषय हैं। आपके स्वरूपका अन्त नहीं है।

देवताओंके इस प्रकार स्तुति करनेपर ब्रह्माजी बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने बायें हाथसे वरद मुद्राका प्रदर्शन करते हुए देवताओंसे कहा—'देवगण! तुम्हारा तेज किसने छीन लिया है? तुम आज ऐसे हो रहे हो मानो तुममें अब कुछ भी करनेकी शक्ति ही नहीं रह गयी है, तुम्हारी कान्ति किसने हर ली?' ब्रह्माजीके इस प्रकार पूछनेपर देवताओंने वायुको उत्तर देनेके लिये कहा। उनसे प्रेरित होकर वायुने कहा—'भगवन्! आप चराचर जगत्‌की सारी बातें जानते हैं—आपसे क्या छिपा है। सैकड़ों दैत्योंने मिलकर इन्द्र आदि बलिष्ठ देवताओंको भी बलपूर्वक परास्त कर दिया है। आपके आदेशसे स्वर्गलोक सदा ही यज्ञभोगी देवताओंके अधिकारमें रहता आया है। परन्तु इस समय तारकासुरने देवताओंका सारा विमान समूह छीनकर उसे दुर्लभ कर दिया है। देवताओंके निवासस्थान जिस मेरु पर्वतको आपने सम्पूर्ण पर्वतोंका राजा मानकर उसे सब प्रकारके गुणोंमें बढ़ा-चढ़ा, यज्ञोंसे विभूषित तथा आकाशमें भी ग्रहों और नक्षत्रोंकी गतिका सीमा प्रदेश बना रखा था, उसीको उस दानवने अपने निवास और विहारके लिये उपयोगी बनानेके उद्देश्यसे परिष्कृत किया है, उसके शिखरोंमें आवश्यक परिवर्तन और सुधार किया है। इस प्रकार उसकी सारी उद्दण्डता मैंने बतायी है। अब आप ही हमारी गति हैं।'

यों कहकर वायुदेवता चुप हो गये। तब ब्रह्माजीने कहा—'देवताओ! तारक नामका दैत्य देवता और असुर—सबके लिये अवध्य है। जिसके द्वारा उसका वध हो सकता है, वह पुरुष अभीतक त्रिलोकीमें पैदा ही नहीं हुआ। तारकासुर तपस्या कर रहा था। उस समय मैंने वरदान दे उसे अनुकूल बनाया और तपस्यासे रोका। उस दैत्यने सात दिनके बालकसे अपनी मृत्यु होनेका वरदान माँगा था। सात दिनका वही बालक उसे मार सकता है, जो भगवान् शङ्करके वीर्यसे उत्पन्न हो। हिमालयकी कन्या जो उमादेवी होंगी, उसके गर्भसे उत्पन्न पुत्र अरणिसे प्रकट होनेवाले अग्निदेवकी भाँति तेजस्वी होगा; अतः भगवान् शङ्करके अंशसे उमादेवी जिस पुत्रको जन्म देंगी, उसका सामना करनेपर तारकासुर नष्ट हो जायगा।' ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर देवता उन्हें प्रणाम करके अपने अपने स्थानको चले गये।

पार्वतीका जन्म, मदन दहन, पार्वतीकी तपस्या और उनका भगवान् शिवके साथ विवाह

तदनन्तर जगत्‌को शान्ति प्रदान करनेवाली गिरिराज हिमालयकी पत्नी मेनाने परम सुन्दर ब्राह्ममुहूर्तमें एक कन्याको जन्म दिया। उसके जन्म लेते ही समस्त लोकोंमें निवास करनेवाले स्थावर, जङ्गम—सभी प्राणी सुखी हो गये। आकाशमें भगवान् श्रीविष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र, वायु और अग्नि आदि हजारों देवता विमानोंपर बैठकर हिमालय पर्वतके ऊपर फूलोंकी वर्षा करने लगे। गन्धर्व गाने लगे। उस समय संसारमें हिमालय पर्वत समस्त चराचर भूतोंके लिये सेव्य तथा आश्रय लेनेके योग्य हो गया—सब लोग वहाँ निवास और वहाँकी यात्रा करने लगे। उत्सवका आनन्द ले देवता अपने अपने स्थानको चले गये। गिरिराजकुमारी उमाको रूप, सौभाग्य और ज्ञान आदि गुणोंने विभूषित किया। इस प्रकार वह तीनों लोकोंमें सबसे अधिक सुन्दरी और समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न हो गयी। इसी बीचमें कार्य-साधन परायण देवराज इन्द्रने देवताओंद्वारा सम्मानित देवर्षि नारदका स्मरण किया। इन्द्रका अभिप्राय जानकर देवर्षि नारद बड़ी प्रसन्नताके साथ उनके भवनमें आये। उन्हें देखकर इन्द्र सिंहासनसे उठ खड़े हुए और यथायोग्य पाद्य आदिके द्वारा उन्होंने नारदजीका पूजन किया। फिर नारदजीने जब उनकी कुशल पूछी तो इन्द्रने कहा—



'मुने! त्रिभुवनमें हमारी कुशलका अङ्कुर तो जम चुका है, अब उसमें फल लगनेका साधन उपस्थित करनेके लिये मैंने आपकी याद की है। ये सारी बातें आप जानते ही हैं; फिर भी आपने प्रश्न किया है, इसलिये मैं बता रहा हूँ। विशेषतः अपने सुहृदोंके निकट अपना प्रयोजन बताकर प्रत्येक पुरुष बड़ी शान्तिका अनुभव करता है। अतः जिस प्रकार भी पार्वतीदेवीका पिनाकधारी भगवान् शङ्करके साथ संयोग हो, उसके लिये हमारे पक्षके सब लोगोंको शीघ्र उद्योग करना चाहिये।'

इन्द्रसे उनका सारा कार्य समझ लेनेके पश्चात् नारदजीने उनसे विदा ली और शीघ्र ही गिरिराज हिमालयके भवनके लिये प्रस्थान किया। गिरिराजके द्वारपर, जो विचित्र बेंतकी लताओंसे हरा-भरा था, पहुँचनेपर हिमवान्‌ने पहले ही बाहर निकलकर मुनिको प्रणाम किया। उनका भवन पृथ्वीका भूषण था। उसमें प्रवेश करके अनुपम कान्तिवाले मुनिवर नारदजी एक बहुमूल्य आसनपर विराजमान हुए। फिर हिमवान्‌ने उन्हें यथायोग्य अर्घ्य, पाद्य आदि निवेदन किया और बड़ी मधुर वाणीमें नारदजीके तपकी कुशल पूछी। उस समय गिरिराजका मुखकमल प्रफुल्लित हो रहा था। मुनिने भी गिरिराजकी कुशल पूछते हुए कहा—'पर्वतराज! तुम्हारा कलेवर अद्भुत है। तुम्हारा स्थान धर्मानुष्ठानके लिये बहुत ही उपयोगी है। तुम्हारी कन्दराओंका विस्तार विशाल है। इन कन्दराओंमें अनेकों पावन एवं तपस्वी मुनियोंने आश्रय ले तुम्हें पवित्र बनाया है। गिरिराज! तुम धन्य हो, जिसकी गुफामें लोकनाथ भगवान् शङ्कर शान्तिपूर्वक ध्यान लगाये बैठे रहते हैं।'

पुलस्त्यजी कहते हैं—देवर्षि नारदकी यह बात समाप्त होनेपर गिरिराज हिमालयकी रानी मेना मुनिका दर्शन करनेकी इच्छासे उस भवनमें आयीं। वे लज्जा और प्रेमके भारसे झुकी हुई थीं। उनके पीछे-पीछे उनकी कन्या भी आ रही थी। देवर्षि नारद तेजकी राशि जान पड़ते थे, उन्हें देखकर शैलपत्नीने प्रणाम किया। उस समय उनका मुख अञ्चलसे ढका था और कमलके समान शोभा पानेवाले दोनों हाथ जुड़े हुए थे। अमित तेजस्वी देवर्षिने महाभागा मेनाको देखकर अपने अमृतमय आशीर्वादोंसे उन्हें प्रसन्न किया। उस समय गिरिराजकुमारी उमा अद्भुत रूपवाले नारद मुनिकी ओर चकित चित्तसे देख रही थी। देवर्षिने स्नेहमयी वाणीमें कहा—'बेटी! यहाँ आओ।' उनके इस प्रकार बुलानेपर उमा पिताके गलेमें बाँहें डालकर उनकी गोदमें बैठ गयी। तब उसकी माताने कहा—'बेटी! देवर्षिको प्रणाम करो।' उमाने ऐसा ही किया। उसके प्रणाम कर लेनेपर माताने कौतूहलवश पुत्रीके शारीरिक लक्षणोंको जाननेके लिये अपनी सखीके मुँहसे धीरेसे कहलाया—'मुने! इस कन्याके सौभाग्यसूचक चिह्नोंको देखनेकी कृपा करें।' मेनाकी सखीसे प्रेरित होकर महाभाग मुनिवर नारदजी मुसकराते हुए बोले—'भद्रे! इस कन्याके पतिका जन्म नहीं हुआ है, यह लक्षणोंसे रहित है। इसका एक हाथ सदा उत्तान (सीधा) रहेगा। इसके चरण व्यभिचारी लक्षणोंसे युक्त हैं; किन्तु उनकी कान्ति बड़ी सुन्दर होगी। यही इसका भविष्यफल है।'

नारदजीकी यह बात सुनकर हिमवान् भयसे घबरा उठे, उनका धैर्य जाता रहा, वे आँसू बहाते हुए गद्गद कण्ठसे बोले—'अत्यन्त दोषोंसे भरे हुए संसारकी गति दुर्विज्ञेय है—उसका ज्ञान होना कठिन है। शास्त्रकारोंने शास्त्रोंमें पुत्रको नरकसे त्राण देनेवाला बताकर सदा पुत्रप्राप्तिकी ही प्रशंसा की है; किन्तु यह बात प्राणियोंको मोहमें डालनेके लिये है। क्योंकि स्त्रीके बिना किसी जीवकी सृष्टि हो ही नहीं सकती। परन्तु स्त्री-जाति स्वभावसे ही दीन एवं दयनीय है। शास्त्रोंमें यह महान् फलदायक वचन अनेकों

बार निस्सन्देहरूपसे दुहराया गया है कि शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न सुशीला कन्या दस पुत्रोंके समान है। किन्तु आपने मेरी कन्याके शरीरमें केवल दोषोंका ही संग्रह बताया है। ओह! यह सुनकर मुझपर मोह छा गया है, मैं सूख गया हूँ, मुझे बड़ी भारी ग्लानि और विषाद हो रहा है। मुने! मुझपर अनुग्रह करके इस कन्यासम्बन्धी दुःखका निवारण कीजिये। देवर्षे! आपने कहा है कि 'इसके पतिका जन्म ही नहीं हुआ है।' यह ऐसा दुर्भाग्य है, जिसकी कहीं तुलना नहीं है। यह अपार और दुःसह दुःख है। हाथों और पैरोंमें जो रेखाएँ बनी होती हैं, वे मनुष्य अथवा देवजातिके लोगोंको शुभ और अशुभ फलकी सूचना देनेवाली हैं; सो आपने इसे लक्षणहीन बताया है। साथ ही यह भी कहा है कि 'इसका एक हाथ सदा उत्तान रहेगा।' परन्तु उत्तान हाथ तो सदा याचकोंका ही होता है—वे ही सबके सामने हाथ फैलाकर माँगते देखे जाते हैं। जिनके शुभका उदय हुआ है, जो धन्य तथा दानशील हैं, उनका हाथ उत्तान नहीं देखा जाता। आपने इसकी उत्तम कान्ति बतानेके साथ ही यह भी कहा है कि इसके चरण व्यभिचारी लक्षणोंसे युक्त हैं; अतः मुने! उस चिह्नसे भी मुझे कल्याणकी आशा नहीं जान पड़ती।'

नारदजी बोले—गिरिराज! तुम तो अपार हर्षके स्थानमें दुःखकी बात कर रहे हो। अब मेरी यह बात सुनो। मैंने पहले जो कुछ कहा था, वह रहस्यपूर्ण था। इस समय उसका स्पष्टीकरण करता हूँ, एकाग्रचित्त होकर श्रवण करो। हिमाचल! मैंने जो कहा था कि इस देवीके पतिका जन्म नहीं हुआ है, सो ठीक ही है। इसके पति महादेवजी हैं। उनका वास्तवमें जन्म नहीं हुआ है—वे अजन्मा हैं। भूत, भविष्य और वर्तमान जगत्की उत्पत्तिके कारण वे ही हैं। वे सबको शरण देनेवाले एवं शासक, सनातन, कल्याणकारी और परमेश्वर हैं। यह ब्रह्माण्ड उन्हींके सङ्कल्पसे उत्पन्न हुआ है। ब्रह्माजीसे लेकर स्थावरपर्यन्त जो यह संसार है, वह जन्म, मृत्यु आदिके दुःखसे पीड़ित होकर निरन्तर परिवर्तित होता रहता है। किन्तु महादेवजी अचल और स्थिर हैं। वे जात नहीं, जनक हैं—पुत्र नहीं, पिता हैं। उनपर बुढ़ापेका आक्रमण नहीं होता। वे जगत्के स्वामी और आधि-व्याधिसे रहित हैं। इसके सिवा जो मैंने तुम्हारी कन्याको लक्षणोंसे रहित बताया है, उस वाक्यका ठीक-ठीक विचारपूर्ण तात्पर्य सुनो। शरीरके अवयवोंमें जो चिह्न या रेखाएँ होती हैं, वे सीमित आयु, धन और सौभाग्यको व्यक्त करनेवाली होती हैं; परन्तु जो अनन्त और अप्रमेय है, उसके अमित सौभाग्यको सूचित करनेवाला कोई चिह्न या लक्षण शरीरमें नहीं होता। महामते! इसीसे मैंने बतलाया है कि इसके शरीरमें कोई लक्षण नहीं है। इसके अतिरिक्त जो यह कहा गया है कि इसका एक हाथ सदा उत्तान रहेगा, उसका आशय यह है। वर देनेवाला हाथ उत्तान होता है। देवीका यह हाथ वरद मुद्रासे युक्त होगा। यह देवता, असुर और मुनियोंके समुदायको वर देनेवाली होगी तथा जो मैंने इसके चरणोंको उत्तम कान्ति और व्यभिचारी लक्षणोंसे युक्त बताया है, उसकी व्याख्या भी मेरे मुँहसे सुनो 'गिरिश्रेष्ठ! इस कन्याके चरण कमलके समान अरुण रंगके हैं। इनपर नखोंकी उज्ज्वल कान्ति पड़नेसे स्वच्छता (श्वेत कान्ति) आ गयी है। देवता और असुर जब इसे प्रणाम करेंगे, तब उनके किरीटमें जड़ी हुई मणियोंकी कान्ति इसके चरणोंमें प्रतिबिम्बित होगी। उस समय ये चरण अपना स्वाभाविक रंग छोड़कर विचित्र रंगके दिखायी देंगे। उनके इस परिवर्तन और विचित्रताको ही व्यभिचार कहा गया है [अतः तुम्हें कोई विपरीत आशङ्का नहीं करनी चाहिये]। महीधर! यह जगत्का भरण-पोषण करनेवाले वृषभध्वज महादेवजीकी पत्नी है। यह सम्पूर्ण लोकोंकी जननी तथा भूतोंको उत्पन्न करनेवाली है। इसकी कान्ति परम पवित्र है। यह साक्षात् शिवा है और तुम्हारे कुलको पवित्र करनेके लिये ही इसने तुम्हारी पत्नीके गर्भसे जन्म लिया है। अतः जिस प्रकार यह शीघ्र ही पिनाकधारी भगवान् शङ्करका संयोग प्राप्त करे, उसी उपायका तुम्हें विधिपूर्वक अनुष्ठान करना चाहिये। ऐसा करनेसे देवताओंका एक महान् कार्य सिद्ध होगा।

पुलस्त्यजी कहते हैं— राजन्! नारदजीके मुँहसे ये सारी बातें सुनकर मेनाके स्वामी गिरिराज हिमालयने अपना नया जन्म हुआ माना। वे अत्यन्त हर्षमें भरकर बोले—'प्रभो! आपने घोर और दुस्तर नरकसे मेरा उद्धार कर दिया। मुने! आप-जैसे संतोंका दर्शन निश्चय ही अमोघ फल देनेवाला होता है। इसलिये इस कार्यमें—मेरी कन्याके विवाहके सम्बन्धमें आप समय-समयपर योग्य आदेश देते रहें [जिससे यह कार्य निर्विघ्नतापूर्वक सम्पन्न हो सके]।'

गिरिराजके ऐसा कहनेपर नारदजी हर्षमें भरकर बोले—'शैलराज! सारा कार्य सिद्ध ही समझो। ऐसा करनेसे

ही देवताओंका भी कार्य होगा और इसीमें तुम्हारा भी महान् लाभ है।' यों कहकर नारदजी देवलोकमें जाकर इन्द्रसे मिले और बोले—'देवराज ! आपने मुझे जो कार्य सौंपा था, उसे तो मैंने कर ही दिया; किन्तु अब कामदेवके बाणोंसे सिद्ध होने योग्य कार्य उपस्थित हुआ है।' कार्यदर्शी नारदमुनिके इस प्रकार कहनेपर देवराज इन्द्रने आमकी मञ्जरीको ही अस्त्रके रूपमें प्रयोग करनेवाले कामदेवका स्मरण किया। उसे सामने प्रकट हुआ देख इन्द्रने कहा—'रतिवल्लभ ! तुम्हें बहुत उपदेश देनेकी क्या आवश्यकता है; तुम तो सङ्कल्पसे ही उत्पन्न हुए हो, इसलिये सम्पूर्ण प्राणियोंके मनकी बात जानते हो। स्वर्गवासियोंका प्रिय कार्य करो। मनोभव ! गिरिराजकुमारी उमाके साथ भगवान् शङ्करका शीघ्र संयोग कराओ। इस मधुमास चैत्रको भी साथ लेते जाओ तथा अपनी पत्नी रतिसे भी सहायता लो।'

कामदेव बोला—देव ! यह सामग्री मुनियों और दानवोंके लिये तो बड़ी भयंकर है, किन्तु इससे भगवान् शङ्करको वशमें करना कठिन है।

इन्द्रने कहा—'रतिकान्त ! तुम्हारी शक्तिको मैं जानता हूँ; तुम्हारे द्वारा इस कार्यके सिद्ध होनेमें तनिक भी सन्देह नहीं है।'

इन्द्रके ऐसा कहनेपर कामदेव अपने सखा मधुमासको लेकर रतिके साथ तुरंत ही हिमालयके शिखरपर गया। वहाँ पहुँचकर उसने कार्यके उपायका विचार करते हुए सोचा कि 'महात्मा पुरुष निष्कम्प—अविचल होते हैं। उनके मनको वशमें करना अत्यन्त दुष्कर कार्य है। उसे पहले ही क्षुब्ध करके उसके ऊपर विजय पायी जाती है। पहले मनका संशोधन कर लेनेपर ही प्रायः सिद्धि प्राप्त होती है। मैं महादेवजीके अन्तःकरणमें प्रवेश करके इन्द्रिय-समुदायको व्याप्त कर रमणीय साधनोंके द्वारा अपना कार्य सिद्ध करूँगा।' यह सोचकर कामदेव भगवान् भूतनाथके आश्रमपर गया। वह आश्रम पृथ्वीका सारभूत स्थान जान पड़ता था। वहाँकी वेदी देवदारुके वृक्षसे सुशोभित हो रही थी। कामदेवने, जिसका अन्तकाल क्रमशः समीप आता जा रहा था, धीरे-धीरे आगे बढ़कर देखा—भगवान् शङ्कर ध्यान लगाये बैठे हैं। उनके अधखुले नेत्र अर्ध-विकसित कमलदलके समान शोभा पा रहे हैं। उनकी दृष्टि सीधी एवं नासिकाके अग्रभागपर लगी हुई है। शरीरपर उत्तरीयके रूपमें अत्यन्त रमणीय व्याघ्रचर्म लटक रहा है। कानोंमें धारण किये हुए सर्पोंके फनोंसे निकली हुई फुफकारकी आँचसे उनका मुख पिङ्गल वर्णका हो रहा है। हवासे हिलती हुई लंबी-लंबी जटाएँ उनके कपोल-प्रान्तका चुम्बन कर रही हैं। वासुकि नागका यज्ञोपवीत धारण करनेसे उनकी नाभिके मूल भागमें वासुकिका मुख और पूँछ सटे हुए दिखायी देते हैं। वे अञ्जलि बाँधे ब्रह्मके चिन्तनमें स्थिर हो रहे हैं और सर्पोंके आभूषण धारण किये हुए हैं।

तदनन्तर वृक्षकी शाखासे भ्रमरकी भाँति झंकार करते हुए कामदेवने भगवान् शङ्करके कानमें होकर हृदयमें प्रवेश किया। कामका आधारभूत वह मधुर झंकार सुनकर शङ्करजीके मनमें रमणकी इच्छा जाग्रत् हुई और उन्होंने अपनी प्राणवल्लभा दक्षकुमारी सतीका स्मरण किया। तब स्मरण-पथमें आयी हुई सती उनकी निर्मल समाधि-भावनाको धीरे-धीरे लुप्त करके स्वयं ही लक्ष्य-स्थानमें आ गयीं और उन्हें प्रत्यक्ष रूपमें उपस्थित-सी जान पड़ीं। फिर तो भगवान् शिव उनकी सुधमें तन्मय हो गये। इस आकस्मिक विघ्नने उनके अन्तःकरणको आवृत कर लिया। देवताओंके अधीश्वर शिव क्षणभरके लिये कामजनित विकारको प्राप्त हो गये। किन्तु यह अवस्था अधिक देरतक न रही, कामदेवका कुचक्र समझकर उनके हृदयमें कुछ क्रोधका सञ्चार हो आया। उन्होंने धैर्यका आश्रय लेकर कामदेवके प्रभावको दूर किया और स्वयं योगमायासे आवृत होकर दृढ़तापूर्वक समाधिमें स्थित हो गये।

उस योगमायासे आविष्ट होनेपर कामदेव जलने लगा, अतः वह वासनामय व्यसनका रूप धारण करके उनके हृदयसे बाहर निकल आया। बाहर आकर वह एक स्थानपर खड़ा हुआ। उस समय उसकी सहायिका रति और सखा वसंत—इन दोनोंने भी उसका अनुसरण किया। फिर मदनने आमकी मौरका मनोहर गुच्छ लेकर उसमें मोहनास्त्रका आधान किया और उसे अपने पुष्पमय धनुषपर रखकर तुरंत ही महादेवजीकी छातीमें मारा। इन्द्रियोंके समुदायरूप हृदयके विंध जानेपर भगवान् शिवने कामदेवकी ओर



दृष्टिपात किया। फिर तो उनका मुख क्रोधके आवेगसे निकलते हुए घोर हुङ्कारके कारण अत्यन्त भयानक हो उठा। उनके तीसरे नेत्रमे आगकी ज्वाला प्रज्वलित हो उठी। रौद्र शरीरधारी भगवान् रुद्रका वह नेत्र ऐसा भयकर दिखायी देने लगा, मानो ससारका सहार करनेके लिये खुला हो। मदन पास ही खड़ा था। महादेवजीने उस नेत्रको फैलाकर मदनको ही उसका लक्ष्य बनाया। देवतालोग 'त्राहि त्राहि' कहकर चिल्लाते ही रह गये और मदन उस नेत्रसे निकली हुई चिनगारियोंमें पड़कर भस्म हो गया। कामदेवको दग्ध करके वह आग समस्त जगत्‌को जलानेके लिये बढ़ने लगी। यह जानकर भगवान् शिवने उस कामाग्निको आमके वृक्ष, वसन्त, चन्द्रमा, पुष्पसमूह, भ्रमर तथा कोयलके मुखमें बाँट दिया। महादेवजी बाहर और भीतर भी कामदेवके बाणोंसे विद्ध थे, इसलिये उपर्युक्त स्थानोंमें उस अग्निका विभाग करके वे उनमेंसे प्रत्येकको प्रज्वलित कामाग्निके ही रूपमें देखने लगे। वह कामाग्नि सम्पूर्ण लोकको क्षोभमें डालनेवाली है, उसके प्रसारको रोकना कठिन होता है।

कामदेवको भगवान् शिवके हुङ्कारकी ज्वालासे भस्म हुआ देख रति उसके सखा वसन्तके साथ जोर-जोरसे रोने लगी। फिर वह त्रिनेत्रधारी भगवान् चन्द्रशेखरकी शरणमें गयी और धरतीपर घुटने टेककर स्तुति करने लगी।

रति बोली—जो सबके मन हैं, यह जगत् जिनका स्वरूप है और जो अद्भुत मार्गसे चलनेवाले हैं, उन कल्याणमय शिवको नमस्कार है। जो सबको शरण देनेवाले तथा प्राकृत गुणोंसे रहित हैं, उन भगवान् शङ्करको नमस्कार है। नाना लोकोंमें समृद्धिका विस्तार करनेवाले शिवको नमस्कार है। भक्तोंको मनोवाञ्छित वस्तु देनेवाले महादेवजीको प्रणाम है। कर्मोको उत्पन्न करनेवाले महेश्वरको नमस्कार है। प्रभो! आपका स्वरूप अनन्त है, आपको सदा ही नमस्कार है। देव! आप ललाटमे चन्द्रमाका चिह्न धारण करते हैं, आपको नमस्कार है। आपकी लीलाएँ असीम हैं। उनके द्वारा आपकी उत्तम स्तुति होती रहती है। वृषभराज नन्दी आपका वाहन है। आप दानवोंके तीनों पुरोंका अन्त करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। आप सर्वत्र प्रसिद्ध हैं और नाना प्रकारके रूप धारण किया करते हैं, आपको नमस्कार है। कालस्वरूप आपको नमस्कार है। कलसंख्यरूप आपको नमस्कार है तथा काल और कल दोनोंसे अतीत आप परमेश्वरको नमस्कार है। आप चराचर प्राणियोंके आचारका विचार करनेवालोंमें सबसे बड़े आचार्य हैं। प्राणियोंकी सृष्टि आपके ही सकल्पसे हुई है। आपके ललाटमें चन्द्रमा शोभा पाते हैं। मैं अपने प्रियतमकी प्राप्तिके लिये सहसा आप महेश्वरकी शरणमें आयी हूँ। भगवन्! मेरी कामनाको पूर्ण करनेवाले और यशको बढ़ानेवाले मेरे पतिको मुझे दे दीजिये। मैं उनके बिना जीवित नहीं रह सकती। पुरुषेश्वर! प्रियाके लिये प्रियतम ही नित्य सेव्य है, उससे बढ़कर ससारमें दूसरा कौन है। आप सबके प्रभु, प्रभावशाली तथा प्रिय वस्तुओंकी उत्पत्तिके कारण हैं। आप ही इस भुवनके स्वामी और रक्षक हैं। आप परम दयालु और भक्तोंका भय दूर करनेवाले हैं।

पुलस्त्यजी कहते हैं—कामदेवकी पत्नी रतिके इस प्रकार स्तुति करनेपर मस्तकपर चन्द्रमाका मुकुट धारण करनेवाले भगवान् शङ्कर उसकी ओर देखकर मधुर वाणीमें बोले—'सुन्दरी! समय आनेपर यह कामदेव शीघ्र ही उत्पन्न होगा। ससारमें इसकी अनङ्गके नामसे प्रसिद्धि होगी। भगवान् शिवके ऐसा कहनेपर कामवल्लभा रति उनके चरणोंमें मस्तक झुकाकर हिमालयके दूसरे उपवनमें चली गयी।

उधर नारदजीके कथनानुसार हिमवान् अपनी कन्याको

वस्त्राभूषणोंसे विभूषित करके उसकी दो सखियोंके साथ भगवान् शङ्करके समीप ले आ रहे थे। मार्गमें रतिके मुखसे मदन-दहनका समाचार सुनकर उनके मनमें कुछ भय हुआ। उन्होंने कन्याको लेकर अपनी पुरीमें लौट जानेका विचार किया। यह देख संकोचशीला पार्वतीने अपनी सखियोंके मुखसे पिताको कहलाया—'तपस्यासे अभीष्ट वस्तुकी प्राप्ति होती है। तप करनेवालेके लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं है। संसारमें तपस्या-जैसे साधनके रहते लोग व्यर्थ ही दुर्भाग्यका भार ढोते हैं। अतः अपनी अभीष्ट वस्तुको प्राप्त करनेकी इच्छासे मैं तपस्या ही करूँगी।' यह सुनकर हिमवान्‌ने कहा—'बेटी! 'उ' 'मा'—ऐसा न करो। तुम अभी चपल बालिका हो। तुम्हारा शरीर तपस्याका कष्ट सहन करनेमें समर्थ नहीं है। बाले! जो बात होनेवाली होती है, वह होकर ही रहती है; इसलिये तुम्हें तपस्या करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। अब घरको ही चलूँगा और वहीं इस कार्यकी सिद्धिके लिये कोई उपाय सोचूँगा।' पिताके ऐसा कहनेपर भी जब पार्वती घर जानेको तैयार नहीं हुई, तब हिमवान्‌ने मन-ही-मन अपनी पुत्रीके दृढ़ निश्चयकी प्रशंसा की। इसी समय आकाशमें दिव्य वाणी प्रकट हुई, जो तीनों लोकोंमें सुनायी पड़ी। वह इस प्रकार थी—'गिरिराज! तुमने 'उ' 'मा' कहकर अपनी पुत्रीको तपस्या करनेसे रोका है; इसलिये संसारमें इसका नाम उमा होगा। यह मूर्तिमती सिद्धि है। अपनी अभिलषित वस्तुको अवश्य प्राप्त करेगी।' यह आकाशवाणी सुनकर हिमवान्‌ने पुत्रीको तप करनेकी आज्ञा दे दी और स्वयं अपने भवनको चले गये।

पार्वती अपनी दोनों सखियोंके साथ हिमालयके उस प्रदेशमें गयी, जहाँ देवताओंका भी पहुँचना कठिन था। वहाँका शिखर परम पवित्र और नाना प्रकारकी धातुओंसे विभूषित था। सब ओर दिव्य पुष्प और लताएँ फैली थीं, वृक्षोंपर भ्रमर गुंजार कर रहे थे। वहाँ पार्वतीने अपने वस्त्र और आभूषण उतारकर दिव्य वल्कल धारण कर लिये। कटिमें कुशोंकी मेखला पहन ली। वह प्रतिदिन तीन बार स्नान करती और गुलाबके फूल चबाकर रह जाती थी। इस प्रकार उसने सौ वर्षोंतक तपस्या की। तत्पश्चात् सौ वर्षोंतक हिमवान्‌कुमारी प्रतिदिन एक पत्ता खाकर रही। तदनन्तर पुनः सौ वर्षोंतक उसने आहारका सर्वथा परित्याग कर दिया। इस तरह वह तपस्याकी निधि बन गयी। उसके तपकी आँचसे समस्त प्राणी उद्विग्न हो उठे। तब इन्द्रने सप्तर्षियोंका स्मरण किया। वे सब बड़ी प्रसन्नताके साथ एक ही समय वहाँ उपस्थित हुए। इन्द्रने उनका स्वागत-सत्कार किया। इसके बाद उन्होंने अपने बुलाये जानेका प्रयोजन पूछा। तब इन्द्रने कहा—'महात्माओ! आपलोगोंके आवाहनका प्रयोजन सुनिये। हिमालयपर पार्वतीदेवी घोर तपस्या कर रही हैं। आपलोग संसारके हितके लिये शीघ्रतापूर्वक वहाँ जाकर उन्हें अभिमत वस्तुकी प्राप्तिका विश्वास दिला तपस्या बंद करा दीजिये।' 'बहुत अच्छा!' कहकर सप्तर्षिगण उस सिद्धसेवित शैलपर आये और पार्वतीदेवीसे मधुर वाणीमें बोले—'बेटी! तुम किस उद्देश्यसे यहाँ तप कर रही हो?' पार्वतीदेवीने मुनियोंके गौरवका ध्यान रखकर आदरपूर्वक कहा—'महात्माओ! आपलोग समस्त प्राणियोंके मनोरथको जानते हैं। प्रायः सभी देहधारी ऐसी ही वस्तुकी अभिलाषा करते हैं, जो अत्यन्त दुर्लभ होती है। मैं भगवान् शङ्करको पतिरूपमें प्राप्त करनेका उद्योग कर रही हूँ। वे स्वभावसे ही दुराराध्य हैं। देवता और असुर भी जिनके स्वरूपको निश्चित रूपसे नहीं जानते, जो पारमार्थिक क्रियाओंके एकमात्र आधार हैं, जिन वीतराग महात्माने कामदेवको जलाकर भस्म कर डाला है, ऐसे महामहिम शिवको मेरी-जैसी तुच्छ अबला किस प्रकार आराधनाद्वारा प्रसन्न कर सकती है।'

पार्वतीके यों कहनेपर मुनियोंने उनके मनकी दृढ़ता जाननेके लिये कहा—'बेटी! संसारमें दो तरहका सुख देखा जाता है—एक तो वह है, जिसका शरीरसे सम्बन्ध होता है और दूसरा वह, जो मनको शान्ति एवं आनन्द प्रदान करनेवाला होता है। यदि तुम अपने शरीरके लिये नित्य सुखकी इच्छा करती हो तो तुम्हें घृणित वेषमें रहनेवाले भूत-प्रेतोंके सङ्गी महादेवसे वह सुख कैसे मिल सकता है। अरी! वे फुफकारते हुए भयङ्कर भुजङ्गोंको आभूषण रूपमें धारण करते हैं, श्मशानभूमिमें रहते हैं और रौद्ररूपधारी प्रमथगण सदा उनके साथ लगे रहते हैं। उनसे तो लक्ष्मीपति भगवान् श्रीविष्णु कहीं अच्छे हैं। वे इस जगत्‌के पालक हैं। उनके स्वरूपका कहीं ओर-छोर नहीं है तथा वे यज्ञभोगी देवताओंके स्वामी हैं। तुम उन्हें पानेकी इच्छा क्यों नहीं करतीं? अथवा दूसरे किसी देवताको पानेसे भी तुम्हें मानसिक सुखकी प्राप्ति हो सकती है। जिस वरको तुम

चाहती हो, उसके पानेमें ही बहुत क्लेश है, यदि कदाचित् प्राप्त भी हो गया तो वह निष्फल वृक्षके समान है—उससे तुम्हें सुख नहीं मिल सकता।'

उन श्रेष्ठ मुनियोंके ऐसा कहनेपर पार्वतीदेवी कुपित हो उठीं, उनके ओठ फड़कने लगे और वे क्रोधसे लाल आँखें करके बोलीं—'महर्षियो! दुराग्रहीके लिये कौन-सी नीति है। जिसकी समझ उलटी है, उन्हें आजतक किसने राहपर लगाया है। मुझे भी ऐसी ही जानिये। अतः मेरे विषयमें अधिक विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। आप सब लोग प्रजापतिके समान हैं, सब कुछ देखने और समझनेवाले हैं, फिर भी यह निश्चय है कि आप उन जगत्प्रभु सनातन देव भगवान् शङ्करको नहीं जानते। वे अजन्मा, ईश्वर और अव्यक्त हैं। उनकी महिमाका माप-तौल नहीं है। उनके अलौकिक कर्मोंका उत्तम रहस्य समझना तो दूर रहा, उनके स्वरूपका बोध भी आवृत है। श्रीविष्णु और ब्रह्मा आदि देवेश्वर भी उन्हें यथार्थरूपसे नहीं जानते। ब्रह्मर्षियो! उनका आत्मवैभव समस्त भुवनोंमें फैला हुआ है, सम्पूर्ण प्राणियोंके सामने प्रकट है, क्या उसे भी आपलोग नहीं जानते? बताइये तो, यह आकाश किसका स्वरूप है? यह अग्नि, यह वायु किसकी मूर्ति है? पृथ्वी और जल किसके विग्रह हैं? तथा ये चन्द्रमा और सूर्य किसके नेत्र हैं?'

पार्वतीदेवीकी बात सुनकर सप्तर्षिगण वहाँसे उस स्थानपर गये, जहाँ भगवान् शिव विराजमान थे। उन्होंने भक्तिपूर्वक नमस्कार करके भगवान्‌से कहा—'स्वर्गके अधीश्वर महादेव! आप दयालु देवता हैं। गिरिराज हिमालयकी पुत्री आपके लिये तपस्या कर रही है। हमलोग उसका मनोरथ जानकर आपके पास आये हैं। आप योगमाया, महिमा और गुणोंके आश्रय हैं। आपको अपने निर्मल ऐश्वर्यपर गर्व नहीं है। शरीरधारियोंमें हमलोग अधिक पुण्यवान् हैं जो कि ऐसे महिमाशाली आपका दर्शन कर रहे हैं।' ऋषियोंके रमणीय एवं हितकर वचन सुनकर वागीश्वरोंमें श्रेष्ठ भगवान् शङ्कर मुसकराते हुए बोले—'मुनिवरो! मैं जानता हूँ लोक-रक्षाकी दृष्टिसे वास्तवमें यह कार्य बहुत उत्तम है, किन्तु इस विषयमें मुझे हिमवान् पर्वतसे ही आशङ्का है—शायद वे मेरे साथ अपनी कन्याके विवाहकी बात स्वीकार न करें। इसमें सन्देह नहीं कि जो लोग कार्यसिद्धिके लिये उद्यत होते हैं, वे सभी उत्कण्ठित रहा करते हैं। उत्कण्ठा होनेपर बड़े-बड़े महात्माओंके चित्तमें भी उतावली पड़ जाती है। तथापि विशिष्ट व्यक्तियोंको लोक-मर्यादाका अनुसरण करना ही चाहिये। क्योंकि इससे धर्मकी वृद्धि होती है और परवर्ती लोगोंके लिये भी आदर्श उपस्थित होता है।'

भगवान्‌के ऐसा कहनेपर सप्तर्षिगण तुरंत हिमालयके भवनमें गये। वहाँ हिमवान्‌ने बड़े आदरके साथ उनका पूजन किया। उससे प्रसन्न होकर वे मुनिश्रेष्ठ उतावलीके कारण संक्षेपसे बोले—'गिरिराज! तुम्हारी पुत्रीके लिये साक्षात् पिनाकधारी भगवान् शङ्कर तुमसे याचना करते हैं। अतः तुम अपनी पुत्री भगवान् श्रीशङ्करको समर्पित करके अपनेको पावन बनाओ। यह देवताओंका कार्य है। जगत्‌का उद्धार करनेके लिये ही यह उद्योग किया जा रहा है।' उनके ऐसा कहनेपर हिमवान् आनन्द-विभोर हो गये। तब वे हिमवान्‌को साथ ले पार्वतीके आश्रमपर गये। उमा तपस्याके कारण तेजोमयी दिखायी दे रही थी। उसने अपने तेजसे सूर्य और अग्निकी ज्वालाको भी परास्त कर दिया था। मुनियोंने जब स्नेहपूर्वक उसका मनोगत भाव पूछा तो उस मानिनीने यह सारगर्भित वचन कहा—'मैं पिनाकधारी भगवान् रुद्रके सिवा दूसरे किसीको नहीं चाहती। वे ही छोटे-बड़े सब प्राणियोंमें [आत्मारूपसे] स्थित हैं, वे ही सबको समृद्धि प्रदान करनेवाले हैं। धीरता और ऐश्वर्य आदि गुण उन्हींमें सीमा पाते हैं, वे तुलनारहित महान् प्रमाण हैं, उनके सिवा दूसरी कोई वस्तु है ही नहीं। यह सारा जगत् उन्हींसे उत्पन्न होता है। जिनका ऐश्वर्य आदि-अन्तसे रहित है, उन्हीं भगवान् शङ्करकी शरणमें मैं आयी हूँ।'

पार्वतीदेवीके ये वचन सुनकर वे मुनिश्रेष्ठ बहुत प्रसन्न हुए। उनके नेत्रोंमें आनन्दके आँसू उमड़ आये और उन्होंने तपस्विनी गिरिजाकी प्रशंसा करते हुए मधुर वाणीमें कहा—'अहो! बड़ी अद्भुत बात है। बेटी! तुम निर्मल ज्ञानकी मूर्ति-सी जान पड़ती हो और श्रीशङ्करजीमें दृढ़ अनुराग रखनेके कारण हमारे अन्तःकरणको अत्यन्त प्रसन्न कर रही हो। हम भगवान् शिवके अतुल ऐश्वर्यको जानते हैं, केवल तुम्हारे निश्चयकी दृढ़ता जाननेके लिये यहाँ आये थे। अब तुम्हारी यह कामना शीघ्र ही पूरी होगी। अपने इस मनोहर रूपको तपस्याकी आगमें न जलाओ। कल प्रातःकाल भगवान् शङ्कर स्वयं आकर तुम्हारा पाणिग्रहण करेंगे। हमलोग पहले आकर तुम्हारे पिताजीसे भी प्रार्थना कर चुके हैं। अब तुम अपने पिताके साथ घर जाओ, हम भी अपने आश्रमको जाते हैं।' उनके इस प्रकार कहनेपर पार्वती यह सोचकर कि तपस्याका यथार्थ

फल प्राप्त हो गया, तुरंत ही पिताके शोभासम्पन्न दिव्य भवनमें चली गयीं। वहाँ जानेपर गिरिजाके हृदयमें भगवान् शङ्करके दर्शनकी प्रबल उत्कण्ठा जाग्रत् हुई। अतः उसे वह रात एक हजार वर्षोंके समान जान पड़ी। तदनन्तर ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर सखियोंने पार्वतीका माङ्गलिक कार्य करना आरम्भ किया। क्रमशः नाना प्रकारके मङ्गल-विधान यथार्थरूपसे सम्पन्न किये गये। सब प्रकारकी कामनाएँ पूर्ण करनेवाली ऋतुएँ मूर्तिमान् होकर गिरिराज हिमालयकी उपासना करने लगीं। सुखदायिनी वायु झाड़ने-बुहारनेके काममें लगी थी। चिन्तामणि आदि रत्न, तरह-तरहकी लताएँ तथा कल्पतरु आदि बड़े-बड़े वृक्ष भी वहाँ सब ओर उपस्थित थे। दिव्य ओषधियोंके साथ साधारण ओषधियाँ भी दिव्य देह धारण करके सेवामें संलग्न थीं। रस और धातुएँ भी वहाँ दास-दासीका काम करती थीं। नदियाँ, समुद्र तथा स्थावर-जङ्गम सभी प्राणी मूर्तिमान् होकर हिमवान्‌की महिमा बढ़ा रहे थे।

दूसरी ओर निर्मल शरीरवाले देवता, मुनि, नाग, यक्ष, गन्धर्व और किन्नरगण श्रीशङ्करजीके शृङ्गारकी सारी सामग्री सजाये गन्धमादन पर्वतपर उपस्थित हुए। ब्रह्माजीने श्रीशङ्करजीके जटा-जूटमें चन्द्रमाकी कला सजायी। भगवान् श्रीविष्णु रत्नके बने कर्णभूषण, उज्ज्वल कण्ठहार और भुजङ्गमय आभूषण लेकर श्रीशङ्करजीके सामने उपस्थित हुए। अन्य देवताओंने मनके समान वेगवाले शिववाहन नन्दीको भी विभूषित किया। भाँति-भाँतिकी शृङ्गार-सामग्रियोंसे श्रीशङ्करजीको सुसज्जित करके उन्हें सुन्दर आभूषण पहनाकर भी देवताओंकी व्यग्रता अभी दूर नहीं हुई—वे शीघ्र-से-शीघ्र वैवाहिक कार्य सम्पन्न कराना चाहते थे। पृथ्वीदेवी भी सर्वथा व्यग्र थीं। वे मनोरम रूप धारण करके उपस्थित हुईं और नूतन तथा सुन्दर रस और ओषधियाँ प्रदान करने लगीं। साक्षात् वरुण रत्न, आभूषण तथा भाँति-भाँतिके रत्नोंके बने हुए विचित्र-विचित्र पुष्प लेकर उपस्थित हुए। समस्त देहधारियोंके भीतर रहकर सब कुछ जाननेवाले अग्निदेव भी परम पवित्र सोनेके दिव्य आभूषण लेकर विनीत भावसे सामने आये। वायु सुगन्ध बिखेरती हुई मन्द-मन्द गतिसे प्रवाहित होने लगी, जिससे उसका स्पर्श भगवान् शङ्करको सुखद प्रतीत हो। वज्रसे सुसज्जित देवराज इन्द्रने बड़ी प्रसन्नताके साथ अपने हाथोंमें भगवान् शिवका छत्र ग्रहण किया। वह छत्र अपने उज्ज्वल प्रकाशसे चन्द्रमाकी किरणावलियोंका उपहास कर रहा था। गन्धर्व और किन्नर अत्यन्त मधुर बाजोंकी ध्वनि करते हुए गान करने लगे। मुहूर्त और ऋतुएँ मूर्तिमान् होकर गान और नृत्य करने लगीं। भगवान् शङ्कर हिमवान्‌के नगरमें पहुँचे। उनके चञ्चल प्रमथगण हिमालयका आलोडन करते हुए वहाँ स्थित हुए। तत्पश्चात् विश्वविधाता ब्रह्माजी तथा भगवान् शङ्कर क्रमशः विवाहमण्डपमें विराजमान हुए। शिवने अपनी पत्नी उमाके साथ शास्त्रोक्त रीतिसे वैवाहिक कार्य सम्पन्न किया। गिरिराजने उन्हें अर्घ्य दिया और देवताओंने



विनोदके द्वारा उन्हें प्रसन्न किया। शिवने पत्नीके साथ वह रात्रि वहीं व्यतीत की। सबेरे देवताओंके स्तवन करनेपर वे उठे और गिरिराजसे विदा ले वायुके समान वेगशाली नन्दीपर सवार हो पत्नीसहित मन्दराचलको चले गये। उमाके साथ भगवान् नीललोहितके चले जानेपर हिमवान्‌का मन कुछ उदास हो गया। क्यों न हो, कन्याकी विदाई हो जानेपर भला, किस पिताका हृदय व्याकुल नहीं होता।

गणेश और कार्तिकेयका जन्म तथा कार्तिकेयद्वारा तारकासुरका वध



पुलस्त्यजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर भगवान् शङ्कर पार्वती देवीके साथ नगरके रमणीय उद्यानों तथा एकान्त वनोंमें विहार करने लगे। देवीके प्रति उनके हृदयमें बड़ा अनुराग था। एक समयकी बात है—गिरिजाने सुगन्धित तेल और चूर्णसे अपने शरीरमें उबटन लगवाया और उससे जो मैल गिरा, उसे हाथमें उठाकर उन्होंने एक पुरुषकी आकृति बनायी, जिसका मुँह हाथीके समान था, फिर खेल करते हुए भगवती शिवाने उसे गङ्गाजीके जलमें डाल दिया। गङ्गाजी पार्वतीको अपनी सखी मानती थीं। उनके जलमें पड़ते ही वह पुरुष बढ़कर विशालकाय हो गया। पार्वती देवीने उसे पुत्र कहकर पुकारा। फिर गङ्गाजीने भी पुत्र कहकर सम्बोधित किया। देवताओंने गाङ्गेय कहकर सम्मानित किया। इस प्रकार गजानन देवताओंके द्वारा पूजित हुए। ब्रह्माजीने उन्हें गणोंका आधिपत्य प्रदान किया।

तत्पश्चात् परम सुन्दरी शिवा देवीने खेलमें ही एक वृक्ष बनाया। उससे अशोकका मनोहर अङ्कुर फूट निकला। सुन्दर मुखवाली पार्वतीने उसका मङ्गल-संस्कार किया। तब इन्द्रके पुरोहित बृहस्पति आदि ब्राह्मणों, देवताओं तथा मुनियों ने कहा—'देवि! बताइये, वृक्षोंके पौधे लगानेसे क्या फल होगा?' यह सुनकर पार्वती देवीका शरीर हर्षसे पुलकित हो उठा, वे अत्यन्त कल्याणमय वचन बोलीं—'जो विज्ञ पुरुष ऐसे गाँवमें जहाँ जलका अभाव हो, कुआँ बनवाता है, वह उसके जलकी जितनी बूँदें हों उतने वर्षतक स्वर्गमें निवास करता है। दस कुओंके समान एक बावली, दस बावलियोंके समान एक सरोवर, दस सरोवरोंके समान एक कन्या और दस कन्याओंके समान एक वृक्ष लगानेका फल होता है। यह शुभ मर्यादा नियत है। यह लोकको उन्नतिके पथपर ले जानेवाली है।' माता पार्वती देवीके यों कहनेपर बृहस्पति आदि ब्राह्मण उन्हें प्रणाम करके अपने-अपने निवासस्थानको चले गये।

उनके जानेके पश्चात् भगवान् शङ्कर पार्वतीके साथ अपने भवनमें गये। उस भवनमें चित्तको प्रसन्न करनेवाले ऊँचे-ऊँचे चौबारे, अटारियाँ और गोपुर बने हुए थे। वेदियोंपर मालाएँ शोभा पा रही थीं। सब ओर सोना जड़ा था। महलमें पुष्प बिखेरे हुए थे, जिनकी सुगन्धसे उन्मत्त होकर भ्रमरगण गुंजार कर रहे थे। उस भवनमें भगवान् श्रीशङ्करको पार्वतीजीके साथ निवास करते एक हजार वर्ष व्यतीत हो गये। तब देवताओंने उतावले होकर अग्निदेवको श्रीशङ्करजी की चेष्टा जाननेके लिये भेजा। अग्निने तोतेका रूप धारण करके, जिससे पक्षी आते जाते थे, उसी छिद्रके द्वारा शङ्करजी के महलमें प्रवेश किया और उन्हें गिरिजाके साथ एक शय्या पर सोते देखा। तत्पश्चात् देवी पार्वती शय्यासे उठकर कौतूहलवश एक सरोवरके तटपर गयीं, जो सुवर्णमय कमलोंसे सुशोभित था। वहाँ जाकर उन्होंने जलविहार किया। तदनन्तर वे सखियोंके साथ सरोवरके किनारे बैठीं और उसके निर्मल पङ्कजोंसे सुशोभित स्वादिष्ट जलको पीनेकी इच्छा करने लगीं। इतनेमें ही उन्हें सूर्यके समान तेजस्विनी छः कृत्तिकाएँ दिखायी दीं। वे कमलके पत्तेमें उस सरोवरका जल लेकर जब अपने घरको जाने लगीं, तब पार्वती देवीने हर्षमें भरकर कहा—'देवियो! कमलके पत्तेमें रखे हुए जलको मैं भी देखना चाहती हूँ।' वे बोलीं—'सुमुखि! हम तुम्हें इसी शर्तपर जल दे सकती हैं कि तुम्हारे प्रिय गर्भसे जो पुत्र उत्पन्न हो, वह हमारा भी पुत्र माना जाय एवं हममें भी मातृभाव रखनेवाला तथा हमारा रक्षक हो। वह पुत्र तीनों लोकोंमें विख्यात होगा।' उनकी बात सुनकर गिरिजा ने कहा—'अच्छा, ऐसा ही हो।' यह उत्तर पाकर कृत्तिकाओंको बड़ा हर्ष हुआ और उन्होंने कमल-पत्रमें स्थित जलमेंसे थोड़ा पार्वतीजीको भी दे दिया। उनके साथ पार्वतीने भी क्रमशः उस जलका पान किया।

जल पीनेके बाद तुरंत ही रोग शोकका नाश करने वाला एक सुन्दर और अद्भुत बालक भगवती पार्वतीकी दाहिनी कोख फाड़कर निकल आया। उसका शरीर सूर्यकी किरणोंके समान प्रकाश पुञ्जसे व्याप्त था। उसने अपने हाथमें तीक्ष्ण शक्ति, शूल और अङ्कुश धारण कर रखे थे। वह अग्निके समान तेजस्वी और सुवर्णके समान गोरे रंगका बालक कुत्सित दैत्योंको मारनेके लिये प्रकट हुआ था; इसलिये उसका नाम 'कुमार' हुआ। वह कृत्तिकाके दिये हुए जलसे शाखाओंसहित प्रकट हुआ था। वे कल्याणमयी शाखाएँ छहों मुखोंके रूपमें विस्तृत थीं, इन्हीं सब कारणोंसे वह तीनों लोकोंमें विशाख, षण्मुख, स्कन्द, षडानन और कार्तिकेय आदि नामोंसे विख्यात हुआ। ब्रह्मा, श्रीविष्णु, इन्द्र और सूर्य आदि समस्त देवताओंने चन्दन, माला, सुन्दर धूप,

खिलौने, छत्र, चँवर, भूषण और अङ्गराग आदिके द्वारा कुमार षडाननको सावधानीके साथ विधिपूर्वक सेनापतिके पदपर अभिषिक्त किया। भगवान् श्रीविष्णुने सब तरहके आयुध प्रदान किये। धनाध्यक्ष कुबेरने दस लाख यक्षोंकी सेना दी। अग्निने तेज और वायुने वाहन अर्पित किये। इस प्रकार देवताओंने प्रसन्न चित्तसे सूर्यके समान तेजस्वी स्कन्दको अनन्त पदार्थ दिये। तत्पश्चात् वे सब पृथ्वीपर घुटने टेककर बैठ गये और स्तोत्र पढ़कर वरदायक देवता षडाननकी स्तुति करने लगे। स्तुति पूर्ण होनेके पश्चात् कुमारने कहा—'देवताओ! आपलोग शान्त होकर बताइये, मैं आपकी कौन-सी इच्छा पूरी करूँ? यदि आपके मनमें चिरकालसे कोई असाध्य कार्य करनेकी भी इच्छा हो तो कहिये।'

देवता बोले—कुमार! तारक नामसे प्रसिद्ध एक दैत्योंका राजा है, जो सम्पूर्ण देवकुलका अन्त कर रहा है। वह बलवान्, अजेय, तीखे स्वभाववाला, दुराचारी और अत्यन्त क्रोधी है। सबका नाश करनेवाला और दुर्दमनीय है। अतः आप उस दैत्यका वध कीजिये। यही एक कार्य शेष रह गया है, जो हमलोगोंको बहुत ही भयभीत कर रहा है।

देवताओंके यों कहनेपर कुमारने 'तथास्तु' कहकर उनकी आज्ञा स्वीकार की और जगत्के लिये कण्टकरूप तारकासुरका वध करनेके लिये वे देवताओंके पीछे-पीछे चले। उस समय समस्त देवता उनकी स्तुति कर रहे थे। तदनन्तर कुमारका आश्रय मिल जानेके कारण इन्द्रने दानव-राज तारकके पास अपना दूत भेजा। वहाँ जाकर दूतने उस भयानक आकृतिवाले दैत्यसे निर्भयतापूर्वक कहा—'तारकासुर! देवराज इन्द्रने तुम्हें यह कहलाया है कि देवता तुमसे युद्ध करने आ रहे हैं, तुम अपनी शक्तिभर प्राण बचानेकी चेष्टा करो।' यों कहकर जब दूत चला गया, तब दानवने सोचा, 'हो-न-हो, इन्द्रको कोई आश्रय अवश्य मिल गया है, अन्यथा वे ऐसी बात नहीं कह सकते थे।' इन्द्र मुझपर आक्रमण करने आ रहे हैं। वह सोचने लगा, 'ऐसा कौन अपूर्व योद्धा होगा, जिसे मैंने अबतक परास्त नहीं किया है।' तारकासुर इसी चिन्तामें व्याकुल हो रहा था, इतनेमें ही उसे सिद्ध बन्दियोंके द्वारा गाया जाता हुआ किसीका यशोगान सुनायी पड़ा, जो हृदयको दुःखद प्रतीत होता था, जिसके अक्षर कड़वे जान पड़ते थे।

बन्दीगण कह रहे थे—महासेन! आपकी जय हो। आपके मस्तककी चञ्चल शिखाएँ बड़ी सुन्दर दिखायी देती हैं, श्रीविग्रहकी कान्ति नूतन एवं निर्मल कमलदलके समान मनोरम जान पड़ती है। आप दैत्यवंशके लिये दुःसह दावानलके समान हैं। प्रभो विशाख! आपकी जय हो। तीनों लोकोंके शोकको शमन करनेवाले सात दिनकी अवस्थाके बालक! आपकी जय हो। सम्पूर्ण विश्वकी रक्षाका भार वहन करनेवाले दैत्यविनाशक स्कन्द! आपकी जय हो।

देवबन्दियोंद्वारा उच्चारित यह विजयघोष सुनकर तारकासुरको ब्रह्माजीके वचनका स्मरण हो आया। बालकके हाथसे वध होनेकी बात याद करके वह धर्मविध्वंसी दैत्य शोकाकुल हृदयसे अपने महलके बाहर निकला। उस समय बहुत-से वीर उसके पीछे-पीछे चल रहे थे। कालनेमि आदि दैत्य भी थर्रा उठे। उनका हृदय भयभीत हो गया। वे अपनी-अपनी सेनामें खड़े होकर व्यग्रताके कारण चकित हो रहे थे। तारकासुरने कुमारको सामने देखकर कहा—'बालक! तू क्यों युद्ध करना चाहता है? जा, गेंद लेकर खेल। तेरे ऊपर जो यह महान् युद्धकी विभीषिका लादी गयी है, यह तेरे साथ बड़ा अन्याय किया गया है। तू अभी निरा बच्चा है, इसीलिये तेरी बुद्धि इतनी अल्प समझ रखनेवाली है।'

कुमार बोले—तारक! सुनो, यहाँ [अधिक बुद्धि लेकर] शास्त्रार्थ नहीं करना है। भयंकर संग्राममें शस्त्रोंके द्वारा ही अर्थकी सिद्धि होती है [बुद्धिके द्वारा नहीं]। तुम मुझे शिशु समझकर मेरी अवहेलना न करो। साँपका नन्हा-सा बच्चा भी मौतका कष्ट देनेवाला होता है। [प्रभातकालके] बाल-सूर्यकी ओर देखना भी कठिन होता है। इसी प्रकार मैं बालक होनेपर भी दुर्जय हूँ—मुझे परास्त करना कठिन है। दैत्य! क्या थोड़े अक्षरोंवाले मन्त्रमें अद्भुत शक्ति नहीं देखी जाती?

कुमारकी यह बात समाप्त होते ही दैत्यने उनके ऊपर मुद्गरका प्रहार किया। परन्तु उन्होंने अमोघ तेजवाले चक्रके द्वारा उस भयंकर अस्त्रको नष्ट कर दिया। तब दैत्यराजने लोहेका भिन्दिपाल चलाया, किन्तु कार्तिकेयने उसको अपने हाथसे पकड़ लिया। इसके बाद उन्होंने भी दैत्यको लक्ष्य करके भयानक आवाज करनेवाली गदा चलायी; उसकी चोट खाकर वह पर्वताकार दैत्य तिलमिला उठा। अब उसे विश्वास हो गया कि यह बालक दुःसह एवं दुर्जय वीर है। उसने बुद्धिसे सोचा, अब निस्सन्देह मेरा काल आ पहुँचा है। उसे कम्पित होते देख कालनेमि आदि सभी दैत्यपति संग्राममें कठोरता धारण

करनेवाले कुमारको मारने लगे । परन्तु महातेजस्वी कार्तिकेय को उनके प्रहार और विभीषिकाएँ छू भी नहीं सकीं। उन्होंने दानव सेनाको अस्त्र शस्त्रोंसे विदीर्ण करना आरम्भ किया। उनके अस्त्रोंका कोई निवारण नहीं हो पाता था। उनकी मार खाकर कालनेमि आदि देवशत्रु युद्धसे विमुख होकर भाग चले।

इस प्रकार जब दैत्यगण आहत होकर चारों ओर भाग गये और किन्नरगण विजय-गीत गाने लगे, उस समय अपना उपहास जानकर तारकासुर क्रोधसे अचेत-सा हो गया। उसने तपाये हुए सोनेकी कान्तिसे सुशोभित गदा लेकर कुमारपर प्रहार किया और विचित्र बाणोंसे मारकर उनके वाहन मयूरको युद्धसे भगा दिया। अपने वाहनको रक्त बहाते हुए भागते देख कार्तिकेयने सुवर्णभूषित निर्मल शक्ति हाथमें ली और दानवराज तारकसे कहा—'खोटी बुद्धिवाले दैत्य! खड़ा रह, खड़ा रह, जीते जी इस संसारको भर आँख देख ले। अब मैं अपनी शक्तिके द्वारा तेरे प्राण ले रहा हूँ, तू अपने कुकर्मोंको याद कर।' यों कहकर कुमारने दैत्यके ऊपर शक्तिका प्रहार किया। कुमारकी भुजासे छूटी हुई वह शक्ति केयूरकी खन खनाहटके साथ चली और दैत्यकी छातीमें, जो वज्र तथा गिरिराजके समान कठोर थी, जा लगी। उसने तारकासुरके हृदयको चीर डाला और वह दैत्य निष्प्राण होकर प्रलयकालीन पर्वतके समान धरतीपर गिर पड़ा। दानवोंके धुरन्धर वीर दैत्यराज तारकके मारे जानेपर सबका दुःख दूर हो गया। देवतालोग कार्तिकेयजीकी स्तुति करते हुए क्रीडामें मग्न हो गये, उनके मुखपर मुसकान छा



गयी। वे अपनी मानसिक चिन्ताका परित्याग करके हर्षपूर्वक अपने अपने लोकमें गये। सबने कार्तिकेयजीको वरदान दिये।

देवता बोले—जो परम बुद्धिमान् मनुष्य कार्तिकेयजीसे सम्बन्ध रखनेवाली इस कथाको पढ़ेगा, सुनेगा अथवा सुनायेगा, वह यशस्वी होगा। उसकी आयु बढ़ेगी, वह सौभाग्यशाली, श्रीसम्पन्न, कान्तिमान्, सुन्दर, समस्त प्राणियोंसे निर्भय तथा सब दुःखोंसे मुक्त होगा।

उत्तम ब्राह्मण और गायत्री-मन्त्रकी महिमा

भीष्मजीने पूछा—विप्रवर! मनुष्यको भी देवत्व, सुख, राज्य, धन, यश, विजय, भोग, आरोग्य, आयु, विद्या, लक्ष्मी, पुत्र, बन्धुवर्ग एवं सब प्रकारके मङ्गलकी प्राप्ति कैसे हो सकती है? यह बतानेकी कृपा कीजिये।

पुलस्त्यजीने कहा—राजन्! इस पृथ्वीपर ब्राह्मण सदा ही विद्या आदि गुणोंसे युक्त और श्रीसम्पन्न होता है। तीनों लोकों और प्रत्येक युगमें ब्राह्मण-देवता नित्य पवित्र माने गये हैं। ब्राह्मण देवताओंका भी देवता है। संसारमें उसके समान दूसरा कोई नहीं है। वह साक्षात् धर्मकी मूर्ति है और इस पृथ्वीपर सबको मोक्ष प्रदान करनेवाला है। ब्राह्मण सब लोगोंका गुरु, पूज्य और तीर्थस्वरूप मनुष्य है। ब्रह्माजीने उसे सब देवताओंका आश्रय बनाया है। पूर्वकालमें नारदजीने इसी विषयको ब्रह्माजीसे इस प्रकार पूछा था—'ब्रह्मन्! किसकी पूजा करनेपर भगवान् लक्ष्मीपति प्रसन्न होते हैं?'

ब्रह्माजी बोले—जिसपर ब्राह्मण प्रसन्न होते हैं, उसपर भगवान् श्रीविष्णु भी प्रसन्न हो जाते हैं। अतः ब्राह्मण-की सेवा करनेवाला मनुष्य परब्रह्म परमात्माको प्राप्त होता है। ब्राह्मणके शरीरमें सदा ही श्रीविष्णुका निवास है। जो दान, मान और सेवा आदिके द्वारा प्रतिदिन ब्राह्मणोंकी

पूजा करता है, उसके द्वारा मानो शास्त्रीय विधिके अनुसार उत्तम दक्षिणासे युक्त सौ यज्ञोंका अनुष्ठान हो जाता है। जिसके घरपर आया हुआ विद्वान् ब्राह्मण निराश नहीं लौटता, उसके सम्पूर्ण पापोंका नाश हो जाता है तथा वह अक्षय स्वर्गको प्राप्त होता है। पवित्र देश-कालमें सुपात्र ब्राह्मणको जो धन दान किया जाता है, उसे अक्षय जानना चाहिये; वह जन्म-जन्मान्तरोंमें भी फल देता रहता है। ब्राह्मणोंकी पूजा करनेवाला मनुष्य कभी दरिद्र, दुखी और रोगी नहीं होता। जिस घरके आँगन ब्राह्मणोंकी चरणधूलि पड़नेसे पवित्र एवं शुद्ध होते रहते हैं, वे पुण्यक्षेत्रके समान हैं। उन्हें यज्ञ-कर्मके लिये श्रेष्ठ माना गया है। भीष्म! पूर्वकालमें ब्रह्माजीके मुखसे पहले ब्राह्मणका प्रादुर्भाव हुआ; फिर उसी मुखसे जगत्की सृष्टि और पालनके हेतुभूत वेद प्रकट हुए। अतः विधाताने समस्त लोकोंकी पूजा ग्रहण करनेके लिये और समस्त यज्ञोंके अनुष्ठानके लिये ब्राह्मणके ही मुखमें वेदोंको समर्पित किया। पितृयज्ञ (श्राद्ध-तर्पण), विवाह, अग्निहोत्र, शान्तिकर्म तथा सब प्रकारके माङ्गलिक कार्योंमें ब्राह्मण सदा उत्तम माने गये हैं। ब्राह्मणके ही मुखसे देवता हव्यका और पितर कव्यका उपभोग करते हैं। ब्राह्मणके बिना दान, होम और बलि—सब निष्फल होते हैं। जहाँ ब्राह्मणोंको भोजन नहीं दिया जाता, वहाँ असुर, प्रेत, दैत्य और राक्षस भोजन करते हैं। अतः दान-होम आदिमें ब्राह्मणको बुलाकर उन्हींसे सब कर्म कराना चाहिये। उत्तम देश-कालमें और उत्तम पात्रको दिया हुआ दान लाखगुना अधिक फलदायक होता है। ब्राह्मणको देखकर श्रद्धापूर्वक उसको प्रणाम करना चाहिये। उसके आशीर्वादसे मनुष्यकी आयु बढ़ती है, वह चिरजीवी होता है। ब्राह्मणको देखकर उसे प्रणाम न करनेसे, ब्राह्मणके साथ द्वेष रखनेसे तथा उसके प्रति अश्रद्धा करनेसे मनुष्योंकी आयु क्षीण होती है, उनके धन-ऐश्वर्यका नाश होता है तथा परलोकमें उनकी दुर्गति होती है। ब्राह्मणका पूजन करनेसे आयु, यश, विद्या और धनकी वृद्धि होती है तथा मनुष्य श्रेष्ठ दशाको प्राप्त होता है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। जिन घरोंमें ब्राह्मणके चरणोदकसे कीच नहीं होती, जहाँ वेद और शास्त्रोंकी ध्वनि नहीं सुनायी देती, जो यज्ञ, तर्पण और ब्राह्मणोंके आशीर्वादसे वञ्चित रहते हैं, वे श्मशानके समान हैं।*

* न विप्रपादोदककर्दमानि न वेदशास्त्रप्रतिघोषितानि।
स्वाहास्वधास्वस्तिविवर्जितानि श्मशानतुल्यानि गृहाणि तानि॥
(४३।१२७)

नारदजीने पूछा—पिताजी! कौन ब्राह्मण अत्यन्त पूजनीय है? ब्राह्मण और गुरुके लक्षणका यथावत् वर्णन कीजिये।

ब्रह्माजीने कहा—वत्स! श्रोत्रिय और सदाचारी ब्राह्मणकी नित्य पूजा करनी चाहिये। जो उत्तम व्रतका पालन करनेवाला और पापोंसे मुक्त है वह मनुष्य तीर्थस्वरूप है। उत्तम श्रोत्रियकुलमें उत्पन्न होकर भी जो वैदिक कर्मोंका अनुष्ठान नहीं करता, वह पूजित नहीं होता तथा असत् क्षेत्र (मातृकुल) में जन्म लेकर भी जो वेदानुकूल कर्म करता है, वह पूजाके योग्य है—जैसे महर्षि वेदव्यास और ऋष्यशृङ्ग*। विश्वामित्र यद्यपि क्षत्रियकुलमें उत्पन्न हैं, तथापि अपने सत्कर्मोंके कारण वे मेरे समान हैं; इसलिये बेटा! तुम पृथ्वीके तीर्थस्वरूप श्रोत्रिय आदि ब्राह्मणोंके लक्षण सुनो; इनके सुननेसे सब पापोंका नाश होता है। ब्राह्मणके बालकको जन्मसे ब्राह्मण समझना चाहिये। संस्कारोंसे उसकी 'द्विज' संज्ञा होती है तथा विद्या पढ़नेसे वह 'विप्र' नाम धारण करता है। इस प्रकार जन्म, संस्कार और विद्या—इन तीनोंसे युक्त होना श्रोत्रियका लक्षण है। जो विद्या, मन्त्र तथा वेदोंसे शुद्ध होकर तीर्थस्नानादिके कारण और भी पवित्र हो गया है, वह ब्राह्मण परम पूजनीय माना गया है। जो सदा भगवान् श्रीनारायणमें भक्ति रखता है, जिसका अन्तःकरण शुद्ध है, जिसने अपनी इन्द्रियों और क्रोधको जीत लिया है, जो सब लोगोंके प्रति समान भाव रखता है, जिसके हृदयमें गुरु, देवता और अतिथिके प्रति भक्ति है, जो पिता-माताकी सेवामें लगा रहता है, जिसका मन परायी स्त्रीमें कभी सुखका अनुभव नहीं करता, जो सदा पुराणोंकी कथा कहता और धार्मिक उपाख्यानोंका प्रचार करता है, उस ब्राह्मणके दर्शनसे प्रतिदिन अश्वमेध आदि यज्ञोंका फल प्राप्त होता है।† जो प्रतिदिन स्नान, ब्राह्मणोंका पूजन तथा

* सच्छ्रोत्रियकुले जातो अक्रियो नैव पूजितः।
असत्क्षेत्रकुले पूज्यो व्यासवैभाण्डकौ यथा॥
(४३।१३१)

† जन्मना ब्राह्मणो ज्ञेयः संस्कारैर्द्विज उच्यते।
विद्यया याति विप्रत्वं त्रिभिः श्रोत्रियलक्षणम्॥
विद्यापूतो मन्त्रपूतो वेदपूतस्तथैव च।
तीर्थस्नानादिभिर्मेध्यो विप्रः पूज्यतमः स्मृतः॥
नारायणे सदा भक्तः शुद्धान्तःकरणस्तथा।
जितेन्द्रियो जितक्रोधः समः सर्वजनेषु च॥

नाना प्रकारके व्रतोंका अनुष्ठान करनेसे पवित्र हो गया है तथा जो गङ्गाजीके जलका सेवन करता है, उसके साथ वार्तालाप करनेसे ही उत्तम गतिकी प्राप्ति होती है। जो शत्रु और मित्र दोनोंके प्रति दयाभाव रखता है, सब लोगोंके साथ समताका बर्ताव करता है, दूसरेका धन—जंगलमें पड़ा हुआ तिनका भी नहीं चुराता, काम और क्रोध आदि दोषोंसे मुक्त है, जो इन्द्रियोंके वशमें नहीं होता, यजुर्वेदमें वर्णित चतुर्वेदमयी शुद्ध तथा चौबीस अक्षरोंसे युक्त त्रिपदा गायत्रीका प्रतिदिन जप करता है तथा उसके भेदोंको जानता है, वह ब्रह्मपदको प्राप्त होता है।

नारदजीने पूछा—पिताजी! गायत्रीका क्या लक्षण है, उसके प्रत्येक अक्षरमें कौन सा गुण है तथा उसकी कुक्षि, चरण और गोत्रका क्या निर्णय है—इस बातको स्पष्टरूपसे बताइये।

ब्रह्माजी बोले—वत्स! गायत्री-मन्त्रका छन्द गायत्री और देवता सविता निश्चित किये गये हैं। गायत्री देवीका वर्ण शुक्ल, मुख अग्नि और ऋषि विश्वामित्र हैं। ब्रह्माजी उनके मस्तकस्थानीय हैं। उनकी शिखा रुद्र और हृदय श्रीविष्णु हैं। उनका उपनयन कर्ममें विनियोग होता है। गायत्री देवी सांख्यायन गोत्रमें उत्पन्न हुई हैं। तीनों लोक उनके तीन चरण हैं। पृथ्वी उनके उदरमें स्थित है। पैरसे लेकर मस्तकतक शरीरके चौबीस स्थानोंमें गायत्रीके चौबीस अक्षरोंका न्यास करके द्विज ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है तथा प्रत्येक अक्षरके देवताका ज्ञान प्राप्त करनेसे विष्णुका सायुज्य मिलता है। अब मैं गायत्रीका दूसरा निश्चित लक्षण बतलाता हूँ। वह अठारह अक्षरोंका यजुर्मन्त्र है। 'अग्नि' शब्दसे उसका आरम्भ होता है और 'स्वाहा'के हकारपर उसकी समाप्ति। जलमें खड़ा होकर इस मन्त्रका सौ बार जप करना चाहिये। इससे करोड़ों पातक और उपपातक नष्ट हो जाते हैं तथा जप करनेवाले पुरुष ब्रह्महत्या आदि पापोंसे मुक्त होकर मेरे लोकको प्राप्त होते हैं। वह मन्त्र इस प्रकार है—'ॐ अग्नेर्वाक्पुसि यजुर्वेदेन जुष्टा सोम पिब स्वाहा'।

इसी प्रकार विष्णु मन्त्र, माहेश्वर महामन्त्र, देवीमन्त्र, सूर्यमन्त्र, गणेश-मन्त्र तथा अन्यान्य देवताओंके मन्त्रोंका जप करनेसे भी मनुष्य पापरहित होकर उत्तम गति पाता है। जिस किसी कुलमें उत्पन्न हुआ ब्राह्मण भी यदि जपपरायण हो तो वह साक्षात् ब्रह्मस्वरूप है, उसका यत्नपूर्वक पूजन करना चाहिये। ऐसे ब्राह्मणको प्रत्येक पर्वपर विधिपूर्वक दान देना चाहिये। इससे दाताको करोड़ों जन्मोंतक अक्षय पुण्यकी प्राप्ति होती है। जो ब्राह्मण स्वाध्यायपरायण होकर स्वयं पढ़ता, दूसरोंको पढ़ाता और संसारमें द्विजातियोंके यहाँ, धर्म, सदाचार, श्रुति, स्मृति, पुराण संहिता तथा धर्मसंहिताका श्रवण कराता है, वह इस पृथ्वीपर भगवान् श्रीविष्णुके समान है। मनुष्यों और देवताओंका भी पूज्य है। उस तीर्थस्वरूप और निष्पाप ब्राह्मणका बल अक्षय होता है। उसका आदर पूर्वक पूजन करके मनुष्य श्रीविष्णुधामको प्राप्त होता है। जो द्विज गायत्रीके प्रत्येक अक्षरका उसके देवतासहित अपने शरीरमें न्यास करके प्रतिदिन प्राणायामपूर्वक उसका जप करता है, वह करोड़ों जन्मोंके किये हुए सम्पूर्ण पापोंसे छुटकारा पा जाता है। इतना ही नहीं, वह ब्रह्मपदको प्राप्त होकर प्रकृतिसे परे हो जाता है, इसलिये नारद! तुम प्राणायामसहित गायत्रीका जप किया करो।

नारदजीने पूछा—ब्रह्मन्! प्राणायामका क्या स्वरूप है, गायत्रीके प्रत्येक अक्षरके देवता कौन-कौन हैं तथा शरीरके किन किन अवयवोंमें उनका न्यास किया जाता है? तात! इन सभी बातोंका क्रमशः वर्णन कीजिये।

ब्रह्माजी बोले—प्रत्येक देहधारीके गुदादेशमें अपान और हृदयमें प्राण रहता है, इसलिये गुदाको सङ्कुचित करके पूरक क्रियाके द्वारा अपान वायुको प्राणवायुके साथ संयुक्त करे। तत्पश्चात् वायुको रोककर कुम्भक करे [और उसके बाद रेचककी क्रियाद्वारा वायुको बाहर निकाले। पूरक आदि प्रत्येक क्रियाके साथ तीन-तीन बार प्राणायाम-मन्त्रका जप करना चाहिये]। द्विजको तीन प्राणायाम करके गायत्रीका जप करना उचित है। इस प्रकार जो जप करता है, उसके महापातकोंकी राशि भस्म हो जाती है। तथा दूसरे-दूसरे पातक भी एक ही बारके मन्त्रोच्चारणसे नष्ट हो जाते हैं। जो प्रत्येक वर्णके देवताका ज्ञान प्राप्त करके अपने शरीरमें उसका न्यास करता है, वह ब्रह्मभावको प्राप्त होता है, उसे मिलनेवाले फलका वर्णन नहीं किया जा सकता। बेटा! प्रत्येक अक्षरके जो-जो देवता हैं, उनका

गुरुदेवातिथेर्भक्तः पित्रो शुश्रूषणे रतः।
परदारे मनो यस्य कदाचिन्नैव मोदते॥
पुराणकथको नित्यं धर्माख्यानस्य सन्ततिः।
अस्यैव दर्शनान्नित्यमश्वमेधादिजं फलम्॥
(४१। ११४–१८)

वर्णन करता हूँ, सुनो। [इन अक्षरोंका जप करनेसे द्विजको फिर जन्म नहीं लेना पड़ता]। प्रथम अक्षरके देवता अग्नि, दूसरेके वायु, तीसरेके सूर्य, चौथेके वियत् (आकाश), पाँचवेंके यमराज, छठेके वरुण, सातवेंके बृहस्पति, आठवेंके पर्जन्य, नवेंके इन्द्र, दसवेंके गन्धर्व, ग्यारहवेंके पूषा, बारहवेंके मित्र, तेरहवेंके त्वष्टा, चौदहवेंके वसु, पंद्रहवेंके मरुद्गण, सोलहवेंके सोम, सतरहवेंके अङ्गिरा, अट्ठारहवेंके विश्वेदेव, उन्नीसवेंके अश्विनीकुमार, बीसवेंके प्रजापति, इक्कीसवेंके सम्पूर्ण देवता, बाईसवेंके रुद्र, तेईसवेंके ब्रह्मा और चौबीसवेंके श्रीविष्णु हैं। इस प्रकार चौबीस अक्षरोंके ये चौबीस देवता माने गये हैं।* गायत्री मन्त्रके इन देवताओंका ज्ञान प्राप्त कर लेनेपर सम्पूर्ण वाङ्मय (वाणीके विषय) का बोध हो जाता है। जो इन्हें जानता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर ब्रह्मपदको प्राप्त होता है।

विज्ञ पुरुषको चाहिये कि अपने शरीरके पैरसे लेकर सिरतक चौबीस स्थानोंमें पहले गायत्रीके अक्षरोंका न्यास करे। 'तत्'का पैरके अँगूठेमें, 'स' का गुल्फ (घुट्ठी) में, 'वि'का दोनों पिंडलियोंमें, 'तु'का घुटनोंमें, 'र्व'का जाँघोंमें, 'रे'का गुदामें, 'ण्य'का अण्डकोषमें, 'म्'का कटिभागमें, 'भ'का नाभिमण्डलमें, 'र्गो'का उदरमें, 'दे'का दोनों स्तनोंमें, 'व'का हृदयमें, 'स्य'का दोनों हाथोंमें, 'धी'का मुँहमें, 'म'का तालुमें, 'हि'का नासिकाके अग्रभागमें, 'धि'का दोनों नेत्रोंमें, 'यो' का दोनों भौंहोंमें, 'यो'का ललाटमें, 'नः'का मुखके पूर्वभागमें, 'प्र'का दक्षिण भागमें, 'चो'का पश्चिम भागमें और 'द'का मुखके उत्तर भागमें न्यास करे। फिर 'यात्'का मस्तकमें न्यास करके सर्वव्यापी स्वरूपसे स्थित हो जाय। धर्मात्मा पुरुष इन अक्षरोंका न्यास करके ब्रह्मा, विष्णु और शिवका स्वरूप हो जाता है। वह महायोगी और महाज्ञानी होकर परम शान्तिको प्राप्त होता है।

नारद! अब सन्ध्या-कालके लिये एक और न्यास बतलाता हूँ, उसका भी यथार्थ वर्णन सुनो। 'ॐ भूः' इसका हृदयमें न्यास करके 'ॐ भुवः'का सिरमें न्यास करे। फिर 'ॐ स्वः'का शिखामें', 'ॐतत्सवितुर्वरेण्यम्'का समस्त शरीरमें, 'ॐ भर्गो देवस्य धीमहि' इसका नेत्रोंमें तथा 'ॐ धियो यो नः प्रचोदयात्'का दोनों हाथोंमें न्यास करे। तत्पश्चात् 'ॐ आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम्' का उच्चारण करके जल-स्पर्श मात्र करनेसे द्विज पापसे शुद्ध होकर श्रीहरिको प्राप्त होता है।

इस प्रकार व्याहृति और बारह ॐकारोंसे युक्त गायत्रीका सन्ध्याके समय कुम्भक क्रियाके साथ तीन बार जप करके सूर्योपस्थानकालमें जो चौबीस अक्षरोंकी गायत्रीका जप करता है, वह महाविद्याका अधीश्वर होता है और ब्रह्मपदको प्राप्त करता है।

व्याहृतियोंसहित इस गायत्रीका पुनः न्यास करना चाहिये। ऐसा करनेसे द्विज सब पापोंसे मुक्त होकर श्रीविष्णुके सायुज्यको प्राप्त होता है। न्यास-विधि यह है—'ॐ भूः पादाभ्याम्' का उच्चारण करके दोनों चरणोंका स्पर्श करे। इसी प्रकार 'ॐ भुवः जानुभ्याम्' कहकर दोनों घुटनोंका, 'ॐ स्वः कट्याम्' बोलकर कटिभागका, 'ॐ महः नाभौ' का उच्चारण करके नाभिस्थानका, 'ॐ जनः हृदये' कहकर हृदयका, 'ॐ तपः करयोः' बोलकर दोनों हाथोंका, 'ॐ सत्यं ललाटे' का उच्चारण करके ललाटका तथा गायत्री-मन्त्रका पाठ करके शिखाका स्पर्श करना चाहिये।

सब बीजोंसे युक्त इस गायत्रीको जो जानता है, वह मानो चारों वेदोंका, योगका तथा तीनों प्रकारके (वाचिक, उपांशु और मानसिक) जपका ज्ञान रखता है। जो इस गायत्रीको नहीं जानता, वह शूद्रसे भी अधम माना

* आग्नेयं प्रथमं ज्ञेयं वायव्यं तु द्वितीयकम्।
तृतीयं सूर्यदैवत्यं चतुर्थं वैयतं तथा॥
पञ्चमं यमदैवत्यं वारुणं षष्ठमुच्यते।
सप्तमं बार्हस्पत्यं तु पार्जन्यं चाष्टमं विदुः॥
ऐन्द्रं च नवमं ज्ञेयं गान्धर्वं दशमं तथा।
पौष्णमेकादशं विद्धि मैत्रं द्वादशकं स्मृतम्॥
त्वाष्ट्रं त्रयोदशं ज्ञेयं वासवं तु चतुर्दशम्।
मारुतं पञ्चदशकं सौम्यं षोडशकं स्मृतम्॥
आङ्गिरसं सप्तदशं वैश्वदेवमतः परम्।
आश्विनं चैकोनविंशं प्राजापत्यं तु विंशकम्॥
सर्वदेवमयं ज्ञेयमेकविंशकमक्षरम्।
रौद्रं द्वाविंशकं ज्ञेयं ब्राह्मं ज्ञेयमतः परम्॥
वैष्णवं तु चतुर्विंशमेता अक्षरदेवताः।
(४३ । १६९—१७५)

१. ॐ भूरिति हृदये। २. ॐ भुवः शिरसि। ३. ॐ स्वः शिखायै। ४. ॐ तत्सवितुर्वरेण्यमिति कलेवरे। ५. ॐ भर्गो देवस्य धीमहीति नेत्रयोः। ६. ॐ धियो यो नः प्रचोदयादिति करयोः। इन छः वाक्योंको क्रमशः पढ़कर सिर आदि छः अङ्गोंका स्पर्श करना चाहिये।

गया है। उस अपवित्र ब्राह्मणको पितरोंके निमित्त किये हुए पार्वण श्राद्धका दान नहीं देना चाहिये। उसे कोई भी तीर्थ-स्नानका फल नहीं देता। उसका किया हुआ समस्त शुभ कर्म निष्फल हो जाता है। उसकी विद्या, धन सम्पत्ति, उत्तम जन्म, द्विजत्व तथा जिस पुण्यके कारण उसे यह सब कुछ मिला है, वह भी व्यर्थ होता है। ठीक उसी तरह, जैसे कोई पवित्र पुष्प किसी गंदे स्थानमें पड़ जानेपर काममें लेनेयोग्य नहीं रह जाता। मैंने पूर्वकाल में चारों वेद और गायत्रीकी तुलना की थी, उस समय चारों वेदोंकी अपेक्षा गायत्री ही गुरुतर सिद्ध हुई, क्योंकि गायत्री मोक्ष देनेवाली मानी गयी है। गायत्री दस बार जपनेसे वर्तमान जन्मके, सौ बार जपनेसे पिछले जन्मके तथा एक हजार बार जपनेसे तीन युगोंके पाप नष्ट कर देती है।* जो सबेरे और शामको रुद्राक्षकी मालापर गायत्रीका जप करता है, वह निःसन्देह चारों वेदोंका फल प्राप्त करता है। जो द्विज एक वर्षतक तीनों समय गायत्रीका जप करता है, उसके करोड़ों जन्मोंके उपार्जित पाप नष्ट हो जाते हैं। गायत्रीके उच्चारणमात्रसे पापराशिसे छुटकारा मिल जाता है—मनुष्य शुद्ध हो जाता है। तथा जो द्विजश्रेष्ठ प्रतिदिन गायत्रीका जप करता है, उसे स्वर्ग और मोक्ष दोनों प्राप्त होते हैं।

जो नित्यप्रति वासुदेवमन्त्रका जप और भगवान् श्रीविष्णुके चरणोंमें प्रणाम करता है, वह मोक्षका अधिकारी हो जाता है। जिसके मुखमें भगवान् वासुदेवके स्तोत्र और उनकी उत्तम कथा रहती है, उसके शरीरमें पापका लेशमात्र भी नहीं रहता। वेद शास्त्रोंका अवगाहन करने—उनके विचारमें संलग्न रहनेसे गङ्गा स्नानके समान फल होता है। लोकमें धार्मिक ग्रन्थोंका पाठ करनेवाले मनुष्योंको करोड़ यज्ञोंका फल मिलता है। नारद! मुझमें ब्राह्मणोंके गुणोंका पूरा-पूरा वर्णन करनेकी शक्ति नहीं है। ब्राह्मणके सिवा, दूसरा कौन देहधारी है, जो विश्वस्वरूप हो। ब्राह्मण श्रीहरिका मूर्तिमान् विग्रह है। उसके शापसे विनाश होता है और वरदानसे आयु, विद्या, यश, धन तथा सब प्रकारकी सम्पत्तियाँ प्राप्त होती हैं। ब्राह्मणोंके ही प्रसादसे भगवान् श्रीविष्णु सदा ब्रह्मण्य कहलाते हैं। जो ब्रह्मण्य (ब्राह्मणोंके प्रति अनुराग रखनेवाले) देव हैं, गौ और ब्राह्मणोंके हितकारी हैं तथा संसारकी भलाई करनेवाले हैं, उन गोविन्द श्रीकृष्णको बारबार नमस्कार है।† जो सदा इस मन्त्रसे श्रीहरिका पूजन करता है, उसके ऊपर भगवान् प्रसन्न होते हैं तथा वह श्रीविष्णुका सायुज्य प्राप्त करता है। जो इस धर्मस्वरूप पवित्र आख्यानका श्रवण करता है, उसके जन्म-जन्मान्तरोंके किये हुए पाप नष्ट हो जाते हैं। जो इसे पढ़ता, पढ़ाता तथा दूसरे लोगोंको उपदेश करता है, उसे पुनः इस संसारमें नहीं आना पड़ता। वह इस लोकमें धन, धान्य, राजोचित भोग, आरोग्य, उत्तम पुत्र तथा शुभ कीर्ति प्राप्त करता है।

अधम ब्राह्मणोंका वर्णन, पतित विप्रकी कथा और गरुड़जीका चरित्र

नारदजीने कहा—देवेश्वर! आपकी कृपासे मुझे परम पवित्र उत्तम ब्राह्मणका परिचय तो मिल गया, अब जिस प्रकार मैं कर्मसे अधम ब्राह्मणको भी पहचान सकूँ, वह बात बताइये।

ब्रह्माजी बोले—बेटा! जो दस प्रकारके स्नान, सन्ध्योपासन और तर्पण आदि नहीं करता, जिसमें इन्द्रिय संयमका अभाव है, वही अधम ब्राह्मण है। जो देवताओंकी पूजा, व्रत, वेद विद्या, सत्य, शौच, योग, ज्ञान तथा अग्निहोत्रका त्यागी है, वह भी ब्राह्मणोंमें अधम ही है। महर्षियोंने ब्राह्मणोंके लिये पाँच स्नान बताये हैं—आग्नेय, वारुण, ब्राह्म, वायव्य और दिव्य। सम्पूर्ण शरीरमें भस्म लगाना आग्नेय स्नान है; जलसे जो स्नान किया जाता है, उसे वारुण स्नान कहते हैं; 'आपो हि ष्ठा०' इत्यादि ऋचाओंसे जो अपने ऊपर अभिषेक किया जाता है, वह ब्राह्म स्नान है। शरीरपर हवासे उड़कर जो गौके चरणोंकी धूलि पड़ती है, उसे वायव्य स्नान माना गया है तथा धूप रहते हुए जो आकाशसे जलकी वर्षा होती है, उससे नहानेको दिव्य स्नान कहते हैं। उपर्युक्त वस्तुओंके द्वारा मन्त्रपाठपूर्वक स्नान करनेसे तीर्थ स्नानका फल प्राप्त होता है। तुलसीके पत्तेसे लगा हुआ जल,

* चतुर्वेदाश्च गायत्री पुरा वै तुलिता मया॥ चतुर्वेदात् परा गुर्वी गायत्री मोक्षदा स्मृता।
दशभिर्जन्मजनितं शतेन च पुराकृतम्॥ त्रियुगं तु सहस्रेण गायत्री हन्ति किल्बिषम्। (४३। १९२-१९४)

† नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च। जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः॥ (४३। २०३)

शालग्राम-शिलाको नहलाया हुआ जल, गौओंके सींगसे स्पर्श कराया हुआ जल, ब्राह्मणका चरणोदक तथा मुख्य-मुख्य गुरुजनोंका चरणोदक—ये पवित्रसे भी पवित्र माने गये हैं। ऐसा स्मृतियोंका कथन है। [इन पाँच तरहके जलोंसे मस्तकपर अभिषेक करना पुनः पाँच प्रकारका स्नान है—इस तरह पहलेके पाँच स्नानोंके साथ मिलकर यह दस प्रकारका स्नान माना गया है।] त्याग, तीर्थ-स्नान, यज्ञ, व्रत और होम आदिके द्वारा जो फल मिलता है, वही फल धीर पुरुष उपर्युक्त स्नानोंसे प्राप्त कर लेता है।

जो प्रतिदिन पितरोंका तर्पण नहीं करता, वह पितृघातक है, उसे नरकमें जाना पड़ता है। सन्ध्या नहीं करनेवाला द्विज ब्रह्महत्यारा है। जो ब्राह्मण मन्त्र, व्रत, वेद, विद्या, उत्तम गुण, यज्ञ और दान आदिका त्याग कर देता है, वह अधमसे भी अधम है। मन्त्र और संस्कारसे हीन, शौच और संयमसे रहित, बलिवैश्वदेव किये बिना ही अन्न भोजन करनेवाले, दुरात्मा, चोर, मूर्ख, सब प्रकारके धर्मोंसे शून्य, कुमार्गगामी, श्राद्ध आदि कर्म न करनेवाले, गुरु-सेवासे दूर रहनेवाले, मन्त्रज्ञानसे वञ्चित तथा धार्मिक मर्यादा भङ्ग करनेवाले—ये सभी ब्राह्मण अधमसे भी अधम हैं। उन दुष्टोंसे बात भी नहीं करनी चाहिये। वे सब-के-सब नरकगामी होते हैं। उनका आचरण दूषित होता है; अतएव वे अपवित्र और अपूज्य होते हैं। जो द्विज तलवारसे जीविका चलाते, दासवृत्ति स्वीकार करते, बैलोंको सवारीमें जोतते, बढ़ईका काम करके जीवन-निर्वाह करते, ऋण देकर ब्याज लेते, बालिका और वेश्याओंके साथ व्यभिचार करते, चाण्डालोंके आश्रयमें रहते, दूसरोंके उपकारको नहीं मानते और गुरुकी हत्या करते हैं, वे सबसे अधम माने गये हैं। इनके सिवा दूसरे भी जो आचारहीन, पाखण्डी, धर्मकी निन्दा करनेवाले तथा भिन्न-भिन्न देवताओंपर दोषारोपण करनेवाले हैं, वे सभी द्विज ब्रह्मद्रोही हैं। नारद! अधम होनेपर भी ब्राह्मणका कभी वध नहीं करना चाहिये; क्योंकि उसको मारनेसे मनुष्यको ब्रह्महत्याका पाप लगता है।

नारदजीने पूछा—सम्पूर्ण लोकोंके पितामह! यदि ब्राह्मण ऐसे-ऐसे दुष्कर्म करनेके पश्चात् फिर पुण्यका अनुष्ठान करे तो वह किस गतिको प्राप्त होता है?

ब्रह्माजीने कहा—वत्स! जो सारे पाप करनेके पश्चात् भी इन्द्रियोंको वशमें कर लेता है, वह उन पापोंसे छुटकारा पा जाता है तथा पुनः ब्राह्मणत्व प्राप्त करनेके योग्य बन जाता है। इस विषयमें एक प्राचीन कथा सुनो, जो बड़ी सुन्दर और विचित्र है। पूर्वकालमें किसी ब्राह्मणका एक नौजवान पुत्र था। उसने जवानीकी उमंगमें मोहके वशीभूत होकर एक बार चाण्डालीके साथ समागम किया। चाण्डालीके गर्भसे उसने अनेकों पुत्र और कन्याएँ उत्पन्न कीं तथा अपना कुटुम्ब छोड़कर वह चिरकालतक उसीके घरमें रहा। किन्तु घृणाके कारण न तो वह दूसरा कोई अभक्ष्य पदार्थ खाता और न कभी शराब ही पीता था। चाण्डाली उससे सदा ही कहा करती थी कि 'ये सब चीजें खाओ और शराब पियो।' किन्तु वह उसे यही उत्तर देता—'प्रिये! तुझे ऐसी गंदी बात नहीं कहनी चाहिये। शराबका तो नाम सुनने मात्रसे मुझे ओकाई आती है।'

एक दिनकी बात है—वह थका-माँदा होनेके कारण दिनमें भी घरपर ही सो रहा था। चाण्डालीने शराब उठायी और हँसकर उसके मुँहमें डाल दी। मदिराकी बूँद पड़ते ही उस ब्राह्मणके मुँहसे अग्नि प्रज्वलित हो उठी; उसकी ज्वालाने फैलकर कुटुम्बसहित उस चाण्डालीको जलाकर भस्म कर दिया तथा उसके घरको भी फूँक डाला। उस समय वह ब्राह्मण 'हाय! हाय!' करता हुआ उठा और बिलख-बिलखकर रोने लगा। विलापके बाद उसने पूछना आरम्भ किया—'कहाँसे आग प्रकट हुई और कैसे मेरा घर जला?' तब आकाशवाणीने उससे कहा—'तुम्हारे ब्रह्मतेजने चाण्डालीके घरमें आग लगायी है।' इसके बाद उसने ब्राह्मणके मुँहमें शराब डालने आदिका ठीक-ठीक वृत्तान्त कह सुनाया। यह सब सुनकर ब्राह्मणको बड़ा विस्मय हुआ। उसने इस विषयपर भलीभाँति विचार करके अपने-आपको उपदेश देनेके लिये यह बात कही—'विप्र! तेरा तेज नष्ट हो गया; अब तू पुनः धर्मका आचरण कर।' तदनन्तर उस ब्राह्मणने बड़े-बड़े मुनियोंके पास जाकर उनसे अपने हितकी बात पूछी। मुनियोंने कहा—तू दान-धर्मका आचरण कर। ब्राह्मण नियम और व्रतोंके द्वारा सब पापोंसे छूट जाते हैं। अतः तू भी अपनी पवित्रताके लिये शास्त्रोक्त नियमोंका आचरण कर। चान्द्रायण, कृच्छ्र, तप्तकृच्छ्र, प्राजापत्य तथा दिव्य व्रतोंका बारंबार अनुष्ठान कर। ये व्रत समस्त दोषोंका तत्काल शोषण कर लेते हैं। तू पवित्र तीर्थोंमें जा और वहाँ भगवान् श्रीविष्णुकी आराधना कर। ऐसा करनेसे तेरे सारे पाप शीघ्र ही नष्ट हो जायँगे। पुण्यतीर्थों और भगवान् श्रीगोविन्दके

प्रभावसे पापोंका क्षय होगा और तू ब्रह्मत्वको प्राप्त होगा। तात! इस विषयमें हम तुझे एक प्राचीन इतिहास सुनाते हैं। पूर्वकालमें विनतानन्दन गरुड जब अंडा फोड़कर बाहर निकले, तब नवजात शिशुकी अवस्थामें ही उन्हें आहार ग्रहण करनेकी इच्छा हुई। वे भूखसे व्याकुल होकर मातासे बोले—'माँ! मुझे कुछ खानेको दो।'

पर्वतके समान शरीरवाले महाबली गरुड़को देखकर परम सौभाग्यवती माता विनताके मनमें बड़ा हर्ष हुआ। वे अपने पुत्रसे बोलीं—'बेटा! मुझमें तेरी भूख मिटानेकी शक्ति नहीं है। तेरे पिता धर्मात्मा कश्यप साक्षात् ब्रह्माजीके समान तेजस्वी हैं। वे सोन नदीके उत्तर तटपर तपस्या करते हैं। वहीं जा और अपने पितासे इच्छानुसार भोजनके विषयमें परामर्श कर। तात! उनके उपदेशसे तेरी भूख शान्त हो जायगी।'

ऋषि कहते हैं—माताकी बात सुनकर मनके समान वेगवाले महाबली गरुड़ एक ही मुहूर्तमें पिताके समीप जा पहुँचे। वहाँ प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी अपने पिता मुनिवर कश्यपजीको देखकर उन्हें मस्तक झुका प्रणाम किया और इस प्रकार कहा—'प्रभो! मैं आपका पुत्र हूँ और आहारकी इच्छासे आपके पास आया हूँ। भूख बहुत सता रही है, कृपा करके मुझे कुछ भोजन दीजिये।'

कश्यपजीने कहा—वत्स! उधर समुद्रके किनारे विशाल हाथी और कछुआ रहते हैं। वे दोनों बहुत बड़े जीव हैं। उनमें अपार बल है। वे एक दूसरेको मारनेकी घातमें लगे हुए हैं। तू शीघ्र ही उनके पास जा, उनसे तेरी भूख मिट सकती है।

पिताकी बात सुनकर महान् वेगशाली और विशाल आकारवाले गरुड़ उड़कर वहाँ गये तथा उन दोनोंको नखोंसे विदीर्ण करके चोंच और पञ्जोंमें लेकर विद्युत्‌के समान वेगसे आकाशमें उड़ चले। उस समय मन्दराचल आदि पर्वत उन्हें धारण नहीं कर पाते थे। तब वे वायुवेगसे दो लाख योजन आगे जाकर एक जामुनके वृक्षकी बहुत बड़ी शाखापर बैठे। उनके पञ्जा रखते ही वह शाखा सहसा टूट पड़ी। उसे गिरते देख महाबली पक्षिराज गरुड़ने गौ और ब्राह्मणोंके वधके भयसे तुरत पकड़ लिया और फिर बड़े वेगसे आकाशमें उड़ने लगे। उन्हें बहुत देरसे आकाशमें मँड़राते देख भगवान् श्रीविष्णु मनुष्यका रूप धारण कर उनके पास जा इस प्रकार बोले—'पक्षिराज! तुम कौन हो और किसलिये यह विशाल शाखा तथा ये महान् हाथी एवं कछुआ लिये आकाशमें घूम रहे हो?' उनके इस प्रकार पूछनेपर पक्षिराजने नररूपधारी श्रीनारायणसे कहा—'महाबाहो! मैं गरुड़ हूँ। अपने कर्मके अनुसार मुझे पक्षी होना पड़ा है। मैं कश्यप मुनिका पुत्र हूँ और माता विनताके गर्भसे मेरा जन्म हुआ है। देखिये, इन बड़े-बड़े जीवोंको मैंने खानेके लिये पकड़ रखा है। वृक्ष और पर्वत—कोई भी मुझे धारण नहीं कर पाते। अनेकों योजन उड़नेके बाद मैं एक विशाल जामुनका वृक्ष देखकर इन दोनोंको खानेके लिये उसकी शाखापर बैठा था; किन्तु मेरे बैठते ही वह भी सहसा टूट गयी। अतः सहस्रों ब्राह्मणों और गौओंके वधके डरसे इसे भी लिये डोलता हूँ। अब मेरे मनमें बड़ा विषाद हो रहा है कि क्या करूँ, कहाँ जाऊँ और कौन मेरा वेग सहन करेगा।'

श्रीविष्णु बोले—अच्छा, मेरी बाँहपर बैठकर तुम इन दोनों—हाथी और कछुएको खाओ।

गरुड़ने कहा—बड़े-बड़े पर्वत भी मुझे धारण करनेमें असमर्थ हो रहे हैं; फिर तुम मुझ जैसे महाबली पक्षीको कैसे धारण कर सकोगे? भगवान् श्रीनारायणके सिवा दूसरा कौन है, जो मुझे धारण कर सके। तीनों लोकोंमें कौन ऐसा पुरुष है, जो मेरा भार सह लेगा।

श्रीविष्णु बोले—पक्षिश्रेष्ठ! बुद्धिमान् पुरुषको अपना कार्य सिद्ध करना चाहिये, अतः इस समय तुम अपना काम करो। कार्य हो जानेपर निश्चय ही मुझे जान लोगे।

गरुड़ने उन्हें महान् शक्तिसम्पन्न देख मन-ही-मन कुछ विचार किया, फिर 'एवमस्तु' कहकर वे उनकी विशाल भुजापर बैठे। गरुड़के वेगपूर्वक बैठनेपर भी उनकी भुजा काँपी नहीं। वहाँ बैठकर गरुड़ने उस शाखाको तो पर्वतके शिखरपर डाल दिया और हाथी तथा कछुएको भक्षण किया। तत्पश्चात् वे श्रीविष्णुसे बोले—'तुम कौन हो? इस समय तुम्हारा कौन-सा प्रिय कार्य करूँ?'

भगवान् श्रीविष्णुने कहा—मुझे नारायण समझो, मैं तुम्हारा प्रिय करनेके लिये यहाँ आया हूँ।

यह कहकर भगवान्‌ने उन्हें विश्वास दिलानेके लिये अपना रूप दिखाया। मेघके समान श्याम विग्रहपर पीताम्बर शोभा पा रहा था। चार भुजाओंके कारण उनकी झाँकी बड़ी मनोरम जान पड़ती थी। हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये सर्वदेवेश्वर श्रीहरिका दर्शन करके



गरुड़ने उन्हें प्रणाम किया और कहा—'पुरुषोत्तम ! बताइये, मैं आपका कौन-सा प्रिय कार्य करूँ ?'

श्रीविष्णु बोले—सखे ! तुम बड़े शूरवीर हो; अतः हर समय मेरा वाहन बने रहो।

यह सुनकर पक्षियोंमें श्रेष्ठ गरुड़ने भगवान्से कहा—'देवेश्वर ! आपका दर्शन करके मैं धन्य हुआ, मेरा जन्म सफल हो गया। प्रभो ! मैं पिता-मातासे आज्ञा लेकर आपके पास आऊँगा।' तब भगवान्ने प्रसन्न होकर कहा—'पक्षिराज ! तुम अजर-अमर बने रहो, किसी भी प्राणीसे तुम्हारा वध न हो। तुम्हारा कर्म और तेज मेरे समान हो। सर्वत्र तुम्हारी गति हो। निश्चय ही तुम्हें सब प्रकारके सुख प्राप्त हों। तुम्हारे मनमें जो-जो इच्छा हो, सब पूर्ण हो जाय। तुम्हें अपनी रुचिके अनुकूल यथेष्ट आहार बिना किसी कष्टके प्राप्त होता रहेगा। तुम शीघ्र ही अपनी माताको कष्टसे मुक्त करोगे।' ऐसा कहकर भगवान् श्रीविष्णु तत्काल अन्तर्धान हो गये। गरुड़ने भी अपने पिताके पास जाकर सारा वृत्तान्त कह सुनाया।

गरुड़का वृत्तान्त सुनकर उनके पिता महर्षि कश्यप मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुए और अपने पुत्रसे इस प्रकार बोले—'खगश्रेष्ठ ! मैं धन्य हूँ, तुम्हारी कल्याणमयी माता भी धन्य है। माताकी कोख तथा यह कुल, जिसमें तुम्हारे-जैसा पुत्र उत्पन्न हुआ—सभी धन्य हैं। जिसके कुलमें वैष्णव पुत्र उत्पन्न होता है; वह धन्य है, वह वैष्णव पुत्र पुरुषोंमें श्रेष्ठ है तथा अपने कुलका उद्धार करके श्रीविष्णुका सायुज्य प्राप्त करता है। जो प्रतिदिन श्रीविष्णुकी पूजा करता, श्रीविष्णुका ध्यान करता, उन्हींके यशको गाता, सदा उन्हींके मन्त्रको जपता, श्रीविष्णुके ही स्तोत्रका पाठ करता, उनका प्रसाद पाता और एकादशीके दिन उपवास करता है, वह सब पापोंका क्षय हो जानेसे निस्सन्देह मुक्त हो जाता है। जिसके हृदयमें सदा ही श्रीगोविन्द विराजते हैं, वह नरश्रेष्ठ विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है। जलमें, पवित्र स्थानमें, उत्तम पथपर, गौमें, ब्राह्मणमें, स्वर्गमें, ब्रह्माजीके भवनमें तथा पवित्र पुरुषके घरमें सदा ही भगवान् श्रीविष्णु विराजमान रहते हैं। इन सब स्थानोंमें जो भगवान्का जप और चिन्तन करता है, वह अपने पुण्यके द्वारा पुरुषोंमें श्रेष्ठ होता है और सब पापोंका क्षय हो जानेसे भगवान् श्रीविष्णुका किङ्कर होता है। जो श्रीविष्णुका सारूप्य प्राप्त कर ले, वही मानव संसारमें धन्य है। बड़े-बड़े देवता जिनकी पूजा करते हैं, जो इस जगत्के स्वामी, नित्य, अच्युत और अविनाशी हैं, वे भगवान् श्रीविष्णु जिसके ऊपर प्रसन्न हो जायँ, वही पुरुषोंमें श्रेष्ठ है। नाना प्रकारकी तपस्या तथा भाँति-भाँतिके धर्म और यज्ञोंका अनुष्ठान करके भी देवतालोग भगवान् श्रीविष्णुको नहीं पाते; किन्तु तुमने उन्हें प्राप्त कर लिया। [अतः तुम धन्य हो।] तुम्हारी माता सौतके द्वारा घोर संकटमें डाली गयी है; उसे छुड़ाओ। माताके दुःखका प्रतीकार करके देवेश्वर भगवान् श्रीविष्णुके पास जाना।'

इस प्रकार श्रीविष्णुसे महान् वरदान पा और पिताकी आज्ञा लेकर गरुड़ अपनी माताके पास गये और हर्षपूर्वक उन्हें प्रणाम करके सामने खड़े हो उन्होंने पूछा—'माँ ! बताओ, मैं तुम्हारा कौन-सा प्रिय कार्य करूँ ? कार्य करके मैं भगवान् विष्णुके पास जाऊँगा।' यह सुनकर सती विनताने गरुड़से कहा—'बेटा ! मुझपर महान् दुःख आ पड़ा है, तुम उसका निवारण करो। बहिन कद्रू मेरी सौत है। पूर्वकालमें उसने मुझे एक बातमें अन्यायपूर्वक हराकर दासी बना लिया। अब मैं उसकी दासी हो चुकी हूँ। तुम्हारे सिवा कौन मुझे इस दुःखसे छुटकारा दिलायेगा। कुलनन्दन ! जिस समय मैं उसे मुँहमाँगी वस्तु दे दूँगी, उसी समय दासीभावसे मेरी मुक्ति हो सकती है।'

गरुड़ने कहा—माँ ! शीघ्र ही उसके पास जाकर पूछो, वह क्या चाहती है ? मैं तुम्हारे कष्टका निवारण करूँगा।

तब दुःखिनी विनताने कद्रूसे कहा—'कल्याणी ! तुम अपनी अभीष्ट वस्तु बताओ, जिसे देकर मैं इस कष्टसे छुटकारा पा सकूँ।' यह सुनकर उस दुष्टाने कहा—'मुझे अमृत ला दो।' उसकी बात सुनकर विनता धीरे-धीरे लौटी और वेदसे दुखी होकर बोली—'तात ! वह तो अमृत माँग रही है, अब तुम क्या करोगे ?'

गरुड़ने कहा—'माँ ! तुम उदास न हो, मैं अमृत ले आऊँगा।' यों कहकर मनके समान वेगवान् पक्षी गरुड़ सागरसे जल ले आकाशमार्गसे चले। उनके पंखोंकी हवासे बहुत सी धूल भी उनके साथ-साथ उड़ती गयी। वह धूलि-राशि उनका साथ न छोड़ सकी। गन्तव्य स्थानपर पहुँचकर गरुड़ने अपनी चोंचमें रखे हुए जलसे वहाँके अग्निमय प्राकार (परकोटे)को बुझा दिया तथा अमृतकी रक्षाके लिये जो देवता नियुक्त थे, उनकी आँखोंमें पूर्वोक्त धूल भर गयी, जिससे वे गरुड़जीको देख नहीं पाते थे। बलवान् गरुड़ने रक्षकोंको मार गिराया और अमृत लेकर वे वहाँसे चल दिये। पक्षी-को अमृत लेकर आते देख ऐरावतपर चढ़े हुए इन्द्रने कहा—'अहो ! पक्षीका रूप धारण करनेवाले तुम कौन हो, जो बलपूर्वक अमृतको लिये जाते हो ! सम्पूर्ण देवताओंका अप्रिय करके यहाँसे जीवित कैसे जा सकते हो।'

गरुड़ने कहा—देवराज ! मैं तुम्हारा अमृत लिये जाता हूँ, तुम अपना पराक्रम दिखाओ।

यह सुनकर महाबाहु इन्द्रने गरुड़पर तीखे बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी, मानो मेरुगिरिके शिखरपर मेघ जलकी धाराएँ बरसा रहा हो। गरुड़ने अपने वज्रके समान तीखे नखोंसे ऐरावत हाथीको विदीर्ण कर डाला तथा मातलि-सहित रथ और चक्कोंको हानि पहुँचाकर अग्रगामी देवताओं-को भी घायल कर दिया। तब इन्द्रने कुपित होकर उनके ऊपर वज्रका प्रहार किया। वज्रकी चोट खाकर भी महापक्षी गरुड़ विचलित नहीं हुए। वे बड़े वेगसे भूतलकी ओर चले। तब इन्द्रने सब देवताओंके आगे स्थित होकर कहा—'निष्पाप गरुड़ ! यदि तुम नागमाताको इस समय अमृत दे दोगे तो सारे साँप अमर हो जायँगे; अतः यदि तुम्हारी सम्मति हो तो मैं इस अमृतको वहाँसे हर लाऊँगा।'

गरुड़ बोले—मेरी साध्वी माता विनता दासीभावके कारण बहुत दुखी है। जिस समय वह दासीपनसे मुक्त हो जाय और सब लोग इस बातको जान लें, उस समय तुम अमृतको हर ले आना।

यों कहकर महाबली गरुड़ माताके पास जा इस प्रकार बोले—'माँ ! मैं अमृत ले आया हूँ, इसे नागमाताको दे दो।' अमृतसहित पुत्रको आया देख विनताका हृदय हर्षसे खिल उठा। उसने कद्रूको बुलाकर अमृत दे दिया और स्वयं दासीभावसे मुक्त हो गयी। इसी बीचमें इन्द्रने सहसा पहुँचकर अमृतका घड़ा चुरा लिया और वहाँ विषका पात्र रख दिया। उन्हें ऐसा करते कोई देख न सका। कद्रूका मन बहुत प्रसन्न था। उसने पुत्रोंको वेगपूर्वक बुलाया और उनके मुखमें अमृत-जैसा दिखायी देनेवाला विष दे दिया। नागमाताने पुत्रोंसे कहा—तुम्हारे कुलमें होनेवाले सभी सर्पोंके मुखमें ये अमृतकी बूँदें नित्य निरन्तर उत्पन्न होती रहें तथा तुमलोग इनसे सदा सन्तुष्ट रहो। इसके बाद गरुड़ अपने पिता-मातासे वार्तालाप करके देवताओंकी पूजा कर अविनाशी भगवान् श्रीविष्णुके पास चले गये। जो गरुड़के इस उत्तम चरित्रका पाठ या श्रवण करता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर देवलोकमें प्रतिष्ठित होता है।

ब्रह्माजी कहते हैं—ऋषियोंके मुखसे यह उपदेश और गरुड़का प्रसंग सुनकर वह पतित ब्राह्मण नाना प्रकारके पुण्य-कर्मोंका अनुष्ठान करके पुनः ब्राह्मणत्वको प्राप्त हुआ और तीव्र तपस्या करके स्वर्गलोकमें चला गया। सदाचारी मनुष्यका पाप प्रतिदिन क्षीण होता है और दुराचारीका पुण्य सदा नष्ट होता रहता है। अनाचारसे पतित हुआ ब्राह्मण भी यदि फिर सदाचारका सेवन करे तो वह देवत्वको प्राप्त होता है। अतः द्विज प्राणोंके कण्ठगत होनेपर भी सदाचार-का त्याग नहीं करते। नारद ! तुम भी मन, वाणी, शरीर और क्रियाद्वारा सदाचारका पालन करो।

ब्राह्मणोंके जीविकोपयोगी कर्म और उनका महत्त्व तथा गौओंकी महिमा और गोदानका फल

नारदजीने पूछा—प्रभो ! उत्तम ब्राह्मणोंकी पूजा करके तो सब लोग श्रेष्ठ गति प्राप्त करते हैं; किन्तु जो उन्हें कष्ट पहुँचाते हैं, उनकी क्या गति होती है ?

ब्रह्माजी बोले—क्षुधासे संतप्त हुए उत्तम ब्राह्मणोंका जो लोग अपनी शक्तिके अनुसार भक्तिपूर्वक सत्कार नहीं करते, वे नरकमें पड़ते हैं। जो क्रोधपूर्वक कठोर शब्दोंमें

ब्राह्मणकी निन्दा करके उसे द्वारसे हटा देते हैं, वे अत्यन्त घोर महारौरव एवं कृच्छ्र नरकमें पड़ते हैं तथा नरकसे निकलनेपर कीड़े होते हैं। उससे छूटनेपर चाण्डालयोनिमें जन्म लेते हैं। फिर रोगी एवं दरिद्र होकर भूखसे पीड़ित होते हैं। अतः भूखसे पीड़ित हो घरपर आये हुए ब्राह्मणका कभी अपमान नहीं करना चाहिये। जो देवता, अग्नि और ब्राह्मणके लिये 'नहीं दूँगा' ऐसा वचन कहता है, वह सौ बार नीचेकी योनियोंमें जन्म लेकर अन्तमें चाण्डाल होता है। जो लात उठाकर ब्राह्मण, गौ, पिता-माता और गुरुको मारता है, उसका रौरव नरकमें वास निश्चित है; वहाँसे कभी उसका उद्धार नहीं होता। यदि पुण्यवश जन्म हो भी जाय तो वह पङ्गु होता है। साथ ही अत्यन्त दीन, विषादग्रस्त और दुःख-शोकसे पीड़ित रहता है। इस प्रकार तीन जन्मोंतक कष्ट भोगनेके बाद ही उसका उद्धार होता है। जो पुरुष मुक्कों, तमाचों और कीलोंसे ब्राह्मणको मारता है, वह एक कल्पतक तापन और रौरव नामक घोर नरकमें निवास करता है और पुनः जन्म लेनेपर कुत्ता होता है। उसके बाद चाण्डाल-योनिमें जन्म लेकर दरिद्र और उदरशूलसे पीड़ित होता है। माता, पिता, ब्राह्मण, स्नातक, तपस्वी और गुरुजनोंको क्रोधपूर्वक मारकर मनुष्य दीर्घकालतक कुम्भीपाक नरकमें पड़ा रहता है। इसके बाद वह कीट-योनिमें जन्म लेता है। बेटा नारद! जो ब्राह्मणोंके विरुद्ध कठोर वचन बोलता है, उसके शरीरमें आठ प्रकारकी कोढ़ होती है—खुजली, दाद, मण्डल (चकत्ता), शुक्ति (सफेदी), सिध्म (सेहुँआ), काली कोढ़, सफेद कोढ़ और तरुण कुष्ठ। इनमें काली कोढ़, सफेद कोढ़ और अत्यन्त दारुण तरुण कुष्ठ—ये तीन महा-कुष्ठ माने गये हैं। जो जान-बूझकर महापातकमें प्रवृत्त होते हैं अथवा महापातकी पुरुषोंका सङ्ग करते हैं अथवा अतिपातकका आचरण करते हैं, उनके शरीरमें ये तीनों प्रकारके कुष्ठ होते हैं। संसर्गसे अथवा परस्पर सम्बन्ध होनेसे मनुष्योंमें इस रोगका संक्रमण होता है। इसलिये विवेकी पुरुष कोढ़ीसे दूर ही रहे। उसका स्पर्श हो जानेपर तुरंत स्नान कर ले। पतित, कोढ़ी, चाण्डाल, गोभक्षी, कुत्ता, रजस्वला स्त्री और भीलका स्पर्श हो जानेपर तत्काल स्नान करना चाहिये।

जो ब्राह्मणकी न्यायोपार्जित जीविका तथा उसके धनका अपहरण करते हैं, वे अक्षय नरकमें पड़ते हैं। जो चुगलखोर मनुष्य ब्राह्मणोंका छिद्र ढूँढ़ा करता है, उसे देखकर या स्पर्श करके वस्त्रसहित जलमें गोता लगाना चाहिये। ब्राह्मणके धनका यदि कोई प्रेमसे उपभोग कर ले, तो भी वह उसकी सात पीढ़ियोंतकको जला डालता है। और जो पराक्रमपूर्वक छीनकर उसका उपभोग करता है, वह तो दस पीढ़ी पहले और दस पीढ़ी पीछेतकके पुरुषोंको नष्ट करता है। विषको विष नहीं कहते, ब्राह्मणका धन ही विष कहलाता है। विष तो केवल उसके खानेवालेको ही मारता है, किन्तु ब्राह्मणका धन पुत्र-पौत्रोंका भी नाश कर डालता है। जो मोहवश माता, ब्राह्मणी अथवा गुरुकी स्त्रीके साथ समागम करता है, वह घोर रौरव नरकमें पड़ता है। वहाँसे पुनः मनुष्य-योनिमें आना कठिन होता है।

नारदजीने पूछा—पिताजी! सभी ब्राह्मणोंकी हत्यासे बराबर ही पाप लगता है अथवा किसीमें कुछ अधिक या कम भी? यदि न्यूनाधिक होता है तो क्यों? इसको यथार्थ-रूपसे बताइये।

ब्रह्माजीने कहा—बेटा! ब्रह्महत्याका जो पाप बताया गया है, वह किसी भी ब्राह्मणका वध करनेपर अवश्य लागू होता है। ब्रह्महत्यारा घोर नरकमें पड़ता है। इस विषयमें कुछ और भी कहना है, उसे सुनो। वेद-शास्त्रोंके ज्ञाता, जितेन्द्रिय एवं श्रोत्रिय ब्राह्मणकी हत्या करनेपर करोड़ों ब्राह्मणोंके वधका दोष लगता है। शैव तथा वैष्णव ब्राह्मणको मारनेपर उससे भी दसगुना अधिक पाप होता है। अपने वंशके ब्राह्मणका वध करनेपर तो कभी नरकसे उद्धार होता ही नहीं। तीन वेदोंके ज्ञाता स्नातककी हत्या करनेपर जो पाप लगता है, उसकी कोई सीमा ही नहीं है। श्रोत्रिय, सदाचारी तथा तीर्थ-स्नान और वेदमन्त्रसे पवित्र ब्राह्मणके वधसे होनेवाले पापका भी कभी अन्त नहीं होता। यदि किसीके द्वारा अपनी बुराई होनेपर ब्राह्मण स्वयं भी शोकवश प्राण त्याग दे तो वह बुराई करने-वाला मनुष्य ब्रह्महत्यारा ही समझा जाता है। कठोर वचनों और कठोर वर्तावोंसे पीड़ित एवं ताडित हुआ ब्राह्मण जिस अत्याचारी मनुष्यका नाम ले-लेकर अपने प्राण त्यागता है, उसे सभी ऋषि, मुनि, देवता और ब्रह्मवेत्ताओंने ब्रह्महत्यारा बताया है। ऐसी हत्याका पाप उस देशके निवासियों तथा राजाको भी लगता है। अतः वे ब्रह्महत्याका पाप करके अपने पितरोंसहित नरकमें पकाये जाते हैं। विद्वान् पुरुषको चाहिये कि वह मरणपर्यन्त उपवास (अनशन) करनेवाले

ब्राह्मणको मनाये—उसे प्रसन्न करके अनशन तोड़नेका प्रयत्न करे। यदि किसी निर्दोष पुरुषको निमित्त बनाकर कोई ब्राह्मण अपने प्राण त्यागता है तो वह स्वयं ही ब्रह्महत्याके घोर पापका भागी होता है। जिसका नाम लेकर मरता है, वह नहीं। जो अधम ब्राह्मण अपने कुटुम्बीका वध करता है, उसको भी ब्रह्महत्याका पाप लगता है। यदि कोई आततायी ब्राह्मण युद्धके लिये अपने पास आ रहा हो और प्राण लेनेकी चेष्टा करता हो, तो उसे अवश्य मार डाले, इससे वह ब्रह्महत्याका भागी नहीं होता। जो घरमें आग लगाता है, दूसरेको जहर देता है, धन चुरा लेता है, सोते हुएको मार डालता है, तथा खेत और स्त्रीका अपहरण करता है—ये छः आततायी माने गये हैं।* संसारमें ब्राह्मणके समान दूसरा कोई पूजनीय नहीं है। वह जगत्‌का गुरु है। ब्राह्मणको मारनेपर जो पाप होता है, उससे बढ़कर दूसरा कोई पाप है ही नहीं।

नारदजीने पूछा—सुरश्रेष्ठ! पापसे दूर रहनेवाले द्विजको किस वृत्तिका आश्रय लेकर जीवन निर्वाह करना चाहिये? इसका यथावत् वर्णन कीजिये।

ब्रह्माजीने कहा—बेटा! बिना माँगे मिली हुई भिक्षा उत्तम वृत्ति बतायी गयी है। उञ्छवृत्ति[1] उससे भी उत्तम है। वह सब प्रकारकी वृत्तियोंमें श्रेष्ठ और कल्याणकारिणी है। श्रेष्ठ मुनिगण उञ्छवृत्तिका आश्रय लेकर ब्रह्मपदको प्राप्त होते हैं। यज्ञमें आये हुए ब्राह्मणको यज्ञकी समाप्ति हो जानेपर यजमानसे जो दक्षिणा प्राप्त होती है, वह उसके लिये ग्राह्य वृत्ति है। द्विजोंको पढ़ाकर या यज्ञ कराकर उसकी दक्षिणा लेनी चाहिये। पठन-पाठन तथा उत्तम माङ्गलिक शुभ कर्म करके भी उन्हें दक्षिणा ग्रहण करनी चाहिये। यही ब्राह्मणोंकी जीविका है। दान लेना उनके लिये अन्तिम वृत्ति है। उनमें जो शास्त्रके द्वारा जीविका चलाते हैं, वे धन्य हैं। वृक्ष और लताओंके सहारे जिनकी जीविका चलती है, वे भी धन्य हैं।

ब्राह्मणोचित वृत्तिके अभावमें ब्राह्मणोंको क्षत्रियवृत्तिसे जीवन निर्वाह करना चाहिये। उस अवस्थामें न्याययुक्त युद्धका अवसर उपस्थित होनेपर युद्ध करना उनका कर्तव्य है। उन्हें उत्तम वीरव्रतका आचरण करना चाहिये। ब्राह्मण क्षत्रिय वृत्तिके द्वारा राजासे जो धन प्राप्त करता है, वह श्राद्ध और यज्ञ आदिमें दानके लिये पवित्र माना गया है। उस ब्राह्मणको सदा पापसे दूर रहकर वेद और धनुर्वेद दोनोंका अभ्यास करना चाहिये। जो ब्राह्मण न्यायोचित युद्धमें सम्मिलित होकर संग्राममें शत्रुका सामना करते हुए मारे जाते हैं, वे वेदपाठियोंके लिये भी दुर्लभ परमपदको प्राप्त होते हैं। धर्मयुद्धका जो पवित्र बर्ताव है, उसका यथार्थ वर्णन सुनो। धर्मयुद्ध करनेवाले योद्धा सामने लड़ते हैं, कभी कायरता नहीं दिखाते तथा जो पीठ दिखा चुका हो, जिसके पास कोई हथियार न हो और जो युद्धभूमिसे भागा जा रहा हो—ऐसे शत्रुपर पीछेकी ओरसे प्रहार नहीं करते। जो दुराचारी सैनिक विजयकी इच्छासे डरपोक, युद्धसे विमुख, पतित, मूर्च्छित, अस्त्रहीन, स्तुतिप्रिय और शरणागत शत्रुको युद्धमें मार डालते हैं, वे नरकमें पड़ते हैं।

यह क्षत्रियवृत्ति सदाचारी पुरुषोंद्वारा प्रशंसित है। इसका आश्रय लेकर समस्त क्षत्रिय स्वर्गलोकको प्राप्त करते हैं। धर्मयुद्धमें शत्रुका सामना करते हुए मृत्युको प्राप्त होना क्षत्रियके लिये शुभ है। वह पवित्र होकर सब पापोंसे मुक्त हो जाता है और एक कल्पतक स्वर्गलोकमें निवास करता है। उसके बाद सार्वभौम राजा होता है। उसे सब प्रकारके भोग प्राप्त होते हैं। उसका शरीर नीरोग और कामदेवके समान सुन्दर होता है। उसके पुत्र धर्मशील, सुन्दर, समृद्धिशाली और पिताकी रुचिके अनुकूल चलनेवाले होते हैं। इस प्रकार क्रमशः सात जन्मोंतक वे क्षत्रिय उत्तम सुखका उपभोग करते हैं। इसके विपरीत जो अन्यायपूर्वक युद्ध करनेवाले हैं, उन्हें चिरकालतक नरकमें निवास करना पड़ता है। इस तरह ब्राह्मणोंको श्रेष्ठ क्षत्रिय-वृत्तिका सहारा लेना उचित है।

उत्तम ब्राह्मण आपत्तिकालमें वैश्यवृत्तिसे—व्यापार एवं खेती आदिसे भी जीविका चला सकता है। परन्तु उसे चाहिये कि वह दूसरोंके द्वारा खेती और व्यापारका काम कराये, स्वयं ब्राह्मणोचित कर्मका त्याग न करे। वैश्यवृत्तिका आश्रय लेकर यदि ब्राह्मण झूठ बोले या किसी वस्तुकी बहुत बढ़ा-चढ़ाकर प्रशंसा करे तो [लोगोंको ठगनेके कारण] वह दुर्गतिको

* अग्निदो गरदश्चैव धनहारी च सुतप। क्षेत्रदारापहारी च षडेते ह्याततायिन॥ (४८। ५८)

[1] —कटे हुए खेत, खलिहान या उठे हुए बाजारसे अन्नका एक-एक दाना बीनकर लाने और उसीसे जीविका चलानेका नाम 'उञ्छवृत्ति' है।

प्राप्त होता है। भीगे हुए द्रव्यके व्यापारसे बचा रहकर ब्राह्मण कल्याणका भागी होता है। तौलमें कभी असत्यपूर्ण बर्ताव नहीं करना चाहिये, क्योंकि तुला धर्मपर ही प्रतिष्ठित है। जो तराजूपर तोलते समय छल करता है, वह नरकमें पड़ता है। जो द्रव्य तराजूपर चढ़ाये बिना ही बेचा जाता है, उसमें भी झूठ-कपटका त्याग कर देना चाहिये। इस प्रकार मिथ्या बर्ताव नहीं करना चाहिये; क्योंकि मिथ्या व्यवहारसे पापकी उत्पत्ति होती है। सत्यसे बढ़कर धर्म और झूठसे बढ़कर दूसरा कोई पाप नहीं है। अतः सब कार्योंमें सत्यको ही श्रेष्ठ माना गया है।* यदि एक ओर एक हजार अश्वमेध यज्ञोंका पुण्य और दूसरी ओर सत्यको तराजूपर रखकर तोला जाय तो एक हजार अश्वमेध यज्ञोंकी अपेक्षा सत्यका ही पलड़ा भारी होता है। जो समस्त कार्योंमें सत्य बोलता और मिथ्याका परित्याग करता है, वह सब दुःखोंसे पार हो जाता है और अक्षय स्वर्गका उपभोग करता है।† ब्राह्मण [दूसरोंके द्वारा] व्यापारका काम करा सकता है; किन्तु उसे झूठका त्याग करना ही चाहिये। उसे चाहिये कि जो मुनाफा हो उसमेंसे पहले तीर्थोंमें दान करे; जो शेष बचे, उसका स्वयं उपभोग करे। यदि ब्राह्मण वाणिज्य-वृत्तिसे न्यायपूर्वक उपार्जित किये हुए धनको पितरों, देवताओं और ब्राह्मणोंके निमित्त यत्नपूर्वक दान देता है, तो उसे अक्षय फलकी प्राप्ति होती है। वाणिज्य लाभकारी व्यवसाय है। किन्तु दो उसमें बहुत बड़े दोष आ जाते हैं—लोभ न छोड़ना और झूठ बोलकर माल बेचना। विद्वान् पुरुष इन दोनों दोषोंका परित्याग करके धनोपार्जन करे। व्यापारमें कमाये हुए धनका दान करनेसे वह अक्षय फलका भागी होता है।‡

नारद! पुण्यकर्ममें लगे हुए ब्राह्मणको इस प्रकार खेती करानी चाहिये। वह आधे दिन (दोपहर) तक चार बैलोंको हलमें जोते। चारके अभावमें तीन बैलोंको भी जोता जा सकता है। बैलोंसे इतना काम न ले कि उन्हें दिनभर विश्राम करनेका मौका ही न मिले। प्रतिदिन बैलोंको चोर और व्याघ्र आदिसे रहित स्थानमें, जहाँकी घास काटी न गयी हो, ले जाकर चराये। उन्हें यथेष्ट घास खानेको दे और स्वयं उपस्थित रहकर उनके खाने-पीनेकी व्यवस्था करे। उनके रहनेके लिये गोशाला बनवावे, जहाँ किसी प्रकार उपद्रव न हो।* वहाँसे गोबर, मूत्र और बिखरी हुई घास आदि हटाकर गोशालाको सदा साफ रखे। गोशाला सम्पूर्ण देवताओंका निवास-स्थान है, अतः वहाँ कूड़ा नहीं फेंकना चाहिये। विद्वान् पुरुषको उचित है कि वह अपने शयन-गृहके समान गोशालाको साफ रखे। उसकी फर्शको समतल बनाये तथा यत्नपूर्वक ऐसी व्यवस्था करे, जिससे वहाँ सर्दी, हवा और धूल-धक्कड़से बचाव हो। गौको अपने प्राणोंके समान समझे। उसके शरीरको अपने ही शरीरके तुल्य माने। अपनी देहमें जैसे सुख-दुःख होते हैं, वैसे ही गौके शरीरमें भी होते हैं—ऐसा समझकर गौके कष्टको दूर करने और उसे सुख पहुँचानेकी चेष्टा करे।

जो इस विधिसे खेतीका काम कराता है, वह बैलको जोतनेके दोषसे मुक्त और धनवान् होता है। जो दुर्बल, रोगी, अत्यन्त छोटी अवस्थाके और अधिक बूढ़े बैलसे काम लेकर उसे कष्ट पहुँचाता है, उसे गो-हत्याका पाप लगता है। जो एक ओर दुर्बल और दूसरी ओर बलवान् बैलको जोड़कर उनसे भूमिको जुतवाता है, उसे गोहत्याके समान पापका भागी होना पड़ता है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। जो बिना चारा खिलाये ही बैलको हल जोतनेके काममें लगाता है तथा घास खाते और पानी पीते हुए बैलको मोहवश हाँक देता है, वह भी

---

* तुलेऽसत्यं न कर्तव्यं तुला धर्मप्रतिष्ठिता ॥
छलभावं तुले कृत्वा नरकं प्रतिपद्यते ।
अतुलं चापि यद् द्रव्यं तत्र मिथ्या परित्यजेत् ॥
एवं मिथ्या न कर्तव्या मृषा पापप्रसूतिका ।
नास्ति सत्यात्परो धर्मो नानृतात्पातकं परम् ॥
अतः सर्वेषु कार्येषु सत्यमेव विशिष्यते ।
(४५ । ९३–९६)

† यो वदेत् सर्वकार्येषु सत्यं मिथ्यां परित्यजेत् ॥
स निस्तरति दुर्गाणि स्वर्गमक्षयमश्नुते ।
(४५ । ९७–९८)

‡ एतौ दोषौ महान्तौ च वाणिज्ये लाभकर्मणि ।
लोभानामपरित्यागो मृषाभाषश्च विक्रयः ॥
एतौ दोषौ परित्यज्य कुर्यादर्थार्जनं बुधः ।
अक्षयं लभते दानाद्································॥
(४५।१०७-८)

* दद्याद् घासं यथेष्टं च नित्यमातिष्ठयेत् स्वयम् ।
गोष्ठं च कारयेत्तत्र किञ्चिद्विघ्नविवर्जितम् ॥
(४५ । १०९)

गोहत्याके पापका भागी होता है।* अमावास्या, संक्रान्ति तथा पूर्णिमाको हल जोतनेसे दस हजार गोहत्याओंका पाप लगता है। जो उपर्युक्त तिथियोंको गौओंके शरीरमें सफेद और रंग-बिरंगी रचना करके काजल, पुष्प और तेलके द्वारा उनकी पूजा करता है, वह अक्षय स्वर्गका सुख भोगता है। जो प्रतिदिन दूसरेकी गायको मुट्ठीभर घास देता है, उसके समस्त पापोंका नाश हो जाता है तथा वह अक्षय स्वर्गका उपभोग करता है। जैसा ब्राह्मणका महत्त्व है, वैसा ही गौका भी महत्त्व है, दोनोंकी पूजाका फल समान ही है। विचार करनेपर मनुष्योंमें ब्राह्मण प्रधान है और पशुओंमें गौ।

नारदजीने पूछा—नाथ! आपने बताया है कि ब्राह्मणकी उत्पत्ति भगवान्‌के मुखसे हुई है, फिर गौओंकी उससे तुलना कैसे हो सकती है? विधाता! इस विषयको लेकर मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है।

ब्रह्माजीने कहा—बेटा! पहले भगवान्‌के मुखसे महान् तेजोमय पुञ्ज प्रकट हुआ। उस तेजसे सर्वप्रथम वेदकी उत्पत्ति हुई। तत्पश्चात् क्रमशः अग्नि, गौ और ब्राह्मण—ये पृथक्-पृथक् उत्पन्न हुए। मैंने सम्पूर्ण लोकों और भुवनोंकी रक्षाके लिये पूर्वकालमें एक वेदसे चारों वेदोंका विस्तार किया। अग्नि और ब्राह्मण देवताओंके लिये हविष्य ग्रहण करते हैं और हविष्य (घी) गौओंसे उत्पन्न होता है, इसलिये ये चारों ही इस जगत्‌के जन्मदाता हैं। यदि ये चारों महत्तर पदार्थ विश्वमें न होते तो यह सारा चराचर जगत् नष्ट हो जाता। ये ही सदा जगत्‌को धारण किये रहते हैं, जिससे स्वभावतः इसकी स्थिति बनी रहती है। ब्राह्मण, देवता तथा असुरोंको भी गौकी पूजा करनी चाहिये, क्योंकि गौ सब कार्योंमें उदार तथा वास्तवमें समस्त गुणोंकी खान है। वह साक्षात् सम्पूर्ण देवताओंका स्वरूप है। सब प्राणियोंपर उसकी दया बनी रहती है। प्राचीन कालमें सबके पोषणके लिये मैंने गौकी सृष्टि की थी। गौओंकी प्रत्येक वस्तु पावन है और समस्त संसारको पवित्र कर देती है। गौका मूत्र, गोबर, दूध, दही और घी—इन पञ्चगव्योंका पान कर लेनेपर शरीरके भीतर पाप नहीं ठहरता। इसलिये धार्मिक पुरुष प्रतिदिन गौके दूध, दही और घी खाया करते हैं। गव्य पदार्थ सम्पूर्ण द्रव्योंमें श्रेष्ठ, शुभ और प्रिय हैं। जिसको गायका दूध, दही और घी खानेका सौभाग्य नहीं प्राप्त होता, उसका शरीर मलके समान है। अन्न आदि पाँच रात्रितक, दूध सात रात्रितक, दही बीस रात्रितक और घी एक मासतक शरीरमें अपना प्रभाव रखता है। जो लगातार एक मासतक बिना गव्यका भोजन करता है, उस मनुष्यके भोजनमें प्रेतोंको भाग मिलता है, इसलिये प्रत्येक युगमें सब कार्योंके लिये एकमात्र गौ ही प्रशस्त मानी गयी है। गौ सदा और सब समय धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चारों पुरुषार्थ प्रदान करनेवाली है।

जो गौकी एक बार प्रदक्षिणा करके उसे प्रणाम करता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर अक्षय स्वर्गका सुख भोगता है। जैसे देवताओंके आचार्य बृहस्पतिजी वन्दनीय हैं, जिस प्रकार भगवान् लक्ष्मीपति सबके पूज्य हैं, उसी प्रकार गौ भी वन्दनीय और पूजनीय है। जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर गौ और उसके घीका स्पर्श करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। गौएँ दूध और घी प्रदान करनेवाली हैं। वे घृतकी उत्पत्ति-स्थान और घीकी उत्पत्तिमें कारण हैं। वे घीकी नदियाँ हैं, उनमें घीकी भँवरें उठती हैं। ऐसी गौएँ सदा मेरे घरपर मौजूद रहें।* घी मेरे सम्पूर्ण शरीर और मनमें स्थित हो। 'गौएँ सदा मेरे आगे रहें। वे ही मेरे पीछे रहें। मेरे सब अङ्गोंको गौओंका स्पर्श प्राप्त हो। मैं गौओंके बीचमें निवास करूँ।'† इस मन्त्रका प्रतिदिन सन्ध्या और सबेरेके समय शुद्ध भावसे आचमन करके जपना चाहिये। ऐसा करनेसे उसके सब पापोंका क्षय हो जाता है तथा वह स्वर्गलोकमें पूजित होता है। जैसे गौ आदरणीय है, वैसे ब्राह्मण, जैसे ब्राह्मण है, वैसे भगवान् श्रीविष्णु। जैसे भगवान् श्रीविष्णु हैं, वैसी ही श्रीगङ्गाजी भी हैं। ये सभी धर्मके साक्षात् स्वरूप माने गये हैं। गौएँ मनुष्योंकी बन्धु हैं और मनुष्य गौओंके बन्धु हैं। जिस घरमें

* दुर्बलं पीडयेद्यस्तु तथैव गदसंयुतम्।
अतिबालातिवृद्धं च स गोहत्यां समालभेत्॥
विषमं वाहयेद्यस्तु दुर्बलेन बलेन च।
स गोहत्यासमं पापं प्राप्नोतीह न संशयः॥
यो वाहयेद्दिना सस्यं खादन्तं गां निवारयेत्।
मोहात्तृणं जलं वापि स गोहत्यासमं लभेत्॥
(४५।११४।१६)

* घृतक्षीरप्रदा गावो घृतयोन्यो घृतोद्भवाः।
घृतनद्यो घृतावर्तास्ता मे सन्तु सदा गृहे॥
(४५।१४९)

† गावो ममाग्रतो नित्यं गावः पृष्ठत एव च।
गावश्च सर्वगात्रेषु गवां मध्ये वसाम्यहम्॥

गौ नहीं है, वह बन्धुरहित गृह है। छहों अङ्गों, पदों और क्रमोंसहित सम्पूर्ण वेद गौओंके मुखमें निवास करते हैं। उनके सींगोंमें भगवान् श्रीशङ्कर और श्रीविष्णु सदा विराजमान रहते हैं। गौओंके उदरमें कार्तिकेय, मस्तकमें ब्रह्मा, ललाटमें महादेवजी, सींगोंके अग्रभागमें इन्द्र, दोनों कानोंमें अश्विनीकुमार, नेत्रोंमें चन्द्रमा और सूर्य, दाँतोंमें गरुड़, जिह्वामें सरस्वती देवी, अपान (गुदा) में सम्पूर्ण तीर्थ, मूत्रस्थानमें गङ्गाजी, रोमकूपोंमें ऋषि, मुख और पृष्ठभागमें यमराज, दक्षिण पार्श्वमें वरुण और कुबेर, वाम पार्श्वमें तेजस्वी और महाबली यक्ष, मुखके भीतर गन्धर्व, नासिकाके अग्रभागमें सर्प, खुरोंके पिछले भागमें अप्सराएँ, गोबरमें लक्ष्मी, गोमूत्रमें पार्वती, चरणोंके अग्रभागमें आकाशचारी देवता, रँभानेकी आवाजमें प्रजापति और थनोंमें भरे हुए चारों समुद्र निवास करते हैं। जो प्रतिदिन स्नान करके गौका स्पर्श करता है, वह मनुष्य सब प्रकारके स्थूल पापोंसे भी मुक्त हो जाता है। जो गौओंके खुरसे उड़ी हुई धूलको सिरपर धारण करता है, वह मानो तीर्थके जलमें स्नान कर लेता है और सब पापोंसे छुटकारा पा जाता है।

नारदजीने पूछा—गुरुश्रेष्ठ! परमेष्ठिन्! विभिन्न रंगोंकी गौओंमें किसके दानसे क्या फल होता है? इसका तत्त्व बतलाइये।

ब्रह्माजीने कहा—बेटा! ब्राह्मणको श्वेत गौका दान करके मनुष्य ऐश्वर्यशाली होता है। सदा महलमें निवास करता है तथा भोग-सामग्रियोंसे सम्पन्न होकर सुख-समृद्धिसे भरा-पूरा रहता है। धूएँके समान रङ्गवाली गौ स्वर्ग प्रदान करनेवाली तथा भयङ्कर संसारमें पापोंसे छुटकारा दिलानेवाली है। कपिला गौका दान अक्षय फल प्रदान करनेवाला है। कृष्णा गौका दान देकर मनुष्य कभी कष्टमें नहीं पड़ता। भूरे रङ्गकी गौ संसारमें दुर्लभ है। गौर वर्णकी धेनु समूचे कुलको आनन्द प्रदान करनेवाली होती है। लाल नेत्रोंवाली गौ रूपकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको रूप प्रदान करती है। नीली गौ धनाभिलाषी पुरुषकी कामना पूर्ण करती है। एक ही कपिला गौका दान करके मनुष्य सारे पापोंसे मुक्त हो जाता है। बचपन, जवानी और बुढ़ापेमें जो पाप किया गया है, क्रियासे, वचनसे तथा मनसे भी जो पाप बन गये हैं, उन सबका कपिला गौके दानसे क्षय हो जाता है और दाता पुरुष विष्णुरूप होकर वैकुण्ठमें निवास करता है। जो दस गौएँ दान करता है तथा जो भार ढोनेमें समर्थ एक ही बैल दान करता है, उन दोनोंका फल ब्रह्माजीने समान ही बतलाया है। जो पुत्र पितरोंके उद्देश्यसे साँड़ छोड़ता है, उसके पितर अपनी इच्छाके अनुसार विष्णुलोकमें सम्मानित होते हैं। छोड़े हुए साँड़ या दान की हुई गौओंके जितने रोएँ होते हैं, उतने हजार वर्षोंतक मनुष्य स्वर्गका सुख भोगते हैं। छोड़ा हुआ साँड़ अपनी पूँछसे जो जल फेंकता है, वह एक हजार वर्षोंतक पितरोंके लिये तृप्तिदायक होता है। वह अपने खुरसे जितनी भूमि खोदता है, जितने ढेले और कीचड़ उछालता है, वे सब लाखगुने होकर पितरोंके लिये स्वधारूप हो जाते हैं। यदि पिताके जीते-जी माताकी मृत्यु हो जाय तो उसकी स्वर्ग-प्राप्तिके लिये चन्दन-चर्चित धेनुका दान करना चाहिये। ऐसा करनेसे दाता पितरोंके ऋणसे मुक्त हो जाता है तथा भगवान् श्रीविष्णुकी भाँति पूजित होकर अक्षय स्वर्गको प्राप्त करता है। सब प्रकारके शुभ लक्षणोंसे युक्त, प्रतिवर्ष बच्चा देनेवाली नयी दुधार गाय पृथ्वीके समान मानी गयी है। उसके दानसे भूमि-दानके समान फल होता है। उसे दान करनेवाला मनुष्य इन्द्रके तुल्य होता है और अपनी सौ पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है। जो गौका हरण करके उसके बछड़ेकी मृत्युका कारण बनता है, वह महाप्रलयपर्यन्त कीड़ोंसे भरे हुए कुएँमें पड़ा रहता है। गौओंका वध करके मनुष्य अपने पितरोंके साथ घोर रौरव नरकमें पड़ता है तथा उतने ही समयतक अपने पापका दण्ड भोगता रहता है। जो इस पवित्र कथाको एक बार भी दूसरोंको सुनाता है, उसके सब पापोंका नाश हो जाता है तथा वह देवताओंके साथ आनन्दका उपभोग करता है। जो इस परम पुण्यमय प्रसङ्गका श्रवण करता है, वह सात जन्मोंके पापोंसे तत्काल मुक्त हो जाता है।

द्विजोचित आचार, तर्पण तथा शिष्टाचारका वर्णन



नारदजीने पूछा—पिताजी! किस आचरणसे ब्राह्मणके ब्रह्मतेजकी वृद्धि होती है?

ब्रह्माजीने कहा—बेटा! श्रेष्ठ ब्राह्मणको चाहिये कि वह प्रतिदिन कुछ रात रहते ही बिस्तरसे उठ जाय और गोविन्द, माधव, कृष्ण, हरि, दामोदर, नारायण, जगन्नाथ, वासुदेव, वेदमाता सावित्री, अजन्मा, विभु, सरस्वती, महालक्ष्मी,

ब्रह्मा, शङ्कर, शिव, शम्भु, ईश्वर, महेश्वर, सूर्य, गणेश, स्कन्द, गौरी, भागीरथी और शिवा आदि नामोंका कीर्तन करे। जो मनुष्य सवेरे उठकर इन सबका स्मरण करता है, वह ब्रह्महत्या आदि पापोंसे निःसन्देह मुक्त हो जाता है। तात! एक बार भी इन नामोंका उच्चारण करनेपर सम्पूर्ण यज्ञोंका तथा लाखों गोदानका फल मिलता है।

इस प्रकार उपर्युक्त नामोंका उच्चारण करके गाँवसे बाहर दूर जाकर साफ सुथरे स्थानमें मल-मूत्रका परित्याग करे। यदि रातका समय हो तो दक्षिण दिशाकी ओर मुँह करके और दिनमें उत्तर दिशाकी ओर मुँह करके शौच होना चाहिये। इसके बाद [हाथ मुँह धो, कुल्ला करके] गूलर आदिकी लकड़ीसे दाँत साफ करना चाहिये। तत्पश्चात् द्विजको स्नान आदि करके संयमपूर्वक बैठकर सन्ध्योपासन करना चाहिये। पूर्वाह्णकालमें रक्तवर्णा गायत्री, मध्याह्नकालमें शुक्लवर्णा सावित्री और सायंकालमें श्यामवर्णा सरस्वतीका विधिपूर्वक ध्यान करना उचित है।

प्रतिदिनके स्नानकी विधि इस प्रकार है। अपने शक्तिके अनुसार यत्नपूर्वक स्नान विधिका पालन करना चाहिये। पहले शरीरको जलसे भिगोकर फिर उसमें मिट्टी लगाये। मस्तक, ललाट, नासिका, हृदय, भौंह, बाहु, पसली, नाभि, घुटने और दोनों पैरोंमें मृत्तिका लगाना उचित है। मनुष्यको शुद्धिकी इच्छासे [शौच होकर] एक बार लिङ्गमें, तीन बार गुदामें, दस बार बायें हाथमें तथा पुनः सात बार दोनों हाथोंमें मिट्टी लगानी चाहिये। 'घोड़े, रथ और भगवान् श्रीविष्णु द्वारा आक्रान्त होनेवाली मृत्तिकामयी वसुन्धरे! मेरे द्वारा जो दुष्कर्म या पाप हुए हों, उन्हें तुम हर लो।' *—इस मन्त्रसे जो अपने शरीरमें मिट्टीका लेप करता है, उसके सब पापोंका क्षय होता है तथा वह मनुष्य सर्वथा शुद्ध हो जाता है। तदनन्तर विद्वान् पुरुष नद, नदी, पोखरा, सरोवर या कुएँपर जाकर वेदमन्त्रोंके उच्चारणपूर्वक स्नान करे। उसे नदी आदिकी जलराशिमें प्रवेश करके स्नान करना चाहिये और कुएँपर नहाना हो तो किनारे रहकर घड़ेसे स्नान करना उचित है। मनुष्यको अपने समस्त पापोंका नाश करनेके लिये विधिवत् स्नान करना चाहिये। सवेरेका स्नान महान् पुण्यदायक और सब पापोंका नाश करनेवाला है। जो ब्राह्मण सदा प्रातःकाल स्नान करता है, वह विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है। प्रातः सन्ध्याके समय चार दण्डतक जल अमृतके समान रहता है, वह पितरोंको सुधाके समान तृप्तिदायी होता है। उसके बाद दो घड़ीतक अर्थात् कुल एक पहरतक जल मधुके समान रहता है, वह भी पितरोंकी प्रसन्नता बढ़ानेवाला होता है। तत्पश्चात् डेढ़ पहरतकका जल दूधके समान माना गया है। उसके बाद चार दण्डतकका जल दुग्धमिश्रित-सा रहता है।

नारदजीने कहा—देवेश्वर! अब मुझे यह बताइये कि जलके देवता कौन हैं तथा जिस प्रकार मैं तर्पणकी विधि ठीक ठीक जान सकूँ, ऐसा उपदेश कीजिये।

ब्रह्माजीने कहा—बेटा! सम्पूर्ण लोकोंमें भगवान् श्रीविष्णु ही जलके देवता माने गये हैं, अतः जो जलसे स्नान करके पवित्र होता है, उसका भगवान् श्रीविष्णु कल्याण करते हैं। एक घूँट जल पीकर भी मनुष्य पवित्र हो जाता है। विशेष बात यह है कि कुशके संसर्गसे जल अमृतसे भी बढ़कर होता है। कुश सम्पूर्ण देवताओंका निवासस्थान है, पूर्वकालमें मैंने ही उसे उत्पन्न किया था। कुशके मूलमें स्वयं मैं (ब्रह्मा), उसके मध्यभागमें श्रीविष्णु और अग्रभागमें भगवान् श्रीशङ्कर विराजमान हैं; इन तीनोंके द्वारा कुशकी प्रतिष्ठा है। अपने हाथोंमें कुश धारण करनेवाला द्विज सदा पवित्र माना गया है, वह यदि किसी स्तोत्र या मन्त्रका पाठ करे तो उसका सौगुना महत्त्व बतलाया गया है। वही यदि तीर्थमें किया जाय तो उसका फल हजारगुना अधिक होता है। कुश, काश, दूर्वा, जौका पत्ता, धानका पत्ता, बल्वज और कमल—ये सात प्रकारके कुश बताये गये हैं।* इनमें पूर्व पूर्व कुश अधिक पवित्र माने गये हैं। ये सभी कुश लोकमें प्रतिष्ठित हैं।

तिलके सम्पर्कसे जल अमृतसे भी अधिक स्वादिष्ट हो जाता है। जो प्रतिदिन स्नान करके तिलमिश्रित जलसे पितरोंका तर्पण करता है, वह अपने दोनों कुलोंका (पितृकुल एवं मातृकुलका) उद्धार करके ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है। वर्षाके चार महीनोंमें दीपदान करनेसे पितरोंके ऋणसे छुटकारा मिलता है। जो एक वर्षतक प्रति अमावास्याको तिलोंके द्वारा पितरोंका तर्पण करता है, वह विनायक-पदवीको प्राप्त होता है और सम्पूर्ण

* अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे।
मृत्तिके हर मे पापं यन्मया दुष्कृतं कृतम्॥

* कुशाः काशास्तथा दूर्वा यवपत्राणि व्रीहयः।
बल्वजाः पुण्डरीकाश्च कुशाः सप्त प्रकीर्तिताः॥
(४६ । ३४ ३५)

देवता उसकी पूजा करते हैं। जो समस्त युगादि तिथियोंको तिलोंद्वारा पितरोंका तर्पण करता है, उसे अमावास्याकी अपेक्षा सौगुना अधिक फल प्राप्त होता है। अयन आरम्भ होनेके दिन, विषुव योगमें, पूर्णिमा तथा अमावास्याको पितरोंका तर्पण करके मनुष्य स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। मन्वन्तरसंज्ञक तिथियोंमें तथा अन्यान्य पुण्यपर्वोंके अवसरपर भी तर्पण करनेसे यही फल होता है। चन्द्रमा और सूर्यके ग्रहणमें गया आदि पुण्य तीर्थोंके भीतर पितरोंका तर्पण करके मनुष्य वैकुण्ठधामको प्राप्त होता है। इसलिये कोई पुण्यदिवस प्राप्त होनेपर पितृसमुदायका तर्पण करना चाहिये। एकाग्र चित्त होकर पहले देवताओंका तर्पण करनेके पश्चात् विद्वान् पुरुष पितरोंका तर्पण करनेका अधिकारी होता है। श्राद्धमें भोजनके समय एक ही हाथसे अन्न परोसे, किन्तु तर्पणके समय दोनों हाथोंसे जल दे; यही सनातन विधि है। दक्षिणाभिमुख होकर पवित्र भावसे 'तृप्यताम्' इस वाक्यके साथ नाम-गोत्रका उच्चारण करते हुए पितरोंका तर्पण करना चाहिये।

जो मोहवश सफेद तिलोंके द्वारा पितृवर्गका तर्पण करता है, उसका किया हुआ तर्पण व्यर्थ होता है। यदि दाता स्वयं जलमें स्थित होकर पृथ्वीपर तर्पणका जल गिराये तो उसका वह जलदान व्यर्थ हो जाता है। किसीके पास नहीं पहुँचता। इसी प्रकार जो स्थलमें खड़ा होकर जलमें तर्पणका जल गिराता है, उसका दिया हुआ जल भी निरर्थक होता है; वह पितरोंको नहीं प्राप्त होता। जो जलमें नहाकर भीगे वस्त्र पहने हुए ही तर्पण करता है, उसके पितर देवताओंसहित सदा तृप्त रहते हैं। विद्वान् पुरुष धोबीके धोये हुए वस्त्रको अशुद्ध मानते हैं। अपने हाथसे पुनः धोनेपर ही वह वस्त्र शुद्ध होता है।* जो सूखे वस्त्र पहने हुए किसी पवित्र स्थानपर बैठकर पितरोंका तर्पण करता है, उसके पितर दसगुनी तृप्ति लाभ करते हैं। जो अपनी तर्जनी अँगुलीमें चाँदीकी अँगूठी धारण करके पितरोंका तर्पण करता है, उसका सब तर्पण लाख गुना अधिक फल देनेवाला होता है। इसी प्रकार विद्वान् पुरुष यदि अनामिका अँगुलीमें सोनेकी अँगूठी पहनकर पितृवर्गका तर्पण करे तो वह करोड़ोंगुना अधिक फल देनेवाला होता है।

जो स्नान करनेके लिये जाता है, उसके पीछे प्याससे पीड़ित देवता और पितर भी वायुरूप होकर जलकी आशासे जाया करते हैं; किन्तु जब वह नहाकर धोती निचोड़ने लगता है, तब वे निराश लौट जाते हैं; अतः पितृतर्पण किये बिना धोती नहीं निचोड़नी चाहिये। मनुष्यके शरीरमें जो साढ़े तीन करोड़ रोएँ हैं, वे सम्पूर्ण तीर्थोंके प्रतीक हैं। उनका स्पर्श करके जो जल धोतीपर गिरता है, वह मानो सम्पूर्ण तीर्थोंका ही जल गिरता है; इसलिये तर्पणके पहले धोये हुए वस्त्रको निचोड़ना नहीं चाहिये। देवता स्नान करनेवाले व्यक्तिके मस्तकसे गिरनेवाले जलको पीते हैं, पितर मूँछ-दाढ़ीके जलसे तृप्त होते हैं, गन्धर्व नेत्रोंका जल और सम्पूर्ण प्राणी अधोभागका जल ग्रहण करते हैं। इस प्रकार देवता, पितर, गन्धर्व तथा सम्पूर्ण प्राणी स्नानमात्रसे संतुष्ट होते हैं। स्नानसे शरीरमें पाप नहीं रह जाता। जो मनुष्य प्रतिदिन स्नान करता है, वह पुरुषोंमें श्रेष्ठ है। वह सब पापोंसे मुक्त होकर स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। देवता और महर्षि तर्पणतक स्नानका ही अङ्ग मानते हैं। तर्पणके बाद विद्वान् पुरुषको देवताओंका पूजन करना चाहिये।

जो गणेशकी पूजा करता है, उसके पास कोई विघ्न नहीं आता। लोग धर्म और मोक्षके लिये लक्ष्मीपति भगवान् श्रीविष्णुकी, आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिये शङ्करकी, आरोग्यके लिये सूर्यकी तथा सम्पूर्ण कामनाओंकी सिद्धिके लिये भवानीकी पूजा करते हैं। देवताओंकी पूजा करनेके पश्चात् बलि-वैश्वदेव करना चाहिये। पहले अग्निकार्य करके फिर ब्राह्मणोंको तृप्त करनेवाला अतिथियज्ञ करे। देवताओं और सम्पूर्ण प्राणियोंका भाग देकर मनुष्य स्वर्गलोकको जाता है। इसलिये प्रतिदिन पूरा प्रयत्न करके नित्यकर्मोंका अनुष्ठान करना चाहिये। जो स्नान नहीं करता, वह मल भोजन करता है। जो जप नहीं करता वह पीब और रक्त पान करता है। जो प्रतिदिन तर्पण नहीं करता, वह पितृघाती होता है। देवताओंकी पूजा न करनेपर ब्रह्महत्याके समान पाप लगता है। सन्ध्योपासन न करके पापी मनुष्य सूर्यकी हत्या करता है।

नारदजीने पूछा—पिताजी! ब्राह्मणादि वर्णोंके सदाचार और उनके कर्तव्योंका क्रम बतलाइये, साथ ही समस्त प्रवृत्तिप्रधान कर्मोंका वर्णन कीजिये।

ब्रह्माजीने कहा—वत्स! मनुष्य आचारसे आयु, धन तथा स्वर्ग और मोक्ष प्राप्त करता है। आचार

* रजकैः क्षालितं वस्त्रमशुद्धं कवयो विदुः।
हस्तप्रक्षालनेनैव पुनर्वस्त्रञ्च शुद्ध्यति॥ (४६।५३)

अशुभ लक्षणोंका निवारण करता है। आचारहीन पुरुष संसारमें निन्दित, सदा दुःखका भागी, रोगी और अल्पायु होता है। अनाचारी मनुष्यको निश्चय ही नरकमें निवास करना पड़ता है तथा आचारसे श्रेष्ठ लोककी प्राप्ति होती है, इसलिये तुम आचारका यथार्थरूपमें वर्णन सुनो।

प्रतिदिन अपने घरको गोबरसे लीपना चाहिये। उसके बाद काठका पीढ़ा, बर्तन और पत्थर धोने चाहिये। काँसेका बर्तन राखसे और ताँबा खटाईसे शुद्ध होता है। सोने और चाँदी आदिके बर्तन जलमात्रसे धोनेपर शुद्ध हो जाते हैं। लोहेका पात्र आगके द्वारा तपाने और धोनेसे शुद्ध होता है। अपवित्र भूमि खोदने, जलाने, लीपने तथा धोनेसे एवं वर्षासे शुद्ध होती है। धातुनिर्मित पात्र, मणिपात्र तथा सब प्रकारके पत्थरसे बने हुए पात्रकी भस्म और मृत्तिकासे शुद्धि बतायी गयी है। शय्या, स्त्री, बालक, वस्त्र, यज्ञोपवीत और कमण्डलु—ये अपने हों तो सदा शुद्ध हैं और दूसरेके हों तो कभी शुद्ध नहीं माने जाते। एक वस्त्र धारण करके भोजन और स्नान न करे। दूसरेका उतारा हुआ वस्त्र कभी न धारण करे। केशों और दाँतोंकी सफाई सबेरे ही करनी चाहिये। गुरुजनोंको नित्यप्रति नमस्कार करना नियमतः कर्तव्य होना चाहिये। दोनों हाथ, दोनों पैर और मुख—इन पाँचों अङ्गोंको धोकर विद्वान् पुरुष भोजन आरम्भ करे। जो इन पाँचोंको धोकर भोजन करता है, वह सौ वर्ष जीता है। देवता, गुरु, स्नातक, आचार्य और यज्ञमें दीक्षित ब्राह्मणकी छायापर जान-बूझकर पैर नहीं रखना चाहिये। गौओंके समुदाय, देवता, ब्राह्मण, घी, मधु, चौराहे तथा प्रसिद्ध वनस्पतियोंको अपने दाहिने करके चलना चाहिये। गौ-ब्राह्मण, अग्नि-ब्राह्मण, दो ब्राह्मण तथा पति-पत्नीके बीचसे होकर नहीं निकलना चाहिये। जो ऐसा करता है, वह स्वर्गमें रहता हो तो भी नीचे गिर जाता है। जूठे हाथसे अग्नि, ब्राह्मण, देवता, गुरु, अपने मस्तक, पुष्पवाले वृक्ष तथा यज्ञोपयोगी पेड़का स्पर्श नहीं करना चाहिये। सूर्य, चन्द्रमा और नक्षत्र—इन तीन प्रकारके तेजोंकी ओर जूठे मुँह कभी दृष्टि न डाले। इसी प्रकार ब्राह्मण, गुरु, देवता, राजा, श्रेष्ठ संन्यासी, योगी, देवकार्य करनेवाले तथा धर्मका उपदेश करनेवाले द्विजकी ओर भी जूठे मुँह दृष्टिपात न करे।

नदियों और समुद्रके किनारे, यज्ञ-सम्बन्धी वृक्षकी जड़के पास, बगीचेमें, फुलवारीमें, ब्राह्मणके निवासस्थानपर, गोशालामें तथा साफ-सुथरी सुन्दर सड़कोंपर तथा जलमें कभी मल-त्याग न करे। धीर पुरुष अपने हाथ, पैर, मुख और केशोंको रूखे न रखे। दाँतोंपर मैल न जमने दे। नखको मुँहमें न डाले। रविवार और मङ्गलको तेल न लगाये। अपने शरीर और आसनपर ताल न दे। गुरुके साथ एक आसनपर न बैठे। श्रोत्रियके धनका अपहरण न करे। देवता और गुरुका भी धन न ले। राजा, तपस्वी, पङ्गु, अंधे तथा स्त्रीका धन भी न ले। ब्राह्मण, गौ, राजा, रोगी, भारसे दबा हुआ मनुष्य, गर्भिणी स्त्री तथा अत्यन्त दुर्बल पुरुष सामनेसे आते हों तो स्वयं किनारे होकर उन्हें जानेके लिये रास्ता दे। राजा, ब्राह्मण तथा वैद्यसे झगड़ा न करे। ब्राह्मण और गुरुपत्नीसे दूर ही रहना चाहिये। पतित, कोढ़ी, चाण्डाल, गोमांसभक्षी और समाजबहिष्कृतको दूरसे ही त्याग दे। जो स्त्री दुष्टा, दुराचारिणी, कलङ्क लगानेवाली, सदा ही कलहसे प्रेम करनेवाली, प्रमादिनी, निडर, निर्लज्ज, बाहर घूमने-फिरनेवाली, अधिक खर्च करनेवाली और सदाचारसे हीन हो, उसको भी दूरसे ही त्याग देना चाहिये।

बुद्धिमान् शिष्यको उचित है कि वह रजस्वला अवस्थामें गुरुपत्नीको प्रणाम न करे, उसका चरण-स्पर्श न करे, यदि उस अवस्थामें भी वह उसे छू ले तो पुनः स्नान करनेसे ही उसकी शुद्धि होती है। शिष्य गुरुपत्नीके साथ खेल-कूदमें भी भाग न ले। उसकी बात अवश्य सुने, किन्तु उसकी ओर आँख उठाकर देखे नहीं। पुत्रवधू, भाईकी स्त्री, अपनी पुत्री, गुरुपत्नी तथा अन्य किसी युवती स्त्रीकी ओर न तो देखे और न उसका स्पर्श करे। उपर्युक्त स्त्रियोंकी ओर भौंहें मटकाकर देखना, उनसे विवाद करना और अश्लील वचन बोलना सदा ही त्याज्य है। भूसी, अँगारे, हड्डी, राख, रूई, निर्माल्य (देवताको अर्पण की हुई वस्तु), चिताकी लकड़ी, चिता तथा गुरुजनोंके शरीरपर कभी पैर न रखे। अपवित्र, दूसरेका उच्छिष्ट तथा दूसरेकी रसोई बनानेके लिये रखा हुआ अन्न भोजन न करे। धीर पुरुष किसी दुष्टके साथ एक क्षण भी न तो ठहरे और न यात्रा ही करे। इसी प्रकार उसे दीपककी छायामें तथा बहेड़ेके वृक्षके नीचे भी खड़ा नहीं होना चाहिये।

अपनेसे छोटेको प्रणाम न करे। चाचा और मामा आदिके आनेपर उठकर आसन दे और उनके

सामने हाथ जोड़कर खड़ा रहे । जो तेल लगाये हो [किन्तु स्नान न किये हो], जिसके मुँह और हाथ जूठे हों, जो भीगे वस्त्र पहने हो, रोगी हो, समुद्र-में घुसा हो, उद्विग्न हो, भार ढो रहा हो, यज्ञ-कार्यमें लिप्त हो; स्त्रियोंके साथ क्रीड़ामें आसक्त हो, बालकके साथ खेल कर रहा हो तथा जिसके हाथोंमें फूल और कुश हों, ऐसे व्यक्तिको प्रणाम न करे । मस्तक अथवा कानोंको ढककर, जलमें खड़ा होकर, शिखा खोलकर, पैरोंको बिना धोये अथवा दक्षिणाभिमुख होकर आचमन नहीं करना चाहिये । यज्ञोपवीतसे रहित या नग्न होकर, कच्छ खोलकर अथवा एक वस्त्र धारण करके आचमन करनेवाला पुरुष शुद्ध नहीं होता । पहले तर्जनी, मध्यमा और अनामिका—तीन अँगुलियोंसे मुखका स्पर्श करे, फिर अँगूठे और तर्जनीके द्वारा नासिकाका, अँगूठे और अनामिकाके द्वारा दोनों नेत्रोंका, कनिष्ठिका और अँगूठेके द्वारा दोनों कानोंका, केवल अँगूठेसे नाभिका, करतलसे हृदयका, सम्पूर्ण अँगुलियोंसे मस्तकका तथा अँगुलियोंके अग्रभागसे दोनों बाहुओंका स्पर्श करके मनुष्य शुद्ध होता है । इस विधिसे आचमन करके मनुष्यको संयमपूर्वक रहना चाहिये । ऐसा करनेसे वह सब पापोंसे मुक्त होकर अक्षय स्वर्गका उपभोग करता है । भीगे पैर सोना, सूखे पैर भोजन करना और अँधेरेमें शयन तथा भोजन करना निषिद्ध है । पश्चिम और दक्षिणकी ओर मुँह करके दन्तधावन न करे । उत्तर और पश्चिम दिशाकी ओर सिरहाना करके कभी न सोये; क्योंकि इस प्रकार शयन करनेसे आयु क्षीण होती है । पूर्व और दक्षिण दिशाकी ओर सिरहाना करके सोना उत्तम है । मनुष्यके एक बारका भोजन देवताओंका भाग, दूसरी बारका भोजन मनुष्योंका, तीसरी बारका भोजन प्रेतों और दैत्योंका तथा चौथी बारका भोजन राक्षसोंका भाग होता है ।*

जो स्वर्गमें निवास करके इस लोकमें पुनः उत्पन्न हुए हैं, उनके हृदयमें नीचे लिखे चार सद्गुण सदा मौजूद रहते हैं—उत्तम दान-देना, मीठे वचन बोलना, देवताओंका पूजन करना तथा ब्राह्मणोंको संतुष्ट रखना । इनके विपरीत कंजूसी, स्वजनोंकी निन्दा, मैले-कुचैले वस्त्र पहनना, नीच जनोंके प्रति भक्ति रखना, अत्यन्त क्रोध करना और कटुवचन बोलना—ये नरकसे लौटे हुए मनुष्यके चिह्न हैं ।† नवनीतके समान कोमल वाणी और करुणासे भरा कोमल हृदय—ये धर्मबीजसे उत्पन्न मनुष्योंकी पहचानके चिह्न हैं । दयाशून्य हृदय और आरीके समान मर्मस्थानोंको विदीर्ण करनेवाला तीखा वचन—ये पापबीजसे पैदा हुए पुरुषोंको पहचाननेके लक्षण हैं । जो मनुष्य इस आचार आदिसे युक्त प्रसङ्गको सुनता या सुनाता है, वह आचार आदिका फल पाकर पापसे शुद्ध हो स्वर्गमें जाता है और वहाँसे भ्रष्ट नहीं होता ।

पितृभक्ति, पातिव्रत्य, समता, अद्रोह और विष्णुभक्तिरूप पाँच महायज्ञोंके विषयमें ब्राह्मण नरोत्तमकी कथा

भीष्मजीने कहा—ब्रह्मन् ! जो कर्म सबसे अधिक पुण्यजनक हो, जो संसारमें सदा और सबको प्रिय जान पड़ता हो तथा पूर्व पुरुषोंने जिसका अनुष्ठान किया हो, ऐसा कर्म आप अपनी इच्छाके अनुसार सोचकर बताइये ।

पुलस्त्यजी बोले—राजन् ! एक समयकी बात है, व्यासजीकी शिष्यमण्डलीके समस्त द्विज आदरपूर्वक उन्हें प्रणाम करके धर्मकी बात पूछने लगे—ठीक इसी तरह, जैसे तुम मुझसे पूछते हो ।

द्विजोंने पूछा—गुरुदेव ! संसारमें पुण्यसे भी पुण्यतम और सब धर्मोंमें उत्तम कर्म क्या है ? किसका अनुष्ठान करके मनुष्य अक्षय पदको प्राप्त करते हैं ? मर्त्यलोकमें निवास करनेवाले छोटे-बड़े सभी वर्णोंके लोग जिसका अनुष्ठान कर सकें ।

व्यासजी बोले—शिष्यगण ! मैं तुमलोगोंको पाँच धर्मोंके आख्यान सुनाऊँगा । उन पाँचोंमेंसे एकका भी अनुष्ठान करके मनुष्य सुयश, स्वर्ग तथा मोक्ष भी पा सकता है । माता-पिताकी पूजा, पतिकी सेवा, सबके प्रति समान भाव, मित्रोंसे द्रोह न करना और भगवान् श्रीविष्णुका

---

* देवान्नमेकभुक्तं तु द्विभुक्तं स्यान्नरस्य च । त्रिभुक्तं प्रेतदैत्यस्य चतुर्थं कौणपस्य तु ॥

† स्वर्गस्थितानामिह जीवलोके चत्वारि तेषां हृदये वसन्ति । दानं प्रशस्तं मधुरा च वाणी देवार्चनं ब्राह्मणतर्पणं च ॥
कार्पण्यवृत्तिः स्वजनेषु निन्दा कुचैलता नीचजनेषु भक्तिः । अतीव रोषः कटुका च वाणी नरस्य चिह्नं नरकागतस्य ॥
(४६ । १३१-१३२)

अशुभ लक्षणोंका निवारण करता है। आचारहीन पुरुष संसारमें निन्दित, सदा दुःखका भागी, रोगी और अल्पायु होता है। अनाचारी मनुष्यको निश्चय ही नरकमें निवास करना पड़ता है तथा आचारसे श्रेष्ठ लोककी प्राप्ति होती है, इसलिये तुम आचारका यथार्थरूपमें वर्णन सुनो।

प्रतिदिन अपने घरको गोबरसे लीपना चाहिये। उसके बाद काठका पीढ़ा, बर्तन और पत्थर धोने चाहिये। काँसेका बर्तन राखसे और ताँबा खटाईसे शुद्ध होता है। सोने और चाँदी आदिके बर्तन जलमात्रसे धोनेपर शुद्ध हो जाते हैं। लोहेका पात्र आगके द्वारा तपाने और धोनेसे शुद्ध होता है। अपवित्र भूमि खोदने, जलाने, लीपने तथा धोनेसे एवं वर्षासे शुद्ध होती है। धातुनिर्मित पात्र, मणिपात्र तथा सब प्रकारके पत्थरसे बने हुए पात्रकी भस्म और मृत्तिकासे शुद्धि बतायी गयी है। शय्या, स्त्री, बालक, वस्त्र, यज्ञोपवीत और कमण्डलु—ये अपने हों तो सदा शुद्ध हैं और दूसरेके हों तो कभी शुद्ध नहीं माने जाते। एक वस्त्र धारण करके भोजन और स्नान न करे। दूसरेका उतारा हुआ वस्त्र कभी न धारण करे। केशों और दाँतोंकी सफाई सबेरे ही करनी चाहिये। गुरुजनोंको नित्यप्रति नमस्कार करना नियमपूर्वक कर्तव्य होना चाहिये। दोनों हाथ, दोनों पैर और मुख—इन पाँचों अङ्गोंको धोकर विद्वान् पुरुष भोजन आरम्भ करे। जो इन पाँचोंको धोकर भोजन करता है, वह सौ वर्ष जीता है। देवता, गुरु, स्नातक, आचार्य और यज्ञमें दीक्षित ब्राह्मणकी छायापर जान बूझकर पैर नहीं रखना चाहिये। गौओंके समुदाय, देवता, ब्राह्मण, घी, मधु, चौराहे तथा प्रसिद्ध वनस्पतियोंको अपने दाहिने करके चलना चाहिये। गौ ब्राह्मण, अग्नि ब्राह्मण, दो ब्राह्मण तथा पति पत्नीके बीचसे होकर नहीं निकलना चाहिये। जो ऐसा करता है, वह स्वर्गमें रहता हो तो भी नीचे गिर जाता है। जूठे हाथसे अग्नि, ब्राह्मण, देवता, गुरु, अपने मस्तक, पुष्पवाले वृक्ष तथा यज्ञोपयोगी पेड़का स्पर्श नहीं करना चाहिये। सूर्य, चन्द्रमा और नक्षत्र—इन तीन प्रकारके तेजोंकी ओर जूठे मुँह कभी दृष्टि न डाले। इसी प्रकार ब्राह्मण, गुरु, देवता, राजा, श्रेष्ठ संन्यासी, योगी, देवकार्य करनेवाले तथा धर्मका उपदेश करनेवाले द्विजकी ओर भी जूठे मुँह दृष्टिपात न करे।

नदियों और समुद्रके किनारे, यज्ञसम्बन्धी वृक्षकी जड़के पास, बगीचेमें, फुलवारीमें, ब्राह्मणके निवासस्थानपर, गोशालामें तथा साफ-सुथरी सुन्दर सड़कोंपर तथा जलमें कभी मल त्याग न करे। धीर पुरुष अपने हाथ, पैर, मुख और केशोंको रूखे न रखे। दाँतोंपर मैल न जमने दे। नखको मुँहमें न डाले। रविवार और मङ्गलको तेल न लगावे। अपने शरीर और आसनपर ताल न दे। गुरुके साथ एक आसनपर न बैठे। श्रोत्रियके धनका अपहरण न करे। देवता और गुरुका भी धन न ले। राजा, तपस्वी, पङ्गु, अंधे तथा स्त्रीका धन भी न ले। ब्राह्मण, गौ, राजा, रोगी, भारसे दबा हुआ मनुष्य, गर्भिणी स्त्री तथा अत्यन्त दुर्बल पुरुष सामनेसे आते हों तो स्वयं किनारे होकर उन्हें जानेके लिये रास्ता दे। राजा, ब्राह्मण तथा वैद्यसे झगड़ा न करे। ब्राह्मण और गुरुपत्नीसे दूर ही रहना चाहिये। पतित, कोढ़ी, चाण्डाल, गोमांसभक्षी और समाजबहिष्कृतको दूरसे ही त्याग दे। जो स्त्री दुष्टा, दुराचारिणी, कलङ्क लगानेवाली, सदा ही कलहसे प्रेम करनेवाली, प्रमादिनी, निडर, निर्लज्ज, बाहर घूमने फिरनेवाली, अधिक खर्च करनेवाली और सदाचारसे हीन हो, उसको भी दूरसे ही त्याग देना चाहिये।

बुद्धिमान् शिष्यको उचित है कि वह रजस्वला अवस्थामें गुरुपत्नीको प्रणाम न करे, उसका चरणस्पर्श न करे, यदि उस अवस्थामें भी वह उसे छू ले तो पुनः स्नान करनेसे ही उसकी शुद्धि होती है। शिष्य गुरुपत्नीके साथ खेल कूदमें भी भाग न ले। उसकी बात अवश्य सुने, किन्तु उसकी ओर आँख उठाकर देखे नहीं। पुत्रवधू, भाईकी स्त्री, अपनी पुत्री, गुरुपत्नी तथा अन्य किसी युवती स्त्रीकी ओर न तो देखे और न उसका स्पर्श करे। उपर्युक्त स्त्रियोंकी ओर भौंहें मटकाकर देखना, उनसे विवाद करना और अश्लील वचन बोलना सदा ही त्याज्य है। भूसी, अँगारे, हड्डी, राख, रूई, निर्माल्य (देवताको अर्पण की हुई वस्तु), चिताकी लकड़ी, चिता तथा गुरुजनोंके शरीरपर कभी पैर न रखे। अपवित्र, दूसरेका उच्छिष्ट तथा दूसरेकी रसोई बनानेके लिये रखा हुआ अन्न भोजन न करे। धीर पुरुष किसी दुष्टके साथ एक क्षण भी न तो ठहरे और न यात्रा ही करे। इसी प्रकार उसे दीपककी छायामें तथा बहेड़ेके वृक्षके नीचे भी खड़ा नहीं होना चाहिये।

अपनेसे छोटेको प्रणाम न करे। चाचा और मामा आदिके आनेपर उठकर आसन दे और उनके

सामने हाथ जोड़कर खड़ा रहे। जो तेल लगाये हो [किन्तु स्नान न किये हो], जिसके मुँह और हाथ जूठे हों, जो भीगे वस्त्र पहने हो, रोगी हो, समुद्र-में घुसा हो, उद्विग्न हो, भार ढो रहा हो, यज्ञ-कार्यमें लिप्त हो, स्त्रियोंके साथ क्रीड़ामें आसक्त हो, बालकके साथ खेल कर रहा हो तथा जिसके हाथोंमें फूल और कुश हों, ऐसे व्यक्तिको प्रणाम न करे। मस्तक अथवा कानोंको ढककर, जलमें खड़ा होकर, शिखा खोलकर, पैरोंको बिना धोये अथवा दक्षिणाभिमुख होकर आचमन नहीं करना चाहिये। यज्ञोपवीतसे रहित या नग्न होकर, कच्छ खोलकर अथवा एक वस्त्र धारण करके आचमन करनेवाला पुरुष शुद्ध नहीं होता। पहले तर्जनी, मध्यमा और अनामिका—तीन अँगुलियोंसे मुखका स्पर्श करे, फिर अँगूठे और तर्जनीके द्वारा नासिकाका, अँगूठे और अनामिकाके द्वारा दोनों नेत्रोंका, कनिष्ठिका और अँगूठेके द्वारा दोनों कानोंका, केवल अँगूठेसे नाभिका, करतलसे हृदयका, सम्पूर्ण अँगुलियोंसे मस्तकका तथा अँगुलियोंके अग्रभागसे दोनों बाहुओंका स्पर्श करके मनुष्य शुद्ध होता है। इस विधिसे आचमन करके मनुष्यको संयमपूर्वक रहना चाहिये। ऐसा करनेसे वह सब पापोंसे मुक्त होकर अक्षय स्वर्गका उपभोग करता है। भीगे पैर सोना, सूखे पैर भोजन करना और अँधेरेमें शयन तथा भोजन करना निषिद्ध है। पश्चिम और दक्षिणकी ओर मुँह करके दन्तधावन न करे। उत्तर और पश्चिम दिशाकी ओर सिरहाना करके कभी न सोये; क्योंकि इस प्रकार शयन करनेसे आयु क्षीण होती है। पूर्व और दक्षिण दिशाकी ओर सिरहाना करके सोना उत्तम है। मनुष्यके एक बारका भोजन देवताओंका भाग, दूसरी बारका भोजन मनुष्योंका, तीसरी बारका भोजन प्रेतों और दैत्योंका तथा चौथी बारका भोजन राक्षसोंका भाग होता है।*

जो स्वर्गमें निवास करके इस लोकमें पुनः उत्पन्न हुए हैं, उनके हृदयमें नीचे लिखे चार सद्गुण सदा मौजूद रहते हैं—उत्तम दान-देना, मीठे वचन बोलना, देवताओंका पूजन करना तथा ब्राह्मणोंको संतुष्ट रखना। इनके विपरीत कंजूसी, स्वजनोंकी निन्दा, मैले-कुचैले वस्त्र पहनना, नीच जनोंके प्रति भक्ति रखना, अत्यन्त क्रोध करना और कटुवचन बोलना—ये नरकसे लौटे हुए मनुष्यके चिह्न हैं।† नवनीतके समान कोमल वाणी और करुणासे भरा कोमल हृदय—ये धर्मबीजसे उत्पन्न मनुष्योंकी पहचानके चिह्न हैं। दयाशून्य हृदय और आरीके समान मर्मस्थानोंको विदीर्ण करनेवाला तीखा वचन—ये पापबीजसे पैदा हुए पुरुषोंको पहचाननेके लक्षण हैं। जो मनुष्य इस आचार आदिसे युक्त प्रसङ्गको सुनता या सुनाता है, वह आचार आदिका फल पाकर पापसे शुद्ध हो स्वर्गमें जाता है और वहाँसे भ्रष्ट नहीं होता।

पितृभक्ति, पातिव्रत्य, समता, अद्रोह और विष्णुभक्तिरूप पाँच महायज्ञोंके विषयमें ब्राह्मण नरोत्तमकी कथा

भीष्मजीने कहा—ब्रह्मन्! जो कर्म सबसे अधिक पुण्यजनक हो, जो संसारमें सदा और सबको प्रिय जान पड़ता हो तथा पूर्व पुरुषोंने जिसका अनुष्ठान किया हो, ऐसा कर्म आप अपनी इच्छाके अनुसार सोचकर बताइये।

पुलस्त्यजी बोले—राजन्! एक समयकी बात है, व्यासजीकी शिष्यमण्डलीके समस्त द्विज आदरपूर्वक उन्हें प्रणाम करके धर्मकी बात पूछने लगे—ठीक इसी तरह, जैसे तुम मुझसे पूछते हो।

द्विजोंने पूछा—गुरुदेव! संसारमें पुण्यसे भी पुण्यतम और सब धर्मोंमें उत्तम कर्म क्या है? किसका अनुष्ठान करके मनुष्य अक्षय पदको प्राप्त करते हैं? मर्त्यलोकमें निवास करनेवाले छोटे-बड़े सभी वर्णोंके लोग जिसका अनुष्ठान कर सकें।

व्यासजी बोले—शिष्यगण! मैं तुमलोगोंको पाँच धर्मोंके आख्यान सुनाऊँगा। उन पाँचोंमेंसे एकका भी अनुष्ठान करके मनुष्य सुयश, स्वर्ग तथा मोक्ष भी पा सकता है। माता-पिताकी पूजा, पतिकी सेवा, सबके प्रति समान भाव, मित्रोंसे द्रोह न करना और भगवान् श्रीविष्णुका

---

* देवान्नमेकभुक्तं तु द्विभुक्तं स्यान्नरस्य च। त्रिभुक्तं प्रेतदैत्यस्य चतुर्थं कौणपस्य तु॥

† स्वर्गस्थितानामिह जीवलोके चत्वारि तेषां हृदये वसन्ति। दानं प्रशस्तं मधुरा च वाणी देवार्चनं ब्राह्मणतर्पणं च॥
कार्पण्यवृत्तिः स्वजनेषु निन्दा कुचैलता नीचजनेषु भक्तिः। अतीव रोषः कटुका च वाणी नरस्य चिह्नं नरकागतस्य॥
(४६। १३१-१३२)

भजन करना—ये पाँच महायज्ञ हैं। ब्राह्मणो! पहले माता पिताकी पूजा करके मनुष्य जिस धर्मका साधन करता है, वह इस पृथ्वीपर सैकड़ों यज्ञों तथा तीर्थयात्रा आदिके द्वारा भी दुर्लभ है। पिता धर्म है, पिता स्वर्ग है और पिता ही सर्वोत्कृष्ट तपस्या है। पिताके प्रसन्न हो जानेपर सम्पूर्ण देवता प्रसन्न हो जाते हैं। जिसकी सेवा और सद्गुणोंसे पिता माता सन्तुष्ट रहते हैं, उस पुत्रको प्रतिदिन गङ्गास्नानका फल मिलता है। माता सर्वतीर्थमयी है और पिता सम्पूर्ण देवताओंका स्वरूप है, इसलिये सब प्रकारसे यत्नपूर्वक माता पिताका पूजन करना चाहिये। जो माता पिताकी प्रदक्षिणा करता है, उसके द्वारा सातों द्वीपोंसे युक्त समूची पृथ्वीकी परिक्रमा हो जाती है। माता पिताको प्रणाम करते समय जिसके हाथ, घुटने और मस्तक पृथ्वीपर टिकते हैं, वह अक्षय स्वर्गको प्राप्त होता है।* जबतक माता पिताके चरणोंकी रज पुत्रके मस्तक और शरीरमें लगती रहती है, तभीतक वह शुद्ध रहता है। जो पुत्र माता पिताके चरणकमलोंका जल पीता है, उसके करोड़ों जन्मोंके पाप नष्ट हो जाते हैं। वह मनुष्य संसारमें धन्य है। जो नीच पुरुष माता पिताकी आज्ञाका उल्लङ्घन करता है, वह महाप्रलयपर्यन्त नरकमें निवास करता है। जो रोगी, वृद्ध, जीविकासे रहित, अंधे और बहरे पिताको त्यागकर चला जाता है, वह रौरव नरकमें पड़ता है।†

इतना ही नहीं, उसे अन्त्यजों, म्लेच्छों और चाण्डालोंकी योनिमें जन्म लेना पड़ता है। माता पिताका पालन-पोषण न करनेसे समस्त पुण्योंका नाश हो जाता है। माता पिताकी आराधना न करके पुत्र यदि तीर्थ और देवताओंका सेवन भी करे तो उसे उसका फल नहीं मिलता।

ब्राह्मणो! इस विषयमें मैं एक प्राचीन इतिहास कहता हूँ, यत्नपूर्वक उसका श्रवण करो। इसका श्रवण करके भूतलपर फिर कभी तुम्हें मोह नहीं व्यापेगा।

पूर्वकालकी बात है—नरोत्तम नामसे प्रसिद्ध एक ब्राह्मण था। वह अपने माता पिताका अनादर करके तीर्थसेवनके लिये चल दिया। सब तीर्थोंमें घूमते हुए उस ब्राह्मणके वस्त्र प्रतिदिन आकाशमें ही सूखते थे। इससे उसके मनमें बड़ा भारी अहङ्कार हो गया। वह समझने लगा, मेरे समान पुण्यात्मा और महायशस्वी दूसरा कोई नहीं है। एक दिन वह मुख ऊपरकी ओर करके यही बात कह रहा था, इतनेमें ही एक बगलेने उसके मुँहपर बीट कर दी। तब ब्राह्मणने क्रोधमें आकर उसे शाप दे दिया। बेचारा बगला



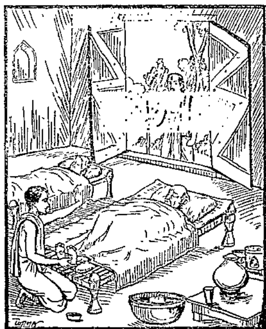
राखकी ढेरी होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। बगलेकी मृत्यु होते ही नरोत्तमके भीतर महामोहने प्रवेश किया। उसी पापसे ब्राह्मणका वस्त्र अब आकाशमें नहीं ठहरता था। यह जानकर उसे बड़ा खेद हुआ। तदनन्तर आकाशवाणीने कहा—

* पित्रोरर्चाथ पत्युश्च साम्यं सर्वजनेषु च।
मित्राद्रोहो विष्णुभक्तिरेते पञ्च महामखाः॥
प्राक् पित्रोरर्चया विप्रा यद्धर्मं साधयेन्नरः।
न तत्क्रतुशतैरेव तीर्थयात्रादिभिर्भुवि॥
पिता धर्मः पिता स्वर्गः पिता हि परमं तपः।
पितरि प्रीतिमापन्ने प्रीयन्ते सर्वदेवताः॥
पितरो यस्य तृप्यन्ति सेवया च गुणेन च।
तस्य भागीरथीस्नानमहन्यहनि वर्तते॥
सर्वतीर्थमयी माता सर्वदेवमयः पिता।
मातरं पितरं तस्मात् सर्वयत्नेन पूजयेत्॥
मातरं पितरञ्चैव यस्तु कुर्यात् प्रदक्षिणम्।
प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपा वसुन्धरा॥
जानुनी च करौ यस्य पित्रोः प्रणमतः शिरः।
निपतन्ति पृथिव्यां च सोऽक्षयं लभते दिवम्॥
(४७। ७-१३)

† रोगिणं चापि वृद्धञ्च पितरं वृत्तिकर्शितम्।
विकलं नेत्रकर्णाभ्यां त्यक्त्वा गच्छेच्च रौरवम्॥
(४७। १९)

'ब्राह्मण ! तुम परम धर्मात्मा मूक चाण्डालके पास जाओ। वहाँ जानेसे तुम्हें धर्मका ज्ञान होगा। उसका वचन तुम्हारे लिये कल्याणकारी होगा।'

यह आकाशवाणी सुनकर ब्राह्मण मूक चाण्डालके घर गया। वहाँ जाकर उसने देखा, वह चाण्डाल सब प्रकारसे



अपने माता-पिताकी सेवामें लगा है। जाड़ेके दिनोंमें वह अपने माँ-बापको स्नानके लिये गरम जल देता, उनके शरीरमें तेल मलता, तापनेके लिये अँगीठी जलाता, भोजनके पश्चात् पान खिलाता और रूईदार कपड़े पहननेको देता था। प्रतिदिन मिष्टान्न भोजनके लिये परोसता और वसन्त ऋतुमें महुएकी सुगन्धित माला पहनाता था। इनके सिवा और भी जो भोग-सामग्रियाँ प्राप्त होतीं, उन्हें देता और भाँति-भाँतिकी आवश्यकताएँ पूर्ण किया करता था। गर्मीकी मौसिममें प्रतिदिन माता-पिताको पंखा झलता था। इस प्रकार नित्यप्रति उनकी परिचर्या करके ही वह भोजन करता था। माता-पिताकी थकावट और कष्टका निवारण करना उसका सदाका नियम था। इन पुण्यकर्मोंके कारण चाण्डालका घर बिना किसी आधार और खंभेके ही आकाशमें स्थित था। उसके अंदर त्रिभुवनके स्वामी भगवान् श्रीहरि मनोहर ब्राह्मणका रूप धारण किये नित्य क्रीड़ा करते थे। वे सत्यस्वरूप परमात्मा अपने महान् सत्त्वमय तेजस्वी विग्रहसे उस चाण्डाल-मन्दिरकी शोभा बढ़ाते थे। यह सब देखकर ब्राह्मणको बड़ा विस्मय हुआ। उसने मूक चाण्डालसे कहा—'तुम मेरे पास आओ, मैं तुमसे सम्पूर्ण लोकोंके सनातन हितकी बात पूछता हूँ; उसे ठीक-ठीक बताओ।'

मूक चाण्डाल बोला—विप्र! इस समय मैं माता-पिताकी सेवा कर रहा हूँ, आपके पास कैसे आऊँ? इनकी पूजा करके आपकी आवश्यकता पूर्ण करूँगा; तबतक मेरे दरवाजेपर ठहरिये, मैं आपका अतिथि-सत्कार करूँगा।

चाण्डालके इतना कहते ही ब्राह्मण-देवता आग-बबूला हो गये और बोले—'मुझ ब्राह्मणकी सेवा छोड़कर तुम्हारे लिये कौन-सा कार्य बड़ा हो सकता है।'

चाण्डाल बोला—बाबा! क्यों व्यर्थ कोप करते हैं, मैं बगला नहीं हूँ। इस समय आपका क्रोध बगलेपर ही सफल हो सकता है, दूसरे किसीपर नहीं। अब आपकी धोती न तो आकाशमें सूखती है और न ठहर ही पाती है। अतः आकाशवाणी सुनकर आप मेरे घरपर आये हैं। थोड़ी देर ठहरिये तो मैं आपके प्रश्नका उत्तर दूँगा; अन्यथा पतिव्रता स्त्रीके पास जाइये। द्विज-श्रेष्ठ! पतिव्रता स्त्रीका दर्शन करनेपर आपका अभीष्ट सिद्ध होगा।

व्यासजी कहते हैं—तदनन्तर, चाण्डालके घरसे ब्राह्मणरूपधारी भगवान् श्रीविष्णुने निकलकर उस द्विजसे कहा—'चलो, मैं पतिव्रता देवीके घर चलता हूँ।' द्विजश्रेष्ठ नरोत्तम कुछ सोचकर उनके साथ चल दिया। उसके मनमें बड़ा विस्मय हो रहा था। उसने रास्तेमें भगवान्से पूछा—'विप्रवर! आप इस चाण्डालके घरमें जहाँ स्त्रियाँ रहती हैं, किसलिये निवास करते हैं?'

ब्राह्मणरूपधारी भगवान्ने कहा—विप्रवर! इस समय तुम्हारा हृदय शुद्ध नहीं है; पहले पतिव्रता आदिका दर्शन करो, उसके बाद मुझे ठीक-ठीक जान सकोगे।

ब्राह्मणने पूछा—तात! पतिव्रता कौन है? उसका शास्त्र-ज्ञान कितना बड़ा है? जिस कारण मैं उसके पास जा रहा हूँ, वह भी मुझे बतलाइये।

श्रीभगवान् बोले—ब्रह्मन्! नदियोंमें गङ्गाजी, स्त्रियोंमें पतिव्रता और देवताओंमें भगवान् श्रीविष्णु श्रेष्ठ हैं। जो पतिव्रता नारी प्रतिदिन अपने पतिके हित-साधनमें लगी

रहती है, वह अपने पितृकुल और पतिकुल दोनों कुलोंकी सौ-सौ पीढ़ियोंका उद्धार कर देती है।*

ब्राह्मणने पूछा—द्विजश्रेष्ठ! कौन स्त्री पतिव्रता होती है? पतिव्रताका क्या लक्षण है? मैं जिस प्रकार इस बातको ठीक-ठीक समझ सकूँ, उस प्रकार उपदेश कीजिये।

श्रीभगवान् बोले—जो स्त्री पुत्रकी अपेक्षा सौगुने स्नेहसे पतिकी आराधना करती है, राजाके समान उसका भय मानती है और पतिको भगवान्‌का स्वरूप समझती है, वह पतिव्रता है। जो गृहकार्य करनेमें दासी, रमणकालमें वेश्या तथा भोजनके समय माताके समान आचरण करती है और जो विपत्तिमें स्वामीको नेक सलाह देकर मन्त्रीका काम करती है, वह स्त्री पतिव्रता मानी गयी है। जो मन, वाणी, शरीर और क्रियाद्वारा कभी पतिकी आज्ञाका उल्लङ्घन नहीं करती तथा हमेशा पतिके भोजन कर लेनेपर ही भोजन करती है, उस स्त्रीको पतिव्रता समझना चाहिये। जिस जिस शय्यापर पति शयन करते हैं, वहाँ वहाँ जो प्रतिदिन यत्नपूर्वक उनकी पूजा करती है, पतिके प्रति कभी जिसके मनमें डाह नहीं पैदा होती, कृपणता नहीं आती और जो मान भी नहीं करती, पतिकी ओरसे आदर मिले या अनादर—दोनोंमें जिसकी समान बुद्धि रहती है, ऐसी स्त्रीको पतिव्रता कहते हैं। जो साध्वी स्त्री सुन्दर वेषधारी परपुरुषको देखकर उसे भ्राता, पिता अथवा पुत्र मानती है, वह भी पतिव्रता है।† द्विजश्रेष्ठ! तुम उस पतिव्रताके पास जाओ और उसे अपना मनोरथ कह सुनाओ। उसका नाम शुभा है। वह रूपवती युवती है, उसके हृदयमें दया भरी है। वह बड़ी यशस्विनी है। उसके पास जाकर तुम अपने हितकी बात पूछो।

व्यासजी कहते हैं—यों कहकर भगवान् वहा अन्तर्धान हो गये। उन्हें अदृश्य होते देख ब्राह्मणको बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने पतिव्रताके घर जाकर उसके विषयमें पूछा। अतिथिकी बोली सुनकर पतिव्रता स्त्री वेगपूर्वक घरसे निकली और ब्राह्मणको आया देख दरवाजेपर खड़ी हो गयी।



ब्राह्मणने उसे देखकर प्रसन्नतापूर्वक उससे कहा—'देवि! तुमने जैसा देखा और समझा है, उसके अनुसार स्वयं ही सोचकर मेरे लिये प्रिय और हितकी बात बताओ।'

पतिव्रता बोली—ब्रह्मन्! इस समय मुझे पतिदेवकी पूजा करनी है, अतः अवकाश नहीं है, इसलिये आपका कार्य पीछे करूँगी। इस समय मेरा आतिथ्य ग्रहण कीजिये।

ब्राह्मण बोला—कल्याणी! मेरे शरीरमें इस समय भूख, प्यास और थकावट नहीं है। मुझे अभीष्ट बात बताओ, नहीं तो तुम्हें शाप दे दूँगा।

तब उस पतिव्रताने भी कहा—'द्विजश्रेष्ठ! मैं बगला नहीं हूँ, आप धर्म तुलाधारके पास जाइये और उन्हींसे अपने

* पतिव्रता च या नारी पत्युर्नित्यं हिते रता।
कुलद्वयस्य पुरुषानुद्धरेत्सा शतं शतम्॥
(४७।५१)

† पुत्राच्छतगुणं स्नेहाद्राजानं च भयादथ।
आराधयेत् पतिं शौरिं या पश्येत् सा पतिव्रता॥
कार्ये दासी रतौ वेश्या भोजने जननीसमा।
विपत्सु मन्त्रिणी भर्तुः सा च भार्या पतिव्रता॥
भर्तुराज्ञां न लङ्घेद्या मनोवाक्कायकर्मभिः।
भुङ्क्ते पत्यौ तदा चाति सा च भार्या पतिव्रता॥
यस्यां यस्यां तु शय्यायां पतिस्स्वपिति यत्नतः।
तत्र तत्र च सा भर्तुरर्चां करोति नित्यशः॥
नैव मत्सरतां याति न कार्पण्यं न मानिनी।
मानेऽमाने समानत्वं या पश्येत् सा पतिव्रता॥
सुवेषं या नरं दृष्ट्वा भ्रातरं पितरं सुतम्।
मन्यते च परं साध्वी सा च भार्या पतिव्रता॥
(४७।५५-६०)

हितकी बात पूछिये।' यों कहकर वह महाभागा पतिव्रता घरके भीतर चली गयी। तब ब्राह्मणने चाण्डालके घरकी भाँति वहाँ भी विप्ररूपधारी भगवान्‌को उपस्थित देखा। उन्हें देखकर वह बड़े विस्मयमें पड़ा और कुछ सोच-विचार कर उनके समीप गया। घरमें जानेपर उसे हर्षमें भरे हुए ब्राह्मण और उस पतिव्रताके भी दर्शन हुए। उन्हें देखकर नरोत्तम ब्राह्मणने कहा—'तात! देशान्तरमें जो घटना घटी थी, उसे इस पतिव्रता देवीने भी बता दिया और चाण्डालने तो बताया ही था। ये लोग उस घटनाको कैसे जानते हैं? इस बातको लेकर मुझे बड़ा विस्मय हो रहा है। इससे बढ़कर महान् आश्चर्य और क्या हो सकता है।

श्रीभगवान् बोले—तात! महात्मा पुरुष अत्यन्त पुण्य और सदाचारके बलपर सबका कारण जान लेते हैं, जिससे तुम्हें विस्मय हुआ है। मुने! बताओ, इस समय उस पतिव्रताने तुमसे क्या कहा है?

ब्राह्मणने कहा—वह तो मुझे धर्म-तुलाधारसे प्रश्न करनेके लिये उपदेश देती है।

श्रीभगवान् बोले—'मुनिश्रेष्ठ! आओ, मैं उसके पास चलता हूँ।' यों कहकर भगवान् जब चलने लगे, तब ब्राह्मणने पूछा—'तुलाधार कहाँ रहता है?'

श्रीभगवान्‌ने कहा—जहाँ मनुष्योंकी भीड़ एकत्रित है और नाना प्रकारके द्रव्योंकी बिक्री हो रही है, उस बाजारमें तुलाधार वैश्य इधर-उधर क्रय-विक्रय करता है। उसने कभी मन, वाणी या क्रियाद्वारा किसीका कुछ बिगाड़ नहीं किया, असत्य नहीं बोला और दुष्टता नहीं की। वह सब लोगोंके हितमें तत्पर रहता है। सब प्राणियोंमें समान भाव रखता तथा ढेले, पत्थर और सुवर्णको समान समझता है। लोग जौ, नमक, तेल, घी, अनाजकी ढेरियाँ तथा अन्यान्य संगृहीत वस्तुएँ उसकी जबानपर ही लेते-देते हैं। वह प्राणान्त उपस्थित होनेपर भी सत्य छोड़कर कभी झूठ नहीं बोलता। इसीसे वह धर्म-तुलाधार कहलाता है।

श्रीभगवान्‌के यों कहनेपर ब्राह्मणने नाना प्रकारके रसोंको बेचते हुए तुलाधारको देखा। वह बिक्रीकी वस्तुओंके सम्बन्धमें बातें कर रहा था। बहुतसे पुरुष और स्त्रियाँ उसे चारों ओरसे घेरकर खड़ी थीं। ब्राह्मणको उपस्थित देख तुलाधारने मधुर वाणीमें पूछा—'ब्रह्मन्! यहाँ कैसे पधारना हुआ?'

ब्राह्मणने कहा—मुझे धर्मका उपदेश करो, मैं इसीलिये तुम्हारे पास आया हूँ।

तुलाधार बोला—विप्रवर! जबतक लोग मेरे पास रहेंगे, तबतक मैं निश्चिन्त नहीं हो सकूँगा। पहरभर राततक यही हालत रहेगी। अतः आप मेरा उपदेश मानकर धर्माकरके पास जाइये। बगलेकी मृत्युसे होनेवाला दोष और आकाशमें धोती सुखानेका रहस्य—ये सभी बातें आगे आपको मालूम हो जायँगी। धर्माकरका नाम अद्रोहक है। वे बड़े सज्जन हैं। उनके पास जाइये। वहाँ उनके उपदेशसे आपकी कामना सफल होगी।

यों कहकर तुलाधार खरीद-बिक्रीमें लग गया। नरोत्तमने विप्ररूपधारी भगवान्‌से पूछा—'तात! अब मैं तुलाधारके कथनानुसार सज्जन अद्रोहकके पास जाऊँगा। परन्तु मैं उनका घर नहीं जानता।'

श्रीभगवान् बोले—चलो, मैं तुम्हारे साथ उनके घर चलूँगा।

तदनन्तर मार्गमें जाते हुए भगवान्‌से ब्राह्मणने पूछा—'तात! तुलाधार न तो देवताओं एवं ऋषियोंका और न पितरोंका ही तर्पण करता है। फिर देशान्तरमें संघटित हुए मेरे वृत्तान्तको वह कैसे जानता है? इससे मुझे बड़ा विस्मय होता है। आप इसका सब कारण बताइये।

श्रीभगवान् बोले—ब्रह्मन्! उसने सत्य और समतासे तीनों लोकोंको जीत लिया है; इसीसे उसके ऊपर पितर, देवता तथा मुनि भी सन्तुष्ट रहते हैं। धर्मात्मा तुलाधार उपर्युक्त गुणोंके कारण ही भूत और भविष्यकी सब बातें जानता है। सत्यसे बढ़कर कोई धर्म और झूठसे बड़ा दूसरा कोई पाप नहीं है।* जो पुरुष पापसे रहित और समभावमें स्थित है, जिसका चित्त शत्रु, मित्र और उदासीनके प्रति समान है, उसके सब पापोंका नाश हो जाता है और वह भगवान् श्रीविष्णुके सायुज्यको प्राप्त होता है। समता धर्म और समता ही उत्कृष्ट तपस्या है। जिसके हृदयमें सदा समता विराजती है, वही पुरुष सम्पूर्ण लोकोंमें श्रेष्ठ, योगियोंमें गणना करनेके योग्य और निर्लोभ होता है। जो सदा इसी प्रकार समतापूर्ण बर्ताव करता है, वह अपनी अनेकों पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है। उस पुरुषमें सत्य,

* सत्येन समभावेन जितं तेन जगत्त्रयम्।
तेनातृप्यन्त पितरो देवा मुनिगणैः सह॥
भूतभव्यप्रवृत्तं च तेन जानाति धार्मिकः।
नास्ति सत्यात्परो धर्मो नानृतात्पातकं परम्॥
(४७। ९२-९३)

इन्द्रिय-सयम, मनोनिग्रह, धीरता, स्थिरता, निर्लोभता और आलस्यहीनता—ये सभी गुण प्रतिष्ठित होते हैं। समताके प्रभावसे धर्मज्ञ पुरुष देवलोक और मनुष्यलोकके सम्पूर्ण वृत्तान्तोंको जान लेता है। उसकी देहके भीतर भगवान् श्रीविष्णु विराजमान रहते हैं। सत्य और सरलता आदि गुणोंमें उसकी समानता करनेवाला इस ससारमें दूसरा कोई नहीं होता। वह साक्षात् धर्मका स्वरूप होता है और वही इस जगत्को धारण करता है।

ब्राह्मणने कहा—विप्रवर! आपकी कृपासे मुझे तुलाधार के सर्वज्ञ होनेका कारण ज्ञात हो गया, अब अद्रोहकका जो वृत्तान्त हो, वह मुझे बताइये।

श्रीभगवान् बोले—विप्रवर! पूर्वकालकी बात है, एक राजपुत्रकी कुलवती स्त्री बड़ी सुन्दरी और नयी अवस्थाकी थी। वह कामदेवकी पत्नी रति और इन्द्रकी पत्नी शचीके समान मनको हरनेवाली थी। राजकुमार उसे अपने प्राणोंके समान प्यार करते थे। उस सुन्दरी भार्याका नाम भी सुन्दरी ही था। एक दिन राजकुमारको राजकार्यके लिये ही अकस्मात् बाहर जानेके लिये उद्यत होना पड़ा। उन्होंने मन ही मन सोचा—'मैं प्राणोंसे भी बढ़कर प्यारी अपनी इस भार्याको किस स्थानपर रखूँ, जिससे इसके सतीत्वकी रक्षा निश्चितरूपसे हो सके।' इस बातपर खूब विचार करके राजकुमार सहसा अद्रोहकके घरपर आये और उनसे अपनी पत्नीकी रक्षाका प्रस्ताव करने लगे। उनकी बात सुनकर अद्रोहकको बड़ा विस्मय हुआ। वे बोले—'तात! न तो मैं आपका पिता हूँ न भाई हूँ, न बान्धव हूँ, न आपकी पत्नीके पिता माताके कुलका ही, तथा सुहृदोंमेंसे भी कोई नहीं हूँ, फिर मेरे घरमें इसको रखनेसे आप किस प्रकार निश्चिन्त हो सकेंगे?'

राजकुमार बोले—महात्मन्! इस ससारमें आपके समान धर्मज्ञ और जितेन्द्रिय पुरुष दूसरा कोई नहीं है।

यह सुनकर अद्रोहकने उस विज्ञ राजकुमारसे कहा—'भैया! मुझे दोष न देना। इस त्रिभुवन-मोहिनी भार्याकी रक्षा करनेमें कौन पुरुष समर्थ हो सकता है?'

राजपुत्रने कहा—मैं सब बातोंका भलीभाँति विचार करके ही आपके पास आया हूँ। यह आपके घरमें रहे, अब मैं जाता हूँ।

राजकुमारके यों कहनेपर वे फिर बोले—'भैया! इस शोभासम्पन्न नगरमें बहुतेरे कामी पुरुष भरे पड़े हैं। यहाँ किसी स्त्रीके सतीत्वकी रक्षा कैसे हो सकती है?' राजकुमार पुन बोले—'जैसे भी हो, रक्षा कीजिये! मैं तो अब जाता हूँ।' गृहस्थ अद्रोहकने धर्मसकटमें पड़कर कहा—'तात! मैं उचित और हितकारी समझकर इसके साथ सदा अनुचित बर्ताव करूँगा और उसी अवस्थामें ऐसी स्त्री सदा मेरे घरमें सुरक्षित रह सकती है। अन्यथा इस अरक्ष्य वस्तुकी रक्षाके लिये आप ही कोई अनुकूल और प्रिय उपाय बतलाइये। इसे मेरी शय्यापर मेरे एक ओर मेरी स्त्रीके साथ शयन करना होगा। फिर भी यदि आप इसे अपनी वल्लभा समझें, तब तो यह रह सकती है, नहीं तो यहाँसे चली जाय।'

यह सुनकर राजकुमारने एक क्षणतक कुछ विचार किया, फिर बोले—'तात! मुझे आपकी बात स्वीकार है। आपको जो अनुकूल जान पड़े, वही कीजिये।' ऐसा कहकर राजकुमार अपनी पत्नीसे बोले—'सुन्दरी! तुम इनके कथनानुसार सब कार्य करना, तुमपर कोई दोष नहीं आयेगा। इसके लिये मेरी आज्ञा है।' यों कहकर वे अपने पिता महाराजके आदेशसे गन्तव्य स्थानको चले गये। तदनन्तर रातमें अद्रोहकने जैसा कहा था, वैसा ही किया। वे धर्मात्मा नित्यप्रति दोनों स्त्रियोंके बीचमें शयन करते थे। फिर भी वे अपनी और परायी स्त्रीके विषयमें कभी धर्मसे विचलित नहीं होते थे। अपनी स्त्रीके स्पर्शसे ही उनके मनमें कामोपभोग की इच्छा होती थी। इधर राजकुमारकी स्त्रीके स्तन भी बार-बार उनकी पीठमें लग जाते थे, किन्तु उसका उनके प्रति वैसा ही भाव होता था, जैसा बालक पुत्रका माताके स्तनोंके प्रति होता है। वे प्रतिदिन उसके प्रति मातृभावको ही दृढ रखते थे। क्रमश उनके हृदयसे स्त्री-सम्भोगकी इच्छा ही जाती रही। इस प्रकार छ मास व्यतीत होनेपर राजकुमारीके पति अद्रोहकके नगरमें आये। उन्होंने लोगोंसे अद्रोहक तथा अपनी स्त्रीके बर्तावके सम्बन्धमें पूछा। लोगोंने भी अपनी-अपनी रुचिके अनुसार उत्तर दिया। कोई राजकुमारके प्रबन्धको उत्तम बताते थे। कुछ नौजवान उनकी बात सुनकर आश्चर्यमें पड़ जाते थे और कुछ लोग इस प्रकार उत्तर देते थे—'भाई! तुमने अपनी स्त्री उसे सौंप दी है और वह उसीके साथ शयन करता है। स्त्री और पुरुषमें एकत्र ससर्ग होनेपर दोनोंके मन शान्त कैसे रह सकते हैं?' अद्रोहकने अपने धर्माचरणके बलसे लोगोंकी कुत्सित चर्चा सुन ली। तब उनके मनमें लोकनिन्दासे मुक्त होनेका शुभ सकल्प प्रकट हुआ। उन्होंने स्वय लकड़ी एकत्रित करके एक बहुत बड़ी चिता बनायी और उसमें आग लगा दी।

चिता प्रज्वलित हो उठी। इसी समय प्रतापी राजकुमार अद्रोहकके घर आ पहुँचे। वहाँ उन्होंने अद्रोहक तथा अपनी पत्नीको भी देखा। पत्नीका मुख प्रसन्नतासे खिला हुआ था और अद्रोहक अत्यन्त विषादयुक्त थे। उन दोनों-की मानसिक स्थिति जानकर राजकुमारने कहा—'भाई! मैं आपका मित्र हूँ और बहुत दिनोंके बाद यहाँ लौटा हूँ। आप मुझसे बातचीत क्यों नहीं करते ?'



अद्रोहकने कहा—मित्र! मैंने आपके हितके लिये जो दुष्कर कर्म किया है, वह लोकनिन्दाके कारण व्यर्थ-सा हो गया है। अतः अब मैं अग्निमें प्रवेश करूँगा। सम्पूर्ण देवता और मनुष्य मेरे इस कार्यको देखें।

श्रीभगवान् कहते हैं—ऐसा कहकर महाभाग अद्रोहक अग्निमें प्रवेश कर गये। किन्तु अग्नि उनके शरीर, वस्त्र और केशोंको जला नहीं सका। आकाशमें खड़े समस्त देवता प्रसन्न होकर उन्हें साधुवाद देने लगे। सबने चारों ओरसे उनके मस्तकपर फूलोंकी वर्षा की। जिन-जिन लोगोंने राजकुमारकी पत्नी और अद्रोहकके सम्बन्धमें कलङ्कपूर्ण बात कही थी, उनके मुँहपर नाना प्रकारकी कोढ़ हो गयी। देवताओंने वहाँ उपस्थित हो अद्रोहकको आगसे खींचकर बाहर निकाला और प्रसन्नतापूर्वक दिव्य पुष्पोंसे उनका पूजन किया। उनका चरित्र सुनकर मुनियोंको भी बड़ा विस्मय हुआ। समस्त मुनिवरों तथा विभिन्न वर्णोंके मनुष्योंने उन महातेजस्वी महात्माका पूजन किया और उन्होंने भी सबका विशेष आदर किया। उस समय देवताओं, असुरों और मनुष्योंने मिलकर उनका नाम सज्जनाद्रोहक रखा। उनके चरणोंकी धूलसे पवित्र हुई भूमिके ऊपर खेतीकी उपज अधिक होने लगी। देवताओंने राजकुमारसे कहा—'तुम अपनी इस स्त्रीको स्वीकार करो। इन अद्रोहक-के समान कोई मनुष्य इस संसारमें नहीं हुआ है। इस समय इस पृथ्वीपर दूसरा कोई ऐसा पुरुष नहीं है, जिसे काम और लोभने परास्त न किया हो। देवता, असुर, मनुष्य, राक्षस, मृग, पक्षी और कीट आदि सम्पूर्ण प्राणियोंके लिये यह काम दुर्जय है। काम,लोभ और क्रोधके कारण ही प्राणियोंको सदा जन्म लेना पड़ता है। काम ही संसार-बन्धनमें डालनेवाला है। प्रायः कहीं भी कामरहित पुरुषका मिलना कठिन है। इन अद्रोहकने सबको जीत लिया है; चौदहों भुवनोंपर विजय प्राप्त की है। इनके हृदयमें भगवान् श्रीवासुदेव बड़ी प्रसन्नताके साथ नित्य विराजमान रहते हैं। इनका स्पर्श और दर्शन करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाते हैं और निष्पाप होकर अक्षय स्वर्ग प्राप्त करते हैं।'

यों कहकर देवता विमानोंपर बैठ आनन्दपूर्वक स्वर्ग-लोकको पधारे। मनुष्य भी सन्तुष्ट होकर अपने-अपने स्थान-को चल दिये तथा वे दोनों स्त्री-पुरुष भी अपने राजमहलको चले गये। तबसे अद्रोहकको दिव्य दृष्टि प्राप्त हो गयी है। वे देवताओंको भी देखते हैं और तीनों लोकोंकी बातें अनायास ही जान लेते हैं।

व्यासजी कहते हैं—तदनन्तर अद्रोहककी गलीमें जाकर द्विजने उनका दर्शन किया और बड़ी प्रसन्नताके साथ उनसे धर्ममय उपदेश तथा हितकी बातें पूछीं।

सज्जनाद्रोहकने कहा—धर्मज्ञ ब्राह्मण! आप पुरुषोंमें श्रेष्ठ वैष्णवके पास जाइये। उनका दर्शन करनेसे इस समय आपका मनोरथ सफल होगा। बगलेकी मृत्यु तथा आकाशमें वस्त्रके न सूखने आदिका कारण आपको विदित हो जायगा। इसके सिवा आपके हृदयमें और भी जो-जो कामनाएँ हैं, उनकी भी पूर्ति हो जायगी।

यह सुनकर वह ब्राह्मण द्विजरूपधारी भगवान्के साथ प्रसन्नतापूर्वक वैष्णवके यहाँ आया। वहाँ पहुँचकर उसने सामने बैठे हुए शुद्ध हृदयवाले एक तेजस्वी पुरुषको देखा, जो समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न एवं अपने तेजसे देदीप्यमान

थे। धर्मात्मा द्विजने ध्यानमग्न हरिभक्तसे कहा—'महात्मन्! मैं बहुत दूरसे आपके पास आया हूँ। मेरे लिये जो-जो कर्तव्य उचित हो, उसका उपदेश कीजिये।'

वैष्णवने कहा—देवताओंमें श्रेष्ठ भगवान् श्रीविष्णु तुमपर प्रसन्न हैं। इस समय तुम्हें देखकर मेरा हृदय उल्लसित सा हो रहा है। अतः तुम्हें अनुपम कल्याणकी प्राप्ति होगी। आज तुम्हारा मनोरथ सफल होगा। मेरे घरमें भगवान् श्रीविष्णु विराजमान हैं।

वैष्णवके यों कहनेपर ब्राह्मणने पुनः उनसे कहा—'भगवान् श्रीविष्णु कहाँ हैं, आज कृपा करके मुझे उनका दर्शन कराइये।'

वैष्णवने कहा—इस सुन्दर देवालयमें प्रवेश करके तुम परमेश्वरका दर्शन करो। ऐसा करनेसे तुम्हें जन्म और मृत्युके बन्धनमें डालनेवाले घोर पापसे छुटकारा मिल जायगा।

उनकी बात सुनकर जब ब्राह्मणने देवमन्दिरमें प्रवेश किया तो देखा—वे ही विप्ररूपधारी भगवान् कमलके आसनपर विराजमान हैं। ब्राह्मणने मस्तक झुकाकर उन्हें प्रणाम किया और बड़ी प्रसन्नताके साथ उनके दोनों चरण पकड़कर कहा—'देवेश्वर! अब मुझपर प्रसन्न होइये। मैंने पहले आपको नहीं पहचाना था। प्रभो! इस लोक और परलोकमें भी मैं आपका किङ्कर बना रहूँ। मधुसूदन! मुझे अपने ऊपर आपका प्रत्यक्ष अनुग्रह दिखायी दिया है। यदि मुझपर कृपा हो तो मैं आपका साक्षात् स्वरूप देखना चाहता हूँ।'

भगवान् श्रीविष्णु बोले—भूदेव! तुम्हारे ऊपर मेरा प्रेम सदा ही बना रहता है। मैंने स्नेहवश ही तुम्हें पुण्यात्मा महापुरुषोंका दर्शन कराया है। पुण्यवान् महात्माओंके एक बार भी दर्शन, स्पर्श, ध्यान एवं नामोच्चारण करनेसे तथा उनके साथ वार्तालाप करनेसे मनुष्य अक्षय स्वर्गका सुख भोगता है। महापुरुषोंका नित्य सङ्ग करनेसे सब पापोंका नाश हो जाता है तथा मनुष्य अनन्त सुख भोगकर मेरे स्वरूपमें लीन होता है।* जो मनुष्य पुण्य-तीर्थोंमें स्नान करके शङ्करजी तथा पुण्यात्मा पुरुषोंके आश्रमका दर्शन करता है, वह भी मेरे शरीरमें लीन हो जाता है। एकादशी तिथिको—जो मेरा ही दिन (हरिवासर) है—उपवास करके जो लोगोंके सामने पुण्यमयी कथा कहता है, वह भी मेरे स्वरूपमें लीन हो जाता है। मेरे चरित्रका श्रवण करते हुए जो रात्रिमें जागता है, उसका भी मेरे शरीरमें लय होता है। विप्रवर! जो प्रतिदिन ऊँचे स्वरसे गीत गाते और बाजा बजाते हुए मेरे नामोंका स्मरण करता है, उसका भी मेरी देहमें लय होता है। जिसका मन तपस्वी, राजा और गुरुजनोंसे कभी द्रोह नहीं करता, वह भी मेरे स्वरूपमें लीन होता है। तुम मेरे भक्त और तीर्थस्वरूप हो, किन्तु तुमने बगलेकी मृत्युके लिये जो शाप दिया था, उसके दोषसे छुटकारा दिलानेके लिये मैंने ही वहाँ उपस्थित होकर कहा कि 'तुम पुण्यवानोंमें श्रेष्ठ और तीर्थस्वरूप महात्मा मूक चाण्डालके पास जाओ।' तात! उस महात्माका दर्शन करके तुमने देखा ही था कि वह किस प्रकार अपने माता पिताका पूजन करता था। उन सभी महात्माओंके दर्शनसे, उनके साथ वार्तालाप करनेसे और मेरा सम्पर्क होनेसे आज तुम मेरे मन्दिरमें आये हो। करोड़ों जन्मोंके बाद जिसके पापोंका क्षय होता है, वह धर्मज्ञ पुरुष मेरा दर्शन करता है, जिससे उसे प्रसन्नता प्राप्त होती है। वत्स! मेरे ही अनुग्रहसे तुमको मेरा दर्शन हुआ है। इसलिये तुम्हारे मनमें जो इच्छा हो, उसके अनुसार मुझसे वरदान माँग लो।

ब्राह्मण बोला—नाथ! मेरा मन सर्वथा आपके ही ध्यानमें स्थित रहे, सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी माधव! आपके सिवा कोई भी दूसरी वस्तु मुझे कभी प्रिय न लगे।

श्रीभगवान्‌ने कहा—निष्पाप ब्राह्मण! तुम्हारी बुद्धिमें सदा ऐसा उत्तम विचार जाग्रत् रहता है; इसलिये तुम मेरे धाममें आकर मेरे ही समान दिव्य भोगोंका उपभोग करोगे। किन्तु तुम्हारे माता पिता तुमसे आदर नहीं पा रहे हैं; अतः पहले माता पिताकी पूजा करो, इसके बाद मेरे स्वरूपको प्राप्त हो सकोगे। उनके दुःखपूर्ण उच्छ्वास और क्रोधसे तुम्हारी तपस्या प्रतिदिन नष्ट हो रही है। जिस पुत्रके ऊपर सदा ही माता पिताका कोप रहता है, उसको नरकमें पड़नेसे मैं, ब्रह्मा तथा महादेवजी भी नहीं रोक सकते *। इसलिये तुम माता पिताके पास जाओ और

* दर्शनात्स्पर्शनाद्ध्यानात्कीर्तनाद्भाषणात्तथा।
सकृत्पुण्यवतामेव स्वर्गं चाक्षयमश्नुते॥
नित्यमेव तु संसर्गात् सर्वपापक्षयो भवेत्।
भुक्त्वा सुखमनन्तं च मद्देहे प्रविलीयते॥
(४७। १६२-६३)

* मन्युर्निपतिते यस्मिन् पुत्रे पित्रोश्च नित्यशः।
तन्निरयं न बाधेऽहं न धाता न च शङ्करः॥
(४७। १७८)

यत्नपूर्वक उनकी पूजा करो। फिर उन्हींकी कृपासे तुम मेरे पदको प्राप्त होगे।

व्यासजी कहते हैं—जगद्गुरु भगवान्‌के ऐसा कहनेपर द्विजश्रेष्ठ नरोत्तमने फिर इस प्रकार कहा—'नाथ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मुझे अपने स्वरूपका दर्शन कराइये।' तब सम्पूर्ण लोकोंके एकमात्र कर्ता एवं ब्राह्मण-हितैषी भगवान्‌ने नरोत्तमके प्रेमसे प्रसन्न होकर उस पुण्यकर्मा ब्राह्मणको शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये अपने पुरुषोत्तम रूपका दर्शन कराया। उनके तेजसे सम्पूर्ण जगत् व्याप्त



हो रहा था। ब्राह्मणने दण्डकी भाँति धरतीपर गिरकर भगवान्‌को प्रणाम किया और कहा—'जगदीश्वर! आज मेरा जन्म सफल हुआ; आज मेरे नेत्र कल्याणमय हो गये। इस समय मेरे दोनों हाथ प्रशस्त हो गये। आज मैं भी धन्य हो गया। मेरे पूर्वज सनातन ब्रह्मलोकको जा रहे हैं। जनार्दन! आज आपकी कृपासे मेरे बन्धु-बान्धव आनन्दित हो रहे हैं। इस समय मेरे सभी मनोरथ सिद्ध हो गये। किन्तु नाथ! मूक चाण्डाल आदि ज्ञानी महात्माओंकी बात सोचकर मुझे बड़ा विस्मय हो रहा है। भला, वे लोग देशान्तरमें होनेवाले मेरे वृत्तान्तको कैसे जानते हैं? मूक चाण्डालके घरमें आप अत्यन्त सुन्दर ब्राह्मणका रूप धारण किये विराजमान थे; इसी प्रकार पतिव्रताके घरमें, तुलाधारके यहाँ, मित्राद्रोहकके भवनमें तथा इन वैष्णव महात्माके मन्दिरमें भी आपका दर्शन हुआ है। इन सब बातोंका यथार्थ रहस्य क्या है? मुझपर अनुग्रह करके बताइये।'

श्रीभगवान्‌ने कहा—विप्रवर! मूक चाण्डाल सदा अपने माता-पितामें भक्ति रखता है। शुभा देवी पतिव्रता है। तुलाधार सत्यवादी है और सब लोगोंके प्रति समान भाव रखता है। अद्रोहकने लोभ और कामपर विजय पायी है तथा वैष्णव मेरा अनन्य भक्त है। इन्हीं सद्गुणोंके कारण प्रसन्न होकर मैं इन सबके घरमें सानन्द निवास करता हूँ। मेरे साथ सरस्वती और लक्ष्मी भी इन लोगोंके यहाँ मौजूद रहती हैं। मूक चाण्डाल त्रिभुवनमें सबका कल्याण करनेवाला है। चाण्डाल होनेपर भी वह सदाचारमें स्थित है; इसलिये देवता उसे ब्राह्मण मानते हैं। पुण्य-कर्मद्वारा मूक चाण्डालकी समानता करनेवाला इस संसारमें दूसरा कोई नहीं है। वह सदा माता-पिताकी भक्तिमें संलग्न रहता है। उसने [अपनी इस भक्तिके बलसे] तीनों लोकोंको जीत लिया है। उसकी माता-पिताके प्रति भक्ति देखकर मैं बहुत सन्तुष्ट रहता हूँ और इसीलिये उसके घरके भीतर आकाशमें सम्पूर्ण देवताओंके साथ ब्राह्मणरूपसे निवास करता हूँ। इसी प्रकार मैं उस पतिव्रताके, तुलाधारके, अद्रोहकके और इस वैष्णवके घरमें भी सदा निवास करता हूँ। धर्मज्ञ! एक मुहूर्तके लिये भी मैं इन लोगोंका घर नहीं छोड़ता। जो पुण्यात्मा हैं, वे ही मेरा प्रतिदिन दर्शन पाते हैं; दूसरे पापी मनुष्य नहीं। तुमने अपने पुण्यके प्रभावसे और मेरे अनुग्रहके कारण मेरा दर्शन किया है; अब मैं क्रमशः उन महात्माओंके सदाचारका वर्णन करूँगा, तुम ध्यान देकर सुनो। ऐसे वर्णनोंको सुनकर मनुष्य जन्म और मृत्युके बन्धनसे सर्वथा मुक्त हो जाता है। देवताओंमें भी, पिता और मातासे बढ़कर तीर्थ नहीं है। जिसने माता-पिताकी आराधना की है, वही पुरुषोंमें श्रेष्ठ है। वह मेरे हृदयमें रहता है और मैं उसके हृदयमें। हम दोनोंमें कोई अन्तर नहीं रह जाता। इहलोक और परलोकमें भी वह मेरे ही समान पूज्य है। वह अपने समस्त बन्धु-बान्धवोंके साथ मेरे रमणीय धाममें पहुँचकर मुझमें ही लीन हो जाता है। माता-पिताकी आराधनाके बलसे ही वह नरश्रेष्ठ मूक चाण्डाल तीनों लोकोंकी बातें जानता है। फिर इस विषयमें तुम्हें विस्मय क्यों हो रहा है?

ब्राह्मणने पूछा—जगदीश्वर! मोह और अज्ञानवश पहले माता-पिताकी आराधना न करके फिर भले-बुरेका ज्ञान

होनेपर यदि मनुष्य पुनः माता-पिताकी सेवा करना चाहे तो उसके लिये क्या कर्तव्य है ?

श्रीभगवान् बोले—विप्रवर ! एक वर्ष, एक मास, एक पक्ष, एक सप्ताह अथवा एक दिन भी जिसने माता-पिताकी भक्ति की है, वह मेरे धामको प्राप्त होता है।* तथा जो उनके मनको कष्ट पहुँचाता है, वह अवश्य नरकमें पड़ता है। जिसने पहले अपने माता-पिताकी पूजा की हो या न की हो, यदि उनकी मृत्युके पश्चात् वह साँड़ छोड़ता है, तो उसे पितृभक्तिका फल मिल जाता है। जो बुद्धिमान् पुत्र अपना सर्वस्व लगाकर माता-पिताका श्राद्ध करता है, वह जातिस्मर (पूर्वजन्मकी बातोंको स्मरण करनेवाला) होता है और उसे पितृभक्तिका पूरा फल मिल जाता है। श्राद्धसे बढ़कर महान् यज्ञ तीनों लोकोंमें दूसरा कोई नहीं है। इसमें जो कुछ दान दिया जाता है, वह सब अक्षय होता है। दूसरोंको जो दान दिया जाता है, उसका फल दस हजार गुना होता है। अपनी जातिवालोंको देनेसे लाख गुना, पिण्डदानमें लगाया हुआ धन करोड़गुना और ब्राह्मणको देनेपर वह अनन्त गुना फल देनेवाला बताया गया है। जो गङ्गाजीके जलमें और गया, प्रयाग, पुष्कर, काशी, सिद्धकुण्ड तथा गङ्गा-सागर-सङ्गम तीर्थमें पितरोंके लिये अन्न दान करता है, उसकी मुक्ति निश्चित है तथा उसके पितर अक्षय स्वर्ग प्राप्त करते हैं। उनका जन्म सफल हो जाता है। जो विशेषतः गङ्गाजीमें तिलमिश्रित जलके द्वारा तर्पण करता है, उसे भी मोक्षका मार्ग मिल जाता है। फिर जो पिण्डदान करता है, उसके लिये तो कहना ही क्या है। अमावास्या और युगादि तिथियोंको तथा चन्द्रमा और सूर्य ग्रहणके दिन जो पार्वण श्राद्ध करता है, वह अक्षय लोकका भागी होता है। उसके पितर उसे प्रिय आशीर्वाद और अनन्त भोग प्रदान करके दस हजार वर्षोंतक तृप्त रहते हैं। इसलिये प्रत्येक पर्वपर पुत्रोंको प्रसन्नतापूर्वक पार्वण श्राद्ध करना चाहिये। माता-पिताके इस श्राद्ध-यज्ञका अनुष्ठान करके मनुष्य सब प्रकारके बन्धनोंसे मुक्त हो जाता है।

जो श्राद्ध प्रतिदिन किया जाता है, उसे नित्य श्राद्ध माना गया है। जो पुरुष श्रद्धापूर्वक नित्य श्राद्ध करता है, वह अक्षय लोकका उपभोग करता है। इसी प्रकार कृष्ण पक्षमें विधिपूर्वक काम्य श्राद्धका अनुष्ठान करके मनुष्य मनोवाञ्छित फल प्राप्त करता है। आषाढ़की पूर्णिमाके बाद जो पाँचवाँ पक्ष आता है, [जिसे महालय या पितृपक्ष कहते हैं] उसमें पितरोंका श्राद्ध करना चाहिये। उस समय सूर्य कन्याराशिपर गये हैं या नहीं—इसका विचार नहीं करना चाहिये। जब सूर्य कन्याराशिपर स्थित होते हैं, उस समयसे लेकर सोलह दिन उत्तम दक्षिणाओंसे सम्पन्न यज्ञोंके समान महत्त्व रखते हैं। उन दिनोंमें इस परम पवित्र काम्य श्राद्धका अनुष्ठान करना उचित है। इससे श्राद्धकर्ताका मङ्गल होता है। यदि उस समय श्राद्ध न हो सके तो जब सूर्य तुलाराशिपर स्थित हों, उसी समय कृष्णपक्ष आदिमें उक्त श्राद्ध करना उचित है।

चन्द्रग्रहणके समय सभी दान भूमिदानके समान होते हैं, सभी ब्राह्मण व्यासके समान माने जाते हैं और समस्त जल गङ्गाजलके तुल्य हो जाता है। चन्द्रग्रहणमें दिया हुआ दान और समयकी अपेक्षा लाखगुना तथा सूर्यग्रहणका दस लाख गुना अधिक फल देनेवाला बताया गया है। और यदि गङ्गाजीका जल प्राप्त हो जाय, तब तो चन्द्रग्रहणका दान करोड़ गुना और सूर्यग्रहणमें दिया हुआ दान दस करोड़ गुना अधिक फल देनेवाला होता है। विधिपूर्वक एक लाख गोदान करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वह चन्द्रग्रहणके समय गङ्गाजीमें स्नान करनेसे मिल जाता है। जो चन्द्रमा और सूर्यके ग्रहणमें गङ्गाजीके जलमें डुबकी लगाता है, उसे सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करनेका फल प्राप्त होता है। यदि रविवारको सूर्यग्रहण और सोमवारको चन्द्रग्रहण हो तो वह चूडामणि नामक योग कहलाता है, उसमें स्नान और दानका अनन्त फल माना गया है। उस समय पुण्य तीर्थमें पहले उपवास करके जो पुरुष पिण्डदान, तर्पण तथा धन दान करता है, वह सत्यलोकमें प्रतिष्ठित होता है।

ब्राह्मणने पूछा—देव ! आपने पिताके लिये किये जानेवाले श्राद्ध नामक महायज्ञका वर्णन किया। अब यह बताइये कि पुत्रको पिताके जीते जी क्या करना चाहिये, कौन-सा कर्म करके बुद्धिमान् पुत्रको जन्म-जन्मान्तरोंमें परम कल्याणकी प्राप्ति हो सकती है। ये सब बातें यत्नपूर्वक बतानेकी कृपा कीजिये।

श्रीभगवान् बोले—विप्रवर ! पिताको देवताके समान समझकर उनकी पूजा करनी चाहिये और पुत्रकी भाँति उनपर स्नेह रखना चाहिये। कभी मनसे भी उनकी

* दिनैकं मासपक्षं वा पक्षार्द्धं वापि वत्सरम्।
पित्रोर्भक्तिः कृता येन स च गच्छेन्ममालयम्॥
(४७। २०८)

आज्ञाका उल्लङ्घन नहीं करना चाहिये । जो पुत्र रोगी पिताकी भलीभाँति परिचर्या करता है, उसे अक्षय स्वर्गकी प्राप्ति होती है और वह सदा देवताओंद्वारा पूजित होता है । पिता जब मरणासन्न होकर मृत्युके लक्षण देख रहे हों, उस समय भी उनका पूजन करके पुत्र देवताओंके समान हो जाता है । [पिताकी सद्गतिके निमित्त] विधिपूर्वक उपवास करनेसे जो लाभ होता है, अब उसका वर्णन करता हूँ; सुनो । हजार अश्वमेध और सौ राजसूय यज्ञ करनेसे जो पुण्य होता है, वही पुण्य [पिताके निमित्त] उपवास करनेसे प्राप्त होता है । वही उपवास यदि तीर्थमें किया जाय तो उन दोनों यज्ञोंसे करोड़गुना अधिक फल होता है । जिस श्रेष्ठ पुरुषके प्राण गङ्गाजीके जलमें छूटते हैं, वह पुनः माताके दूधका पान नहीं करता, वरं मुक्त हो जाता है । जो अपनी इच्छानुसार काशीमें रहकर प्राण-त्याग करता है, वह मनोवाञ्छित फल भोगकर मेरे स्वरूपमें लीन हो जाता है । * योगयुक्त नैष्ठिक ब्रह्मचारी मुनियोंको जिस गतिकी प्राप्ति होती है, वही गति ब्रह्मपुत्र नदीकी सात धाराओंमें प्राणत्याग करनेवालेको मिलती है । विशेषतः [अन्तकालमें] जो सोन नदीके उत्तर तटका आश्रय लेकर विधिपूर्वक प्राण-त्याग करता है, वह मेरी समानताको प्राप्त होता है । जिस मनुष्यकी मृत्यु घरके भीतर होती है, उस घरके छप्परमें जितनी गाँठें बँधी रहती हैं, उतने ही बन्धन उसके शरीरमें भी बँध जाते हैं । एक-एक वर्षके बाद उसका एक-एक बन्धन खुलता है । पुत्र और भाई-बन्धु देखते रह जाते हैं; किसीके द्वारा उसे उस बन्धनसे छुटकारा नहीं मिलता । पर्वत, जंगल, दुर्गम भूमि या जलरहित स्थानमें प्राणत्याग करनेवाला मनुष्य दुर्गतिको प्राप्त होता है । उसे कीड़े आदिकी योनिमें जन्म लेना पड़ता है । जिस मरे हुए व्यक्तिके शवका दाह-संस्कार मृत्युके दूसरे दिन होता है, वह साठ हजार वर्षोंतक कुम्भीपाक नरकमें पड़ा रहता है । जो मनुष्य अस्पृश्यका स्पर्श करके या पतितावस्थामें प्राण-त्याग करता है, वह चिरकालतक नरकमें निवास करके म्लेच्छयोनिमें जन्म लेता है । पुण्यसे अथवा पुण्य-कर्मोंका अनुष्ठान करनेसे मर्त्यलोकनिवासी सब मनुष्योंकी मृत्युके समय जैसी बुद्धि होती है, वैसी ही गति उन्हें प्राप्त होती है ।

पिताके मरनेपर जो बलवान् पुत्र उनके शरीरको कंधेपर ढोता है, उसे पग-पगपर अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है, पुत्रको चाहिये कि वह पिताके शवको चितापर रखकर विधिपूर्वक मन्त्रोच्चारण करते हुए पहले उसके मुखमें आग दे, उसके बाद सम्पूर्ण शरीरका दाह करे । [उस समय इस प्रकार कहे—] 'जो लोभ-मोहसे युक्त तथा पाप-पुण्यसे आच्छादित थे, उन पिताजीके इस शवका, इसके सम्पूर्ण अङ्गोंका मैं दाह करता हूँ; वे दिव्य लोकोंमें जायँ ।'* इस प्रकार दाह करके पुत्र अस्थि-सञ्चयके लिये कुछ दिन प्रतीक्षामें व्यतीत करे । फिर यथासमय अस्थि-सञ्चय करके दशाह (दसवाँ दिन) आनेपर स्नान कर गीले वस्त्रका परित्याग कर दे । फिर विद्वान् पुरुष ग्यारहवें दिन एकादशाह-श्राद्ध करे और प्रेतके शरीरकी पुष्टिके लिये एक ब्राह्मणको भोजन कराये । उस समय वस्त्र, पीढ़ा और चरणपादुका आदि वस्तुओंका विधिपूर्वक दान करे । दशाहके चौथे दिन किया जानेवाला श्राद्ध (चतुर्थाह), तीन पक्षके बाद किया जानेवाला (त्रैपाक्षिक अथवा सार्धमासिक), छः मासके भीतर होनेवाला (ऊनषाण्मासिक) तथा वर्षके भीतर किया जानेवाला (ऊनाब्दिक) श्राद्ध और इनके अतिरिक्त बारह महीनोंके बारह श्राद्ध—कुल सोलह श्राद्ध माने गये हैं । जिसके लिये ये सोलह श्राद्ध यथाशक्ति श्रद्धापूर्वक नहीं किये जाते, उसका पिशाचत्व स्थिर हो जाता है । अन्यान्य सैकड़ों श्राद्ध करनेपर भी प्रेतयोनिसे उसका उद्धार नहीं होता । एक वर्ष व्यतीत होनेपर विद्वान् पुरुष पार्वण श्राद्धकी विधिसे सपिण्डीकरण नामक श्राद्ध करे ।

ब्राह्मणने पूछा—केशव ! तपस्वी, वनवासी और गृहस्थ ब्राह्मण यदि धनसे हीन हो तो उसका पितृ-कार्य कैसे हो सकता है ?

श्रीभगवान् बोले—जो तृण और काष्ठका उपार्जन करके अथवा कौड़ी-कौड़ी माँगकर पितृ-कार्य करता है, उसके कर्मका लाखगुना अधिक फल होता है । कुछ भी न हो तो पिताकी तिथि आनेपर जो मनुष्य केवल गौओंको घास खिला देता है, उसे पिण्डदानसे भी अधिक फल प्राप्त होता है । पूर्वकालकी बात है, विराटदेशमें एक अत्यन्त दीन मनुष्य रहता था । एक दिन पिताकी तिथि आनेपर वह

---

* वाराणस्यां त्यजेद्यस्तु प्राणांश्चैव यदृच्छया ।
अभीष्टं च फलं भुक्त्वा मद्देहे प्रविलीयते ॥
(४७ । २५२)

* लोभमोहसमायुक्तं पापपुण्यसमावृतम् ।
दहेयं सर्वगात्राणि दिव्याँल्लोकान् स गच्छतु ॥
(४७ । २६६)

बहुत रोया। रोनेका कारण यह था कि उसके पास [श्राद्धो पयोगी] सभी वस्तुओंका अभाव था। बहुत देरतक रोनेके पश्चात् उसने किसी विद्वान् ब्राह्मणसे पूछा—'ब्रह्मन्! आज मेरे पिताजीकी तिथि है, किन्तु मेरे पास धनके नामपर कौड़ी भी नहीं है, ऐसी दशामें क्या करनेसे मेरा हित होगा? आप मुझे ऐसा उपदेश दीजिये, जिससे मैं धर्ममें स्थित रह सकूँ।'

विद्वान् ब्राह्मणने कहा—तात! इस समय 'कुतप' नामक मुहूर्त बीत रहा है, तुम शीघ्र ही वनमें जाओ और पितरोंके उद्देश्यसे घास लाकर गौको खिला दो।

तदनन्तर, ब्राह्मणके उपदेशसे वह वनमें गया और घासका बोझा लेकर बड़े हर्षके साथ पिताकी तृप्तिके लिये उसे गौको खिला दिया। इस पुण्यके प्रभावसे वह देव लोकको चला गया। पितृयज्ञसे बढ़कर दूसरा कोई धर्म नहीं है, इसलिये पूर्ण प्रयत्न करके अपनी शक्तिके अनुसार मात्सर्य भावका त्याग करके श्राद्ध करना चाहिये। जो मनुष्य लोगोंके सामने इस धर्मसन्तान (धर्मका विस्तार करनेवाले) अध्यायका पाठ करता है, उसे प्रत्येक लोकमें गङ्गाजीके जलमें स्नान करनेका फल प्राप्त होता है। जिसने प्रत्येक जन्म में महापातकोंका संग्रह किया हो, उसका वह सारा संग्रह इस अध्यायका एक बार पाठ या श्रवण करनेपर नष्ट हो जाता है।



पतिव्रता ब्राह्मणीका उपाख्यान, कुलटा स्त्रियोंके सम्बन्धमें उमा नारद-संवाद, पतिव्रताकी महिमा और कन्यादानका फल



नरोत्तमने पूछा—नाथ! पतिव्रता स्त्री मेरे बीते हुए वृत्तान्तको कैसे जानती है? उसका प्रभाव कैसा है? यह सब बतानेकी कृपा करें।

श्रीभगवान् बोले—वत्स! मैं यह बात तुम्हें पहले बता चुका हूँ। किन्तु फिर यदि सुननेका कौतूहल हो रहा है तो सुनो, तुम्हारे मनमें जो कुछ प्रश्न है, सबका उत्तर दे रहा हूँ। जो स्त्री पतिव्रता होती है, पतिको प्राणोंके समान समझती है और सदा पतिके हित साधनमें संलग्न रहती है, वह देवताओं और ब्रह्मवादी मुनियोंकी भी पूज्य होती है। जो नारी एक ही पुरुषकी सेवा स्वीकार करती है—दूसरेकी ओर दृष्टि भी नहीं डालती, वह संसारमें परम पूजनीय मानी जाती है।

तात! प्राचीन कालकी बात है, मध्य देशमें एक अत्यन्त शोभायमान नगरी थी। उसमें एक पतिव्रता ब्राह्मणी रहती थी, उसका नाम था शैव्या। उसका पति पूर्वजन्मके पापसे कोढ़ी हो गया था। उसके शरीरमें अनेकों घाव हो गये थे, जो बराबर बहते रहते थे। शैव्या अपने ऐसे पतिकी सेवामें सदा संलग्न रहती थी। पतिके मनमें जो-जो इच्छा होती, उसे वह अपनी शक्तिके अनुसार अवश्य पूर्ण करती थी। प्रतिदिन देवताकी भाँति स्वामीकी पूजा करती और दोषबुद्धि त्यागकर उसके प्रति विशेष स्नेह रखती थी। एक दिन उसके पतिने सड़कसे जाती हुई एक परम सुन्दरी वेश्याको देखा। उसपर दृष्टि पड़ते ही वह अत्यन्त मोहके वशीभूत हो गया। उसकी चेतनापर कामदेवने पूरा अधिकार कर लिया। वह दीर्घ-काल तक लंबी साँस खींचता रहा और अन्तमें बहुत उदास हो गया। उसका उच्छ्वास सुनकर पतिव्रता घरसे बाहर आयी और अपने पतिसे पूछने लगी—'नाथ! आप उदास क्यों हो गये? आपने लंबी साँस कैसे खींची? प्रभो! आपको जो प्रिय हो वह कार्य मुझे बताइये। वह करने योग्य हो या न हो, मैं आपके प्रिय कार्यको अवश्य पूर्ण करूँगी। एकमात्र आप ही मेरे गुरु हैं, प्रियतम हैं।'

पत्नीके इस प्रकार पूछनेपर उसके पतिने कहा—'प्रिये! उस कार्यको न तुम्हीं पूर्ण कर सकती हो और न मैं ही, अतः व्यर्थ बात करनी उचित नहीं है।'

पतिव्रता बोली—नाथ! [मुझे विश्वास है] मैं आपका मनोरथ जानकर उस कार्यको सिद्ध कर सकूँगी, आप मुझे आज्ञा दीजिये। जिस किसी उपायसे हो सके मुझे आपका कार्य सिद्ध करना है। यदि आपके दुष्कर कार्यको मैं यत्न करके पूर्ण कर सकूँ तो इस लोक और परलोकमें भी मेरा परम कल्याण होगा।

कोढ़ीने कहा—साध्वि! अभी अभी इस मार्गसे एक परम सुन्दरी वेश्या जा रही थी। उसका शरीर सब ओरसे मनोरम था। उसे देखकर मेरा हृदय कामाग्निसे दग्ध हो रहा है। यदि तुम्हारी कृपासे मैं उस नवयौवनाको प्राप्त कर सकूँ तो मेरा जन्म सफल हो जायगा। देवि! तुम उसे मिलाकर मेरा हितसाधन करो।

पतिकी कही हुई बात सुनकर पतिव्रता बोली—'प्रभो ! इस समय धैर्य रखिये । मैं यथाशक्ति आपका कार्य सिद्ध करूँगी ।'

यह कहकर पतिव्रताने मन-ही-मन कुछ विचार किया और रात्रिके अन्तिम भाग—उषःकालमें उठकर वह गोबर और झाड़ू ले तुरंत ही चल दी । जाते समय उसके मनमें बड़ी प्रसन्नता थी । वेश्याके घर पहुँचकर उसने उसके आँगन और गली-कूचेमें झाड़ू लगायी तथा गोबरसे लीप-पोतकर लोगोंकी दृष्टि पड़नेके भयसे वह शीघ्रतापूर्वक अपने घर लौट आयी । इस प्रकार लगातार तीन दिनोंतक पतिव्रताने वेश्याके घरमें झाड़ू देने और लीपनेका काम किया । उधर वह वेश्या अपने दास-दासियोंसे पूछने लगी—आज आँगनकी इतनी बढ़िया सफाई किसने की है ? सेवकोंने परस्पर विचार करके वेश्यासे कहा—'भद्रे ! घरकी सफाईका यह काम हमलोगोंने तो नहीं किया है ।' यह सुनकर वेश्याको बड़ा विस्मय हुआ । उसने बहुत देरतक इसके विषयमें विचार किया और रात्रि बीतनेपर ज्यों ही वह उठी तो उसकी दृष्टि उस पतिव्रता ब्राह्मणीपर पड़ी । वह पुनः टहल बजानेके लिये आयी थी । उस परम साध्वी पतिव्रता ब्राह्मणीको देखकर 'हाय ! हाय ! आप यह क्या करती हैं । क्षमा कीजिये, रहने दीजिये ।' यह कहती हुई वेश्याने उसके पैर पकड़ लिये और पुनः कहा—'पतिव्रते ! आप मेरी आयु, शरीर, सम्पत्ति, यश तथा कीर्ति—इन सबका विनाश करनेके लिये ऐसी चेष्टा कर रही हैं । साध्वि ! आप जो-जो वस्तु माँगें, उसे निश्चय दूँगी—यह बात मैं दृढ़ निश्चयके साथ कह रही हूँ । सुवर्ण, रत्न, मणि, वस्त्र तथा और भी जिस किसी वस्तुकी आपके मनमें अभिलाषा हो, उसे माँगिये ।'

तब पतिव्रताने उस वेश्यासे कहा—'मुझे धनकी आवश्यकता नहीं है, तुम्हींसे कुछ काम है; यदि करो तो उसे बताऊँ । उस कार्यकी सिद्धि होनेपर ही मेरे हृदयमें सन्तोष होगा और तभी मैं यह समझूँगी कि तुमने इस समय मेरा सारा मनोरथ पूर्ण कर दिया ।'

वेश्या बोली—पतिव्रते ! आप जल्दी बताइये । मैं सच-सच कहती हूँ, आपका अभीष्ट कार्य अवश्य करूँगी । माताजी ! आप तुरंत ही अपनी आवश्यकता बतायें और मेरी रक्षा करें ।

पतिव्रताने लजाते-लजाते वह कार्य, जो उसके पतिको श्रेष्ठ एवं प्रिय जान पड़ता था, कह सुनाया । उसे सुनकर वेश्या एक क्षणतक अपने कर्तव्य और उसके पतिकी पीड़ापर कुछ विचार करती रही । दुर्गन्धयुक्त कोढ़ी मनुष्यके साथ संसर्ग करनेकी बात सोचकर उसके मनमें बड़ा दुःख हुआ । वह पतिव्रतासे इस प्रकार बोली—'देवि ! यदि आपके पति मेरे घरपर आयें तो मैं एक दिन उनकी इच्छा पूर्ण करूँगी ।'

पतिव्रताने कहा—सुन्दरी ! मैं आज ही रातमें अपने पतिको लेकर तुम्हारे घरमें आऊँगी और जब वे अपनी अभीष्ट वस्तुका उपभोग करके सन्तुष्ट हो जायँगे, तब पुनः उनको अपने घर ले जाऊँगी ।

वेश्या बोली—महाभागे ! अब शीघ्र ही अपने घरको पधारो । तुम्हारे पति आज आधी रातके समय मेरे महलमें आयें ।

यह सुनकर वह पतिव्रता स्त्री अपने घर चली आयी । वहाँ पहुँचकर उसने पतिसे निवेदन किया—'प्रभो ! आपका कार्य सफल हो गया । आज ही रातमें आपको उसके घर जाना है ।'

कोढ़ी ब्राह्मण बोला—देवि ! मैं कैसे उसके घर जाऊँगा, मुझसे तो चला नहीं जाता । फिर किस प्रकार वह कार्य सिद्ध होगा ?

पतिव्रता बोली—प्राणनाथ ! मैं आपको अपनी पीठपर बैठाकर उसके घर पहुँचाऊँगी और आपका मनोरथ सिद्ध हो जानेपर फिर उसी मार्गसे लौटा ले आऊँगी ।

ब्राह्मणने कहा—कल्याणी ! तुम्हारे करनेसे ही मेरा सब कार्य सिद्ध होगा । इस समय तुमने जो काम किया है, वह दूसरी स्त्रियोंके लिये दुष्कर है ।

श्रीभगवान् कहते हैं—उस नगरमें किसी धनीके घरसे चोरोंने बहुत-सा धन चुरा लिया । यह बात जब राजाके कानोंमें पड़ी, तब उन्होंने रातमें घूमनेवाले समस्त गुप्तचरोंको बुलाया और कुपित होकर कहा—'यदि तुम्हें जीवित रहनेकी इच्छा है तो आज चोरको पकड़कर मेरे हवाले करो ।' राजाकी यह आज्ञा पाकर सभी गुप्तचर व्याकुल हो उठे और चोरको पकड़नेकी इच्छासे चल दिये । उस नगरके पास ही एक घना जंगल था, जहाँ एक वृक्षके नीचे महातेजस्वी मुनिवर माण्डव्य समाधि लगाये बैठे थे । वे योगियोंमें प्रधान महर्षि अग्निके समान देदीप्यमान हो रहे थे । ब्रह्माजीके समान तेजस्वी उन महामुनिको देखकर दुष्ट गुप्तचरोंने आपसमें कहा—'यही चोर है । यह धूर्त अद्भुत रूप बनाये इस जंगलमें निवास करता है ।' यों कहकर उन पापियोंने मुनिश्रेष्ठ माण्डव्यको बाँध लिया । किन्तु उन

कठोर स्वभाववाले मनुष्योंसे न तो उन्होंने कुछ कहा और न उनकी ओर दृष्टिपात ही किया। जब गुप्तचर उन्हें बाँधकर राजाके पास ले गये तो राजाने कहा—'आज मुझे चोर मिला है। तुमलोग इसे नगरके निकटवर्ती प्रवेशद्वारके मार्गपर ले जाओ और चोरके लिये जो नियत दण्ड है, वह इसे दो।' उन्होंने माण्डव्य मुनिको वहाँ ले जाकर मार्गमें गड़े हुए शूलपर रख दिया। वह शूल मुनिके गुदाद्वारसे प्रविष्ट होकर मस्तकके पार हो गया। उनका सारा शरीर शूलसे बिंध गया, इसी बीचमें आधी रातके घोर अन्धकारमें, जब कि आकाशमें घटाएँ घिरी हुई थीं, वह पतिव्रता ब्राह्मणी अपने पतिको पीठपर बिठाकर वेश्याके घर जा रही थी। वह मुनिके निकटसे होकर निकली, अतः उस कोढीका शरीर माण्डव्य मुनिके शरीरसे छू गया। कोढीके सम्पर्कसे उनकी समाधि भङ्ग हो गयी। वे कुपित होकर बोले—'जिसने इस समय मुझे गाढ़ वेदनाका अनुभव करानेवाली कष्टमय अवस्थामें पहुँचा दिया, वह सूर्योदय होते होते भस्म हो जाय।'



माण्डव्यके इतना कहते ही वह कोढी पृथ्वीपर गिर पड़ा। तब पतिव्रताने कहा—'आजसे तीन दिनोंतक सूर्यका उदय ही न हो।' यों कहकर वह अपने पतिको घर ले गयी और एक सुन्दर शय्यापर सुला स्वयं उसे थामकर बैठी रही। उधर मुनिश्रेष्ठ माण्डव्य उस कोढीको शाप दे अपने अभीष्ट स्थानको चले गये। संसारमें तीन दिनोंके समयतक सूर्यका उदय होना रुक गया। चराचर प्राणियोंसहित सम्पूर्ण त्रिलोकी व्यथित हो उठी। यह देख समस्त देवता इन्द्रको आगे करके ब्रह्माजीके पास गये और सूर्योदय न होनेका समाचार निवेदन करते हुए बोले—'भगवन्! सूर्यके उदय न होनेका क्या कारण है, यह हमारी समझमें नहीं आता। इस समय आप जो उचित हो, करें।' उनकी बात सुनकर ब्रह्माजीने पतिव्रता ब्राह्मणी और माण्डव्य मुनिका सारा वृत्तान्त कह सुनाया। तदनन्तर देवता विमानोंपर आरूढ हो प्रजापतिको आगे करके शीघ्र ही पृथ्वीपर उस कोढी ब्राह्मणके घरके पास गये। उनके विमानोंकी कान्ति तथा मुनियोंके तेजसे पतिव्रताके घरके भीतर सैकड़ों सूर्योंका-सा प्रकाश छा गया, उस समय हंसके समान तेजस्वी विमानोंद्वारा आये हुए देवताओंको पतिव्रताने देखा। वह [अपने पतिके समीप] लेटी हुई थी। ब्रह्माजीने उसे सम्बोधित करके कहा—'माता! सम्पूर्ण देवताओं, ब्राह्मणों और गौ आदि प्राणियोंकी जिससे मृत्यु होनेकी सम्भावना है—ऐसा कार्य तुम्हें क्योंकर पसंद आया? सूर्योदयके विरुद्ध जो तुम्हारा क्रोध है, उसे त्याग दो।'



पतिव्रता बोली—भगवन्! एकमात्र पति ही मेरे

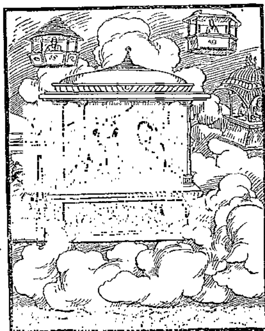
गुरु हैं। ये मेरे लिये सम्पूर्ण लोकोंसे बढ़कर हैं। सूर्योदय होते ही मुनिके शापसे उनकी मृत्यु हो जायगी। इसी हेतुसे मैंने सूर्यको शाप दिया है। क्रोध, मोह, लोभ, मात्सर्य अथवा कामके वशमें होकर मैंने ऐसा नहीं किया है।

ब्रह्माजीने कहा—माता! जब एककी मृत्युसे तीनों लोकोंका हित हो रहा है, ऐसी दशामें तुम्हें बहुत अधिक पुण्य होगा।

पतिव्रता बोली—पतिका त्याग करके मुझे आपका परम कल्याणमय सत्यलोक भी अच्छा नहीं लगता।

ब्रह्माजीने कहा—देवि! सूर्योदय होनेपर जब सारी त्रिलोकी स्वस्थ हो जायगी, तब तुम्हारे पतिके भस्म हो जानेपर भी मैं तुम्हारा कल्याण-साधन करूँगा। हमलोगोंके आशीर्वादसे यह कोढ़ी ब्राह्मण कामदेवके समान सुन्दर हो जायगा।

ब्रह्माजीके यों कहनेपर उस सतीने क्षणभर कुछ विचार किया; उसके बाद 'हाँ' कहकर उसने स्वीकृति दे दी। फिर तो तत्काल सूर्योदय हुआ और मुनिके शापसे पीड़ित ब्राह्मण राखका ढेर हो गया। फिर उस राखसे कामदेवके समान सुन्दर रूप धारण किये वह ब्राह्मण प्रकट हुआ। यह देखकर समस्त पुरवासी बड़े विस्मयमें पड़े। देवता प्रसन्न हो गये। सब लोगोंका चित्त पूर्ण स्वस्थ हुआ। उस समय स्वर्गलोकसे सूर्यके समान तेजस्वी एक विमान आया और वह



साध्वी अपने पतिके साथ उसपर बैठकर देवताओंके साथ स्वर्गको चली गयी।

शुभा भी ऐसी ही पतिव्रता है; इसलिये वह मेरे समान है। उस सतीत्वके प्रभावसे ही वह भूत, भविष्य और वर्तमान—तीनों कालोंकी बातें जानती है। जो मनुष्य इस परम उत्तम पुण्यमय उपाख्यानको लोकमें सुनायेगा, उसके जन्म-जन्मके किये हुए पाप नष्ट हो जायँगे।

ब्राह्मणने पूछा—भगवन्! माण्डव्य मुनिके शरीरमें शूलका आघात कैसे लगा? तथा पतिव्रता स्त्रीके पतिको कोढ़का रोग क्यों हुआ?

भगवान् श्रीविष्णु बोले—माण्डव्य मुनि जब बालक थे, तब उन्होंने अज्ञान और मोहवश एक झींगुरके गुदादेशमें तिनका डालकर छोड़ दिया था। यद्यपि उन्हें उस समय धर्मका ज्ञान नहीं था, तथापि उस दोषके कारण उन्हें एक दिन और रात वैसा कष्ट भोगना पड़ा। किन्तु माण्डव्य मुनिने समाधिस्थ होनेके कारण शूलाघातजनित वेदनाका पूरी तरह अनुभव नहीं किया। इसी प्रकार पतिव्रताके पतिने भी पूर्वजन्ममें एक कोढ़ी ब्राह्मणका वध किया था, इसीसे उसके शरीरमें दुर्गन्धयुक्त कोढ़का रोग उत्पन्न हो गया था। किन्तु उसने ब्राह्मणको चार गौरीदान और तीन कन्यादान किये थे; इसीसे उसकी पत्नी पतिव्रता हुई। उस पत्नीके कारण ही वह मेरी समताको प्राप्त हुआ।

ब्राह्मणने कहा—नाथ! यदि पतिव्रताका ऐसा माहात्म्य है, तब तो जिस पुरुषकी भी स्त्री व्यभिचारिणी न हो, उसे स्वर्गकी प्राप्ति निश्चित है। सती स्त्रीसे सबका कल्याण होना चाहिये।

भगवान् श्रीविष्णु बोले—ठीक है। संसारमें कुछ स्त्रियाँ ऐसी कुलटा होती हैं, जो सर्वस्व अर्पण करनेवाले पुरुषके प्रतिकूल आचरण करती हैं; उनमें जो सर्वथा अरक्षणीय हो—जिसकी दुराचारसे रक्षा करना असम्भव हो, ऐसी स्त्रीको तो मनसे भी स्वीकार नहीं करना चाहिये। जो नारी कामके वशीभूत हो जाती है, वह निर्धन, कुरूप, गुणहीन तथा नीच कुलके नौकर पुरुषको भी स्वीकार कर लेती है। मृत्युतकसे सम्बन्ध जोड़नेमें उसे हिचक नहीं होती। वह गुणवान्, कुलीन, अत्यन्त धनी, सुन्दर और रतिकार्यमें कुशल पतिका भी परित्याग करके नीच पुरुषका सेवन करती है। विप्रवर! इस विषयमें उमा-नारद-संवाद ही दृष्टान्त है; क्योंकि नारदजी स्त्रियोंकी बहुत-सी चेष्टाएँ जानते हैं। नारद मुनि

स्वभावसे ही संसारकी प्रत्येक बात जाननेकी इच्छा रखते हैं। एक बार वे अपने मनमें कुछ सोच विचारकर पर्वतोंमें उत्तम कैलासगिरिपर गये। वहाँ उन महात्मा मुनिने पार्वतीजीको प्रणाम करके पूछा—'देवि! मैं कामिनियोंकी कुचेष्टाएँ जानना चाहता हूँ। मैं इस विषयमें बिल्कुल अनजान हूँ और विनीत भावसे प्रश्न कर रहा हूँ, अतः आप मुझे यह बात बताइये।'

पार्वती देवीने कहा—नारद! युवती स्त्रियोंका चित्त सदा पुरुषोंमें ही लगा रहता है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। नारी घीसे भरे हुए घड़ेके समान है और पुरुष दहकते हुए अँगारेके समान, इसलिये घी और अग्निको एक स्थानपर नहीं रखना चाहिये।* जैसे मतवाले हाथीको महावत अङ्कुश और मुगदरकी सहायतासे अपने वशमें करता है, उसी प्रकार स्त्रियोंका रक्षक उन्हें दण्डके बलसे ही काबूमें रख सकता है। बचपनमें पिता, जवानीमें पति और बुढ़ापेमें पुत्र नारीकी रक्षा करता है, उसे कभी स्वतन्त्रता नहीं देनी चाहिये।† सुन्दरी स्त्रीको यदि उसकी इच्छाके अनुसार स्वतन्त्र छोड़ दिया जाय तो परपुरुषकी प्रार्थनासे अधीर होकर वह उसके आदेशके अनुसार व्यभिचारमें प्रवृत्त हो जाती है। जैसे तैयार की हुई रसोईपर दृष्टि न रखनेसे उसपर कौए और कुत्ते अधिकार जमा लेते हैं, उसी प्रकार युवती नारी स्वच्छन्द होनेपर व्यभिचारिणी हो जाती है। फिर उस कुलटाके संसर्गसे सारा कुल दूषित हो जाता है। पराये बीजसे उत्पन्न होनेवाला मनुष्य वर्णसंकर कहलाता है।‡ सदाचारिणी स्त्री पितृकुल और पतिकुल—दोनों कुलोंका सम्मान बढ़ाती हुई उन्हें कायम रखती है। साध्वी नारी अपने कुलका उद्धार करती और दुराचारिणी उसे नरकमें गिराती है। कहते हैं—संसारमें स्त्रीके ही अधीन स्वर्ग, कुल, कलङ्क, यश, अपयश, पुत्र, पुत्री और मित्र आदिकी स्थिति है। इसलिये विद्वान् पुरुष सन्तानकी इच्छासे विवाह करे। जो पापी पुरुष मोहवश किसी साध्वी स्त्रीको दूषित करके छोड़ देता है, वह उस स्त्री की हत्याका पाप भोगता हुआ नरकमें गिरता है। जो परायी स्त्रीके साथ बलात्कार करता अथवा उसे धनका लालच देकर फँसाता है, वह इस संसारमें स्त्री-हत्यारा कहलाता है और मरनेके पश्चात् घोर नरकमें पड़ता है। परायी स्त्रीका अपहरण करके मनुष्य चाण्डाल-कुलमें जन्म लेता है। इसी प्रकार पतिके साथ वञ्चना करनेवाली व्यभिचारिणी स्त्री चिरकालतक नरक भोगकर कौएकी योनिमें जन्म लेती है और उच्छिष्ट एवं दुर्गन्धयुक्त पदार्थ खा-खाकर जीवन बिताती है। तदनन्तर, मनुष्य-योनिमें जन्म लेकर विधवा होती है। जो माता, गुरुपत्नी, ब्राह्मणी, राजाकी रानी या दूसरी किसी प्रभु-पत्नीके साथ समागम करता है, वह अक्षय नरकमें गिरता है। बहिन, भानजेकी स्त्री, बेटी, बेटेकी बहू, चाची, मामी, बुआ तथा मौसी आदि अन्यान्य स्त्रियोंके साथ समागम करनेपर भी कभी नरकसे उद्धार नहीं होता। यही नहीं, उसे ब्रह्महत्याका पाप भी लगता है तथा वह अंधा, गूँगा और बहरा होकर निरन्तर नीचे गिरता जाता है, उस अधःपतनसे उसका कभी बचाव नहीं हो पाता।

ब्राह्मणने पूछा—भगवन्! ऐसा पाप करके मनुष्यका उससे किस प्रकार उद्धार हो सकता है?

श्रीभगवान्‌ने कहा—उपर्युक्त स्त्रियोंके साथ समागम करनेवाला पुरुष लोहेकी स्त्री-प्रतिमा बनवाकर उसे आगमें खूब तपाये, फिर उसका गाढ़ आलिङ्गन करके प्राण त्याग दे और शुद्ध होकर परलोककी यात्रा करे। जो मनुष्य गृहस्थाश्रमका परित्याग करके मुझमें मन लगाता है और प्रतिदिन मेरे 'गोविन्द' नामका स्मरण करता है, उसके सब पापोंका नाश हो जाता है। उसके द्वारा की हुई हजारों ब्रह्महत्याएँ, सौ बार किया हुआ गुरुपत्नी-समागम, लाख बार किया हुआ पैष्टी मदिराका सेवन, सुवर्णकी चोरी, पापियोंके साथ चिरकाल तक संसर्ग रखना—ये तथा और भी जितने बड़े-बड़े पाप एवं पातक हैं, वे सब मेरा नाम लेनेसे तत्काल नष्ट हो जाते

---

* घृतकुम्भसमा नारी तप्ताङ्गारसमः पुमान्।
तस्माद् घृतं च वह्निं च नैकस्थाने न धारयेत्॥ (४९। २१)

† पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने।
पुत्राश्च स्थाविरे भावे न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति॥ (४९। २३)

‡ अरक्षणाद्यथा पाकं ध्वङ्क्षकाकवशं गतो वसेत्।
तथैव युवती नारी स्वच्छन्दाद्दुष्टतां व्रजेत्॥
पुनरेव कुलं दुष्टं तस्याः संसर्गतो भवेत्।
परबीजे नरो जातः स च स्याद्वर्णसंकरः॥ (४९। २५-२६)

हैं; ठीक उसी तरह जैसे अग्निके पास पहुँचनेपर रूईके ढेर जल जाते हैं। अतः मनुष्यको उचित है कि वह मेरे 'गोविन्द' नामका स्मरण करके पवित्र हो जाय। [परन्तु जो नामके भरोसे पाप करता है, नाम उसकी रक्षा कभी नहीं करता।] अथवा जो प्रतिदिन मुझ गोविन्दका कीर्तन और पूजन करते हुए गृहस्थाश्रममें निवास करता है, वह पापसे तर जाता है। तात! गङ्गाके रमणीय तटपर चन्द्रग्रहणकी मङ्गलमयी वेलामें करोड़ों गोदान करनेसे मनुष्यको जो फल मिलता है, उससे हजारगुना अधिक फल 'गोविन्द' का कीर्तन करनेसे प्राप्त होता है। कीर्तन करनेवाला मनुष्य मेरे वैकुण्ठधाममें सदा निवास करता है।* पुराणमें मेरी कथा सुननेसे मानव मेरी समानता प्राप्त करता है। जो पुराणकी कथा सुनाता है, उसे मेरा सायुज्य प्राप्त होता है; अतः प्रतिदिन पुराणका श्रवण करना चाहिये। पुराण धर्मोंका संग्रह है।

विप्रवर! अब मैं सती स्त्रियोंमें जो अत्यन्त उत्कृष्ट गुण होते हैं, उनका वर्णन करता हूँ। सती स्त्रीका वंश शुद्ध होता है। वहाँ सदा लक्ष्मी निवास करती हैं। सतीके पितृकुल और पतिकुल—दोनों कुलोंको, तथा उसके स्वामीको भी स्वर्गलोककी प्राप्ति होती है। जो स्त्रियाँ अपने जीवनका पूर्वकाल पुण्य-पापमिश्रित कर्मोंमें व्यतीत करके पीछे भी पतिव्रता होती हैं, उन्हें भी मेरे लोककी प्राप्ति हो जाती है। जो स्त्री अपने स्वामीका अनुगमन करती है, वह शराबी, ब्रह्महत्यारे तथा सब प्रकारके पापोंसे लदे हुए पतिको भी पापमुक्त करके अपने साथ स्वर्गमें ले जाती है। जो मरे हुए पतिके पीछे प्राण-त्याग करके जाती है, उसे स्वर्गकी प्राप्ति निश्चित है। जो नारी पतिका अनुगमन करती है, वह मनुष्यके शरीरमें जितने (साढ़े तीन करोड़) रोम होते हैं, उतने ही वर्षोंतक स्वर्गलोकमें निवास करती है। यदि पतिकी मृत्यु कहीं दूर हो जाय तो उसका कोई चिह्न पाकर जो स्त्री चिताकी अग्निमें प्राण-त्याग करती है, वह अपने पतिका पापसे उद्धार कर देती है। जो स्त्री पतिव्रता होती है, उसे चाहिये कि यदि पतिकी मृत्यु परदेशमें हो जाय तो उसका कोई चिह्न प्राप्त करे और उसे ही ले अग्निमें शयन करके स्वर्गलोककी यात्रा करे। यदि ब्राह्मण जातिकी स्त्री मरे हुए पतिके साथ चिताग्निमें प्रवेश करे तो उसे आत्मघातका दोष लगता है, जिससे न तो वह अपनेको और न अपने पतिको ही स्वर्गमें पहुँचा पाती है। इसलिये ब्राह्मण जातिकी स्त्री अपने मरे हुए पतिके साथ जलकर न मरे—यह ब्रह्माजीकी आज्ञा है। ब्राह्मणी विधवाको वैधव्य-व्रतका आचरण करना चाहिये। जो विधवा एकादशीका व्रत नहीं रखती, वह दूसरे जन्ममें भी विधवा ही होती है तथा प्रत्येक जन्ममें दुर्भाग्यसे पीड़ित रहती है। मछली-मांस खाने और व्रत न करनेसे वह चिरकालतक नरकमें रहकर फिर कुत्तेकी योनिमें जन्म लेती है। जो कुलनाशिनी विधवा दुराचारिणी होकर मैथुन कराती है, वह नरक-यातना भोगनेके पश्चात् दस जन्मोंतक गीधिनी होती है। फिर दो जन्मोंतक लोमड़ी होकर पीछे मनुष्य-योनिमें जन्म लेती है। उसमें भी बाल-विधवा होकर दासी भावको प्राप्त होती है।

ब्राह्मणने कहा—भगवन्! यदि आपका मुझपर अनुग्रह है तो अब कन्यादानके फलका वर्णन कीजिये। साथ ही उसकी यथार्थ विधि भी बतलाइये।

श्रीभगवान् बोले—ब्रह्मन्! रूपवान्, गुणवान्, कुलीन, तरुण, समृद्धिशाली और धन-धान्यसे सम्पन्न वरको कन्यादान करनेका जो फल होता है, उसे श्रवण करो। जो मनुष्य आभूषणोंसे युक्त कन्याका दान करता है, उसके द्वारा पर्वत, वन और काननोंसहित सम्पूर्ण पृथ्वीका दान हो जाता है। जो पिता कन्याका शुल्क लेकर खाता है, वह नरकमें पड़ता है। जो मूर्ख अपनी पुत्रीको बेच देता है, उसका कभी नरकसे उद्धार

* यो वै गृहाश्रमं त्यक्त्वा मच्चित्तो जायते नरः। नित्यं स्मरति गोविन्दं सर्वपापक्षयो भवेत्॥
महाहत्यायुतं तेन कृतं गुर्वङ्गनागमः। शतं शतसहस्रं च पैष्टीमद्यस्य भक्षणम्॥
स्वर्णादेर्हरणं चैव तेषां संसर्गकश्चिरम्। एतान्यन्यानि पापानि महान्ति पातकानि च॥
अग्निं प्राप्य यथा तूलं तृणमाशु प्रणश्यति। तस्मान्मन्नाम गोविन्दं स्मृत्वा पूतो भवेन्नरः॥
यो वा गृहाश्रमे तिष्ठेन्नित्यं गोविन्दघोषणम्। कृत्वा च पूजयित्वा च स पापात्संतरो भवेत्॥
भागीरथीतटे रम्ये खगस्य ग्रहणे शिवे। गवां कोटिप्रदानेन यत्फलं लभते नरः॥
तत्फलं समवाप्नोति सहस्रं चाधिकं च यत्। गोविन्दकीर्तने तात मत्पुरे चाक्षयं वसेत्॥
(४९। ५०—५६)

नहीं होता। जो लोभवश अयोग्य पुरुषको कन्यादान देता है, वह रौरव नरकमें पड़कर अन्तमें चाण्डाल होता है।* इसीसे विद्वान् पुरुष दामादसे शुल्क लेनेका कभी विचार भी मनमें नहीं लाते। अपनी ओरसे दामादको जो कुछ दिया जाता है, वह अक्षय हो जाता है। पृथ्वी, गौ, सोना, धन धान्य और वस्त्र आदि जो कुछ दामादको दहेजके रूपमें दिया जाता है, सब अक्षय फलका देनेवाला होता है। जैसे कटी हुई डोर घड़ेके साथ स्वयं भी कुएँमें डूब जाती है, उसी प्रकार यदि दाता संकल्प किये हुए दानको भूल जाता है और दान लेनेवाला पुरुष फिर उसे याद दिलाकर माँगता नहीं तो वे दोनों नरकमें पड़ते हैं। सात्त्विक पुरुषको उचित है कि वह जामाताको दहेजमें देनेके लिये निश्चित की हुई सभी वस्तुएँ अवश्य दे डाले। न देनेपर पहले तो वह नरकमें पड़ता है; फिर प्रतिग्रह लेनेवालेके दासके रूपमें जन्म ग्रहण करता है।

जो बहुत खाता हो, अधिक दूर रहता हो, अत्यधिक धनवान् हो, जिसमें अधिक दुष्टता हो, जिसका कुल उत्तम न हो तथा जो मूर्ख हो—इन छः मनुष्योंको कन्या नहीं देनी चाहिये। इसी प्रकार अति-वृद्ध, अत्यन्त दीन, रोगी, अति निकट रहनेवाले, अत्यन्त क्रोधी और असन्तुष्ट—इन छः व्यक्तियोंको भी कन्यादान नहीं करना चाहिये। इन्हें कन्या देकर मनुष्य नरकमें पड़ता है। धनके लोभसे या सम्मान मिलनेकी आशासे जो कन्या देता या एक कन्या दिखाकर दूसरीका विवाह कर देता है, वह भी नरकगामी होता है। जो प्रतिदिन इस परम उत्तम पुण्यमय उपाख्यानका श्रवण करता है, उसके जन्म जन्मके पाप नष्ट हो जाते हैं।

तुलाधारके सत्य और समताकी प्रशंसा, सत्यभाषणकी महिमा, लोभ-त्यागके विषयमें एक शूद्रकी कथा और मूक चाण्डाल आदिका परमधामगमन



ब्राह्मणने कहा—प्रभो! यदि मुझपर आपकी कृपा हो तो अब तुलाधारके चरित्र और अनुपम प्रभावका पूरा पूरा वर्णन कीजिये।

श्रीभगवान् बोले—जो सत्यका पालन करते हुए लोभ और दोषबुद्धिका त्याग करके प्रतिदिन कुछ दान करता है, उसके द्वारा मानो नित्यप्रति उत्तम दक्षिणासे युक्त सौ यज्ञोंका अनुष्ठान होता रहता है। सत्यसे सूर्यका उदय होता है, सत्यसे ही वायु चलती रहती है, सत्यके ही प्रभावसे समुद्र अपनी मर्यादाका उल्लङ्घन नहीं करता और भगवान् कच्छप इस पृथ्वीको अपनी पीठपर धारण किये रहते हैं। सत्यसे ही तीनों लोक और समस्त पर्वत टिके हुए हैं। जो सत्यसे भ्रष्ट हो जाता है, उस प्राणीको निश्चय ही नरकमें निवास करना पड़ता है। जो सत्यवाणी और सत्यकार्यमें सदा संलग्न रहता है, वह इसी शरीरसे भगवान्‌के धाममें जाकर भगवत्स्वरूप हो जाता है। सत्यसे ही समस्त ऋषि मुनि मुझे प्राप्त होकर शाश्वत गतिमें स्थित हुए हैं। सत्यसे ही राजा युधिष्ठिर सशरीर स्वर्गमें चले गये।† उन्होंने समस्त शत्रुओंको जीतकर धर्मके अनुसार लोकका पालन किया। अत्यन्त दुर्लभ एवं विशुद्ध राजसूय यज्ञका अनुष्ठान किया। वे प्रतिदिन चौरासी हजार ब्राह्मणोंको भोजन कराते और उनकी इच्छाके अनुसार पर्याप्त धन दान करते थे। जब यह जान लेते कि इनमेंसे प्रत्येक ब्राह्मणकी दरिद्रता दूर हो चुकी है, तभी उस ब्राह्मण-समुदायको विदा करते थे। यह सब उनके सत्यका ही प्रभाव था। राजा हरिश्चन्द्र सत्यका आश्रय लेनेसे ही वाहन, परिवार तथा अपने विशुद्ध शरीरके साथ सत्यलोकमें प्रतिष्ठित हैं। इनके सिवा और भी बहुत-से राजा, सिद्ध, महर्षि, ज्ञानी और

---

* यः पुनः शुल्कमश्नाति स याति नरकं नरः। विक्रीत्वा चात्मजां मूढो नरकान्न निवर्तते॥
लोभादसदृशे पुंसि कन्यां यस्तु प्रयच्छति। रौरवं नरकं प्राप्य चाण्डालत्वं च गच्छति॥ (४९। ९०-९१)

† सत्येनोदयते सूरो वाति वातस्तथैव च। न लङ्घयेत् समुद्रस्तु कूर्मो वा धरणीं यथा॥
सत्येन लोकास्तिष्ठन्ति सर्वे च वसुधाधराः। सत्याद्भ्रष्टोऽथ यः सत्त्वोऽप्यधोवासी भवेद् ध्रुवम्॥
सत्यवाचि रतो यस्तु सत्यकार्यरतः सदा। सशरीरेण स्वर्लोकमागत्याच्युततां व्रजेत्॥
सत्येन मुनयः सर्वे मां च गत्वा स्थिराः स्थिताः। सत्याद् युधिष्ठिरो राजा सशरीरो दिवं गतः॥ (५०। १—५)

यज्ञकर्ता हो चुके हैं, जो कभी सत्यसे विचलित नहीं हुए। अतः लोकमें जो सत्यपरायण है, वही संसारका उद्धार करनेमें समर्थ होता है। महात्मा तुलाधार सत्यभाषणमें स्थित हैं। सत्य बोलनेके कारण ही इस जगत्में उनकी समानता करनेवाला दूसरा कोई नहीं है। ये तुलाधार कभी झूठ नहीं बोलते। महँगी और सस्ती सब प्रकारकी वस्तुओंके खरीदने-बेचनेमें ये बड़े बुद्धिमान् हैं।

विशेषतः साक्षीका सत्य वचन ही उत्तम माना गया है। कितने ही साक्षी सत्यभाषण करके अक्षय स्वर्गको प्राप्त कर चुके हैं। जो वक्ता विद्वान् सभामें पहुँचकर सत्य बोलता है, वह ब्रह्माजीके धामको, जो अन्यान्य यज्ञोंद्वारा दुर्लभ है, प्राप्त होता है। जो सभामें सत्यभाषण करता है, उसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है। लोभ और द्वेषवश झूठ बोलनेसे मनुष्य रौरव नरकमें पड़ता है। तुलाधार सबके साक्षी हैं, वे मनुष्योंमें साक्षात् सूर्य ही हैं। विशेष बात यह है कि लोभका परित्याग कर देनेके कारण मनुष्य स्वर्गमें देवता होता है।

एक महान् भाग्यशाली शूद्र था, जो कभी लोभमें नहीं पड़ता था। वह साग खाकर, बाजारसे अन्नके दाने चुनकर तथा खेतोंसे धानकी बालें बीनकर बड़े दुःखसे जीवन-निर्वाह करता था। उसके पास दो फटे-पुराने वस्त्र थे तथा वह अपने हाथोंसे ही सदा पात्रका काम लेता था। उसे कभी किसी वस्तुका लाभ नहीं हुआ, तथापि वह पराया धन नहीं लेता था। एक दिन मैं उसकी परीक्षा करनेके लिये दो नवीन वस्त्र लेकर गया और नदीके तीरपर एक कोनेमें उन्हें आदरपूर्वक रखकर अन्यत्र जा खड़ा हुआ। शूद्रने उन दोनों वस्त्रोंको देखकर भी मनमें लोभ नहीं किया और यह समझकर कि ये किसी औरके पड़े होंगे चुपचाप घर चला गया। तब यह सोचकर कि बहुत थोड़ा लाभ होनेके कारण ही उसने इन वस्त्रोंको नहीं लिया होगा, मैंने गूलरके फलमें सोनेका टुकड़ा डालकर उसे वहीं रख दिया। मगध प्रदेश, नदीका तट और कोनेका निर्जन स्थान—ऐसी जगह पहुँचकर उसने उस अद्भुत फलको देखा। उसपर दृष्टि पड़ते ही वह बोल उठा—'बस, बस; यह तो कोई कृत्रिम विधान दिखायी देता है। इस समय इस फलको ग्रहण कर लेनेपर मेरी अलोभवृत्ति नष्ट हो जायगी। इस धनकी रक्षा करनेमें बड़ा कष्ट होता है। यह अहंकारका स्थान है। जितना ही लाभ होता है, उतना ही लोभ बढ़ता जाता है। लाभसे ही लोभकी उत्पत्ति होती है। लोभसे ग्रस्त मनुष्यको सदा ही नरकमें रहना पड़ता है। यदि यह गुणहीन द्रव्य मेरे घरमें रहेगा तो मेरी स्त्री और पुत्रोंको उन्माद हो जायगा। उन्माद कामजनित विकार है। उससे बुद्धिमें भ्रम हो जाता है, भ्रमसे मोह और अहंकारकी उत्पत्ति होती है। उनसे क्रोध और लोभका प्रादुर्भाव होता है। इन सबकी अधिकता होनेपर तपस्याका नाश हो जायगा। तपस्याका क्षय हो जानेपर चित्तको मोहमें डालनेवाला मालिन्य पैदा होगा। उस मलिनतारूप साँकलमें बँध जानेपर मनुष्य फिर ऊपर नहीं उठ सकता।'

यह विचारकर वह शूद्र उस फलको वहीं छोड़ घर चला गया। उस समय स्वर्गस्थ देवता प्रसन्नताके साथ 'साधु-साधु' कहकर उसकी प्रशंसा करने लगे। तब मैं एक क्षपणकका रूप धारण करके उसके घरके पास गया और लोगोंको उनके भाग्यकी बातें बताने लगा। विशेषतः भूतकालकी बात बताया करता था। फिर लोगोंके बारंबार आने-जानेसे यह समाचार सब ओर फैल गया। यह सुनकर उस शूद्रकी स्त्री भी मेरे पास आयी और अपने भाग्यका कारण पूछने लगी। तब मैंने तुरंत ही उसके मनकी बात बता दी और एकान्तमें स्थित होकर कहा—'महाभागे! विधाताने आज तेरे लिये बहुत धन दिया था, किन्तु तेरे पतिने मूर्खकी भाँति उसका परित्याग कर दिया है। तेरे घरमें धनका बिल्कुल अभाव है। अतः जबतक तेरा पति जीवित रहेगा, तबतक उसे दरिद्रता ही भोगनी पड़ेगी—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। माता! तू शीघ्र ही अपने घर जा और पतिसे उस धनके विषयमें पूछ।' इस मङ्गलमय वचनको सुनकर वह अपने पतिके पास गयी और उस दुःखद वृत्तान्तकी चर्चा करने लगी। उसकी बातको सुनकर शूद्रको बड़ा विस्मय हुआ। वह कुछ सोचकर पत्नीको साथ लिये मेरे पास आया और एकान्तमें मुझसे बोला—'क्षपणक! बताओ, तुम क्या कहते थे?'

क्षपणक बोला—तात! तुम्हें प्रत्यक्ष धन प्राप्त हुआ था; फिर भी तुमने अवज्ञापूर्वक तिनकेकी भाँति उसका त्याग कर दिया। ऐसा क्यों किया? जान पड़ता है तुम्हारे भाग्यमें भोग नहीं बदा है। धनके अभावमें तुम्हें जन्मसे लेकर मृत्युतक अपने और बन्धु-बान्धवोंके दुःख देखने पड़ेंगे; प्रतिदिन मृतकोंकी-सी अवस्था भोगनी पड़ेगी। इसलिये शीघ्र ही उस धनको ग्रहण करो और निष्कण्टक भोग भोगो।

शूद्रने कहा—क्षपणक ! मुझे धनकी इच्छा नहीं है। धन संसार-बन्धनमें डालनेवाला एक जाल है। उसमें फँसे हुए मनुष्यका फिर उद्धार नहीं होता। इस लोक और परलोकमें भी धनके जो दोष हैं, उन्हें सुनो। धन रहनेपर चोर, बन्धु-बान्धव तथा राजासे भी भय प्राप्त होता है। सब मनुष्य [उस धनको हड़प लेनेके लिये] धनी व्यक्तिको मार डालनेकी अभिलाषा रखते हैं; फिर धन कैसे सुखद हो सकता है ? धन प्राणोंका घातक और पापका साधक है। धनीका घर काल एवं काम आदि दोषोंका निकेतन बन जाता है। अतः धन दुर्गतिका प्रधान कारण है।

क्षपणक बोला—जिसके पास धन होता है, उसीको मित्र मिलते हैं। जिसके पास धन है, उसके सभी भाई बन्धु हैं। कुल, शील, पाण्डित्य, रूप, भोग, यश और सुख—ये सब धनवान्‌को ही प्राप्त होते हैं। धनहीन मनुष्यको तो उसके स्त्री पुत्र भी त्याग देते हैं, फिर उसे मित्रोंकी प्राप्ति कैसे हो सकती है। जो जन्मसे दरिद्र हैं, वे धर्मका अनुष्ठान कैसे कर सकते हैं। स्वर्गप्राप्तिमें उपकारक जो सात्त्विक यज्ञकार्य तथा पोखरे खुदवाना आदि कर्म हैं, वे भी धनके अभावमें नहीं हो सकते। दान संसारके लिये स्वर्गकी सीढ़ी है; किन्तु निर्धन व्यक्तिके द्वारा उसकी भी सिद्धि होनी असम्भव है। व्रत आदिका पालन, धर्मोपदेश आदिका श्रवण, पितृ-यज्ञ आदिका अनुष्ठान तथा तीर्थ सेवन—ये शुभकर्म धनहीन मनुष्यके किये नहीं हो सकते। रोगोंका निवारण, पथ्यका सेवन, औषधोंका संग्रह, अपने शरीरकी रक्षा तथा शत्रुओंपर विजय आदि कार्य भी धनसे ही सिद्ध होते हैं, इसलिये जिसके पास बहुत धन हो, उसीको इच्छानुसार भोग प्राप्त हो सकते हैं। धन रहनेपर तुम दानसे ही शीघ्र स्वर्गकी प्राप्ति कर सकते हो।

शूद्रने कहा—कामनाओंका त्याग करनेसे ही समस्त व्रतोंका पालन हो जाता है। क्रोध छोड़ देनेसे तीर्थोंका सेवन हो जाता है। दया ही जपके समान है। सन्तोष ही शुद्ध धन है, अहिंसा ही सबसे बड़ी सिद्धि है, शिलोञ्छवृत्ति ही उत्तम जीविका है। सागका भोजन ही अमृतके समान है। उपवास ही उत्तम तपस्या है। सन्तोष ही मेरे लिये बहुत बड़ा भोग है। कौड़ीका दान ही मुझ-जैसे व्यक्तिके लिये महादान है। परायी स्त्रियाँ माता और पराया धन मिट्टीके ढेलेके समान है। परस्त्री सर्पिणीके समान भयङ्कर है। यही सब मेरा यज्ञ है। गुणनिधे ! इसी कारण मैं उस धनको नहीं ग्रहण करता। यह मैं सच-सच बता रहा हूँ। कीचड़ लगाकर धोनेकी अपेक्षा दूरसे उसका स्पर्श न करना ही अच्छा है।

श्रीभगवान् कहते हैं—नरश्रेष्ठ ! उस शूद्रके इतना कहते ही सम्पूर्ण देवता उसके शरीर और मस्तकपर फूलोंकी वर्षा करने लगे। देवताओंके नगारे बज उठे। गन्धर्वोंका गान होने लगा। तुरत ही आकाशसे विमान उतर आया। देवताओंने कहा—'धर्मात्मन् ! इस विमानपर बैठो और सत्यलोकमें चलकर दिव्य भोगोंका उपभोग करो। तुम्हारे उपभोग-कालका कोई परिमाण नहीं है—अनन्त कालतक तुम्हें पुण्योंका फल भोगना है।' देवगणोंके यों कहनेपर शूद्र बोला—'इस क्षपणकको ऐसा ज्ञान, ऐसी चेष्टा और इस प्रकार भाषणकी शक्ति कैसे प्राप्त हुई है ? इसके रूपमें भगवान् विष्णु, शिव, ब्रह्मा, शुक्र अथवा बृहस्पति—इनमेंसे तो कोई नहीं है ? अथवा मुझे छलनेके लिये साक्षात् धर्म ही तो यहाँ नहीं आये हैं ?' शूद्रके ऐसे वचन सुनकर क्षपणकके रूपमें उपस्थित हुआ मैं हँसकर बोला—'महामुने ! मैं साक्षात् विष्णु हूँ, तुम्हारे धर्मको जाननेके लिये यहाँ आया था। अब तुम अपने परिवारसहित विमानपर बैठकर स्वर्गको जाओ।'



तदनन्तर वह शूद्र दिव्य आभूषण और दिव्य वस्त्रोंसे सुशोभित हो सहसा परिवारसहित स्वर्गलोकको चला गया। इस प्रकार उस शूद्रपरिवारके सब लोग लोभ त्याग देनेके कारण स्वर्ग सिधारे। बुद्धिमान् तुलाधार धर्मात्मा

हैं। वे सत्यधर्ममें प्रतिष्ठित हैं। इसीलिये देशान्तरमें होनेवाली बातें भी उन्हें ज्ञात हो जाती हैं। तुलाधारके समान प्रतिष्ठित व्यक्ति देवलोकमें भी नहीं है। जो मनुष्य सब धर्मोंमें प्रतिष्ठित होकर इस पवित्र उपाख्यानका श्रवण करता है, उसके जन्म-जन्मके पाप तत्काल नष्ट हो जाते हैं। एक बारके पाठसे उसे सब यज्ञोंका फल मिल जाता है। वह लोकमें श्रेष्ठ और देवताओंका भी पूज्य होता है।

व्यासजी कहते हैं—तदनन्तर, मूक चाण्डाल आदि सभी धर्मात्मा परमधाम जानेकी इच्छासे भगवान्‌के पास आये। उनके साथ उनकी स्त्रियाँ तथा अन्यान्य परिकर भी थे। इतना ही नहीं, उनके घरके आस-पास जो छिपकलियाँ तथा नाना प्रकारके कीड़े-मकोड़े आदि थे, वे देवस्वरूप होकर उनके पीछे-पीछे जानेको उपस्थित थे। उस समय देवता, सिद्ध और महर्षिगण 'धन्य-धन्य' के नारे लगाते हुए फूलोंकी वर्षा करने लगे। विमानों और वनोंमें देवताओंके नगारे बजने लगे। वे सब महात्मा अपने-अपने विमानपर आरूढ हो विष्णुधामको पधारे। ब्राह्मण नरोत्तमने यह अद्भुत दृश्य देखकर श्रीजनार्दनसे कहा—'देवेश! मधुसूदन!! मुझे कोई उपदेश दीजिये।'

श्रीभगवान् बोले—तात! तुम्हारे माता-पिताका चित्त शोकसे व्याकुल हो रहा है; उनके पास जाओ। उनकी यत्नपूर्वक आराधना करके तुम शीघ्र ही मेरे धाममें जाओगे। माता-पिताके समान देवता देवलोकमें भी नहीं हैं। उन्होंने शैशवकालमें तुम्हारे घिनौने शरीरका सदा पालन किया है। उसका पोषण करके बढ़ाया है। तुम अज्ञान-दोषसे युक्त थे, माता-पिताने तुम्हें सज्ञान बनाया है। चराचर प्राणियोंसहित समस्त त्रिलोकीमें भी उनके समान पूज्य कोई नहीं है।

व्यासजी कहते हैं—तदनन्तर देवगण मूक चाण्डाल, पतिव्रता शुभा, तुलाधार वैश्य, सज्जनाद्रोहक, और वैष्णव संत—इन पाँचों महात्माओंको साथ ले प्रसन्नतापूर्वक भगवान्‌की स्तुति करते हुए वैकुण्ठधाममें पधारे। वे सभी अच्युत-स्वरूप होकर सम्पूर्ण लोकोंके ऊपर स्थित हुए। नरोत्तम ब्राह्मणने भी यत्नपूर्वक माता-पिताकी आराधना करके थोड़े कालमें ही कुटुम्बसहित भगवद्धामको प्राप्त किया। शिष्यगण! यह पाँच महात्माओंका पवित्र उपाख्यान मैंने तुम्हें सुनाया है। जो इसका पाठ अथवा श्रवण करेगा, उसकी कभी दुर्गति नहीं होगी। वह ब्रह्महत्या आदि पापोंसे कभी लिप्त नहीं हो सकता। मनुष्य करोड़ों गोदान करनेसे जिस फलको प्राप्त करता है, पुष्कर तीर्थ और गङ्गानदीमें स्नान करनेसे उसे जिस फलकी प्राप्ति होती है, वही फल एक बार इस उपाख्यानके सुनने मात्रसे मिल जाता है।

पोखरे खुदाने, वृक्ष लगाने, पीपलकी पूजा करने, पौंसले (प्याऊ) चलाने, गोचरभूमि छोड़ने, देवालय बनवाने और देवताओंकी पूजा करनेका माहात्म्य

ब्राह्मणोंने कहा—मुनिश्रेष्ठ! यदि हमलोगोंपर आपका अनुग्रह हो तो उन श्रेष्ठ कर्मोंका वर्णन कीजिये, जिनसे संसारमें कीर्ति और धर्मकी प्राप्ति होती है।

व्यासजीने कहा—जिसके खुदवाये हुए पोखरेमें अथवा वनमें गौएँ एक मास या सात दिनोंतक तृप्त रहती हैं, वह पवित्र होकर सम्पूर्ण देवताओंद्वारा पूजित होता है। विशेषतः प्रतिष्ठाके द्वारा पवित्र हुई पोखरीके जलका दान करनेसे जो फल होता है, वह सब सुनो। पोखरेमें जब मेघ वर्षा करता है, उस समय जलके जितने छींटे उछलते हैं, उतने ही हजार वर्षोंतक पोखरा बनवानेवाला मनुष्य स्वर्गलोकका सुख भोगता है। जलसे खेती पकती है, जिससे मनुष्यको प्रसन्नता होती है। जलके बिना प्राणोंका धारण करना असम्भव है। पितरोंका तर्पण, शौच, सुन्दर रूप और दुर्गन्धका नाश—ये सब जलपर ही निर्भर हैं। इस जगत्‌में संग्रह किये हुए सम्पूर्ण बीजोंका आधार जल ही है। कपड़े धोना और बर्तनोंको माँज-धोकर चमकीला बनाना भी जलके ही अधीन है। इसीसे प्रत्येक कार्यमें जलको पवित्र माना गया है। अतः सब प्रकारसे प्रयत्न करके सारा बल और सारा धन लगाकर बावली, कुँआ तथा पोखरा बनवाने चाहिये। जो निर्जल प्रदेशमें जलाशय बनवाता है, उसे प्रतिदिन इतना पुण्य प्राप्त होता है, जिससे वह एक-एक दिनके पुण्यके बदले एक-एक कल्पतक स्वर्गमें निवास करता है। जो पुरुष प्रतिदिन दूसरोंके उपकारके लिये चार हाथ कुँआ खोदता

है, वह एक एक वर्षके पुण्यका एक एक कल्पतक स्वर्गमें रहकर उपभोग करता है। जलाशय बनानेका उपदेश देनेवालेको एक करोड़ वर्षोंतक स्वर्गका निवास प्राप्त होता है तथा जो स्वयं जलाशय बनवाता है, उसका पुण्य अक्षय होता है।

पूर्वकालकी बात है, किसी धनीके पुत्रने एक विख्यात जलाशयका निर्माण कराया, जिसमें उसने दस हजार सोनेकी मुहरें व्यय की थीं। धनीने अपनी पूरी शक्ति लगाकर प्राणपणसे चेष्टा करके बड़ी श्रद्धाके साथ सम्पूर्ण प्राणियोंके उपकारके लिये वह कल्याणमय जलाशय तैयार कराया था। कुछ कालके पश्चात् वह निर्धन हो गया। उसके बाद एक दूसरा धनी उसके बनवाये हुए जलाशयका मूल्य देनेको उद्यत हुआ और कहा—'मैं इस जलाशयके लिये दस हजार स्वर्ण मुद्राएँ दूँगा। इसे खुदवानेका पुण्य तो तुम्हें मिल ही चुका है। मैं केवल मूल्य देकर इसके ऊपर अपना अधिकार करना चाहता हूँ। यदि तुम्हें लाभ जान पड़े तो मेरा प्रस्ताव स्वीकार करो।' धनीके ऐसा कहनेपर जलाशय निर्माण करानेवालेने उसे इस प्रकार उत्तर दिया—'भाई! दस हजारका पुण्यफल तो इस जलाशयसे मुझे रोज ही प्राप्त होता है। पुण्यवेत्ताओंने जलाशय निर्माणका ऐसा ही पुण्य माना है। इस निर्जल प्रदेशमें मैंने यह कल्याणमय सरोवर निर्माण कराया है, इसमें सब लोग अपनी इच्छाके अनुसार स्नान और जलपान आदि कार्य करते हैं।'

उसकी यह बात सुनकर लोगोंने खूब हँसी उड़ायी। तब वह लज्जासे पीड़ित होकर बोला—'हमारी यह बात सच है; विश्वास न हो तो धर्मानुसार इसकी परीक्षा कर लो।' धनीने ईर्ष्यापूर्वक कहा—'बाबू! मेरी बात सुनो। मैं पहले तुम्हें दस हजार स्वर्णमुद्राएँ देता हूँ। इसके बाद मैं पत्थर लाकर तुम्हारे जलाशयमें डालूँगा। पत्थर स्वाभाविक ही पानीमें डूब जायगा। फिर यदि वह समयानुसार पानीके ऊपर आकर तैरने लगेगा तो मेरा रुपया मारा जायगा। नहीं तो इस जलाशयपर धर्मतः मेरा अधिकार हो जायगा।' जलाशय बनवानेवालेने 'बहुत अच्छा' कहकर उससे दस हजार मुद्राएँ ले लीं और अपने घरको चल दिया। धनीने कई गवाह बुलाकर उनके सामने उस महान् जलाशयमें पत्थर गिराया। उसके इस कार्यको मनुष्यों, देवताओं और असुरोंने भी देखा। तब धर्मके साक्षीने धर्मतुलापर दस हजार स्वर्णमुद्राएँ और जलाशयके जलको तोला; किन्तु वे मुद्राएँ जलाशयसे होनेवाले एक दिनके जल-दानकी भी तुलना न कर सकीं। अपने धनको व्यर्थ जाते देख धनीके हृदयको बड़ा दुःख हुआ। दूसरे दिन वह पत्थर भी द्वीपकी भाँति जलके ऊपर तैरने लगा। यह देख लोगोंमें बड़ा कोलाहल मचा। इस अद्भुत घटनाकी बात सुनकर धनी और जलाशय-का स्वामी दोनों ही प्रसन्नतापूर्वक वहाँ आये। पत्थरको उस अवस्थामें देख धनीने अपनी दस हजार मुद्राएँ उसीकी मान लीं। तत्पश्चात् जलाशयके स्वामीने ही वह पत्थर उठाकर दूर फेंक दिया।

नष्ट होते हुए जलाशयको पुनः खुदवाकर उसका उद्धार करनेसे जो पुण्य होता है, उसके द्वारा मनुष्य स्वर्गमें निवास करता है तथा प्रत्येक जन्ममें वह शान्त और सुखी होता है। अपने गोत्रके मनुष्य, माताके कुटुम्बी, राजा, सगे-सम्बन्धी, मित्र और उपकारी पुरुषोंके खुदवाये हुए जलाशयका जीर्णोद्धार करनेसे अक्षय फलकी प्राप्ति होती है। तपस्वियों, अनाथों और विशेषतः ब्राह्मणोंके लिये जलाशय खुदवानेसे भी मनुष्य अक्षय स्वर्गका सुख भोगता है। इसलिये ब्राह्मणो! जो अपनी शक्तिके अनुसार जलाशय आदिका निर्माण कराता है, वह सब पापोंके क्षय हो जानेसे [अक्षय] पुण्य तथा मोक्षको प्राप्त होता है। जो धार्मिक पुरुष लोकमें इस महान् धर्ममय उपाख्यानको सुनाता है, उसे सब प्रकारके जलाशय दान करनेका फल होता है। सूर्यग्रहणके समय गङ्गाजीके उत्तम तटपर एक करोड़ गोदान करनेका जो फल होता है, वही इस प्रसङ्गको सुननेसे मनुष्य प्राप्त कर लेता है।

अब मैं सम्पूर्ण वृक्षोंके लगानेका अलग-अलग फल बताऊँगा। जो जलाशयके तटपर चारों ओर पवित्र वृक्षोंको लगाता है, उसके पुण्यफलका वर्णन नहीं किया जा सकता। अन्य स्थानोंमें वृक्ष लगानेसे जो फल प्राप्त होता है, जलके समीप लगानेपर उसकी अपेक्षा करोड़ोंगुना अधिक फल होता है। अपने बनवाये हुए पोखरेके किनारे वृक्ष लगानेवाला मनुष्य अनन्त फलका भागी होता है।

जलाशयके समीप पीपलका वृक्ष लगाकर मनुष्य जिस फलको प्राप्त करता है, वह सैकड़ों यज्ञोंसे भी नहीं मिल सकता। प्रत्येक पर्वके दिन जो उसके पत्ते जलमें गिरते हैं, वे पिण्डके समान होकर पितरोंको अक्षय तृप्ति प्रदान करते हैं तथा उस वृक्षपर रहनेवाले पक्षी अपनी इच्छाके अनुसार जो फल खाते हैं, उसका ब्राह्मण-भोजनके समान अक्षय फल होता है। गर्मीके समयमें गौ, देवता और ब्राह्मण जिस पीपलकी छायामें बैठते हैं,

उसे लगानेवाले मनुष्यके पितरोंको अक्षय स्वर्गकी प्राप्ति होती है । अतः सब प्रकारसे प्रयत्न करके पीपलका वृक्ष लगाना चाहिये । एक वृक्ष लगा देनेपर भी मनुष्य स्वर्गसे भ्रष्ट नहीं होता । रसोंके क्रय-विक्रयके लिये नियत रमणीय स्थानपर, मार्गमें और जलाशयके किनारे जो वृक्ष लगाता है, वह मनोरम स्वर्गको प्राप्त होता है ।

ब्राह्मणो ! पीपलके वृक्षकी पूजा करनेसे जो पुण्य होता है, उसे बतलाता हूँ; सुनो । जो मनुष्य स्नान करके पीपलके वृक्षका स्पर्श करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है । जो बिना नहाये पीपलका स्पर्श करता है, उसे स्नानजन्य फलकी प्राप्ति होती है । अश्वत्थके दर्शनसे पापका नाश और स्पर्शसे लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है, उसकी प्रदक्षिणा करनेसे आयु बढ़ती है । अश्वत्थ वृक्षको हविष्य, दूध, नैवेद्य, फूल, धूप और दीपक अर्पण करके मनुष्य स्वर्गसे भ्रष्ट नहीं होता । पीपलकी जड़के पास बैठकर जो जप, होम, स्तोत्र-पाठ और यन्त्र-मन्त्रादिके अनुष्ठान किये जाते हैं, उन सबका फल करोड़गुना होता है । जिसकी जड़में श्रीविष्णु, तनेमें भगवान् शङ्कर तथा अग्रभागमें साक्षात् ब्रह्माजी स्थित हैं, उसे संसारमें कौन नहीं पूजेगा । सोमवती अमावास्याको मौन होकर स्नान और एक हजार गौओंका दान करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वही फल अश्वत्थ वृक्षको प्रणाम करनेसे मिल जाता है । अश्वत्थकी सात बार प्रदक्षिणा करनेसे दस हजार गौओंके और इससे अधिक अनेकों बार परिक्रमा करनेपर करोड़ों गौओंके दानका फल प्राप्त होता है । अतः पीपल वृक्षकी परिक्रमा सदा ही करनी चाहिये ।

विप्रगण ! पीपलके वृक्षके नीचे जो फल, मूल और जल आदिका दान किया जाता है, वह सब अक्षय होकर जन्म-जन्मान्तरोंमें प्राप्त होता रहता है । पीपलके समान दूसरा कोई वृक्ष नहीं है । अश्वत्थ वृक्षके रूपमें साक्षात् श्रीहरि ही इस भूतलपर विराजमान हैं । जैसे संसारमें ब्राह्मण, गौ तथा देवता पूजनीय होते हैं, उसी प्रकार पीपलका वृक्ष भी अत्यन्त पूजनीय माना गया है । पीपलको रोपने, रक्षा करने, छूने तथा पूजनेसे वह क्रमशः धन, पुत्र, स्वर्ग और मोक्ष प्रदान करता है । जो मनुष्य अश्वत्थ वृक्षके शरीरमें कहीं कुछ चोट पहुँचाता है—उसकी डाली या टहनी काट लेता है, वह एक कल्पतक नरक भोगकर चाण्डाल आदिकी योनिमें जन्म ग्रहण करता है । और जो कोई पीपलको जड़से काट देता है, उसका कभी नरकसे उद्धार नहीं होता । यही नहीं, उसकी पहली कई पीढ़ियाँ भयंकर रौरव नरकमें पड़ती हैं । बेलके आठ, बरगदके सात और नीमके दस वृक्ष लगानेका जो फल होता है, पीपलका एक पेड़ लगानेसे भी वही फल होता है ।

अब मैं पौंसले (प्याऊ) का लक्षण बताता हूँ । जहाँ जलका अभाव हो, ऐसे मार्गमें पवित्र स्थानपर एक मण्डप बनाये । वह मार्ग ऐसा होना चाहिये, जहाँ बहुत-से पथिकोंका आना-जाना लगा रहता हो । वहाँ मण्डपमें जलका प्रबन्ध रखे और गर्मी, बरसात तथा शरद्‌ऋतुमें बटोहियोंको जल पिलाता रहे । तीन वर्षोंतक इस प्रकार पौंसलेको चालू रखनेसे पोखरा खुदवानेका-पुण्य प्राप्त होता है । जो जलहीन प्रदेशमें ग्रीष्मके समय एक मासतक पौंसला चलाता है, वह एक कल्पतक स्वर्गमें सम्मानपूर्वक निवास करता है । जो पोखरे आदिके फलको पढ़ता अथवा सुनाता है, वह पापसे मुक्त होता है और उसके प्रभावसे उसकी सद्गति हो जाती है ।

अब ब्रह्माजीने सेतु बाँधनेका जैसा फल बताया है, वह सुनो । जहाँका मार्ग दुर्गम हो, दुस्तर कीचड़से भरा हो तथा जो प्रचुर कण्टकोंसे आकीर्ण हो, वहाँ पुल बँधवाकर मनुष्य पवित्र हो जाता है तथा देवत्वको प्राप्त होता है । जो एक बित्तेका भी पुल बँधवा देता है, वह सौ दिव्य वर्षोंतक स्वर्गमें निवास करता है । अतः जिसने पहले कभी एक बित्तेका भी पुल बँधवाया है, वह राजवंशमें जन्म ग्रहण करता है और अन्तमें महान् स्वर्गको प्राप्त होता है ।

इसी प्रकार जो गोचरभूमि छोड़ता है, वह कभी स्वर्गसे नीचे नहीं गिरता । गोदान करनेवालेकी जो गति होती है, वही उसकी भी होती है । जो मनुष्य यथाशक्ति गोचरभूमि छोड़ता है, उसे प्रतिदिन सौसे भी अधिक ब्राह्मणोंको भोजन करानेका पुण्य होता है । जो पवित्र वृक्ष और गोचरभूमिका उच्छेद करता है, उसकी इक्कीस पीढ़ियाँ रौरव नरकमें पकायी जाती हैं । गाँवके गोपालकको चाहिये कि गोचरभूमिको नष्ट करनेवाले मनुष्यका पता लगाकर उसे दण्ड दे ।

जो मनुष्य भगवान् श्रीविष्णुकी प्रतिमाके लिये तीन या पाँच खंभोंसे युक्त, शोभासम्पन्न और सुन्दर कलशसे विभूषित मन्दिर बनवाता है, अथवा इससे भी बढ़कर जो मिट्टी या पत्थरका देवालय निर्माण कराता है, उसके खर्चके लिये धन और वृत्ति लगाता है तथा मन्दिरमें अपने इष्टदेवकी,

विशेषतः भगवान् श्रीविष्णुकी प्रतिमा स्थापित करके शास्त्रोक्त विधिसे उसकी प्रतिष्ठा कराता है, वह नरश्रेष्ठ भगवान् श्रीविष्णुके सायुज्यको प्राप्त होता है। श्रीविष्णु या श्रीशिवकी प्रतिमा बनवाकर उसके साथ अन्य देवताओंकी भी मनोहर मूर्ति निर्माण करानेसे मनुष्य जिस फलको प्राप्त करता है, वह इस पृथ्वीपर हजारों यज्ञ, दान और व्रत आदि करनेसे भी नहीं मिलता। अपनी शक्तिके अनुसार श्रीशिवलिङ्गके लिये मन्दिर बनवाकर धर्मात्मा पुरुष वही फल प्राप्त करता है, जो श्रीविष्णु-प्रतिमाके लिये मन्दिर बनवानेसे मिलता है। [वह शिव सायुज्यको प्राप्त होता है।] जो मनुष्य अपने घरमें भगवान् श्रीशङ्करकी सुन्दर प्रतिमा स्थापित करता है, वह एक करोड़ कल्पोंतक देवलोकमें निवास करता है। जो मनुष्य प्रसन्नतापूर्वक श्रीगणेशजीका मन्दिर बनवाता है, वह देवलोकमें पूजित होता है। इसी प्रकार जो नरश्रेष्ठ भगवान् सूर्यका मन्दिर बनवाता है, उसे उत्तम फलकी प्राप्ति होती है। सूर्य-प्रतिमाके लिये पत्थरका मन्दिर बनवाकर मनुष्य सौ करोड़ कल्पोंतक स्वर्ग भोगता है।

जो इष्टदेवके मन्दिरमें एक मासतक अहर्निश घीका दीपक जलाता है, वह उत्तम देवताओंसे पूजित होकर दस हजार दिव्य वर्षोंतक स्वर्गलोकमें निवास करता है। तिलके अथवा दूसरे किसी तेलसे दीपक जलानेका फल घीकी अपेक्षा आधा होता है। एक मासतक जल चढ़ानेसे जो फल मिलता है, उससे मनुष्य ईश्वर भावको प्राप्त होता है। शीतकालमें देवताको रूईदार कपड़ा चढाकर मनुष्य सब दुःखोंसे मुक्त हो जाता है। देवविग्रहको ढकनेके लिये चार हाथका सुन्दर वस्त्र अर्पण करके मनुष्य कभी स्वर्गसे नहीं गिरता। उन्नतिकी इच्छा रखनेवाले पुरुषोंको स्वयम्भू शिव लिङ्गोंकी पूजा करनी चाहिये। जो विद्वान् एक बार भी शिवलिङ्गकी परिक्रमा करता है, वह सौ दिव्य वर्षोंतक स्वर्गलोकका सुख भोगता है। इसी प्रकार क्रमशः स्वयम्भू लिङ्गको नमस्कार करके मनुष्य विश्ववन्द्य होकर स्वर्गलोकको जाता है; इसलिये प्रतिदिन उन्हें प्रणाम करना चाहिये।

जो मनुष्य लिङ्गस्वरूप भगवान् श्रीशङ्करके धनका अपहरण करता है, वह रौरव नरककी यातना भोगकर अन्तमें कीड़ा होता है। जो शिवलिङ्ग अथवा भगवान् श्रीविष्णुकी पूजाके लिये मिले हुए दाताके द्रव्यको स्वयं ही हड़प लेता है, वह अपने कुलकी करोड़ों पीढ़ियोंके साथ नरकसे उद्धार नहीं पाता। जो जल, फूल और धूप-दीप आदिके लिये धन लेकर फिर लोभवश उसे उस कार्यमें नहीं लगाता, वह अक्षय नरकमें पड़ता है। भगवान् शिवके अन्न-पानका भक्षण करनेसे मनुष्यकी बड़ी दुर्गति होती है। अतः जो ब्राह्मण शिवमन्दिरमें पूजाकी वृत्तिसे जीविका चलाता है, उसका कभी नरकसे उद्धार नहीं होता। अनाथ, दीन और विशेषतः श्रोत्रिय ब्राह्मणके लिये सुन्दर घर निर्माण कराकर मनुष्य कभी स्वर्गलोकसे नहीं गिरता। जो इस परम उत्तम पवित्र उपाख्यानका प्रतिदिन श्रवण करता है, उसे अक्षय स्वर्गकी प्राप्ति होती है तथा मन्दिर-निर्माण आदिका फल भी प्राप्त हो जाता है।

रुद्राक्षकी उत्पत्ति और महिमा तथा आँवलेके फलकी महिमामें प्रेतोंकी कथा और तुलसीदलका माहात्म्य

ब्राह्मणोंने पूछा—द्विजश्रेष्ठ! इस मर्त्यलोकमें कौन ऐसा मनुष्य है, जो पुण्यात्माओंमें श्रेष्ठ, परम-पवित्र, सबके लिये सुलभ, मनुष्योंके द्वारा पूजन करने योग्य तथा मुनियों और तपस्वियोंका भी आदरपात्र हो?

व्यासजी बोले—विप्रगण! रुद्राक्षकी माला धारण करनेवाला पुरुष सब प्राणियोंमें श्रेष्ठ है। उसके दर्शनमात्रसे लोगोंकी पाप-राशि विलीन हो जाती है। रुद्राक्षके स्पर्शसे मनुष्य स्वर्गका सुख भोगता है और उसे धारण करनेसे वह मोक्षको प्राप्त होता है। जो मस्तकपर तथा हृदय और बाँहमें भी रुद्राक्ष धारण करता है, वह इस संसारमें साक्षात् भगवान् शङ्करके समान है। रुद्राक्षधारी ब्राह्मण जहाँ रहता है, वह देश पुण्यवान् होता है। रुद्राक्षका फल तीर्थोंमें महान् तीर्थके समान है। ब्रह्म-ग्रन्थिसे युक्त मङ्गलमयी रुद्राक्षकी माला लेकर जो जप, दान, स्तोत्र, मन्त्र और देवताओंका पूजन तथा दूसरा कोई पुण्य कर्म करता है, वह सब अक्षय हो जाता है तथा उससे पापोंका क्षय होता है।

श्रेष्ठ द्विजगण! अब मैं मालाका लक्षण बतलाता हूँ, सुनो। उसका लक्षण जानकर तुमलोग मोक्ष मार्ग प्राप्त कर लोगे। जिस रुद्राक्षमें योनिका चिह्न न हो, जिसमें कीड़ोंने छेद कर दिया हो, जिसका लिङ्गचिह्न मिट गया हो तथा जिसमें दो बीज

एक साथ सटे हुए हों, ऐसे रुद्राक्षके दानेको मालामें नहीं लेना चाहिये। जो माला अपने हाथसे गूँथी हुई और ढीली-ढाली हो, जिसके दाने एक-दूसरेसे सटे हुए हों अथवा शूद्र आदि नीच मनुष्योंने जिसे गूँथा हो—ऐसी माला अशुद्ध होती है। उसका दूरसे ही परित्याग कर देना चाहिये। जो सर्पके समान आकारवाली (एक ओरसे बड़ी और क्रमशः छोटी), नक्षत्रोंकी-सी शोभा धारण करनेवाली, सुमेरुसे युक्त तथा सटी हुई ग्रन्थिके कारण शुद्ध है, वही माला उत्तम मानी गयी है। विद्वान् पुरुषको वैसी ही मालापर जप करना चाहिये। उपर्युक्त लक्षणोंसे शुद्ध रुद्राक्षकी माला हाथमें लेकर मध्यमा अङ्गुलिसे लगे हुए दानोंको क्रमशः अँगूठेसे सरकाते हुए जप करना चाहिये। मेरुके पास पहुँचनेपर मालाको हाथसे बार-बार घुमा लेना चाहिये—मेरुका उल्लङ्घन करना उचित नहीं है। वैदिक, पौराणिक तथा आगमोक्त जितने भी मन्त्र हैं, सब रुद्राक्षमालापर जप करनेसे अभीष्ट फलके उत्पादक और मोक्षदायक होते हैं। जो रुद्राक्षमालासे चूते हुए जलको मस्तकपर धारण करता है, वह सब पापोंसे शुद्ध होकर अक्षय पुण्यका भागी होता है। रुद्राक्षमालाका एक-एक बीज एक-एक देवताके समान है। जो मनुष्य अपने शरीरमें रुद्राक्ष धारण करता है, वह देवताओंमें श्रेष्ठ होता है।

ब्राह्मणोंने पूछा—गुरुदेव! रुद्राक्षकी उत्पत्ति कहाँसे हुई है? तथा वह इतना पवित्र कैसे हुआ?

व्यासजी बोले—ब्राह्मणो! पहले किसी सत्ययुगमें एक त्रिपुर नामका दानव रहता था, वह देवताओंका वध करके अपने अन्तरिक्षचारी नगरमें छिप जाता था। ब्रह्माजीके वरदानसे प्रबल होकर वह सम्पूर्ण लोकोंके विनाशकी चेष्टा कर रहा था। एक समय देवताओंके निवेदन करनेपर भगवान् शङ्करने यह भयंकर समाचार सुना। सुनते ही उन्होंने अपने आजगव नामक धनुषपर विकराल बाण चढ़ाया और उस दानवको दिव्य दृष्टिसे देखकर मार डाला। दानव आकाशसे टूटकर गिरनेवाली बहुत बड़ी लूकाके समान इस पृथ्वीपर गिरा। इस कार्यमें अत्यन्त श्रम होनेके कारण रुद्रदेवके शरीरसे पसीनेकी बूँदें टपकने लगीं। उन बूँदोंसे तुरंत ही पृथ्वीपर रुद्राक्षका महान् वृक्ष प्रकट हुआ। इसका फल अत्यन्त गुप्त होनेके कारण साधारण जीव उसे नहीं जानते। तदनन्तर एक दिन कैलासके शिखरपर विराजमान हुए देवाधिदेव भगवान् शङ्करको प्रणाम करके कार्तिकेयजीने कहा—'तात! मैं रुद्राक्षका यथार्थ फल जानना चाहता हूँ। उसपर जप करने तथा उसका धारण, दर्शन अथवा स्पर्श करनेसे क्या फल मिलता है?'

भगवान् शिवने कहा—रुद्राक्षके धारण करनेसे मनुष्य सम्पूर्ण पापोंसे छूट जाता है। यदि कोई हिंसक पशु भी कण्ठमें रुद्राक्ष धारण करके मर जाय तो रुद्रस्वरूप हो जाता है, फिर मनुष्य आदिके लिये तो कहना ही क्या है। जो मनुष्य मस्तक और हृदयमें रुद्राक्षकी माला धारण करके चलता है, उसे पग-पगपर अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है। [रुद्राक्षमें एकसे लेकर चौदहतक मुख होते हैं।] जो कितने भी मुखवाले रुद्राक्षोंको धारण करता है, वह मेरे समान होता है; इसलिये पुत्र! तुम पूरा प्रयत्न करके रुद्राक्ष धारण करो। जो रुद्राक्ष धारण करके इस भूतलपर प्राण-त्याग करता है, वह सब देवताओंसे पूजित होकर मेरे रमणीय धामको जाता है। जो मृत्युकालमें मस्तकपर एक रुद्राक्षकी माला धारण करता है, वह शैव, वैष्णव, शाक्त, गणेशोपासक और सूर्योपासक सब कुछ है। जो इस प्रसङ्गको पढ़ता-पढ़ाता, सुनता और सुनाता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर सुखपूर्वक मोक्ष-लाभ करता है।

कार्तिकेयजीने कहा—जगदीश्वर! मैं अन्यान्य फलोंकी पवित्रताके विषयमें भी प्रश्न कर रहा हूँ। सब लोगोंके हितके लिये यह बतलाइये कि कौन-कौनसे फल उत्तम हैं।

ईश्वरने कहा—बेटा! आँवलेका फल समस्त लोकोंमें प्रसिद्ध और परम पवित्र है। उसे लगानेपर स्त्री और पुरुष सभी जन्म-मृत्युके बन्धनसे मुक्त हो जाते हैं। यह पवित्र फल भगवान् श्रीविष्णुको प्रसन्न करनेवाला एवं शुभ माना गया है, इसके भक्षणमात्रसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाते हैं। आँवला खानेसे आयु बढ़ती है, उसका जल पीनेसे धर्म-सञ्चय होता है और उसके द्वारा स्नान करनेसे दरिद्रता दूर होती है तथा सब प्रकारके ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं। कार्तिकेय! जिस घरमें आँवला सदा मौजूद रहता है, वहाँ दैत्य और राक्षस नहीं जाते। एकादशीके दिन यदि एक ही आँवला मिल जाय तो उसके सामने गङ्गा, गया, काशी और पुष्कर आदि तीर्थ कोई विशेष महत्त्व नहीं रखते। जो दोनों पक्षोंकी एकादशीको आँवलेसे स्नान करता है, उसके सब पाप नष्ट हो जाते हैं और वह श्रीविष्णुलोकमें सम्मानित होता है। षडानन! जो आँवलेके रससे सदा अपने केश

साफ करता है, वह पुन माताके स्तनका दूध नहीं पीता। आँवलेका दर्शन, स्पर्श तथा उसके नामका उच्चारण करनेसे सन्तुष्ट होकर वरदायक भगवान् श्रीविष्णु अनुकूल हो जाते हैं। जहाँ आँवलेका फल मौजूद होता है, वहाँ भगवान् श्रीविष्णु सदा विराजमान रहते हैं तथा उस घरमें ब्रह्मा एव सुस्थिर लक्ष्मीका भी वास होता है। इसलिये अपने घरमें आँवला अवश्य रखना चाहिये। जो आँवलेका बना मुरब्बा एव बहुमूल्य नैवेद्य अर्पण करता है, उसके ऊपर भगवान् श्रीविष्णु बहुत सन्तुष्ट होते हैं। उतना सन्तोष उन्हें सैकड़ों यज्ञ करनेपर भी नहीं हो सकता।

स्कन्द! योगी मुनियों तथा ज्ञानियोंको जो गति प्राप्त होती है, वही आँवलेका सेवन करनेवाले मनुष्यको भी मिलती है। तीर्थोंमें वास एव तीर्थ-यात्रा करनेसे तथा नाना प्रकारके व्रतोंसे मनुष्यको जो गति प्राप्त होती है, वही आँवलेके फलका सेवन करनेसे भी मिल जाती है। तात! प्रत्येक रविवार तथा विशेषत. सप्तमी तिथिको आँवलेका फल दूरसे ही त्याग देना चाहिये। सक्रान्तिके दिन, शुक्रवारको तथा षष्ठी, प्रतिपदा, नवमी और अमावास्याको आँवलेका दूरसे ही परित्याग करना उचित है। जिस मृतकके मुख, नाक, कान अथवा बालोंमें आँवलेका फल हो, वह विष्णुलोकको जाता है। आँवलेके सम्पर्कमात्रसे मृत व्यक्ति भगवद्धामको प्राप्त होता है। जो धार्मिक मनुष्य शरीरमें आँवलेका रस लगाकर स्नान करता है, उसे पद-पदपर अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है। उसके दर्शन मात्रसे जितने भी पापी जन्तु हैं, वे भाग जाते हैं तथा कठोर एव दुष्ट ग्रह पलायन कर जाते हैं।

स्कन्द! पूर्वकालकी बात है—एक चाण्डाल शिकार खेलनेके लिये वनमें गया। वहाँ अनेकों मृगों और पक्षियोंको मारकर जब वह भूख प्याससे अत्यन्त पीडित हो गया, तब सामने ही उसे एक आँवलेका वृक्ष दिखायी दिया। उसमें खूब मोटे-मोटे फल लगे थे। चाण्डाल सहसा वृक्षके ऊपर चढ गया और उसके उत्तम-उत्तम फल खाने लगा। प्रारब्धवश वह वृक्षके शिखरसे पृथ्वीपर गिर पड़ा और वेदनासे व्यथित होकर इस लोकसे चल बसा। तदनन्तर सम्पूर्ण प्रेत, राक्षस, भूतगण तथा यमराजके सेवक बड़ी प्रसन्नताके साथ वहाँ आये, किन्तु उसे ले न जा सके। यद्यपि वे महान् बलवान् थे, तथापि उस मृतक चाण्डालकी ओर आँख उठाकर देख भी नहीं सकते थे। जब कोई भी उसे पकड़कर ले जा न सका, तब वे अपनी असमर्थता देख मुनियोंके पास जाकर बोले—'ज्ञानी महर्षियो! चाण्डाल तो बड़ा पापी था, फिर क्या कारण है कि हमलोग तथा ये यमराजके सेवक उसकी ओर देख भी न सके?' 'यह मेरा है, यह मेरा है' कहते हुए हमलोग झगड़ा कर रहे हैं, किन्तु उसे ले जानेकी शक्ति नहीं रखते। क्यों और किसके प्रभावसे वह सूर्यकी भाँति दुष्प्रेक्ष्य हो रहा है—उसकी ओर दृष्टिपात करना भी कठिन जान पड़ता है।'

मुनियोंने कहा—प्रेतगण! इस चाण्डालने आँवलेके पके हुए फल खाये थे। उसकी डाल टूट जानेसे उसके सम्पर्कमें ही इसकी मृत्यु हुई है। मृत्युकालमें भी इसके आस-पास बहुत-से फल बिखरे पड़े थे। इन्हीं सब कारणोंसे तुमलोगोंका इसकी ओर देखना कठिन हो रहा है। इस पापीका आँवलेसे सम्पर्क रविवारको या और किसी निषिद्ध वेलामें नहीं हुआ है, इसलिये यह दिव्य लोकको प्राप्त होगा।

प्रेत बोले—मुनीश्वरो! आपलोगोंका ज्ञान उत्तम है, इसलिये हम आपसे एक प्रश्न पूछते हैं। जबतक यहाँ श्रीविष्णुलोकसे विमान नहीं आता, तबतक आपलोग हमारे प्रश्नका उत्तर दे दें। जहाँ वेदों और नाना प्रकारके मन्त्रोंका गम्भीर घोष होता है, जहाँ पुराणों और स्मृतियोंका स्वाध्याय किया जाता है, वहाँ हम एक क्षणके लिये भी नहीं ठहर सकते। यज्ञ, होम, जप तथा देवपूजा आदि शुभ कार्योंके सामने हमारा ठहरना असम्भव है, इसलिये हमें यह बताइये कि कौन-सा कर्म करके मनुष्य प्रेतयोनियोंको प्राप्त होते हैं। हमें यह सुननेकी भी इच्छा है कि उनका शरीर विकृत क्योंकर हो जाता है।

ब्रह्मर्षियोंने कहा—जो झूठी गवाही देते तथा वध और बन्धनमें पड़कर मृत्युको प्राप्त होते हैं, वे नरकमें पड़े हुए जीव ही प्रेत होते हैं। जो ब्राह्मणोंके दोष ढूँढनेमें लगे रहते हैं और गुरुजनोंके शुभ कर्मोंमें बाधा पहुँचाते हैं तथा जो श्रेष्ठ ब्राह्मणको दिये जानेवाले दानमें रुकावट डाल देते हैं, वे चिरकालतक प्रेतयोनिमें पड़कर नरकसे कभी उद्धार नहीं पाते। जो मूर्ख अपने और दूसरेके बैलोंको कष्ट दे उनसे बोझ ढोनेका काम लेकर उनकी रक्षा नहीं करते, जो अपनी प्रतिज्ञाका त्याग करते, असत्य बोलते और व्रत भङ्ग करते हैं तथा जो कमलके पत्तेपर भोजन करते हैं, वे सब इस पृथ्वीपर कर्मानुसार प्रेत होते हैं। जो अपने

चाचा और मामा आदिकी सदाचारिणी कन्या तथा साध्वी स्त्रीको बेच देते हैं, वे भूतलपर प्रेत होते हैं।

प्रेतोंने पूछा—ब्राह्मणो! किस प्रकार और किस कर्मके आचरणसे मनुष्य प्रेत नहीं होते?

ब्राह्मणोंने कहा—जिस बुद्धिमान् पुरुषने तीर्थोंके जलमें स्नान तथा शिवको नमस्कार किया है, वह मनुष्य प्रेत नहीं होता। जो एकादशी अथवा द्वादशीको उपवास करके विशेषतः भगवान् श्रीविष्णुका पूजन करते हैं तथा जो वेदोंके अक्षर, सूक्त, स्तोत्र और मन्त्र आदिके द्वारा देवताओंके पूजनमें संलग्न रहते हैं, उन्हें भी प्रेत नहीं होना पड़ता। पुराणोंके धर्मयुक्त दिव्य वचन सुनने, पढ़ने और पढ़ानेसे तथा नाना प्रकारके व्रतोंका अनुष्ठान करने और रुद्राक्ष धारण करनेसे जो पवित्र हो चुके हैं एवं जो रुद्राक्षकी मालापर जप करते हैं, वे प्रेतयोनिको नहीं प्राप्त होते। जो आँवलेके फलके रससे स्नान करके प्रतिदिन आँवला खाया करते हैं तथा आँवलेके द्वारा भगवान् श्रीविष्णुका पूजन भी करते हैं, वे कभी पिशाचयोनिमें नहीं जाते।

प्रेत बोले—महर्षियो! संतोंके दर्शनसे पुण्य होता है—इस बातको पौराणिक विद्वान् जानते हैं। हमें भी आपका दर्शन हुआ है; इसलिये आपलोग हमारा कल्याण करें। धीर महात्माओ! जिस उपायसे हम सब लोगोंको प्रेतयोनिसे छुटकारा मिले, उसका उपदेश कीजिये। हम आपलोगोंकी शरणमें आये हैं।

ब्राह्मण बोले—हमारे वचनसे तुमलोग आँवलेका भक्षण कर सकते हो। वह तुम्हारे लिये कल्याणकारक होगा। उसके प्रभावसे तुम उत्तम लोकमें जानेके योग्य बन जाओगे।

महादेवजी कहते हैं—इस प्रकार ऋषियोंसे सुनकर पिशाच आँवलेके वृक्षपर चढ़ गये और उसका फल ले-लेकर उन्होंने बड़ी मौजके साथ खाया। तब देवलोकसे तुरंत ही एक पीले रङ्गका सुवर्णमय विमान उतरा, जो परम शोभायमान था। पिशाचोंने उसपर आरूढ़ होकर स्वर्गलोककी यात्रा की। बेटा! अनेक व्रतों और यज्ञोंके अनुष्ठानसे भी जो अत्यन्त दुर्लभ है, वही लोक उन्हें आँवलेका भक्षण करने मात्रसे मिल गया।

कार्तिकेयजीने पूछा—पिताजी! जब आँवलेके फलका भक्षण करने मात्रसे प्रेत पुण्यात्मा होकर स्वर्गको चले गये, तब मनुष्य आदि जितने प्राणी हैं, वे भी आँवला खानेसे क्यों नहीं तुरंत स्वर्गमें चले जाते?

महादेवजीने कहा—बेटा! [स्वर्गकी प्राप्ति तो उन्हें भी होती है; किन्तु] तुरंत ऐसा न होनेमें एक कारण है—उनका ज्ञान लुप्त रहता है, वे अपने हित और अहितकी बात नहीं जानते। [इसलिये आँवलेके महत्त्वमें उनकी श्रद्धा नहीं होती।]

जिसे घरकी मालकिन सहज ही काबूमें न आनेवाली, पवित्रता और संयमसे रहित, गुरुजनोंद्वारा निकाली हुई तथा दुराचारिणी होती है, वहाँ प्रेत रहा करते हैं। जो कुल और जातिसे नीच, बल और उत्साहसे रहित, बहरे, दुर्बल और दीन हैं, वे कर्मजनित पिशाच हैं। जो माता, पिता, गुरु और देवताओंकी निन्दा करते हैं, पाखण्डी और वाममार्गी हैं, जो गलेमें फाँसी लगाकर, पानीमें डूबकर, तलवार या छुरा भोंककर अथवा जहर खाकर आत्मघात कर लेते हैं, वे प्रेत होनेके पश्चात् इस लोकमें चाण्डाल आदि योनियोंके भीतर जन्म ग्रहण करते हैं। जो माता-पिता आदिसे द्रोह करते, ध्यान और अध्ययनसे दूर रहते हैं, व्रत और देवपूजा नहीं करते, मन्त्र और स्नानसे हीन रहकर गुरुपत्नी-गमनमें प्रवृत्त होते हैं तथा जो दुर्गतिमें पड़ी हुई चाण्डाल आदिकी स्त्रियोंसे समागम करते हैं, वे भी प्रेत होते हैं। म्लेच्छोंके देशमें जिनकी मृत्यु होती है, जो म्लेच्छोंके समान आचरण करते और स्त्रीके धनसे जीविका चलाते हैं, जिनके द्वारा स्त्रियोंकी रक्षा नहीं होती, वे निःसन्देह प्रेत होते हैं। जो क्षुधासे पीड़ित, थके-माँदे, गुणवान् और पुण्यात्मा अतिथिके रूपमें घरपर आये हुए ब्राह्मणको लौटा देते हैं—उसका यथावत् सत्कार नहीं करते, जो गो-भक्षी म्लेच्छोंके हाथ गौएँ बेच देते हैं, जो जीवनभर स्नान, सन्ध्या, वेद-पाठ, यज्ञानुष्ठान और अक्षरज्ञानसे दूर रहते हैं, जो लोग जूठे शकोरे आदि और शरीरके मल-मूत्र तीर्थभूमिमें गिराते हैं, वे निस्सन्देह प्रेत होते हैं। जो स्त्रियाँ पतिका परित्याग करके दूसरे लोगोंके साथ रहती हैं, वे चिरकालतक प्रेतलोकमें निवास करनेके पश्चात् चाण्डालयोनिमें जन्म लेती हैं। जो विषय और इन्द्रियोंसे मोहित होकर पतिको धोखा देकर स्वयं मिठाइयाँ उड़ाती हैं, वे पापाचारिणी स्त्रियाँ चिरकालतक इस पृथ्वीपर प्रेत होती हैं। जो मनुष्य बलपूर्वक दूसरेकी वस्तुएँ लेकर उन्हें अपने अधिकारमें कर लेते हैं और अतिथियोंका अनादर करते हैं, वे प्रेत होकर नरकमें पड़े रहते हैं।

इसलिये जो आँवला खाकर उसके रससे स्नान करते हैं, वे सब पापोंसे मुक्त होकर विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होते हैं। अतः

सब प्रकारसे प्रयत्न करके तुम आँवलेके कल्याणमय फलका सेवन करो। जो इस पवित्र और मङ्गलमय उपाख्यानका प्रतिदिन श्रवण करता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे शुद्ध होकर भगवान् श्रीविष्णुके लोकमें सम्मानित होता है। जो सदा ही लोगोंमें, विशेषतः वैष्णवोंमें आँवलेके माहात्म्यका श्रवण कराता है, वह भगवान् श्रीविष्णुके सायुज्यको प्राप्त होता है—ऐसा पौराणिकोंका कथन है।

कार्तिकेयजीने कहा—प्रभो! रुद्राक्ष और आँवला—इन दोनों फलोंकी पवित्रताको तो मैं जान गया। अब मैं यह सुनना चाहता हूँ कि कौन सा ऐसा वृक्ष है, जिसका पत्ता और फूल भी मोक्ष प्रदान करनेवाला है।

महादेवजी बोले—बेटा! सब प्रकारके पत्तों और पुष्पोंकी अपेक्षा तुलसी ही श्रेष्ठ मानी गयी है। वह परम मङ्गलमयी, समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाली, शुद्ध, श्रीविष्णुको अत्यन्त प्रिय तथा 'वैष्णवी' नाम धारण करनेवाली है। वह सम्पूर्ण लोकमें श्रेष्ठ, शुभ तथा भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाली है। भगवान् श्रीविष्णुने पूर्वकालमें सम्पूर्ण लोकोंका हित करनेके लिये तुलसीका वृक्ष रोपा था। तुलसीके पत्ते और पुष्प सब धर्मोंमें प्रतिष्ठित हैं। जैसे भगवान् श्रीविष्णुको लक्ष्मी और मैं दोनों प्रिय हैं, उसी प्रकार यह तुलसीदेवी भी परम प्रिय है। हम तीनके सिवा कोई चौथा ऐसा नहीं जान पड़ता, जो भगवान्‌को इतना प्रिय हो। तुलसीदलके बिना दूसरे दूसरे फूलों, पत्तों तथा चन्दन आदिके लेपोंसे भगवान् श्रीविष्णुको उतना सन्तोष नहीं होता। जिसने तुलसीदलके द्वारा पूर्ण श्रद्धाके साथ प्रतिदिन भगवान् श्रीविष्णुका पूजन किया है, उसने दान, होम, यज्ञ और व्रत आदि सब पूर्ण कर लिये। तुलसीदलसे भगवान्‌की पूजा कर लेनेपर कान्ति, सुख, भोगसामग्री, यश, लक्ष्मी, श्रेष्ठ कुल, शील, पत्नी, पुत्र, कन्या, धन, राज्य, आरोग्य, ज्ञान, विज्ञान, वेद, वेदाङ्ग, शास्त्र, पुराण, तन्त्र और संहिता—सब कुछ मैं करतलगत समझता हूँ। जैसे पुण्यसलिला गङ्गा मुक्ति प्रदान करनेवाली हैं, उसी प्रकार यह तुलसी भी कल्याण करनेवाली है। स्कन्द! यदि मञ्जरीयुक्त तुलसीपत्रोंके द्वारा भगवान् श्रीविष्णुकी पूजा की जाय तो उसके पुण्यफलका वर्णन करना असम्भव है। जहाँ तुलसीका वन है, वहीं भगवान् श्रीकृष्णकी समीपता है। तथा वहीं ब्रह्मा और लक्ष्मीजी भी सम्पूर्ण देवताओंके साथ विराजमान हैं। इसलिये अपने निकटवर्ती स्थानमें तुलसी देवीको रोपकर उनकी पूजा करनी चाहिये। तुलसीके निकट जो स्तोत्र-मन्त्र आदिका जप किया जाता है, वह सब अनन्तगुना फल देनेवाला होता है।

प्रेत, पिशाच, कूष्माण्ड, ब्रह्मराक्षस, भूत और दैत्य आदि सब तुलसीके वृक्षसे दूर भागते हैं। ब्रह्महत्या आदि पाप तथा पाप और खोटे विचारसे उत्पन्न होनेवाले रोग—ये सब तुलसीवृक्षके समीप नष्ट हो जाते हैं। जिसने श्रीभगवान्‌की पूजाके लिये पृथ्वीपर तुलसीका बगीचा लगा रखा है, उसने उत्तम दक्षिणाओंसे युक्त सौ यज्ञोंका विधिवत् अनुष्ठान पूर्ण कर लिया है। जो श्रीभगवान्‌की प्रतिमाओं तथा शालग्राम शिलाओंपर चढ़े हुए तुलसीदलको प्रसादके रूपमें ग्रहण करता है, वह श्रीविष्णुके सायुज्यको प्राप्त होता है। जो श्रीहरिकी पूजा करके उन्हें निवेदन किये हुए तुलसीदलको अपने मस्तकपर धारण करता है, वह पापसे शुद्ध होकर स्वर्गलोकको प्राप्त होता है। कलियुगमें तुलसीका पूजन, कीर्तन, ध्यान, रोपण और धारण करनेसे वह पापको जलाती और स्वर्ग एवं मोक्ष प्रदान करती है। जो तुलसीके पूजन आदिका दूसरोंको उपदेश देता और स्वयं भी आचरण करता है, वह भगवान् श्रीलक्ष्मीपतिके परम धामको प्राप्त होता है।* जो वस्तु भगवान् श्रीविष्णुको प्रिय जान पड़ती है, वह मुझे भी अत्यन्त प्रिय है। श्राद्ध और यज्ञ आदि कार्योंमें तुलसीका एक पत्ता भी महान् पुण्य प्रदान करनेवाला है। जिसने तुलसीकी सेवा की है, उसने गुरु, ब्राह्मण, देवता और तीर्थ—सबका भलीभाँति सेवन कर लिया। इसलिये षडानन! तुम तुलसीका सेवन करो। जो शिखामें तुलसी स्थापित करके प्राणोंका परित्याग करता है, वह पापराशिसे मुक्त हो जाता है। राजसूय आदि यज्ञ, भाँति भाँतिके व्रत तथा संयमके द्वारा धीर पुरुष जिस गतिको प्राप्त करता है, वही उसे तुलसीकी सेवासे मिल जाती है। तुलसीके एक पत्रसे श्रीहरिकी पूजा करके मनुष्य वैष्णवत्वको प्राप्त होता है। उसके लिये अन्यान्य शास्त्रोंके विस्तारकी क्या आवश्यकता है। जिसने तुलसीकी शाखा तथा कोमल पत्तियोंसे भगवान् श्रीविष्णुकी पूजा की है, वह कभी माताका दूध नहीं पीता—उसका पुनर्जन्म नहीं होता। कोमल तुलसीदलोंके द्वारा प्रतिदिन

* पूजने कीर्तने ध्याने रोपणे धारणे कलौ।
तुलसी दहते पापं स्वर्गं मोक्षं ददाति च॥
उपदेशं ददेदस्याः स्वयमाचरते पुनः।
स याति परमं स्थानं माधवस्य निकेतनम्॥
(५८। १२१-१२२)

श्रीहरिकी पूजा करके मनुष्य अपनी सैकड़ों और हजारों पीढ़ियोंको पवित्र कर सकता है। तात! ये मैंने तुमसे तुलसीके प्रधान-प्रधान गुण बतलाये हैं। सम्पूर्ण गुणोंका वर्णन तो बहुत अधिक समय लगानेपर भी नहीं हो सकता। यह उपाख्यान पुण्यराशिका सञ्चय करनेवाला है। जो प्रतिदिन इसका श्रवण करता है, वह पूर्वजन्मके किये हुए पाप तथा जन्म-मृत्युके बन्धनसे मुक्त हो जाता है। बेटा! इस अध्यायके पाठ करनेवाले पुरुषको कभी रोग नहीं सताते, अज्ञान उसके निकट नहीं आता। उसकी सदा विजय होती है।

तुलसी-स्तोत्रका वर्णन

ब्राह्मणोंने कहा—गुरुदेव! हमने आपके मुखसे तुलसीके पत्र और पुष्पका शुभ माहात्म्य सुना। जो भगवान् श्रीविष्णुको बहुत ही प्रिय है। अब हमलोग तुलसीके पुण्यमय स्तोत्रका श्रवण करना चाहते हैं।

व्यासजी बोले—ब्राह्मणो! पहले स्कन्दपुराणमें मैं जो कुछ बतला आया हूँ, वही यहाँ कहता हूँ। शतानन्द मुनिके शिष्य कठोर व्रतका पालन करनेवाले थे। उन सबोंने एक दिन अपने गुरुको प्रणाम करके परम पुण्य और हितकी बात पूछी।

शिष्योंने कहा—नाथ! ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ! आपने पूर्वकालमें ब्रह्माजीके मुखसे तुलसीजीके जिस स्तोत्रका श्रवण किया था, उसको हम आपसे सुनना चाहते हैं।

शतानन्दजी बोले—शिष्यगण! तुलसीका नामोच्चारण करनेपर असुरोंका दर्प दलन करनेवाले भगवान् श्रीविष्णु प्रसन्न होते हैं। मनुष्यके पाप नष्ट हो जाते हैं तथा उसे अक्षय पुण्यकी प्राप्ति होती है। जिसके दर्शन मात्रसे करोड़ों गोदानका फल होता है, उस तुलसीका पूजन और वन्दन लोग क्यों न करें। कलियुगके संसारमें वे मनुष्य धन्य हैं, जिनके घरमें शालग्राम-शिलाका पूजन सम्पन्न करनेके लिये प्रतिदिन तुलसीका वृक्ष भूतलपर लहलहाता रहता है। जो कलियुगमें भगवान् श्रीकेशवकी पूजाके लिये पृथ्वीपर तुलसीका वृक्ष लगाते हैं, उनपर यदि यमराज अपने किङ्करोंसहित रुष्ट हो जायँ तो भी वे उनका क्या कर सकते हैं। 'तुलसी! तुम अमृतसे उत्पन्न हो और केशवको सदा ही प्रिय हो। कल्याणी! मैं भगवान्की पूजाके लिये तुम्हारे पत्तोंको चुनता हूँ। तुम मेरे लिये वरदायिनी बनो। तुम्हारे श्रीअङ्गोंसे उत्पन्न होनेवाले पत्रों और मञ्जरियोंद्वारा मैं सदा ही जिस प्रकार श्रीहरिका पूजन कर सकूँ, वैसा उपाय करो। पवित्राङ्गी तुलसी! तुम कलि-मलका नाश करनेवाली हो।'* इस भावके मन्त्रोंसे जो तुलसीदलोंको चुनकर उनसे भगवान् वासुदेवका पूजन करता है, उसकी पूजाका करोड़ोंगुना फल होता है।

देवेश्वरी! बड़े-बड़े देवता भी तुम्हारे प्रभावका गायन करते हैं। मुनि, सिद्ध, गन्धर्व, पाताल-निवासी साक्षात् नागराज शेष तथा सम्पूर्ण देवता भी तुम्हारे प्रभावको नहीं जानते; केवल भगवान् श्रीविष्णु ही तुम्हारी महिमाको पूर्णरूपसे जानते हैं। जिस समय क्षीर-समुद्रके मन्थनका उद्योग प्रारम्भ हुआ था, उस समय श्रीविष्णुके आनन्दांशसे तुम्हारा प्रादुर्भाव हुआ था। पूर्वकालमें श्रीहरिने तुम्हें अपने मस्तकपर धारण किया था। देवि! उस समय श्रीविष्णुके शरीरका सम्पर्क पाकर तुम परम पवित्र हो गयी थीं। तुलसी! मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ। तुम्हारे श्रीअङ्गसे उत्पन्न पत्रोंद्वारा जिस प्रकार श्रीहरिकी पूजा कर सकूँ, ऐसी कृपा करो, जिससे मैं निर्विघ्नतापूर्वक परम गतिको प्राप्त होऊँ। साक्षात् श्रीकृष्णने तुम्हें गोमतीतटपर लगाया और बढ़ाया था। वृन्दावनमें विचरते समय उन्होंने सम्पूर्ण जगत् और गोपियोंके हितके लिये तुलसीका सेवन किया। जगत्प्रिया तुलसी! पूर्वकालमें वसिष्ठजीके कथनानुसार श्रीरामचन्द्रजीने भी राक्षसोंका वध करनेके उद्देश्यसे सरयूके तटपर तुम्हें लगाया था। तुलसीदेवी! मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ। श्रीरामचन्द्रजीसे वियोग हो जानेपर अशोकवाटिकामें रहते हुए जनककिशोरी सीताने तुम्हारा ही ध्यान किया था, जिससे उन्हें पुनः अपने प्रियतमका समागम प्राप्त हुआ। पूर्वकालमें हिमालय पर्वतपर भगवान् शङ्करकी प्राप्तिके लिये पार्वतीदेवीने तुम्हें लगाया और अपनी अभीष्ट-सिद्धिके

* तुलस्यमृतजन्मासि सदा त्वं केशवप्रिये। केशवार्थं चिनोमि त्वां वरदा भव शोभने॥
त्वदङ्गसम्भवैर्नित्यं पूजयामि यथा हरिम्। तथा कुरु पवित्राङ्गि कलौ मलविनाशिनि॥ (५९। ११—१३)

लिये तुम्हारा सेवन किया था। तुलसीदेवी! मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ। सम्पूर्ण देवाङ्गनाओं और किन्नरोंने भी दुःस्वप्नका नाश करनेके लिये नन्दनवनमें तुम्हारा सेवन किया था। देवि! तुम्हें मेरा नमस्कार है। धर्मारण्य गयामें साक्षात् पितरोंने तुलसीका सेवन किया था। दण्डकारण्यमें भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने अपने हित साधनकी इच्छासे परम पवित्र तुलसीका वृक्ष लगाया तथा लक्ष्मण और सीताने भी बड़ी भक्तिके साथ उसे पोसा था।' जिस प्रकार शास्त्रोंमें गङ्गाजीको त्रिभुवनव्यापिनी कहा गया है, उसी प्रकार तुलसीदेवी भी सम्पूर्ण चराचर जगत्में दृष्टिगोचर होती हैं। तुलसीका ग्रहण करके मनुष्य पातकोंसे मुक्त हो जाता है। और तो और, मुनीश्वरो! तुलसीके सेवनसे ब्रह्महत्या भी दूर हो जाती है। तुलसीके पत्तेसे टपकता हुआ जल जो अपने सिरपर धारण करता है, उसे गङ्गास्नान और दस गोदानका फल प्राप्त होता है। देवि! मुझपर प्रसन्न होओ। देवेश्वरि! हरिप्रिये! मुझपर प्रसन्न हो जाओ। क्षीरसागरके मन्थनसे प्रकट हुई तुलसीदेवि! मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ।

द्वादशीकी रात्रिमें जागरण करके जो इस तुलसी स्तोत्रका पाठ करता है, भगवान् श्रीविष्णु उसके बत्तीस अपराध क्षमा करते हैं। बाल्यावस्था, कुमारावस्था, जवानी और बुढ़ापेमें जितने पाप किये होते हैं, वे सब तुलसी-स्तोत्रके पाठसे नष्ट हो जाते हैं। तुलसीके स्तोत्रसे सन्तुष्ट होकर भगवान् सुख और अभ्युदय प्रदान करते हैं। जिस घरमें तुलसीका स्तोत्र लिखा हुआ विद्यमान रहता है, उसका कभी अशुभ नहीं होता, उसका सब कुछ मङ्गलमय होता है, किञ्चित् भी अमङ्गल नहीं होता। उसके लिये सदा सुकाल रहता है। वह घर प्रचुर धन धान्यसे भरा रहता है। तुलसी स्तोत्रका पाठ करनेवाले मनुष्यके हृदयमें भगवान् श्रीविष्णुके प्रति अविचल भक्ति होती है। तथा उसका वैष्णवोंसे कभी वियोग नहीं होता। इतना ही नहीं, उसकी बुद्धि कभी अधर्ममें नहीं प्रवृत्त होती। जो द्वादशीकी रात्रिमें जागरण करके तुलसी स्तोत्रका पाठ करता है, उसे करोड़ों तीर्थोंके सेवनका फल प्राप्त होता है।

श्रीगङ्गाजीकी महिमा और उनकी उत्पत्ति

ब्राह्मण बोले—गुरुदेव! अब आप हमें कोई ऐसा तीर्थ बतलाइये, जहाँ डुबकी लगानेसे निश्चय ही समस्त पाप तथा दूसरे दूसरे महापातक भी नष्ट हो जाते हैं।

व्यासजी बोले—ब्राह्मणो! अविलम्ब सद्गतिका उपाय सोचनेवाले सभी स्त्री पुरुषोंके लिये गङ्गाजी ही एक ऐसा तीर्थ हैं, जिनके दर्शन मात्रसे सारा पाप नष्ट हो जाता है। गङ्गाजीके नामका स्मरण करने मात्रसे पातक, कीर्तनसे अतिपातक और दर्शनसे भारी भारी पाप (महापातक) भी नष्ट हो जाते हैं। गङ्गाजीमें स्नान, जलपान और पितरोंका तर्पण करनेसे महापातकोंकी राशिका प्रतिदिन क्षय होता रहता है। जैसे अग्निका संसर्ग होनेसे रूई और सूखे तिनके क्षणभरमें भस्म हो जाते हैं, उसी प्रकार गङ्गाजी अपने जलका स्पर्श होनेपर मनुष्योंके सारे पाप एक ही क्षणमें दग्ध कर देती हैं।*

जो विधिपूर्वक सङ्कल्पवाक्यका उच्चारण करते हुए गङ्गाजीके जलमें पितरोंके उद्देश्यसे पिण्डदान करता है, उसे प्रतिदिन सौ यज्ञोंका फल होता है। जो लोग गङ्गाजीके जलमें अथवा तटपर आवश्यक सामग्रियोंसे तर्पण और पिण्डदान करते हैं, उन्हें अक्षय स्वर्गकी प्राप्ति होती है। जो अकेला भी गङ्गाजीकी यात्रा करता है, उसके पितरोंकी कई पीढ़ियाँ पवित्र हो जाती हैं। एकमात्र इसी महापुण्यके बलपर वह स्वयं भी तरता है और पितरोंको भी तार देता है। ब्राह्मणो! गङ्गाजीके सम्पूर्ण गुणोंका वर्णन करनेमें चतुर्मुख ब्रह्माजी भी समर्थ नहीं हैं। इसलिये मैं भागीरथीके कुछ ही गुणोंका दिग्दर्शन कराता हूँ।

मुनि, सिद्ध, गन्धर्व तथा अन्यान्य श्रेष्ठ देवता गङ्गाजीके तीरपर तपस्या करके स्वर्गलोकमें स्थिर भावसे विराजमान हुए हैं। आजतक वे वहाँसे इस संसारमें नहीं लौटे। तपस्या, बहुत-से यज्ञ, नाना प्रकारके व्रत तथा पुष्कल दान करनेसे जो गति प्राप्त होती है, गङ्गाजीका सेवन करके मनुष्य उसी गतिको पा लेता है।†

---

* गङ्गेति स्मरणादेव क्षयं याति च पातकम्। कीर्तनादतिपापानि दर्शनाद्गुरुकल्मषम्॥
स्नानात् पानाच्च जाह्नव्यां पितॄणां तर्पणात्तथा। महापातकवृन्दानि क्षयं यान्ति दिने दिने॥
अग्निना दह्यते तूलं तृणं शुष्कं क्षणाद् यथा। तथा गङ्गाजलस्पर्शात् पुंसां पापं दहेत् क्षणात्॥ (६०। ५—७)

† तपोभिर्बहुभिर्यज्ञैर्व्रतैर्नानाविधैस्तथा। पुष्कलैर्गतिर्या च गङ्गां संसेव्य तां लभेत्॥ (६०। २४)

पिता पुत्रको, पत्नी प्रियतमको, सम्बन्धी अपने सम्बन्धीको तथा अन्य सब भाई-बन्धु भी अपने प्रिय बन्धुको छोड़ देते हैं; किन्तु गङ्गाजी उनका परित्याग नहीं करतीं। * जिन श्रेष्ठ मनुष्योंने एक बार भी भक्तिपूर्वक गङ्गामें स्नान किया है, कल्याणमयी गङ्गा उनकी लाख पीढ़ियोंका भवसागरसे उद्धार कर देती हैं। संक्रान्ति, व्यतीपात, चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण और पुष्य नक्षत्रमें गङ्गाजीमें स्नान करके मनुष्य अपने कुलकी करोड़ पीढ़ियोंका उद्धार कर सकता है। जो मनुष्य [अन्तकालमें] अपने हृदयमें भगवान् श्रीविष्णुका चिन्तन करते हुए उत्तरायणके शुक्लपक्षमें दिनको गङ्गाजीके जलमें देह-त्याग करते हैं, वे धन्य हैं। जो इस प्रकार भागीरथीके शुभ जलमें प्राण-त्याग करते हैं उन्हें पुनरावृत्ति-रहित स्वर्गकी प्राप्ति होती है। गङ्गाजीमें पितरोंको पिण्ड-दान तथा तिलमिश्रित जलसे तर्पण करनेपर वे यदि नरकमें हों तो स्वर्गमें जाते हैं और स्वर्गमें हों तो मोक्षको प्राप्त होते हैं।

पर-स्त्री और पर-धनका हरण करने तथा सबसे द्रोह करनेवाले पापी मनुष्योंको उत्तम गति प्रदान करनेका साधन एकमात्र गङ्गाजी ही हैं। वेद-शास्त्रके ज्ञानसे रहित, गुरु-निन्दापरायण और सदाचार-शून्य मनुष्यके लिये गङ्गाके समान दूसरी कोई गति नहीं है। गङ्गाजीमें स्नान करने मात्रसे मनुष्योंके अनेक जन्मोंकी पापराशि नष्ट हो जाती है तथा वे तत्काल पुण्यभागी होते हैं।

प्रभासक्षेत्रमें सूर्यग्रहणके समय एक सहस्र गोदान करनेपर जो फल मिलता है, वह गङ्गाजीमें स्नान करनेसे प्रतिदिन प्राप्त होता है। गङ्गाजीका दर्शन करके मनुष्य पापोंसे छूट जाता है और उसके जलका स्पर्श करके स्वर्ग पाता है। अन्य कार्यके प्रसङ्गसे भी गङ्गाजीमें गोता लगानेपर वे मोक्ष प्रदान करती हैं। गङ्गाजीके दर्शन मात्रसे पर-धन और पर-स्त्रीकी अभिलाषा तथा परधर्म-विषयक रुचि नष्ट हो जाती है। अपने-आप जो कुछ मिल जाय, उसीमें सन्तोष करना, अपने धर्ममें प्रवृत्त रहना तथा सम्पूर्ण प्राणियोंके प्रति समान भाव रखना—ये सद्गुण गङ्गाजीमें स्नान करनेवाले मनुष्यके हृदयमें स्वभावतः उत्पन्न होते हैं। जो मनुष्य गङ्गाजीका आश्रय लेकर सुखपूर्वक निवास करता है, वही इस लोकमें जीवन्मुक्त और सर्वश्रेष्ठ है। उसके लिये कोई कर्तव्य शेष नहीं रह जाता। गङ्गाजीमें या उनके तटपर किया हुआ यज्ञ, दान, तप, जप, श्राद्ध और देवपूजन प्रतिदिन कोटि-कोटिगुना अधिक फल देनेवाला होता है। अपने जन्म-नक्षत्रके दिन गङ्गाजीके सङ्गममें स्नान करके मनुष्य अपने कुलका उद्धार कर देता है। जो बिना श्रद्धाके भी पुण्यसलिला गङ्गाजीके नामका कीर्तन करता है, वह निश्चय ही स्वर्गका अधिकारी है। वे पृथ्वीपर मनुष्योंको, पातालमें नागोंको और स्वर्गमें देवताओंको तारती हैं। जानकर या अनजानमें, इच्छासे या अनिच्छासे गङ्गामें मरनेवाला मनुष्य स्वर्ग और मोक्षको भी प्राप्त करता है। सत्त्वगुणमें स्थित योगयुक्त मनीषी पुरुषको जो गति मिलती है, वही गङ्गाजीमें प्राण त्यागनेवाले देहधारियोंको प्राप्त होती है। एक मनुष्य अपने शरीरका शोधन करनेके लिये हजारों चान्द्रायण व्रत करता है और दूसरा मनचाहा गङ्गाजीका जल पीता है—उन दोनोंमें गङ्गा-जलका पान करनेवाला पुरुष ही श्रेष्ठ है। मनुष्यके ऊपर तभीतक तीर्थों, देवताओं और वेदोंका प्रभाव रहता है, जबतक कि वह गङ्गाजीको नहीं प्राप्त कर लेता।

भगवती गङ्गे! वायु देवताने स्वर्ग, पृथ्वी और आकाशमें साढ़े तीन करोड़ तीर्थ बतलाये हैं; वे सब तुम्हारे जलमें विद्यमान हैं। गङ्गे! तुम श्रीविष्णुका चरणोदक होनेके कारण परम पवित्र हो। तीनों लोकोंमें गमन करनेसे त्रिपथगामिनी कहलाती हो। तुम्हारा जल धर्ममय है; इसलिये तुम धर्मद्रवीके नामसे विख्यात हो। जाह्नवी! मेरे पाप हर लो। भगवान् श्रीविष्णुके चरणोंसे तुम्हारा प्रादुर्भाव हुआ है। तुम श्रीविष्णुद्वारा सम्मानित तथा वैष्णवी हो। मुझे जन्मसे लेकर मृत्युतकके पापोंसे बचाओ। महादेवी भागीरथी! तुम श्रद्धासे, शोभायमान रजःकण

* त्यजन्ति पितरं पुत्राः प्रियं पत्न्यः सुहृद्गणाः।
अन्ये च बान्धवाः सर्वे गङ्गा तान्न परित्यजेत्॥ (६०।२६)

अथा अमृतमय जलसे मुझे पवित्र करो।* इन भावके तीन श्लोकोंका उच्चारण करते हुए जो गङ्गाजीके जलमें स्नान करता है, वह करोड़ जन्मोंके पापसे निःसन्देह मुक्त हो जाता है। "अब मैं गङ्गाजीके मूल-मन्त्रका वर्णन करूँगा, जिसे साक्षात् श्रीहरिने बतलाया है। उसका एक बार भी जप करके मनुष्य पवित्र हो जाता तथा श्रीविष्णुके श्रीविग्रहमें प्रतिष्ठित होता है। वह मन्त्र इस प्रकार है—'ॐ नमो गङ्गायै विश्वरूपिण्यै नारायण्यै नमो नमः।' (भगवान् श्रीनारायणसे प्रकट हुई विश्वरूपिणी गङ्गाजीको बारंबार नमस्कार है।)

जो मनुष्य गङ्गातीरकी मिट्टी अपने मस्तकपर धारण करता है, वह गङ्गामें स्नान किये बिना ही सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। गङ्गाजीकी लहरोंसे सटकर बहनेवाली वायु यदि किसीके शरीरका स्पर्श करती है, तो वह घोर पापसे शुद्ध होकर अक्षय स्वर्गका उपभोग करता है। मनुष्यकी हड्डी जबतक गङ्गाजीके जलमें पड़ी रहती है, उतने ही हजार वर्षोंतक वह स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। माता पिता, बन्धु-बान्धव, अनाथ तथा गुरुजनोंकी हड्डी गङ्गाजीमें गिरानेसे मनुष्य कभी स्वर्गसे भ्रष्ट नहीं होता। जो मानव अपने पितरोंकी हड्डियोंके टुकड़े बटोरकर उन्हें गङ्गाजीमें डालनेके लिये ले जाता है, वह पग पगपर अश्वमेध-यज्ञका फल प्राप्त करता है। गङ्गा-तीरपर बसे हुए गाँव, पशु पक्षी, कीड़े-मकोड़े तथा चर अचर—सभी प्राणी धन्य हैं।

विप्रवरो! जो गङ्गाजीसे एक कोसके भीतर प्राण त्याग करते हैं, वे मनुष्य देवता ही हैं, उससे बाहरके मनुष्य ही इस पृथ्वीपर मानव हैं। गङ्गास्नानके लिये यात्रा करता हुआ यदि कोई मार्गमें ही मर जाता है, तो वह भी स्वर्गको प्राप्त होता है। ब्राह्मणो! जो लोग गङ्गाजीकी यात्रा करनेवाले मनुष्योंको वहाँका मार्ग बता देते हैं, उन्हें भी परमपुण्यकी प्राप्ति होती है और वे भी गङ्गास्नानका फल पा लेते हैं। जो पाखण्डियोंके संसर्गसे विचारशक्ति खो बैठनेके कारण गङ्गाजीकी निन्दा करते हैं, वे घोर नरकमें पड़ते हैं तथा वहाँसे फिर कभी उनका उद्धार होना कठिन है। जो सैकड़ों योजन दूरसे भी 'गङ्गा गङ्गा' कहता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो श्रीविष्णुलोकको प्राप्त होता है।* जो मनुष्य कभी गङ्गाजीमें स्नानके लिये नहीं गये हैं, वे अंधे और पङ्गुके समान हैं। उनका इस संसारमें जन्म लेना व्यर्थ है। जो गङ्गाजीके नामका कीर्तन नहीं करते, वे नराधम जड़के समान हैं। जो लोग श्रद्धाके साथ गङ्गाजीके माहात्म्यका पठन पाठन करते हैं, वे धीर पुरुष स्वर्गको जाते और पितरों तथा गुरुओंका उद्धार कर देते हैं। जो पुरुष गङ्गाजीकी यात्रा करनेवाले लोगोंको राह खर्चके लिये अपनी शक्तिके अनुसार धन देता है, उसे भी गङ्गाजीमें स्नान करनेका फल मिलता है। दूसरेके खर्चसे जानेवालेको स्नानका जितना फल मिलता है, उससे दूना फल खर्च देकर भेजनेवालोंको प्राप्त होता है। इच्छासे या अनिच्छासे, किसीके भेजनेसे या दूसरेकी सेवाके मिससे भी जो परम पवित्र गङ्गाजीकी यात्रा करता है, वह देवताओंके लोकमें जाता है।

ब्राह्मणोंने पूछा—व्यासजी! हमने आपके मुँहसे गङ्गाजीके गुणोंका अत्यन्त पवित्र कीर्तन सुना। अब हम यह जानना चाहते हैं कि गङ्गाजी कैसे इस रूपमें प्रकट हुईं, उनका स्वरूप क्या है तथा वे क्यों अत्यन्त पावन मानी जाती हैं।

व्यासजी बोले—द्विजवरो! सुनो, मैं एक परम पवित्र प्राचीन कथा सुनाता हूँ। प्राचीनकालकी बात है, मुनिश्रेष्ठ नारदजीने ब्रह्मलोकमें जाकर त्रिलोकपावन ब्रह्माजीको नमस्कार किया और पूछा—'तात! आपने ऐसी कौन-सी वस्तु उत्पन्न की है जो भगवान् शङ्कर और श्रीविष्णुको भी अत्यन्त प्रिय हो तथा जो भूतलपर सब लोगोंका हित करनेके लिये अभीष्ट मानी गयी हो?'

ब्रह्माजीने कहा—बेटा! पूर्वकालमें सृष्टि आरम्भ करते समय मैंने मूर्तिमती प्रकृतिसे कहा—'देवि! तुम सम्पूर्ण लोकोंका आदि कारण बनो। मैं तुमसे ही संसारकी सृष्टि आरम्भ करूँगा।' यह सुनकर परा प्रकृति सात स्वरूपोंमें अभिव्यक्त हुई, गायत्री, वाग्देवी (सरस्वती), सब प्रकारके धन धान्य

* विष्णुपादार्घसम्पूते गङ्गे त्रिपथगामिनि।
धर्मद्रवीति विख्याते पापं मे हर जाह्नवि॥
विष्णुपादप्रसूतासि वैष्णवी विष्णुपूजिता।
पाहि मामेनसस्तस्मादाजन्ममरणान्तिकात्॥
श्रद्धया धर्मसम्पूर्णे श्रीमता रजसा च ते।
अमृतेन महादेवि भागीरथि पुनीहि माम्॥
(६० । ६०–६२)

* गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद् योजनानां शतैरपि।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति॥
(६० । ७८)

प्रदान करनेवाली लक्ष्मी, ज्ञान-विद्यास्वरूपा उमादेवी, शक्तिबीजा, तपस्विनी और धर्मद्रवा—ये ही सात परा प्रकृतिके स्वरूप हैं। इनमें गायत्रीसे सम्पूर्ण वेद प्रकट हुए हैं और वेदसे सारे जगत्‌की स्थिति है। स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा और दीक्षा—ये भी गायत्रीसे ही उत्पन्न मानी गयी हैं। अतः यज्ञमें मातृका आदिके साथ सदा ही गायत्रीका उच्चारण करना चाहिये। भारती (सरस्वती) सब लोगोंके मुख और हृदयमें स्थित हैं तथा वे ही समस्त शास्त्रोंमें धर्मका उपदेश करती हैं। तीसरी प्रकृति लक्ष्मी हैं, जिनसे वस्त्र और आभूषणोंकी राशि प्रकट हुई है। सुख और त्रिभुवनका राज्य भी उन्हींकी देन है। इन्हींसे वे भगवान् श्रीविष्णुकी प्रियतमा हैं। चौथी प्रकृति उमाके द्वारा ही संसारमें भगवान् शङ्करके स्वरूपका ज्ञान होता है। अतः उमाको ज्ञानकी जननी (ब्रह्मविद्या) समझना चाहिये। वे भगवान् शिवके आधे अङ्गमें निवास करती हैं। शक्तिबीजा नामकी जो पाँचवीं प्रकृति है, वह अत्यन्त उग्र और समूचे विश्वको मोहमें डालनेवाली है। समस्त लोकोंमें वही जगत्‌का पालन और संहार करती है। [तपस्विनी तपस्याकी अधिष्ठात्री देवी है।] सातवीं प्रकृति धर्मद्रवा है, जो सब धर्मोंमें प्रतिष्ठित है। उसे सबसे श्रेष्ठ देखकर मैंने अपने कमण्डलुमें धारण कर लिया। फिर परम प्रभावशाली भगवान् श्रीविष्णुने बलिके यज्ञके समय इसे प्रकट किया। उनके दोनों चरणोंसे सम्पूर्ण महीतल व्याप्त हो गया था। उनमेंसे एक चरण आकाश एवं ब्रह्माण्डको भेदकर मेरे सामने स्थित हुआ। उस समय मैंने कमण्डलुके जलसे उस चरणका पूजन किया। उस चरणको धोकर जब मैं पूजन कर चुका, तब उसका धोवन हेमकूट पर्वतपर गिरा। वहाँसे भगवान् शङ्करके पास पहुँचकर वह जल गङ्गाके रूपमें उनकी जटामें स्थित हुआ। गङ्गा बहुत कालतक उनकी जटामें ही भ्रमण करती रहीं। तत्पश्चात् महाराज भगीरथने भगवान् शङ्करकी आराधना करके गङ्गाको पृथ्वीपर उतारा। वे तीन धाराओंमें प्रकट होकर तीनों लोकोंमें गयीं; इसलिये संसारमें त्रिस्रोताके नामसे विख्यात हुईं। शिव, ब्रह्मा तथा विष्णु—तीनों देवताओंके संयोगसे पवित्र होकर वे त्रिभुवनको पावन करती हैं। भगवती भागीरथीका आश्रय लेकर मनुष्य सम्पूर्ण धर्मोंका फल प्राप्त करता है। पाठ, यज्ञ, मन्त्र, होम और देवार्चन आदि समस्त शुभ कर्मोंसे भी जीवको वह गति नहीं मिलती, जो श्रीगङ्गाजीके सेवनसे प्राप्त होती है।* गङ्गाजीके सेवनसे बढ़कर धर्म-साधनका दूसरा कोई उपाय नहीं है। इसलिये नारद! तुम भी गङ्गाजीका आश्रय लो। हड्डियोंमें गङ्गाजीके जलका स्पर्श होनेसे राजा सगरके पुत्र अपने पितरों तथा वंशजोंके साथ स्वर्गलोकमें पहुँच गये।

व्यासजी कहते हैं—मुनिश्रेष्ठ नारद ब्रह्माजीके मुखसे यह बात सुनकर गङ्गाद्वार (हरिद्वार)में गये और वहाँ तपस्या करके ब्रह्माजीके समान हो गये। गङ्गाजी सर्वत्र सुलभ होते हुए भी गङ्गाद्वार, प्रयाग और गङ्गा-सागर-संगम—इन तीन स्थानोंमें दुर्लभ हैं—वहाँ इनकी प्राप्ति बड़े भाग्यसे होती है। वहाँ तीन रात्रि या एक रात निवास करनेसे भी मनुष्य परम गतिको प्राप्त होता है; इसलिये धर्मज्ञ ब्राह्मणो! सब प्रकारसे प्रयत्न करके तुम-लोग परम कल्याणमयी भगवती भागीरथीके तीरपर जाओ। विशेषतः इस कलिकालमें सत्त्वगुणसे रहित मनुष्योंको कष्टसे छुड़ाने और मोक्ष प्रदान करनेवाली गङ्गाजी ही हैं। गङ्गाजीके सेवनसे अनन्त पुण्यका उदय होता है।†

पुलस्त्यजी कहते हैं—भीष्म! तदनन्तर वे ब्राह्मण व्यासजीकी कल्याणमयी वाणी सुनकर बड़े प्रसन्न हुए और गङ्गाजीके तटपर तपस्या करके मोक्षमार्गको पा गये। जो मनुष्य इस उत्तम परम पवित्र उपाख्यानका श्रवण करता है, वह समस्त दुःख-राशिसे पार हो जाता है तथा उसे गङ्गाजीमें स्नान करनेका फल मिलता है। एक बार भी इस प्रसङ्गका पाठ करनेपर सम्पूर्ण यज्ञोंका फल मिल जाता है। जो गङ्गाजीके तटपर ही दान, जप, ध्यान, स्तोत्र, मन्त्र और देवार्चन आदि कर्म कराता है, उसे अनन्त फलकी प्राप्ति होती है।

गणेशजीकी महिमा और उनकी स्तुति एवं पूजाका फल

पुलस्त्यजी कहते हैं—भीष्म! इसके बाद एक दिन व्यासजीके शिष्य महामुनि संजयने अपने गुरुदेवको प्रणाम करके प्रश्न किया।

संजयने पूछा—गुरुदेव! आप मुझे देवताओंके पूजनका सुनिश्चित क्रम बतलाइये। प्रतिदिनकी पूजामें सबसे पहले किसका पूजन करना चाहिये?

* पाठयज्ञजपैः सर्वैर्मन्त्रहोमसुरार्चनैः । सा गतिर्न भवेज्जन्तोर्गङ्गासंसेवया च या ॥ (६० । ११६)

† विशेषात्कलिकाले च गङ्गा मोक्षप्रदा नृणाम् । कृच्छ्रात् क्षीणसत्त्वानामनन्तः पुण्यसम्भवः ॥ (६० । १२३)

व्यासजी बोले—संजय ! विघ्नोंको दूर करनेके लिये सर्व प्रथम गणेशजीकी पूजा करनी चाहिये । पार्वतीदेवीने पूर्वकालमें भगवान् शङ्करजीके संयोगसे स्कन्द (कार्तिकेय) और गणेश नामके दो पुत्रोंको जन्म दिया । उन दोनोंको देखकर देवताओंको पार्वतीजीपर बड़ी श्रद्धा हुई और उन्होंने अमृतसे तैयार किया हुआ एक दिव्य मोदक (लड्डू) पार्वतीके हाथमें दिया । मोदक देखकर दोनों बालक मातासे माँगने लगे । तब पार्वतीदेवी विस्मित होकर पुत्रोंसे बोलीं—'मैं पहले इसके गुणोंका वर्णन करती हूँ, तुम दोनों सावधान होकर सुनो । इस मोदकके सूँघनेमात्रसे अमरत्व प्राप्त होता है, जो इसे सूँघता या खाता है, वह सम्पूर्ण शास्त्रोंका मर्मज्ञ, सब तन्त्रोंमें प्रवीण, लेखक, चित्रकार, विद्वान्, ज्ञान विज्ञानके तत्त्वको जाननेवाला और सर्वज्ञ होता है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है । पुत्रो ! तुममेंसे जो धर्माचरणके द्वारा श्रेष्ठता प्राप्त करके आयेगा, उसीको मैं यह मोदक दूँगी । तुम्हारे पिताकी भी यही सम्मति है ।'

माताके मुखसे ऐसी बात सुनकर परम चतुर स्कन्द मयूरपर आरूढ हो तुरत ही त्रिलोकीके तीर्थोंकी यात्राके लिये चल दिये । उन्होंने मुहूर्तभरमें सब तीर्थोंमें स्नान कर लिया । इधर लम्बोदरधारी गणेशजी स्कन्दसे भी बढ़कर बुद्धिमान् निकले । वे माता पिताकी परिक्रमा करके बड़ी प्रसन्नताके साथ पिताजीके सम्मुख खड़े हो गये । फिर स्कन्द भी आकर पिताके सामने खड़े हुए और बोले, 'मुझे मोदक दीजिये ।' तब पार्वतीजीने दोनों पुत्रोंकी ओर देखकर कहा—'समस्त तीर्थोंमें किया हुआ स्नान, सम्पूर्ण देवताओंको किया हुआ नमस्कार, सब यज्ञोंका अनुष्ठान तथा सब प्रकारके व्रत, मन्त्र, योग और संयमका पालन—ये सभी साधन माता पिताके पूजनके सोलहवें अंशके बराबर भी नहीं हो सकते । इसलिये यह गणेश सैकड़ों पुत्रों और सैकड़ों गणोंसे भी बढ़कर है । अतः देवताओंका बनाया हुआ यह मोदक मैं गणेशको ही अर्पण करती हूँ । माता पिताकी भक्तिके कारण ही इसकी प्रत्येक यज्ञमें सबसे पहले पूजा होगी ।'

महादेवजी बोले—इस गणेशके ही अग्रपूजनसे सम्पूर्ण देवता प्रसन्न हों ।

व्यासजी कहते हैं—अतः द्विजको उचित है कि वह सब यज्ञोंमें पहले गणेशजीका ही पूजन करे । ऐसा करनेसे उन यज्ञोंका फल कोटि कोटिगुना अधिक होगा । सम्पूर्ण देवी-देवताओंका कथन भी यही है । देवाधिदेवी पार्वतीने सर्वगुणदायक पवित्र मोदक गणेशजीको ही दिया तथा बड़ी प्रसन्नताके साथ सम्पूर्ण देवताओंके सामने ही उन्हें समस्त गणोंका अधिपति बनाया । इसलिये विस्तृत यज्ञों, स्तोत्रपाठों तथा नित्य पूजनमें भी पहले गणेशजीकी पूजा करके ही मनुष्य सम्पूर्ण सिद्धियाँ प्राप्त कर सकता है । चतुर्थीको दिनभर उपवास करके श्रीगणेशजीका पूजन करे और रातमें अन्न ग्रहण करे । गणेशजीकी स्तुति इस प्रकार करनी चाहिये—'श्रीगणेशजी ! आपको नमस्कार है । आप सम्पूर्ण विघ्नोंकी शान्ति करनेवाले हैं । उमाको आनन्द प्रदान करनेवाले परम बुद्धिमान् प्रभो ! भवसागरसे मेरा उद्धार कीजिये । आप भगवान् शङ्करको आनन्दित करनेवाले हैं । अपना ध्यान करनेवालोंको ज्ञान और विज्ञान प्रदान करते हैं । विघ्नराज ! आप सम्पूर्ण दैत्योंके एकमात्र संहारक हैं, आपको नमस्कार है । आप सबको प्रसन्नता और लक्ष्मी देनेवाले हैं, सम्पूर्ण यज्ञोंके एकमात्र रक्षक तथा सब प्रकारके मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले हैं । गणपते ! मैं प्रेमपूर्वक आपको प्रणाम करता हूँ ।'* जो मनुष्य उपर्युक्त भावके मन्त्रोंसे गणेशजीका पूजन करता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है । अब मैं गणेशजीके बारह नामोंका कल्याणमय स्तोत्र सुनाता हूँ । उनके बारह नाम ये हैं—गणपति, विघ्नराज, लम्बतुण्ड, गजानन, द्वैमातुर, हेरम्ब, एकदन्त, गणाधिप, विनायक, चारुकर्ण, पशुपाल और भवात्मज । जो प्रातःकाल उठकर इन बारह नामोंका पाठ करता है, सम्पूर्ण विश्व उसके वशमें हो जाता है तथा उसे कभी विघ्नका सामना नहीं करना पड़ता ।†

---

* गणाधिप नमस्तुभ्यं सर्वविघ्नप्रशान्तिद ।
उमानन्दप्रद प्राज्ञ त्राहि मां भवसागरात् ॥
हरानन्दकर ध्यानज्ञानविज्ञानद प्रभो ।
विघ्नराज नमस्तुभ्यं सर्वदैत्यैकसूदन ॥
सर्वप्रीतिप्रद श्रीद सर्वयज्ञैकरक्षक ।
सर्वाभीष्टप्रद प्रीत्या नमामि त्वां गणाधिप ॥
(६१ । २६—२८)

† गणपतिर्विघ्नराजो लम्बतुण्डो गजाननः ।
द्वैमातुरश्च हेरम्ब एकदन्तो गणाधिपः ॥
विनायकश्चारुकर्णः पशुपालो भवात्मजः ।
द्वादशैतानि नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत् ॥
विश्वं तस्य भवेद्वश्यं न च विघ्नं भवेत् क्वचित् ।
(६१ । ३१-३३

उपनयन, विवाह आदि सम्पूर्ण माङ्गलिक कार्योंमें जो श्रीगणेशजीका पूजन करता है, वह सबको अपने वशमें कर लेता है और उसे अक्षय पुण्यकी प्राप्ति होती है। जो मनुष्य सम्पूर्ण यज्ञके कलशोंमें 'गणानां त्वा—' इस मन्त्रसे श्रीगणेशजीका आवाहन करके उनकी पूजा करता है, उसे सम्पूर्ण सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं तथा वह स्वर्ग और मोक्षको भी पा लेता है। विद्वान् पुरुषको चाहिये कि वह मिट्टीकी दीवारोंमें, प्रतिमा अथवा चित्रके रूपमें पत्थरपर, दरवाजेकी लकड़ीमें तथा पात्रोंमें श्रीगणेशजीकी मूर्ति अङ्कित करा ले। इनके सिवा दूसरे-दूसरे स्थानमें भी, जहाँ हमेशा दृष्टि पड़ सके, श्रीगणेशजीकी स्थापना करके अपनी शक्तिके अनुसार उनका पूजन करे। जो ऐसा करता है उसके समस्त प्रिय कार्य सिद्ध होते हैं। उसके सामने कोई विघ्न नहीं आता तथा वह तीनों लोकोंको अपने वशमें कर लेता है। सम्पूर्ण देवता अपने अभीष्टकी सिद्धिके लिये जिनका पूजन करते हैं, समस्त विघ्नोंका उच्छेद करनेवाले उन श्रीगणेशजीको नमस्कार है।* जो भगवान् श्रीविष्णुको प्रिय लगनेवाले पुष्पों तथा अन्यान्य सुगन्धित फूलोंसे, फल, मूल, मोदक और सामयिक सामग्रियोंसे, दही और दूधसे, प्रिय लगनेवाले बाजोंसे तथा धूप और दीप आदिके द्वारा गणेशजीकी पूजा करता है, उसे सब प्रकारकी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।

सञ्जय-व्यास-संवाद—मनुष्ययोनिमें उत्पन्न हुए दैत्य और देवताओंके लक्षण

सञ्जयने पूछा—ब्रह्मन्! सात्त्विक पुरुष मनुष्योंमें असुर आदिके लक्षणोंको कैसे जान सकते हैं? नाथ! मेरे इस संशयको दूर कीजिये।

व्यासजी बोले—द्विजों तथा अन्य जातियोंमें अपने पूर्वकृत पापोंके अनुरूप असुर, राक्षस और प्रेत भी जन्म ग्रहण करते हैं; किन्तु वे अपना स्वभाव नहीं छोड़ते। मनुष्योंमें जो असुर जन्मते हैं, वे सदा ही लड़ाई-झगड़ा करनेको उत्सुक रहते हैं। जो मायावी, दुराचारी और क्रूर हों, उन्हें इस पृथ्वीपर राक्षस समझना चाहिये।

इसके विपरीत एक भी बुद्धिमान् एवं सुयोग्य पुत्र हो तो उसके द्वारा समूचे कुलकी रक्षा होती है। एक भी वैष्णव पुत्र अपने कुलकी अनेकों पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है। जो पुण्यतीर्थों और मुक्तिक्षेत्रमें ज्ञानपूर्वक मृत्युको प्राप्त होते हैं, वे संसार-सागरसे तर जाते हैं। और जो ब्रह्मज्ञानी होते हैं, वे स्वयं तो तरते ही हैं, दूसरोंको भी तार देते हैं। एक पतिव्रता स्त्री अपने कुलकी अनेकों पीढ़ियोंका उद्धार कर देती है। इसी प्रकार द्विज और देवताओंके पूजनमें तत्पर रहनेवाला धर्मात्मा जितेन्द्रिय पुरुष भी अपने कुलका उद्धार करता है। कलियुगके अन्तमें जब शहर और गाँवोंमें धर्मका नाश हो जाता है, तब एक ही धर्मात्मा पुरुष समस्त पुर, ग्राम, जनसमुदाय और कुलकी रक्षा करता है।

जो मनुष्य अपवित्र एवं दुर्गन्धयुक्त पदार्थोंके भक्षणमें आनन्द मानता है, बराबर पाप करता है और रातमें घूम-घूमकर चोरी करता रहता है, उसे विद्वान् पुरुषोंको वञ्चक समझना चाहिये। जो सम्पूर्ण कर्तव्य कार्योंसे अनभिज्ञ तथा सब प्रकारके कर्मोंसे अपरिचित है, जिसे समयोचित सदाचारका ज्ञान नहीं है, वह मूर्ख वास्तवमें पशु ही है। जो हिंसक, सजातीय मनुष्योंको उद्वेजित करनेवाला, कलह-प्रिय, कायर और उच्छिष्ट भोजनका प्रेमी है, वह मनुष्य कुत्ता कहा गया है। जो स्वभावसे ही चञ्चल, भोजनके लिये सदा लालायित रहनेवाला, कूद-कूदकर चलनेवाला और जंगलमें रहनेका प्रेमी है, उस मनुष्यको इस पृथ्वीपर बंदर समझना चाहिये। जो वाणी और बुद्धिद्वारा अपने कुटुम्बियों तथा दूसरे लोगोंकी भी चुगली खाता और सबके लिये उद्वेगजनक होता है, वह पुरुष सर्पके समान माना गया है। जो बलवान्, आक्रमण करनेवाला, नितान्त निर्लज्ज, दुर्गन्धयुक्त मांसका प्रेमी और भोगासक्त होता है, वह मनुष्योंमें सिंह कहा गया है। उसकी आवाज सुनते ही दूसरे भेड़िये आदिकी श्रेणीमें गिने जानेवाले लोग भयभीत और दुखी हो जाते हैं। जिनकी दृष्टि दूरतक नहीं जाती, ऐसे लोग हाथी माने जाते हैं। इसी क्रमसे मनुष्योंमें अन्य पशुओंका विवेक कर लेना चाहिये।

अब हम नररूपमें स्थित देवताओंका लक्षण बतलाते हैं। जो द्विज, देवता, अतिथि, गुरु, साधु और तपस्वियोंके

* अभिप्रेतार्थसिद्ध्यर्थं पूजितो यः सुरैरपि। सर्वविघ्नच्छिदे तस्मै गणाधिपतये नमः॥

पूजनमें संलग्न रहनेवाला, नित्य तपस्यापरायण, धर्मशास्त्र एवं नीतिमें स्थित, क्षमाशील, क्रोधजयी, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, लोभहीन, प्रिय बोलनेवाला, शान्त, धर्मशास्त्रप्रेमी, दयालु, लोकप्रिय, मिष्टभाषी, वाणीपर अधिकार रखनेवाला, सब कार्योंमें दक्ष, गुणवान्, महाबली, साक्षर, विद्वान्, आत्मविद्या आदिके लिये उपयोगी कार्योंमें सलग्न, घी और गायके दूध दही आदिमें तथा निरामिष भोजनमें रुचि रखनेवाला, अतिथिको दान देने और पार्वण आदि कर्मोंमें प्रवृत्त रहनेवाला है, जिसका समय स्नान दान आदि शुभ कर्म, व्रत, यज्ञ, देवपूजन तथा स्वाध्याय आदिमें ही व्यतीत होता है, कोई भी दिन व्यर्थ नहीं जाने पाता, वही मनुष्य देवता है। यही मनुष्योंका सनातन सदाचार है। श्रेष्ठ मुनियोंने मानवोंका आचरण देवताओंके ही समान बतलाया है। अन्तर इतना ही है कि देवता सत्त्वगुणमे बढ़े चढ़े होते हैं, [इसलिये निर्भय होते हैं,] और मनुष्योंमें भय अधिक होता है। देवता सदा गम्भीर रहते हैं और मनुष्योंका स्वभाव सर्वदा मृदु होता है। इस प्रकार पुण्यविशेषके तारतम्यसे सामान्यत सभी जातियोंमें विभिन्न स्वभावके मनुष्योंका जन्म होता है, उनके प्रिय अप्रिय पदार्थोंको जानकर पुण्य-पाप तथा गुण अवगुणका निश्चय करना चाहिये।

मनुष्योंमें यदि पति पत्नीके अदर जन्मगत सस्कारों का भेद हो तो उन्हें तनिक भी सुख नहीं मिलता। सालोक्य आदि मुक्तिकी स्थितिमें रहना पड़े अथवा नरकमे, सजातीय सस्कारवालोंमें ही परस्पर प्रेम होता है। शुभ कार्यमें सलग्न रहनेवाले पुण्यात्मा मनुष्योंको अत्यन्त पुण्यके कारण दीर्घायुकी प्राप्ति होती है तथा जो दैत्य आदि की श्रेणीमें गिने जानेवाले पापात्मा मनुष्य हैं, उनकी मृत्यु जल्दी होती है। सत्ययुगमें देवजातिके मनुष्य ही इस पृथ्वी पर उत्पन्न हुए थे। दैत्य अथवा अन्य जातिके नहीं। त्रेतामें एक चौथाई, द्वापरमे आधा तथा कलियुगकी सध्यामें समूचा भूमण्डल दैत्य आदिसे व्याप्त हो जाता है। देवता और असुर जातिके मनुष्योंका समान सख्यामें जन्म होनेके कारण ही महाभारतका युद्ध छिड़नेवाला है। दुर्योधनके योद्धा और सना आदि जितने भी सहायक हैं, वे दैत्य आदि ही हैं। कर्ण आदि वीर सूर्य आदिके अशस उत्पन्न हुए हैं। गङ्गानन्दन भीष्म वसुओंमे प्रधान हैं। आचार्य द्रोण देवमुनि बृहस्पतिके अशसे प्रकट हुए हैं। नन्द-नन्दन श्रीकृष्णके रूपमें साक्षात् भगवान् श्रीविष्णु हैं। विदुर साक्षात् धर्म हैं। गान्धारी, द्रौपदी और कुन्ती—इनके रूपमें देवियाँ ही धरातलपर अवतीर्ण हुई हैं।

जो मनुष्य जितेन्द्रिय, दुर्गुणोंसे मुक्त तथा नीतिशास्त्रके तत्त्वको जाननेवाला है और ऐसे ही नाना प्रकारके उत्तम गुणोंसे सन्तुष्ट दिखायी देता है, वह देवस्वरूप है। स्वर्गका निवासी हो या मनुष्यलोकका—जो पुराण और तन्त्रमें बताये हुए पुण्यकर्मोंका स्वय आचरण करता है, वही इस पृथ्वीका उद्धार करनेमें समर्थ है। जो शिव, विष्णु, शक्ति, सूर्य और गणेशका उपासक है, वह समस्त पितरोंको तारकर इस पृथ्वीका उद्धार करनेमें समर्थ है। विशेषत जो वैष्णवको देखकर प्रसन्न होता और उसकी पूजा करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो इस भूतलका उद्धार कर सकता है। जो ब्राह्मण यजन याजन आदि छः कर्मोंमें सलग्न, सब प्रकारके यज्ञोंमें प्रवृत्त रहनेवाला और सदा धार्मिक उपाख्यान सुनानेका प्रेमी है, वह भी इस पृथ्वीका उद्धार करनेमें समर्थ है।

जो लोग विश्वासघाती, कृतघ्न, व्रतका उल्लङ्घन करनेवाले तथा ब्राह्मण और देवताओंके द्वेषी हैं, वे मनुष्य इस पृथ्वीका नाश कर डालते हैं। जो माता पिता, स्त्री, गुरुजन और बालकोंका पोषण नहीं करते, देवता, ब्राह्मण और राजाओं का धन हर लेते हैं तथा जो मोक्षशास्त्रमें श्रद्धा नहीं रखते, वे मनुष्य भी इस पृथ्वीका नाश करते हैं। जो पापी मदिरा पीने और जुआ खेलनेमें आसक्त रहते और पाखण्डियों तथा पतितोंसे वार्तालाप करते हैं, जो महापातकी और अतिपातकी हैं, जिनके द्वारा बहुत-से जीव जन्तु मारे जाते हैं, वे लोग इस भूतलका विनाश करनेवाले हैं। जो सत्कर्मसे रहित, सदा दूसरोंको उद्विग्न करने वाले और निर्भय हैं, स्मृतियो तथा धर्मशास्त्रोंमें बताये हुए शुभकर्मोंका नाम सुनकर जिनके हृदयमें उद्वेग होता है, जो अपनी उत्तम जीविका छोड़कर नीच वृत्तिका आश्रय लेते हैं तथा द्वेषवश गुरुजनोंकी निन्दामें प्रवृत्त होते हैं, वे मनुष्य इस भूलोकका नाश कर डालते हैं। जो दाताको दानसे रोकते और पापकर्मकी ओर प्रेरित करते हैं तथा जो दीनों और अनाथोंको पीड़ा पहुँचाते हैं, वे लोग इस भूतलका सत्यानाश करते हैं। ये तथा और भी बहुत से पापी मनुष्य हैं, जो दूसरे लोगोंको पापोंमे ढकेलकर इस पृथ्वीका सर्वनाश करते हैं।

जो मानव इस प्रसङ्गको सुनता है, उसे इस भूतलपर दुर्गति, दुःख, दुर्भाग्य और दीनताका सामना नहीं करना पड़ता। उसका दैत्य आदिके कुलमें जन्म नहीं होता तथा वह स्वर्गलोकमें शाश्वत सुखका उपभोग करता है।

भगवान् सूर्यका तथा संक्रान्तिमें दानका माहात्म्य



वैशम्पायनजीने पूछा—विप्रवर! आकाशमें प्रतिदिन जिसका उदय होता है, यह कौन है? इसका क्या प्रभाव है? तथा इस किरणोंके स्वामीका प्रादुर्भाव कहाँसे हुआ है? मैं देखता हूँ—देवता, बड़े-बड़े मुनि, सिद्ध, चारण, दैत्य, राक्षस तथा ब्राह्मण आदि समस्त मानव इसकी सदा ही आराधना किया करते हैं।

व्यासजी बोले—वैशम्पायन! यह ब्रह्मके स्वरूपसे प्रकट हुआ ब्रह्मका ही उत्कृष्ट तेज है। इसे साक्षात् ब्रह्ममय समझो। यह धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंको देनेवाला है। निर्मल किरणोंसे सुशोभित यह तेजका पुञ्ज पहले अत्यन्त प्रचण्ड और दुःसह था। इसे देखकर इसकी प्रखर रश्मियोंसे पीड़ित हो सब लोग इधर-उधर भागकर छिपने लगे। चारों ओरके समुद्र, समस्त बड़ी-बड़ी नदियाँ और नद आदि सूखने लगे। उनमें रहनेवाले प्राणी मृत्युके ग्रास बनने लगे। मानव-समुदाय भी शोकसे आतुर हो उठा। यह देख इन्द्र आदि देवता ब्रह्माजीके पास गये और उनसे यह सारा हाल कह सुनाया। तब ब्रह्माजीने देवताओंसे कहा—'देवगण! यह तेज आदि ब्रह्मके स्वरूपसे जलमें प्रकट हुआ है। यह तेजोमय पुरुष उस ब्रह्मके ही समान है। इसमें और आदिब्रह्ममें तुम अन्तर न समझना। ब्रह्मासे लेकर कीटपर्यन्त चराचर प्राणियोंसहित समूची त्रिलोकीमें इसीकी सत्ता है। ये सूर्यदेव सत्त्वमय हैं। इनके द्वारा चराचर जगत्‌का पालन होता है। देवता, जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज आदि जितने भी प्राणी हैं—सबकी रक्षा सूर्यसे ही होती है। इन सूर्य देवताके प्रभावका हम पूरा-पूरा वर्णन नहीं कर सकते। इन्होंने ही लोकोंका उत्पादन और पालन किया है। सबके रक्षक होनेके कारण इनकी समानता करनेवाला दूसरा कोई नहीं है। पौ फटनेपर इनका दर्शन करनेसे राशि-राशि पाप विलीन हो जाते हैं। द्विज आदि सभी मनुष्य इन सूर्यदेवकी आराधना करके मोक्ष पा लेते हैं। सन्ध्योपासनके समय ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण अपनी भुजाएँ ऊपर उठाये इन्हीं सूर्यदेवका उपस्थान करते हैं और उसके फलस्वरूप समस्त देवताओंद्वारा पूजित होते हैं। सूर्यदेवके ही मण्डलमें रहनेवाली सन्ध्यारूपिणी देवीकी उपासना करके सम्पूर्ण द्विज स्वर्ग और मोक्ष प्राप्त करते हैं। इस भूतलपर जो पतित और जूठन खानेवाले मनुष्य हैं, वे भी भगवान् सूर्यकी किरणोंके स्पर्शसे पवित्र हो जाते हैं। सन्ध्याकालमें सूर्यकी उपासना करने मात्रसे द्विज सारे पापोंसे शुद्ध हो जाता है।* जो मनुष्य चाण्डाल, गोघाती (कसाई), पतित, कोढ़ी, महापातकी और उपपातकीके दीख जानेपर भगवान् सूर्यका दर्शन करते हैं, वे भारी-से-भारी पापसे मुक्त हो पवित्र हो जाते हैं। सूर्यकी उपासना करने मात्रसे मनुष्यको सब रोगोंसे छुटकारा मिल जाता है। जो सूर्यकी उपासना करते हैं, वे इहलोक और परलोकमें भी अंधे, दरिद्र, दुःखी और शोकग्रस्त नहीं होते। श्रीविष्णु और शिव आदि देवताओंके दर्शन सब लोगोंको नहीं होते, ध्यानमें ही उनके स्वरूपका साक्षात्कार किया जाता है; किन्तु भगवान् *सूर्य प्रत्यक्ष देवता माने गये हैं।*

देवता बोले—ब्रह्मन्! सूर्य देवताको प्रसन्न करनेके लिये आराधना, उपासना अथवा पूजा तो दूर रहे, इनका दर्शन ही प्रलयकालकी आगके समान है। भूतलके मनुष्य आदि सम्पूर्ण प्राणी इनके तेजके प्रभावसे मृत्युको प्राप्त हो गये। समुद्र आदि जलाशय नष्ट हो गये। हमलोगोंसे भी इनका तेज सहन नहीं होता; फिर दूसरे लोग कैसे सह सकते हैं। इसलिये आप ही ऐसी कृपा करें, जिससे हमलोग भगवान् सूर्यका पूजन कर सकें। सब मनुष्य भक्तिपूर्वक सूर्यदेवकी आराधना कर सकें—इसके लिये आप ही कोई उपाय करें।

व्यासजी कहते हैं—देवताओंके वचन सुनकर ब्रह्माजी ग्रहोंके स्वामी भगवान् सूर्यके पास गये और सम्पूर्ण जगत्‌का हित करनेके लिये उनकी स्तुति करने लगे।

ब्रह्माजी बोले—देव! तुम सम्पूर्ण संसारके नेत्रस्वरूप और निरामय हो। तुम साक्षात् ब्रह्मरूप हो। तुम्हारी ओर देखना कठिन है। तुम प्रलयकालकी अग्निके समान तेजस्वी हो। सम्पूर्ण देवताओंके भीतर तुम्हारी स्थिति है। तुम्हारे श्रीविग्रहमें वायुके सखा अग्नि निरन्तर विराजमान रहते हैं। तुम्हींसे अन्न आदिका पाचन तथा जीवनकी रक्षा होती है। देव! तुम्हींसे उत्पत्ति और प्रलय होते हैं। एकमात्र तुम्हीं सम्पूर्ण भुवनोंके स्वामी हो। तुम्हारे बिना समस्त संसारका जीवन एक दिन भी नहीं रह सकता। तुम्हीं सम्पूर्ण लोकोंके प्रभु तथा चराचर प्राणियोंके रक्षक,

* सन्ध्योपासनमात्रेण कल्मषात् पूततां व्रजेत्। (७५। १६)

पिता और माता हो। तुम्हारी ही कृपासे यह जगत् टिका हुआ है। भगवन्! सम्पूर्ण देवताओंमें तुम्हारी समानता करनेवाला कोई नहीं है। शरीरके भीतर, बाहर तथा समस्त विश्वमें—सर्वत्र तुम्हारी सत्ता है। तुमने ही इस जगत्को धारण कर रखा है। तुम्हीं रूप और गन्ध आदि उत्पन्न करनेवाले हो। रसोंमें जो स्वाद है, वह तुम्हींसे आया है। इस प्रकार तुम्हा सम्पूर्ण जगत्के ईश्वर और सबकी रक्षा करनेवाले सूर्य हो। प्रभो! तीर्थों, पुण्यक्षेत्रों, यज्ञों और जगत्के एकमात्र कारण तुम्हीं हो। तुम परम पवित्र, सबके साक्षी और गुणोंके धाम हो। सर्वज्ञ, सबके कर्ता, संहारक, रक्षक, अन्धकार, कीचड़ और रोगोंका नाश करनेवाले तथा दरिद्रताके दुःखोंका निवारण करनेवाले भी तुम्हीं हो। इस लोक तथा परलोकमें सबसे श्रेष्ठ बन्धु एवं सब कुछ जानने और देखनेवाले तुम्हीं हो। तुम्हारे सिवा दूसरा कोई ऐसा नहीं है, जो सब लोकोंका उपकारक हो।

आदित्यने कहा—महाप्राज्ञ पितामह! आप विश्वके स्वामी तथा स्रष्टा हैं, शीघ्र अपना मनोरथ बताइये। मैं उसे पूर्ण करूँगा।

ब्रह्माजी बोले—सुरेश्वर! तुम्हारी किरणें अत्यन्त प्रखर हैं। लोगोंके लिये वे अत्यन्त दुःसह हो गयी हैं। अतः जिस प्रकार उनमें कुछ मृदुता आ सके, वही उपाय करो।

आदित्यने कहा—प्रभो! वास्तवमें मेरी कोटि-कोटि किरणें संसारका विनाश करनेवाली ही हैं। अतः आप किसी युक्तिद्वारा इन्हें खरादकर कम कर दें।

तब ब्रह्माजीने सूर्यके कहनेसे विश्वकर्माको बुलाया और वज्रकी सान बनवाकर उसीके ऊपर प्रलयकालके समान तेजस्वी सूर्यको आरोपित करके उनके प्रचण्ड तेजको छाँट दिया। उस छँटे हुए तेजसे ही भगवान् श्रीविष्णुका सुदर्शन चक्र बनाया गया। अमोघ यमदण्ड, शङ्करजीका त्रिशूल, कालका खड्ग, कार्तिकेयको आनन्द प्रदान करनेवाली शक्ति तथा भगवती दुर्गाके विचित्र शूलका भी उसी तेजसे निर्माण हुआ। ब्रह्माजीकी आज्ञासे विश्वकर्माने उन सब अस्त्रोंको फुर्तीसे तैयार किया था। सूर्यदेवकी एक हजार किरणें शेष रह गयीं, बाकी सब छाँट दी गयीं। ब्रह्माजीके बताये हुए उपायके अनुसार ही ऐसा किया गया।

कश्यपमुनिके अंश और अदितिके गर्भसे उत्पन्न होनेके कारण सूर्य आदित्यके नामसे प्रसिद्ध हुए। भगवान् सूर्य विश्वकी अन्तिम सीमातक विचरते और मेरु गिरिके शिखरोंपर भ्रमण करते रहते हैं। ये दिन-रात इस पृथ्वीसे लाख योजन ऊपर रहते हैं। विधाताकी प्रेरणासे चन्द्रमा आदि ग्रह भी वहीं विचरण करते हैं। सूर्य बारह स्वरूप धारण करके बारह महीनोंमें बारह राशियोंमें संक्रमण करते रहते हैं। उनके संक्रमणसे ही संक्रान्ति होती है, जिसको प्रायः सभी लोग जानते हैं।

मुने! संक्रान्तियोंमें पुण्यकर्म करनेसे लोगोंको जो फल मिलता है, वह सब हम बतलाते हैं। धन, मिथुन, मीन और कन्या राशिकी संक्रान्तिको षडशीति कहते हैं तथा वृष, वृश्चिक, कुम्भ और सिंह राशिपर जो सूर्यकी संक्रान्ति होती है, उसका नाम विष्णुपदी है। षडशीतिनामकी संक्रान्तिमें किये हुए पुण्यकर्मका फल छियासी हजारगुना, विष्णुपदीमें लाखगुना और उत्तरायण या दक्षिणायन आरम्भ होनेके दिन कोटि-कोटिगुना अधिक होता है। दोनों अयनोंके दिन जो कर्म किया जाता है, वह अक्षय होता है। मकर संक्रान्तिमें सूर्योदयके पहले स्नान करना चाहिये। इससे दस हजार गोदानका फल प्राप्त होता है। उस समय किया हुआ तर्पण, दान और देवपूजन अक्षय होता है। विष्णुपदी नामक संक्रान्तिमें किये हुए दानको भी अक्षय बताया गया है। दाताको प्रत्येक जन्ममें उत्तम निधिकी प्राप्ति होती है। शीतकालमें रूईदार वस्त्र दान करनेसे शरीरमें कभी दुःख नहीं होता। तुला-दान और शय्या-दान दोनोंका ही फल अक्षय है। माघमासके कृष्णपक्षकी अमावास्याको सूर्योदयके पहले जो तिल और जलसे पितरोंका तर्पण करता है, वह स्वर्गमें अक्षय सुख भोगता है। जो अमावास्याके दिन सुवर्णजटित सींग और मणिके समान कान्तिवाली शुभलक्षणा गौको, उसके खुरोंमें चाँदी मँढ़ाकर काँसेके बने हुए दुग्धपात्रसहित श्रेष्ठ ब्राह्मणके लिये दान करता है, वह चक्रवर्ती राजा होता है। जो उक्त तिथिको तिलकी गौ बनाकर उसे सब सामग्रियोंसहित दान करता है, वह सात जन्मके पापोंसे मुक्त हो स्वर्गलोकमें अक्षय सुखका भागी होता है। ब्राह्मणको भोजनके योग्य अन्न देनेसे भी अक्षय स्वर्गकी प्राप्ति होती है। जो उत्तम ब्राह्मणको अनाज, वस्त्र, घर आदि दान करता है, उसे लक्ष्मी कभी नहीं छोड़ती। माघमासके शुक्लपक्षकी तृतीयाको मन्वन्तर तिथि कहते हैं, उस दिन जो कुछ दान किया जाता है, वह सब अक्षय बताया गया है। अन्न दान और सत्पुरुषोंका पूजन—ये परलोकमें अनन्त फल देनेवाले हैं।

भगवान् सूर्यकी उपासना और उसका फल—भद्रेश्वरकी कथा

व्यासजी कहते हैं—कैलासके रमणीय शिखरपर भगवान् महेश्वर सुखपूर्वक बैठे थे। इसी समय स्कन्दने उनके पास जा पृथ्वीपर मस्तक टेककर उन्हें प्रणाम किया और कहा—'नाथ! मैं आपसे रविवार आदिका यथार्थ फल सुनना चाहता हूँ।'

महादेवजीने कहा—बेटा! रविवारके दिन मनुष्य व्रत रहकर सूर्यको लाल फूलोंसे अर्घ्य दे और रातको हविष्यान्न भोजन करे। ऐसा करनेसे वह कभी स्वर्गसे भ्रष्ट नहीं होता। रविवारका व्रत परम पवित्र और हितकर है। वह समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाला, पुण्यप्रद, ऐश्वर्यदायक, रोगनाशक और स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाला है। यदि रविवारके दिन सूर्यकी संक्रान्ति तथा शुक्लपक्षकी सप्तमी हो तो उस दिन किया हुआ व्रत, पूजा और जप—सब अक्षय होता है। शुक्लपक्षके रविवारको ग्रहपति सूर्यकी पूजा करनी चाहिये। हाथमें फूल ले, लाल कमलपर विराजमान, सुन्दर ग्रीवासे सुशोभित, रक्तवस्त्रधारी और लाल रंगके आभूषणोंसे विभूषित भगवान् सूर्यका ध्यान करे और फूलोंको सूँघकर ईशान कोणकी ओर फेंक दे। इसके बाद 'आदित्याय विद्महे भास्कराय धीमहि तन्नो भानुः प्रचोदयात्' इस सूर्य-गायत्रीका जप करे। तदनन्तर गुरुके उपदेशके अनुसार विधिपूर्वक पूजा करे। भक्तिके साथ पुष्प और केले आदिके सुन्दर फल अर्पण करके जल चढ़ाना चाहिये। जलके बाद चन्दन, चन्दनके बाद धूप, धूपके बाद दीप, दीपके पश्चात् नैवेद्य तथा उसके बाद जल निवेदन करना चाहिये। तत्पश्चात् जप, स्तुति, मुद्रा और नमस्कार करना उचित है। पहली मुद्राका नाम अञ्जलि और दूसरीका नाम धेनु है। इस प्रकार जो सूर्यका पूजन करता है, वह उन्हींका सायुज्य प्राप्त करता है।

भगवान् सूर्य एक होते हुए भी कालभेदसे नाना रूप धारण करके प्रत्येक मासमें तपते रहते हैं। एक ही सूर्य बारह रूपोंमें प्रकट होते हैं। मार्गशीर्षमें मित्र, पौषमें सनातन विष्णु, माघमें वरुण, फाल्गुनमें सूर्य, चैत्रमासमें भानु, वैशाखमें तापन, ज्येष्ठमें इन्द्र, आषाढ़में रवि, श्रावणमें गभस्ति, भादोंमें यम, आश्विनमें हिरण्यरेता और कार्तिकमें दिवाकर तपते हैं। इस प्रकार बारह महीनोंमें भगवान् सूर्य बारह नामोंसे पुकारे जाते हैं। इनका रूप अत्यन्त विशाल, महान् तेजस्वी और प्रलयकालीन अग्निके समान देदीप्यमान है। जो इस प्रसङ्गका नित्य पाठ करता है, उसके शरीरमें पाप नहीं रहता। उसे रोग, दरिद्रता और अपमानका कष्ट भी कभी नहीं उठाना पड़ता। वह क्रमशः यश, राज्य, सुख तथा अक्षय स्वर्ग प्राप्त करता है।

अब मैं सबको प्रसन्नता प्रदान करनेवाले सूर्यके उत्तम महामन्त्रका वर्णन करूँगा। उसका भाव इस प्रकार है—'सहस्र भुजाओं (किरणों) से सुशोभित भगवान् आदित्यको नमस्कार है। हाथमें कमल धारण करनेवाले वरुणदेवको बारंबार नमस्कार है। अन्धकारका विनाश करनेवाले श्रीसूर्यदेवको अनेक बार नमस्कार है। रश्मिमयी सहस्रों जिह्वाएँ धारण करनेवाले भानुको नमस्कार है। भगवन्! तुम्हीं ब्रह्मा, तुम्हीं विष्णु और तुम्हीं रुद्र हो; तुम्हें नमस्कार है। तुम्हीं सम्पूर्ण प्राणियोंके भीतर अग्नि और वायुरूपसे विराजमान हो; तुम्हें बारंबार प्रणाम है! तुम्हारी सर्वत्र गति और सब भूतोंमें स्थिति है, तुम्हारे बिना किसी भी वस्तुकी सत्ता नहीं है। तुम इस चराचर जगत्में समस्त देहधारियोंके भीतर स्थित हो।' * इस मन्त्रका जप करके मनुष्य अपने सम्पूर्ण अभिलषित पदार्थों तथा स्वर्ग आदिके भोगको प्राप्त करता है। आदित्य, भास्कर, सूर्य, अर्क, भानु, दिवाकर, सुवर्णरेता, मित्र, पूषा, त्वष्टा, स्वयम्भू और तिमिराश—ये सूर्यके बारह नाम बताये गये हैं। जो मनुष्य पवित्र होकर सूर्यके इन बारह नामोंका पाठ करता है, वह सब पापों और रोगोंसे मुक्त हो परम गतिको प्राप्त होता है।

---

* ॐ नमः सहस्रबाहवे आदित्याय नमो नमः।
नमस्ते पद्महस्ताय वरुणाय नमो नमः॥
नमस्तिमिरनाशाय श्रीसूर्याय नमो नमः।
नमः सहस्रजिह्वाय भानवे च नमो नमः॥
त्वं च ब्रह्मा त्वं च विष्णू रुद्रस्त्वं च नमो नमः।
त्वमग्निस्सर्वभूतेषु वायुस्त्वं च नमो नमः॥
सर्वगः सर्वभूतेषु न हि किंचित्त्वया विना।
चराचरे जगत्यस्मिन् सर्वदेहे व्यवस्थितः॥
(७६। ३१—३४)

षडानन ! अब मैं महात्मा भास्करके जो दूसरे दूसरे प्रधान नाम हैं, उनका वर्णन करूँगा। तपन, तापन, कर्ता, हर्ता, महेश्वर, लोकसाक्षी, त्रिलोकेश, व्योमाधिप, दिवाकर, अग्निगर्भ, महाविप्र, खग, सप्ताश्ववाहन, पद्महस्त, तमोभेदी, ऋग्वेद, यजु सामग, कालप्रिय, पुण्डरीक, मूलस्थान और भावित। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इन नामोंका सदा स्मरण करता है, उसे रोगका भय कैसे हो सकता है। कार्तिकेय ! तुम यत्न पूर्वक सुनो। सूर्यका नाम स्मरण सब पापोंको हरनेवाला और शुभ है। महामते ! आदित्यकी महिमाके विषयमें तनिक भी सन्देह नहीं करना चाहिये। 'ॐ इन्द्राय नम स्वाहा', 'ॐ विष्णवे नम '—इन मन्त्रोंका जप, होम और सन्ध्योपासन करना चाहिये। ये मन्त्र सब प्रकारसे शान्ति देनेवाले और सम्पूर्ण विघ्नोंके विनाशक हैं। ये सब रोगोंका नाश कर डालते हैं।

अब महात्मा भास्करके मूलमन्त्रका वर्णन करूँगा, जो सम्पूर्ण कामनाओं एव प्रयोजनोंको सिद्ध करनेवाला तथा भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाला है। वह मन्त्र इस प्रकार है—'ॐ ह्रा ह्रीं स सूर्याय नम ।' इस मन्त्रसे सदा सब प्रकारकी सिद्धि प्राप्त होती है—यह निश्चित बात है। इसके जपसे रोग नहीं सताते तथा किसी प्रकारके अनिष्टका भय नहीं होता। यह मन्त्र न किसीको देना चाहिये और न किसीसे इसकी चर्चा करनी चाहिये, अपितु प्रयत्नपूर्वक इसका निरन्तर जप करते रहना चाहिये। जो लोग अभक्त, सन्तानहीन, पाखण्डी और लौकिक व्यवहारोंमें आसक्त हों, उनसे तो इस मन्त्रकी कदापि चर्चा नहीं करनी चाहिये। सन्ध्या और होमकर्ममें मूलमन्त्रका जप करना चाहिये। उसके जपसे रोग और क्रूर ग्रहोंका प्रभाव नष्ट हो जाता है। वत्स ! दूसरे दूसरे अनेकों शास्त्रों और बहुतेरे विस्तृत मन्त्रोंकी क्या आवश्यकता है, इस मूलमन्त्रका जप ही सब प्रकारकी शान्ति तथा सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धि करनेवाला है। देवता और ब्राह्मणोंकी निन्दा करनेवाले नास्तिक पुरुषको इसका उपदेश नहीं देना चाहिये। जो प्रतिदिन एक, दो या तीन समय भगवान् सूर्यके समीप इसका पाठ करता है, उसे अभीष्ट फलकी प्राप्ति होती है। पुत्रकी कामनावालेको पुत्र, कन्या चाहनेवालेको कन्या, विद्याकी अभिलाषा रखनेवालेको विद्या और धनार्थीको धन मिलता है। जो शुद्ध आचार विचारसे युक्त हो सयम तथा भक्तिपूर्वक इस प्रसङ्गका श्रवण करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो सूर्यलोकको जाता है। सूर्य देवताके व्रतके दिन तथा अन्यान्य व्रत, अनुष्ठान, यज्ञ, पुण्यस्थान और तीर्थोंमें जो इसका पाठ करता है, उसे कोटिगुना फल मिलता है।

व्यासजी कहते हैं—मध्यदेशमें भद्रेश्वर नामसे प्रसिद्ध एक चक्रवर्ती राजा थे। वे बहुत सी तपस्याओं तथा नाना प्रकारके व्रतोंसे पवित्र हो गये थे। प्रतिदिन देवता, ब्राह्मण, अतिथि और गुरुजनोंका पूजन करते थे। उनका बर्ताव न्यायके अनुकूल होता था। वे स्वभावके सुशील और शास्त्रोंके तात्पर्य तथा विधानके पारगामी विद्वान् थे। सदा सद्भाव पूर्वक प्रजाजनोंका पालन करते थे। एक समयकी बात है, उनके बायें हाथमें श्वेत कुष्ठ हो गया। वैद्योंने बहुत कुछ उपचार किया, किन्तु उससे कोढ़का चिह्न और भी स्पष्ट दिखायी देने लगा। तब राजाने प्रधान प्रधान ब्राह्मणों और मन्त्रियोंको बुलाकर कहा—'विप्रगण ! मेरे हाथमें एक ऐसा पापका चिह्न प्रकट हो गया है, जो लोकमें निन्दित होनेके कारण मेरे लिये दु सह हो रहा है। अत मैं किसी महान् पुण्यक्षेत्रमें जाकर अपने शरीरका परित्याग करना चाहता हूँ।'

ब्राह्मण बोले—महाराज ! आप धर्मशील और बुद्धिमान् हैं। यदि आप अपने राज्यका परित्याग कर देंगे तो यह सारी प्रजा नष्ट हो जायगी। इसलिये आपको ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये। प्रभो ! हमलोग इस रोगको दबानेका उपाय जानते हैं, वह यह है कि आप यत्नपूर्वक महान् देवता भगवान् सूर्यकी आराधना कीजिये।

राजाने पूछा—विप्रवरो ! किस उपायसे मैं भगवान् भास्करको सन्तुष्ट कर सकूँगा ?

ब्राह्मण बोले—राजन् ! आप अपने राज्यमें ही रह कर सूर्यदेवकी उपासना कीजिये, ऐसा करनेसे आप भयङ्कर पापसे मुक्त हो स्वर्ग और मोक्ष दोनों प्राप्त कर सकेंगे।

यह सुनकर सम्राट्ने उन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको प्रणाम किया और सूर्यकी उत्तम आराधना आरम्भ की। वे प्रतिदिन मन्त्रपाठ, नैवेद्य, नाना प्रकारके फल, अर्घ्य, अक्षत, जपापुष्प, मदारके पत्ते, लाल चन्दन, कुङ्कुम, सिन्दूर, कदली पत्र तथा उसके मनोहर फल आदिके द्वारा भगवान् सूर्यकी पूजा करते थे। राजा गूलरके पात्रमें अर्घ्य सजाकर सदा सूर्य देवताको निवेदन किया करते थे। अर्घ्य देते समय वे मन्त्री और पुरोहितोंके साथ सदा सूर्यके सामने खड़े रहते थे।

उनके साथ आचार्य, रानियाँ, अन्तःपुरमें रहनेवाले रक्षक तथा उनकी पत्नियाँ, दासवर्ग तथा अन्य लोग भी रहा करते थे। वे सब लोग प्रतिदिन साथ-ही-साथ अर्घ्य देते थे। सूर्यदेवताके अङ्गभूत जितने व्रत थे, उनका भी उन्होंने एकाग्र चित्त होकर अनुष्ठान किया। क्रमशः एक वर्ष व्यतीत होनेपर राजाका रोग दूर हो गया। इस प्रकार उस भयङ्कर रोगके नष्ट हो जानेपर राजाने सम्पूर्ण जगत्को अपने वशमें करके सबके द्वारा प्रभातकालमें सूर्यदेवताका पूजन और व्रत कराना आरम्भ किया। सब लोग कभी हविष्यान्न खाकर और कभी निराहार रहकर सूर्यदेवताका पूजन करते थे। इस प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—इन तीन वर्गोंके द्वारा पूजित होकर भगवान् सूर्य बहुत सन्तुष्ट हुए और कृपापूर्वक राजाके पास आकर बोले—'राजन्! तुम्हारे मनमें जिस वस्तुकी इच्छा हो, उसे वरदानके रूपमें माँग लो। सेवकों और पुरवासियोंसहित तुम सब लोगोंका हित करनेके लिये मैं उपस्थित हूँ।'

राजाने कहा—सबको नेत्र प्रदान करनेवाले भगवन्! यदि आप मुझे अभीष्ट वरदान देना चाहते हैं, तो ऐसी कृपा कीजिये कि हम सब लोग आपके पास रहकर ही सुखी हों।

सूर्य बोले—राजन्! तुम्हारे मन्त्री, पुरोहित, ब्राह्मण, स्त्रियाँ तथा अन्य परिवारके लोग—सभी शुद्ध होकर कल्पपर्यन्त मेरे रमणीय धाममें निवास करें।

व्यासजी कहते हैं—यों कहकर संसारको नेत्र प्रदान करनेवाले भगवान् सूर्य वहीं अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर राजा भद्रेश्वर अपने पुरवासियोंसहित दिव्यलोकमें आनन्दका अनुभव करने लगे। वहाँ जो कीड़े-मकोड़े आदि थे, वे भी अपने पुत्र आदिके साथ प्रसन्नतापूर्वक स्वर्गको सिधारे। इसी प्रकार राजा, ब्राह्मण, कठोर व्रतोंका पालन करनेवाले मुनि तथा क्षत्रिय आदि अन्य वर्ण सूर्यदेवताके धाममें चले गये। जो मनुष्य पवित्रतापूर्वक इस प्रसङ्गका पाठ करता है, उसके सब पापोंका नाश हो जाता है तथा वह रुद्रकी भाँति इस पृथ्वीपर पूजित होता है। जो मानव संयमपूर्वक इसका श्रवण करता है, उसे अभीष्ट फलकी प्राप्ति होती है। इस अत्यन्त गोपनीय रहस्यका भगवान् सूर्यने यमराजको उपदेश दिया था। भूमण्डलपर तो व्यासके द्वारा ही इसका प्रचार हुआ है।

ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! इस तरह नाना प्रकारके धर्मोंका निर्णय सुनाकर भगवान् व्यास शम्याप्राशमें चले गये। तुम भी इस तत्त्वको श्रद्धापूर्वक जानकर सुखसे विचरो और समयानुसार भगवान् श्रीविष्णुके सुयशका सानन्द गान करते रहो। साथ ही जगत्को धर्मका उपदेश देते हुए जगद्गुरु भगवान्को प्रसन्न करो।

पुलस्त्यजी कहते हैं—भीष्म! ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर देवर्षि नारद मुनिवर श्रीनारायणका दर्शन करनेके लिये गन्धमादन पर्वतपर बदरिकाश्रम तीर्थमें चले गये।

महाराज! इस प्रकार यह सारा सृष्टिखण्ड मैंने क्रमशः तुम्हें सुना दिया। यह सम्पूर्ण वेदार्थोंका सार है, इसे सुनकर मनुष्य भगवान्का सान्निध्य प्राप्त करता है। यह परम पवित्र, यशका निधान तथा पितरोंको अत्यन्त प्रिय है। यह देवताओंके लिये अमृतके समान मधुर तथा पापी पुरुषोंको भी पुण्य प्रदान करनेवाला है। जो मनुष्य ऋषियोंके इस शुभ चरित्रका प्रतिदिन श्रवण करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। सत्ययुगमें तपस्या, त्रेतामें ज्ञान, द्वापरमें यज्ञ तथा कलियुगमें एकमात्र दानकी विशेष प्रशंसा की गयी है। सम्पूर्ण दानोंमें भी समस्त भूतोंको अभय देना—यही सर्वोत्तम दान है; इससे बढ़कर दूसरा कोई दान नहीं है।* तीर्थ और श्राद्धके वर्णनसे युक्त यह पुराण-खण्ड कहा गया। यह पुण्यजनक, पवित्र, आयुवर्धक और सम्पूर्ण पापोंका नाशक है। जो मनुष्य इसका पाठ या श्रवण करता है, वह श्रीसम्पन्न होता है तथा सब पापोंसे मुक्त हो लक्ष्मीसहित भगवान् श्रीविष्णुको प्राप्त कर लेता है।

॥ सृष्टिखण्ड सम्पूर्ण ॥

* सर्वेषामेव दानानामिदमेवैकमुत्तमम्। अभयं सर्वभूतानां नास्ति दानमतः परम्॥ (८२। ३९)

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

संक्षिप्त पद्मपुराण

भूमि-खण्ड

शिवशर्माके चार पुत्रोंका पितृ-भक्तिके प्रभावसे श्रीविष्णुधामको प्राप्त होना

यं सर्वदेवं परमेश्वरं हि निष्केवलं ज्ञानमयं प्रधानम्।
वदन्ति नारायणमादिसिद्धं सिद्धेश्वरं तं शरणं प्रपद्ये ॥*

(१६ । ३५)

सूतजी कहते हैं—पश्चिम-समुद्रके तटपर द्वारका नामसे प्रसिद्ध एक नगरी है। वहाँ योगशास्त्रके ज्ञाता एक ब्राह्मण-देवता सदा निवास करते थे। उनका नाम था शिवशर्मा। वे वेद-शास्त्रोंके अच्छे विद्वान् थे। उनके पाँच पुत्र हुए, जिन्हें शास्त्रोंका पूर्ण ज्ञान था। उनके नाम इस प्रकार हैं—यज्ञशर्मा, वेदशर्मा, धर्मशर्मा, विष्णुशर्मा तथा सोमशर्मा। ये सभी पिताके भक्त थे। द्विजश्रेष्ठ शिवशर्माने उनकी भक्ति देखकर सोचा—'पितृभक्त पुरुषोंके हृदयमें जो भाव होना चाहिये, वह मेरे इन पुत्रोंके हृदयमें है या नहीं—इस बातको बुद्धिपूर्वक परीक्षा करके जाननेका प्रयत्न करूँ।' शिवशर्मा ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ थे। उन्हें उपायका ज्ञान था। उन्होंने मायाद्वारा अपने पुत्रोंके सामने एक घटना उपस्थित की। पुत्रोंने देखा, उनकी माता महान् ज्वररोगसे पीड़ित होकर मृत्युको प्राप्त हो गयी। तब वे पिताके पास जाकर बोले—'तात! हमारी माता अपने शरीरका परित्याग करके चली गयी। अब उसके विषयमें आप हमें क्या आज्ञा देते हैं?' द्विजश्रेष्ठ शिवशर्माने अपने भक्तिपरायण ज्येष्ठ पुत्र यज्ञशर्माको सम्बोधित करके कहा—'बेटा! इस तीखे हथियारसे अपनी माताके सारे अङ्गोंको टुकड़े-टुकड़े करके इधर-उधर फेंक दो।' पुत्रने पिताकी आज्ञाके अनुसार ही कार्य किया। पिताने भी यह बात सुनी। इससे उन्हें उस पुत्रकी भक्तिके विषयमें पूर्ण निश्चय हो गया। अब उन्होंने दूसरे पुत्रकी पितृ भक्ति जाननेका विचार किया और वेदशर्माके पास जाकर कहा—'बेटा! मैं स्त्रीके बिना नहीं रह सकता। तुम मेरी आज्ञा मानकर जाओ और समस्त सौभाग्य सम्पत्तिसे युक्त जो स्त्री मैंने देखी है, उसे मेरे लिये यहाँ बुला लाओ।' पिताके ऐसा कहनेपर वेदशर्मा बोले—'मैं आपका प्रिय कार्य करूँगा।' यों कहकर वे पिताको प्रणाम करके चले गये और उस स्त्रीके पास पहुँचकर बोले—'देवि! मेरे पिता तुम्हारे लिये प्रार्थना करते हैं; यद्यपि वे वृद्ध हैं तथापि तुम मेरे अनुरोधसे उनपर कृपा करके उनके अनुकूल हो जाओ।'

वेदशर्माकी ऐसी बात सुनकर मायासे प्रकट हुई उस स्त्रीने कहा—'ब्रह्मन्! तुम्हारे पिता बुढ़ापेसे कष्ट पा रहे हैं, अतः मैं कदापि उन्हें पति बनाना नहीं चाहती। उन्हें खाँसीका रोग है, उनके मुँहमें कफ भरा रहता है। इस समय दूसरी-दूसरी बीमारियोंने भी उन्हें पकड़ रखा है। रोगके कारण वे शिथिल एवं आर्त हो गये हैं; अतः मुझे उनका समागम नहीं चाहिये। मैं तुम्हारे साथ रमण करना चाहती हूँ। तुम्हारा प्रिय कार्य करूँगी। तुम दिव्य लक्षणोंसे सम्पन्न, दिव्यरूपधारी तथा महान् तेजस्वी हो; अतः मैं तुम्हींको पाना चाहती हूँ। मानद! उस बूढ़ेको लेकर क्या करोगे। मेरे शरीरका उपभोग करनेसे तुम्हें समस्त दुर्लभ सुखोंकी प्राप्ति होगी। विप्रवर! तुम्हें जिस जिस वस्तुकी इच्छा होगी, वह सब ला दूँगी; इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।'

यह महान् पापपूर्ण अप्रिय वचन सुनकर वेदशर्माने कहा—'देवि! तुम्हारा वचन अधर्मयुक्त, पापमिश्रित और अनुचित है। मैं पिताका भक्त और निरपराध हूँ; मुझसे ऐसी बात न कहो। शुभे! मैं पिताके लिये ही यहाँ आया

* जिन्हें सर्वदेवस्वरूप, परमेश्वर, केवल, ज्ञानमय और प्रधानरूप कहते हैं, उन सिद्धोंके स्वामी आदिसिद्ध भगवान् श्रीनारायणकी मैं शरण हूँ।

हूँ और उन्हींके लिये तुमसे प्रार्थना करता हूँ। इसके विपरीत दूसरी कोई बात न कहो। मेरे पिताजीको ही स्वीकार करो। देवि! इसके लिये तुम चराचर प्राणियोंसहित त्रिलोकीकी जो-जो वस्तु चाहोगी, वह सब निस्सन्देह तुम्हें अर्पण करूँगा। अधिक क्या कहूँ, देवताओंका राज्य आदि भी यदि चाहो तो तुम्हें दे सकता हूँ।'

स्त्री बोली—यदि तुम अपने पिताके लिये इस प्रकार दान देनेमें समर्थ हो तो मुझे इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवताओंका अभी दर्शन कराओ।

वेदशर्मा बोले—देवि! मेरा बल, मेरी तपस्याका प्रभाव देखो। मेरे आवाहन करनेपर ये इन्द्र आदि श्रेष्ठ देवता यहाँ आ पहुँचे।

देवताओंने वेदशर्मासे कहा—'द्विजश्रेष्ठ! हम तुम्हारा कौन-सा कार्य करें?'

वेदशर्मा बोले—देवगण! यदि आपलोग मुझपर प्रसन्न हैं तो मुझे अपने पिताके चरणोंमें पूर्ण भक्ति प्रदान करें। 'एवमस्तु' कहकर सम्पूर्ण देवता जैसे आये थे, वैसे लौट गये। तब उस स्त्रीने हर्षमें भरकर कहा—'तुम्हारी तपस्याका बल देख लिया। देवताओंसे मुझे कोई काम नहीं है। यदि तुम मुझे मुँहमाँगी वस्तु देना चाहते हो और अपने पिताके लिये मुझे ले जाना चाहते हो तो अपना सिर अपने ही हाथसे काटकर मुझे अर्पण कर दो।'

वेदशर्माने कहा—देवि! आज मैं धन्य हो गया। शुभे! मैं पिताके लिये अपना मस्तक भी दे दूँगा; ले लो, ले लो। यह कहकर द्विजश्रेष्ठ वेदशर्माने तीखी धारवाली तेज तलवार उठायी और हँसते-हँसते अपना मस्तक काटकर उस स्त्रीको दे दिया। खूनमें डूबे हुए उस मस्तकको लेकर वह शिवशर्माके पास गयी।

स्त्रीने कहा—विप्रवर! तुम्हारे पुत्र वेदशर्माने मुझे तुम्हारी सेवाके लिये यहाँ भेजा है; यह उनका मस्तक है, इसे ग्रहण करो। इसको उन्होंने अपने हाथसे काटकर दिया है।

उस मस्तकको देखकर वेदशर्माके चारों भाई काँप उठे। उन पुण्यात्मा बन्धुओंमें इस प्रकार बात होने लगी—'अहो! धर्म ही जिसका सर्वस्व था, वह हमारी माता सत्य समाधिके द्वारा मृत्युको प्राप्त हो गयी। हमलोगोंमें ये वेदशर्मा ही परम सौभाग्यशाली थे, जिन्होंने पिताके लिये प्राण दे दिये। ये धन्य तो थे ही, और अधिक धन्य हो गये।' शिवशर्माने उस स्त्रीकी बात सुनकर जान लिया कि वेदशर्मा पूर्ण भक्त था। तत्पश्चात् उन्होंने अपने तृतीय पुत्र धर्मशर्मासे कहा—'बेटा! यह अपने भाई-का मस्तक लो और जिस प्रकार यह जी सके, वह उपाय करो।'

सूतजी कहते हैं—धर्मशर्मा भाईके मस्तकको लेकर तुरंत ही वहाँसे चल दिये। उन्होंने पिताकी भक्ति, तपस्या, सत्य और सरलताके बलसे धर्मको आकर्षित किया। उनकी तपस्यासे खिंचकर धर्मराज धर्मशर्माके पास आये और इस प्रकार बोले—'धर्मशर्मन्! तुम्हारे आवाहन करनेसे मैं यहाँ उपस्थित हुआ हूँ; मुझे अपना कार्य बताओ, मैं उसे निस्सन्देह पूर्ण करूँगा।'

धर्मशर्माने कहा—धर्मराज! यदि मैंने गुरुकी सेवा की हो, यदि मुझमें पिताके प्रति निष्ठा और अविचल तपस्या हो, तो इस सत्यके प्रभावसे मेरे भाई वेदशर्मा जी उठें।

धर्म बोले—महामते! मैं तुम्हारी तपस्या और पितृभक्ति-से सन्तुष्ट हूँ, तुम्हारे भाई जी जायँगे; तुम्हारा कल्याण हो। धर्मवेत्ताओंके लिये जो दुर्लभ है, ऐसा कोई उत्तम वरदान मुझसे और माँग लो।

धर्मशर्माने जब धर्मका यह उत्तम वचन सुना तो उस महायशस्वीने महात्मा वैवस्वतसे कहा—'धर्मराज! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो पिताके चरणोंकी पूजामें अविचल भक्ति, धर्ममें अनुराग तथा अन्तमें मोक्षका वरदान मुझे दीजिये।' तब धर्मने कहा—'मेरी कृपासे यह सब कुछ तुम्हें प्राप्त होगा।' उनके मुखसे यह महावाक्य निकलते ही वेदशर्मा उठकर खड़े हो गये। मानो वे सोतेसे जाग उठे हों। उठते ही महाबुद्धिमान् वेदशर्माने धर्मशर्मासे कहा—'भाई! वे देवी कहाँ गयी? पिताजी कहाँ हैं?' धर्मशर्मा-ने थोड़ेमें सब हाल कह सुनाया। सब हाल जानकर वेदशर्माको बड़ी प्रसन्नता हुई; उन्होंने धर्मशर्मासे कहा—'प्रिय बन्धु! इस पृथ्वीपर तुम्हारे-जैसा मेरा हितैषी कौन है?' तदनन्तर दोनों भाई प्रसन्न होकर अपने पिता शिवशर्माके पास गये। उस समय धर्मशर्माने तेजस्वी पितासे कहा—'महाभाग! आज मैंने आपके पुत्र वेदशर्माको मस्तक और जीवनके साथ यहाँ ला दिया है। आप इन्हें स्वीकार कीजिये।'

तदनन्तर, शिवशर्माने विनीत भावसे सामने खड़े हुए

चौथे पुत्र महामति विष्णुशर्मासे कहा—'बेटा ! मेरा कहना करो। आज ही इन्द्रलोकको जाओ और वहाँसे अमृत ले आओ। मैं अपनी इस प्रियतमाके साथ इस समय अमृत पीना चाहता हूँ; क्योंकि अमृत सब रोगोंको दूर करनेवाला है।' महात्मा पिताका यह वचन सुनकर विष्णुशर्माने उनसे कहा—'पिताजी ! मैं आपके कथनानुसार सब कार्य करूँगा।' यह कहकर परम बुद्धिमान् धर्मात्मा विष्णुशर्माने पिताको प्रणाम किया और उनकी प्रदक्षिणा करके अपने



महान् बल, तपस्या तथा नियमके प्रभावसे आकाशमार्गद्वारा इन्द्रलोककी यात्रा की।

अन्तरिक्षमार्गसे जब वे आकाशके भीतर घुसे, तब देवराज इन्द्रने उन्हें देखा और उनका उद्देश्य जानकर उसमें विघ्न डालना आरम्भ किया। उन्होंने मेनकासे कहा—'सुन्दरी ! मेरी आज्ञासे शीघ्रतापूर्वक जाओ और विप्रवर विष्णुशर्माके कार्यमें बाधा डालो।' देवराजकी आज्ञा पाकर मेनका बड़ी उतावलीके साथ चली। उसका सुन्दर रूप था और वह सब प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित थी। नन्दनवनके भीतर पहुँचकर वह झूलेमें जा बैठी और मधुर स्वरसे गीत गाने लगी। उसका संगीत वीणाके स्वरके समान था। विष्णुशर्माने उसे देखा और उसके मनोभावको समझ लिया। उन्होंने सोचा—'यह एक बहुत बड़े विघ्नके रूपमें उपस्थित हुई है, इन्द्रने इसे भेजा है; यह मेरी भलाई नहीं कर सकती।' यह विचारकर वे शीघ्रतापूर्वक आगे बढ़ गये। मेनकाने उन्हें जाते देखा और पूछा—'महामते ! कहाँ जाओगे ?' विष्णुशर्मा बोले—'मैं पिताके कार्यसे इन्द्रलोकमें जाऊँगा, वहाँ पहुँचनेके लिये मुझे बड़ी जल्दी है।' मेनकाने कहा—'विप्रवर ! मैं कामदेवके बाणोंसे घायल होकर इस समय तुम्हारी शरणमें आयी हूँ। यदि धर्मका पालन करना चाहते हो तो मेरी रक्षा करो।'

विष्णुशर्मा बोले—सुमुखि ! मुझे देवराजका सारा चरित्र मालूम है; तुम्हारे मनमें क्या है, यह भी मुझसे छिपा नहीं है। तुम्हारे तेज और रूपसे विश्वामित्र आदि दूसरे लोग ही मोहित होते हैं। मैं शिवशर्माका पुत्र हूँ, मुझपर तुम्हारा जादू नहीं चल सकता। अबले ! मैं योगसिद्धिको प्राप्त हूँ, तपस्यासे सिद्ध हो चुका हूँ। काम आदि बड़े-बड़े दोषोंको मैंने पहले ही जीत लिया है। तुम किसी दूसरे पुरुषका आश्रय लो, मैं इन्द्रलोकको जा रहा हूँ।

यों कहकर द्विजश्रेष्ठ विष्णुशर्मा शीघ्रतापूर्वक चले गये। मेनकाका प्रयत्न निष्फल हुआ। देवराजके पूछनेपर उसने सब कुछ बता दिया। तब इन्द्रने बारम्बार विघ्न उपस्थित किया, किन्तु महायशस्वी ब्राह्मणने अपने तेजसे उन सब विघ्नोंका नाश कर दिया। उनके उपस्थित किये हुए भयंकर विघ्नोंका विचार करके महातेजस्वी विष्णुशर्माको बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने सोचा—'मैं इन्द्रलोकसे इन्द्रको गिरा दूँगा और देवताओंकी रक्षाके लिये दूसरा इन्द्र बनाऊँगा।' वे इस प्रकार विचार कर ही रहे थे कि देवराज इन्द्र वहाँ आ पहुँचे और बोले—'महाप्राज्ञ विप्र ! तपस्या, नियम, इन्द्रियसंयम, सत्य और शौचके द्वारा तुम्हारी समानता करनेवाला दूसरा कोई नहीं है। तुम्हारी इस पितृभक्तिसे मैं देवताओंसहित परास्त हो गया। साधुश्रेष्ठ ! तुम मेरे सारे अपराध क्षमा करो और मुझसे कोई वर माँगो। तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हारे माँगनेपर मैं दुर्लभ से दुर्लभ वर भी दे दूँगा।' यह सुनकर विष्णुशर्माने देवराजसे कहा—'आपको महात्मा ब्राह्मणोंके तेजका विनाश करनेकी कभी चेष्टा नहीं करनी चाहिये; क्योंकि यदि श्रेष्ठ ब्राह्मण क्रोधमें भर जायँ तो समस्त पुत्र-पौत्रोंके साथ अपराधी व्यक्तिका संहार कर सकते हैं—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। यदि आप इस समय यहाँ

न आये होते तो मैं अपनी तपस्याके प्रभावसे आपके इस उत्तम राज्यको छीनकर किसी दूसरेको दे डालनेका विचार कर चुका था। मेरी आँखें क्रोधसे लाल हो रही थीं। [किन्तु आपके आनेसे मेरा भाव बदल गया।] देवेन्द्र ! आप आकर मुझे वर देना चाहते हैं तो अमृत दीजिये; साथ ही पिताके चरणोंमें अविचल भक्ति प्रदान कीजिये।'

इस प्रकार बातचीत होनेपर इन्द्रने प्रसन्न चित्तसे ब्राह्मणको अमृतसे भरा घड़ा लाकर दिया तथा वरदान देते



हुए कहा—'विप्रवर ! अपने पिताके प्रति तुम्हारे हृदयमें सदा अविचल भक्ति बनी रहेगी।' यों कहकर इन्द्रने ब्राह्मणको विदा किया। तदनन्तर विष्णुशर्मा अपने पिताके पास जाकर बोले—'तात ! मैं इन्द्रके यहाँसे अमृत ले आया हूँ। इसका सेवन करके आप सदाके लिये नीरोग हो जाइये।' शिवशर्मा पुत्रकी यह बात सुनकर बहुत सन्तुष्ट हुए और सब पुत्रोंको बुलाकर कहने लगे—'तुम सब लोग पितृभक्तिसे युक्त और मेरी आज्ञाके पालक हो। अतः प्रसन्नतापूर्वक मुझसे कोई वर माँगो। इस भूतलपर जो दुर्लभ वस्तु होगी, वह भी तुम्हें मिल जायगी।' पिताकी यह बात सुनकर वे सभी पुत्र एक दूसरेकी ओर देखते हुए उनसे बोले—'सुव्रत ! आपकी कृपासे हमारी माता, जो यमलोकको चली गयी हैं, जी जायँ।'

शिवशर्माने कहा—'पुत्रो ! तुम्हारी मरी हुई पुत्रवत्सला माता अभी जीवित होकर हर्षमें भरी हुई यहाँ आयेगी—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।' ऋषि शिवशर्माके मुखसे यह शुभ वाक्य निकलते ही उन पुत्रोंकी माता हर्षमें भरी हुई वहाँ आ पहुँची और बोली—'मेरे सौभाग्यशाली पुत्रो ! इसीलिये संसारमें पुण्यात्मा स्त्रियाँ पुण्यसाधक पुत्रकी इच्छा करती हैं। जिसका कुलके अनुरूप आचरण हो, जो अपने कुलका आधार तथा माता-पिताको तारनेवाला हो—ऐसे उत्तम पुत्रको कोई भी स्त्री पुण्यके बिना कैसे पा सकती है। न जाने मैंने कैसे-कैसे पुण्य किये थे, जिनके फलस्वरूप ये धर्मप्राण, धर्मात्मा, धर्मवत्सल तथा अत्यन्त पुण्यभागी महात्मा मुझे पतिरूपमें प्राप्त हुए। मेरे सभी पुत्र पितृभक्तिमें रत हैं; इससे बढ़कर प्रसन्नताकी बात और क्या होगी। अहो ! संसारमें पुण्यके ही बलसे उत्तम पुत्रकी प्राप्ति होती है। मुझे पाँच पुत्र प्राप्त हुए हैं, जिनका हृदय विशाल है तथा जिनमें एक-से-एक बढ़कर है। मेरे सभी पुत्र यज्ञ करनेवाले, पुण्यात्मा, तपस्वी, तेजस्वी और पराक्रमी हैं।'

इस प्रकार माताके कहनेपर पुत्रोंको बड़ा हर्ष हुआ और वे अपनी माताको प्रणाम करके बोले—'माँ ! अच्छे माता-पिताकी प्राप्ति बड़े पुण्यसे होती है। तुम सदा पुण्य कर्म करती रहती हो। हमारे बड़े भाग्य थे, जो तुम हमें माताके रूपमें प्राप्त हुईं, जिनके गर्भमें आकर हमलोग उत्तम पुण्योंसे वृद्धिको प्राप्त हुए हैं। हमारी यही अभिलाषा है कि प्रत्येक जन्ममें तुम्हीं हमारी माता और ये ही हमारे पिता हों।'

पिता बोले—पुत्रो ! तुमलोग मुझसे कोई परम उत्तम और पुण्यदायक वरदान माँगो। मेरे सन्तुष्ट होनेपर तुमलोग अक्षय लोकोंका उपभोग कर सकते हो।

पुत्रोंने कहा—पिताजी ! यदि आप हमपर प्रसन्न हैं और वर देना चाहते हैं तो हमें भगवान् श्रीविष्णुके गोलोक धाममें भेज दीजिये, जहाँ किसी प्रकारकी चिन्ता और व्याधि नहीं फटकने पाती।

पिता बोले—पुत्रो ! तुमलोग सर्वथा निष्पाप हो; इसलिये मेरे प्रसाद, तपस्या और इस पितृभक्तिके बलसे वैष्णव धामको जाओ।

महर्षि शिवशर्माके यह उत्तम वचन कहते ही भगवान् श्रीविष्णु अपने हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण

किये गरुड़पर सवार हो वहाँ आ पहुँचे और पुत्रोंसहित शिवशर्मासे बारंबार कहने लगे—'विप्रवर! पुत्रोंसहित तुमने भक्तिके बलसे मुझे अपने वशमें कर लिया है। अतः इन पुण्यात्मा पुत्रों तथा पतिके साथ रहनेकी इच्छावाली इस पुण्यमयी पत्नीको साथ लेकर तुम मेरे परमधामको चलो।'

शिवशर्माने कहा—भगवन्! ये मेरे चारों पुत्र ही इस समय परम उत्तम वैष्णवधाममें चलें। मैं पत्नीके साथ अभी भूलोकमें ही कुछ काल व्यतीत करना चाहता हूँ। मेरे साथ मेरा कनिष्ठ पुत्र सोमशर्मा भी रहेगा।

सत्यभाषी महर्षि शिवशर्माके यों कहनेपर देवेश्वर भगवान् श्रीविष्णुने उनके चार पुत्रोंसे कहा—'तुमलोग दाह और प्रलयसे रहित मोक्षदायक गोलोकधामको चलो।' भगवान्‌के इतना कहते ही उन चारों सत्यतेजस्वी ब्राह्मणोंका तत्काल विष्णुके समान रूप हो गया, उनके शरीरका श्यामवर्ण इन्द्र नीलमणिके समान शोभा पाने लगा। उनके हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म सुशोभित होने लगे। वे विष्णुरूपधारी महान् तेजस्वी द्विज पितृभक्तिके प्रभावसे विष्णुधामको प्राप्त हो गये।

सोमशर्माकी पितृभक्ति

सूतजी कहते हैं—भगवान् श्रीविष्णुका गोलोकधाम तमसे परे परम प्रकाशरूप है। पूर्वोक्त चारों ब्राह्मण जब उस लोकमें चले गये, तब महाप्राज्ञ शिवशर्माने अपने छोटे पुत्रसे कहा—'महामते! सोमशर्मन्! तुम पिताकी भक्तिमें रत हो। मैं इस समय तुम्हें यह अमृतका घड़ा दे रहा हूँ; तुम सदा इसकी रक्षा करना। मैं पत्नीके साथ तीर्थयात्रा करने जाऊँगा।' यह सुनकर सोमशर्माने कहा—'महाभाग! ऐसा ही होगा।' बुद्धिमान् शिवशर्मा सोमशर्माके हाथमें वह घड़ा देकर वहाँसे चल दिये और दस वर्षोंतक निरन्तर तपस्यामें लगे रहे। धर्मात्मा सोमशर्मा दिन रात आलस्य छोड़कर उस अमृत-कुम्भकी रक्षा करते रहे। दस वर्षोंके पश्चात् महायशस्वी शिवशर्मा पुनः लौटकर वहाँ आये। वे मायाका प्रयोग करके भार्यासहित कोढी बन गये। जैसे वे स्वयं कुष्ठ रोगसे पीड़ित थे, उसी प्रकार उनकी स्त्री भी थीं। दोनों ही मासके पिण्डकी भाँति त्याग देने योग्य दिखायी देते थे। वे धीरचित्त ब्राह्मण महात्मा सोमशर्माके समीप आये। वहाँ पधारे हुए माता-पिताको सर्वथा दुःखसे पीड़ित देख महायशस्वी सोमशर्माको बड़ी दया आयी। भक्तिसे उनका मस्तक झुक गया। वे उन दोनोंके चरणोंमें पड़ गये और बोले—'पिताजी! मैं दूसरे किसीको ऐसा नहीं देखता, जो तपस्या, गुण-समुदाय और उत्तम पुण्यसे युक्त



होकर आपकी समानता कर सके। फिर भी आपको यह क्या हो गया? विप्रवर! सम्पूर्ण देवता सदा दासकी भाँति आपकी आज्ञाके पालनमें लगे रहते हैं। वे आपके तेजसे खिंचकर यहाँ आ जाते हैं। आप इतने शक्तिशाली हैं, तो भी किस पापके कारण आपके शरीरमें यह पीड़ा देनेवाला रोग हो गया? ब्राह्मणश्रेष्ठ! इसका कारण बताइये। यह मेरी माता भी पुण्यवती है, इसका पुण्य महान् है; यह

पतिव्रत-धर्मका पालन करनेवाली है। यह अपने स्वामीकी कृपासे समूची त्रिलोकीको भी धारण करनेमें समर्थ है। जो राग-द्वेषका परित्याग करके भाँति-भाँतिके कर्मोंद्वारा अपने पतिदेवका पूजन करती है, देवताओंकी ही भाँति गुरुजनोंके प्रति भी जिसके हृदयमें आदरका भाव है, वह मेरी माता क्यों इस कष्टकारी कुष्ठरोगका दुःख भोग रही है?'

शिवशर्मा बोले—महाभाग ! तुम शोक न करो; सबको अपने कर्मोंका ही फल भोगना पड़ता है; क्योंकि मनुष्य प्रायः [पूर्वकृत] पाप और पुण्यमय कर्मोंसे युक्त होता ही है। अब तुम हम दोनों रोगियोंके घावोंको धोकर साफ करो।

पिताका यह शुभ वाक्य सुनकर महायशस्वी सोमशर्माने कहा—'आप दोनों पुण्यात्मा हैं; मैं आपकी सेवा अवश्य करूँगा। माता-पिताकी शुश्रूषाके सिवा मेरा और कर्तव्य ही क्या है।' सोमशर्मा उन दोनोंके दुःखसे दुखी थे। वे माता-पिताके मल-मूत्र तथा कफ आदि धोते। अपने हाथसे उनके चरण पखारते और दबाया करते थे। उनके रहने और नहाने आदिका प्रबन्ध भी वे पूर्ण भक्तिके साथ स्वयं ही करते थे। विप्रवर सोमशर्मा बड़े यशस्वी, धर्मात्मा और सत्पुरुषोंमें श्रेष्ठ थे। वे अपने दोनों गुरुजनोंको कंधेपर बिठाकर तीर्थोंमें ले जाया करते थे। वे वेदके ज्ञाता थे; अतः माङ्गलिक मन्त्रोंका उच्चारण करके दोनोंको अपने हाथसे विधिपूर्वक नहलाते और स्वयं भी स्नान करते थे। फिर पितरोंका तर्पण और देवताओंका पूजन भी वे उन दोनोंसे प्रतिदिन कराया करते थे। स्वयं अग्निमें होम करते और अपने दोनों महागुरु माता-पिताको प्रसन्न करते हुए अपने सब कार्य उन्हें बताया करते थे। सोमशर्मा उन दोनोंको प्रतिदिन शय्यापर सुलाते और उन्हें वस्त्र तथा पुष्प आदि सब सामग्री निवेदन करते थे। परम सुगन्धित पान लगाकर माता-पिताको अर्पण करते तथा नित्यप्रति उनकी इच्छाके अनुसार फल, मूल, दूध आदि उत्तमोत्तम भोज्य पदार्थ खानेको देते थे। इस क्रमसे वे सदा ही माता पिताको प्रसन्न रखनेकी चेष्टा करते थे। पिता सोमशर्माको बुलाकर उन्हें नाना प्रकारके कठोर एवं दुःखदायी वचनोंसे पीड़ित करते और आतुर होकर उन्हें डंडोंसे पीटते भी थे। यह सब करनेपर भी धर्मात्मा सोमशर्मा कभी पिताके ऊपर क्रोध नहीं करते थे। वे सदा सन्तुष्ट रहकर मन, वाणी और क्रिया—तीनोंके ही द्वारा पिताकी पूजा करते थे।



ये सब बातें जानकर शिवशर्मा अपने चरित्रपर विचार करने लगे। उन्होंने सोचा—'सोमशर्माका मेरी सेवामें अधिक अनुराग दिखायी देता है, इसीलिये समयपर मैंने इसके तपकी परीक्षा की है; किन्तु मेरा पुत्र भक्ति-भाव तथा सत्यपूर्ण बर्तावसे भ्रष्ट नहीं हो रहा है। निन्दा करने और मारनेपर भी सदा मीठे वचन बोलता है। इस प्रकार मेरा बुद्धिमान् पुत्र दुष्कर सदाचारका पालन कर रहा है। अतः अब मैं भगवान् श्रीविष्णुके प्रसादसे इसके दुःख दूर करूँगा।' इस प्रकार बहुत देरतक सोच-विचार करनेके पश्चात् परम बुद्धिमान् शिवशर्माने पुनः मायाका प्रयोग किया। अमृतके घड़ेसे अमृतका अपहरण कर लिया। उसके बाद सोमशर्माको बुलाकर कहा—'बेटा! मैंने तुम्हारे हाथमें रोगनाशक अमृत सौंपा था, उसे शीघ्र लाकर मुझे अर्पण करो, जिससे मैं इस समय उसका पान करूँ।'

पिताके यों कहनेपर सोमशर्मा तुरंत उठकर चल दिये। अमृतके घड़ेके पास जाकर उन्होंने देखा कि वह खाली पड़ा है—उसमें अमृतकी एक बूँद भी नहीं है। यह देखकर परम सौभाग्यशाली सोमशर्माने मन-ही-मन कहा—'यदि मुझमें सत्य और गुरु-शुश्रूषा है, यदि मैंने पूर्वकालमें निश्छल हृदयसे तपस्या की है, इन्द्रियसंयम, सत्य और शौच आदि धर्मोंका ही सदा पालन किया है, तो यह घड़ा निश्चय ही अमृतसे भर जाय।' महाभाग सोमशर्माने

इस प्रकार विचार करके ज्यों ही उस घड़ेकी ओर देखा, त्यों ही वह अमृतसे भर गया। घड़ेको भरा देख उसे हाथमें ले महायशस्वी सोमशर्मा तुरत ही पिताके पास गये और उन्हें प्रणाम करके बोले—'पिताजी! लीजिये, यह अमृतसे भरा घड़ा आ गया। महाभाग! अब इसे पीकर शीघ्र ही रोगसे मुक्त हो जाइये।' पुत्रका यह परम पुण्यमय तथा सत्य और धर्मके उद्देश्यसे युक्त मधुर वचन सुनकर शिवशर्माको बड़ा हर्ष हुआ। वे बोले—'पुत्र! आज मैं तुम्हारी तपस्या, इन्द्रियसंयम, शौच, गुरुशुश्रूषा तथा भक्तिभावसे विशेष संतुष्ट हूँ। लो, अब मैं इस विकृत रूपका त्याग करता हूँ।'

यों कहकर ब्राह्मण शिवशर्माने पुत्रको अपने पहले रूपमें दर्शन दिया। सोमशर्माने माता-पिताको पहले जिस रूपमें देखा था, उसी रूपमें उस समय भी देखा। वे दोनों महात्मा सूर्यमण्डलकी भाँति तेजसे दिप रहे थे। सोमशर्माने बड़ी भक्तिके साथ उन महात्माओंके चरणोंमें मस्तक झुकाया। तदनन्तर वे दोनों पति-पत्नी पुत्रसे बातचीत करके अत्यन्त प्रसन्न हुए। फिर धर्मात्मा ब्राह्मण भगवान् श्रीविष्णुकी कृपासे अपनी पत्नीको साथ ले विष्णुधामको चले गये। अपने पुण्य और योगाभ्यासके प्रभावसे उन महर्षिने दुर्लभ पद प्राप्त कर लिया।

सुव्रतकी उत्पत्तिके प्रसङ्गमें सुमना और शिवशर्माका संवाद—विविध प्रकारके पुत्रोंका वर्णन तथा दुर्वासाद्वारा धर्मको शाप

ऋषियोंने कहा—सूतजी! अब हम महात्मा सुव्रतका चरित्र सुनना चाहते हैं। वे महाप्राज्ञ किस गोत्रमें उत्पन्न हुए और किसके पुत्र थे? ब्राह्मण सुव्रतकी क्या तपस्या थी और किस प्रकार उन्होंने भगवान् श्रीहरिकी आराधना की थी?

सूतजी बोले—विप्रगण! मैं सुव्रतके दिव्य एवं पावन चरित्रका वर्णन करता हूँ। यह प्रसङ्ग परम कल्याणकारी तथा भगवान् श्रीविष्णुकी चर्चासे युक्त है। पूर्व कल्पकी बात है, नर्मदाके पापनाशक तटपर अमरकण्टक तीर्थके भीतर कौशिक वंशमें एक श्रेष्ठ ब्राह्मण उत्पन्न हुए थे। उनका नाम था सोमशर्मा। उनके कोई पुत्र नहीं था। इस कारण वे बहुत दुःखी रहा करते थे। उनकी पत्नीका नाम था सुमना। वह उत्तम व्रतका आचरण करनेवाली थी। एक दिन उसने अपने पतिको चिन्तित देखकर कहा—'नाथ! चिन्ता छोड़िये। चिन्ताके समान दूसरा कोई दुःख नहीं है, क्योंकि वह शरीरको सुखा डालती है। जो उसे त्यागकर यथोचित बर्ताव करता है, वह अनायास ही आनन्दमें मस्त रहता है।* विप्रवर! मेरे सामने आप अपनी चिन्ताका कारण बताइये।'

सोमशर्माने कहा—सुव्रते! न जाने किस पापसे मैं निर्धन और पुत्रहीन हूँ। यही मेरे दुःखका कारण है।

सुमना बोली—प्राणनाथ! सुनिये! मैं एक ऐसी बात बताती हूँ, जो सब सन्देहोंका नाश करनेवाली है। पाप एक वृक्षके समान है, उसका बीज है लोभ। मोह उसकी जड़ है। असत्य उसका तना और माया उसकी शाखाओंका विस्तार है। दम्भ और कुटिलता पत्ते हैं। कुबुद्धि फूल है और अनृत उसकी गन्ध है। छल, पाखण्ड, चोरी, ईर्ष्या, क्रूरता, कूटनीति और पापाचारसे युक्त प्राणी उस मोहमूलक वृक्षके पक्षी हैं, जो मायारूपी शाखाओंपर बसेरे लेते हैं। अज्ञान उस वृक्षका फल है और अधर्मको उसका रस बताया गया है। दुर्भावरूप जलसे सींचनेपर उसकी वृद्धि होती है। अश्रद्धा उसके फूलने फलनेकी ऋतु है। जो मनुष्य उस वृक्षकी छायाका आश्रय लेकर संतुष्ट रहता है, उसके पके हुए फलोंको प्रतिदिन खाता है और उन फलोंके अधर्मरूप रससे पुष्ट होता है, वह ऊपरसे कितना ही प्रसन्न क्यों न हो, वास्तवमें पतनकी ओर ही जाता है। इसलिये पुरुषको चिन्ता छोड़कर लोभका भी त्याग कर देना चाहिये।

स्त्री, पुत्र और धनकी चिन्ता तो कभी करनी ही नहीं चाहिये। प्रियतम! कितने ही विद्वान् भी मूर्खोंके मार्गका अवलम्बन करते हैं। दिन-रात मोहमें डूबे रहकर निरन्तर इसी चिन्तामें पड़े रहते हैं कि किस प्रकार मुझे अच्छी

---

* नास्ति चिन्तासमं दुःखं कायशोषणमेव हि।
यस्तां संत्यज्य वर्तेत स सुखेन प्रमोदते॥ (११।११)

स्त्री मिले और कैसे मैं बहुत-से पुत्र प्राप्त करूँ। ब्रह्मन्! आप चिन्ता और मोहका त्याग करके विवेकका आश्रय लीजिये।

कोई पूर्वजन्ममें ऋण देनेके कारण इस जन्ममें अपने सम्बन्धी होते हैं और कोई-कोई धरोहर हड़प लेनेके कारण भी सम्बन्धीके रूपमें जन्म लेते हैं। पत्नी, पिता, माता, भृत्य, स्वजन, और बान्धव—सब लोग अपने-अपने ऋणानुबन्धसे ही इस पृथ्वी-पर उत्पन्न होते हैं। जिसने जिसकी जिस भावसे धरोहर हड़प ली है, वह उसी भावसे उसके यहाँ जन्म लेता है। धरोहरका स्वामी रूपवान् और गुणवान् पुत्र होकर पृथ्वीपर उत्पन्न होता है और धरोहरके अपहरणका बदला लेनेके लिये दारुण दुःख देकर चला जाता है।

जो किसीका ऋण लेकर मर जाता है, उसके यहाँ दूसरे जन्ममें ऋणदाता पुरुष पुत्र, भाई, पिता, पत्नी और मित्ररूपसे उत्पन्न होता है। वह सदा ही अत्यन्त दुष्टतापूर्ण बर्ताव करता है। गुणोंकी ओर तो वह कभी देखता ही नहीं। क्रूर स्वभाव और निष्ठुर आकृति बनाये अपने स्वजनों-को सदा कठोर बातें सुनाया करता है। प्रतिदिन मीठी-मीठी वस्तुएँ स्वयं खाता है। घरमें रहते हुए धनका बलपूर्वक उपभोग करता है और रोकनेपर कुपित हो जाता है।

विप्रवर! अब मैं आपके सामने शत्रु-स्वभाववाले पुत्रका वर्णन करती हूँ। वह बाल्यावस्थासे ही सदा शत्रुओंका-सा बर्ताव करता है। खेल-कूदमें भी पिता-माताको मार-मारकर भागता है और बारंबार हँसा करता है। क्रोधयुक्त स्वभावको लेकर ही बड़ा होता है और सदा वैरके काममें लगा रहता है। वह प्रतिदिन पिता और माताकी निन्दा करता है। फिर विवाह-सम्बन्ध हो जानेपर नाना प्रकारसे धनका अपव्यय करता है। 'घर और खेत आदि सब मेरा ही है' [तुमलोग कौन हो मेरा हाथ रोकनेवाले!] यों कहकर पिता और माताको प्रतिदिन पीटता रहता है। उनकी मृत्युके पश्चात् न वह श्राद्ध करता है और न कभी दान ही देता है। ऐसे बहुतेरे पुत्र इस पृथ्वीपर उत्पन्न होते रहते हैं।

अब मैं उस पुत्रका वर्णन करती हूँ, जिसके द्वारा प्रिय वस्तुकी प्राप्ति होती है। वैसा बालक बचपनसे ही माता-पिता-का प्रिय करता है। वयस्क (बड़ा) होनेपर भी उनके प्रियसाधनमें लगा रहता है और सदा अपनी भक्तिसे माता-पिताको सन्तुष्ट रखता है। स्नेहसे, मीठी वाणीसे तथा प्रिय लगनेवाली बात-चीतसे उन्हें प्रसन्न रखनेकी चेष्टा करता है। माता-पिताकी मृत्युके पश्चात् सम्पूर्ण श्राद्धकर्म और पिण्डदान आदिका कार्य करता है तथा उनकी सद्गतिके लिये तीर्थयात्रा भी करता है।

प्रियतम! अब इस समय आपके सामने उदासीन पुत्रका वर्णन करती हूँ—विप्रवर! उदासीन बालक सदा उदासीन-भावसे ही रहता है। वह न कुछ देता है और न लेता है। न रुष्ट होता है और न सन्तुष्ट। इस प्रकार मैंने पुत्रोंके सम्बन्धमें सब कुछ बता दिया। पुत्रोंकी ऐसी ही गति है। जैसे पुत्र होते हैं, वैसे ही पिता, माता, पत्नी, बन्धु-बान्धव तथा भृत्य आदि अन्य लोग भी बताये गये हैं। [इनमें भी शत्रु, मित्र और उदासीन आदि भेद होते हैं।] मनुष्योंकी तो बात ही क्या है, पशु—घोड़े, हाथी, भैंस आदि भी ऐसे ही होते हैं। नौकरोंकी भी यही स्थिति है; ये सब ऋणके सम्बन्धसे ही प्राप्त होते हैं।

हम दोनोंने पूर्वजन्ममें न तो किसीसे ऋण लिया है और न किसीकी धरोहर ही हड़पी है। इतना ही नहीं, हमने किसीके साथ वैर भी नहीं किया है। [इसीलिये हमें धन और पुत्र आदि किसी भी वस्तुकी प्राप्ति नहीं हुई है]। यह जान-कर आप शान्ति धारण करें और व्यर्थकी चिन्ता छोड़ दें। आपने किसीको दान नहीं दिया है, तब धन कैसे आये। अतः प्राण-नाथ! दुखी न होइये। द्विजश्रेष्ठ! जिस पुरुषको धन मिलना निश्चित है, उसके हाथमें अनायास ही धन आ जाता है। मनुष्य उस धनकी बड़े यत्नसे रक्षा करता है। किन्तु जब वह जानेको होता है, तब चला ही जाता है। ऐसा समझ-कर आप शान्त हो जाइये। निरर्थक चिन्ता छोड़िये। महान् मोहसे मूढ़ (विवेकशून्य) हुए मानव पापमें आसक्तचित्त होकर कहने लगते हैं कि 'यह घर, यह पुत्र और ये स्त्रियाँ मेरी ही हैं।' किन्तु प्राणनाथ! संसारका यह बन्धन सदा झूठा ही दिखायी देता है।

सोमशर्मा बोले—कल्याणी! तुम ठीक कहती हो; तुम्हारा यह वचन सब प्रकारके सन्देहोंका नाश करनेवाला है। तथापि सत्यके ज्ञाता साधु पुरुष वंशकी इच्छा रखते हैं। प्रिये! मुझे पुत्रकी चिन्ता है; जीमें आता है—जिस-किसी उपायसे सम्भव हो, मैं पुत्र अवश्य उत्पन्न करूँ।

सुमनाने कहा—महाभाग! एक ही विद्वान् पुत्र श्रेष्ठ है, बहुत-से गुणहीन पुत्रोंको लेकर क्या करना है? एक ही पुत्र कुलका उद्धार करता है; दूसरे तो केवल कष्ट देनेवाले होते हैं। पुण्यसे ही पुत्र प्राप्त होता है, पुण्यसे ही अच्छा कुल मिलता है तथा पुण्यसे ही उत्तम गर्भकी प्राप्ति होती है।

इस प्रकार विचार करके ज्यों ही उस घड़ेकी ओर देखा, त्यों ही वह अमृतसे भर गया। घड़ेको भरा देख उसे हाथमें ले महायशस्वी सोमशर्मा तुरत ही पिताके पास गये और उन्हें प्रणाम करके बोले—'पिताजी! लीजिये, यह अमृतसे भरा घड़ा आ गया। महाभाग! अब इसे पीकर शीघ्र ही रोगसे मुक्त हो जाइये।' पुत्रका यह परम पुण्यमय तथा सत्य और धर्मके उद्देश्यसे युक्त मधुर वचन सुनकर शिवशर्माको बड़ा हर्ष हुआ। वे बोले—'पुत्र! आज मैं तुम्हारी तपस्या, इन्द्रियसंयम, शौच, गुरुशुश्रूषा तथा भक्तिभावसे विशेष संतुष्ट हूँ। लो, अब मैं इस विकृत रूपका त्याग करता हूँ।'

यों कहकर ब्राह्मण शिवशर्माने पुत्रको अपने पहले रूपमें दर्शन दिया। सोमशर्माने माता-पिताको पहले जिस रूपमें देखा था, उसी रूपमें उस समय भी देखा। वे दोनों महात्मा सूर्यमण्डलकी भाँति तेजसे दिप रहे थे। सोमशर्माने बड़ी भक्तिके साथ उन महात्माओंके चरणोंमें मस्तक झुकाया। तदनन्तर वे दोनों पति-पत्नी पुत्रसे बातचीत करके अत्यन्त प्रसन्न हुए। फिर धर्मात्मा ब्राह्मण भगवान् श्रीविष्णुकी कृपासे अपनी पत्नीको साथ ले विष्णुधामको चले गये। अपने पुण्य और योगाभ्यासके प्रभावसे उन महर्षिने दुर्लभ पद प्राप्त कर लिया।

सुव्रतकी उत्पत्तिके प्रसङ्गमें सुमना और शिवशर्माका संवाद—विविध प्रकारके पुत्रोंका वर्णन तथा दुर्वासाद्वारा धर्मको शाप

ऋषियोंने कहा—सूतजी! अब हम महात्मा सुव्रतका चरित्र सुनना चाहते हैं। वे महाप्राज्ञ किस गोत्रमें उत्पन्न हुए और किसके पुत्र थे? ब्राह्मण सुव्रतकी क्या तपस्या थी और किस प्रकार उन्होंने भगवान् श्रीहरिकी आराधना की थी?

सूतजी बोले—विप्रगण! मैं सुव्रतके दिव्य एवं पावन चरित्रका वर्णन करता हूँ। यह प्रसङ्ग परम कल्याणकारी तथा भगवान् श्रीविष्णुकी चर्चासे युक्त है। पूर्व कल्पकी बात है, नर्मदाके पापनाशक तटपर अमरकण्टक तीर्थके भीतर कौशिक वंशमें एक श्रेष्ठ ब्राह्मण उत्पन्न हुए थे। उनका नाम था सोमशर्मा। उनके कोई पुत्र नहीं था। इस कारण वे बहुत दुःखी रहा करते थे। उनकी पत्नीका नाम था सुमना। वह उत्तम व्रतका आचरण करनेवाली थी। एक दिन उसने अपने पतिको चिन्तित देखकर कहा—'नाथ! चिन्ता छोड़िये। चिन्ताके समान दूसरा कोई दुःख नहीं है; क्योंकि वह शरीरको सुखा डालती है। जो उसे त्यागकर यथोचित बर्ताव करता है, वह अनायास ही आनन्दमें मस्त रहता है।* विप्रवर! मेरे सामने आप अपनी चिन्ताका कारण बताइये।'

सोमशर्माने कहा—सुव्रते! न जाने किस पापसे मैं निर्धन और पुत्रहीन हूँ। यही मेरे दुःखका कारण है।

सुमना बोली—प्राणनाथ! सुनिये। मैं एक ऐसी बात बताती हूँ, जो सब सन्देहोंका नाश करनेवाली है। पाप एक वृक्षके समान है, उसका बीज है लोभ। मोह उसकी जड़ है। असत्य उसका तना और माया उसकी शाखाओंका विस्तार है। दम्भ और कुटिलता पत्ते हैं। कुबुद्धि फूल है और अनृत उसकी गन्ध है। छल, पाखण्ड, चोरी, ईर्ष्या, क्रूरता, कूटनीति और पापाचारसे युक्त प्राणी उस मोहमूलक वृक्षके पक्षी हैं, जो मायारूपी शाखाओंपर बसेरे लेते हैं। अज्ञान उस वृक्षका फल है और अधर्मको उसका रस बताया गया है। दुर्भावरूप जलसे सींचनेपर उसकी वृद्धि होती है। अश्रद्धा उसके फूलने फलनेकी ऋतु है। जो मनुष्य उस वृक्षकी छायाका आश्रय लेकर संतुष्ट रहता है, उसके पके हुए फलोंको प्रतिदिन खाता है और उन फलोंके अधर्मरूप रससे पुष्ट होता है, वह ऊपरसे कितना ही प्रसन्न क्यों न हो, वास्तवमें पतनकी ओर ही जाता है। इसलिये पुरुषको चिन्ता छोड़कर लोभका भी त्याग कर देना चाहिये।

स्त्री, पुत्र और धनकी चिन्ता तो कभी करनी ही नहीं चाहिये। प्रियतम! कितने ही विद्वान् भी मूर्खोंके मार्गका अवलम्बन करते हैं। दिन-रात मोहमें डूबे रहकर निरन्तर इसी चिन्तामें पड़े रहते हैं कि किस प्रकार मुझे अच्छी

---

* नास्ति चिन्तासमं दुःखं कायशोषणमेव हि।
यस्तां सत्यज्य वर्तेत स सुखेन प्रमोदते॥ (११।११)

स्त्री मिले और कैसे मैं बहुत-से पुत्र प्राप्त करूँ। ब्रह्मन्! आप चिन्ता और मोहका त्याग करके विवेकका आश्रय लीजिये।

कोई पूर्वजन्ममें ऋण देनेके कारण इस जन्ममें अपने सम्बन्धी होते हैं और कोई-कोई धरोहर हड़प लेनेके कारण भी सम्बन्धीके रूपमें जन्म लेते हैं। पत्नी, पिता, माता, भृत्य, स्वजन, और बान्धव—सब लोग अपने-अपने ऋणानुबन्धसे ही इस पृथ्वी-पर उत्पन्न होते हैं। जिसने जिसकी जिस भावसे धरोहर हड़प ली है, वह उसी भावसे उसके यहाँ जन्म लेता है। धरोहरका स्वामी रूपवान् और गुणवान् पुत्र होकर पृथ्वीपर उत्पन्न होता है और धरोहरके अपहरणका बदला लेनेके लिये दारुण दुःख देकर चला जाता है।

जो किसीका ऋण लेकर मर जाता है, उसके यहाँ दूसरे जन्ममें ऋणदाता पुरुष पुत्र, भाई, पिता, पत्नी और मित्ररूपसे उत्पन्न होता है। वह सदा ही अत्यन्त दुष्टतापूर्ण बर्ताव करता है। गुणोंकी ओर तो वह कभी देखता ही नहीं। क्रूर स्वभाव और निष्ठुर आकृति बनाये अपने स्वजनों-को सदा कठोर बातें सुनाया करता है। प्रतिदिन मीठी-मीठी वस्तुएँ स्वयं खाता है। घरमें रहते हुए धनका बलपूर्वक उपभोग करता है और रोकनेपर कुपित हो जाता है।

विप्रवर! अब मैं आपके सामने शत्रु-स्वभाववाले पुत्रका वर्णन करती हूँ। वह बाल्यावस्थासे ही सदा शत्रुओंका-सा बर्ताव करता है। खेल-कूदमें भी पिता-माताको मार-मारकर भागता है और बारंबार हँसा करता है। क्रोधयुक्त स्वभावको लेकर ही बड़ा होता है और सदा वैरके काममें लगा रहता है। वह प्रतिदिन पिता और माताकी निन्दा करता है। फिर विवाह-सम्बन्ध हो जानेपर नाना प्रकारसे धनका अपव्यय करता है। 'घर और खेत आदि सब मेरा ही है' [तुमलोग कौन हो मेरा हाथ रोकनेवाले?] यों कहकर पिता और माताको प्रतिदिन पीटता रहता है। उनकी मृत्युके पश्चात् न वह श्राद्ध करता है और न कभी दान ही देता है। ऐसे बहुतेरे पुत्र इस पृथ्वीपर उत्पन्न होते रहते हैं।

अब मैं उस पुत्रका वर्णन करती हूँ, जिसके द्वारा प्रिय वस्तुकी प्राप्ति होती है। वैसा बालक बचपनसे ही माता-पिता-का प्रिय करता है। वयस्क (बड़ा) होनेपर भी उनके प्रियसाधनमें लगा रहता है और सदा अपनी भक्तिसे माता-पिताको सन्तुष्ट रखता है। स्नेहसे, मीठी वाणीसे तथा प्रिय लगनेवाली बात-चीतसे उन्हें प्रसन्न रखनेकी चेष्टा करता है। माता-पिताकी मृत्युके पश्चात् सम्पूर्ण श्राद्धकर्म और पिण्डदान आदिका कार्य करता है तथा उनकी सद्गतिके लिये तीर्थयात्रा भी करता है।

प्रियतम! अब इस समय आपके सामने उदासीन पुत्रका वर्णन करती हूँ—विप्रवर! उदासीन बालक सदा उदासीन-भावसे ही रहता है। वह न कुछ देता है और न लेता है। न रुष्ट होता है और न सन्तुष्ट। इस प्रकार मैंने पुत्रोंके सम्बन्धमें सब कुछ बता दिया। पुत्रोंकी ऐसी ही गति है। जैसे पुत्र होते हैं, वैसे ही पिता, माता, पत्नी, बन्धु-बान्धव तथा भृत्य आदि अन्य लोग भी बताये गये हैं। [इनमें भी शत्रु, मित्र और उदासीन आदि भेद होते हैं।] मनुष्योंकी तो बात ही क्या है, पशु—घोड़े, हाथी, भैंस आदि भी ऐसे ही होते हैं। नौकरोंकी भी यही स्थिति है; वे सब ऋणके सम्बन्धसे ही प्राप्त होते हैं।

हम दोनोंने पूर्वजन्ममें न तो किसीसे ऋण लिया है और न किसीकी धरोहर ही हड़पी है। इतना ही नहीं, हमने किसीके साथ वैर भी नहीं किया है। [इसीलिये हमें धन और पुत्र आदि किसी भी वस्तुकी प्राप्ति नहीं हुई है] । यह जान-कर आप शान्ति धारण करें और व्यर्थकी चिन्ता छोड़ दें। आपने किसीको दान नहीं दिया है, तब धन कैसे आये। अतः प्राण-नाथ! दुखी न होइये। द्विजश्रेष्ठ! जिस पुरुषको धन मिलना निश्चित है, उसके हाथमें अनायास ही धन आ जाता है। मनुष्य उस धनकी बड़े यत्नसे रक्षा करता है। किन्तु जब वह जानेको होता है, तब चला ही जाता है। ऐसा समझ-कर आप शान्त हो जाइये। निरर्थक चिन्ता छोड़िये। महान् मोहसे मूढ़ (विवेकशून्य) हुए मानव घरमें आसक्तचित्त होकर कहने लगते हैं कि 'यह घर, यह पुत्र और ये स्त्रियाँ मेरी ही हैं।' किन्तु प्राणनाथ! संसारका यह बन्धन सदा झूठा ही दिखायी देता है।

सोमशर्मा बोले—कल्याणी! तुम ठीक कहती हो; तुम्हारा यह वचन सब प्रकारके सन्देहोंका नाश करनेवाला है। तथापि सत्यके ज्ञाता साधु पुरुष वंशकी इच्छा रखते हैं। प्रिये! मुझे पुत्रकी चिन्ता है; जीमें आता है—जिस-किसी उपायसे सम्भव हो, मैं पुत्र अवश्य उत्पन्न करूँ।

सुमनाने कहा—महाभाग! एक ही विद्वान् पुत्र श्रेष्ठ है, बहुत-से गुणहीन पुत्रोंको लेकर क्या करना है? एक ही पुत्र कुलका उद्धार करता है; दूसरे तो केवल कष्ट देनेवाले होते हैं। पुण्यसे ही पुत्र प्राप्त होता है, पुण्यसे ही अच्छा कुल मिलता है तथा पुण्यसे ही उत्तम गर्भकी प्राप्ति होती है।

इसलिये आप पुण्यका अनुष्ठान कीजिये। प्राणनाथ! पुण्यकर्म करनेवाले मनुष्य ही सुख राशिका उपभोग करते हैं।

सोमशर्मा बोले—भद्रे! मुझे पुण्यका अनुष्ठान बताओ। उत्तम पुण्य कैसा होता है? पुण्यके लक्षणोंका वर्णन करो।

सुमनाने कहा—प्राणनाथ! पुरुष या स्त्रीको सदा जिस प्रकार बर्ताव करना चाहिये तथा जिस प्रकार पुण्य करनेसे कीर्ति, पुत्र, प्यारी स्त्री और धनकी प्राप्ति होती है, वह सब मैं बताती हूँ तथा पुण्यका लक्षण भी कहती हूँ। ब्रह्मचर्य, तपस्या, पञ्चयज्ञोंका अनुष्ठान, दान, नियम, क्षमा, शौच, अहिंसा, उत्तम शक्ति और चोरीका अभाव—ये पुण्यके अङ्ग हैं; इनके अनुष्ठानसे धर्मकी पूर्ति करनी चाहिये।* धर्मात्मा पुरुष मन, वाणी और शरीर—तीनोंकी क्रियासे धर्मका सम्पादन करता है। फिर वह जिस जिस वस्तुका चिन्तन करता है, वह दुर्लभ होनेपर भी उसे प्राप्त हो जाती है।

सोमशर्माने पूछा—भामिनि! धर्मका स्वरूप कैसा है? और उसके कौन कौन से अङ्ग हैं? प्रिये! इस विषयको सुननेकी मेरे मनमें बड़ी रुचि हो रही है; अतः तुम प्रसन्नतापूर्वक इसका वर्णन करो।

सुमना बोली—ब्रह्मन्! जिनका अत्रिवंशमें जन्म हुआ है तथा जो अनसूयाके पुत्र हैं, उन भगवान् दत्तात्रेयजीने ही सदा धर्मका साक्षात्कार किया है। महर्षि दुर्वासा और दत्तात्रेय—इन दोनोंने उत्तम तपस्या की है। उन्होंने तपस्या और आत्मबलके साथ धर्मानुकूल बर्ताव किया है। उन्होंने वनमें रहकर दस हजार वर्षोंतक तपस्या की, बिना कुछ खाये पीये केवल हवा पीकर जीवन निर्वाह किया; इससे वे दोनों *शुभदर्शी* हो गये हैं। तत्पश्चात् उतने ही समय (दस हजार वर्ष) तक उन दोनोंने पञ्चाग्निसेवन किया। उसके बाद वे जलके भीतर खड़े हो उतने ही वर्षोंतक तपस्यामें लगे रहे। यतिवर दत्तात्रेय और मुनिश्रेष्ठ दुर्वासा बहुत दुर्बल हो गये। तब मुनिवर दुर्वासाके मनमें धर्मके प्रति बड़ा क्रोध हुआ। इसी समय बुद्धिमान् धर्म साक्षात् वहाँ आ पहुँचे। उनके साथ ब्रह्मचर्य और तप आदि भी मूर्तिमान् होकर आये। सत्य, ब्रह्मचर्य, तप और इन्द्रियसंयम—ये उत्तम एवं विद्वान् ब्राह्मणके रूपमें आये। नियमने महाप्राज्ञ पण्डितका रूप धारण कर रखा था और दान अग्निहोत्रीका स्वरूप धारण किये महर्षि दुर्वासाके निकट उपस्थित हुआ था। क्षमा, शान्ति, लज्जा, अहिंसा और अकल्पना (निःसंकल्प अवस्था)—ये सब स्त्री-रूप धारण किये वहाँ आयी थीं। बुद्धि, प्रज्ञा, दया, श्रद्धा, मेधा, सत्कृति और शान्ति—इनका भी वही रूप था। पाँचों अग्नियाँ, परम पावन वेद और वेदाङ्ग—ये भी अपना-अपना दिव्य रूप धारण किये उपस्थित थे। इस प्रकार धर्म अपने परिवारके साथ वहाँ आये थे। ये सब-के-सब मुनिको सिद्ध हो गये थे।

धर्म बोले—ब्रह्मन्! आपने तपस्वी होकर भी क्रोध क्यों किया है? क्रोध तो मनुष्यके श्रेय और तपस्या—दोनोंका ही नाश कर डालता है; इसलिये तपस्याके समय इस सर्वनाशी क्रोधको अवश्य त्याग देना चाहिये। द्विजश्रेष्ठ! स्वस्थ होइये; आपकी तपस्याका फल बहुत उत्तम है।

दुर्वासाने कहा—आप कौन हैं, जो इन श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके साथ यहाँ पधारे हैं? तथा आपके साथ ये सुन्दर रूप और अलंकारोंसे सुशोभित स्त्रियाँ कैसे खड़ी हैं?

धर्म बोले—मुने! ये जो आपके सामने ब्राह्मणके रूपमें सम्पूर्ण तेजसे युक्त दिखायी देते हैं, जो हाथमें दण्ड और कमण्डलु लिये अत्यन्त प्रसन्न जान पड़ते हैं, इनका नाम 'ब्रह्मचर्य' है। इसी प्रकार ये जो दूसरे तेजस्वी ब्राह्मण खड़े हैं, इनपर भी दृष्टिपात कीजिये। इनके शरीरका रङ्ग पीला और आँखें भूरे रङ्गकी हैं; ये 'सत्य' कहलाते हैं। धर्मात्मन्! इन्हींके समान जो अपनी दिव्य प्रभासे विश्वेदेवोंकी समानता कर रहे हैं तथा जिनका आपने सदा ही आश्रय लिया है, वही ये आपके मूर्तिमान् 'तप' हैं; इनका दर्शन कीजिये। जिनकी वाणी प्रसाद गुणसे युक्त है, जो दीप्तिमान् दिखायी देते हैं, सम्पूर्ण जीवोंपर दया करना जिनका स्वभाव है तथा जो सर्वदा आपका पोषण करते हैं, वे ही 'दम' (इन्द्रिय संयम) यहाँ व्यक्तरूप धारण करके उपस्थित हैं। जिनके मस्तकपर जटा है, जिनका स्वभाव कुछ कठोर जान पड़ता है, जिनके शरीरका रङ्ग कुछ पीला है, जो अत्यन्त तीव्र और महान् सामर्थ्यशाली प्रतीत होते हैं तथा जिन्होंने श्रेष्ठ

---

* ब्रह्मचर्येण तपसा मखपञ्चकवर्तनैः।
दानेन नियमैश्चापि क्षमाशौचेन वल्लभ॥
अहिंसया सुशक्त्या च ह्यस्तेयेनापि वर्तनैः।
एतैर्दशभिरङ्गैस्तु धर्ममेव प्रपूरयेत्॥
(१२। ४४-४५)

ब्राह्मणका रूप धारण कर हाथमें तलवार ले रखी है, वे पापोंका नाश करनेवाले 'नियम' हैं। जो अत्यन्त श्वेत और महान् दीप्तिमान् हैं, जिनके शरीरका रंग शुद्ध स्फटिक मणिके समान जान पड़ता है, जिनके हाथमें जलसे भरा कमण्डलु है तथा जिन्होंने दाँतन ले रखी है, वे 'शौच' ही यहाँ ब्राह्मणका रूप धारण करके आये हैं।

स्त्रियोंमें यह शुश्रूषा है, जो सत्यसे विभूषित, परम सौभाग्यवती और अत्यन्त साध्वी है। जिसका स्वभाव अत्यन्त धीर है, जिसके सारे अङ्गोंसे प्रसन्नता टपक रही है, जिसका रंग गोरा और मुखपर हास्यकी छटा छा रही है, वह कमललोचना सरस्वती है। द्विजश्रेष्ठ! यह दिव्य आभूषणोंसे युक्त क्षमा उपस्थित है, जो परम शान्त, सुस्थिर और अनेकों मङ्गलमय विधानोंसे सुशोभित है। महाप्राज्ञ! तुम्हारी ज्ञानस्वरूपा शान्ति भी दिव्य आभूषणोंसे विभूषित होकर यहाँ आयी है। यह तुम्हारी प्रज्ञा है, जो परोपकारमें संलग्न, सत्यपरायण तथा स्वल्प भाषण करनेवाली है। यह क्षमाके साथ बड़ी प्रसन्न रहती है। इस यशस्विनीके शरीरका वर्ण श्याम है। जिसका शरीर तपाये हुए सोनेके समान उद्दीप्त दिखायी दे रहा है, वह महाभागा अहिंसा है। यह अत्यन्त प्रसन्न और अच्छी मन्त्रणासे युक्त है। यह यत्र-तत्र दृष्टि नहीं डालती। ज्ञानभावसे आक्रान्त हो सदा तपस्यामें लगी रहती है। महाभाग! यह देखिये—आपकी श्रद्धा भी आयी है, जो नाना प्रकारकी बुद्धिसे आक्रान्त और अनेकों ज्ञानोंसे आकुल होनेपर भी सुस्थिर है। यह श्रद्धा मनोहर और मङ्गलमयी है। सबका शुभ चिन्तन करनेवाली, सम्पूर्ण जगत्‌की माता, यशस्विनी तथा गौरवर्णा है। इधर यह मेधा उपस्थित है, जिसके शरीरका रंग हंस और चन्द्रमाके समान श्वेत है, गलेमें मोतियोंका हार लटक रहा है और हाथमें पुस्तक तथा स्फटिकाक्षकी माला शोभा पा रही है। यह प्रज्ञा है, जो सदा ही अत्यन्त प्रसन्न रहा करती है; यह प्रज्ञादेवी पीत वस्त्रसे शोभा पा रही है। द्विजश्रेष्ठ! जो त्रिभुवनका उपकार और पोषण करनेमें अद्वितीय है, जिसके शीलकी सदा ही प्रशंसा होती रहती है, वह दया भी आपके पास आयी है। यह वृद्धा, परम विदुषी, तपस्विनी, भावकी भार्या और मेरी माता है। सुव्रत! मैं आपका मूर्तिमान् धर्म हूँ। ऐसा समझकर शान्त होइये। मेरी रक्षा कीजिये। विप्रवर! आप कुपित क्यों हो रहे हैं?

दुर्वासाने कहा—देव! जिससे मुझे क्रोध हुआ है, वह कारण सुनिये। मैंने इन्द्रियसंयम और शौच आदि क्लेशमय साधनोंद्वारा अपने शरीरका शोधन किया तथा तपस्या की; किन्तु ऐसा करनेपर भी देख रहा हूँ—केवल मेरे ही ऊपर आपकी दया नहीं हो रही है। धर्मराज! मैं आपके इस बर्तावको न्याययुक्त नहीं मानता। यही मेरे क्रोधका कारण है, दूसरा कुछ नहीं; इसलिये मैं आपको तीन शाप दूँगा।

'धर्म! अब आप राजा और दासीपुत्र होइये। साथ ही स्वेच्छानुसार चाण्डाल-योनिमें भी प्रवेश कीजिये।' इस प्रकार तीन शाप देकर द्विजश्रेष्ठ दुर्वासा चले गये।

सोमशर्माने पूछा—भामिनि! महात्मा दुर्वासाका शाप पाकर धर्मकी क्या अवस्था हुई? उन शापोंका उपभोग उन्होंने किस प्रकार किया? यदि जानती हो तो बताओ।

सुमना बोली—प्राणनाथ! धर्मने भरतवंशमें राजा युधिष्ठिरके रूपमें जन्म ग्रहण किया। दासीपुत्र होकर जब वे उत्पन्न हुए, तब विदुर नामसे उनकी प्रसिद्धि हुई। अब तीसरे शापका उपभोग बतलाती हूँ—जिस समय महर्षि विश्वामित्रने राजा हरिश्चन्द्रको बहुत कष्ट पहुँचाया, उस समय परम बुद्धिमान् धर्म चाण्डालके स्वरूपको प्राप्त हुए थे।

सुमनाके द्वारा ब्रह्मचर्य, साङ्गोपाङ्ग धर्म तथा धर्मात्मा और पापियोंकी मृत्युका वर्णन

सोमशर्माने कहा—भामिनि! ब्रह्मचर्यके लक्षणका विस्तारपूर्वक वर्णन करो।

सुमना बोली—नाथ! सदा सत्यभाषणमें जिसका अनुराग है, जो पुण्यात्मा होकर साधुताका आश्रय लेता है, ऋतुकाल प्राप्त होनेपर अपनी स्त्रीके साथ समागम करता है, स्वयं दोषोंसे दूर रहता है और अपने कुलके सदाचारका कभी त्याग नहीं करता, वही सच्चा ब्रह्मचारी है। द्विजश्रेष्ठ! यह मैंने गृहस्थके ब्रह्मचर्यका वर्णन किया है। यह ब्रह्मचर्य गृहस्थ पुरुषोंको सदा मुक्ति प्रदान करनेवाला है। अब मैं यतियों (संन्यासियों)के ब्रह्मचर्यका वर्णन करूँगी, आप ध्यान देकर सुनें। यतिको चाहिये कि वह इन्द्रियसंयम और सत्यसे युक्त हो पापसे सदा डरता रहे तथा स्त्रीके सङ्गका परित्याग करके ध्यान और

ज्ञानमें निरन्तर संलग्न रहे। यह यतियोंका ब्रह्मचर्य बतलाया गया। अब आपके समक्ष वानप्रस्थके ब्रह्मचर्यका वर्णन करती हूँ, सुनिये। वानप्रस्थीको सदाचारसे रहना और काम क्रोधका परित्याग करना चाहिये। वह उञ्छवृत्तिसे जीविका चलाये और प्राणियोंके उपकारमें संलग्न रहे। यह वानप्रस्थका ब्रह्मचर्य बताया गया।

अब सत्यका वर्णन करती हूँ। जिसकी बुद्धि पराये धन और परायी स्त्रियोंको देखकर लोलुपतावश उनके प्रति आसक्त नहीं होती, वही पुरुष सत्यनिष्ठ कहा गया है। अब दानका वर्णन करती हूँ, जिससे मनुष्य जीवित रहता है। भूखसे पीड़ित मनुष्यको भोजनके लिये अन्न अवश्य देना चाहिये। उसको देनेसे महान् पुण्य होता है तथा दाता मनुष्य सदा अमृतका उपभोग करता है। अपने वैभवके अनुसार प्रतिदिन कुछ-न कुछ दान करना चाहिये। सहानुभूतिपूर्ण वचन, तृण, शय्या, घरकी शीतल छाया, पृथ्वी, जल, अन्न, मीठी बोली, आसन, वस्त्र या निवासस्थान और पैर धोनेके लिये जल—ये सब वस्तुएँ जो प्रतिदिन अतिथिको निष्कपट भावसे अर्पण करता है, वह इहलोक और परलोकमें भी आनन्दका अनुभव करता है। जो दान और स्वाध्याय आदि शुभ कर्मोंके द्वारा अपने प्रत्येक दिनको सफल बनाता है, वह इस जगत्‌में मनुष्य होकर भी देवता ही है—इसमें तनिक भी सन्देहकी बात नहीं है।

अब मैं साङ्गोपाङ्ग धर्मके साधनभूत उत्तम नियमोंका वर्णन करती हूँ। जो देवताओं और ब्राह्मणोंकी पूजामें संलग्न रहता है, नित्य निरन्तर शौच, सन्तोष आदि नियमोंका पालन करता है तथा दान, व्रत और सब प्रकारके परोपकारी कार्योंमें योग देता है, उसके इस कार्यको नियम कहा गया है। द्विजश्रेष्ठ! अब मैं क्षमाका स्वरूप बतलाती हूँ, सुनिये। दूसरोंद्वारा की हुई अपनी निन्दा सुनकर अथवा किसीके द्वारा मार खाकर भी जो क्रोध नहीं करता और स्वयं मार खाकर भी मारनेवाले व्यक्तिको नहीं मारता, वह क्षमाशील कहलाता है। अब शौचका वर्णन करती हूँ। जो राग द्वेषसे रहित होकर प्रतिदिन स्नान और आचमन आदिका व्यवहार करता है और इस प्रकार जो बाहर तथा भीतरसे भी शुद्ध है, उसे शौचयुक्त (पवित्र) माना गया है। अब मैं अहिंसाका रूप बतलाती हूँ। विज्ञ पुरुषको किसी विशेष आवश्यकताके बिना एक तिनका भी नहीं तोड़ना चाहिये। संयमके साथ रहकर प्रत्येक जीवकी हिंसासे दूर रहना चाहिये और अपने प्रति जैसे बर्तावकी इच्छा होती है, वैसा ही बर्ताव दूसरोंके साथ स्वयं भी करना चाहिये। अब शान्तिके स्वरूपका वर्णन करती हूँ। शान्तिसे सुखकी प्राप्ति होती है। अतः शान्तिपूर्ण आचरण अपना कर्तव्य है। कभी खिन्न नहीं होना चाहिये। प्राणियोंके साथ वैरभावका सर्वथा परित्याग करके मनमें भी कभी वैरका भाव नहीं आने देना चाहिये। अब अस्तेयका स्वरूप बतलाती हूँ। परधन और परस्त्रीका कदापि अपहरण न करे। मन, वाणी तथा शरीरके द्वारा भी कभी किसी दूसरेकी वस्तु लेनेकी चेष्टा न करे। अब दमका वर्णन करती हूँ। इन्द्रियोंका दमन करके मनके द्वारा उन्हें प्रकाश देते रहना और उनकी चञ्चलताका नाश करना चाहिये। इससे मनुष्यमें चेतनाका विकास होता है। अब मैं शुश्रूषाका स्वरूप बतलाती हूँ। मन, वाणी और शरीरसे गुरुके कार्य-साधनमें लगे रहना शुश्रूषा है। द्विजश्रेष्ठ! इस प्रकार मैंने आपसे धर्मका साङ्गोपाङ्ग वर्णन किया। जो मनुष्य ऐसे धर्ममें सदा संलग्न रहता है, उसे संसारमें पुनः जन्म नहीं लेना पड़ता—यह मैं आपसे सच सच कह रही हूँ। महामते! यह जानकर आप धर्मका अनुसरण करें।

सोमशर्माने पूछा—देवि! तुम्हारा कल्याण हो, तुम इस प्रकार धर्मकी परम पुण्यमयी उत्तम व्याख्या कैसे जानती हो? किसके मुँहसे तुमने यह सब सुना है?

सुमना बोली—महामते! मेरे पिताका जन्म भार्गव वंशमें हुआ है। वे सम्पूर्ण शास्त्रोंके ज्ञानमें निपुण हैं। उनका नाम है महर्षि च्यवन। मैं उन्हींकी कन्या हूँ। वे मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय मानते थे। जिस जिस तीर्थ, मुनि समाज अथवा देवालयमें वे जाते, मैं भी उनके साथ वहाँ जाया करती थी। मेरे पिताजीके एक मित्र हैं, जिनका नाम है वेदशर्मा। कौशिकवंशमें उनका जन्म हुआ है। एक दिन वे घूमते घामते पिताजीके पास आये। उस समय वे बहुत दुःखी थे और बारबार चिन्तामग्न हो जाते थे। तब उनसे मेरे पिताने कहा—'सुव्रत! मालूम होता है आप किसी दुःखसे सन्तप्त हैं। आपको दुःख कैसे प्राप्त हुआ है, मुझे इसका कारण बतलाइये।' यह सुनकर वेदशर्माने कहा—'मेरी स्त्री बड़ी साध्वी और पतिव्रता है, किन्तु अबतक उसे कोई पुत्र नहीं हुआ। मेरा वंश चलानेवाला कोई नहीं है। यही मेरे दुःखका कारण है; आपने पूछा था, इसलिये बताया है।'

इसी बीचमें कोई सिद्ध पुरुष मेरे पिताके आश्रमपर आये। पिताजी और वेदशर्मा दोनोंने खड़े होकर भक्ति पूर्वक सिद्धका पूजन किया। भोजन आदि उपचारों और

मीठे वचनोंसे उनका स्वागत किया। फिर आपने पहले जिस प्रकार प्रश्न किया था, उसी प्रकार उन दोनोंने भी सिद्धसे अपने मनकी बात पूछी। तब धर्मात्मा सिद्धने मेरे पिता और उनके मित्रसे इस प्रकार कहा—'धर्मके अनुष्ठानसे ही स्त्री, पुत्र और धन-धान्यकी प्राप्ति होती है।' उनके उपदेशसे वेदशर्माने धर्मका अनुष्ठान पूरा किया। उस धर्मसे उन्हें महान् सुख और सुयोग्य पुत्रकी प्राप्ति हुई। उन सिद्ध महात्माके सत्सङ्गसे ही धर्मके विषयमें मेरी बुद्धिका ऐसा निश्चय हुआ है।

सोमशर्माने पूछा—प्रिये! धर्मसे कैसी मृत्यु और कैसा जन्म होता है? शास्त्रके अनुसार उस मृत्यु और जन्मका लक्षण जैसा निश्चित किया गया हो, वह सब मुझे बताओ।

सुमना बोली—प्राणनाथ! जिसने सत्य, शौच, क्षमा, शान्ति, तीर्थ और पुण्य आदिके द्वारा धर्मका पालन किया है, उसकी मृत्युका लक्षण बतलाती हूँ। धर्मात्मा पुरुषको मृत्युके समय कोई रोग नहीं होता, उसके शरीरमें कोई पीड़ा नहीं होती; श्रम, ग्लानि, स्वेद और भ्रान्ति आदि उपद्रव भी नहीं होते। गीत-ज्ञान-विशारद दिव्यरूपधारी गन्धर्व और वेदपाठी ब्राह्मण उसके पास आकर मनोहर स्तुति किया करते हैं। वह स्वस्थ रहकर सुखदायक आसनपर विराजमान होता है। अथवा देवपूजामें बैठा होता है। ऐसा भी हुआ करता है कि धर्मपरायण बुद्धिमान् पुरुष [मृत्युकालमें] स्नानके लिये तीर्थ-स्थानमें पहुँचा हो। अग्निहोत्र-गृह, गोशाला, देवमन्दिर, बगीचा, पोखरा, पीपल या बड़का वृक्ष तथा पाकर अथवा बेलका पेड़—ये मृत्युके लिये पवित्र स्थान माने गये हैं। धर्मात्मा पुरुष धर्मराजके दूतोंको प्रत्यक्ष देखता है। वे स्नेहसे युक्त और मुसकराते हुए दिखायी देते हैं। वह मरनेवाला जीव स्वप्न, मोह तथा क्लेशके अधीन नहीं होता। धर्मराजके दूत उससे कहते हैं—'महाभाग! परम बुद्धिमान् धर्मराज आपको बुला रहे हैं।' दूतोंकी यह बात सुनकर उसे मोह और सन्देह नहीं होता। उसका चित्त प्रसन्न हो जाता है। वह ज्ञान-विज्ञानसे सम्पन्न हो भगवान् श्रीविष्णुका स्मरण करता है और संतुष्ट एवं हृष्टचित्त होकर उन दूतोंके साथ चला जाता है।

सोमशर्माने पूछा—भद्रे! पापियोंकी मृत्यु किन लक्षणोंसे युक्त होती है, इसका विस्तारके साथ वर्णन करो।

सुमना बोली—प्राणनाथ! सुनिये, मैं महापातकी मनुष्योंकी मृत्युके स्थान और चेष्टाका वर्णन करती हूँ। दुष्टात्मा पुरुष विष्ठा और मूत्र आदि अपवित्र वस्तुओंसे युक्त और पापियोंसे भरे हुए भूभागमें रहकर बड़े दुःखसे प्राण त्याग करता है। चाण्डालके स्थानपर जाकर दुःखपूर्वक मरता है। गदहोंसे घिरी हुई भूमिमें, वेश्याके भवनमें तथा चमारके घरमें जाकर वह मृत्युको प्राप्त होता है। हड्डी, चमड़े और नखोंसे भरी हुई पृथ्वीपर पहुँचकर दुष्टात्मा पुरुषकी मृत्यु होती है। अब मैं उसे ले जानेकी इच्छासे आये हुए यमदूतोंकी चेष्टाका वर्णन करती हूँ। वे अत्यन्त भयानक, घोर और दारुण रूप धारण किये आते हैं। उनके शरीर अत्यन्त काले, पेट लंबे-लंबे और आँखें कुछ-कुछ पीली होती हैं। कोई पीले, कोई नीले और कोई अत्यन्त सफेद होते हैं। पापी मनुष्य उन्हें देखकर काँप उठता है, उसके शरीरसे बारंबार पसीना छूटने लगता है।

अब मैं दुखी जीवकी चेष्टा बताती हूँ। लोभ और स्वादसे मोहित होकर पापी पुरुष जो पराये धन और परायी स्त्रियोंका अपहरण किये रहते हैं, पहले दूसरेसे ऋण लेकर बादमें उसे चुका नहीं पाते तथा असत्प्रतिग्रह आदि जो अन्य बड़े-बड़े पाप किये रहते हैं—सारांश यह कि मृत्युसे पहले वे जितने भी पापोंका आचरण किये रहते हैं, वे सभी महापापीके कण्ठमें आकर उसके कफको रोक देते और दुःसह दुःख पहुँचाते हैं। असह्य पीडाओंसे उसका कण्ठ घरघराने लगता है। वह बारंबार रोता और माता, पिता, भाई, पत्नी तथा पुत्रोंका स्मरण करता है। फिर महापापसे मोहित होकर वह सबको भूल जाता है। अत्यन्त पीडासे व्याकुल होनेपर भी उसके प्राण शीघ्रतापूर्वक नहीं निकलते। वह काँपता, तलमलाता और रह-रहकर मूर्च्छित हो जाता है। इस प्रकार लोभ और मोहसे युक्त मनुष्य सदा मूर्च्छित होकर ही प्राण त्यागता है। तत्पश्चात् यमराजके दूत उसे यमलोकमें ले जाते हैं।

उस समय उसको जो दुःख भोगना पड़ता है, उसका वर्णन करती हूँ। जहाँ ढेर-के-ढेर अंगारे बिछे होते हैं, उस मार्गपर पापीको घसीटते हुए ले जाया जाता है। वहाँ वह दुष्टात्मा जीव बारंबार आगमें जलता और छटपटाया करता है। जहाँ बारह सूर्योंके तापसे युक्त अत्यन्त तीव्र धूप पड़ती है, उसी मार्गसे उसे पहुँचाया जाता है। वहाँ वह सूर्यकी प्रचण्ड किरणोंसे संतप्त और भूख-प्याससे पीड़ित होता रहता है। यमदूत उसे

गदा, डंडे और फरसोंसे मारते, कोड़ोंसे पीटते तथा गालियाँ सुनाते हैं। तदनन्तर वे पापीको उस मार्गपर ले जाते हैं, जहाँ जाड़ा अधिक पड़ता है और ठंडी हवाका झोंका सहना पड़ता है। पापी पुरुष शीतसे पीड़ित होकर उस मार्गको तय करता है; यमदूत उसे घसीटते हुए नाना प्रकारके दुर्गम स्थानोंमें ले जाते हैं। इस प्रकार देवता और ब्राह्मणोंकी निन्दा करनेवाले, सम्पूर्ण पापोंसे युक्त दुरात्मा पापी पुरुषको यमराजके दूत यमलोकमें ले जाते हैं।

वहाँ पहुँचकर वह दुरात्मा यमराजको काले अञ्जनकी राशिके समान देखता है। वे उग्र, दारुण और भयङ्कर रूप धारण किये भैंसेपर सवार दिखायी देते हैं। अनेकों यमदूत उन्हें घेरे खड़े रहते हैं। उनके साथ सब प्रकारके रोग और चित्रगुप्त भी उपस्थित होते हैं। द्विजश्रेष्ठ! उस समय भगवान् धर्मराजका मुख विकराल दाढ़ोंके कारण अत्यन्त भयानक और कालके समान प्रतीत होता है। यमराज धर्ममें बाधा डालनेवाले उस महापापी दुष्टको देखते और अत्यन्त दुःखदायी, दुस्सह अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा पीड़ा पहुँचाते हुए उसे कठोर दण्ड देते हैं। वह पापी एक हजार युगोंतक नाना प्रकारकी यातनाओंमें पकाया जाता है। इस प्रकार दुष्ट बुद्धिवाला पापात्मा मनुष्य अपने पापका उपभोग करता है। तत्पश्चात् वह जिन जिन योनियोंमें जन्म लेता है, उसका भी वर्णन करती हूँ। कुछ कालतक कुत्तेकी योनिमें रहकर वह दुरात्मा अपना पाप भोगता है। उसके बाद व्याघ्र और फिर गदहा होता है। तदनन्तर बिलाव, सूअर और साँपकी योनिमें जन्म लेता है। इस तरह अनेक भेदोंवाली सम्पूर्ण पापयोनियोंमें उसे बारंबार जन्म लेना पड़ता है। इस प्रकार मैंने आपसे पापियोंके जन्मका सारा वृत्तान्त भी बतला दिया।

वसिष्ठजीके द्वारा सोमशर्माके पूर्वजन्म-सम्बन्धी शुभाशुभ कर्मोंका वर्णन तथा उन्हें भगवान्‌के भजनका उपदेश

सोमशर्माने पूछा—कल्याणी! मैं किस प्रकार सर्वज्ञ और गुणवान् पुत्र प्राप्त कर सकूँगा?

सुमना बोली—स्वामिन्! आप महामुनि वसिष्ठजीके पास जाइये; वे धर्मके ज्ञाता हैं, उन्हींसे प्रार्थना कीजिये। उनसे आपको धर्मज्ञ एवं धर्मवत्सल पुत्रकी प्राप्ति होगी।

सूतजी कहते हैं—पत्नीके यों कहनेपर द्विजश्रेष्ठ सोमशर्मा सब बातोंके जाननेवाले, तेजस्वी और तपस्वी महात्मा वसिष्ठजीके पास गये। वे गङ्गाजीके तटपर स्थित अपने पवित्र आश्रममें विराजमान थे। सोमशर्माने बड़ी भक्तिके साथ बारंबार उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया। सब पापरहित महातेजस्वी ब्रह्मपुत्र वसिष्ठजी उनसे बोले—'महामते! इस पवित्र आसनपर सुखसे बैठो।' यह कहकर उन योगीश्वरने पूछा—'महाभाग! तुम्हारे पुण्यकर्म और अग्निहोत्र आदि कार्य कुशलसे हो रहे हैं न? शरीरसे तो नीरोग रहते हो न? धर्मका पालन तो सदा करते ही होगे। द्विजश्रेष्ठ! बताओ, मैं तुम्हारी कौन-सी प्रिय कामना पूर्ण करूँ?' इस प्रकार संभाषण करके वसिष्ठजी चुप हो गये। तब सोमशर्माने कहा—'तात! किस पापके कारण मुझे दरिद्रताका कष्ट भोगना पड़ता है? मुझे पुत्रका सुख क्यों नहीं मिलता, इस बातका मेरे मनमें बड़ा सन्देह है। किस पापसे ऐसा हो रहा है, यह बताइये। महामते! मैं महान् पापसे मोहित एवं विवेकशून्य हो गया था, अपनी प्यारी पत्नीके समझाने और भेजनेसे आज आपके पास आया हूँ।'

वसिष्ठजीने कहा—द्विजश्रेष्ठ! मैं तुम्हारे सामने पुत्रके पवित्र लक्षणका वर्णन करता हूँ। जिसका मन पुण्यमें आसक्त हो, जो सदा सत्यधर्मके पालनमें तत्पर रहता हो और जो बुद्धिमान्, ज्ञानसम्पन्न, तपस्वी, वक्ताओंमें श्रेष्ठ, सब कर्मोंमें कुशल, धीर, वेदाध्ययनपरायण, सम्पूर्ण शास्त्रोंका वक्ता, देवता और ब्राह्मणोंका पुजारी, समस्त यज्ञोंका अनुष्ठान करनेवाला, ध्यानी, त्यागी, प्रिय वचन बोलनेवाला, भगवान् श्रीविष्णुके ध्यानमें तत्पर, नित्य शान्त, जितेन्द्रिय, सदा जप करनेवाला, पितृभक्तिपरायण, सदा समस्त स्वजनोंपर स्नेह रखनेवाला, कुलका उद्धारक, विद्वान् तथा कुलको सन्तुष्ट करनेवाला हो—ऐसे गुणोंसे युक्त उत्तम पुरुष ही सुख देनेवाला होता है। इसके सिवा दूसरे तरहके पुत्र सम्बन्ध जोड़कर केवल शोक और सन्ताप देते हैं। ऐसा पुत्र किस कामका। उसके होनेसे कोई लाभ नहीं है।

महाप्राज्ञ! तुम पूर्वजन्ममें शूद्र थे। तुम्हें धर्माधर्मका

ज्ञान नहीं था; तुम बड़े लोभी थे। तुम्हारे एक स्त्री और बहुत-से पुत्र थे। तुम दूसरोंके साथ सदा द्वेष रखते थे। तुमने सत्यका कभी श्रवण नहीं किया था। तीर्थोंकी यात्रा नहीं की थी। महामते! तुमने एक ही काम किया था—खेती करना। बार-बार तुम उसीमें लगे रहते थे। द्विजश्रेष्ठ! तुम पशुओंका पालन भी करते थे। पहले गाय पालते थे, फिर भैंस और घोड़ोंको भी पालने लगे। तुमने अन्नको बहुत महँगा कर रखा था। तुम इतने निर्दयी थे कि कभी किसीको किञ्चित् भी दान नहीं किया। देवताओंकी पूजा नहीं की। पर्व आनेपर ब्राह्मणोंको धन नहीं दिया तथा श्राद्धकाल उपस्थित होनेपर भी तुमने श्रद्धापूर्वक कुछ नहीं किया। तुम्हारी साध्वी स्त्री कहती थी—'आज श्राद्धका दिन है। यह श्वशुरके श्राद्धका समय है और यह सासके।' महामते! उसकी ये बातें सुनकर तुम घर छोड़ कहीं अन्यत्र भाग जाते थे। तुमने धर्मका मार्ग न कभी देखा था, न सुना ही था। लोभ ही तुम्हारी माता, लोभ ही पिता, लोभ ही भ्राता और लोभ ही स्वजन एवं बन्धु था। तुमने सदाके लिये धर्मको तिलाञ्जलि देकर एकमात्र लोभका ही आश्रय लिया था; इसीलिये तुम दुःखी और गरीबीसे पीड़ित हुए हो।

तुम्हारे हृदयमें प्रतिदिन महातृष्णा बढ़ती जाती थी। रातमें सो जानेपर भी तुम सदा धनकी ही चिन्तामें लगे रहते थे। इस प्रकार क्रमशः हजार, लाख, करोड़, अरब, खरब और दस खरब सोनेकी मुहरें तुम्हें प्राप्त हो गयीं; फिर भी तृष्णा तुम्हारा पिंड नहीं छोड़ती थी। वह सदा बढ़ती ही रहती थी। तुमने कभी दान, होम या धनका उपभोग भी नहीं किया। जितना कमाया, सब जमीनके अंदर गाड़ दिया। तुम्हारे पुत्रोंको भी उस गड़े हुए धनका पता न था। तुम्हारे हृदयमें तृष्णाकी आग प्रज्वलित होती रहती थी। उसीके दुःखसे तुम्हें कभी सुख नहीं मिलता था। तृष्णाकी आगसे संतप्त होकर तुम हाहाकार मचाते और अचेत रहते थे। विप्रवर! इस प्रकार मोहमें पड़े-पड़े ही तुम कालके अधीन हो गये। स्त्री और पुत्र पूछते ही रह गये; किन्तु तुमने उन्हें न तो उस धनका पता बताया और न उन्हें दिया ही। तुम प्राण त्यागकर यमलोकमें चले गये। इस प्रकार मैंने तुम्हारे पूर्वजन्मका सारा वृत्तान्त कह सुनाया।

विप्रवर! उसी कर्मके कारण तुम निर्धन और दरिद्र हो। जिसके ऊपर भगवान् श्रीविष्णु प्रसन्न होते हैं, उसीके घरमें सदा सुशील, ज्ञानी और सत्यधर्मपरायण पुत्र होते हैं। संसारमें जिसको भक्तिमान् श्रेष्ठ पुत्रकी प्राप्ति हुई है, वह भगवान्‌का कृपापात्र है। भगवान् श्रीविष्णुकी कृपाके बिना कोई भी स्त्री, पुत्र, उत्तम जन्म तथा उत्तम कुलको और श्रीविष्णुके परम धामको नहीं पा सकता।

सोमशर्माने पूछा—ज्ञान-विज्ञानके पण्डित विप्रवर वसिष्ठजी! यदि ऐसी बात है तो मुझे ब्राह्मण-वंशमें जन्म कैसे मिला? इसका सारा कारण बतलाइये।

वसिष्ठजी बोले—ब्रह्मन्! पूर्वजन्ममें तुम्हारे द्वारा एक धर्मसम्बन्धी कार्य भी बन गया था, उसे बताता हूँ; उन दिनों एक निष्पाप, सदाचारी, अच्छे विद्वान्, विष्णुभक्त और धर्मात्मा ब्राह्मण थे, जो तीर्थ-यात्राके व्याजसे समूची पृथ्वीपर अकेले विचरण किया करते थे। एक दिन वे महामुनि घूमते-घामते तुम्हारे घरपर आये। द्विजश्रेष्ठ! उस समय उन्होंने अपने ठहरनेके लिये तुमसे कोई स्थान माँगा। तुम बड़ी प्रसन्नताके साथ बोले—'विद्वन्! अहा, आज मैं धन्य हो गया। आज मैंने पावन तीर्थकी यात्रा कर ली तथा इस समय मुझे आपके दर्शनसे तीर्थसेवनका फल प्राप्त हो गया।' यह कहकर तुमने उन्हें ठहरनेके लिये परम पवित्र गोशालाका स्थान दिखलाया और वहाँ ठहराकर उनके शरीरकी सेवा करके दोनों पैरोंको भी दबाया। फिर उनके चरणोंको जलसे धोकर चरणोदकसे अपने मस्तकका अभिषेक किया। तत्पश्चात् तुरंत ही दूध, दही, घी और मट्ठेके साथ उन ब्राह्मण-देवताको अन्न अर्पण किया।

महामते! इस प्रकार अपनी स्त्रीसहित सेवा करके तुमने ब्राह्मणको बहुत सन्तुष्ट कर लिया। दूसरे दिन प्रातःकाल अत्यन्त शुभकारक पुण्य दिवस आया। उस दिन शुद्ध आषाढ मासकी शुक्ला द्वादशी थी, जो सब पापोंका नाश करनेवाली है; उसी तिथिको भगवान् श्रीविष्णु योगनिद्राका आश्रय लेते हैं। वह तिथि आनेपर बुद्धिमान् और विद्वान् पुरुष घरके सारे काम छोड़कर भगवान् श्रीविष्णुके ध्यानमें संलग्न हो गये। गीत और मङ्गल-वाद्योंके द्वारा परम उत्सव मनाने लगे। समस्त ब्राह्मण वेदके सूक्तों और मङ्गलमय स्तोत्रोंद्वारा भगवान्‌की स्तुति करने लगे। ऐसे महोत्सवका अवसर पाकर वे श्रेष्ठ ब्राह्मण उस दिन वहीं ठहर गये। उन्होंने एकादशीका व्रत किया और उसका माहात्म्य भी पढ़कर सुनाया। तुमने अपनी स्त्री और पुत्रोंके साथ एकादशीसे होनेवाले उत्तम पुण्यका वर्णन सुना। उस महापुण्यमय प्रसङ्गको सुनकर स्त्री और पुत्रोंसे प्रेरित हो ब्राह्मणके संसर्गसे तुमने भी एकादशी-व्रतका आचरण किया। स्त्री

पुत्रोंके साथ आकर प्रातःकाल स्नान किया और प्रसन्न मनसे गन्ध पुष्प आदि पवित्र उपचारों तथा सब प्रकारके नैवेद्योंद्वारा भगवान् श्रीमधुसूदनकी पूजा की। फिर नृत्य और गीत आदिके द्वारा उत्सव मनाते हुए रात्रिमें जागरण किया। तत्पश्चात् भगवान्‌को स्नान कराकर भक्तिके साथ बारंबार उनके चरणोंमें मस्तक झुकाया और महात्मा ब्राह्मणके दिये हुए भगवान्‌के चरणोदकका पान किया, जो परम शान्ति प्रदान करनेवाला है। इसके बाद ब्राह्मणको भक्तिपूर्वक प्रणाम करके तुमने उन्हें उत्तम दक्षिणा दी और पुत्र एवं पत्नी आदिके साथ व्रतका पारण किया। इस प्रकार भक्ति और श्रद्धाके द्वारा तुमने ब्राह्मणको भलीभाँति प्रसन्न कर लिया। अतः ब्राह्मणके सङ्ग और भगवान् श्रीविष्णुके प्रसादसे सत्यधर्ममें स्थित होनेके कारण तुम्हें ब्राह्मणका शरीर प्राप्त हुआ है।

तुमने धनके लालचमें आकर पुत्रका स्नेह त्याग दिया। उसी पापका यह फल है कि तुम पुत्रहीन हो गये। विप्रवर! उत्तम पुत्र, उत्तम कुल, धन, धान्य, पृथ्वी, स्त्री, उत्तम जन्म, श्रेष्ठ मृत्यु, सुन्दर भोग, सुख, राज्य, स्वर्ग तथा मोक्ष आदि जो-जो दुर्लभ वस्तुएँ हैं, वे सभी परमात्मा भगवान् श्रीविष्णुकी कृपासे प्राप्त होती हैं। इसलिये अबसे भगवान् नारायणकी आराधना करके तुम उस उत्कृष्ट पदको प्राप्त कर सकोगे, जो श्रीविष्णुका परमपद कहलाता है। महाभाग! यह जानकर तुम श्रीनारायणके भजनमें लग जाओ।

सूतजी कहते हैं—वसिष्ठजीके द्वारा इस प्रकार समझाये जानेपर वे महानुभाव ब्राह्मण हर्षमें भर गये और भक्तिपूर्वक महर्षि वसिष्ठके चरणोंमें प्रणाम करके उनकी आज्ञा ले अपने घरको पधारे। वहाँ पहुँचकर अपनी स्त्री सुमनासे प्रसन्नतापूर्वक बोले—'प्रिये! तुम्हारी कृपासे ब्रह्मर्षि वसिष्ठजीके द्वारा ही मुझे अपने पूर्वजन्मकी सारी चेष्टाएँ ज्ञात हो गयीं।'



सोमशर्माके द्वारा भगवान् श्रीविष्णुकी आराधना, भगवान्‌का उन्हें दर्शन देना तथा सोमशर्माका उनकी स्तुति करना



सूतजी कहते हैं—तदनन्तर, सत्पुरुषोंमें श्रेष्ठ महाबुद्धिमान् सोमशर्मा अपनी स्त्री सुमनाके साथ नर्मदाके अत्यन्त पुण्यदायक तटपर गये और कपिला-सङ्गम नामक पुण्यतीर्थमें नहाकर देवताओं तथा पितरोंका तर्पण करके शान्तचित्तसे भगवान् नारायणके मङ्गलमय नामका जप करते हुए तपस्या करने लगे। महामना सोमशर्मा द्वादशाक्षर मन्त्रका जप और भगवान्‌का ध्यान करते थे। वे सदा निश्चिन्त होकर बैठने, सोने, चलने और स्वप्नके समय भी केवल भगवान् श्रीविष्णुकी ओर ही दृष्टि रखते थे। उन्होंने काम क्रोधका परित्याग कर दिया था। साथ ही पातिव्रत्य धर्ममें तत्पर रहने वाली परम सौभाग्यवती सती-साध्वी सुमना भी अपने तपस्वी पतिकी सेवामें लगी रहती थी। सोमशर्मा जब भगवान्‌का ध्यान करने लगे, उस समय अनेक प्रकारके विघ्नोंने सामने आकर उन्हें भय दिखाया। भयंकर विषवाले काले साँप उनके पास पहुँच जाते थे। सिंह, बाघ और हाथी उनकी दृष्टिमें आकर भय उत्पन्न करते थे। इस प्रकार बड़े-बड़े विघ्नोंसे घिरे रहनेपर भी वे महाबुद्धिमान् धर्मात्मा ब्राह्मण भगवान् श्रीविष्णुके ध्यानसे कभी विचलित नहीं होते थे।



एक दिनकी बात है, एक महाभयानक सिंह भयंकर

गर्जना करता हुआ वहाँ आया; उसे देखकर सोमशर्मा भयसे थर्रा उठे और भगवान् श्रीनरसिंह (विष्णु)का ध्यान करने लगे। इन्द्रनील मणिके समान श्याम विग्रहपर पीताम्बर शोभा पा रहा है। श्रीभगवान्का बल और तेज महान् हैं। वे अपने चारों हाथोंमें क्रमशः शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये हुए हैं। मोतियोंका विशाल हार चन्द्रमाकी भाँति चमक रहा है। उसके साथ ही कौस्तुभ मणि भी भगवान्के श्रीविग्रहको उद्भासित कर रही है। श्रीवत्सका चिह्न वक्षःस्थलकी शोभा बढ़ा रहा है। श्रीभगवान् सब प्रकारके आभूषणोंकी शोभासे सम्पन्न हैं। कमलके समान खिले हुए नेत्र, मुखपर मुसकानकी मनोहर छटा, स्वाभाविक प्रसन्नता और रत्नमय हार उनकी शोभाको दुगुनी कर रहे हैं। इस प्रकार परम शोभायमान भगवान् श्रीविष्णुकी मनोहर झाँकीका सोमशर्माने ध्यान किया।

तत्पश्चात् वे उनकी स्तुति करने लगे—'शरणागतवत्सल श्रीकृष्ण! आप ही मुझे शरण देनेवाले हैं। देवदेवेश्वर! आपको नमस्कार है। जिन परमात्माके उदरमें तीनों लोक और सात भुवन स्थित हैं, उन्हींकी शरणमें मैं आ पड़ा हूँ; भय मेरा क्या करेगा। कृत्या आदि प्रबल विघ्न भी जिनसे भय मानते हैं तथा जो सबको दण्ड देनेमें समर्थ हैं, उन भगवान्के मैं शरणागत हूँ। जो समस्त देवताओं, महाकाय दानवों तथा क्लेश उठानेवाले भक्तोंके भी आश्रय हैं, उन भगवान्की मैं शरणमें आया हूँ। जो भयका नाश करनेके लिये अभयरूप बने हुए हैं और पापोंके नाशके लिये ज्ञानवान् हैं तथा जो ब्रह्मरूपसे एक—अद्वितीय हैं, उन भगवान्की मैं शरणमें हूँ। जो रोगोंका नाश करनेके लिये औषधरूप हैं, जिनमें रोग-शोकका नाम भी नहीं है, जो लौकिक आनन्दसे भी शून्य हैं, उन भगवान्की मैं शरणमें हूँ। जो अविचल लोकोंको भी विचलित कर सकते हैं, उन भगवान्की मैं शरणमें आया हूँ; भय मेरा क्या करेगा। जो समस्त साधुओंका पालन करनेवाले हैं, जिनकी नाभिसे कमलकी उत्पत्ति हुई है तथा जो विश्वात्मा इस विश्वकी सदा ही रक्षा करते हैं, उन भगवान्की मैं शरणमें आया हूँ।

'जो सिंहके रूपमें मेरे सामने उपस्थित होकर भय दिखा रहे हैं, उन भक्तभयहारी भगवान् श्रीनरसिंहजीकी मैं शरणमें आया हूँ। ग्राहसे युद्ध करते समय आपत्तिमें पड़ा हुआ विशालकाय गजराज जिनकी शरणमें आया था और जो गजेन्द्रमोक्षकी लीलामें स्वयं उपस्थित हुए थे, उन शरणागत-वत्सल प्रभुकी मैं शरणमें आया हूँ। हिरण्याक्षका वध करनेवाले भगवान् श्रीवराहकी मैं शरणमें हूँ। ये सब जीव मृत्युका रूप धारण करके मुझे भय दिखा रहे हैं, किन्तु मैं अमृतकी शरणमें पड़ा हूँ। श्रीहरि वेदोंका ज्ञान प्रदान करनेवाले, ब्राह्मण-भक्त, ब्रह्मा तथा ब्रह्मज्ञानस्वरूप हैं; मैं उनकी शरणमें पड़ा हूँ। जो निर्भय, संसारका भय दूर करनेवाले और भयदाता हैं, उन भयरूप भगवान्की मैं शरणमें हूँ; भय मेरा क्या करेगा। जो समस्त पुण्यात्माओंका उद्धार और सम्पूर्ण पापियोंका विनाश करनेवाले हैं, उन धर्मरूप भगवान् श्रीविष्णुकी मैं शरणमें पड़ा हूँ।

'यह परम प्रचण्ड आँधी मेरे शरीरको अत्यन्त पीड़ा दे रही है, मैं इसे भी भगवान्का ही स्वरूप मानकर इसकी शरणमें हूँ; अतः ये भगवान् वायु मुझे सदा ही आश्रय प्रदान करें। अत्यन्त शीत, अधिक वर्षा और दुःसह ताप देनेवाली धूप—इन सबके रूपमें जिन भगवान्का साक्षात्कार हो रहा है, मैं उन्हींकी शरणमें आया हूँ। ये जो कालरूपधारी जीव यहाँ आकर मुझे भय देते हुए विचलित कर रहे हैं, सब-के-सब भगवान् श्रीविष्णुके स्वरूप हैं; मैं सर्वदा इनकी शरणमें हूँ। जिन्हें सर्वदेवस्वरूप, परमेश्वर, केवल, ज्ञानमय और प्रधानरूप बतलाते हैं, उन सिद्धोंके स्वामी आदिसिद्ध भगवान् श्रीनारायणकी मैं शरणमें हूँ।'

इस प्रकार प्रतिदिन भगवान् श्रीकेशवका ध्यान और स्तवन करते हुए सोमशर्माने अपनी भक्तिके बलसे भगवान्को हृदयमें बिठा लिया। उनका उद्यम और पुरुषार्थ देखकर भगवान् श्रीहृषीकेश प्रकट हो गये और उन्हें हर्ष प्रदान करते हुए बोले—'महाप्राज्ञ सोमशर्मन्! अपनी पत्नीके साथ मेरी बात सुनो; विप्रवर! मैं वासुदेव हूँ, सुव्रत! तुम मुझसे कोई उत्तम वर माँगो!' श्रीभगवान्का यह कथन सुनकर द्विजश्रेष्ठ सोमशर्माने अपने नेत्र खोले; देखा तो विश्वके स्वामी श्रीभगवान् दिव्यरूप धारण किये सामने खड़े हैं। उनके शरीरकी कान्ति मेघके समान श्याम है, वे महान् अभ्युदयशाली और सब प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित हैं। सम्पूर्ण आयुध उनकी शोभा बढ़ा रहे हैं। उनका श्रीविग्रह दिव्य लक्षणोंसे सम्पन्न है। नेत्र खिले हुए कमलके समान हैं। पीतवस्त्र श्रीअङ्गोंकी शोभा बढ़ा रहा है। देवेश्वर भगवान् श्रीविष्णु शङ्ख, चक्र और गदा धारण किये गरुड़पर विराजमान हैं। वे इस जगत् तथा ब्रह्मा आदिके भी भलीभाँति भरण-पोषण करनेवाले हैं। यह विश्व उन्हींका स्वरूप है। वे सनातन रूप धारण करनेवाले हैं। वे विश्वसे अतीत, निराकार परमात्मा हैं।

भगवान् श्रीजनार्दनको इस रूपमें उपस्थित देख विप्रवर सोमशर्मा महान् हर्षमें भर गये और करोड़ों सूर्योके समान तेजस्वी एवं लक्ष्मीसहित शोभा पानेवाले श्रीभगवान्‌को साष्टाङ्ग प्रणाम करके दोनों हाथ जोड़े अपनी स्त्री सुमनाके साथ उनकी स्तुति करने लगे—'देव ! जगन्नाथ ! आपकी जय हो, सबको सम्मान देनेवाले लक्ष्मीपते ! आपकी जय हो। योगियोंके स्वामिन् ! योगीन्द्र ! आपकी जय हो। यज्ञके स्वामी हरे ! आपकी जय हो। विष्णुरूपसे यज्ञेश्वर ! और शिवरूपसे यज्ञविध्वंसक ! सनातन और सर्वव्यापक परमेश्वर ! आपकी जय हो, जय हो। सर्वेश्वर ! अनन्त ! आपकी जय हो ! जयस्वरूप प्रभो ! आपको मेरा प्रणाम है। ज्ञानवानोंमें श्रेष्ठ ! आपकी जय हो। ज्ञाननायक ! आपकी जय हो। सब कुछ देनेवाले सर्वज्ञ परमेश्वर ! आपकी जय हो। सत्त्वगुणको उत्पन्न करनेवाले प्रभो ! आपकी जय हो।

'यज्ञव्यापी परमेश्वर ! आप प्रज्ञास्वरूप हैं, आपकी जय हो। प्राण प्रदान करनेवाले प्रभो ! आपकी जय हो। पापनाशक ! पुण्येश्वर ! आपकी जय हो। पुण्यपालक हरे ! आपकी जय हो। ज्ञानस्वरूप ईश्वर ! आपकी जय हो। आप ज्ञानगम्य हैं, आपको नमस्कार है। कमललोचन ! आपकी जय हो। आपकी नाभिसे कमलका प्रादुर्भाव हुआ था; अतः पद्मनाभ नामसे प्रसिद्ध ! आपको प्रणाम है। गोविन्द ! आपकी जय हो। गोपाल ! आपकी जय हो। शङ्ख धारण करनेवाले निर्मल-स्वरूप परमात्मन् ! आपकी जय हो। चक्र धारण करनेवाले अव्यक्तरूप परमेश्वर ! व्यक्तरूपधारी आपको नमस्कार है। प्रभो ! आपके अङ्ग पराक्रमसे शोभा पा रहे हैं, आपकी जय हो। विक्रम नायक ! आपकी जय हो। विद्यासे विलसित रूपवाले देवेश्वर ! आपकी जय हो। वेदमय परमेश्वर ! आपको नमस्कार है। पराक्रमसे सुशोभित अङ्गोंवाले प्रभो ! आपकी जय हो। उद्यम प्रदान करनेवाले देव ! आपकी जय हो। आप ही उद्यमके योग्य समय और उद्यमरूप हैं; आपको बारंबार नमस्कार है। भगवन् ! आप उद्यममें समर्थ हैं, आपकी जय हो। उद्यम करानेवाले भी आप ही हैं, आपकी जय हो। युद्धोद्योगमें प्रवृत्त होनेवाले आप सर्वात्माको नमस्कार है।

'सुवर्ण आपका तेज है, आपको नमस्कार है, आप विजयी वीर हैं, आपको नमस्कार है। आप अत्यन्त तेजःस्वरूप और सर्वतेजोमय हैं, आपको प्रणाम है। आप दैत्य तेजके विनाशक और पापमय तेजका अपहरण करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। गौओं और ब्राह्मणोंका हित-साधन करनेवाले आप परमात्माको प्रणाम है। आप हविष्य-भोजी तथा हव्य और कव्यका वहन करनेवाले अग्नि हैं, आप ही स्वधारूप हैं; आपको नमस्कार है। आप स्वाहारूप, यज्ञस्वरूप और योगके बीज हैं; आपको नमस्कार है। हाथमें शार्ङ्गनामक धनुष धारण करनेवाले, आप पापहारी हरिको प्रणाम है।

'कार्य कारण-रूप' जगत्‌को प्रेरित करनेवाले विज्ञानशाली परमेश्वरको नमस्कार है। वेदस्वरूप भगवान्‌को प्रणाम है। सबको पवित्र करनेवाले प्रभुको नमस्कार है। सबके क्लेशोंका अपहरण करनेवाले, हरित केशोंसे युक्त श्रीभगवान्‌को प्रणाम है। विश्वके आधारभूत परमात्मा केशवको नमस्कार है। कृपामय और आनन्दमय ईश्वरको नमस्कार है। क्लेशोंका नाश करनेवाले नित्यशुद्ध भगवान् श्रीअनन्तको नमस्कार है। जिनका स्वरूप नित्य आनन्दमय है, जो दिव्य होनेके साथ ही दिव्यरूप धारण करते हैं, ग्यारह रुद्र जिनके चरणोंकी वन्दना करते हैं तथा ब्रह्माजी भी जिनके सामने मस्तक झुकाते हैं, उन भगवान्‌को प्रणाम है। प्रभो ! देवता और असुरोंके स्वामी भी आपके चरण कमलोंमें माथा टेकते हैं। आप देवेश, अमृत और अमृतात्मा हैं; आपको बारंबार नमस्कार है। आप क्षीरसागरमें निवास करनेवाले और लक्ष्मीके प्रियतम हैं, आपको नमस्कार है। आप ओंकार, विशुद्ध तथा अविचलरूप हैं; आपको बारंबार प्रणाम है। आप व्यापी, व्यापक और सब प्रकारके दुःखोंको दूर करनेवाले हैं; आपको नमस्कार है।

'वराहरूपधारी आपको प्रणाम है। महाकच्छपके रूपमें आपको नमस्कार है। वामन और नृसिंहका रूप धारण करनेवाले आप परमात्माको प्रणाम है। सर्वज्ञ मत्स्य-भगवान्‌को प्रणाम है। श्रीराम, कृष्ण, ब्राह्मणश्रेष्ठ कपिल और हयग्रीवके रूपमें अवतीर्ण हुए आप भगवान्‌को प्रणाम है।'

इस प्रकार इन्द्रियोंके स्वामी भगवान् श्रीजनार्दनका स्तवन करके सोमशर्माने फिर कहा—'प्रभो ! ब्रह्माजी भी आपके पावन गुणोंकी सीमाको नहीं जानते तथा सर्वेश्वर ! रुद्र और इन्द्र भी आपकी स्तुति करनेमें असमर्थ हैं; फिर दूसरा कौन आपके गुणोंका वर्णन कर सकता है। मुझमें बुद्धि ही कौन-सी है, जो मैं आपकी स्तुति कर सकूँ। केशव ! मैंने अपनी छोटी बुद्धिके अनुसार आपके निर्गुण और सगुण रूपोंका स्तवन किया है। सर्वेश ! मैं जन्म-जन्मसे आपका ही दास हूँ। लोकेश ! मुझपर दया कीजिये।'

श्रीभगवान‍्के वरदानसे सोमशर्माको सुव्रतनामक पुत्रकी प्राप्ति तथा सुव्रतका तपस्यासे माता-पितासहित वैकुण्ठलोकमें जाना

श्रीहरि बोले—ब्रह्मन् ! मैं तुम्हारी इस तपस्या, पुण्य, सत्य तथा पावन स्तोत्रसे बहुत सन्तुष्ट हूँ । मुझसे कोई वर माँगो ।

सोमशर्माने कहा—प्रभो ! पहले तो आप मुझे भलीभाँति निश्चित किया हुआ एक वर यह दीजिये कि मैं प्रत्येक जन्ममें आपकी भक्ति करता रहूँ । दूसरा यह कि मुझे मोक्ष प्रदान करनेवाले अपने अविचल परमधामका दर्शन कराइये । तीसरे वरके रूपमें मुझे एक ऐसा पुत्र दीजिये, जो अपने वंशका उद्धारक, दिव्य लक्षणोंसे सम्पन्न, विष्णुभक्तिपरायण, मेरे कुलको धारण करनेवाला, सर्वज्ञ, सर्वस्व दान करनेवाला, जितेन्द्रिय, तप और तेजसे युक्त, देवता, ब्राह्मण तथा इस जगत्‌का पालन करनेवाला, श्रीभगवान् (आप) का पुजारी और शुभ सङ्कल्पवाला हो । इसके सिवा, श्रीकेशव ! आप मेरी दरिद्रता हर लीजिये ।

श्रीहरि बोले—द्विजश्रेष्ठ ! ऐसा ही होगा, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है । मेरे प्रसादसे तुमको सुयोग्य पुत्रकी प्राप्ति होगी, जो तुम्हारे वंशका उद्धार करनेवाला होगा । तुम इस मनुष्यलोकमें भी परम उत्तम दिव्य एवं मनुष्योचित भोगोंका उपभोग करोगे । तदनन्तर तुम परमगतिको प्राप्त होगे ।

इस प्रकार भगवान् श्रीहरि स्त्रीसहित ब्राह्मणको वरदान देकर अन्तर्धान हो गये । तदनन्तर द्विजश्रेष्ठ सोमशर्मा अपनी पत्नी सुमनाके साथ नर्मदाके पुण्यदायक तटपर उस परमपावन उत्तम तीर्थ अमरकण्टकमें रहकर दान-पुण्य करने लगे । इस प्रकार बहुत समय व्यतीत हो जानेपर एक दिन सोमशर्मा कपिला और नर्मदाके सङ्गममें स्नान करके निकले और घर आकर ब्राह्मणोचित कर्ममें लग गये । उस दिन व्रतसे शोभा पानेवाली परम सौभाग्यवती सुमनाने पतिके सहवाससे गर्भ धारण किया । समय आनेपर उस बड़भागिनीने देवताओंके समान कान्तिमान् उत्तम पुत्रको जन्म दिया, जिसके शरीरसे तेजोमयी किरणें छिटक रही थीं । उसके जन्मके समय आकाशमें बारंबार देवताओंके नगारे बजने लगे । तत्पश्चात् ब्रह्माजी देवताओंको साथ लेकर वहाँ आये और स्वस्थ चित्तसे उस



बालकका नाम उन्होंने 'सुव्रत' रखा । नामकरण करके महाबली देवता स्वर्गको चले गये ।

उनके जानेके पश्चात् द्विजश्रेष्ठ सोमशर्माने बालकके जातकर्म आदि संस्कार किये । उस बड़भागी पुत्र सुव्रतके, जो भगवान‍्की कृपासे प्राप्त हुआ था, जन्म लेनेपर ब्राह्मणके घरमें धन-धान्यसे परिपूर्ण महालक्ष्मी निवास करने लगी । हाथी, घोड़े, भैंसें, गौएँ, सोने और रत्न आदि किसी भी वस्तुकी कमी न रही । सोमशर्माका घर रत्नराशिसे कुबेर-भवनकी भाँति शोभा पाने लगा । ब्राह्मणने दान-पुण्य आदि धर्मोंका अनुष्ठान किया । तीर्थोंमें जाकर वे नाना प्रकारके पुण्योंमें लगे रहे । और भी जो-जो दान-पुण्य हो सकते हैं, उन सबका उन्होंने अनुष्ठान किया । मेधावी सोमशर्माका सारा जीवन ही ज्ञान और पुण्यके उपार्जनमें लगा रहा । उन्होंने बड़े हर्षके साथ पुत्रका विवाह किया । फिर पुत्रके भी पुत्र उत्पन्न हुए, जो बड़े ही पुण्यात्मा और उत्तम लक्षणोंसे सम्पन्न थे । वे भी सदा सत्यवादी, धर्मात्मा, तपस्वी तथा दान-धर्ममें संलग्न थे । उन पौत्रोंके भी पुण्यसंस्कार

सोमशर्माने ही सम्पन्न किये। सुमना और सोमशर्मा दोनों ही सौभाग्यशाली थे। वे महान् अभ्युदयसे युक्त होकर सदा हर्षमें भरे रहते थे।

सूतजी कहते हैं—एक समय महर्षि व्यासने अत्यन्त विस्मित होकर लोकनाथ ब्रह्माजीसे सुव्रतका सारा उपाख्यान पूछा।

तब ब्रह्माजीने कहा—सुव्रत बड़ा मेधावी बालक था। वह बाल्यकालसे ही भगवान् श्रीविष्णुका चिन्तन करने लगा। उसने गर्भमें ही पुरुषोत्तम भगवान् श्रीनारायणका दर्शन किया था। पूर्वकर्मोंके प्रभावसे वह सदा भगवान्‌के ध्यानमें लगा रहता था। वह गान, विद्याभ्यास और अध्यापन करते समय भी शङ्ख चक्रधारी, उत्तम पुण्यदायी भगवान् श्रीपद्मनाभका ध्यान और चिन्तन किया करता था। इस प्रकार वह द्विजश्रेष्ठ सदा श्रीभगवान्‌का ध्यान करते हुए ही बच्चोंके साथ खेला करता था। वह मेधावी, पुण्यात्मा और पुण्यमें प्रेम रखनेवाला था। उसने अपने साथी बालकोंका नाम अपनी ओरसे परमात्मा श्रीहरिके नामपर ही रख दिया था। वह *महामुनि था और भगवान्‌के ही नामसे अपने मित्रोंको भी पुकारा करता था।* 'ओ केशव! यहाँ आओ, चक्रधारी माधव! बचाओ, पुरुषोत्तम! तुम्हीं मेरे साथ खेलो, मधुसूदन! हम दोनोंको वनमें ही चलना चाहिये।' इस प्रकार श्रीहरिके नाम ले लेकर वह ब्राह्मणबालक मित्रोंको बुलाया करता था। खेलने, पढ़ने, हँसने, सोने, गीत गाने, देखने, चलने, बैठने, ध्यान करने, सलाह करने, ज्ञान अर्जन करने तथा शुभ कर्मोंका अनुष्ठान करनेके समय भी वह श्रीभगवान्‌को ही देखता और जगन्नाथ, जनार्दन आदि नामोंका उच्चारण किया करता था। विश्वके एकमात्र स्वामी श्रीपरमेश्वरका ध्यान करता रहता था। तृण, काष्ठ, पत्थर तथा सूखे और गीले—सभी पदार्थोंमें वह धर्मात्मा बालक श्रीकेशवको ही देखता, कमललोचन श्रीगोविन्दका ही साक्षात्कार किया करता था। सुमनाका पुत्र ब्राह्मण सुव्रत बड़ा बुद्धिमान् था, वह आकाशमें, पृथ्वीपर, पर्वतोंमें, वनोंमें, जल, थल और पाषाणमें तथा सम्पूर्ण जीवोंके भीतर भी भगवान् श्रीनरसिंहका ही दर्शन करता था।*

इस प्रकार बालकोंके साथ खेलमें सम्मिलित होकर वह प्रतिदिन खेलता तथा मधुर अक्षर और उत्तम रागसे युक्त गीतोंद्वारा श्रीकृष्णका गुणगान किया करता था। उसके गीत ताल, लय, उत्तम स्वर और मूर्च्छनासे युक्त होते थे। सुव्रत कहता—'सम्पूर्ण देवता सदा भगवान् श्रीमुरारिका ध्यान करते हैं। जिनके श्रीअङ्गोंके भीतर सम्पूर्ण जगत् स्थित है, जो योगके स्वामी, पापोंका नाश करनेवाले और शरणागतोंके रक्षक हैं, उन भगवान् श्रीमधुसूदनका मैं भजन करता हूँ।* जो सम्पूर्ण जगत्‌के भीतर सदा जागते और व्याप्त रहते हैं, जिनमें समस्त गुणवानोंका निवास है तथा जो सब दोषोंसे रहित हैं, उन परमेश्वरका चिन्तन करके मैं सदा उनके युगल चरणोंमें मस्तक झुकाता हूँ। जो गुणोंके अधिष्ठान हैं, जिनके पराक्रमका अन्त नहीं है, वेदान्तज्ञानसे विशुद्ध बुद्धिवाले पुरुष जिनका *सदा स्तवन किया करते हैं, इस अपार, अनन्त और दुर्गम संसारसागरसे पार होनेके लिये जो नौकाके समान हैं,* उन सर्वस्वरूप भगवान् श्रीनारायणकी मैं शरण लेता हूँ। मैं श्रीभगवान्‌के उन निर्मल युगल चरणोंको प्रणाम करता हूँ, जो योगीश्वरोंके हृदयमें निवास करते हैं, जिनका शुद्ध एवं पूर्ण प्रभाव सदा और सर्वत्र विख्यात है। देव! मैं दीन हूँ, आप अशुभके भयसे मेरी रक्षा कीजिये।† संसारका पालन करनेके लिये जिन्होंने धर्मको अङ्गीकार किया है, जो सत्यसे युक्त, सम्पूर्ण लोकोंके गुरु, देवताओंके स्वामी, लक्ष्मीजीके एकमात्र निवासस्थान, सर्वस्वरूप और सम्पूर्ण विश्वके आराध्य हैं, उन भगवान्‌के सुयशका मैं सुमधुर रससे युक्त संगीत एवं

---

* क्रीडने पठने हास्ये शयने गीतप्रेक्षणे।
याने च ह्यासने ध्याने मन्त्रे ज्ञाने सुकर्मसु॥
पश्यत्येवं वदत्येवं जगन्नाथं जनार्दनम्।
स ध्यायते तमेकं हि विश्वनाथं महेश्वरम्॥
तृणे काष्ठे च पाषाणे शुष्के सार्द्रे हि केशवम्।
पश्यत्येव स धर्मात्मा गोविन्दं कमलेक्षणम्॥
आकाशे भूमिमध्ये तु पर्वतेषु वनेषु च।
जले स्थले च पाषाणे जीवेषु च महामतिः॥
नृसिंहं पश्यते विप्रः सुव्रतः सुमनासुतः।
(२०। ११–१५)

* ध्यायन्ति देवाः सततं मुरारिं यस्याङ्गमध्ये सकलं निविष्टम्।
योगेश्वरं पापविनाशनं च भजे शरण्यं मधुसूदनाख्यम्॥
(२०। १७)

† नारायणं गुणनिधानमनन्तवीर्यं वेदान्तशुद्धमतयः प्रपठन्ति नित्यम्।
संसारसागरमपारमनन्तदुर्गमुत्तारणार्थमखिलं शरणं प्रपद्ये॥
योगीन्द्रमानससरोवरराजहंसं शुद्धं प्रभावमखिलं सततं हि यस्य।
तस्यैव पादयुगलं ह्यमलं नमामि दीनस्य मेऽशुभभयात् कुरु देव रक्षाम्॥
(२०। १९-२०)

ताल-लयके साथ गान करता हूँ। मैं अखिल भुवनके स्वामी भगवान् श्रीविष्णुका ध्यान करता हूँ, जो इस लोकमें दुःखरूपी अन्धकारका नाश करनेके लिये चन्द्रमाके समान हैं। जो अज्ञानमय तिमिरका ध्वंस करनेके लिये साक्षात् सूर्यके तुल्य हैं तथा आनन्दके अखण्ड मूल और महिमासे सुशोभित हैं, जो अमृतमय आनन्दसे परिपूर्ण, समस्त कलाओंके आधार तथा गीतके कौशल हैं, उन श्रीभगवान्‌का मैं अनन्य अनुरागसे गान करता हूँ। जो उत्तम योगके साधनोंसे युक्त हैं, जिनकी दृष्टि परमार्थकी ओर लगी रहती है, जो सम्पूर्ण चराचर जगत्‌को एक साथ देखते रहते हैं तथा पापी लोगोंको जिनके स्वरूपका दर्शन नहीं होता, उन एकमात्र भगवान् श्रीकेशवकी मैं सदाके लिये शरण लेता हूँ।'

इस प्रकार सुमनाका पुत्र सुव्रत दोनों हाथोंसे ताली बजाकर ताल देते हुए श्रीकृष्णके सुयशका गान करता और बालकोंके साथ सदा प्रसन्न रहता था। प्रतिदिन बालस्वभावके अनुसार खेलता और भगवान् श्रीविष्णुके ध्यानमें लगा रहता था। अपने सुलक्षण पुत्र सुव्रतको खेलते देख माता सुमना कहती—'बेटा! आ, कुछ भोजन कर ले; तुझे भूख सता रही होगी।' यह सुनकर वह बुद्धिमान् बालक सुमनाको उत्तर देता—'माँ! भगवान्‌का ध्यान महान् अमृतके तुल्य है, मैं उसीसे तृप्त रहता हूँ—मुझे भूख नहीं सताती।' भोजनके आसनपर बैठकर जब वह अपने सामने मिष्टान्न परोसा हुआ देखता, तब कहता—'इस अन्नसे भगवान् श्रीविष्णु तृप्त हों।' वह धर्मात्मा बालक जब सोनेके लिये जाता, तब वहाँ भी श्रीकृष्णका चिन्तन करते हुए कहता—'मैं योगनिद्रापरायण भगवान् श्रीकृष्णकी शरणमें आया हूँ।' इस प्रकार भोजन करते, वस्त्र पहनते, बैठते और सोते समय भी वह श्रीवासुदेवका चिन्तन करता और उन्हींको सब वस्तुएँ समर्पित कर देता था। धर्मात्मा सुव्रत युवावस्था आनेपर काम-भोगका परित्याग करके वैडूर्यपर्वतपर जा भगवान् श्रीविष्णुके ध्यानमें लग गया। वहीं उस मेधावीने श्रीविष्णुका चिन्तन करते हुए तपस्या आरम्भ कर दी। उस श्रेष्ठ पर्वतपर सिद्धेश्वर नामक स्थानके पास वह निर्जन वनमें रहता और काम-क्रोध आदि सम्पूर्ण दोषोंका परित्याग करके इन्द्रियोंको संयममें रखते हुए तपस्या करता था। उसने अपने मनको एकाग्र करके भगवान् श्रीविष्णुके साथ जोड़ दिया। इस प्रकार परमात्माके ध्यानमें सौ वर्षोंतक लगे रहनेपर उसके ऊपर शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान् श्रीजगन्नाथ बहुत प्रसन्न हुए तथा लक्ष्मीजीके साथ उसके सामने प्रकट होकर बोले—'धर्मात्मा सुव्रत! अब ध्यानसे उठो, तुम्हारा कल्याण हो; मैं विष्णु तुम्हारे पास आया हूँ, मुझसे वर माँगो।' मेधावी सुव्रत भगवान् श्रीविष्णुके ये उत्तम वचन सुनकर अत्यन्त हर्षमें भर गये। उन्होंने आँख खोलकर देखा, जनार्दन सामने खड़े हैं; फिर तो दोनों हाथ जोड़कर उन्होंने श्रीभगवान्‌को प्रणाम किया और उनकी स्तुति करने लगे।

सुव्रत बोले—

संसारसागरमतीव गभीरपारं
दुःखोर्मिभिर्विविधमोहमयैस्तरङ्गैः ।
सम्पूर्णमस्ति निजदोषगुणैस्तु प्राप्तं
तस्मात् समुद्धर जनार्दन मां सुदीनम् ॥

जनार्दन! यह संसार-समुद्र अत्यन्त गहरा है, इसका पार पाना कठिन है। यह दुःखमयी लहरों और मोहमयी भाँति-भाँतिकी तरङ्गोंसे भरा है। मैं अत्यन्त दीन हूँ और अपने ही दोषों तथा गुणोंसे—पाप-पुण्योंसे प्रेरित होकर इसमें आ फँसा हूँ; अतः आप मेरा इससे उद्धार कीजिये।

कर्माम्बुदे महति गर्जति वर्षतीव
विद्युल्लतोल्लसति पातकसञ्चयैर्मे ।
मोहान्धकारपटलैर्मम नष्टदृष्टे-
र्दीनस्य तस्य मधुसूदन देहि हस्तम् ॥

कर्मरूपी बादलोंकी भारी घटा घिरी हुई है, जो गरजती और बरसती भी है। मेरे पातकोंकी राशि विद्युल्लताकी भाँति उसमें थिरक रही है। मोहरूपी अन्धकार-समूहसे मेरी दृष्टि—विवेकशक्ति नष्ट हो गयी है, मैं अत्यन्त दीन हो रहा हूँ; मधुसूदन! मुझे अपने हाथका सहारा दीजिये।

संसारकाननवरं बहुदुःखवृक्षैः
संसेव्यमानमपि मोहमयैश्च सिंहैः ।
संदीप्तमस्ति करुणाबहुवह्नितेजः-
संतप्यमानमनसं परिपाहि कृष्ण ॥

यह संसार एक महान् वन है, इसमें बहुत-से दुःख ही वृक्षरूपमें स्थित हैं। मोहरूपी सिंह इसमें निर्भय होकर निवास करते हैं; इसके भीतर शोकरूपी प्रचण्ड दावानल प्रज्वलित हो रहा है, जिसकी आँचसे मेरा चित्त सन्तप्त हो उठा है। कृष्ण! इससे मुझे बचाइये।

संसारवृक्षमतिजीर्णमपीह उच्चं
मायासुकन्दकरुणाबहुदुःखशाखम् ।

जायादिसङ्घछदनं फलितं मुरारे
तं चाधिरूढपतितं भगवन् हि रक्ष ॥

संसार एक वृक्षके समान है, यह अत्यन्त पुराना होनेके साथ बहुत ऊँचा भी है; माया इसकी जड़ है, शोक तथा नाना प्रकारके दुःख इसकी शाखाएँ हैं, पत्नी आदि परिवारके लोग पत्ते हैं और इसमें अनेक प्रकारके फल लगे हैं। मुरारे! मैं इस संसार-वृक्षपर चढ़कर गिर रहा हूँ; भगवन्! इस समय मेरी रक्षा कीजिये—मुझे बचाइये।

दुःखानलैर्विविधमोहमयैः सुधूमैः
शोकैर्वियोगमरणान्तकसंनिभैश्च ।
दग्धोऽस्मि कृष्ण सततं मम देहि मोक्षं
ज्ञानाम्बुनाथ परिषिच्य सदैव मां त्वम् ॥

कृष्ण! मैं दुःखरूपी अग्नि, विविध प्रकारके मोहरूपी धुएँ तथा वियोग, मृत्यु और कालके समान शोकोंसे जल रहा हूँ; आप सर्वदा ज्ञानरूपी जलसे सींचकर मुझे सदाके लिये संसार-बन्धनसे छुड़ा दीजिये।

मोहान्धकारपटले महतीव गर्ते
संसारनाम्नि सततं पतितं हि कृष्ण ।
कृत्वा तरीं मम हि दीनभयातुरस्य
तस्माद् विकृष्य शरणं नय मामितस्त्वम् ॥

कृष्ण! मैं मोहरूपी अन्धकार-राशिसे भरे हुए संसार नामक महान् गड्ढेमें सदासे गिरा हुआ हूँ, दीन हूँ, और भयसे अत्यन्त व्याकुल हूँ; आप मेरे लिये नौका बनाकर मुझे उस गड्ढेसे निकालिये, वहाँसे खींचकर अपनी शरणमें ले लीजिये।

त्वामेव ये नियतमानसभावयुक्ता
ध्यायन्त्यनन्यमनसा पदवीं लभन्ते ।
नत्वैव पादयुगलं च महत्सुपुण्यं
ये देवकिंनरगणाः परिचिन्तयन्ति ॥

जो संयमशील हृदयके भावसे युक्त होकर अनन्य चित्तसे आपका ध्यान करते हैं वे आपकी पदवीको प्राप्त हो जाते हैं। तथा जो देवता और किंनरगण आपके दोनों परम पवित्र चरणोंको प्रणाम करके उनका चिन्तन करते हैं, वे भी आपकी पदवीको प्राप्त होते हैं।

नान्यं वदामि न भजामि न चिन्तयामि
त्वत्पादपद्मयुगलं सततं नमामि ।
एवं हि मामुपगतं शरणं च रक्ष
दूरेण यान्तु मम पातकसञ्चयास्ते ।
दासोऽस्मि भृत्यवदहं तव जन्म जन्म
त्वत्पादपद्मयुगलं सततं नमामि ॥
(२१ । २० २७)

मैं न तो दूसरेका नाम लेता हूँ न दूसरेको भजता हूँ और न दूसरेका चिन्तन ही करता हूँ; नित्य निरन्तर आपके युगल चरणोंको प्रणाम करता रहता हूँ। इस प्रकार मैं आपकी शरणमें आया हूँ। आप मेरी रक्षा करें, मेरे पातकसमूह शीघ्र दूर हो जायँ। मैं नौकरकी भाँति जन्म-जन्म आपका दास बना रहूँ। भगवन्! आपके युगल चरण-कमलोंको सदा प्रणाम करता हूँ।

श्रीकृष्ण! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं, तो मुझे यह उत्तम वरदान दीजिये—मेरे माता पिताको सशरीर अपने परम धाममें पहुँचाइये। मेरे ही साथ मेरी पत्नीको भी अपने लोकमें ले चलिये।

श्रीहरि बोले—ब्रह्मन्! तुम्हारी यह उत्तम कामना अवश्य पूर्ण होगी।

इस प्रकार सुव्रतकी भक्तिसे सन्तुष्ट होकर भगवान् श्रीविष्णु उन्हें उत्तम वरदान दे दाह और प्रलयसे रहित वैष्णवधामको चले गये। सुव्रतके साथ ही सुमना और सोमशर्मा भी वैकुण्ठधामको प्राप्त हुए।

राजा पृथुके जन्म और चरित्रका वर्णन

ऋषियोंने कहा—महाभाग सूतजी! आप महात्मा राजा पृथुके जन्मका विस्तारके साथ वर्णन कीजिये। हम उनकी कथा सुननेके लिये उत्सुक हैं। महाराज पृथुने जिस प्रकार इस पृथ्वीका दोहन किया तथा देवताओं, पितरों और तत्त्ववेत्ता मुनियोंने भी जिस प्रकार उसको दुहा था, वह सब प्रसङ्ग मुझे सुनाइये।

सूतजी बोले—द्विजवरो! मैं वेनकुमार पृथुके जन्म, पराक्रम और क्षत्रियोचित पुरुषार्थका विस्तारके साथ

वर्णन करूँगा। ऋषियोंने जो रहस्यकी बातें कही हैं, उन्हें भी बताऊँगा। जो प्रतिदिन वेननन्दन पृथुकी कथाको विस्तार-पूर्वक कहेगा, उसके सात जन्मके पाप नष्ट हो जायँगे। पृथुका जन्म-वृत्तान्त तथा सम्पूर्ण चरित्र ही पापोंका नाश करनेवाला और पवित्र है।

पूर्वकालमें अङ्ग नामके प्रजापति थे, जिनका जन्म अत्रि-वंशमें हुआ था। वे अत्रिके समान ही प्रभावशाली, धर्मके रक्षक, परम बुद्धिमान् तथा वेद और शास्त्रोंके तत्त्वज्ञ थे। उन्होंने ही सम्पूर्ण-धर्मोंकी सृष्टि की थी। मृत्युकी एक परम सौभाग्यवती कन्या थी, जिसका नाम था सुनीथा। महाभाग अङ्गने उसीके साथ विवाह किया और उसके गर्भसे वेन नामक पुत्रको जन्म दिया, जो धर्मका नाश करनेवाला था। राजा वेन वेदोक्त सदाचाररूप धर्मका परित्याग करके काम, लोभ और महामोहवश पापका ही आचरण करता था। मद और मात्सर्यसे मोहित होकर पापके ही रास्ते चलता था। उस समय सम्पूर्ण द्विज वेदाध्ययनसे विमुख हो गये। वेनके राजा होनेपर प्रजाजनोंमें स्वाध्याय और यज्ञका नाम भी नहीं सुनायी पड़ता था। यज्ञमें आये हुए देवता यजमानके द्वारा अर्पण किये हुए सोमरसका पान नहीं करते थे। वह दुष्टात्मा राजा ब्राह्मणोंसे प्रतिदिन यही कहता था कि 'स्वाध्याय न करो, होम करना छोड़ दो, दान न दो और यज्ञ भी न करो।' प्रजापति वेनका विनाशकाल उपस्थित था; इसीलिये उसने यह क्रूर घोषणा की थी। वह सदा यही कहा करता था कि 'मैं ही यजन करनेके योग्य देवता, मैं ही यज्ञ करनेवाला यजमान तथा मैं ही यज्ञ-कर्म हूँ। मेरे ही उद्देश्यसे यज्ञ और होमका अनुष्ठान होना चाहिये। मैं ही सनातन विष्णु, मैं ही ब्रह्मा, मैं ही रुद्र, मैं ही इन्द्र तथा सूर्य और वायु हूँ। हव्य और कव्यका भोक्ता भी सदा मैं ही हूँ। मेरे सिवा दूसरा कोई नहीं है।'

यह सुनकर महान् शक्तिशाली मुनियोंको वेनके प्रति बड़ा क्रोध हुआ। वे सब एकत्रित हो उस पापबुद्धि राजाके पास जाकर बोले। राजाको धर्मका मूर्तिमान् स्वरूप माना गया है। इसलिये प्रत्येक राजाका यह कर्तव्य है कि वह धर्मकी रक्षा करे। हमलोग बारह वर्षोंमें समाप्त होनेवाले यज्ञकी दीक्षा ग्रहण कर रहे हैं। तुम अधर्म न करो; क्योंकि ऐसा करना सत्पुरुषोंका धर्म नहीं है। महाराज! तुमने यह प्रतिज्ञा की है कि 'मैं राजा होकर धर्मका पालन करूँगा, अतः उस प्रतिज्ञाके अनुसार धर्म करो और सत्य एवं पुण्यको आचरणमें लाओ।'

ऋषियोंकी उपर्युक्त बातें सुनकर वह क्रोधसे आगबबूला हो उठा और उनकी ओर दृष्टिपात करके द्वितीय यमराजकी भाँति बोला—'अरे! तुमलोग मूर्ख हो, तुम्हारी बुद्धि मारी गयी है। अतः निश्चय ही तुमलोग मुझे नहीं जानते। भला ज्ञान, पराक्रम, तपस्या और सत्यके द्वारा मेरी समानता करनेवाला इस पृथ्वीपर दूसरा कौन है। मैं ही सम्पूर्ण भूतों और विशेषतः सब धर्मोंकी उत्पत्तिका कारण हूँ। यदि चाहूँ तो इस पृथ्वीको जला सकता हूँ, जलमें डुबा सकता हूँ तथा पृथ्वी और आकाशको रूँध सकता हूँ।'

जब वेनको किसी प्रकार भी अधर्म-मार्गसे हटाया न जा सका, तब महर्षियोंने क्रोधमें भरकर उसे बल-पूर्वक पकड़ लिया। वह विवश होकर छटपटाने लगा। उधर क्रोधमें भरे हुए ऋषियोंने राजा वेनकी बायीं जाँघको मथना आरम्भ किया। उससे काले अञ्जनकी राशिके समान एक नाटे कदका मनुष्य प्रकट हुआ। उसकी आकृति विलक्षण थी। लंबा मुँह, विकराल आँखें, नीले कवचके समान काला रंग, मोटे और चौड़े कान, बेडौल बढ़ी हुई बाँहें और विशाल भद्दा-सा पेट—यही उसका हुलिया था। ऋषियोंने उसकी ओर देखा और कहा—'निषीद (बैठ जाओ)।' उनकी बात सुनकर वह भयसे व्याकुल हो बैठ गया। [ऋषियोंने 'निषीद' कहकर उसे बैठनेकी आज्ञा दी थी; इसलिये उसका नाम 'निषाद' पड़ गया।] पर्वतों और वनोंमें ही उसके वंशकी प्रतिष्ठा हुई। निषाद, किरात, भील, नाहलक, भ्रमर, पुलिन्द तथा और जितने भी म्लेच्छजातिके पापाचारी मनुष्य हैं, वे सब वेनके उसी अङ्गसे उत्पन्न हुए हैं।

तब यह जानकर कि राजा वेनका पाप निकल गया, समस्त ऋषियोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। अब उन्होंने राजाके दाहिने हाथका मन्थन आरम्भ किया। उससे पहले तो पसीना प्रकट हुआ; किन्तु जब पुनः जोरसे मन्थन किया गया, तब वेनके उस सुन्दर हाथसे एक पुरुषका प्रादुर्भाव हुआ, जो बारह आदित्योंके समान तेजस्वी थे। उनके मस्तकपर सूर्यके समान चमचमाता हुआ मुकुट और कानोंमें कुण्डल शोभा पा रहे थे। उन महाबली राजकुमारने आजगव नामका आदि धनुष, दिव्य बाण और रक्षाके लिये कान्तिमान् कवच धारण कर रखे थे। उनका नाम 'पृथु' हुआ। वे बड़े सौभाग्यशाली, वीर और महात्मा थे। उनके जन्म लेते

ही सम्पूर्ण प्राणियोंमें हर्ष छा गया। उस समय समस्त ब्राह्मणोंने मिलकर पृथुका राज्याभिषेक किया। तदनन्तर ब्रह्माजी, सब देवता तथा नाना प्रकारके स्थावर जङ्गम प्राणियोंने महाराज पृथुका अभिषेक किया। उनके पिताने कभी भी सम्पूर्ण प्रजाको प्रसन्न नहीं किया था; किन्तु पृथुने सबका मनोरञ्जन किया। इसलिये सारी प्रजा सुखी होकर आनन्दका अनुभव करने लगी। प्रजाका अनुरञ्जन करनेके कारण ही वीर पृथुका नाम 'राजराज' हो गया।

द्विजवरो! उन महात्मा नरेशके भयसे समुद्रका जल भी शान्त रहता था। जब उनका रथ चलता, उस समय पर्वत दुर्गम मार्गको छिपाकर उन्हें उत्तम मार्ग देते थे। पृथ्वी बिना जोते ही अनाज तैयार करके देती थी। सर्वत्र गौएँ कामधेनु हो गयी थीं। मेघ प्रजाकी इच्छाके अनुसार वर्षा करता था। सम्पूर्ण ब्राह्मण और क्षत्रिय देवयज्ञ तथा बड़े-बड़े उत्सव किया करते थे। राजा पृथुके शासनकालमें वृक्ष इच्छानुसार फलते थे, उनके पास जानेसे सबकी इच्छा पूर्ण होती थी। देशमें न कभी अकाल पड़ता, न कोई बीमारी फैलती और न मनुष्योंकी अकाल मृत्यु ही होती थी। सब लोग सुखसे जीवन बिताते और धर्मानुष्ठानमें लगे रहते थे।*

ब्राह्मणो! प्रजाओंने अपनी जीवन-रक्षाके लिये पहले जो अन्नका बीज बो रखा था, उसे एक बार यह पृथ्वी पचाकर स्थिर हो गयी। उस समय सारी प्रजा राजा पृथुके पास दौड़ी गयी और मुनियोंके कथनानुसार बोली—'राजन्! हमारे लिये उत्तम जीविकाका प्रबन्ध कीजिये।' राजाओंमें श्रेष्ठ पृथुने देखा—प्रजाके ऊपर बहुत बड़ा भय उपस्थित हुआ है। यह देखकर तथा महर्षियोंकी बात मानकर महाराज पृथुने धनुष और बाण हाथमें लिया और क्रोधमें भरकर बड़े वेगसे पृथ्वीके ऊपर धावा किया। पृथ्वी गायका रूप धारण करके तीव्र गतिसे स्वर्गकी ओर भागी। फिर क्रमशः ब्रह्माजी, भगवान् श्रीविष्णु तथा रुद्र आदि देवताओंकी शरणमें गयी, किन्तु कहीं भी उसे अपने बचावका स्थान न मिला। अन्तमें अपनी रक्षाका कोई उपाय न देखकर वह वेनकुमार पृथुकी ही शरणमें आयी और बाणोंके आघातसे व्याकुल हो उन्हींके पास खड़ी हो गयी। उसने नमस्कार करके राजा पृथुसे कहा—



'महाराज! रक्षा करो, रक्षा करो। महाप्राज्ञ! मैं धारण करनेवाली भूमि हूँ। मेरे ही आधारपर सब लोग टिके हुए हैं। राजन्! यदि मैं मारी गयी तो सातों लोक नष्ट हो जायँगे। गौओंकी हत्यामें बहुत बड़ा पाप है, इस बातका श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने प्रत्यक्ष अनुभव किया है। मेरा नाश होने पर सारी प्रजा नष्ट हो जायगी। राजन्! यदि मैं न रही तो तुम प्रजाको कैसे धारण कर सकोगे। अतः यदि तुम प्रजाका कल्याण करना चाहते हो तो मुझे मारनेका विचार छोड़ दो। भूपाल! मैं तुम्हें हितकी बात बताती हूँ, सुनो। अपने क्रोधका नियन्त्रण करो, मैं अन्नमयी हो जाऊँगी, समस्त प्रजाको धारण करूँगी। मैं स्त्री हूँ। स्त्री अवध्य मानी गयी है। मुझे मारकर तुम्हें प्रायश्चित्तका भागी होना पड़ेगा।

राजा पृथु बोले—यदि किसी एक महापापी एवं दुराचारीका वध कर डालनेपर सब लोग सुखसे जी सकें, तथा पुण्यदर्शी साधु पुरुषोंको सुख मिलता हो, तो एक पापिष्ठ पुरुषका विनाश करना कर्तव्य माना गया है। वसुधे! तुमने भी प्रजाके सम्पूर्ण खाद्योंका विनाश किया है। इस समय जितने भी बीज थे, उन सबको तुम पचा गयीं। बीजोंको हड़पकर स्वयं तो स्थिर हो गयीं और प्रजाको मार रही हो। ऐसी दशामें [मेरे हाथसे बचकर] अब कहाँ जाओगी। वसुन्धरे! संसारके हितके लिये मेरा यह कार्य उत्तम ही माना जायगा। तुमने मेरी आज्ञाका उल्लङ्घन किया है, इसलिये इन तीखे बाणोंसे मारकर मैं तुम्हें मौतके घाट उतार दूँगा। तुम्हारे न रहनेपर मैं त्रिलोकीमें रहनेवाली

* न दुर्भिक्षं न च व्याधिर्नाकालमरणं नृणाम्।
सर्वे सुखेन जीवन्ति लोका धर्मपरायणाः॥ (२७।६४)

पावन प्रजाको अपने ही तेज और धर्मके बलसे धारण करूँगा, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। वसुन्धरे! मेरा शासन धर्मके अनुकूल है, अतः इसे मानकर मेरी आज्ञासे तुम प्रजाके जीवनकी सदा ही रक्षा करो। भद्रे! यदि इस प्रकार आज ही मेरी आज्ञा मान लोगी तो मैं प्रसन्न होकर सदा तुम्हारी रखवाली करूँगा।

पृथ्वी देवी गौके रूपमें खड़ी थीं। उनका शरीर बाणोंसे आच्छादित हो रहा था। उन्होंने धर्मात्मा और परम बुद्धिमान् राजा पृथुसे कहा—'महाराज! तुम्हारी आज्ञा सत्य और पुण्यसे युक्त है। अतः प्रजाके लिये मैं उसका विशेषरूपसे पालन करूँगी। राजेन्द्र! तुम स्वयं ही कोई उपाय सोचो, जिससे तुम्हारे सत्यका पालन हो सके और तुम इन प्रजाओंको भी धारण कर सको। मैं भी जिस प्रकार समूची प्रजाकी वृद्धि कर सकूँ—ऐसा कोई उपाय बताओ। महाराज! मेरे शरीरमें तुम्हारे उत्तम बाण धँसे हुए हैं, उन्हें निकाल दो और सब ओरसे मुझे समतल बना दो, जिससे मेरे भीतर दुग्ध स्थिर रह सके।'

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो! पृथ्वीकी बात सुनकर राजा पृथुने अपने धनुषके अग्रभागसे विभिन्न रूपवाले भारी-भारी पर्वतोंको उखाड़ डाला और भूमिको समतल बना दिया। राजकुमार पृथुने पृथ्वीके शरीरसे अपने बाणोंको स्वयं ही निकाल लिया। उनके आविर्भावसे पहले केवल प्रजाओंकी ही उत्पत्ति हुई थी। कोई सच्चा राजा नहीं हुआ था। उन दिनों वह सारी प्रजा कहीं भूमिमें गुफा बनाकर, कहीं पर्वतपर, कहीं नदीके किनारे, जंगली झाड़ियोंमें, सम्पूर्ण तीर्थोंमें तथा समुद्रके किनारोंपर निवास करती थी। सब लोग पुण्यकर्मोंमें लगे रहते थे। फल, फूल और मधु—यही उनका आहार था। वेनकुमार पृथुने प्रजाके इस कष्टको देखा और उसे दूर करनेके लिये स्वायम्भुव मनुको बछड़ा तथा अपने हाथको ही दुग्धपात्र बनाकर पृथ्वीसे सब प्रकारके धान्य और गुणकारी अन्नमय दूधका दोहन किया। सुधाके समान लाभ पहुँचानेवाले उस पवित्र अन्नसे प्रजा पितरों तथा ब्रह्मा आदि देवताओंका यजन-पूजन करने लगी। द्विजवरो! उस समयकी सारी प्रजा पुण्यकर्ममें संलग्न रहती थी; अतः देवताओं, पितरों, विशेषतः ब्राह्मणों और अतिथियोंको अन्न देकर पश्चात् स्वयं भोजन करती थी। उसी अन्नसे अन्यान्य यज्ञोंका अनुष्ठान करके वह देवेश्वर भगवान् श्रीविष्णुका यजन और तर्पण करती तथा उसी अन्नके द्वारा सम्पूर्ण देवता तृप्त होते थे। फिर श्रीभगवान्की प्रेरणासे मेघ पानी बरसाता और उससे पवित्र अन्न आदि उत्पन्न होता था।

तदनन्तर समस्त ऋषियों, महामना ब्राह्मणों तथा सत्यवादी देवताओंने भी इस पृथ्वीका दोहन किया। अब मैं यह बताता हूँ कि पितर आदिने किस प्रकार बछड़ोंकी कल्पना करके पूर्वकालमें वसुधाको दुहा था। द्विजोत्तमो! पितरोंने चाँदीका दोहन-पात्र बनाकर यमको बछड़ा बनाया, अन्तकने दुहनेवाले ग्वालेका काम किया और 'स्वधा' रूपी दुग्धको दुहा। इसके बाद सर्पों और नागोंने तक्षकको बछड़ा बनाकर तूँबीका पात्र हाथमें ले विषरूपी दूध दुहा। वे महाबली और महाकाय भयानक सर्प उस विषसे ही जीवन धारण करते हैं। विष ही उनका आधार, विष ही आचार, विष ही बल और विष ही पराक्रम है। इसी प्रकार समस्त असुरों और दानवोंने भी अन्नके अनुरूप लोहेका पात्र बनाकर सम्पूर्ण कामनाओंके साधनभूत मायामय दूधका दोहन किया, जो उनके समस्त शत्रुओंका विनाश करनेवाला है। वही उनका बल और पुरुषार्थ है, उसीसे दानव जीवन धारण करते हैं। उसीको पाकर आज भी समस्त दानव मायामें प्रवीण देखे जाते हैं। इसके बाद गन्धर्वों और अप्सराओंने पृथ्वीका दोहन किया। नृत्य और संगीतकी विद्या ही उनका दूध थी। उसीसे गन्धर्व, यक्ष और अप्सराओंकी जीविका चलती है। परम पुण्यमय पर्वतोंने भी इस पृथ्वीसे नाना प्रकारके रत्न और अमृतके समान ओषधियोंका दोहन किया। वृक्षोंने पत्तोंके पात्रमें पृथ्वीका दूध दुहा। जलने और कटनेके बाद भी फिरसे अङ्कुर निकल आना—यही उनका दूध था। उस समय पाकरका पेड़ बछड़ा बना था और शालके पवित्र वृक्षने दुहनेका काम किया था।

गुह्यक, चारण, सिद्ध और विद्याधरोंने भी सबको धारण करनेवाली इस पृथ्वीको दुहा था। उस समय यह वसुन्धरा सम्पूर्ण अभिलषित पदार्थोंको देनेवाली कामधेनु बन गयी थी। जो लोग जिस-जिस वस्तुकी इच्छा करते थे, उन्हें भिन्न-भिन्न पात्र और बछड़ोंके द्वारा वह वस्तु यह दूधके रूपमें प्रदान करती थी। यह धात्री (धारण करनेवाली) और विधात्री (उत्पन्न करनेवाली) है। यह श्रेष्ठ वसुन्धरा है, यह समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाली धेनु है तथा यह पुण्योंसे अलङ्कृत, परम पावन, पुण्यदायिनी, पुण्यमयी और सब प्रकारके धान्योंको अङ्कुरित करनेवाली है। यह सम्पूर्ण चराचर जगत्की प्रतिष्ठा और योनि (उत्पत्तिस्थान) है। यही महालक्ष्मी और सब प्रकारके कल्याणकी जननी है। यही पाँचों भूतोंका प्रकाश और रूप है। यह समुद्रपर्यन्त पृथ्वी पहले 'मेदिनी'के नामसे

प्रसिद्ध थी। फिर अपनेको वेनकुमार राजा पृथुकी पुत्री स्वीकार करनेके कारण यह 'पृथ्वी' कहलाने लगी।

ब्राह्मणो! पृथुके प्रयत्नसे इस पृथ्वीपर घर और गाँवोंकी नींव पड़ी। फिर बड़े बड़े कस्बे और शहर इसकी शोभा बढ़ाने लगे। यह धन-धान्यसे सम्पन्न हुई और सब प्रकारके तीर्थ इसके ऊपर प्रकट हुए। इस वसुमती देवीकी ऐसी ही महिमा बतलायी गयी है। यह सर्वदा सर्वलोकमयी मानी गयी है। वेनकुमार महाराज पृथुका ऐसा ही प्रभाव पुराणोंमें वर्णित है। ये महाभाग नरेश सम्पूर्ण धर्मोंके प्रकाशक, वर्णों और आश्रमोंके संस्थापक तथा समस्त लोकोंके धारण-पोषण करनेवाले थे। जो सौभाग्यशाली राजा इस लोकमें वास्तविक राजपद प्राप्त करना चाहते हों, उन्हें परम प्रतापी राजा वेनकुमार पृथुको नमस्कार करना चाहिये। जो धनुर्वेदका ज्ञान और युद्धमें सदा ही विजय प्राप्त करना चाहते हों, उन्हें भी महाराज पृथुको प्रणाम करना चाहिये। सम्राट् पृथु राजा-महाराजाओंको भी जीविका प्रदान करनेवाले थे। द्विजवरो! यह प्रसङ्ग धन, यश, आरोग्य और पुण्य प्रदान करनेवाला है। जो मनुष्य महाराज पृथुके चरित्रका श्रवण करता है, उसे प्रतिदिन गङ्गास्नानका फल मिलता है तथा वह सब पापोंसे शुद्ध होकर भगवान् श्रीविष्णुके परमधामको जाता है।

मृत्युकन्या सुनीथाको गन्धर्वकुमारका शाप, अङ्गकी तपस्या और भगवान्‌से वर-प्राप्ति

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! पापाचारपूर्ण बर्ताव करनेवाले जिस राजा वेनका आपने परिचय दिया है, उस पापीको उस व्यवहारका कैसा फल मिला?

सूतजी बोले—ब्राह्मणो! पृथु-जैसे सौभाग्यशाली और महात्मा पुत्रके जन्म लेनेपर राजा वेन पापरहित हो गया। उसे धर्मका फल प्राप्त हुआ। जिन नरेशोंने समस्त महापापोंका उपार्जन किया है, उनके वे पाप तीर्थ-यात्रासे नष्ट हो जाते हैं और संतोंका सङ्ग प्राप्त होनेसे पुण्यकी ही वृद्धि होती रहती है। पापियोंसे बातचीत करने, उन्हें देखने, स्पर्श करने, उनके साथ बैठने, भोजन करने तथा उनके सङ्गमें रहनेसे पापका सञ्चार होता है और पुण्यात्माओंके सङ्गसे केवल पुण्यका ही प्रसार होता है, जिससे सारे पाप धुल जानेके कारण मनुष्य पुण्य गतिको ही प्राप्त करते हैं।

ऋषियोंने पूछा—महामते! पापी मनुष्योंको परम सिद्धिकी प्राप्ति कैसे होती है, यह बात [भी] हमें विस्तारके साथ बतलाइये।

सूतजी बोले—नर्मदा, यमुना और गङ्गा—इन नदियों-की धाराके आस-पास जो महापापी रहते हैं, वे जान-बूझकर या बिना जाने भी इनके जलमें नहाते और क्रीड़ा करते हैं; अतः महानदीके संसर्गसे उन्हें परम गतिकी प्राप्ति हो जाती है। द्विजवरो! महानदीके सम्पर्कसे अथवा अन्यान्य नदियोंके परम पवित्र जलका दर्शन, स्पर्श और पान करनेसे पापियोंका पाप नष्ट हो जाता है। तीर्थोंके प्रभाव तथा संतोंके सङ्गसे पापियोंका पाप उसी प्रकार नष्ट होता है, जैसे आग ईंधनको जला डालती है। महात्मा ऋषियोंके संसर्ग, उनके साथ वार्तालाप करनेसे, दर्शन और स्पर्शसे तथा पूर्वकालमें सत्सङ्ग प्राप्त होनेसे राजा वेनका सारा पाप नष्ट हो गया था। पुण्यका संसर्ग हो जानेपर अत्यन्त भयङ्कर पापका भी सञ्चार नहीं होता।

पूर्वकालमें मृत्युके एक सौभाग्यशालिनी कन्या उत्पन्न हुई थी, जिसका नाम सुनीथा रखा गया था। वह पिताके कार्योंको देखती और खेल-कूदमें सदा उन्हींका अनुकरण किया करती थी। एक दिन सुनीथा अपनी सखियोंके साथ खेलती हुई वनमें गयी। वहाँ गीतकी ध्वनि उसके कानोंमें पड़ी। तब सुनीथाने उस ओर दृष्टिपात किया। देखा, गन्धर्वकुमार महाभाग सुशङ्ख भारी तपस्यामें लगा हुआ है। उसके सारे अङ्ग बड़े ही मनोहर थे। सुनीथा प्रतिदिन वहाँ जाकर उस तपस्वीको सताने लगी। सुशङ्ख रोज-रोज उसके अपराधको क्षमा कर देता और कहता—'जाओ, चली जाओ यहाँसे।' उसके यों कहनेपर वह बालिका कुपित हो जाती और बेचारे तपस्वीको पीटने लगती थी। उसका यह बर्ताव देखकर एक दिन सुशङ्ख क्रोधसे मूर्च्छित हो उठा और बोला—'कल्याणी! श्रेष्ठ पुरुष मारनेके बदले न तो मारते हैं और न किसीके गाली देनेपर क्रोध ही करते हैं; यही धर्मकी मर्यादा है।' पाप करनेवाली सुनीथासे ऐसा कहकर वह धर्मात्मा गन्धर्व क्रोधसे निवृत्त हो रहा और उसे अबला स्त्री जानकर बिना कुछ दण्ड दिये लौट गया।

सुनीथाने पिताके पास जाकर कहा—'तात! मैंने वनमें जाकर एक गन्धर्वकुमारको पीटा है, वह काम क्रोधसे रहित हो तपस्या कर रहा था। मेरे पीटनेपर उस धर्मात्माने कहा है—मारनेवालेको मारना और गाली देनेवालेको गाली देना

उचित नहीं है। पिताजी! बताइये, उसके इस कथनका क्या कारण है?' सुनीथाके इस प्रकार पूछनेपर धर्मात्मा मृत्युने उससे कुछ भी नहीं कहा। उसके प्रश्नका उत्तर ही नहीं दिया। तदनन्तर वह फिर वनमें गयी। सुशङ्ख तपस्यामें लगा था। दुष्ट स्वभाववाली सुनीथाने उस श्रेष्ठ तपस्वीके पास जाकर उसे कोड़ोंसे पीटना आरम्भ किया। अब वह



महातेजस्वी गन्धर्व अपने क्रोधको न रोक सका। उस सुन्दरी बालिकाको शाप देते हुए बोला—'गृहस्थ-धर्ममें प्रवेश करनेपर जब तुम्हारा अपने पतिके साथ सम्पर्क होगा, तब तुम्हारे गर्भसे देवताओं और ब्राह्मणोंकी निन्दा करनेवाला, पापाचारी, सब प्रकारके पापोंमें आसक्त और दुष्ट पुत्र उत्पन्न होगा।' इस प्रकार शाप दे वह पुनः जाकर तपस्यामें ही लग गया।

महाभाग गन्धर्वकुमारके चले जानेपर सुनीथा अपने घर आयी। वहाँ उसने पितासे सारा वृत्तान्त कह सुनाया। मृत्युने कहा—'अरी! उस निर्दोष तपस्वीको तुमने क्यों मारा है? भद्रे! तपस्यामें लगे हुए पुरुषको मारना—यह तुम्हारे द्वारा उचित कार्य नहीं हुआ।' धर्मात्मा मृत्यु ऐसा कहकर बहुत दुखी हो गये।

सूतजी कहते हैं—एक समयकी बात है, महर्षि अत्रिके पुत्र महातेजस्वी राजा अङ्ग नन्दन-वनमें गये थे। वहाँ उन्होंने गन्धर्वों, किन्नरों और अप्सराओंके साथ देवराज इन्द्रका दर्शन किया। उनके वैभव, उनके भोग-विलास और उनकी लीला देखकर धर्मात्मा अङ्ग सोचने लगे—'किस उपायसे मुझे इन्द्रके समान पुत्रकी प्राप्ति हो?' क्षणभर इस बातका विचार करके राजा अङ्ग खिन्न हो उठे। नन्दन-वनसे जब वे घर लौटे तो अपने पिता अत्रिके चरणोंमें मस्तक झुकाकर बोले—'पिताजी! आप ज्ञानवानोंमें श्रेष्ठ और पुत्रपर स्नेह रखनेवाले हैं। मुझे इन्द्रके समान वैभवशाली पुत्र कैसे प्राप्त हो, इसका कोई उपाय बताइये।'

अत्रिने कहा—साधुश्रेष्ठ! भक्ति करने और श्रद्धापूर्वक ध्यान लगानेसे भगवान् श्रीविष्णु संतुष्ट होते हैं और संतुष्ट होनेपर वे सदा सब कुछ देते रहते हैं। भगवान् श्रीगोविन्द सब वस्तुओंके दाता, सबकी उत्पत्तिके कारण, सर्वज्ञ, सर्ववेत्ता, सर्वेश्वर और परमपुरुष हैं। इसलिये तुम उन्हींकी आराधना करो। बेटा! तुम जो-जो चाहते हो, वह सब उनसे प्राप्त होगा। भगवान् श्रीविष्णु सुख, परमार्थ और मोक्ष देनेवाले तथा इस जगत्के ईश्वर हैं। अतः जाओ, उनकी आराधना करो; उनसे तुम्हें इन्द्रके समान पुत्र प्राप्त होगा।

ब्रह्माजीके पुत्र अङ्गके पिता महर्षि अत्रि ब्रह्माके समान ही तेजस्वी थे। उनसे आज्ञा लेकर अङ्गने प्रस्थान किया। वे सुवर्ण और रत्नमय शिखरोंसे सुशोभित मेरुगिरिके मनोहर शिखरपर चले गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने गङ्गाजीके पवित्र तटपर एकान्तमें स्थित रत्नमय



कन्दरामें प्रवेश किया। महामुनि अङ्ग बड़े मेधावी और धर्मात्मा थे। वे काम-क्रोधका त्याग करके सम्पूर्ण इन्द्रियोंको काबूमें रखकर भगवान्‌के मनोमय स्वरूपका ध्यान करने लगे। क्लेशहारी भगवान् श्रीकृष्णका ध्यान करते-करते वे ऐसे तन्मय हो गये कि बैठने, सोने, चलने तथा चिन्तन करनेके समय भी उन्हें नित्य निरन्तर भगवान् श्रीमधुसूदन ही दिखायी देते थे। उनका मन भगवान्‌में लग गया था। वे योगयुक्त और जितेन्द्रिय होकर चराचर जीवों तथा सूखे और गीले आदि समस्त पदार्थोंमें केवल भगवान् श्रीविष्णुका ही दर्शन करते थे। इस प्रकार तपस्या करते उन्हें सौ वर्ष बीत गये। नियम, संयम तथा उपवासके कारण उनका सारा शरीर दुर्बल हो गया था, तो भी वे अपने तेजसे सूर्य और अग्निके समान देदीप्यमान दिखायी दे रहे थे। इस तरह तपस्यामें प्रवृत्त हो ध्यानमें लगे हुए राजा अङ्गके सामने भगवान् श्रीविष्णु प्रकट हुए और बोले—'मानद! वर माँगो, इन्द्रियोंके स्वामी भगवान् श्रीवासुदेवको उपस्थित देख राजा अङ्गको बड़ा हर्ष हुआ, उनका चित्त प्रसन्न हो गया। वे भगवान्‌को प्रणाम करके उनकी स्तुति करने लगे।

अङ्ग बोले—भूतभावन! आप ही सम्पूर्ण भूतोंकी गति हैं। पावन परमेश्वर! आप प्राणियोंके आत्मा, सब भूतोंके ईश्वर और सगुण स्वरूप धारण करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। आप गुणस्वरूप, गुह्य तथा गुणातीत हैं, आपको नमस्कार है। गुण, गुणकर्ता, गुणसम्पन्न और गुणात्मा भगवान्‌को प्रणाम है। आप भव (संसाररूप), भवकर्ता तथा भक्तोंके संसार-बन्धनका अपहरण करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। भवकी उत्पत्तिके कारण होनेसे आपका नाम 'भव' है, इस भवमें आप अव्यक्तरूपसे छिपे हुए हैं, इसलिये आपको 'भवगुह्य' कहा गया है तथा आप रुद्ररूपसे इस भव—संसारका विनाश करते हैं, इससे आपका नाम भवविनाशी है। आपको प्रणाम है। आप यज्ञ, यज्ञरूप, यज्ञेश्वर और यज्ञकर्ममें संलग्न हैं, आपको नमस्कार है। शङ्ख धारण करनेवाले भगवान्‌को प्रणाम है। सोनेके समान वर्णवाले परमात्माको नमस्कार है। चक्रधारी श्रीविष्णुको प्रणाम है। सत्य, सत्यभाव, सर्वसत्यमय, धर्म, धर्मकर्ता और सर्वविधाता आप भगवान्‌को प्रणाम है। धर्म आपका अङ्ग है, आप श्रेष्ठ वीर और धर्मके आधारभूत हैं, आपको नमस्कार है। आप माया-मोहके नाशक होते हुए भी सब प्रकारकी मायाओंके उत्पादक हैं, आपको नमस्कार है। आप मायाधारी, मूर्त (साकार) और अमूर्त (निराकार) भी हैं, आपको प्रणाम है। आप सब प्रकारकी मूर्तियोंको धारण करनेवाले और कल्याणकारी हैं, आपको नमस्कार है। ब्रह्मा, ब्रह्मरूप और परब्रह्मस्वरूप आप परमात्माको प्रणाम है। आप सबके धाम तथा धामधारी हैं, आपको नमस्कार है। आप श्रीमान्, श्रीनिवास, श्रीधर, क्षीरसागरवासी और अमृतस्वरूप हैं, आपको प्रणाम है। [संसाररूपी रोगके लिये] महान् औषध, दुष्टोंके लिये घोररूपधारी, महाप्रज्ञापरायण, अक्रूर (सौम्य), प्रमेध्य (परम पवित्र) तथा मेध्यों (पावन वस्तुओं) के स्वामी आप परमेश्वरको नमस्कार है। आपका कहीं अन्त नहीं है, आप अशेष (पूर्ण) और अनघ (पापरहित) हैं, आपको प्रणाम है। आकाशको प्रकाशित करनेवाले सूर्य-चन्द्रस्वरूप आपको नमस्कार है। आप हवनकर्म, हुतभोजी अग्नि तथा हविष्यरूप हैं, आपको नमस्कार है। आप बुद्ध (ज्ञानी), बुध (विद्वान्) तथा सदा बुद्ध (नित्यज्ञानी) हैं, आपको प्रणाम है।

स्वाहाकार, शुद्ध, अव्यक्त, महात्मा, व्यास (वेदोंका विस्तार करनेवाले), वासव (वसुपुत्र इन्द्र) तथा वसुस्वरूप हैं, आपको नमस्कार है। आप वासुदेव, विश्वरूप और वह्निस्वरूप हैं, आपको प्रणाम है। हरि, कैवल्यरूप तथा वामनभगवान्‌को नमस्कार है। सत्त्वगुणकी रक्षा करनेवाले भगवान् नृसिंहदेवको प्रणाम है। गोविन्द एवं गोपालको नमस्कार है। भगवन्! आप एकाक्षर (प्रणव), सर्वाक्षर (वर्णरूप) और हंसस्वरूप हैं, आपको प्रणाम है। तीन, पाँच और पचीस तत्त्व आपके ही रूप हैं, आप समस्त तत्त्वोंके आधार हैं। आपको नमस्कार है। आप कृष्ण (सच्चिदानन्दस्वरूप), कृष्णरूप (श्यामविग्रह) तथा लक्ष्मीनाथ हैं, आपको प्रणाम है। कमललोचन! आप परमानन्दमय प्रभुको नमस्कार है। आप विश्वके भरण-पोषण करनेवाले तथा पापोंके नाशक हैं, आपको प्रणाम है। पुण्योंमें भी उत्तम पुण्य तथा सत्यधर्मरूप आप परमात्माको नमस्कार है। शाश्वत, अविनाशी एवं पूर्ण आकाशस्वरूप परमेश्वरको प्रणाम है। महेश्वर श्रीपद्मनाभको नमस्कार है। केशव! आपके चरणकमलोंमें मैं प्रणाम करता हूँ। आनन्दकन्द! कमलाप्रिय! वासुदेव! सर्वेश्वर! ईश! मधुसूदन! मुझे अपनी दासता प्रदान कीजिये। शङ्ख धारण करनेवाले शान्तिदायी केशव! आपके चरणोंमें मस्तक झुकाता हूँ। प्रत्येक जन्ममें मुझपर कृपा कीजिये। मेरे स्वामी पद्मनाभ!

संसाररूपी दुःसह अग्निके तापसे मैं दग्ध हो रहा हूँ; आप ज्ञानरूपी मेघकी धारासे मेरे तापको शान्त कीजिये तथा मुझ दीनके लिये शरणरूप हो जाइये।

अङ्गके मुखसे यह स्तोत्र सुनकर भगवान्‌ने अङ्गको अपने श्रीविग्रहका दर्शन कराया। उनका मेघके समान श्याम वर्ण तथा महान् ओजस्वी शरीर था तथा हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म शोभा दे रहे थे। सब ओर महान् प्रकाश छा रहा था। श्रीभगवान् गरुड़की पीठपर बैठे थे। अङ्गोंमें सब प्रकारके आभूषण शोभा पा रहे थे। हार, कङ्कण और कुण्डलोंसे सुशोभित तथा वनमालासे उज्ज्वल उनका अत्यन्त दिव्यरूप बड़ा सुन्दर जान पड़ता था। भगवान् श्रीजनार्दन अङ्गके सामने विराजमान थे। श्रीवत्सनामक चिह्न और पुण्यमय कौस्तुभमणिसे उनकी अपूर्व शोभा हो रही थी। वे सर्वदेवमय श्रीहरि समस्त अलङ्कारोंकी शोभासे सम्पन्न अपने श्रीविग्रहकी झाँकी कराकर ऋषिश्रेष्ठ अङ्गसे बोले—'महाभाग! मैं तुम्हारी तपस्यासे संतुष्ट हूँ, तुम कोई उत्तम वर माँग लो।'

अङ्गने भगवान्‌के चरण-कमलोंमें बारंबार प्रणाम किया और अत्यन्त हर्षमें भरकर कहा—'देवेश्वर! मैं आपका दास हूँ; यदि आप मुझे वर देना चाहते हैं तो जैसी शोभा स्वर्गमें सम्पूर्ण तेजसे सम्पन्न इन्द्रकी है, वैसी ही शोभा पानेवाला एक सुन्दर पुत्र मुझे देनेकी कृपा करें। वह पुत्र सम्पूर्ण लोकोंकी रक्षा करनेवाला होना चाहिये। इतना ही नहीं, वह बालक समस्त देवताओंका प्रिय, ब्राह्मण-भक्त, दानी, त्रिलोकीका रक्षक, सत्यधर्मका निरन्तर पालन करनेवाला, यजमानोंमें श्रेष्ठ, त्रिभुवनकी शोभा बढ़ानेवाला, अद्वितीय शूरवीर, वेदोंका विद्वान्, सत्यप्रतिज्ञ, जितेन्द्रिय, शान्त, तपस्वी और सर्वशास्त्रविशारद हो। प्रभो! यदि आप वर देनेके लिये उत्सुक हों तो मुझे ऐसा ही पुत्र होनेका वरदान दीजिये।'

भगवान् वासुदेव बोले—महामते! तुम्हें इन सद्गुणोंसे युक्त उत्तम पुत्रकी प्राप्ति होगी, वह अत्रिवंशका रक्षक और सम्पूर्ण विश्वका पालन करनेवाला होगा। तुम भी मेरे परम धामको प्राप्त होगे।

इस प्रकार वरदान देकर भगवान् श्रीविष्णु अन्तर्धान हो गये।

सुनीथाका तपस्याके लिये वनमें जाना, रम्भा आदि सखियोंका वहाँ पहुँचकर उसे मोहिनी विद्या सिखाना, अङ्गके साथ उसका गान्धर्वविवाह, वेनका जन्म और उसे राज्यकी प्राप्ति

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! गन्धर्वश्रेष्ठ सुशङ्खने जब सुनीथाको शाप दे दिया, तब वह शाप उसके ऊपर किस प्रकार लागू हुआ? उसके बाद सुनीथाने कौन-कौन-सा कार्य किया? और उसको कैसा पुत्र प्राप्त हुआ?

सूतजी बोले—ब्राह्मणो! हम पहले बता आये हैं कि सुशङ्खके शाप देनेपर सुनीथा दुःखसे पीड़ित हो अपने पिताके निवासस्थानपर आयी और वहाँ उसने पितासे अपनी सारी करतूतें कह सुनायीं। मृत्युने सब बातें सुनकर अपनी पुत्री सुनीथासे कहा—'बेटी! तूने बड़ा भारी पाप किया है। तेरा यह कार्य धर्म और तेजका नाश करनेवाला है। काम-क्रोधसे रहित, परम शान्त, धर्मवत्सल और परब्रह्ममें स्थित तपस्वीको जो चोट पहुँचाता है, उसके पापात्मा पुत्र होता है तथा उसे उस पापका फल भोगना पड़ता है। वही जितेन्द्रिय और शान्त है, जो मारनेवालेको भी नहीं मारता। किन्तु तूने निर्दोष होनेपर भी उन्हें मारा है; अतः तेरे द्वारा यह महान् पाप हो गया है। पहले तूने ही अपराध किया है; फिर उन्होंने भी शाप दे दिया। इसलिये अब तू पुण्यकर्मोंका आचरण कर, सदा साधु पुरुषोंके सङ्गमें रहकर जीवन व्यतीत कर। प्रतिदिन योग, ध्यान और दानके द्वारा काल-यापन करती रह।

बाले! सत्सङ्ग महान् पुण्यदायक और परम कल्याणकारक होता है। सत्सङ्गका जो गुण है, उसके विषयमें एक सुन्दर दृष्टान्त देख। जल एक सद्वस्तु है; उसके स्पर्शसे, उसमें स्नान करनेसे, उसे पीनेसे तथा उसका दर्शन करनेसे भी बाहर और भीतरके दोष धुल जानेके कारण मुनिलोग सिद्धि प्राप्त करते हैं। तथा समस्त चराचर प्राणी भी जल पीते रहनेसे दीर्घायु होते हैं। [इसी प्रकार संतोंके सङ्गसे मनुष्य शुद्ध एवं सफलमनोरथ होते हैं।] पुत्री! सत्सङ्गसे मनुष्य संतोषी, मृदुगामी, सबका प्रिय करनेवाला, शुद्ध, सरस, पुण्य-बलसे सम्पन्न, शारीरिक और मानसिक मलोंको दूर करनेवाला, शान्तस्वभाव तथा सबको सुख देनेवाला होता

है। जैसे सुवर्ण अग्निके सम्पर्कमें आनेपर मैल त्याग देता है, उसी प्रकार मनुष्य संतोंके सङ्गसे पापका परित्याग कर देता है।* जिसमें सत्यकी अग्नि प्रज्वलित रहती है, वह अपने पुण्यमय तेजसे प्रकाशमान होता रहता है। जिसमें सत्यकी दीप्ति है, जो ज्ञानके द्वारा भी अत्यन्त निर्मल हो गया है तथा ध्यानके द्वारा अत्यन्त तेजस्वी प्रतीत होता है, पापसे पैदा हुए मनुष्य उसका स्पर्श नहीं कर सकते। सत्य-रूपी अग्निसे महात्मा पुरुष पापरूपी ईंधनको भस्म कर डालना चाहता है। इसलिये बेटी! तुझे सत्यका संसर्ग करना चाहिये। असत्यका नहीं। महाभागे! जाओ, भगवान् श्रीविष्णुका चिन्तन करो; पापभावको छोड़कर केवल पुण्यका आश्रय लो।'

पिताके इस प्रकार समझानेपर दुःखमें पड़ी हुई सुनीथा उनके चरणोंमें प्रणाम करके निर्जन वनमें चली गयी और वहाँ एकान्तमें रहकर तपस्या करने लगी। उसने काम, क्रोध, बालोचित चपलता, मोह, द्रोह और मायाको त्याग दिया। एक दिन उसके पास उसकी रम्भा आदि सखियाँ, जो तपःशक्तिसे सम्पन्न थीं, आयीं। उन्होंने देखा, सुनीथा दुःखका अनुभव कर रही है। ध्यानके ही साथ उसे चिन्ता करते देख वहाँ आयी हुई सहेलियोंने कहा—



'सखी! तुम्हारा कल्याण हो, तुम चिन्ता किसलिये करती हो? इस चिन्तामें क्यों डूबी हुई हो? अपने सन्तापका कारण बताओ। चिन्ता तो केवल दुःख देनेवाली होती है। एक ही चिन्ता सार्थक मानी गयी है, जो धर्मके लिये की जाती है। धर्मनन्दिनी! दूसरी चिन्ता जो योगियोंके हृदयमें होती है, [जिसके द्वारा वे ब्रह्मका चिन्तन करते हैं] वह भी सार्थक है। इनके सिवा और जितनी भी चिन्ताएँ हैं, सब निरर्थक हैं। उसकी कल्पना भी नहीं करनी चाहिये। चिन्ता शरीर, बल और तेजका नाश करनेवाली है; वह सारे सुखों-को नष्ट कर डालती है। साथ ही रूपको भी हानि पहुँचाती है। चिन्ता तृष्णा, मोह और लोभ—इन तीन दोषोंको ले आती है तथा प्रतिदिन उसीमें घुलते रहनेपर वह पापको भी उत्पन्न करती है। चिन्ता रोगोंकी उत्पत्ति और नरक-की प्रतिष्ठा कारण है। अतः चिन्ताको छोड़ो। जीव पूर्वजन्ममें अपने कर्मोंद्वारा जिन शुभाशुभ भोगोंका उपार्जन करता है, उन्हींका वह दूसरे जन्ममें उपभोग करता है। अतः समझदारको चिन्ता नहीं करनी चाहिये। तुम चिन्ता छोड़कर अपने सुख-दुःख आदिकी ही बात बताओ।

सखियोंके ये वचन सुनकर सुनीथाने अपना वृत्तान्त कहना आरम्भ किया। पहले सुशङ्खने उसे वनमें जिस प्रकार शाप दिया था, वह सारी घटना उसने सहेलियोंसे कह सुनायी। उसने अपने अपराधोंका भी वर्णन किया। उस समय महाभागा सुनीथा मानसिक दुःखसे बड़ा कष्ट पा रही थी। उसका सारा वृत्तान्त सुनकर सखियोंने कहा—'महाभागे! तुम्हें दुःखको तो त्याग ही देना चाहिये, क्योंकि वह शरीरका नाश करनेवाला है। शुभे! तुम्हारे अङ्गोंमें सती स्त्रियोंके जो उत्तम गुण हैं, उन्हें हम अन्यत्र कहीं नहीं देखतीं। उत्तम स्त्रियोंका पहला आभूषण रूप है, दूसरा शील, तीसरा सत्य, चौथा आर्यता (सदाचार),

* सतां सङ्गो महापुण्यो बहुक्षेमप्रदायकः ॥
बाले पश्य सुदृष्टान्तं सतां सङ्गस्य यद्गुणम्।
अयं संस्पर्शनालापनाद् दर्शनतोऽपि वा ॥
मुनयः सिद्धिमायान्ति बाह्याभ्यन्तरक्षालिताः।
आयुष्मन्तो भवन्त्येते लोकाः सर्वे चराचराः ॥
अपि सन्तोषशीलश्च मृदुगामी प्रियङ्करः।
निर्मलो रसवांश्चासौ पुण्यवीर्यो मलापहः ॥
तथा शान्तो भवेत् पुत्रि सर्वसौख्यप्रदायकः ॥
यथा वह्निप्रसङ्गाच्च मलं त्यजति काञ्चनम् ॥
तथा सतां हि संसर्गात् पापं त्यजति मानवः ॥
(३२। २४—२९)

पाँचवाँ धर्म, छठा सतीत्व, सातवाँ दृढ़ता, आठवाँ साहस (कार्य करनेका उत्साह), नवाँ मङ्गलगान, दसवाँ कार्य-कुशलता, ग्यारहवाँ कामभावका आधिक्य और बारहवाँ गुण मीठे वचन बोलना है। बाले! इन सभी गुणोंने तुम्हारा सम्मान बढ़ाया है; अतः देवि! तुम तनिक भी भय न करो। वरानने! जिस उपायसे तुम्हें धर्मात्मा पतिकी प्राप्ति होगी, उसे हम जानती हैं। तुम्हारा काम तो हमलोग ही सिद्ध कर देंगी। महाभागे! अब तुम स्वस्थ एवं निश्चिन्त हो जाओ। हम तुम्हें एक ऐसी विद्या प्रदान करेंगी, जो पुरुषोंको मोहित कर लेती है।

यह कहकर सखियोंने सुनीथाको वह सुखदायक विद्या-बल प्रदान किया और कहा—'कल्याणी! तुम देवता आदिमेंसे जिस-जिस पुरुषको मोहित करना चाहो, उसे-उसे तत्काल मोहित कर सकती हो।' सखियोंके यों कहनेपर सुनीथाने उस विद्याका अभ्यास किया। जब वह विद्या भलीभाँति सिद्ध हो गयी, तब सुनीथा बड़ी प्रसन्न हुई। वह सखियोंके साथ ही पुरुषोंको देखती हुई वनमें घूमने लगी। तदनन्तर उसने गङ्गाजीके तटपर एक रूपवान् ब्राह्मणको देखा, जो समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न और सूर्यके समान तेजस्वी थे। वे तपस्या कर रहे थे। उनका प्रभाव दिव्य था। उन तपस्वी महर्षिका रूप देखकर सुनीथाका मन मोह गया। उसने अपनी सखी रम्भासे पूछा—ये देवताओंसे भी श्रेष्ठ महात्मा कौन हैं?' रम्भा बोली—'सखी! अव्यक्त परमेश्वरसे ब्रह्माजीकी उत्पत्ति हुई है। उनसे प्रजापति अत्रिका जन्म हुआ, जो बड़े धर्मात्मा हैं। ये महामना तपस्वी उन्हींके पुत्र हैं, इनका नाम अङ्ग है। भद्रे! ये नन्दनवनमें आये थे। वहाँ नाना प्रकारके तेजसे सम्पन्न इन्द्रका वैभव देखकर इन्होंने भी उनके समान पद पानेकी अभिलाषा की। सोचा—जब मुझे भी वंशको बढ़ानेवाला ऐसा ही पुत्र प्राप्त हो, तब मेरा जन्म कल्याणकारी हो सकता है, साथ ही यश और कीर्ति भी मिल सकती है।' ऐसा विचार करके इन्होंने तपस्या और नियमोंके द्वारा भगवान् हृषीकेशकी आराधना की है। जब भगवान् अत्यन्त प्रसन्न होकर इनके सामने प्रकट हुए, तब इन महर्षिने इस प्रकार वर माँगा—'मधुसूदन! मुझे इन्द्रके समान वैभवशाली तथा अपने समान तेजस्वी एवं पराक्रमी पुत्र प्रदान कीजिये। वह पुत्र आपका भक्त एवं सब पापोंका नाश करनेवाला होना चाहिये।' श्रीभगवान्ने कहा—'महात्मन्! मैंने तुम्हें ऐसा पुत्र होनेका वर दिया। वह सबका पालन करनेवाला होगा।' [यों कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये।] तबसे विप्रवर अङ्ग किसी पवित्र कन्याकी तलाशमें हैं। जैसी तुम सब अङ्गोंसे मनोहर हो, वैसी ही कन्या वे चाहते हैं; अतः इन्हींको पतिरूपमें प्राप्त करो। इनसे तुम्हें पुण्यात्मा पुत्रकी प्राप्ति होगी। ये महाभाग तपस्वी और पुण्यबलसे सम्पन्न हैं। इनके वीर्यसे उत्पन्न हुआ पुत्र इन्हींकी गुणसम्पत्तिसे युक्त, महातेजस्वी, समस्त धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ, परम सौभाग्यशाली, पुण्यात्मा और योगतत्त्वका ज्ञाता होगा।'

सुनीथा बोली—भद्रे! तुमने ठीक कहा है, मैं ऐसा ही करूँगी। इस विद्यासे ब्राह्मणको मोहमें डालूँगी। तुम मुझे सहायता प्रदान करो; जिससे इस समय मैं उनके पास जाऊँ।

रम्भाने कहा—'मैं तुम्हारी सहायता करूँगी, तुम मुझे आज्ञा दो।' सुनीथाके नेत्र बड़े-बड़े थे। वह रूप और यौवनसे शोभा पा रही थी। उसने सद्भावनापूर्वक मायासे दिव्यरूप धारण किया। उसका मुख बड़ा ही मनोहर था। संसारमें उसके सुन्दर रूपकी कहीं तुलना नहीं थी। वह तीनों लोकोंको मोहित करने लगी। सुन्दरी सुनीथा झूलेपर जा बैठी और वीणा बजाती हुई मधुर स्वरमें गीत गाने लगी। उसका स्वर बड़ा मोहक था। उस समय महर्षि अङ्ग अपनी पवित्र गुफाके भीतर एकान्तमें ध्यान लगाये बैठे थे। वे काम-क्रोधसे रहित होकर भगवान् श्रीजनार्दनका चिन्तन कर रहे थे। उत्तम ताल-स्वरके साथ गाया हुआ वह मधुर और मनोहर गीत सुनकर अङ्गका चित्त ध्यानसे विचलित हो गया। उस मायामय सङ्गीतने उन्हें मोह लिया था। वे तुरंत ही आसनसे उठे और बारंबार इधर-उधर दृष्टि दौड़ाने लगे। मायासे उनका मन चञ्चल हो उठा था। वे बड़े वेगसे बाहर निकले और झूलेपर बैठी हुई वीणाधारिणी स्त्रीकी ओर देखा। वह मुसकराती हुई गा रही थी। महायशस्वी अङ्ग उसके गीत और रूप दोनोंपर मुग्ध हो गये। तत्पश्चात् वे महान् मोहके वशीभूत हो उस तरुणीके पास गये। विशाल नेत्र और मनोहर मुसकानवाली मृत्युकी यशस्विनी कन्या सुनीथाको देखकर अङ्गने पूछा—'सुन्दरी! तुम कौन हो? किसकी कन्या हो? सखियोंसे घिरी हुई यहाँ किस कामसे आयी हो? किसने तुम्हें इस वनमें भेजा है?'

परम बुद्धिमान् अङ्गका यह महत्त्वपूर्ण वचन सुनकर सुनीथा उनसे कुछ न बोली। उसने केवल सखीके मुखकी ओर देखा। रम्भाने इशारेसे कुछ कहकर सुनीथाको समझा दिया और वह स्वयं ही उन श्रेष्ठ ब्राह्मणसे आदरपूर्वक

बोली—'महर्षे ! यह मृत्युकी परम सौभाग्यवती कन्या है, लोकमें इसकी सुनीथाके नामसे प्रसिद्धि है । यह सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न है । इस समय यह बाला अपने लिये धर्मात्मा, तपस्वी, शान्त, जितेन्द्रिय, महाप्राज्ञ और वेदविद्या विशारद पतिकी खोजमें है ।'

यह सुनकर अङ्गने अप्सराओंमें श्रेष्ठ रम्भासे कहा—'भद्रे ! मैंने सर्वविश्वमय भगवान् श्रीहरिकी आराधना की है, उन्होंने मुझे पुत्र होनेका वरदान दिया है, जो सम्पूर्ण सिद्धियोंका दाता है । अत इस वरदानकी सफलताके निमित्त—उत्तम पुत्रकी प्राप्तिके लिये मैं किसी पुण्यबलसे सम्पन्न महापुरुषकी कन्याके साथ विवाहका विचार कर रहा था, किन्तु कहीं भी अपने लिये परम मङ्गलमयी कन्या नहीं पा सका । यह धर्मकी सुमुखी कन्या धर्माचारपरायणा है । यदि वास्तवमें यह पतिकी ही तलाशमें है तो मुझे ही स्वीकार करे । इसकी प्राप्तिके लिये मैं अदेय वस्तु भी दे सकता हूँ ।'

रम्भा बोली—'द्विजश्रेष्ठ ! आपको इसी प्रकार उदारतापूर्वक इसकी अभीष्ट वस्तु इसे देनी चाहिये । यह सदाके लिये आपकी धर्मपत्नी हो रही है, आप कभी इसका परित्याग न करें । इसके दोष-गुणोंपर कभी आपको ध्यान नहीं देना चाहिये । विप्रवर ! इस विषयमें आप मुझे प्रत्यक्ष विश्वास दिलाइये । सत्यकी प्रतीति दिलानेवाला अपना हाथ इसके हाथमें दीजिये ।' अङ्गने कहा—'एवमस्तु ।' निश्चय ही अपना हाथ मैंने इसे दे दिया ।'

इस प्रकार सत्यका विश्वास करानेवाला सम्बन्ध करके अङ्गने सुनीथाको गान्धर्व विवाहकी प्रणालीके अनुसार ग्रहण किया । सुनीथाको उन्हें सौंपकर रम्भाके हृदयमें बड़ा हर्ष हुआ । वह अपनी सखीसे आज्ञा लेकर घरको चली गयी । दूसरी-दूसरी सखियोंने भी प्रसन्न होकर अपने-अपने घरकी राह ली । उन सब सहेलियोंके चले जानेपर द्विजश्रेष्ठ अङ्ग अपनी प्यारी पत्नीके साथ विहार करने लगे । उसके गर्भसे उन्होंने एक सर्वलक्षणसम्पन्न पुत्र उत्पन्न किया और उसका नाम वेन रखा । सुनीथाका वह महातेजस्वी बालक दिनोंदिन बढ़ने लगा और वेद शास्त्र तथा उपकारी धनुर्वेदका अध्ययन करके समस्त विद्याओंका पारगामी विद्वान् हो गया । क्योंकि वह बड़ा मेधावी था । अङ्गकुमार वेन सज्जनोचित आचारसे रहता था । वह क्षत्रियधर्मका पालन करने लगा । वैवस्वत मन्वन्तर आनेपर संसारकी सारी प्रजा राजाके बिना निरन्तर कष्ट पाने लगी । उस समय सब लोगोंने वेनको ही सब लक्षणोंसे सम्पन्न देखा । तब श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने उन्हें प्रजापतिके पदपर अभिषिक्त कर दिया । तत्पश्चात् समस्त ऋषि अपने अपने तपोवनमें चले गये । उन सबके जानेके पश्चात् अकेले वेन ही राज्यका पालन करने लगे । इस प्रकार वेन भूमण्डलके प्रजापालक हुए । उनके समयमें सब लोग सुखसे जीवन बिताते थे । प्रजा उनके धर्मसे प्रसन्न रहती थी । वेनके राज्यका प्रभाव ऐसा ही था । उनके शासनकालमें सर्वत्र धर्मका प्रभाव छा रहा था ।



छद्मवेषधारी पुरुषके द्वारा जैन धर्मका वर्णन, उसके बहकावेमें आकर वेनकी पापमें प्रवृत्ति और सप्तर्षियोंद्वारा उसकी भुजाओंका मन्थन



ऋषियोंने पूछा—सूतजी ! जब इस प्रकार राजा वेनकी उत्पत्ति ही महात्मा पुरुषसे हुई थी, तब उन्होंने धर्ममय आचरणका परित्याग करके पापमें कैसे मन लगाया ?

सूतजी बोले—वेनकी जिस प्रकार पापाचारमें प्रवृत्ति हुई, वह सब बात मैं बता रहा हूँ । धर्मके ज्ञाता प्रजापालक राजा वेन जब शासन कर रहे थे, उस समय कोई पुरुष छद्मवेष धारण किये उनके दरबारमें आया । उसका नग धड़ग रूप, विशाल शरीर और सफेद सिर था । वह बड़ा कान्तिमान् जान पड़ता था । काँखमें मोरपंखकी बनी हुई मार्जनी (ओघा) दबाये और एक हाथमें नारियलका जलपात्र (कमण्डलु) धारण किये वह वेद शास्त्रोंको दूषित करनेवाले शास्त्रका पाठ कर रहा था । जहाँ महाराज वेन बैठे थे, उसी स्थानपर वह बड़ी उतावलीके साथ पहुँचा । उसे आया देख वेनने पूछा—'आप कौन हैं, जो ऐसा अद्भुत रूप धारण किये यहाँ आये हैं ? मेरे सामने सब बातें सच-सच बताइये ।' वेनका वचन सुनकर उस



पुरुषने उत्तर दिया—'तुम इस प्रकार धर्मके पचड़ेमें पड़कर जो राज्य चला रहे हो, वह सब व्यर्थ है। तुम बड़े मूढ़ जान पड़ते हो। [मेरा परिचय जानना चाहते हो तो सुनो।] मैं देवताओंका परम पूज्य हूँ। मैं ही ज्ञान, मैं ही सत्य और मैं ही सनातन ब्रह्मा हूँ। मोक्ष भी मैं ही हूँ। मैं ब्रह्माजीके देहसे उत्पन्न सत्यप्रतिज्ञ पुरुष हूँ। मुझे जिनस्वरूप जानो। सत्य और धर्म ही मेरा कलेवर है। ज्ञानपरायण योगी मेरे ही स्वरूपका ध्यान करते हैं।'

वेनने पूछा—आपका धर्म कैसा है ? आपका शास्त्र क्या है ? तथा आप किस आचारका पालन करते हैं ? ये सब बातें बताइये।

जिन बोला—जहाँ 'अर्हन्' देवता, निर्ग्रन्थ गुरु और दयाको ही परम धर्म बताया गया है, वहीं मोक्ष देखा जाता है। यही जैन-दर्शन है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। अब मैं अपने आचार बतला रहा हूँ। मेरे मतमें यजन-याजन और वेदाध्ययन नहीं है। सन्ध्योपासन भी नहीं है। तपस्या, दान, स्वधा (श्राद्ध) और स्वाहा (अग्निहोत्र)-का भी परित्याग किया गया है। हव्य-कव्य आदिकी भी आवश्यकता नहीं है। यज्ञ-यागादि क्रियाओंका भी अभाव है। पितरोंका तर्पण, अतिथियोंका सत्कार तथा बलि-वैश्वदेव आदि कर्मोंका भी विधान नहीं किया गया है। केवल 'अर्हन्' का ध्यान ही उत्तम माना गया है। जैन-मार्गमें प्रायः ऐसे धर्मका आचरण ही दृष्टिगोचर होता है।

प्राणियोंका यह शरीर पाँचों तत्त्वोंसे ही बनता और परिपुष्ट होता है। आत्मा वायुस्वरूप है; अतः श्राद्ध और यज्ञ आदि क्रियाओंकी कोई आवश्यकता नहीं है। जैसे पानीमें जल-जन्तुओंका समागम होता है तथा जिस प्रकार बुलबुले पैदा होते और विलीन हो जाते हैं, उसी प्रकार संसारमें समस्त प्राणियोंका आवागमन होता रहता है। अन्तकाल आनेपर वायुरूप आत्मा शरीर छोड़कर चला जाता है और पञ्चतत्त्व पाँचों भूतोंमें मिल जाते हैं। फिर मोहसे मुग्ध मनुष्य परस्पर मिलकर मरे हुए जीवके लिये श्राद्ध आदि पारलौकिक कृत्य करते हैं। मोहवश क्षयाह तिथिको पितरोंका तर्पण करते हैं। भला, मरा हुआ मनुष्य कहाँ रहता है ? किस रूपमें आकर श्राद्ध आदिका उपभोग करता है ? मिष्टान्न खाकर तो ब्राह्मणलोग तृप्त होते हैं। [मृतात्माको क्या मिलता है ?] । इसी प्रकार दानकी भी आवश्यकता नहीं जान पड़ती। दान क्यों दिया जाता है ? दान देना उत्कृष्ट कर्म नहीं समझना चाहिये। यदि अन्नका भोजन किया जाय तो इसीमें उसकी सार्थकता है। यदि दान ही देना हो तो दयाका दान देना चाहिये, दयापरायण होकर प्रतिदिन जीवोंकी रक्षा करनी चाहिये। ऐसा करनेवाला पुरुष चाण्डाल हो या शूद्र, उसे ब्राह्मण ही कहा गया है। दानका भी कोई फल नहीं है, इसलिये दान नहीं देना चाहिये। जैसा श्राद्ध, वैसा दान; दोनोंका एक ही उद्देश्य है। केवल भगवान् जिनका बताया हुआ धर्म ही भोग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाला है। मैं तुम्हारे सामने उसीका वर्णन करता हूँ। वह बहुत पुण्यदायक है। पहले शान्त चित्तसे सबपर दया करनी चाहिये। फिर हृदयसे—मनके शुद्ध भावसे चराचरस्वरूप एकमात्र जिनकी आराधना करनी चाहिये। उन्हींको नमस्कार करना उचित है। नृप-श्रेष्ठ वेन ! माता-पिताके चरणोंमें भी कभी मस्तक नहीं झुकाना चाहिये; फिर औरोंकी तो बात ही क्या है।

वेनने पूछा—ये ब्राह्मण तथा आचार्यगण गङ्गा आदि नदियोंको पुण्यतीर्थ बतलाते हैं; इनका कहना है, ये तीर्थ महान् पुण्य प्रदान करनेवाले हैं। इसमें कहाँतक सत्य है, यह बतानेकी कृपा कीजिये।

जिन बोला—महाराज ! आकाशसे बादल एक ही

समय जो पानी बरसाते हैं, वह पृथ्वी और पर्वत—सभी स्थानोंमें गिरता है। वही बहकर नदियोंमें एकत्रित होता है, और वहाँसे सर्वत्र जाता है। नदियाँ तो जल बहानेवाली हैं ही, उनमें तीर्थ कैसा। सरोवर और समुद्र—सभी जलके आश्रय हैं, पृथ्वीको धारण करनेवाले पर्वत भी केवल पत्थरकी राशि हैं, इनमें तीर्थ नामकी कोई वस्तु नहीं है। यदि समुद्र आदिमें स्नान करनेसे सिद्धि मिलती है तो मछलियोंको सबसे पहले सिद्ध होना चाहिये, पर ऐसा नहीं देखा जाता। राजेन्द्र! एकमात्र भगवान् जिन ही सर्वमय हैं, उनसे बढ़कर न कोई धर्म है न तीर्थ। संसारमें जिन ही सर्वश्रेष्ठ हैं, अतः उन्हींका ध्यान करो, इससे तुम्हें नित्य सुखकी प्राप्ति होगी।

इस प्रकार उस पुरुषने वेद, दान, पुण्य तथा यशरूप समस्त धर्मोंकी निन्दा करके अङ्ग कुमार राजा वेनको पापके भावोंद्वारा बहुत कुछ समझाया बुझाया। उसके इस प्रकार समझानेपर वेनके हृदयमें पापभावका उदय हो गया। वेन उसकी बातोंसे मोहित हो गया। उसने उसके चरणोंमें प्रणाम करके वैदिक धर्म तथा सत्य धर्म आदिकी क्रियाओंको त्याग दिया। पापात्मा वेनके शासनसे संसार पापमय हो गया—उसमें सब तरहके पाप होने लगे। वेनने वेद, यज्ञ और उत्तम धर्मशास्त्रोंका अध्ययन बंद करा दिया। उसके शासनमें ब्राह्मणलोग न दान करने पाते थे न स्वाध्याय। इस प्रकार धर्मका सर्वथा लोप हो गया और सब ओर महान् पाप छा गया। वेन अपने पिता अङ्गके मना करनेपर भी उनकी आज्ञाके विपरीत ही आचरण करता था। वह दुरात्मा न पिताके चरणोंमें प्रणाम करता था न माताके। वह पुण्य, तीर्थ स्नान और दान आदि भी नहीं करता था। उसके महायशस्वी पिताने अपने भाव और स्वरूपपर बहुत कालतक विचार किया, किन्तु किसी तरह उनकी समझमें यह बात नहीं आयी कि वेन पापी कैसे हो गया।

तदनन्तर एक दिन सप्तर्षि अङ्गकुमार वेनके पास आये और उसे आश्वासन देते हुए बोले—'वेन! दुःसाहस न करो, तुम यहाँ समस्त प्रजाके रक्षक बनाये गये हो, यह सारा जगत् तुमपर ही अवलम्बित है, धर्माधर्मरूप सम्पूर्ण विश्वका भार तुम्हारे ही ऊपर है। अतः पापकर्म छोड़कर धर्मका आचरण करो।'



सप्तर्षियोंके यों कहनेपर वेन हँसकर बोला—'मैं ही परम धर्म हूँ और मैं ही सनातन देवता अर्हन् हूँ। धाता, रक्षक और सत्य भी मैं ही हूँ। मैं परम पुण्यमय सनातन जैनधर्म हूँ। ब्राह्मणो! मुझ धर्मरूपी देवताका ही तुम लोग अपने कर्मोंद्वारा भजन करो।'

ऋषि बोले—राजेन्द्र! ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—ये तीन वर्ण द्विजाति कहलाते हैं। इन सभी वर्णोंके लिये सनातन श्रुति ही परम प्रमाण है। समस्त प्राणी वैदिक आचारसे ही रहते हैं और उसीसे जीविका चलाते हैं। राजाके पुण्यसे प्रजा सुखपूर्वक जीवन निर्वाह करती है और राजाके पापसे उसका नाश हो जाता है, इसलिये तुम सत्यका आचरण करो। यह जैनधर्म सत्ययुग, त्रेता और द्वापरका धर्म नहीं है, कलियुगका प्रवेश होनेपर ही कुछ मनुष्य इसका आश्रय लेंगे। जैनधर्म ग्रहण करके सब मनुष्य पापसे मोहित हो जायँगे, वे वैदिक आचारका त्याग करके पाप बढ़ायेंगे। भगवान् श्रीगोविन्द सब पापोंके हरनेवाले हैं। वे ही कलियुगमें पापोंका संहार करेंगे। पापियोंके एकत्रित होनेपर म्लेच्छोंका नाश करनेके लिये साक्षात् भगवान् श्रीविष्णु ही कल्किरूपमें अवतीर्ण होंगे, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। अतः वेन! तुम कलियुगके व्यवहारको त्याग दो और पुण्यका आश्रय लो।



वेनपर भगवत्कृपा

वेनने कहा—ब्राह्मणो ! मैं ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ हूँ, विश्वका ज्ञान मेरा ही ज्ञान है । जो मेरी आज्ञाके विपरीत बर्ताव करता है, वह निश्चय ही दण्डका पात्र है ।

पापबुद्धि राजा वेनको बहुत बढ़-बढ़कर बातें करते देख ब्रह्माजीके पुत्र महात्मा सप्तर्षि कुपित हो उठे । उनके शापके भयसे वेन एक बाँबीमें घुस गया; किन्तु वे ब्रह्मर्षि उस क्रूर पापीको वहाँसे बलपूर्वक पकड़ लाये और क्रोधमें भरकर राजाके बायें हाथका मन्थन करने लगे । उससे एक नीच जातिका मनुष्य पैदा हुआ, जो बहुत ही नाटा, काला और भयङ्कर था । वह निषादों और विशेषतः म्लेच्छोंका धारण-पोषण करनेवाला राजा हुआ । तत्पश्चात् ऋषियोंने दुरात्मा वेनके दाहिने हाथका मन्थन किया । उससे महात्मा राजा पृथुका जन्म हुआ, जिन्होंने वसुन्धराका दोहन किया था । उन्हींके पुण्य-प्रसादसे राजा वेन धर्म और अर्थका ज्ञाता हुआ ।

वेनकी तपस्या और भगवान् श्रीविष्णुके द्वारा उसे दान-तीर्थ आदिका उपदेश

सूतजी कहते हैं—द्विजवरो ! ऋषियोंके पुण्यमय संसर्गसे, उनके साथ वार्तालाप करनेसे तथा उनके द्वारा शरीरका मन्थन होनेसे, वेनका पाप निकल गया । तत्पश्चात् उसने नर्मदाके दक्षिण तटपर रहकर तपस्या आरम्भ की । तृणविन्दु ऋषिके पापनाशक आश्रमपर निवास करते हुए वेनने काम-क्रोधसे रहित हो सौ वर्षोंसे कुछ अधिक कालतक तप किया । राजा वेन निष्पाप हो गया था । अतः उसकी तपस्यासे प्रसन्न होकर शङ्ख, चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान् श्रीविष्णुने उसे प्रत्यक्ष दर्शन दिया और प्रसन्नतापूर्वक कहा—'राजन् ! तुम मुझसे कोई उत्तम वर माँगो ।'

वेनने कहा—देवेश्वर ! यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे यह उत्तम वर दीजिये । मैं पिता और माताके साथ इसी शरीरसे आपके परमपदको प्राप्त करना चाहता हूँ । देव ! आपके ही तेजसे आपके परमधाममें जाना चाहता हूँ ।

भगवान् श्रीविष्णु बोले—महाभाग ! पूर्वकालमें तुम्हारे महात्मा पिता अङ्गने भी मेरी आराधना की थी । उसी समय मैंने उन्हें वरदान दिया था कि तुम अपने पुण्यकर्मसे मेरे परम उत्तम धामको प्राप्त होगे । वेन ! मैं तुम्हें पहलेका वृत्तान्त बतला रहा हूँ । तुम्हारी माता सुनीथाको बाल्यकालमें सुशङ्खने कुपित होकर शाप दिया था । तदनन्तर तुम्हारा उद्धार करनेकी इच्छासे मैंने ही राजा अङ्गको वरदान दिया कि 'तुम्हें सुयोग्य पुत्रकी प्राप्ति होगी ।' गुणवत्सल ! तुम्हारे पितासे तो मैं ऐसा कह ही चुका था, इस समय तुम्हारे शरीरसे भी मैं ही [पृथुके रूपमें] प्रकट होकर लोकका पालन कर रहा हूँ । पुत्र अपना ही रूप होता है—यह श्रुति सत्य है । अतः राजन् ! मेरे वरदानसे तुम्हें उत्तम गति मिलेगी । अब तुम एकमात्र दान-धर्मका अनुष्ठान करो । दान ही सबसे श्रेष्ठ धर्म है; इसलिये तुम दान दिया करो । दानसे पुण्य होता है, दानसे पाप नष्ट हो जाता है, उत्तम दानसे कीर्ति होती है और सुख मिलता है । जो श्रद्धायुक्त चित्तसे सुपात्र ब्राह्मणको गौ, भूमि, सोने और अन्न आदिका महादान देता है, वह अपने मनसे जिस-जिस वस्तुकी इच्छा करता है, वह सब मैं उसे देता हूँ ।

वेनने कहा—जगन्नाथ ! मुझे दानोपयोगी कालका लक्षण बतलाइये, साथ ही तीर्थका स्वरूप और पात्रके उत्तम लक्षणका भी वर्णन कीजिये । दानकी विधिको विस्तारके साथ बतलानेकी कृपा कीजिये । मेरे मनमें यह सब सुननेकी बड़ी श्रद्धा है ।

भगवान् श्रीविष्णु बोले—राजन् ! मैं दानका समय बताता हूँ । महाराज ! नित्य, नैमित्तिक और काम्य—ये दानकालके तीन भेद हैं । चौथा भेद प्रायिक (मृत्यु) सम्बन्धी कहलाता है । भूपाल ! मेरे अंशभूत सूर्यको उदय होते देख जो जलमात्र भी अर्पण करता है, उसके पुण्यवर्द्धक नित्यकर्मकी कहाँतक प्रशंसा की जाय । उस उत्तम वेलाके प्राप्त होनेपर जो श्रद्धा और भक्तिके साथ स्नान करता तथा पितरों और देवताओंका पूजन करके दान देता है, जो अपनी शक्ति और प्रभावके अनुसार दयार्द्र चित्तसे अन्न-जल, फल-फूल, वस्त्र, पान, आभूषण, सुवर्ण आदि वस्तुएँ दान करता है, उसका पुण्य अनन्त होता है । राजन् ! मध्याह्न और तीसरे पहरमें भी जो मेरे उद्देश्यसे खान-पान आदि वस्तुएँ दान करता है, उसके पुण्यका भी अन्त नहीं है । अतः जो अपना कल्याण चाहता है, उस पुरुषको तीनों समय निश्चय ही दान करना चाहिये । अपना कोई भी दिन दानसे खाली नहीं जाने देना चाहिये । राजन् ! दानके प्रभावसे मनुष्य बहुत बड़ा बुद्धिमान्,

अधिक सामर्थ्यशाली, धनाढ्य और गुणवान् होता है। यदि एक पक्ष या एक मासतक मनुष्य अन्नका दान नहीं करता तो मैं उसे भी उतने ही समयतक भूखा रखता हूँ। उत्तम दान न देनेवाला मनुष्य अपने मलका भक्षण करता है। मैं उसके शरीरमें ऐसा रोग उत्पन्न कर देता हूँ, जिससे उसके सब भोगोंका निवारण हो जाता है। जो तीनों कालोंमें ब्राह्मणों और देवताओंको दान नहीं देता तथा स्वयं ही मिष्टान्न खाता है, उसने महान् पाप किया है। महाराज! शरीरको सुखा देनेवाले उपवास आदि भयंकर प्रायश्चित्तोंके द्वारा उस को अपने देहका शोषण करना चाहिये।

नरश्रेष्ठ! अब मैं तुम्हारे सामने नैमित्तिक पुण्यकालका वर्णन करता हूँ, मन लगाकर सुनो महाराज! अमावास्या, पूर्णिमा, एकादशी, संक्रान्ति, व्यतीपात और वैधृति नामक योग तथा माघ, आषाढ, वैशाख और कार्तिककी पूर्णिमा, सोमवती अमावास्या, मन्वादि एवं युगादि तिथियाँ, गजच्छाया (आश्विन कृष्णा त्रयोदशी) तथा पिताकी क्षयाह तिथि दानके नैमित्तिक काल बताये गये हैं। नृपश्रेष्ठ! जो मेरे उद्देश्यसे भक्तिपूर्वक ब्राह्मणको दान देता है, उसे मैं निश्चयपूर्वक महान् सुख और स्वर्ग, मोक्ष आदि बहुत कुछ प्रदान करता हूँ।

अब दानका फल देनेवाले काम्य कालका वर्णन करता हूँ। समस्त व्रतों और देवता आदिके निमित्त जब सकामभावसे दान दिया जाता है, उसे श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने दानका काम्यकाल बताया है। राजन्! मैं तुमसे आभ्युदयिक कालका भी वर्णन करता हूँ। सम्पूर्ण शुभकर्मोंका अवसर, उत्तम वैवाहिक उत्सव, नवजात पुत्रके जातकर्म आदि संस्कार तथा चूड़ाकर्म और उपनयन आदिका समय, मन्दिर, ध्वजा, देवता, बावली, कुआँ, सरोवर और बगीचे आदिकी प्रतिष्ठाका शुभ अवसर—इन सबको आभ्युदयिक काल कहा गया है। उस समय जो दान दिया जाता है, वह सम्पूर्ण सिद्धियोंको देनेवाला होता है।

नृपश्रेष्ठ! अब मैं पाप और पीड़ाका निवारण करनेवाले अन्य कालका वर्णन करता हूँ। मृत्युकाल प्राप्त होनेपर अपने शरीरके नाशको समझकर दान देना चाहिये। वह दान यमलोकके मार्गमें सुख पहुँचानेवाला होता है। महाराज! नित्य, नैमित्तिक और काम्याभ्युदयिक कालसे भिन्न अन्त्य काल (मृत्युसम्बन्धी काल) का तुम्हें परिचय दिया गया। ये सभी काल अपने कर्मोंका फल देनेवाले बताये गये हैं।

राजन्! अब मैं तुम्हें तीर्थका लक्षण बताता हूँ। उत्तम तीर्थोंमें ये गङ्गाजी बड़ी पावन जान पड़ती हैं। इनके सिवा सरस्वती, नर्मदा, यमुना, तापी (ताप्ती), चर्मण्वती, सरयू, घाघरा और वेणा नदी भी पुण्यमयी तथा पापोंका नाश करनेवाली हैं। कावेरी, कपिला, विशाला, गोदावरी और तुङ्गभद्रा—ये भी जगत्को पवित्र करनेवाली मानी गयी हैं। भीमरथी नदी सदा पापोंको भय देनेवाली बतायी गयी है। वेदिका, कृष्णगङ्गा तथा अन्यान्य श्रेष्ठ नदियाँ भी उत्तम हैं। पुण्यपर्वके अवसरपर स्नान करनेके लिये इनसे सम्बद्ध अनेक तीर्थ हैं। गाँव अथवा जगलमें—जहाँ भी नदियाँ हों, सर्वत्र ही वे पावन मानी गयी हैं। अतः वहाँ जाकर स्नान, दान आदि कर्म करने चाहिये। यदि नदियोंके तीर्थका नाम ज्ञात न हो तो उसका 'विष्णुतीर्थ' नाम रख लेना चाहिये। सभी तीर्थोंमें मैं ही देवता हूँ। तीर्थ भी मुझसे भिन्न नहीं हैं—यह निश्चित बात है। जो साधक तीर्थ देवताओंके पास जाकर मेरे ही नामका उच्चारण करता है, उसे मेरे नामके अनुसार ही पुण्य फल प्राप्त होता है। नृपनन्दन! अज्ञात तीर्थों और देवताओंकी सन्निधिमें स्नान-दान आदि करते हुए मेरे ही नामका उच्चारण करना चाहिये। विधाताने तीर्थोंका नाम ही ऐसा रखा है।

भूमण्डलपर सात सिन्धु परम पवित्र और सर्वत्र स्थित हैं। जहाँ कहीं भी उत्तम तीर्थ प्राप्त हो, वहाँ स्नान दान आदि कर्म करना चाहिये। उत्तम तीर्थोंके प्रभावसे अक्षय फलकी प्राप्ति होती है। राजन्! मानस आदि सरोवर भी पावन तीर्थ बताये गये हैं तथा जो छोटी छोटी नदियाँ हैं, उनमें भी तीर्थ प्रतिष्ठित है। कुएँको छोड़कर जितने भी खोदे हुए जलाशय हैं, उनमें तीर्थकी प्रतिष्ठा है। भूतलपर जो मेरु आदि पर्वत हैं, वे भी तीर्थरूप हैं। यज्ञभूमि, यज्ञ और अग्निहोत्रमें भी तीर्थकी प्रतिष्ठा है। शुद्ध श्राद्धभूमि, देवमन्दिर, होमशाला, वैदिक स्वाध्यायमन्दिर, घरका पवित्र स्थान और गोशाला—ये सभी उत्तम तीर्थ हैं। जहाँ सोमयाजी ब्राह्मण निवास करता हो, वहाँ भी तीर्थकी प्रतिष्ठा है। जहाँ पवित्र बगीचे हों, जहाँ पीपल, ब्रह्मवृक्ष (पाकर) और बरगदका वृक्ष हो तथा जहाँ अन्य जंगली वृक्षोंका समुदाय हो, उन सब स्थानोंपर तीर्थका निवास है। इस प्रकार इन तीर्थोंका वर्णन किया गया। जहाँ पिता और माता रहते हैं, जहाँ पुराणोंका पाठ होता है, जहाँ गुरुका निवास है तथा जहाँ सती स्त्री रहती है, वह स्थान निस्सन्देह तीर्थ है। जहाँ

श्रेष्ठ पिता और सुयोग्य पुत्र निवास करते हैं, वहाँ भी तीर्थ है। ये सभी स्थान तीर्थ माने गये हैं।

महाप्राज्ञ! अब तुम दानके उत्तम पात्रका लक्षण सुनो। दान श्रद्धापूर्वक देना चाहिये। उत्तम कुलमें उत्पन्न, वेदाध्ययनमें तत्पर, शान्त, जितेन्द्रिय, दयालु, शुद्ध, बुद्धिमान्, ज्ञानवान्, देवपूजापरायण, तपस्वी, विष्णुभक्त, ज्ञानी, धर्मज्ञ, सुशील और पाखण्डियोंके संगसे रहित ब्राह्मण ही दानका श्रेष्ठ पात्र है। ऐसे पात्रको पाकर अवश्य दान देना चाहिये। अब मैं दूसरे दान-पात्रोंको बताता हूँ। उपर्युक्त गुणोंसे युक्त बहिनके पुत्र (भानजे) को तथा पुत्रीके पुत्र (दौहित्र) को भी दानका उत्तम पात्र समझो। इन्हीं भावोंसे युक्त दामाद, गुरु और यज्ञकी दीक्षा लेनेवाला पुरुष भी उत्तम पात्र है। नरश्रेष्ठ! ये दान देनेयोग्य श्रेष्ठ पात्र बताये गये हैं। जो वेदोक्त आचारसे युक्त हो, वह भी दान-पात्र है। धूर्त और काने ब्राह्मणको दान न दे। जिसकी स्त्री अन्याययुक्त दुष्कर्ममें प्रवृत्त हो, जो स्त्रीके वशीभूत रहता हो, उसे दान देना निषिद्ध है। चोरको भी दान नहीं देना चाहिये। उसे दान देनेवाला मनुष्य तत्काल चोरके समान हो जाता है। अत्यन्त जड और विशेषतः शठ ब्राह्मणको भी दान देना उचित नहीं है। वेद-शास्त्रका ज्ञाता होनेपर भी जो सदाचारसे रहित हो, वह श्राद्ध और दानमें सम्मिलित करने योग्य कदापि नहीं है। श्रद्धापूर्वक उत्तम कालमें, उत्तम तीर्थमें और उत्तम पात्रको दान देनेसे उत्तम फल मिलता है। राजन्! संसारमें प्राणियोंके लिये श्रद्धाके समान पुण्य, श्रद्धाके समान सुख और श्रद्धाके समान तीर्थ नहीं है।* नृपश्रेष्ठ! श्रद्धा-भावसे युक्त होकर मनुष्य पहले मेरा स्मरण करे, उसके बाद सुपात्रके हाथमें द्रव्यका दान दे। इस प्रकार विधिवत् दान करनेका जो अनन्त फल है, उसे मनुष्य पा जाता है और मेरी कृपासे सुखी होता है।

श्रीविष्णुद्वारा नैमित्तिक और आभ्युदयिक आदि दानोंका वर्णन और पत्नीतीर्थके प्रसङ्गमें सती सुकलाकी कथा



भगवान् श्रीविष्णु कहते हैं—नृपश्रेष्ठ! अब मैं पुनः नैमित्तिक दानका वर्णन करता हूँ। जो सत्पात्रको हाथी, घोड़ा और रथ दान करता है, वह भृत्योंसहित पुण्यमय प्रदेशका राजा होता है। राजा होनेके साथ ही वह धर्मात्मा, विवेकी, बलवान्, उत्तम बुद्धिसे युक्त, सम्पूर्ण प्राणियोंके लिये अजेय और महान् तेजस्वी होता है। महाराज! जो महान् पर्व आनेपर भूमिदान अथवा गोदान करता है, वह सब भोगोंका अधीश्वर होता है। जो पर्व आनेपर तीर्थमें गुप्त दान देता है, उसे शीघ्र ही अक्षय निधियोंकी प्राप्ति होती है। जो तीर्थोंमें महापर्वके प्राप्त होनेपर ब्राह्मणको सुन्दर वस्त्र और सुवर्णका महादान देता है, उसके बहुत-से सद्गुणी और वेदोंके पारगामी पुत्र उत्पन्न होते हैं। वे सभी आयुष्मान्, पुत्रवान्, यशस्वी, पुण्यात्मा, यज्ञ करनेवाले तथा तत्त्वज्ञानी होते हैं। महामते! दान करनेवालेको सुख, पुण्य एवं धनकी प्राप्ति होती है। महाराज! कपिला गौका दान करनेवाले पुरुष महान् सुख भोगते हैं; ब्रह्माकी आयुपर्यन्त वे भी ब्रह्मलोकमें निवास करते हैं। सुशील ब्राह्मणको वस्त्रसहित सुवर्णका दान देकर मनुष्य अग्निके समान तेजस्वी होता है और अपनी इच्छाके अनुसार वैकुण्ठ-धाममें निवास करता है।

अब आभ्युदयिक दानका वर्णन करता हूँ। नृपश्रेष्ठ! यज्ञ आदिमें जो दान दिया जाता है, वह यदि शुद्धभावसे दिया गया हो तो उससे मनुष्यकी बुद्धि बढ़ती है तथा दाताको कभी दुःख नहीं उठाना पड़ता। वह जीवनभर सुख भोगता है और मृत्युके पश्चात् दिव्य गतिको प्राप्त होकर इन्द्रलोकके भोगोंका अनुभव करता है। इतना ही नहीं, वह हजार कल्पोंतकके लिये अपने कुलको स्वर्गमें ले जाता है। अब दूसरे प्रकारका दान बतलाता हूँ। शरीरको बुढ़ापेसे पीडित और क्षीण जानकर मनुष्यको [अपने कल्याणके लिये] दान अवश्य करना चाहिये, उसे किसीकी भी आशा नहीं रखनी चाहिये। 'मेरे मर जानेपर ये मेरे पुत्र तथा अन्यान्य स्वजन-सम्बन्धी, बन्धु-बान्धव कैसे रहेंगे; मेरे बिना मेरे मित्रोंकी क्या दशा होगी?' इत्यादि बातें सोचकर उनके मोहसे मुग्ध हुआ मनुष्य कुछ भी दान नहीं कर पाता। ऐसा जीव यमलोकके मार्गमें पहुँचकर बहुत दुखी हो जाता है; वह भूख-प्यासले व्याकुल

* नास्ति श्रद्धासमं पुण्यं नास्ति श्रद्धासमं सुखम्। नास्ति श्रद्धासमं तीर्थं संसारे प्राणिनां नृप॥ (३९। ७८)

तथा नाना प्रकारके दुःखोंसे पीडित रहता है। संसारमें कोई भी किसीका नहीं है, अतः जीते-जी स्वयं ही अपने लिये दान करना चाहिये। अन्न, जल, सोना, बछड़ेसहित उत्तम गौ, भूमि तथा नाना प्रकारके फल दान करने चाहिये। यदि अधिक शुभ फलकी इच्छा हो तो पैरोंको आराम देने वाले जूते भी दान देने चाहिये।

वेनने पूछा—भगवन्! पुत्र, पत्नी, माता, पिता और गुरु—ये सब तीर्थ कैसे हैं—इस विषयका विस्तारके साथ वर्णन कीजिये।

भगवान् श्रीविष्णु बोले—[राजन्! पहले इस बातको सुनो कि पत्नी कैसे तीर्थ है।] काशी नामकी एक बहुत बड़ी पुरी है, जो गङ्गासे सटकर बसी होनेके कारण बहुत सुन्दर दिखायी देती है। उसमें एक वैश्य रहते थे, जिनका नाम था कृकल। उनकी पत्नी परम साध्वी तथा उत्तम व्रतका पालन करनेवाली थी। वह सदा धर्माचरणमें रत और पतिव्रता थी। उसका नाम था सुकला। सुकलाके अङ्ग पवित्र थे। वह सुयोग्य पुत्रोंकी जननी, सुन्दरी, मङ्गलमयी, सत्यवादिनी, शुभा और शुद्ध स्वभाववाली थी। उसकी आकृति देखनेमें बड़ी मनोहर थी। व्रतोंका पालन करना उसे अत्यन्त प्रिय था। इस प्रकार वह मनोहर मुसकानवाली सुन्दरी अनेक गुणोंसे युक्त थी। वे वैश्य भी उत्तम वक्ता, धर्मज्ञ, विवेक-सम्पन्न और गुणी थे। वैदिक तथा पौराणिक धर्मोंके श्रवणमें उनकी बड़ी लगन थी। उन्होंने तीर्थयात्राके प्रसङ्गमें यह बात सुनी थी कि 'तीर्थोंका सेवन बहुत पुण्यदायक है, वहाँ जानेसे पुण्यके साथ ही मनुष्यका कल्याण भी होता है।' इस बातपर उनके मनमें श्रद्धा तो थी ही, ब्राह्मणों और व्यापारियोंका साथ भी मिल गया। इससे वे धर्मके मार्गपर चल दिये। उन्हें जाते देख उनकी पतिव्रता पत्नी पतिके स्नेहसे मुग्ध होकर बोली।

सुकलाने कहा—प्राणनाथ! मैं आपकी धर्मपत्नी हूँ, अतः आपके साथ रहकर पुण्य करनेका मेरा अधिकार है। मैं आपके मार्गपर चलती हूँ। इस सद्भावके कारण मैं कभी आपको अपनेसे अलग नहीं कर सकती। आपकी छायाका आश्रय लेकर मैं पातिव्रत्यके उत्तम व्रतका पालन करूँगी, जो नारियोंके पापका नाशक और उन्हें सद्गति प्रदान करनेवाला है। जो स्त्री पतिपरायणा होती है, वह संसारमें पुण्यमयी कहलाती है। युवतियोंके लिये पतिके सिवा दूसरा कोई ऐसा तीर्थ नहीं है, जो इस लोकमें सुखद और परलोकमें स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाला हो। साधु श्रेष्ठ! स्वामीके दाहिने चरणको प्रयाग समझिये और बायेंको पुष्कर। जो स्त्री ऐसा मानती है तथा इसी भावनाके अनुसार पतिके चरणोदकसे स्नान करती है, उसे उन तीर्थोंमें स्नान करनेका पुण्य प्राप्त होता है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि स्त्रियोंके लिये पतिके चरणोदकका अभिषेक प्रयाग और पुष्कर तीर्थमें स्नान करनेके समान है। पति समस्त तीर्थोंके समान है। पति सम्पूर्ण धर्मोंका स्वरूप है। यज्ञकी दीक्षा लेनेवाले पुरुषको यज्ञोंके अनुष्ठानसे जो पुण्य प्राप्त होता है, वही पुण्य साध्वी स्त्री अपने पतिकी पूजा करके तत्काल प्राप्त कर लेती है।* अतः प्रियतम! मैं भी आपकी सेवा करती हुई तीर्थोंमें चलूँगी और आपकी ही छायाका अनुसरण करती हुई लौट आऊँगी।

कृकलने अपनी पत्नीके रूप, शील, गुण, भक्ति और सुकुमारता देखकर बारंबार उसपर विचार किया—'यदि मैं अपनी पत्नीको साथ ले लूँ तो मैं तो अत्यन्त दुःखदायी दुर्गम मार्गपर भी चल सकूँगा, किन्तु वहाँ सर्दी और धूपके कारण इस बेचारीका तो हुलिया ही बिगड़ जायगा। रास्तेमें कठोर पत्थरोंसे ठोकर खाकर इसके कोमल चरणोंको बड़ी पीड़ा होगी। उस अवस्थामें इसका चलना असम्भव हो जायगा। भूख-प्याससे जब इसके शरीरको कष्ट पहुँचेगा तो न जाने इसकी क्या दशा होगी। यह सदा मुझे प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय है तथा नित्य निरन्तर मेरे गार्हस्थ्यधर्मका यही एक आधार है। यह बाला यदि मर गयी तो मेरा तो सर्वनाश ही हो जायगा। यही मेरे जीवनका अवलम्बन है, यही मेरे प्राणोंकी अधीश्वरी है। अतः मैं इसे तीर्थोंमें नहीं ले जाऊँगा, अकेला ही यात्रा करूँगा।'

यह सोचकर उन्होंने अपनी पत्नीसे कहा—मैं तेरा कभी

* सव्यं पादं स्वामिनश्च प्रयागं विद्धि सत्तम।
वामं च पुष्करं तस्य या नारी परिकल्पयेत्॥
तस्य पादोदकस्नानात्तत्पुण्यं परिजायते।
प्रयागपुष्करसमं स्नानं स्त्रीणां न संशयः॥
सर्वतीर्थसमो भर्ता सर्वधर्ममयः पतिः।
मखानां यजनात् पुण्यं यद् वै भवति दीक्षिते।
तत् पुण्यं समवाप्नोति भर्तुश्चैव हि साम्प्रतम्॥
(४१।१३-१५)

त्याग नहीं करूँगा। पता दिये बिना ही वे चुपकेसे साथियोंके साथ चले गये। महाभाग कृकल बड़े पुण्यात्मा थे; उनके चले जानेपर सुन्दरी सुकला देवाराधनकी वेलामें पुण्यमय प्रभातके समय जब सोकर उठी, तब उसने स्वामीको घरमें नहीं देखा। फिर तो वह हड़बड़ाकर उठ बैठी और अत्यन्त शोकसे पीड़ित होकर रोने लगी। वह बाला अपने पतिके साथियोंके पास जा-जाकर पूछने लगी—'महाभागगण! आपलोग मेरे बन्धु हैं, मेरे प्राणनाथ कृकल मुझे छोड़कर कहीं चले गये हैं; यदि आपने उन्हें देखा हो तो बताइये। जिन महात्माओंने मेरे पुण्यात्मा स्वामीको देखा हो, वे मुझे बतानेकी कृपा करें।' उसकी बात सुनकर जानकार लोगोंने उससे परम बुद्धिमान् कृकलके विषयमें इस प्रकार कहा—'शुभे! तुम्हारे स्वामी कृकल धार्मिक यात्राके प्रसङ्गसे तीर्थसेवनके लिये गये हैं। तुम शोक क्यों करती हो? भद्रे! वे बड़े-बड़े तीर्थोंकी यात्रा पूरी करके फिर लौट आयेंगे।'

राजन्! विश्वासी पुरुषोंके द्वारा इस प्रकार विश्वास दिलाये जानेपर सुकला पुनः अपने घरमें गयी और करुण स्वरसे फूट-फूटकर रोने लगी। वह पतिपरायणा नारी थी। उसने यह निश्चय कर लिया कि 'जबतक मेरे स्वामी लौटकर नहीं आयेंगे, तबतक मैं भूमिपर चटाई बिछाकर सोऊँगी। घी, तेल और दूध-दही नहीं खाऊँगी। पान और नमकका भी त्याग कर दूँगी। गुड़ आदि मीठी वस्तुओंको भी छोड़ दूँगी। जबतक मेरे स्वामीका पुनः यहाँ आगमन नहीं होगा, तबतक एक समय भोजन करूँगी अथवा उपवास करके रह जाऊँगी।'

इस प्रकार नियम लेकर सुकला बड़े दुःखसे दिन बिताने लगी। उसने एक वेणी धारण करना आरम्भ कर दिया। एक ही अँगियासे वह अपने शरीरको ढकने लगी। उसका वेष मलिन हो गया। वह एक ही मलिन वस्त्र धारण करके रहती और अत्यन्त दुःखित हो लंबी साँस खींचती हुई हाहाकार किया करती थी। विरहाग्निसे दग्ध होनेके कारण उसका शरीर काला पड़ गया। उसपर मैल जम गया। इस तरह दुःखमय आचारका पालन करनेसे वह अत्यन्त दुबली हो गयी। निरन्तर पतिके लिये व्याकुल रहने लगी। दिन-रात रोती रहती थी। रातको उसे कभी नींद नहीं आती थी और न भूख ही लगती थी।

सुकलाकी यह अवस्था देख उसकी सहेलियोंने आकर पूछा—'सखी सुकला! तुम इस समय रो क्यों रही हो? सुमुखि! हमें अपने दुःखका कारण बताओ।'

सुकला बोली—सखियो! मेरे धर्मपरायण स्वामी मुझे छोड़कर धर्म कमाने गये हैं। मैं निर्दोष, साध्वी, सदाचार-परायणा और पतिव्रता हूँ। फिर भी मेरे प्राणाधार मेरा त्याग करके तीर्थ-यात्रा कर रहे हैं; इसीसे मैं दुखी हूँ। उनके वियोगसे मुझे बड़ी पीड़ा हो रही है। सखी! प्राण त्याग देना अच्छा है, किन्तु प्राणाधार स्वामीका त्यागना कदापि अच्छा नहीं है। प्रतिदिनका यह दारुण वियोग अब मुझसे नहीं सहा जाता। सखियो! यही मेरे दुःखका कारण है। नित्यके विरहसे ही मैं कष्ट पा रही हूँ।

सखियोंने कहा—बहिन! तुम्हारे पति तीर्थ-यात्राके लिये गये हैं। यात्रा पूरी होनेपर वे घर लौट आयेंगे। तुम व्यर्थ ही शोक कर रही हो। वृथा ही अपने शरीरको सुखा रही हो तथा अकारण ही भोगोंका परित्याग कर रही हो। अरी! मौजसे खाओ-पीयो; क्यों कष्ट उठाती हो। कौन किसका स्वामी, कौन किसके पुत्र और कौन किसके सगे-सम्बन्धी हैं? संसारमें कोई किसीका नहीं है। किसीके साथ भी नित्य सम्बन्ध नहीं है। बाले! खाना-पीना और मौज उड़ाना, यही इस संसारका फल है। मनुष्यके मर जानेपर कौन इस फलका उपभोग करता है और कौन उसे देखने आता है।

सुकला बोली—सखियो! तुमलोगोंने जो बात कही है, वह वेदोंको मान्य नहीं है। जो नारी अपने स्वामीसे पृथक् होकर सदा अकेली रहती है, उसे पापिनी समझा जाता है। श्रेष्ठ पुरुष उसका आदर नहीं करते। वेदोंमें सदा यही बात देखी गयी है कि पतिके साथ नारीका सम्बन्ध पुण्यके संसर्गसे ही होता है, और किसी कारणसे नहीं। [अतः उसे सदा पतिके ही साथ रहना चाहिये।] शास्त्रोंका वचन है कि पति ही सदा नारियोंके लिये तीर्थ है। इसलिये स्त्रीको उचित है कि वह सच्चे भावसे पति-सेवामें प्रवृत्त होकर प्रतिदिन मन, वाणी, शरीर और क्रियाद्वारा पतिका ही आवाहन करे और सदा पतिका ही पूजन करे। पति स्त्रीका दक्षिण अङ्ग है, उसका वाम पार्श्व ही पत्नीके लिये महान् तीर्थ है। गृहस्थ नारी पतिके वाम भागमें बैठकर जो दान-पुण्य और यज्ञ करती है, उसका बहुत बड़ा फल बताया गया है; काशीकी गङ्गा,

पुष्कर तीर्थ, द्वारकापुरी, उज्जैन तथा केदार नामसे प्रसिद्ध महादेवजीके तीर्थमें स्नान करनेसे भी वैसा फल नहीं मिल सकता। यदि स्त्री अपने पतिको साथ लिये बिना ही कोई यज्ञ करती है, तो उसे उसका फल नहीं मिलता। पतिव्रता स्त्री उत्तम सुख, पुत्रका सौभाग्य, स्नान, दान, वस्त्र, आभूषण, सौभाग्य, रूप, तेज, फल, यश, कीर्ति और उत्तम गुण प्राप्त करती है। पतिकी प्रसन्नतासे उसे सब कुछ मिल जाता है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। जो स्त्री पतिके रहते हुए उसकी सेवाको छोड़कर दूसरे किसी धर्मका अनुष्ठान करती है, उसका वह कार्य निष्फल होता है तथा लोकमें वह व्यभिचारिणी कही जाती है।* नारियोंका यौवन, रूप और जन्म—सब कुछ पतिके लिये होते हैं, इस भूमण्डलमें नारीकी प्रत्येक वस्तु उसके पतिकी आवश्यकता पूर्तिका ही साधन है। जब स्त्री पतिहीन हो जाती है, तब उसे भूतलपर सुख, रूप, यश, कीर्ति और पुत्र कहाँ मिलते हैं। वह तो संसारमें परम दुर्भाग्य और महान् दुःख भोगती है। पापका भोग ही उसके हिस्सेमें पड़ता है। उसे सदा दुःखमय आचारका पालन करना पड़ता है। पतिके संतुष्ट रहनेपर समस्त देवता स्त्रीसे संतुष्ट रहते हैं। ऋषि और मनुष्य भी प्रसन्न रहते हैं। राजन्! पति ही स्त्रीका स्वामी, पति ही गुरु, पति ही देवताओंसहित उसका इष्टदेव और पति ही तीर्थ एवं पुण्य है।† पतिके बाहर चले जानेपर यदि स्त्री शृङ्गार करती है तो उसका रूप, वर्ण—सब कुछ भाररूप हो जाता है। पृथ्वीपर लोग उसे देखकर कहते हैं कि यह निश्चय ही व्यभिचारिणी है, इसलिये किसी भी पत्नीको अपने सनातन धर्मका त्याग नहीं करना चाहिये। सखियो! इस विषयमें एक पुराना इतिहास सुना जाता है, जिसमें रानी सुदेवाके पापनाशक एवं पवित्र चरित्रका वर्णन है।



सुकलाका रानी सुदेवाकी महिमा बताते हुए एक शूकर और शूकरीका उपाख्यान सुनाना, शूकरीद्वारा अपने पतिके पूर्वजन्मका वर्णन



सखियोंने पूछा—महाभागे! ये रानी सुदेवा कौन थीं! उनका आचार विचार कैसा था! यह हमें बताओ।

सुकला बोली—सखियो! पहलेकी बात है, अयोध्या पुरीमें मनुपुत्र महाराज इक्ष्वाकु राज्य करते थे। वे धर्मके तत्त्वज्ञ, परम सौभाग्यशाली, सब धर्मोंके अनुष्ठानमें रत, सर्वज्ञ और देवता तथा ब्राह्मणोंके पुजारी थे। काशीके राजा वीरवर महात्मा देवराजकी सदाचारपरायणा कन्या सुदेवाके साथ उन्होंने विवाह किया था। सुदेवा सत्यव्रतके पालनमें तत्पर रहती थीं। पुण्यात्मा राजा इक्ष्वाकु उनके साथ अनेक प्रकारके उत्तम पुण्य और यज्ञ किया करते थे।

एक दिन महाराज अपनी रानीके साथ गङ्गाके तटवर्ती वनमें गये और वहाँ शिकार खेलने लगे। उन्होंने बहुत-से सिंहों और शूकरोंको मारा। वे शिकारमें लगे ही हुए थे कि इतनेमें उनके सामने एक बहुत बड़ा सूअर आ निकला। उसके साथ

* स्वभर्तुर्वा पृथग्भूता तिष्ठत्येका सदैव हि। पापरूपा भवेन्नारी तां न मन्यन्ति सज्जनाः॥
भर्तुः सार्द्धं सदा सख्यो दृष्टो वेदेषु सर्वदा। सम्बन्धः पुण्यसंसर्गाज्जायते नान्यकारणात्॥
नारीणां च सदा तीर्थं भर्ता शास्त्रेषु पठ्यते। यमेवावाहयेन्नित्यं वाचा कायेन कर्मभिः॥
मनसा पूजयेन्नित्यं सत्यभावेन तत्परा। पतत्याश्वं महातीर्थं दक्षिणाङ्गं सदैव हि॥
तमाश्रित्य यदा नारी गृहस्था परिवर्तते। यजते दानपुण्यैश्च तस्य दानस्य यत्फलम्॥
वाराणस्यां च गङ्गायां यत्फलं न च पुष्करे। द्वारकायां न चावन्त्यां केदारे शशिभूषणे॥
लभते नैव सा नारी यजमाना सदा किल। तादृशं फलमेव सा न प्राप्नोति कदा सखि॥
सुसुखं पुत्रसौभाग्यं स्नानं दानं च भूषणम्। वस्त्रालंकारसौभाग्यं रूपं तेजः फलं सदा॥
यशः कीर्तिमवाप्नोति गुणं च वरवर्णिनि। भर्तुः प्रसादाच्च सर्वं लभते नात्र संशयः॥
विद्यमाने यदा कान्ते अन्यधर्मं करोति या। निष्फलं जायते तस्याः पुंश्चली परिकथ्यते॥
(४१। ६०-६९)

† भर्ता नाथो गुरुर्भर्ता देवता दैवतैः सह। भर्ता तीर्थञ्च पुण्यञ्च नारीणां नृपनन्दन॥ (४१। ७५)

झुंड-के-झुंड सूअर थे। वह अपने पुत्र-पौत्रोंसे घिरा था। उसकी प्रियतमा शूकरी भी उसके बगलमें मौजूद थी। उस समय सूअरने राजाको देखकर अपने पुत्रों, पौत्रों तथा पत्नीसे कहा—'प्रिये! कोसलदेशके वीर सम्राट् महातेजस्वी इक्ष्वाकु यहाँ शिकार खेलनेके लिये पधारे हैं। उनके साथ बहुत-से कुत्ते और व्याध हैं। इसमें सन्देह नहीं कि ये मुझपर भी प्रहार करेंगे। महाराज इक्ष्वाकु बड़े पुण्यात्मा हैं, ये राजाओं-के भी राजा और समस्त विश्वके अधिपति हैं। प्रिये! मैं इन महात्माके साथ रणभूमिमें पुरुषार्थ और पराक्रम दिखाता हुआ युद्ध करूँगा। यदि मैंने अपने तेजसे इन्हें जीत लिया तो पृथ्वीपर अनुपम कीर्ति भोगूँगा और यदि वीरवर महाराजके हाथसे मैं ही युद्धमें मारा गया तो भगवान् श्रीविष्णुके लोकमें जाऊँगा। न जाने पूर्वजन्ममें मैंने कौन-सा पाप किया था, जिससे सूअरकी योनिमें मुझे आना पड़ा। आज मैं महाराजके अत्यन्त भयंकर, पैने और तेज धारवाले सैकड़ों बाणोंकी जलधारासे अपने पूर्व-सञ्चित घोर पातकको धो डालूँगा। तुम मेरा मोह छोड़ दो और इन पुत्रों, पौत्रों तथा श्रेष्ठ कन्याको और बाल-वृद्धसहित समूचे कुटुम्बको साथ लेकर पर्वतकी कन्दरामें चली जाओ। इस समय मेरा स्नेह त्यागकर इन बालकोंकी रक्षा करो।'

शूकरी बोली—नाथ! मेरे बच्चे तुम्हारे ही बलसे पर्वतपर गर्जना करते हुए विचरते हैं। तुम्हारे तेजसे ही निर्भय होकर यहाँ कोमल मूल-फलोंका आहार करते हैं। महाभाग! बीहड़ वनोंमें, झाड़ियोंमें, पर्वतोंपर और गुफाओंमें तथा यह भी जो ये सिंहों और मनुष्योंके तीव्र भयकी परवा नहीं करते, उसका यही कारण है कि ये तुम्हारे तेजसे सुरक्षित हैं। तुम्हारे त्याग देनेपर मेरे सभी बच्चे दीन, असहाय और अचेत हो जायँगे। [तुमसे अलग रहनेमें मेरी भी शोभा नहीं है।] उत्तम सोनेके बने हुए दिव्य आभूषणों, रत्नमय उपकरणों तथा सुन्दर वस्त्रोंसे विभूषित होकर और पिता, माता, भाई, सास, ससुर तथा अन्य सम्बन्धियोंसे आदर पाकर भी पतिहीना स्त्री शोभा नहीं पाती। जैसे आचारके बिना मनुष्य, ज्ञानके बिना संन्यासी तथा गुप्त मन्त्रणाके बिना राज्यकी शोभा नहीं होती, उसी प्रकार तुम्हारे बिना इस यूथकी शोभा नहीं हो सकती। प्रिय! प्राणेश्वर! तुम्हारे बिना मैं अपने प्राण नहीं रख सकती। महामते! मैं सच कहती हूँ—तुम्हारे साथ यदि मुझे नरकमें भी निवास करना पड़े तो उसे सहर्ष स्वीकार करूँगी। यूथपते! हम दोनों ही अपने पुत्र-पौत्रोंसहित इस उत्तम यूथको लेकर किसी पर्वतकी दुर्गम कन्दरामें घुस जायँ, यही अच्छा है। तुम जीवनकी आशा छोड़कर मरनेके लिये जा रहे हो; बताओ, इसमें तुम्हें क्या लाभ दिखायी देता है?

सूअर बोला—प्रिये! तुम वीरोंके उत्तम धर्मको नहीं जानती; सुनो, मैं इस समय तुम्हें वही बताता हूँ। यदि योद्धा शत्रुके प्रार्थना करने या ललकारनेपर भी काम, लोभ, भय अथवा मोहके कारण उसे युद्धका अवसर नहीं देता, वह एक हजार युगोंतक कुम्भीपाक नामक नरकमें निवास करता है। वीर पुरुष युद्धमें शत्रुका सामना करके यदि उसे जीत लेता है, तो यश और कीर्तिका उपभोग करता है; अथवा निर्भयतापूर्वक लड़ता हुआ यदि स्वयं ही मारा जाता है, तो वीरलोकको प्राप्त हो दिव्य भोगोंका उपभोग करता है। प्रिये! बीस हजार वर्षोंतक वह इस सुखका अनुभव करता है। मनु-पुत्र राजा इक्ष्वाकु यहाँ पधारे हैं, जो स्वयं बड़े वीर हैं। ये मुझसे युद्ध चाहें तो मुझे अवश्य ही इन्हें युद्धका अवसर देना चाहिये। शुभे! महाराज युद्धके अतिथि होकर आये हैं, और अतिथि सनातन श्रीविष्णुका स्वरूप होता है; अतः युद्धरूपसे इनका सत्कार करना मेरा आवश्यक कर्तव्य है।

शूकरी बोली—प्राणनाथ! यदि आप महात्मा राजाको युद्धका अवसर प्रदान करेंगे तो मैं भी आपके साथ रहकर आपका पराक्रम देखूँगी।

यों कहकर शूकरीने तुरंत अपने प्यारे पुत्रोंको बुलाया और कहा—'बच्चो! मेरी बात सुनो; युद्धभूमिमें सनातन विष्णु-रूप अतिथि पधारे हैं, उनके सत्कारके लिये मेरे स्वामी जायँगे; इनके साथ मुझे भी वहाँ जाना चाहिये। तुम्हारी रक्षा करनेवाले प्राणनाथ जबतक यहाँ उपस्थित हैं, तभीतक तुम दूरके पर्वतकी किसी दुर्गम गुफामें चले जाओ। पुत्रो! मनुपुत्र इक्ष्वाकु बड़े बलवान् और दुर्दमनीय राजा हैं; ये हम-लोगोंके लिये कालस्वरूप हैं, सबका संहार कर डालेंगे। अतः तुम दूर भाग जाओ।'

पुत्रोंने कहा—जो माता-पिताको [संकटमें] छोड़कर जाता है, वह पापात्मा है; उसे महारौद्र एवं अत्यन्त घोर नरकमें गिरना पड़ता है, यह उसके लिये अनिवार्य गति है। जो निर्दयी अपनी माताके पवित्र दूधको पीकर परिपुष्ट होता है और माँ-बापको [विपत्तिमें] छोड़कर चल देता है, वह कीड़ों और दुर्गन्धसे परिपूर्ण नरकमें पड़कर सदा पीवका भोजन करता है। इसलिये माँ! हमलोग पिताको और तुम्हें यहाँ छोड़कर नहीं जायँगे।

ऐसा निश्चय करके समस्त शूकर मोर्चा बाँधकर खड़े हो गये। वे सभी बल और तेजसे सम्पन्न थे।

उधर अयोध्याके वीर महाराज मनुकुमार इक्ष्वाकु अपनी सुन्दरी भार्या तथा चतुरङ्गिणी सेनाके साथ आखेटके लिये चले। उनके आगे आगे व्याध, कुत्ते और तेज चलनेवाले वीर योद्धा थे। वे लोग उस स्थानके समीप गये, जहाँ बलवान् शूकर अपनी पत्नीके साथ मौजूद था। छोटे बड़े बहुत से सूअर सब ओरसे उसकी रक्षा कर रहे थे। गङ्गाके किनारे मेरु पर्वतकी तराईमें पहुँचकर महाराज इक्ष्वाकुने व्याधोंसे कहा—'बड़े-बड़े वीर योद्धाओंको शूकरका सामना करनेके लिये भेजो।' इस प्रकार महाराजकी आज्ञासे भेजे हुए बलवान्, तेजस्वी तथा पराक्रमी योद्धा हाँका डालते हुए दौड़े और वायुके समान वेगसे चलकर तत्काल शूकरके पास जा पहुँचे। वनचारी व्याध अपने तीखे बाणों तथा चमचमाते हुए नाना प्रकारके अस्त्र शस्त्रोंसे वीरोंका बाना बाँधकर खड़े हुए और उस वराहको बींधने लगे।

यह देख वह यूथपति वराह अपने सैकड़ों पुत्र, पौत्र तथा बान्धवोंके साथ युद्धके मैदानमें आ धमका और शत्रुओंपर टूट पड़ा। वह बड़े वेगसे उनका संहार करने लगा। व्याध उसकी पैनी दाढ़ोंसे घायल हो होकर समरभूमिमें गिरने लगे। तदनन्तर शूकरों और व्याधोंमें भयानक संग्राम आरम्भ हुआ। वे क्रोधसे लाल आँखें किये एक दूसरेको मारने लगे। व्याधोंने बहुतेरे शूकरोंको और शूकरोंने अनेक व्याधोंको मार गिराया। वहाँ की जमीन खूनसे रँग गयी। कितने ही सूअर मर-खप गये, कितने घायल हुए और कितने ही भाग भागकर बीहड़ स्थानों, झाड़ियों, कन्दराओं और अपनी अपनी माँदोंमें जा घुसे। यही दशा व्याधोंकी भी हुई। कितने ही मर गये, कितने ही सूअरोंकी पैनी दाढ़ोंके आघातसे कट गये और कितने ही टुकड़े टुकड़े होकर प्राण त्याग स्वर्गलोकको चले गये। केवल वह बलाभिमानी वराह अपनी पत्नी तथा पाँच सात पुत्र-पौत्रोंके साथ युद्धकी इच्छासे मैदानमें डटा रहा। उस समय शूकरीने उससे कहा—'नाथ! मुझे और इन बालकोंको साथ लेकर अब यहाँसे चले चलो।'

शूकर कहा—महाभागे! दो सिंहोंके बीचमें सूअर पानी पी सकता है, किन्तु दो सूअरोंके बीचमें सिंह नहीं पी सकता। सूअर-जातिमें ऐसा उत्तम बल देखा जाता है। यदि मैं संग्राममें पीठ दिखाकर चला जाऊँ तो उस बलका नाश ही करूँगा—मेरी जातिकी प्रसिद्धि ही नष्ट हो जायगी। मुझे परम कल्याणदायक धर्मका ज्ञान है। जो योद्धा काम, लोभ अथवा भयसे युद्धतीर्थका त्याग करके भाग जाता है, वह नि सन्देह पापी है। जो तीखे शस्त्रोंका व्यूह देखकर प्रसन्न होता है और रणसिन्धुमें गोता लगाकर तीर्थके पार पहुँच जाता है, वह अपने आगेकी सौ पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है और अन्तमें विष्णु धामको जाता है। जो अस्त्र शस्त्रोंसे सुसज्जित योद्धाको सामने आते देख प्रसन्नतापूर्वक उसकी ओर बढ़ता है, उसके पुण्य फलका वर्णन सुनो—उसे पग-पगपर गङ्गास्नानका महान् फल प्राप्त होता है। जो काम या लोभवश युद्धसे भागकर घरको चला जाता है, वह अपनी माताके दोषको प्रकाशित करता है और व्यभिचारसे उत्पन्न कहलाता है। मैं इस वीर धर्मको जानता हूँ, अत युद्ध छोड़कर भाग कैसे सकता हूँ। तुम बच्चोंको लेकर यहाँसे चली जाओ और सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करो।'

पतिकी बात सुनकर शूकरी बोली—'प्रिय! मैं तुम्हारे स्नेह-बन्धनमें बँधी हूँ, तुमने प्रेम, आदर, हास-परिहास तथा रति क्रीड़ा आदिके द्वारा मेरे मनको बाँध लिया है। अत मैं पुत्रोंके साथ तुम्हारे सामने प्राण-त्याग करूँगी।' इस तरह बातचीत करके एक दूसरेका हित चाहनेवाले दोनों पति-पत्नीने युद्धका ही निश्चय किया। कोसलसम्राट् इक्ष्वाकुने देखा—वर्षाके समय आकाशमें मेघ जिस प्रकार बिजलीकी चमकके साथ गर्जते हैं, उसी तरह अपनी पत्नीके साथ शूकर भी गर्जना करता है और अपने खुरोंके अग्रभागसे मानो महाराजको युद्धके लिये ललकार रहा है।

अपनी दुर्धर सेनाको उस दुर्धर्ष वराहके द्वारा परास्त होते देख राजा इक्ष्वाकुको बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने धनुष और कालके समान भयंकर बाण लेकर अश्वके द्वारा बड़े वेगसे शूकरपर आक्रमण किया। उन्हें आते देख सूअर भी आगे बढ़ा। वह घोड़ेके पैरोंके नीचे आ गया, इतनेमें ही राजाने उसे अपने तीखे बाणका निशाना बनाया। सूअर घायल होकर बड़े वेगसे उछला और घोड़ेसहित राजाको लाँघ गया। उसने अपनी दाढ़ोंसे मारकर घोड़ेके पैरोंमें घाव कर दिया था। इससे उसको बड़ी पीड़ा हो रही थी, उससे चला नहीं जाता था, अन्ततोगत्वा वह पृथ्वीपर गिर पड़ा। तब राजा एक छोटे-से रथपर सवार हो गये। यूथपति सूअर अपनी जातिके स्वभावानुसार रणभूमिमें भयंकर गर्जना कर रहा था, इतनेमें ही कोसलसम्राट्ने उसके ऊपर गदासे प्रहार किया। गदाका आघात पाकर उसने शरीर त्याग



दिया और भगवान् श्रीविष्णुके श्रेष्ठ धाममें प्रवेश किया। इस प्रकार महाराज इक्ष्वाकुके साथ युद्ध करके वह शूकरराज हवाके वेगसे उखड़कर गिरे हुए वृक्षकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़ा। उस समय देवता उसके ऊपर फूलोंकी वर्षा कर रहे थे।

तदनन्तर वे समस्त शूर, क्रूर और भयंकर व्याध हाथोंमें पाश लिये उस शूकरीकी ओर चले। शूकरी अपने चार बच्चोंको घेरकर खड़ी थी। उस महासमरमें कुटुम्बसहित अपने पतिको मारा गया देख वह शोकसे मोहित होकर पुत्रोंसे बोली—'बच्चो! जबतक मैं यहाँ खड़ी हूँ, तबतक शीघ्र गतिसे अन्यत्र भाग जाओ।' यह सुनकर उनमेंसे ज्येष्ठ पुत्रने कहा—'मैं जीवनके लोभसे अपनी माताको संकटमें छोड़कर चला जाऊँ, यह कैसे हो सकता है। माँ! यदि मैं ऐसा करूँ तो मेरे जीवनको धिक्कार है। मैं अपने पिताके वैरका बदला लूँगा। युद्धमें शत्रुको परास्त करूँगा। तुम मेरे तीनों छोटे भाइयोंको लेकर पर्वतकी कन्दरामें चली जाओ। जो माता-पिताको विपत्तिमें छोड़कर जाता है, वह पापात्मा है। उसे कोटि-कोटि कीड़ोंसे भरे हुए नरकमें गिरना पड़ता है।' बेटेकी बात सुनकर शूकरी दुःखसे आतुर होकर बोली—'आह, मेरे बच्चे! मैं महापापिनी तुझे छोड़कर कैसे जा सकती हूँ। मेरे ये तीन पुत्र भले ही चले जायँ।'

ऐसा निश्चय करके उन दोनों माँ-बेटेने शेष तीन बच्चोंको आगे कर लिया और व्याधोंके देखते-देखते वे विकट मार्गसे जाने लगे। समस्त शूकर अपने तेज और बलसे जोशमें आकर बारंबार गरज रहे थे। इसी बीचमें वे शूरवीर व्याध वेगसे चलकर वहाँ आ पहुँचे। शूकरी और शूकर—दोनों माँ-बेटे व्याधोंका मार्ग रोककर खड़े हो गये। व्याध तलवार, बाण और धनुष लिये अधिक समीप आ गये और तीखे तोमर, चक्र तथा मुसलोंका प्रहार करने लगे। ज्येष्ठ पुत्र माताको पीछे करके व्याधोंके साथ युद्ध करने लगा। कितनोंको दाढ़ोंसे कुचलकर उसने मार डाला। कितनोंको थूथुनोंकी चोटसे धराशायी कर दिया और कितनोंको खुरोंके अग्रभागसे मारकर मौतके घाट उतार दिया। बहुत-से शूरवीर रणभूमिमें ढेर हो गये। राजा इक्ष्वाकु संग्राममें सूअरको युद्ध करते देखकर और उसे पिताके समान ही शूरवीर जानकर स्वयं उसके सामने आये। महातेजस्वी, प्रतापी मनुकुमारके हाथमें धनुष-बाण थे। उन्होंने अर्धचन्द्राकार तीखे बाणसे शूकरपर प्रहार किया। उसकी छाती छिद गयी और वह राजाके हाथसे घायल होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। गिरते ही उसके प्राण-पखेरू उड़ गये। पुत्रके शोक और मोहसे अत्यन्त व्याकुल होकर शूकरी उसकी लाशपर गिर पड़ी; फिर सँभलकर उसने अपने थूथुनसे ऐसा प्रहार किया, जिससे अनेकों शूरवीर धरतीपर सो गये। कितने ही व्याध धराशायी हुए, कितने ही भाग गये और कितने ही कालके गालमें चले गये। शूकरी अपने दाढ़ोंके प्रहारसे राजाकी विशाल सेनाको खदेड़ने लगी।

यह देख काशीनरेश देवराजकी पुत्री महारानी सुदेवाने अपने पतिसे कहा—'प्राणनाथ! इस शूकरीने आपकी बहुत बड़ी सेनाका विध्वंस कर डाला; फिर भी आप इसकी उपेक्षा क्यों कर रहे हैं? मुझे इसका कारण बताइये।' महाराजने उत्तर दिया—'प्रिये! यह स्त्री है। स्त्रीके वधसे देवताओंने बहुत बड़ा पाप बताया है; इसीलिये मैं इस शूकरीको न तो स्वयं मारता हूँ और न किसी दूसरेको ही इसे मारनेके लिये भेज रहा हूँ। इसके वधके कारण होनेवाले पापसे मुझे भय लगता है।' यों कहकर महाबुद्धिमान् राजा चुप हो गये। व्याधोंमें एकका नाम भार्गव था; उसने देखा—शूकरी समस्त वीरोंका संहार कर रही है, बड़े-बड़े सूरमा भी उसके सामने टिक नहीं पाते हैं। यह देख व्याधने बड़े वेगसे एक पैने बाणका प्रहार किया और उस शूकरीको बींध डाला। शूकरीने भी झपटकर व्याधको पछाड़ दिया। व्याधने गिरते-गिरते शूकरीपर तेज धारवाली तलवारका भरपूर हाथ जमाया। वह बुरी तरहसे घायल होकर गिर पड़ी और धीरे-धीरे साँस लेती हुई मूर्च्छित हो गयी।

इन्द्रियोंके समुदाय तथा उसके बलको जीत लिया है, उसीको तपस्वी, योगी, धीर और साधक कहते हैं। आप जितेन्द्रिय नहीं हैं, इसीलिये तेजसे हीन हैं। ब्रह्मन्! यह वन सबके लिये साधारण है—इसपर सबका समान अधिकार है; इसमें कोई 'ननु नच' नहीं हो सकता। जैसे इसके ऊपर देवताओं और सम्पूर्ण जीवोंका स्वत्व है, उसी प्रकार मेरा और आपका भी है। ऐसी दशामें मैं इस उत्तम वनको छोड़कर क्यों चला जाऊँ? आप जायँ, चाहे रहें; मुझे इसकी परवा नहीं है।

विप्रवर पुलस्त्यजी धर्मात्मा हैं; इसलिये वे क्षमा करके स्वयं ही उस स्थानको छोड़कर अन्यत्र चले गये और योगासनसे बैठकर तपस्या करने लगे। महाभाग मुनिश्रेष्ठ पुलस्त्यके चले जानेपर दीर्घकालके पश्चात् गन्धर्वको पुनः उनका स्मरण हो आया। वे सोचने लगे—'मुनि मेरे ही भयसे भाग गये थे;—चलूँ, देखूँ। कहाँ गये? क्या करते हैं? और कहाँ रहते हैं?' यह विचारकर गीतविद्याधरने पहले महर्षिके स्थानका पता लगाया और फिर वराहका रूप धारण करके वे उनके उत्तम आश्रमपर गये, जहाँ पुलस्त्यजी आसनपर विराजमान थे। उनके शरीरसे तेजकी ज्वाला उठ रही थी। किन्तु मेरे पतिपर इसका कुछ प्रभाव न पड़ा, वे कुचेष्टापूर्वक थूथुनके अग्रभागसे उन नियमशील ब्राह्मणका तिरस्कार करने लगे। यहाँतक कि उनके आगे जाकर उन्होंने मल-मूत्रतक कर दिया; किन्तु पशु जानकर मुनिने उनको छोड़ दिया—दण्ड नहीं दिया। [मुनिकी इस क्षमाका मेरे पतिपर उल्टा ही असर हुआ, उनकी उद्दण्डता और भी बढ़ गयी।] एक दिन शूकरके ही रूपमें



वे फिर वहाँ गये और बारंबार अट्टहास करने लगे। कभी ठहाका मारकर हँसते, कभी रोते और कभी मधुर स्वरसे गीत गाते थे।

सूअरकी चेष्टा छिपी देखकर मुनि समझ गये कि हो-न-हो, यह वही नीच गन्धर्व है और मुझे ध्यानसे विचलित करनेकी चेष्टा कर रहा है। फिर तो उन्हें बड़ा क्रोध हुआ। वे शाप देते हुए बोले—'ओ महापापी! तू शूकरका रूप धारण करके मुझे इस प्रकार विचलित कर रहा है, इसलिये अब शूकरकी ही योनिमें जा।' देवि! यही मेरे पतिके शूकरयोनिमें पड़नेका वृत्तान्त है। यह सब मैंने तुम्हें सुना दिया। अब अपना हाल बताती हूँ, सुनो। पूर्वजन्ममें मुझ पापिनीने भी घोर पातक किया है।

शूकरीद्वारा अपने पूर्वजन्मके वृत्तान्तका वर्णन तथा रानी सुदेवाके दिये हुए पुण्यसे उसका उद्धार

शूकरी बोली—कलिङ्ग (उड़ीसा) नामसे प्रसिद्ध एक सुन्दर देश है, वहाँ श्रीपुर नामका एक नगर था। उसमें वसुदत्त नामके एक ब्राह्मण निवास करते थे। वे सदा सत्यधर्ममें तत्पर, वेदवेत्ता, ज्ञानी, तेजस्वी, गुणवान् और धनधान्यसे भरे-पूरे थे। अनेक पुत्र-पौत्र उनके घरकी शोभा बढ़ाते थे। मैं वसुदत्तकी पुत्री थी; मेरे और भी कई भाई, स्वजन तथा बान्धव थे। परम बुद्धिमान् पिताने मेरा नाम सुदेवा रखा। मैं अप्रतिम सुन्दरी थी। संसारमें दूसरी कोई स्त्री ऐसी नहीं थी, जो रूपमें मेरी समानता कर सके। रूपके साथ ही चढ़ती जवानी पाकर मैं गर्वसे उन्मत्त हो उठी। मेरी मुसकान बड़ी मनोहर थी। बचपनके बाद जब मुझे हाव-भावसे युक्त यौवन प्राप्त हुआ, तब मेरा भरा-

रानी सुदेवाने उस पुत्रवत्सला शूकरीको जब धरतीपर गिरकर बेहोश होते और ऊपरको श्वास लेते देखा तो उनका हृदय करुणासे भर आया। वे उस दुःखिनीके पास गयीं और ठंडे जलसे उसका मुँह धोया, फिर समस्त शरीरपर पानी डाला। इससे शूकरीको कुछ होश हुआ। उसने रानीको



पवित्र एवं शीतल जलसे अपने शरीरका अभिषेक करते देख मनुष्योंकी बोलीमें कहा—'देवि ! तुमने मेरा अभिषेक किया है, इसलिये तुम्हारा कल्याण हो, तुम्हारे दर्शन और स्पर्शसे आज मेरी पापराशि नष्ट हो गयी।' पशुके मुखसे यह अद्भुत वचन सुनकर रानी सुदेवाको बड़ा आश्चर्य हुआ। वे मन-ही-मन कहने लगीं—'यह तो आज मैंने विचित्र बात देखी, पशु जातिकी यह मादा इतनी स्पष्ट, सुन्दर, स्वर और व्यञ्जनसे युक्त तथा उत्तम संस्कृत बोल रही है।' महाभागा सुदेवा इस घटनासे हर्ष-मग्न होकर अपने पतिसे बोलीं—'राजन्! इधर देखिये, यह अपूर्व जीव है; पशु-जातिकी स्त्री होकर भी मानवीकी भाँति उत्तम संस्कृत बोल रही है।' इसके बाद रानीने शूकरीसे उसका परिचय पूछा—'भद्रे! तुम कौन हो? तुम्हारा बर्ताव तो बड़ा विचित्र दिखायी देता है; तुम पशुयोनिकी स्त्री होकर भी मनुष्योंकी तरह बोलती हो। अपने और अपने स्वामीके पूर्व-जन्मका वृत्तान्त सुनाओ।'

शूकरी बोली—देवि! मेरे पति पूर्वजन्ममें संगीत कुशल गन्धर्व थे, इनका नाम रङ्गविद्याधर था। [कुछ लोग इन्हें गीतविद्याधर भी कहते थे।] ये सब शास्त्रोंके मर्मज्ञ थे। एक समयकी बात है, महातेजस्वी मुनिश्रेष्ठ पुलस्त्यजी मनोहर कन्दराओं और झरनोंसे सुशोभित गिरिवर मेरुपर निष्कपट भावसे तपस्या कर रहे थे। रङ्गविद्याधर अपनी इच्छाके अनुसार उस स्थानपर गये और एक वृक्षकी छायामें बैठकर गानेका अभ्यास करने लगे। उनका मधुर संगीत सुनकर मुनिका चित्त ध्यानसे विचलित हो गया। वे गायकके पास जाकर बोले—'विद्वन्! तुम्हारे गीतके उत्तम स्वर, ताल, लय और मूर्च्छनायुक्त भावसे मेरा मन ध्यानसे विचलित हो गया है। जब मन निश्चल होता है, तभी समस्त विद्याएँ प्राणियोंको सिद्धि प्रदान करती हैं। मन एकाग्र होनेपर ही तप और मन्त्रोंकी सिद्धि होती है। इन्द्रियोंका यह महान् समुदाय अधम और चञ्चल है; यह मनको ध्यानसे हटाकर सदा विषयोंकी ओर ही ले जाता है। इसलिये जहाँ शब्द, रूप तथा युवती स्त्रीका अभाव होता है, वहीं मुनिलोग अपने तपकी सिद्धिके लिये जाया करते हैं। [तुम्हारे इस संगीतसे मेरे ध्यानमें बाधा पड़ती है,] अतः मेरा अनुरोध है कि तुम इस स्थानको छोड़कर कहीं अन्यत्र चले जाओ, अन्यथा मुझे ही यह स्थान छोड़कर दूसरी जगह जाना पड़ेगा।'



गीतविद्याधरने कहा—महामते! जिस महात्माने

इन्द्रियोंके समुदाय तथा उसके बलको जीत लिया है, उसीको तपस्वी, योगी, धीर और साधक कहते हैं। आप जितेन्द्रिय नहीं हैं, इसीलिये तेजसे हीन हैं। ब्रह्मन्! यह वन सबके लिये साधारण है—इसपर सबका समान अधिकार है; इसमें कोई 'ननु नच' नहीं हो सकता। जैसे इसके ऊपर देवताओं और सम्पूर्ण जीवोंका स्वत्व है, उसी प्रकार मेरा और आपका भी है। ऐसी दशामें मैं इस उत्तम वनको छोड़कर क्यों चला जाऊँ? आप जायँ, चाहे रहें; मुझे इसकी परवा नहीं है।

विप्रवर पुलस्त्यजी धर्मात्मा हैं; इसलिये वे क्षमा करके स्वयं ही उस स्थानको छोड़कर अन्यत्र चले गये और योगासनसे बैठकर तपस्या करने लगे। महाभाग मुनिश्रेष्ठ पुलस्त्यके चले जानेपर दीर्घकालके पश्चात् गन्धर्वको पुनः उनका स्मरण हो आया। वे सोचने लगे—'मुनि मेरे ही भयसे भाग गये थे;—चलूँ, देखूँ। कहाँ गये? क्या करते हैं? और कहाँ रहते हैं?' यह विचारकर गीतविद्याधरने पहले महर्षिके स्थानका पता लगाया और फिर वराहका रूप धारण करके वे उनके उत्तम आश्रमपर गये, जहाँ पुलस्त्यजी आसनपर विराजमान थे। उनके शरीरसे तेजकी ज्वाला उठ रही थी। किन्तु मेरे पतिपर इसका कुछ प्रभाव न पड़ा, वे कुचेष्टापूर्वक थूथुनके अग्रभागसे उन नियमशील ब्राह्मणका तिरस्कार करने लगे। यहाँतक कि उनके आगे जाकर उन्होंने मल-मूत्रतक कर दिया; किन्तु पशु जानकर मुनिने उनको छोड़ दिया—दण्ड नहीं दिया। [मुनिकी इस क्षमाका मेरे पतिपर उल्टा ही असर हुआ, उनकी उद्दण्डता और भी बढ़ गयी।] एक दिन शूकरके ही रूपमें



वे फिर वहाँ गये और बारंबार अट्टहास करने लगे। कभी ठहाका मारकर हँसते, कभी रोते और कभी मधुर स्वरसे गीत गाते थे।

सूअरकी चेष्टा छिपी देखकर मुनि समझ गये कि हो-न-हो, यह वही नीच गन्धर्व है और मुझे ध्यानसे विचलित करनेकी चेष्टा कर रहा है। फिर तो उन्हें बड़ा क्रोध हुआ। वे शाप देते हुए बोले—'ओ महापापी! तू शूकरका रूप धारण करके मुझे इस प्रकार विचलित कर रहा है, इसलिये अब शूकरकी ही योनिमें जा।' देवि! यही मेरे पतिके शूकरयोनिमें पड़नेका वृत्तान्त है। यह सब मैंने तुम्हें सुना दिया। अब अपना हाल बताती हूँ, सुनो। पूर्वजन्ममें मुझ पापिनीने भी घोर पातक किया है।

शूकरीद्वारा अपने पूर्वजन्मके वृत्तान्तका वर्णन तथा रानी सुदेवाके दिये हुए पुण्यसे उसका उद्धार

शूकरी बोली—कलिङ्ग (उड़ीसा) नामसे प्रसिद्ध एक सुन्दर देश है, वहाँ श्रीपुर नामका एक नगर था। उसमें वसुदत्त नामके एक ब्राह्मण निवास करते थे। वे सदा सत्यधर्ममें तत्पर, वेदवेत्ता, ज्ञानी, तेजस्वी, गुणवान् और धनधान्यसे भरे-पूरे थे। अनेक पुत्र-पौत्र उनके घरकी शोभा बढ़ाते थे। मैं वसुदत्तकी पुत्री थी; मेरे और भी कई भाई, स्वजन तथा बान्धव थे। परम बुद्धिमान् पिताने मेरा नाम सुदेवा रखा। मैं अप्रतिम सुन्दरी थी। संसारमें दूसरी कोई स्त्री ऐसी नहीं थी, जो रूपमें मेरी समानता कर सके। रूपके साथ ही चढ़ती जवानी पाकर मैं गर्वसे उन्मत्त हो उठी। मेरी मुसकान बड़ी मनोहर थी। बचपनके बाद जब मुझे हाव-भावसे युक्त यौवन प्राप्त हुआ, तब मेरा भरा-

पूरा रूप देखकर मेरी माताको बड़ा दुःख हुआ। वह पितासे बोली—'महाभाग! आप कन्याका विवाह क्यों नहीं कर देते? अब यह जवान हो चुकी है, इसे किसी योग्य वरको सौंप दीजिये।' वसुदत्तने कहा—'कल्याणी! सुनो, मैं उसी वरके साथ इसका विवाह करूँगा, जो विवाहके पश्चात् मेरे ही घरपर निवास करे, क्योंकि सुदेवा मुझे प्राणोंसे भी बढ़कर प्यारी है। मैं इसे आँखोंसे ओट नहीं होने देना चाहता।'

तदनन्तर एक दिन सम्पूर्ण विद्याओंमें विशारद एक कौशिक-गोत्री ब्राह्मण भिक्षाके लिये मेरे द्वारपर आये। उन्होंने वेदोंका पूर्ण अध्ययन किया था। वे बड़े अच्छे स्वरसे वेद-मन्त्रोंका उच्चारण करते थे। उन्हें आया देख मेरे पिताने पूछा—'आप कौन हैं? आपका नाम, कुल, गोत्र और आचार क्या है? यह बताइये।' पिताकी बात सुनकर ब्राह्मण कुमारने उत्तर दिया—'कौशिक वंशमें मेरा जन्म हुआ है। मैं वेद-वेदाङ्गोंका पारगत विद्वान् हूँ, मेरा नाम शिवशर्मा है, मेरे माता-पिता अब इस संसारमें नहीं हैं।' शिवशर्माने जब इस प्रकार अपना परिचय दिया, तब मेरे पिताने शुभ लग्नमें उनके साथ मेरा विवाह कर दिया। अब उनके साथ ही मैं पिताके घरपर रहने लगी। परन्तु मैं माता-पिताके धनके घमंडसे अपनी विवेकशक्ति खो बैठी थी। मुझ पापिनीने कभी भी अपने स्वामीकी सेवा नहीं की। मैं सदा उन्हें क्रूर दृष्टिसे ही देखा करती थी। कुछ व्यभिचारिणी स्त्रियोंका साथ हो गया था, अतः सङ्ग-दोषसे मेरे मनमें भी वैसा ही नीच भाव आ गया था। मैं जहाँ-तहाँ स्वच्छन्दतापूर्वक घूमती फिरती और माता-पिता, पति तथा भाइयोंके हितकी परवा नहीं करती थी। शिवशर्माका शील और उनकी साधुता सबको ज्ञात थी, अतः माता-पिता आदि सब लोग मेरे पापसे दुःखी रहते थे। मेरा दुष्कर्म देख पतिदेव उस घरको छोड़कर चले गये। उनके जानेसे पिताजीको बड़ी चिन्ता हुई। उन्हें दुःखसे व्याकुल देख माताने पूछा—'नाथ! आप चिन्तित क्यों हो रहे हैं?' वसुदत्तने कहा—'प्रिये! सुनो, दामाद मेरी पुत्रीको त्यागकर चले गये। सुदेवा पापाचारिणी है और वे पण्डित तथा बुद्धिमान् थे। मैं क्या जानता था कि यह मेरी कन्या सुदेवा ऐसी दुष्टा और कुलनाशिनी होगी।'

ब्राह्मणी बोली—नाथ! आज आपको पुत्रीके गुण और दोषका ज्ञान हुआ है—इस समय आपकी आँखें खुली हैं, किन्तु सच तो यह है कि आपके ही मोह और स्नेहसे—लाड़ और प्यारसे यह इस प्रकार बिगड़ी है। अब मेरी बात सुनिये—सन्तान जबतक पाँच वर्षकी न हो जाय, तभी तक उसका लाड़-प्यार करना चाहिये। उसके बाद सदा सन्तानकी शिक्षाकी ओर ध्यान देते हुए उसका पालन-पोषण करना उचित है। नहलाना-धुलाना, उत्तम वस्त्र पहनाना, अच्छे खान-पानका प्रबन्ध करना—ये सब बातें सन्तानकी पुष्टिके लिये आवश्यक हैं। साथ ही पुत्रोंको उत्तम गुण और विद्याकी ओर भी लगाना चाहिये। पिताका कर्तव्य है कि वह सन्तानको सद्गुणोंकी शिक्षा देनेके लिये सदा कठोर बना रहे। केवल पालन-पोषणके लिये उसके प्रति मोह-ममता रखे। पुत्रके सामने कदापि उसके गुणोंका वर्णन न करे। उसे राहपर लानेके लिये कड़ी फटकार सुनाये तथा इस प्रकार उसे साधे, जिससे वह विद्या और गुणोंमें सदा ही निपुण होता जाय। जब माता अपनी कन्याको, सास अपनी पुत्र-वधूको और गुरु अपने शिष्योंको ताड़ना देता है, तभी वे सीधे होते हैं। इसी प्रकार पति अपनी पत्नीको और राजा अपने मन्त्रीको दोषोंके लिये कड़ी फटकार सुनायें। शिक्षा-बुद्धिसे ताड़न और पालन करनेपर सन्तान सद्गुणोंद्वारा प्रसिद्धि लाभ करती है।

शिवशर्मा उत्तम ब्राह्मण थे। उनके साथ रहनेपर भी इस कन्याको आपने घरमें निरङ्कुश—स्वच्छन्द बना रखा था। इसीसे उच्छृङ्खल हो जानेके कारण यह नष्ट हुई है। पुत्री अपने पिताके घरमें रहकर जो पाप करती है, उसका फल माता-पिताको भी भोगना पड़ता है, इसलिये समर्थ पुत्रीको अपने घरमें नहीं रखना चाहिये। जिससे उसका ब्याह किया गया है, उसीके घरमें उसका पालन-पोषण होना उचित है। वहाँ रहकर वह भक्तिपूर्वक जो उत्तम गुण सीखती और पतिकी सेवा करती है, उससे कुलकी कीर्ति बढ़ती है और पिता भी सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करता है। ससुरालमें रहकर यदि वह पाप करती है तो उसका फल पतिको भोगना पड़ता है। वहाँ सदाचारपूर्वक रहनेसे वह सदा पुत्र-पौत्रोंके साथ वृद्धिको प्राप्त होती है। प्राणनाथ! पुत्रीके उत्तम गुणोंसे पिताकी कीर्ति बढ़ती है। इसलिये दामादके साथ भी कन्याको अपने घर नहीं रखना चाहिये। इस विषयमें एक पौराणिक इतिहास सुना जाता है, जो अट्ठाइसवें द्वापरके आनेपर संघटित होनेवाला है। यदुकुलश्रेष्ठ वीरवर उग्रसेनके यहाँ जो घटना घटित होनेवाली है, उसीका मैं [भूतकालके रूपमें] वर्णन करूँगी।

माथुर प्रदेशमें मथुरा नामकी नगरी है, वहाँ उग्रसेन

नामवाले यदुवंशी राजा राज्य करते थे। वे शत्रुविजयी, सम्पूर्ण धर्मोंके तत्त्वज्ञ, बलवान्, दाता और सद्गुणोंके जानकार थे। मेधावी राजा उग्रसेन धर्मपूर्वक राज्यका सञ्चालन और प्रजाका पालन करते थे। उन्हीं दिनों परम पवित्र विदर्भदेशमें सत्यकेतु नामसे प्रसिद्ध एक प्रतापी राजा थे। उनकी एक पुत्री थी, जिसका नाम पद्मावती था। वह सत्य-धर्ममें तत्पर तथा स्त्री-समुचित गुणोंसे युक्त होनेके कारण दूसरी लक्ष्मीके समान थी। मथुराके राजा उग्रसेनने उस मनोहर नेत्रोंवाली पद्मावतीसे विवाह किया। उसके स्नेह और प्रेमसे मथुरानरेश मुग्ध हो गये। पद्मावतीको वे प्राणोंके समान प्यार करने लगे। उसे साथ लिये बिना भोजनतक नहीं करते थे। उसके साथ क्रीड़ा-विलासमें ही राजाका समय बीतने लगा। पद्मावतीके बिना उन्हें एक क्षण भी चैन नहीं पड़ता था। इस प्रकार उस दम्पतिमें परस्पर बड़ा प्रेम था।

कुछ कालके पश्चात् विदर्भनरेश सत्यकेतुने अपनी पुत्री पद्मावतीको स्मरण किया। उसकी माता उसे न देखनेके कारण बहुत दुखी थी। उन्होंने मथुरानरेश उग्रसेनके पास अपने दूत भेजे। दूतोंने वहाँ जाकर आदरपूर्वक राजासे कहा—'महाराज! विदर्भनरेश सत्यकेतुने अपनी कुशल कहलायी है और आपका कुशल-समाचार वे पूछ रहे हैं। यदि उनका प्रेम और स्नेहपूर्ण अनुरोध आपको स्वीकार हो तो राजकुमारी पद्मावतीको उनके यहाँ भेजनेकी व्यवस्था कीजिये। वे अपनी पुत्रीको देखना चाहते हैं।' नरश्रेष्ठ उग्रसेनने जब दूतोंके मुँहसे यह बात सुनी तो प्रीति, स्नेह और उदारताके कारण अपनी प्रिय पत्नी पद्मावतीको विदर्भराजके यहाँ भेज दिया। पतिके भेजनेपर पद्मावती बड़े हर्षके साथ अपने मायके गयी। वहाँ पहुँचकर उसने पिताके चरणोंमें प्रणाम किया। उसके आनेसे महाराज सत्यकेतुको बड़ी प्रसन्नता हुई। पद्मावती वहाँ अपनी सखियोंके साथ निःशङ्क होकर घूमने लगी। पहलेकी ही भाँति घर, वन, तालाब और चौबारोंमें विचरण करने लगी। वहाँ आकर वह पुनः बालिका बन गयी; उसके बर्तावमें लाज या सङ्कोचका भाव नहीं रहा।

एक दिनकी बात है—पद्मावती [अपनी सखियोंके साथ] एक सुन्दर पर्वतपर सैर करनेके लिये गयी। उसकी तराईमें एक रमणीय वन दिखायी दिया, जो केलोंके उद्यानसे शोभा पा रहा था। पहाड़पर भी फूलोंकी बहार थी। राजकुमारीने देखा—एक ओर ऐसा रमणीय पर्वत, दूसरी ओर मनोहर वनस्थली और बीचमें स्वच्छ जलसे भरा सर्वतोभद्र नामक तालाब है। बालोचित चपलता, नारी-स्वभाव और खेल-कूदकी रुचि—इन सबका प्रभाव उसके ऊपर पड़ा। वह सहेलियोंके साथ तालाबमें उतर पड़ी और हँसती-गाती हुई जल-क्रीड़ा करने लगी।

इसी समय कुबेरका सेवक गोभिल नामक दैत्य दिव्य विमानपर बैठकर आकाशमार्गसे कहीं जा रहा था। तालाबके ऊपर आनेपर उसकी दृष्टि विशाल नेत्रोंवाली विदर्भ-राजकुमारी पद्मावतीपर पड़ी, जो निर्भय होकर स्नान कर रही थी। गोभिलकी ज्ञान-शक्ति बहुत बढ़ी हुई थी, उसने निश्चित रूपसे जान लिया कि 'यह विदर्भ-नरेशकी कन्या और महाराज उग्रसेनकी प्यारी पत्नी है। परन्तु यह तो *पतिव्रता होनेके कारण आत्मबलसे ही सुरक्षित है, परपुरुषोंके लिये इसे प्राप्त करना नितान्त कठिन है।* उग्रसेन महामूर्ख है, जो उसने ऐसी सुन्दरी पत्नीको मायके भेज दिया है। आह! यह पतिव्रता नारी पराये पुरुषके लिये दुर्लभ है, इधर कामदेव मुझे अत्यन्त पीड़ा दे रहा है। मैं किस प्रकार इसके निकट जाऊँ और कैसे इसका उपभोग करूँ?' इसी उधेड़-बुनमें पड़े-पड़े उसने अपने लिये एक उपाय निकाल लिया। गोभिलने महाराज उग्रसेनका मायामय रूप धारण किया। *वह ज्यों-का-त्यों उग्रसेन बन गया। वही अङ्ग, वही उपाङ्ग,* वैसे ही वस्त्र, उसी तरहका वेष और वही *अवस्था।* पूर्ण रूपसे उग्रसेन-सा होकर वह पर्वतके शिखरपर उतरा और एक अशोक वृक्षकी छायामें शिलाके ऊपर बैठकर उसने मधुर स्वरसे सङ्गीत छेड़ दिया। वह गीत सम्पूर्ण विश्वको मोहित करनेवाला था। ताल, लय और उत्तम स्वरसे युक्त उस मधुर गानको सखियोंके मध्यमें बैठी हुई सुन्दरी पद्मावतीने भी सुना। वह सोचने लगी—कौन गायक यह गीत गा रहा है? राजकुमारीके मनमें उसे देखनेकी उत्कण्ठा हुई। उसने सखियोंके साथ जाकर देखा, अशोककी छायामें उज्ज्वल शिलाखण्डके ऊपर बैठा हुआ कोई पुरुष गा रहा है; वह महाराज उग्रसेन-सा ही जान पड़ता है। वास्तवमें तो वह राजाके वेषमें नीच दानव गोभिल ही था। पद्मावती विचार करने लगी—मेरे धर्मपरायण स्वामी मथुरानरेश अपना राज्य छोड़कर इतनी दूर कब और कैसे चले आये? वह इस प्रकार सोच ही रही थी कि उस पापीने स्वयं ही पुकारा—'प्रिये! आओ, आओ; देवि! तुम्हारे बिना मैं नहीं जी सकता। सुन्दरी! तुमसे अलग रहकर मेरे लिये इस प्रिय जीवनका

भार वहन करना भी असम्भव हो गया है। तुम्हारे स्नेहने मुझे मोह लिया है, अतः मैं तुम्हें छोड़कर कहीं नहीं रह सकता।'

पतिरूपधारी दैत्यके ऐसा कहनेपर पद्मावती कुछ लज्जित सी होकर उसके सामने गयी। वह पद्मावतीका हाथ पकड़कर उसे एकान्त स्थानमें ले गया और वहाँ अपनी इच्छाके अनुसार उसका उपभोग किया। महाराज उग्रसेनके गुप्त अङ्गमें कुछ खास निशानी थी, जो उस पुरुषमें नहीं दिखायी दी। इससे सुन्दरी पद्मावतीके मनमें उसके प्रति सन्देह उत्पन्न हुआ। राजकुमारीने अपने वस्त्र सँभालकर पहन लिये; किन्तु उसके हृदयमें इस घटनासे बड़ा दुःख हुआ। वह क्रोधमें भरकर नीच दानव गोभिलसे बोली—'ओ नीच! जल्दी बता, तू कौन है? तेरा आकार दानव-जैसा है, तू पापाचारी और निर्दयी है।' यह कहते-कहते आत्मग्लानिके कारण उसकी आँखें भर आयीं। वह शाप देनेको उद्यत होकर बोली—'दुरात्मन्! तूने मेरे पतिके रूपमें आकर मेरे साथ छल किया और इस धर्ममय शरीरको अपवित्र करके मेरे उत्तम पातिव्रत्य का नाश कर डाला है। अब यहाँ तू मेरा भी प्रभाव देख ले, मैं तुझे अत्यन्त कठोर शाप दूँगी।'

उसकी बात सुनकर गोभिलने कहा—'पतिव्रता स्त्री, भगवान् श्रीविष्णु तथा उत्तम ब्राह्मणके भयसे तो समस्त राक्षस और दानव दूर भागते हैं। मैं दानव धर्मके अनुसार ही इस पृथ्वीपर विचर रहा हूँ; पहले मेरे दोषका विचार करो, किस अपराधपर तुम मुझे शाप देनेको उद्यत हुई हो?'

पद्मावती बोली—पापी! मैं साध्वी और पतिव्रता हूँ, मेरे मनमें केवल अपने पतिकी कामना रहती है, मैं सदा उन्हींके लिये तपस्या किया करती हूँ। मैं अपने धर्ममार्गपर स्थित थी, किन्तु तूने माया रचकर मेरे धर्मके साथ ही मुझे भी नष्ट कर दिया। इसलिये रे दुष्ट! तुझे भी मैं भस्म कर डालूँगी।

गोभिल बोला—राजकुमारी! यदि उचित समझो तो सुनो; मैं धर्मकी ही बात कह रहा हूँ। जो स्त्री प्रतिदिन मन, वाणी और क्रियाद्वारा अपने स्वामीकी सेवा करती है, पतिके संतुष्ट रहनेपर स्वयं भी संतोषका अनुभव करती है, पतिके क्रोधी होनेपर भी उसका त्याग नहीं करती, उसके दोषोंकी ओर ध्यान नहीं देती, उसके मारनेपर भी प्रसन्न होती है और स्वामीके सब कामोंमें आगे रहती है, वही नारी पतिव्रता कही गयी है। यदि स्त्री इस लोकमें अपना कल्याण करना चाहती हो तो वह पतित, रोगी, अङ्गहीन, कोढ़ी, सब धर्मोंसे रहित तथा पापी पतिका भी परित्याग न करे। जो स्वामीको छोड़कर जाती और दूसरे-दूसरे कामोंमें मन लगाती है, वह समाजमें सब धर्मोंसे बहिष्कृत व्यभिचारिणी समझी जाती है। जो पतिकी अनुपस्थितिमें लोलुपतावश ग्राम्य भोग तथा शृङ्गारका सेवन करती है, उसे मनुष्य कुलटा कहते हैं। मुझे वेद और शास्त्रोंद्वारा अनुमोदित धर्मका ज्ञान है। तुम गृहस्थ धर्मका परित्याग करके पतिकी सेवा छोड़कर यहाँ किसलिये आयीं? इतनेपर भी अपने ही मुँहसे कहती हो—मैं पतिव्रता हूँ। कर्मसे तो तुममें पातिव्रत्यका लेशमात्र भी नहीं दिखायी देता। तुम डर भय छोड़कर पर्वत और वनमें मतवाली होकर घूमती फिरती हो, इसलिये पापिनी हो। मैंने यह महान् दण्ड देकर तुम्हें सीधी राहपर लगाया है—अब कभी तुमसे ऐसी धृष्टता नहीं हो सकती। बताओ तो, पतिको छोड़कर किसलिये यहाँ आयी हो? यह शृङ्गार, ये आभूषण तथा यह मनोहर वेष धारण करके क्यों खड़ी हो? पापिनी! बोलो न, किसलिये और किसके लिये यह सब किया है? कहाँ है तुम्हारा पातिव्रत्य? दिखाओ तो मेरे सामने। व्यभिचारिणी स्त्रियोंके समान बर्ताव करनेवाली नारी! तुम इस समय अपने पतिसे चार सौ कोस दूर हो, कहाँ है तुममें पतिको देवता माननेका भाव। दुष्ट कहींकी! तुम्हें लाज नहीं आती, अपने बर्तावपर घृणा नहीं होती? तुम क्या मेरे सामने बोलती हो? कहाँ है तुम्हारी तपस्याका प्रभाव? कहाँ है तुम्हारा तेज और बल? आज ही मुझे अपना बल, वीर्य और पराक्रम दिखाओ।

पद्मावती बोली—ओ नीच असुर! सुन; पिताने स्नेहवश मुझे पतिके घरसे बुलाया है, इसमें कहाँ पाप है? मैं काम, लोभ, मोह तथा डाहके वश पतिको छोड़कर नहीं आयी हूँ; मैं यहाँ भी पतिका चिन्तन करती हुई ही रहती हूँ। तुमने भी छलसे मेरे पतिका रूप धारण करके ही मुझे धोखा दिया है।

गोभिलने कहा—पद्मावती! मेरी युक्तियुक्त बात सुनो। अंधे मनुष्योंको कुछ दिखायी नहीं देता; तुम धर्मरूपी नेत्रसे हीन हो, फिर कैसे मुझे यहाँ पहचान पातीं? जिस समय तुम्हारे मनमें पिताके घर आनेका भाव उदय हुआ, उसी समय तुम पतिकी भावना छोड़कर उनके ध्यानसे मुक्त हो गयी थीं। पतिका निरन्तर चिन्तन ही सतियोंके ज्ञानका तत्त्व है। जब वही नष्ट हो गया, जब तुम्हारे हृदयकी आँख ही फूट गयी, तब ज्ञान नेत्रसे हीन होनेपर तुम मुझे कैसे पहचानतीं?

ब्राह्मणी कहती है—प्राणनाथ! गोभिलकी बात सुनकर राजकुमारी पद्मावती धरतीपर बैठ गयी। उसके हृदयमें बड़ा दुःख हो रहा था। गोभिलने फिर कहा—'शुभे! मैंने तुम्हारे उदरमें जो अपने वीर्यकी स्थापना की है, उससे तीनों लोकोंको त्रास पहुँचानेवाला पुत्र उत्पन्न होगा।' यों कहकर वह दानव चला गया। गोभिल बड़ा दुराचारी और पापात्मा था। उसके चले जानेपर पद्मावती महान् दुःखसे अभिभूत होकर रोने लगी। रोनेका शब्द सुनकर सखियाँ उसके पास दौड़ी आयीं और पूछने लगीं—'राजकुमारी! रोती क्यों हो? मथुरानरेश महाराज उग्रसेन कहाँ चले गये?' पद्मावतीने अत्यन्त दुःखसे रोते-रोते अपने छले जानेकी सारी बात बता दी। सहेलियाँ उसे पिताके घर ले गयीं। उस समय वह शोकसे कातर हो थर-थर काँप रही थी। सखियोंने पद्मावतीकी माताके सामने सारी घटना कह दी। सुनते ही महारानी अपने पतिके महलमें गयीं और उनसे कन्याका सारा वृत्तान्त उन्होंने कह सुनाया। उसे सुनकर महाराज सत्यकेतुको बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने सवारी और वस्त्र आदि देकर कुछ लोगोंके साथ पुत्रीको मथुरामें उसके पतिके घर भेज दिया।

धर्मात्मा राजा उग्रसेन पद्मावतीको आयी देख बहुत प्रसन्न हुए। वे रानीसे बार-बार कहने लगे—'सुन्दरी! मैं तुम्हारे बिना जीवन धारण नहीं कर सकता। प्रिये! तुम अपने गुण, शील, भक्ति, सत्य और पातिव्रत्य आदि सद्गुणोंसे मुझे अत्यन्त प्रिय लगती हो।' अपनी प्यारी भार्या पद्मावतीसे यों कहकर नृपश्रेष्ठ महाराज उग्रसेन उसके साथ विहार करने लगे। सब लोगोंको भय पहुँचानेवाला उसका भयंकर गर्भ दिन-दिन बढ़ने लगा; किन्तु उस गर्भका कारण केवल पद्मावती ही जानती थी। अपने उदरमें बढ़ते हुए उस गर्भके विषयमें पद्मावतीको दिन-रात चिन्ता बनी रहती थी। दस वर्षतक वह गर्भ बढ़ता ही गया। तत्पश्चात् उसका जन्म हुआ। वही महान् तेजस्वी और महाबली कंस था, जिसके भयसे तीनों लोकोंके निवासी थर्रा उठे थे तथा जो भगवान् श्रीकृष्णके हाथसे मारा जाकर मोक्षको प्राप्त हुआ। स्वामिन्! ऐसी घटना भविष्यमें संघटित होनेवाली है, यह मैंने सुन रखा है। मैंने आपसे जो कुछ कहा है, वह समस्त पुराणोंका निश्चित मत है। इस प्रकार पिताके घरमें रहनेवाली कन्या बिगड़ जाती है। अतः कन्याको घरमें रखनेका मोह नहीं करना चाहिये। यह सुदेवा बड़ी दुष्टा और महापापिनी है। अतः इसका परित्याग करके आप निश्चिन्त हो जाइये।

शूकरी कहती है—माताकी यह बात—यह उत्तम सलाह सुनकर मेरे पिता द्विजश्रेष्ठ वसुदत्तने मुझे त्याग देनेका ही निश्चय किया। उन्होंने मुझे बुलाकर कहा—'दुष्टे! कुलमें कलङ्क लगानेवाली दुराचारिणी! तेरे ही अन्यायसे परम बुद्धिमान् शिवशर्मा चले गये। जहाँ तेरे स्वामी रहते हैं, वहीं तू भी चली जा; अथवा जो स्थान तुझे अच्छा लगे, वहीं जा। जैसा जीमें आये, वैसा कर।' महारानीजी! यों कहकर पिता-माता और कुटुम्बके लोगोंने मुझे त्याग दिया। मैं तो अपनी लाज-हया खो ही चुकी थी, शीघ्र ही वहाँसे चल दी। किन्तु कहीं भी मुझे ठहरनेके लिये स्थान और सुख नहीं मिलता था। लोग मुझे देखते ही 'यह कुलटा आयी!' कहकर दुत्कारने लगते थे।

कुल और मानसे वञ्चित होकर घूमती-फिरती मैं प्रान्तसे बाहर निकल गयी और गुर्जर देश (गुजरात प्रान्त) के सौराष्ट्र (प्रभास) नामक पुण्यतीर्थमें जा पहुँची, जहाँ भगवान् शिव (सोमनाथ) का मन्दिर है। मन्दिरके पास ही वनस्थल नामसे विख्यात एक नगर था, जिसकी उस समय बड़ी उन्नति थी। मैं भूखसे अत्यन्त पीड़ित थी, इसलिये खपरा लेकर भीख माँगने चली। परन्तु सब लोग मुझसे घृणा करते थे। 'यह पापिनी आयी [भगाओ इसे]' यों कहकर कोई भी मुझे भिक्षा नहीं देता था। इस प्रकार दुःखमय जीवन व्यतीत करती मैं बड़े भारी रोगसे पीड़ित हो गयी। उस नगरमें घूमते-घूमते मैंने एक बड़ा सुन्दर घर देखा, जहाँ वैदिक पाठशाला थी। वह घर अनेक ब्राह्मणोंसे भरा था और वहाँ सब ओर वेदमन्त्रोंकी ध्वनि हो रही थी। लक्ष्मीसे युक्त और आनन्दसे परिपूर्ण उस रमणीय गृहमें मैंने प्रवेश किया। वह सब ओरसे मङ्गलमय प्रतीत होता था। मेरे पति शिवशर्माका ही वह घर था। मैं दुःखसे पीड़ित होकर बोली—'भिक्षा दीजिये!' द्विजश्रेष्ठ शिवशर्माने भिक्षाका शब्द सुना। उनकी एक भार्या थी, जो साक्षात् लक्ष्मीके समान रूपवती थी। उसका मुख बड़ा ही सुन्दर था। वह मङ्गला नामसे प्रसिद्ध थी। परम बुद्धिमान् धर्मात्मा शिव-

शर्माने मन्द-मन्द मुसकराती हुई अपनी पत्नी मङ्गलासे कहा—



'प्रिये! वह देखो—एक दुबली पतली स्त्री आयी है, जो भिक्षाके लिये द्वारपर खड़ी है, इसे घरमें बुलाकर भोजन दो।' मुझे आयी जान मङ्गलाका हृदय अत्यन्त करुणासे भर आया। उसने मुझ दीन दुर्बल भिक्षुकीको मिष्टान्न भोजन कराया। मैं अपने पतिको पहचान गयी थी, उन्हें देखकर लज्जासे मेरा मस्तक झुक गया। परम सुन्दरी मङ्गलाने मेरे इस भाव को लक्ष्य किया और स्वामीसे पूछा—'प्राणनाथ! यह कौन है, जो आपको देखकर लजा रही है? मुझपर कृपा करके इसका यथार्थ परिचय दीजिये।'

शिवशर्माने कहा—प्रिये! यह विप्रवर वसुदत्तकी कन्या है। बेचारी इस समय भिक्षुकीके रूपमें यहाँ आयी है। इसका नाम सुदेवा है। यह मेरी कल्याणमयी भार्या है, जो मुझे सदा ही प्रिय रही है। किसी विशेष कारणसे यह अपना देश छोड़कर आज यहाँ आयी है, ऐसा समझकर तुम्हें इसका अच्छे ढगसे स्वागत सत्कार करना चाहिये। यदि तुम मेरा भलीभाँति प्रिय करना चाहती हो तो इसके आदरभावमें कमी न करना।

पतिकी बात सुनकर मङ्गलमयी मङ्गला बहुत प्रसन्न हुई। उसने अपने ही हाथों मुझे स्नान कराकर उत्तम वस्त्र पहननेको दिया और स्वयं भोजन बनाकर खिलाने पिलाने लगी। रानीजी! अपने स्वामीके द्वारा इतना सम्मान पाकर मुझे अपार दुःख हुआ। मेरे हृदयमें पश्चात्तापकी तीव्र अग्नि प्रज्वलित हो उठी। मैंने मङ्गलाके किये हुए सम्मान और अपने दुष्कर्मकी ओर देखा, इससे मनमें दुःसह चिन्ता हुई, यहाँतक कि प्राण जानेकी नौबत आ गयी। मैं ऐसी पापिनी थी कि पतिसे कभी मीठे वचनतक नहीं बोली। उल्टे उन श्रेष्ठ ब्राह्मणके विपरीत बुरे कर्मोंका ही आचरण करती रही। इस प्रकार चिन्ता करते करते मेरा हृदय फट गया और प्राण शरीर छोड़कर चल बसे।

तदनन्तर यमराजके दूत आये और मुझे साँकलके दृढ बन्धनमें बाँधकर यमपुरीको ले चले। मार्गमें जब मैं अत्यन्त दुखी होकर रोती, तब वे मुझे मुगदरोंसे पीटते और



दुर्गम मार्गसे ले जाकर कष्ट पहुँचाते थे। बीच-बीचमें मुझे फटकारें भी सुनाते जाते थे। उन्होंने मुझे यमराजके सामने ले जाकर खड़ा कर दिया। महात्मा यमराजने बड़ी क्रोधपूर्ण दृष्टिसे मेरी ओर देखा और मुझे अँगारोंकी ढेरीमें फेंकवा दिया। उसके बाद मैं कई नरकोंमें डाली गयी। मैंने अपने स्वामीके साथ धोखा किया था, इसलिये एक लोहेका पुरुष बनाकर उसे आगसे तपाया गया और

वह मेरी छातीपर सुला दिया गया। नरककी प्रचण्ड आगमें तपायी जानेपर मैं नाना प्रकारकी पीड़ाओंसे अत्यन्त कष्ट पाने लगी। असिपत्र-वनमें पड़कर मेरा सारा शरीर छिन्न-भिन्न हो गया। फिर मैं पीव, रक्त और विष्ठामें डाली गयी। कीड़ोंसे भरे हुए कुण्डमें रहना पड़ा। आरीसे मुझे चीरा गया। शक्ति नामक अस्त्रका भलीभाँति मुझपर प्रहार किया गया। दूसरे-दूसरे नरकोंमें भी मैं गिरायी गयी। अनेक योनियोंमें जन्म लेकर मुझे असह्य दुःख भोगना पड़ा। पहले सियारकी योनिमें पड़ी, फिर कुत्तेकी योनिमें जन्म लिया। तत्पश्चात् क्रमशः साँप, मुर्गे, बिल्ली और चूहेकी योनिमें जाना पड़ा। इस प्रकार धर्मराजने पीड़ा देनेवाली प्रायः सभी पापयोनियोंमें मुझे डाला। उन्होंने ही मुझे इस भूतलपर शूकरी बनाया है। महाभागे! तुम्हारे हाथमें अनेक तीर्थोंका वास है। देवि! तुमने अपने हाथके जलसे मुझे सींचा है, इसलिये तुम्हारी कृपासे मेरा सब पाप दूर हो गया। तुम्हारे तेज और पुण्यसे मुझे अपने पूर्वजन्मकी बातोंका ज्ञान हुआ है। रानीजी! इस समय संसारमें केवल तुम्हीं सबसे बड़ी पतिव्रता हो। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि तुमने अपने स्वामीकी बहुत बड़ी सेवा की है। सुन्दरी! यदि मेरा प्रिय करना चाहती हो तो अपने एक दिनकी पतिसेवाका पुण्य मुझे अर्पण कर दो। इस समय तुम्हीं मेरी माता, पिता और सनातन गुरु हो। मैं पापिनी, दुराचारिणी, असत्यवादिनी और ज्ञानहीना हूँ। महाभागे! मेरा उद्धार करो।

सुकला बोली—सखियो! शूकरीकी यह बात सुनकर रानी सुदेवाने राजा इक्ष्वाकुकी ओर देखकर पूछा—'महाराज! मैं क्या करूँ? यह शूकरी क्या कहती है?'

इक्ष्वाकुने कहा—शुभे! यह बेचारी पाप-योनिमें पड़कर दुःख उठा रही है; तुम अपने पुण्योंसे इसका उद्धार करो, इससे महान् कल्याण होगा।

महाराजकी आज्ञा लेकर रानी सुदेवाने शूकरीसे कहा—'देवि! मैंने अपना एक वर्षका पुण्य तुम्हें अर्पण किया।' रानी सुदेवाके इतना कहते ही वह शूकरी तत्काल दिव्य देह धारण कर प्रकट हुई। उसके शरीरसे तेजकी ज्वाला निकल रही थी। सब प्रकारके आभूषण और भाँति-भाँतिके रत्न उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। वह साध्वी दिव्यरूपसे युक्त हो दिव्य विमानपर बैठी और अन्तरिक्ष लोकको चलने लगी। जाते समय उसने मस्तक झुकाकर रानीको प्रणाम किया और कहा—'महाभागे! तुम्हारी कृपासे आज मैं पापमुक्त होकर परम पवित्र एवं मङ्गलमय वैकुण्ठको जा रही हूँ।' यों कहकर वह वैकुण्ठको चली गयी।

सुकला कहने लगी—इस प्रकार पहले मैंने पुराणोंमें नारीधर्मका वर्णन सुना है। ऐसी दशामें जब पतिदेव यहाँ उपस्थित नहीं हैं, मैं किस प्रकार भोगोंका उपभोग करूँ। मेरे लिये ऐसा विचार निश्चय ही पापपूर्ण होगा।

सुकलाके मुखसे इस प्रकार उत्तम पातिव्रत्य-धर्मका वर्णन सुनकर सखियोंको बड़ा हर्ष हुआ। नारियोंको सद्गति प्रदान करनेवाले उस परम पवित्र धर्मका श्रवण करके समस्त ब्राह्मण और पुण्यवती स्त्रियाँ धर्मानुरागिणी महाभागा सुकलाकी प्रशंसा करने लगीं।

सुकलाका सतीत्व नष्ट करनेके लिये इन्द्र और काम आदिकी कुचेष्टा तथा उनका असफल होकर लौट आना

भगवान् श्रीविष्णु कहते हैं—राजेन्द्र! सुकलाके मनमें केवल पतिका ही ध्यान था और पतिकी ही कामना थी। उसके सतीत्वका प्रभाव देवराज इन्द्रने भी भलीभाँति देखा तथा उसके विषयमें पूर्णतया विचार करके वे मन-ही-मन कहने लगे—'मैं इसके अविचल धैर्य [और धर्म]को नष्ट कर दूँगा।' ऐसा निश्चय करके उन्होंने तुरंत ही कामदेवका स्मरण किया। महाबली कामदेव अपनी प्रिया रतिके साथ वहाँ आ गये और हाथ जोड़कर इन्द्रसे बोले—'नाथ! इस समय किसलिये आपने मुझे याद किया है? आज्ञा दीजिये, मैं सब प्रकारसे उसका पालन करूँगा।'

इन्द्रने कहा—कामदेव! यह जो पातिव्रत्यमें तत्पर रहनेवाली महाभागा सुकला है, वह परम पुण्यवती और मङ्गलमयी है; मैं इसे अपनी ओर आकर्षित करना चाहता हूँ। इस कार्यमें तुम मेरी पूरी तरहसे सहायता करो।

कामदेवने उत्तर दिया—'सहस्रलोचन! मैं आपकी इच्छा-पूर्तिके लिये आपकी सहायता अवश्य करूँगा। देवराज! मैं देवताओं, मुनियों और बड़े-बड़े ऋषीश्वरोंको भी जीतनेकी शक्ति रखता हूँ; फिर एक साधारण कामिनीको, जिसके शरीरमें कोई बल ही नहीं होता, जीतना कौन बड़ी बात है! मैं कामिनियोंके विभिन्न अङ्गोंमें निवास

शर्माने मन्द-मन्द मुसकराती हुई अपनी पत्नी मङ्गलासे कहा–



'प्रिये! वह देखो—एक दुबली पतली स्त्री आयी है, जो भिक्षाके लिये द्वारपर खड़ी है, इसे घरमें बुलाकर भोजन दो।' मुझे आयी जान मङ्गलाका हृदय अत्यन्त करुणासे भर आया। उसने मुझ दीन दुर्बल भिक्षुकीको मिष्टान्न भोजन कराया। मैं अपने पतिको पहचान गयी थी, उन्हें देखकर लज्जासे मेरा मस्तक झुक गया। परम सुन्दरी मङ्गलाने मेरे इस भाव को लक्ष्य किया और स्वामीसे पूछा—'प्राणनाथ! यह कौन है, जो आपको देखकर लजा रही है? मुझपर कृपा करके इसका यथार्थ परिचय दीजिये।'

शिवशर्माने कहा—प्रिये! यह विप्रवर वसुदत्तकी कन्या है। बेचारी इस समय भिक्षुकीके रूपमें यहाँ आयी है। इसका नाम सुदेवा है। यह मेरी कल्याणमयी भार्या है, जो मुझे सदा ही प्रिय रही है। *किसी विशेष कारणसे* यह अपना देश छोड़कर आज यहाँ आयी है, ऐसा समझकर तुम्हें इसका अच्छे ढंगसे स्वागत सत्कार करना चाहिये। यदि तुम मेरा भलीभाँति प्रिय करना चाहती हो तो इसके आदरभावमें कमी न करना।

पतिकी बात सुनकर मङ्गलमयी मङ्गला बहुत प्रसन्न हुई। उसने अपने ही हाथों मुझे स्नान कराकर उत्तम वस्त्र पहननेको दिया और स्वयं भोजन बनाकर खिलाने पिलाने लगी। *रानीजी! अपने स्वामीके द्वारा इतना सम्मान पाकर* मुझे अपार दुःख हुआ। मेरे हृदयमें पश्चात्तापकी तीव्र अग्नि प्रज्वलित हो उठी। मैंने मङ्गलाके किये हुए सम्मान और अपने दुष्कर्मकी ओर देखा, इससे मनमें दुःसह चिन्ता हुई, यहाँतक कि प्राण जानेकी नौबत आ गयी। मैं ऐसी पापिनी थी कि पतिसे कभी मीठे वचनतक नहीं बोली। उलटे उन श्रेष्ठ ब्राह्मणके विपरीत बुरे कर्मोंका ही आचरण करती रही। इस प्रकार चिन्ता करते-करते मेरा हृदय फट गया और प्राण शरीर छोड़कर चल बसे।

तदनन्तर यमराजके दूत आये और मुझे साँकलके दृढ़ बन्धनमें बाँधकर यमपुरीको ले चले। मार्गमें जब मैं अत्यन्त दुखी होकर रोती, तब वे मुझे मुगदरोंसे पीटते और



दुर्गम मार्गसे ले जाकर कष्ट पहुँचाते थे। बीच-बीचमें मुझे फटकारें भी सुनाते जाते थे। उन्होंने मुझे यमराजके सामने ले जाकर खड़ा कर दिया। महात्मा यमराजने बड़ी क्रोधपूर्ण दृष्टिसे मेरी ओर देखा और मुझे अँगारोंकी ढेरीमें फेंकवा दिया। उसके बाद मैं कई नरकोंमें डाली गयी। मैंने अपने स्वामीके साथ धोखा किया था, इसलिये एक लोहेका पुरुष बनाकर उसे आगसे तपाया गया और

वह मेरी छातीपर सुला दिया गया। नरककी प्रचण्ड आगमें तपायी जानेपर मैं नाना प्रकारकी पीड़ाओंसे अत्यन्त कष्ट पाने लगी। असिपत्र-वनमें पड़कर मेरा सारा शरीर छिन्न-भिन्न हो गया। फिर मैं पीव, रक्त और विष्ठामें डाली गयी। कीड़ोंसे भरे हुए कुण्डमें रहना पड़ा। आरीसे मुझे चीरा गया। शक्ति नामक अस्त्रका भलीभाँति मुझपर प्रहार किया गया। दूसरे-दूसरे नरकोंमें भी मैं गिरायी गयी। अनेक योनियोंमें जन्म लेकर मुझे असह्य दुःख भोगना पड़ा। पहले सियारकी योनिमें पड़ी, फिर कुत्तेकी योनिमें जन्म लिया। तत्पश्चात् क्रमशः साँप, मुर्गे, बिल्ली और चूहेकी योनिमें जाना पड़ा। इस प्रकार धर्मराजने पीड़ा देनेवाली प्रायः सभी पापयोनियोंमें मुझे डाला। उन्होंने ही मुझे इस भूतलपर शूकरी बनाया है। महाभागे! तुम्हारे हाथमें अनेक तीर्थोंका वास है। देवि! तुमने अपने हाथके जलसे मुझे सींचा है, इसलिये तुम्हारी कृपासे मेरा सब पाप दूर हो गया। तुम्हारे तेज और पुण्यसे मुझे अपने पूर्वजन्मकी बातोंका ज्ञान हुआ है। रानीजी! इस समय संसारमें केवल तुम्हीं सबसे बड़ी पतिव्रता हो। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि तुमने अपने स्वामीकी बहुत बड़ी सेवा की है। सुन्दरी! यदि मेरा प्रिय करना चाहती हो तो अपने एक दिनकी पतिसेवाका पुण्य मुझे अर्पण कर दो। इस समय तुम्हीं मेरी माता, पिता और सनातन गुरु हो। मैं पापिनी, दुराचारिणी, असत्यवादिनी और ज्ञानहीना हूँ। महाभागे! मेरा उद्धार करो।

सुकला बोली—सखियो! शूकरीकी यह बात सुनकर रानी सुदेवाने राजा इक्ष्वाकुकी ओर देखकर पूछा—'महाराज! मैं क्या करूँ? यह शूकरी क्या कहती है?'

इक्ष्वाकुने कहा—शुभे! यह बेचारी पाप-योनिमें पड़कर दुःख उठा रही है; तुम अपने पुण्योंसे इसका उद्धार करो, इससे महान् कल्याण होगा।

महाराजकी आज्ञा लेकर रानी सुदेवाने शूकरीसे कहा—'देवि! मैंने अपना एक वर्षका पुण्य तुम्हें अर्पण किया।' रानी सुदेवाके इतना कहते ही वह शूकरी तत्काल दिव्य देह धारण कर प्रकट हुई। उसके शरीरसे तेजकी ज्वाला निकल रही थी। सब प्रकारके आभूषण और भाँति-भाँतिके रत्न उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। वह साध्वी दिव्यरूपसे युक्त हो दिव्य विमानपर बैठी और अन्तरिक्ष लोकको चलने लगी। जाते समय उसने मस्तक झुकाकर रानीको प्रणाम किया और कहा—'महाभागे! तुम्हारी कृपासे आज मैं पापमुक्त होकर परम पवित्र एवं मङ्गलमय वैकुण्ठको जा रही हूँ।' यों कहकर वह वैकुण्ठको चली गयी।

सुकला कहने लगी—इस प्रकार पहले मैंने पुराणोंमें नारीधर्मका वर्णन सुना है। ऐसी दशामें जब पतिदेव यहाँ उपस्थित नहीं हैं, मैं किस प्रकार भोगोंका उपभोग करूँ। मेरे लिये ऐसा विचार निश्चय ही पापपूर्ण होगा।

सुकलाके मुखसे इस प्रकार उत्तम पातिव्रत्य-धर्मका वर्णन सुनकर सखियोंको बड़ा हर्ष हुआ। नारियोंको सद्गति प्रदान करनेवाले उस परम पवित्र धर्मका श्रवण करके समस्त ब्राह्मण और पुण्यवती स्त्रियाँ धर्मानुरागिणी महाभागा सुकलाकी प्रशंसा करने लगीं।

सुकलाका सतीत्व नष्ट करनेके लिये इन्द्र और काम आदिकी कुचेष्टा तथा उनका असफल होकर लौट आना

भगवान् श्रीविष्णु कहते हैं—राजेन्द्र! सुकलाके मनमें केवल पतिका ही ध्यान था और पतिकी ही कामना थी। उसके सतीत्वका प्रभाव देवराज इन्द्रने भी भलीभाँति देखा तथा उसके विषयमें पूर्णतया विचार करके वे मन-ही-मन कहने लगे—'मैं इसके अविचल धैर्य [और धर्म] को नष्ट कर दूँगा।' ऐसा निश्चय करके उन्होंने तुरंत ही कामदेवका स्मरण किया। महाबली कामदेव अपनी प्रिया रतिके साथ वहाँ आ गये और हाथ जोड़कर इन्द्रसे बोले—'नाथ! इस समय किसलिये आपने मुझे याद किया है? आज्ञा दीजिये, मैं सब प्रकारसे उसका पालन करूँगा।'

इन्द्रने कहा—कामदेव! यह जो पातिव्रत्यमें तत्पर रहनेवाली महाभागा सुकला है, वह परम पुण्यवती और मङ्गलमयी है; मैं इसे अपनी ओर आकर्षित करना चाहता हूँ। इस कार्यमें तुम मेरी पूरी तरहसे सहायता करो।

कामदेवने उत्तर दिया—'सहस्रलोचन! मैं आपकी इच्छा-पूर्तिके लिये आपकी सहायता अवश्य करूँगा। देवराज! मैं देवताओं, मुनियों और बड़े-बड़े ऋषीश्वरोंको भी जीतनेकी शक्ति रखता हूँ; फिर एक साधारण कामिनीको, जिसके शरीरमें कोई बल ही नहीं होता, जीतना कौन बड़ी बात है! मैं कामिनियोंके विभिन्न अङ्गोंमें निवास

करता हूँ। नारी मेरा घर है, उसके भीतर मैं सदा मौजूद रहता हूँ। अतः भाई, पिता, स्वजन-सम्बन्धी या बन्धु बान्धव—कोई भी क्यों न हो, यदि उसमें रूप और गुण है तो वह उसे देखकर मेरे बाणोंसे घायल हो ही जाती है। उसका चित्त चञ्चल हो जाता है, वह परिणामकी चिन्ता नहीं करती। इसलिये देवेश्वर! मैं सुकलाके सतीत्वको अवश्य नष्ट करूँगा।'

इन्द्र बोले—मनोभव! मैं रूपवान्, गुणवान् और धनी बनकर कौतूहलवश इस नारीको [धर्म और] धैर्यसे विचलित करूँगा।

कामदेवसे यों कहकर देवराज इन्द्र उस स्थानपर गये, जहाँ कृकल वैश्यकी प्यारी पत्नी सुकला देवी निवास करती थी। वहाँ जाकर वे अपने हाव भाव, रूप और गुण आदिका प्रदर्शन करने लगे। रूप और सम्पत्तिसे युक्त होनेपर भी उस पराये पुरुषपर सुकला दृष्टि नहीं डालती थी, परन्तु वह जहाँ-जहाँ जाती, वहीं-वहीं पहुँचकर इन्द्र उसे निहारते थे। इस प्रकार सहस्रनेत्रधारी इन्द्र अपने सम्पूर्ण भावोंसे कामजनित चेष्टा प्रदर्शित करते हुए चाहभरे हृदयसे उसकी ओर देखते थे। इन्द्रने उसके पास अपनी दूती भी भेजी। वह मुसकराती हुई गयी और मन ही-मन सुकलाकी प्रशंसा करती हुई बोली—'अहो! इस नारीमें कितना सत्य, कितना धैर्य, कितना तेज और कितना क्षमाभाव है। संसारमें इसके रूपकी समानता करनेवाली दूसरी कोई भी सुन्दरी नहीं है।' इसके बाद उसने सुकलासे पूछा—'कल्याणी! तुम कौन हो, किसकी पत्नी हो? जिस पुरुषको तुम-जैसी गुणवती भार्या प्राप्त है, वही इस पृथ्वीपर पुण्यका भागी है।'

दूतीकी बात सुनकर मनस्विनी सुकलाने कहा—'देवि! मेरे पति वैश्य जातिमें उत्पन्न, धर्मात्मा और सत्यप्रेमी हैं, उन्हें लोग कृकल कहते हैं। मेरे स्वामीकी बुद्धि उत्तम है, उनका चित्त सदा धर्ममें ही लगा रहता है। वे इस समय तीर्थ-यात्राके लिये गये हैं, उन्हें गये आज तीन वर्ष हो गये। अतः उन महात्माके बिना मैं बहुत दुःखी हूँ। यही मेरा हाल है। अब यह बताओ कि तुम कौन हो, जो मुझसे मेरा हाल पूछ रही हो?' सुकलाका कथन सुनकर दूतीने पुनः इस प्रकार कहना आरम्भ किया—'सुन्दरी! तुम्हारे स्वामी बड़े निर्दयी हैं, जो तुम्हें अकेली छोड़कर चले गये। वे अपनी प्रिय पत्नीके घातक जान पड़ते हैं, अब उन्हें लेकर क्या करोगी। जो तुम-जैसी साध्वी और सदाचार-परायणा पत्नीको छोड़कर चले गये, वे पापी नहीं तो क्या हैं। बाले! अब तो वे गये, अब उनसे तुम्हारा क्या नाता है। कौन जाने वे वहाँ जीवित हैं या मर गये। जीते भी हों तो उनसे तुम्हें क्या लेना है। तुम व्यर्थ ही इतना खेद करती हो। इस सोने-जैसे शरीरको क्यों नष्ट करती हो। मनुष्य बचपनमें खेल कूदके सिवा और किसी सुखका अनुभव नहीं करता। बुढ़ापा आनेपर जब जरावस्था शरीरको जीर्ण बना देती है, तब दुःख ही दुःख उठाना रह जाता है। इसलिये सुन्दरी! जबतक जवानी है, तभीतक संसारके सम्पूर्ण सुख और भोग भोग लो। मनुष्य जबतक जवान रहता है, तभीतक वह भोग भोगता है। सुख भोग आदिकी सब सामग्रियोंका इच्छानुसार सेवन करता है। इधर देखो—ये एक पुरुष आये हैं, जो बड़े सुन्दर, गुणवान्, सर्वज्ञ, धनी तथा पुरुषोंमें श्रेष्ठ हैं। तुम्हारे ऊपर इनका बड़ा स्नेह है, ये सदा तुम्हारे हित साधनके लिये प्रयत्नशील रहते हैं। इनके शरीरमें कभी बुढ़ापा नहीं आता। स्वयं तो ये सिद्ध हैं ही, दूसरोंको भी उत्तम सिद्धि प्रदान करनेवाले हैं। उत्तम सिद्ध और सर्वज्ञोंमें श्रेष्ठ हैं। लोकमें अपने स्वरूपसे सबकी कामना पूर्ण करते हैं।

सुकला बोली—दूती! यह शरीर मल-मूत्रका खजाना है, अपवित्र है, सदा ही क्षय होता रहता है। शुभे! यह पानीके बुलबुलेके समान क्षणभङ्गुर है। फिर इसके रूपका क्या वर्णन करती हो। पचास वर्षकी अवस्थातक ही यह देह दृढ रहती है, उसके बाद प्रतिदिन क्षीण होती जाती है। भला, बताओ तो, मेरे इस शरीरमें ही तुमने ऐसी क्या विशेषता देखी है, जो अन्यत्र नहीं है। उस पुरुषके शरीरसे मेरे शरीर में कोई भी वस्तु अधिक नहीं है। जैसी तुम, जैसा वह पुरुष, वैसी ही मैं—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। ऊँचे उठनेका परिणाम पतन ही है। ये बड़े बड़े वृक्ष और पर्वत कालसे पीड़ित होकर नष्ट हो जाते हैं। यही दशा सम्पूर्ण भूतोंकी है—इसमें रत्तीभर भी संदेह नहीं। दूती! आत्मा दिव्य है। वह रूपहीन है। स्थावर-जङ्गम सभी प्राणियोंमें वह व्याप्त है। जैसे एक ही जल भिन्न भिन्न घड़ोंमें रहता है, उसी प्रकार एक ही शुद्ध आत्मा सम्पूर्ण भूतोंमें निवास करता है। घड़ोंका नाश होनेसे जैसे सब जल मिलकर एक हो जाता है, उसी प्रकार आत्माकी भी एकता समझो। [स्थूल, सूक्ष्म और कारणरूप] त्रिविध शरीरका नाश होनेपर पञ्चकोशके सम्बन्धसे पाँच प्रकारका प्रतीत होनेवाला आत्मा एकरूप हो जाता है।

संसारमें निवास करनेवाले प्राणियोंका मैंने सदा एक ही रूप देखा है । [किसीमें कोई अपूर्वता नहीं है ।] कामकी खुजलाहट सब प्राणियोंको होती है । उस समय स्त्री और पुरुष दोनोंकी इन्द्रियोंमें उत्तेजना पैदा हो जाती है, जिससे वे दोनों प्रमत्त होकर एक दूसरेसे मिलते हैं । शरीरसे शरीरको रगड़ते हैं । इसीका नाम मैथुन है । इससे क्षणभरके लिये सुख होता है, फिर वैसी ही दशा हो जाती है । दूती ! सर्वत्र यही बात देखी जाती है । इसलिये अब तुम अपने स्थानको लौट जाओ । तुम्हारे प्रस्तावित कार्यमें कोई नवीनता नहीं है । कम-से-कम मेरे लिये तो इसमें कोई अपूर्व बात नहीं जान पड़ती; अतः मैं कदापि ऐसा नहीं कर सकती ।

भगवान् श्रीविष्णु कहते हैं—सुकलाके यों कहनेपर दूती चली गयी । उसने इन्द्रसे उसकी कही हुई सारी बातें संक्षेपमें सुना दीं । सुकलाका भाषण सत्य और धर्मसे युक्त था । उसके साहस, धैर्य और ज्ञानकी आलोचना करके इन्द्र मन-ही-मन सोचने लगे —'इस पृथ्वीपर दूसरी कोई स्त्री ऐसी नहीं है, जो इस तरहकी बात कह सके । इसका वचन योगस्वरूप, निश्चयात्मक तथा ज्ञानरूपी जलसे प्रक्षालित है । इसमें सन्देह नहीं कि यह महाभागा सुकला परम पवित्र और सत्यस्वरूपा है । यह समस्त त्रिलोकीको धारण करनेमें समर्थ है ।' यह विचारकर इन्द्रने कामदेवसे कहा—'अब मैं तुम्हारे साथ कृकल-पत्नी सुकलाको देखने चलूँगा ।' कामदेवको अपने बलपर बड़ा घमंड था । वह जोशमें आकर इन्द्रसे बोला—'देवराज ! जहाँ वह पतिव्रता रहती है, उस स्थानपर चलिये । मैं अभी चलकर उसके ज्ञान, वीर्य, बल, धैर्य, सत्य और पातिव्रत्यको नष्ट कर डालूँगा । उसकी क्या शक्ति है, जो मेरे सामने टिक सके ।'

कामदेवकी बात सुनकर इन्द्रने कहा—'काम ! मैं जानता हूँ, यह पतिव्रता तुमसे परास्त होनेवाली नहीं है । यह अपने धर्ममय पराक्रमसे सुरक्षित है । इसका भाव बहुत सच्चा है । यह नाना प्रकारके पुण्य किया करती है । फिर भी मैं यहाँसे चलकर तुम्हारे तेज, बल और भयंकर पराक्रमको देखूँगा ।' यह कहकर इन्द्र धनुर्धर वीर कामदेवके साथ चले । उनके साथ कामकी पत्नी रति और दूती भी थी । वह परम पुण्यमयी पतिव्रता अपने घरके द्वारपर अकेली बैठी थी और केवल पतिके ध्यानमें तन्मय हो रही थी । वह प्राणोंको वशमें करके स्वामीका चिन्तन करती हुई विकल्प-शून्य हो गयी थी । कोई भी पुरुष उसकी स्थितिकी कल्पना नहीं कर सकता था । उस समय इन्द्र अनुपम तेज और सौन्दर्यसे युक्त, विलास तथा हाव-भावसे सुशोभित अत्यन्त अद्भुत रूप धारण करके सुकलाके सामने प्रकट हुए । उत्तम विलास और कामभावसे युक्त महापुरुषको इस प्रकार सामने विचरण करते देख महात्मा कृकल वैश्यकी पत्नीने उसके रूप, गुण और तेजका तनिक भी सम्मान नहीं किया । जैसे कमलके पत्तेपर छोड़ा हुआ जल उस पत्तेको छोड़कर दूर चला जाता है—उसमें ठहरता नहीं, उसी प्रकार वह सती भी उस पुरुषकी ओर आकृष्ट नहीं हुई । महासती सुकलाका तेज सत्यकी रज्जुसे आबद्ध था । [उस पुरुषकी दृष्टिसे बचनेके लिये] वह घरके भीतर चली गयी और अपने पतिमें ही अनुरक्त हो उन्हींका चिन्तन करने लगी ।

इन्द्र सुकलाके शुद्ध भावको समझकर सामने खड़े हुए कामदेवसे बोले—'इस सतीने सत्यरूप पतिके ध्यानका कवच धारण कर रखा है [तुम्हारे बाण इसे चोट नहीं पहुँचा सकते], अतः सुकलाको परास्त करना असम्भव है । यह पतिव्रता अपने हाथमें धर्मरूपी धनुष और ध्यानरूपी उत्तम बाण लेकर इस समय रणभूमिमें तुमसे युद्ध करनेको उद्यत है । अज्ञानी पुरुष ही त्रिलोकीके महात्माओंके साथ वैर बाँधते हैं । कामदेव ! इस सतीके तपका नाश करनेसे हम दोनोंको अनन्त एवं अपार दुःख भोगना पड़ेगा । इसलिये अब हमें इसे छोड़कर यहाँसे चल देना चाहिये । तुम जानते हो, पहले एक बार मैं सतीके साथ समागम करनेका पापमय परिणाम—असह्य दुःख भोग चुका हूँ । महर्षि गौतमने मुझे भयंकर शाप दिया था । आगकी लपटको छूनेका साहस कौन करेगा । कौन ऐसा मूर्ख है, जो अपने गलेमें भारी पत्थर बाँधकर समुद्रमें उतरना चाहेगा तथा किसको मौतके मुखमें जानेकी इच्छा है, जो सती स्त्रीको विचलित करनेका प्रयत्न करेगा ।'

इन्द्रने कामदेवको उत्तम शिक्षा देनेके लिये बहुत ही नीतियुक्त बात कही; उसे सुनकर कामदेवने इन्द्रसे कहा—'सुरेश ! मैं तो आपके ही आदेशसे यहाँ आया था । अब आप धैर्य, प्रेम तथा पुरुषार्थका त्याग करके ऐसी पौरुषहीनता और कायरताकी बातें क्यों करते हैं । पूर्वकालमें मैंने जिन-जिन देवताओं, दानवों और तपस्यामें लगे हुए मुनीश्वरोंको परास्त किया है, वे सब मेरा उपहास करते हुए कहेंगे कि 'यह कामदेव बड़ा डरपोक है, एक साधारण स्त्रीने इसको क्षणभरमें परास्त कर दिया ।' इसलिये मैं

अपने सम्मानरूपी धनकी रक्षा करूँगा और आपके साथ चलकर इस सतीके तेज, बल और धैर्यका नाश करूँगा। आप डरते क्यों हैं ?' देवराज इन्द्रको इस प्रकार समझा-बुझाकर कामदेवने पुष्पयुक्त धनुष और बाण हाथमें ले लिये तथा सामने खड़ी हुई अपनी सखी क्रीड़ासे कहा—'प्रिये! तुम माया रचकर वैश्यपत्नी सुकलाके पास जाओ। वह अत्यन्त पुण्यवती, सत्यमें स्थित, धर्मका ज्ञान रखनेवाली और गुणज्ञ है। वहाँसे जाकर तुम मेरी सहायताके लिये उत्तम-से-उत्तम कार्य करो।' क्रीड़ासे यों कहकर वे पास ही खड़ी हुई प्रीतिको सम्बोधित करके बोले—'तुम्हें भी मेरी सहायताके लिये उत्तम कार्य करना होगा; तुम अपनी चिकनी चुपड़ी बातोंसे सुकलाको वशमें करो।' इस प्रकार अपने अपने कार्यमें लगे हुए वायु आदिके साथ उपर्युक्त व्यक्तियोंको भेजकर कामदेवने उस महासतीको मोहित करनेके लिये इन्द्रके साथ पुनः प्रयाण किया।'

सुकलाका सतीत्व नष्ट करनेके उद्देश्यसे जब इन्द्र और कामदेव प्रस्थित हुए, तब सत्यने धर्मसे कहा—महाप्राज्ञ धर्म! कामदेवकी जो चेष्टा हो रही है, उसपर दृष्टिपात करो। मैंने तुम्हारे, अपने तथा महात्मा पुण्यके लिये जो स्थान बनाया था, उसे यह नष्ट करना चाहता है। दुष्टात्मा काम हमलोगोंका शत्रु है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। सदाचारी पति, तपस्वी ब्राह्मण और पतिव्रता पत्नी—ये तीन मेरे निवास स्थान हैं। जहाँ मेरी वृद्धि होती है—जहाँ मैं पुष्ट और सन्तुष्ट रहता हूँ, वहीं तुम्हारा भी निवास होता है। श्रद्धाके साथ पुण्य भी वहाँ आकर क्रीड़ा करते हैं। मेरे शान्तियुक्त मन्दिरमें क्षमाका भी आगमन होता है। जहाँ मैं रहता हूँ, वहीं सन्तोष, इन्द्रिय संयम, दया, प्रेम, प्रज्ञा और लोभहीनता आदि गुण भी निवास करते हैं। वहीं पवित्र भाव रहता है। ये सभी सत्यके बन्धु बान्धव हैं। धर्म! चोरी न करना, अहिंसा, सहनशीलता और बुद्धि—ये सब मेरे ही घरमें आकर धन्य होते हैं। गुरु शुश्रूषा, लक्ष्मीके साथ भगवान् श्रीविष्णु तथा अग्नि आदि देवता भी मेरे घरमें पधारते हैं। मोक्ष-मार्गको प्रकाशित करनेवाले ज्ञान और उदारता आदिसे युक्त हो पूर्वोक्त व्यक्तियोंके साथ मैं धर्मात्मा पुरुषों और सती स्त्रियोंके भीतर निवास करता हूँ। ये जितने भी साधु-महात्मा हैं, सब मेरे गृहस्वरूप हैं; इन सबके भीतर मैं उक्त कुटुम्बियोंके साथ वास करता हूँ। जो जगत्‌के स्वामी, त्रिशूलधारी, वृषभवाहन तथा साक्षात् ईश्वर हैं, वे कल्याणमय भगवान् शिव भी मेरे निवास स्थान हैं। कृकल वैश्यकी प्रियतमा भार्या मङ्गलमयी सुकला भी मेरा उत्तम गृह है; किन्तु आज पापी काम इसे भी जला डालनेको उद्यत हुआ है। ये बलवान् इन्द्र भी कामका साथ दे रहे हैं; कामकी ही करतूतसे अहल्याका सङ्ग करनेपर एक बार जो हानि उठानी पड़ी है, उस प्राचीन घटनाका इन्हें स्मरण क्यों नहीं होता। सतीके सतीत्वका नाश करनेसे ही इन्हें महान् दुःखमें पड़कर दुःसह शापका उपभोग करना पड़ा था। फिर भी आज कामदेवके साथ आकर ये धर्मचारिणी कृकलपत्नी सुकलाका अपहरण करनेको उतारू हुए हैं।'

धर्मने कहा—मैं कामका तेज कम कर दूँगा; [मैं यदि चाहूँ तो] उसकी मृत्युका भी कारण उपस्थित कर सकता हूँ। मैंने एक ऐसा उपाय सोच लिया है, जिससे यह काम आज ही भाग खड़ा होगा। यह महाप्रज्ञा पक्षिणीका रूप धारण करके सुकलाके घर जाय और अपने मङ्गलमय शब्दसे उसको स्वामीके शुभागमनकी सूचना दे।

धर्मके भेजनेसे प्रज्ञा सुकलाके घरमें गयी और वहाँ मङ्गलजनक शब्दका उच्चारण किया। सुकलाने धूप-गन्ध आदिके द्वारा उसका समादर और पूजन किया तथा सुयोग्य ब्राह्मणको बुलाकर पूछा—'इस शकुनका क्या तात्पर्य है? मेरे पतिदेव कब आयेंगे?'

ब्राह्मणने कहा—भद्रे! यह शकुन तुम्हारे स्वामीके शुभागमनकी सूचना दे रहा है। वे सात दिनसे पहले-पहले यहाँ अवश्य आ जायँगे। इसमें अन्तर नहीं हो सकता।

ब्राह्मणका यह मङ्गलमय वचन सुनकर सुकलाको बड़ी प्रसन्नता हुई।

उधर कामदेवकी भेजी हुई क्रीड़ा सती स्त्रीका रूप धारण करके उस सुन्दरी पतिव्रताके घर गयी। उस रूपवती नारीको आयी देख सुकलाने आदरयुक्त वचन कहकर उसका सम्मान किया और अपनेको धन्य माना। उसकी पुण्यमयी वाणीसे पूजित होकर क्रीड़ा मुसकराती हुई बातचीत करने लगी। उसका मायामय वचन विश्वको मोहित करनेवाला था। सुननेपर सत्य और विश्वासके योग्य जान पड़ता था। क्रीड़ा बोली—'देवि! मेरे स्वामी बड़े बलवान्, गुणज्ञ, धीर तथा अत्यन्त पुण्यात्मा हैं; परन्तु मुझे छोड़कर न जाने कहाँ चले गये हैं। यह मेरे पूर्व जन्मके कर्मोंका फल है, जो आज इस रूपमें सामने आया

है; मैं कैसी मन्दभागिनी हूँ ! महाभागे ! नारियोंके लिये रूप, सौभाग्य, श्रृङ्गार, सुख और सम्पत्ति—सब कुछ पति ही है; यही शास्त्रोंका मत है ।'

पतिव्रता सुकलाने क्रीडाकी ये सारी बातें सुनीं । उसे विश्वास हो गया कि यह सब कुछ इस दुःखिनी नारीके हृदयका सच्चा भाव है । वह उसके दुःखसे दुखी हो गयी, और अपनी बातें भी उसे बताने लगी । उसने पहलेका अपना सारा हाल थोड़ेमें कह सुनाया । अपने दुःख-सुखकी बात बताकर मनस्विनी सुकला चुप हो गयी; तब क्रीडाने उस पतिव्रताको सान्त्वना दी और बहुत कुछ समझाया-बुझाया । तदनन्तर एक दिन उसने सुकलासे कहा—'सखी ! देखो, वह सामने बड़ा सुन्दर वन दिखायी दे रहा है; अनेकों दिव्य वृक्ष उसकी शोभा बढ़ा रहे हैं । वहाँ एक परम पवित्र पापनाशन तीर्थ है; वरानने ! चलो, हम दोनों भी वहाँ पुण्य-सञ्चय करनेके लिये चलें ।'

यह सुनकर सुकला उस मायामयी स्त्रीके साथ वहाँ जानेको राजी हो गयी । उसने वनमें प्रवेश करके देखा तो उसे ऐसा प्रतीत हुआ मानो उसमें नन्दन-वनकी शोभा उतर आयी है । सभी ऋतुओंके फूल खिले थे; सैकड़ों कोकिलोंके कलरवसे सारा वन-प्रान्त गूँज रहा था । माधवी लता और माधव (वसन्त) ने उस उपवनकी शोभाको सब भावोंसे परिपूर्ण बनाया था । सुकलाको मोहित करनेके लिये ही उसकी सृष्टि की गयी थी । उसने क्रीडाके साथ सबके मनको भानेवाले उस वनमें घूम-घूमकर अनेकों दिव्य कौतुक देखे । इसी समय रतिके साथ काम और इन्द्र भी वहाँ आये । इन्द्र सम्पूर्ण भोगोंके अधिपति होकर भी काम-क्रीडाके लिये व्यग्र थे । उन्होंने कामदेवको पुकारकर कहा —'लो, यह सुकला आ गयी, क्रीडाके आगे खड़ी है । इस महाभागा सतीपर प्रहार करो ।'

कामदेव बोला—सहस्रलोचन ! लीला और चातुरीसे युक्त अपने दिव्य रूपको प्रकट कीजिये, जिसका आश्रय लेकर मैं इसके ऊपर अपने पाँचों बाणोंका पृथक्-पृथक् प्रहार करूँ । त्रिशूलधारी महादेवने मेरे रूपको पहले ही हर लिया । मेरा शरीर है ही नहीं । जब मैं किसी नारीको अपने बाणोंका निशाना बनाना चाहता हूँ, उस समय पुरुष-शरीरका आश्रय लेकर अपने रूपको प्रकट करता हूँ । इसी तरह पुरुषपर प्रहार करनेके लिये मैं नारी-देहका आश्रय लेता हूँ । पुरुष जब पहले-पहल किसी सुन्दरी नारीको देखकर बारंबार उसीका चिन्तन करने लगता है, तब मैं चुपकेसे उसके भीतर घुसकर उसे उन्मत्त बना देता हूँ । स्मरण—चिन्तनसे मेरा प्रादुर्भाव होता है; इसीलिये मेरा नाम 'स्मर' हो गया है । आज मैं आपके रूपका आश्रय लेकर इस नारीको अपनी इच्छाके अनुसार नचाऊँगा ।

यों कहकर कामदेव इन्द्रके शरीरमें घुस गया और पुण्यमयी कृकल-पत्नी सती सुकलाको घायल करनेके लिये हाथमें बाण ले उत्कण्ठापूर्वक अवसरकी प्रतीक्षा करने लगा । वह उसके नेत्रोंको ही लक्ष्य बनाये बैठा था ।

भगवान् श्रीविष्णु कहते हैं—राजन् ! क्रीड़ाकी प्रेरणासे उस सुन्दर वनमें गयी हुई वैश्यपत्नी सुकलाने पूछा—'सखी ! यह मनोरम दिव्य वन किसका है ?'

क्रीडा बोली—*यह स्वभावसिद्ध दिव्य गुणोंसे युक्त सारा* वन कामदेवका है, तुम भलीभाँति इसका निरीक्षण करो ।



दुरात्मा कामकी यह चेष्टा देखकर सुन्दरी सुकलाने वायुके द्वारा लायी हुई वहाँके फूलोंकी सुगन्धको नहीं ग्रहण किया । उस सतीने वहाँके रसोंका भी आस्वादन नहीं किया । यह देख कामदेवका मित्र वसन्त बहुत लज्जित हुआ । तत्पश्चात् कामदेवकी पत्नी रति प्रीतिको साथ लेकर आयी और सुकलासे हँसकर बोली—'भद्रे ! तुम्हारा कल्याण हो, मैं तुम्हारा स्वागत करती हूँ । तुम रति और प्रीतिके साथ

यहाँ रमण करो।' सुकलाने कहा—'जहाँ मेरे स्वामी हैं, वहीं मैं भी हूँ। मैं सदा पतिके साथ रहती हूँ। मेरा काम, मेरी प्रीति सब वहीं है। यह शरीर तो निराश्रय है—छायामात्र है।' यह सुनकर रति और प्रीति दोनों लज्जित हो गयीं तथा महाबली कामके पास जाकर बोलीं—'महाप्राज्ञ! अब आप अपना पुरुषार्थ छोड़ दीजिये, इस नारीको जीतना कठिन है। यह महाभागा पतिव्रता सदैव अपने पतिकी ही कामना रखती है।'

कामदेवने कहा—देवि! जब यह इन्द्रके रूपको देखेगी, उस समय मैं अवश्य इसे घायल करूँगा।

तदनन्तर देवराज इन्द्र परम सुन्दर दिव्य वेष धारण किये रतिके पीछे पीछे चले, उनकी गतिमें अत्यन्त ललित विलास दृष्टिगोचर होता था। सब प्रकारके आभूषण उनकी शोभा बढा रहे थे। दिव्य माला, दिव्य वस्त्र और दिव्य गन्धसे सुसज्जित हो वे पतिव्रता सुकलाके पास आये और उससे इस प्रकार बोले—'भद्रे! मैंने पहले तुम्हारे सामने दूती भेजी थी, फिर प्रीतिको रवाना किया। मेरी प्रार्थना क्यों नहीं मानतीं? मैं स्वयं तुम्हारे पास आया हूँ, मुझे स्वीकार करो।'

सुकला बोली—मेरे स्वामीके महात्मा पुत्र (सत्य, धर्म आदि) मेरी रक्षा कर रहे हैं। मुझे किसीका भय नहीं है। अनेक शूरवीर पुरुष सर्वत्र मेरी रक्षाके लिये उद्यत रहते हैं। जबतक मेरे नेत्र खुले रहते हैं, तबतक मैं निरन्तर पतिके ही कार्यमें लगी रहती हूँ। आप कौन हैं, जो मृत्युका भी भय छोड़कर मेरे पास आये हैं?

इन्द्रने कहा—तुमने अपने स्वामीके जिन शूरवीर पुत्रोंकी चर्चा की है, उन्हें मेरे सामने प्रकट करो। मैं कैसे उन्हें देख सकूँगा।

सुकला बोली—इन्द्रिय-संयमके विभिन्न गुणोंद्वारा उत्तम धर्म सदा मेरी रक्षा करता है। वह देखो, शान्ति और क्षमाके साथ सत्य मेरे सामने उपस्थित है। महाबली सत्य बड़ा यशस्वी है। यह कभी मेरा त्याग नहीं करता। इस प्रकार धर्म आदि रक्षक सदा मेरी देख भाल किया करते हैं, फिर क्यों आप बलपूर्वक मुझे प्राप्त करना चाहते हैं। आप कौन हैं, जो निडर होकर दूतीके साथ यहाँ आये हैं? सत्य, धर्म, पुण्य और ज्ञान आदि बलवान् पुत्र मेरे तथा मेरे स्वामीके सहायक हैं। वे सदा मेरी रक्षामें तत्पर रहते हैं। मैं नित्य सुरक्षित हूँ। इन्द्रिय संयम और मनोनिग्रहमें तत्पर रहती हूँ। साक्षात् शचीपति इन्द्र भी मुझे जीतनेकी शक्ति नहीं रखते। यदि महापराक्रमी कामदेव भी आ जाय तो मुझे कोई परवा नहीं है, क्योंकि मैं अनायास ही सतीत्वरूपी कवचसे सदा सुरक्षित हूँ। मुझपर कामदेवके बाण व्यर्थ हो जायँगे, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। उल्टे महाबली धर्म आदि तुम्हींको मार डालेंगे। दूर हटो, भाग जाओ, मेरे सामने न खड़े होओ। यदि मना करनेपर भी खड़े रहोगे तो जलकर खाक हो जाओगे। मेरे स्वामीकी अनुपस्थितिमें यदि तुम मेरे शरीरपर दृष्टि डालोगे तो जैसे आग सूखी लकड़ीको जला देती है, उसी प्रकार मैं भी तुम्हें भस्म कर डालूँगी।*

सुकलाने जब यह कहा, तब तो उस सतीके भयंकर शापके डरसे व्याकुल हो सब लोग जैसे आये थे, वैसे ही लौट गये। इन्द्र आदिने अपने अपने लोककी राह ली। सबके चले जानेपर पुण्यमयी पतिव्रता सुकला पतिका ध्यान करती हुई अपने घर लौट आयी। वह घर पुण्यमय था। वहाँ सब तीर्थ निवास करते थे। सम्पूर्ण यज्ञोंकी भी वहाँ उपस्थिति थी। राजन्! पतिको ही देवता माननेवाली वह सती अपने उसी घरमें आकर रहने लगी।

---

* अहं रक्षापरा नित्यं दमशान्तिपरायणा। न मां जेतुं समर्थश्च अपि साक्षाच्छचीपतिः॥
यदि वा मन्मथो वापि समागच्छति वीर्यवान्। दंशिताहं सदा सत्यमत्याकष्टेन सर्वदा॥
निरर्थकास्तस्य बाणा भविष्यन्ति न संशयः। त्वामेव हि हनिष्यन्ति धर्माद्यास्ते महाबलाः॥
दूरं गच्छ पलायस्व नात्र तिष्ठ ममाग्रतः। वार्यमाणो यदा तिष्ठेर्भस्मीभूतो भविष्यसि॥
भर्त्रा विना निरीक्षेत मम रूपं यदा भवान्। यथा दारु दहेद्वह्निस्तथा धक्ष्यामि नान्यथा॥
(५८। ३२-३६)

सुकलाके स्वामीका तीर्थयात्रासे लौटना और धर्मकी आज्ञासे सुकलाके साथ श्राद्धादि करके देवताओंसे वरदान प्राप्त करना

भगवान् श्रीविष्णु कहते हैं—राजन्! कृकल वैश्य सब तीर्थोंकी यात्रा पूरी करके अपने साथियोंके साथ बड़े आनन्दसे घरकी ओर लौटे। वे सोचते थे—मेरा संसारमें जन्म लेना सफल हो गया; मेरे सब पितर स्वर्गको चले गये होंगे। वे इस प्रकार विचार कर ही रहे थे कि एक दिव्य-रूपधारी विशालकाय पुरुष उनके पिता-पितामहोंको प्रत्यक्षरूपसे बाँधकर सामने प्रकट हुए और बोले—'वैश्य! तुम्हारा पुण्य उत्तम नहीं है। तुम्हें तीर्थ-यात्राका फल नहीं मिला। तुमने व्यर्थ ही इतना परिश्रम किया।' यह सुनकर कृकल वैश्य दुःखसे पीड़ित हो गये। उन्होंने पूछा—'आप कौन हैं, जो ऐसी बात कह रहे हैं? मेरे पिता-पितामह क्यों बाँधे गये हैं? मुझे तीर्थका फल क्यों नहीं मिला?'

धर्मने कहा—जो धार्मिक आचार और उत्तम व्रतका पालन करनेवाली, श्रेष्ठ गुणोंसे विभूषित, पुण्यमें अनुराग रखनेवाली तथा पुण्यमयी पतिव्रता पत्नीको अकेली छोड़कर धर्म करनेके लिये बाहर जाता है, उसका किया हुआ सारा धर्म व्यर्थ हो जाता है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। जो सब प्रकारके सदाचारमें संलग्न रहनेवाली, प्रशंसाके योग्य आचरणवाली, धर्मसाधनमें तत्पर, सदा पातिव्रत्यका पालन करनेवाली, सब बातोंको जाननेवाली तथा ज्ञानकी अनुरागिणी है, ऐसी गुणवती, पुण्यवती और महासती नारी जिसकी पत्नी हो, उसके घरमें सर्वदा देवता निवास करते हैं। पितर भी उसके घरमें रहकर निरन्तर उसके यशकी कामना करते रहते हैं। गङ्गा आदि पवित्र नदियाँ, सागर, यज्ञ, गौ, ऋषि तथा सम्पूर्ण तीर्थ भी उस घरमें मौजूद रहते हैं। पुण्यमयी पत्नीके सहयोगसे गृहस्थधर्मका पालन अच्छे ढंगसे होता है। इस भूमण्डलमें गृहस्थधर्मसे बढ़कर दूसरा कोई धर्म नहीं है। वैश्य! गृहस्थका घर यदि सत्य और पुण्यसे युक्त हो तो परम पवित्र माना गया है, वहाँ सब तीर्थ और देवता निवास करते हैं। गृहस्थका सहारा लेकर सब प्राणी जीवन धारण करते हैं। गृहस्थ-आश्रमके समान दूसरा कोई उत्तम आश्रम मुझे नहीं दिखायी देता।*

जिसके घरमें साध्वी स्त्री होती है, उसके यहाँ मन्त्र, अग्निहोत्र, सम्पूर्ण देवता, सनातन धर्म तथा दान एवं आचार सब मौजूद रहते हैं। इसी प्रकार जो पत्नीसे रहित है, उसका घर जंगलके समान है। वहाँ किये हुए यज्ञ तथा भाँति-भाँतिके दान सिद्धि-दायक नहीं होते। साध्वी पत्नीके समान कोई तीर्थ नहीं है, पत्नीके समान कोई सुख नहीं है तथा संसारसे तारनेके लिये और कल्याण-साधनके लिये पत्नीके समान कोई पुण्य नहीं है। जो अपनी धर्मपरायणा सती नारीको छोड़कर चला जाता है, वह मनुष्योंमें अधम है। गृह-धर्मका परित्याग करके तुम्हें धर्मका फल कहाँ मिलेगा। अपनी पत्नीको साथ लिये बिना जो तुमने तीर्थमें श्राद्ध और दान किया है, उसी दोषसे तुम्हारे पूर्वज बाँधे गये हैं। तुम चोर हो और तुम्हारे ये पितर भी चोर हैं; क्योंकि इन्होंने लोलुपतावश तुम्हारा दिया हुआ श्राद्धका अन्न खाया है। तुमने श्राद्ध करते समय अपनी पत्नीको साथ नहीं रखा था। जो सुयोग्य पुत्र श्रद्धासे युक्त हो अपनी पत्नीके दिये हुए पिण्डसे श्राद्ध करता है, उससे पितरोंको वैसी ही तृप्ति होती है, जैसी अमृत पीनेसे—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। पत्नी ही गार्हस्थ्य-धर्मकी स्वामिनी है; उसके बिना ही जो तुमने शुभ कर्मोंका अनुष्ठान किया है, यह स्पष्ट ही तुम्हारी चोरी है। जब पत्नी अपने हाथसे अन्न तैयार करके देती हैं, तो वह अमृतके समान मधुर होता है। उसी अन्नको पितर प्रसन्न होकर भोजन करते हैं तथा उसीसे उन्हें विशेष संतोष और तृप्ति होती है। अतः पत्नीके बिना जो धर्म किया जाता है, वह निष्फल होता है।

कृकलने पूछा—धर्म! अब कैसे मुझे सिद्धि प्राप्त होगी और किस प्रकार मेरे पितरोंको बन्धनसे छुटकारा मिलेगा?

धर्मने कहा—महाभाग! अपने घर जाओ। तुम्हारी धर्मपरायणा, पुण्यवती पत्नी सुकला तुम्हारे बिना बहुत दुखी हो गयी थी; उसे सान्त्वना दो और उसीके हाथसे श्राद्ध करो। अपने घरपर ही पुण्यतीर्थोंका स्मरण करके तुम श्रेष्ठ देवताओंका पूजन करो, इससे तुम्हारी की हुई तीर्थ-यात्रा सफल हो जायगी।

भगवान् श्रीविष्णु कहते हैं—राजन्! यों कहकर

---

* गार्हस्थ्यं च समाश्रित्य सर्वे जीवन्ति जन्तवः।
तादृशं नैव पश्यामि ह्यन्यमाश्रममुत्तमम्॥
(५९। १९)

धर्म जैसे आये थे, वैसे ही लौट गये; परम बुद्धिमान् कृकल भी अपने घर गये और पतिव्रता पत्नीको देखकर मन ही-मन बहुत प्रसन्न हुए। सुकलाने स्वामीको आया देख उनके शुभागमनके उपलक्ष्यमें माङ्गलिक कार्य किया। तत्पश्चात् धर्मात्मा वैश्यने धर्मकी सारी चेष्टा बतलायी। स्वामीके आनन्ददायक वचन सुनकर महाभागा सुकलाको बड़ा हर्ष हुआ। उसके बाद कृकलने घरपर ही रहकर पत्नीके साथ श्रद्धापूर्वक श्राद्ध और देवपूजन आदि पुण्यकर्मका अनुष्ठान किया। इससे प्रसन्न होकर देवता, पितर और मुनिगण विमानोंके द्वारा वहाँ आये और महात्मा कृकल और उसकी महानुभावा पत्नी दोनोंकी सराहना करने लगे। मैं, ब्रह्मा तथा महादेवजी भी अपनी-अपनी देवीके साथ वहाँ गये। सम्पूर्ण देवता उस सतकि सत्यसे सन्तुष्ट थे। सबने उन दोनों पति-पत्नीसे कहा—'सुव्रत! तुम्हारा कल्याण हो, तुम अपनी पत्नीके साथ वर माँगो।'

कृकलने पूछा—देववरो! मेरे किस पुण्य और तपके प्रसङ्गसे पत्नीसहित मुझे वर देनेको आपलोग पधारे हैं?

इन्द्रने कहा—यह महाभागा सुकला सती है। इसके सत्यसे सन्तुष्ट होकर हमलोग तुम्हें वर देना चाहते हैं।

यह कहकर इन्द्रने उसके सतीत्वकी परीक्षाका सारा वृत्तान्त थोड़ेमें कह सुनाया। उसके सदाचारका माहात्म्य सुनकर उसके स्वामीको बड़ी प्रसन्नता हुई। हर्षोल्लाससे कृकलके नेत्र डबडबा आये। धर्मात्मा वैश्यने पत्नीके साथ समस्त देवताओंको बारंबार साष्टाङ्ग प्रणाम किया और कहा—'महाभाग देवगण! आप सब लोग प्रसन्न हों; तीनों सनातन देवता—ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव हमपर सन्तुष्ट हों; तथा अन्य जो पुण्यात्मा ऋषि मुझपर कृपा करके यहाँ पधारे हैं, वे भी प्रसन्नता प्राप्त करें। मैं सदा भगवान्‌की भक्ति करता रहूँ। आपलोगोंकी कृपासे धर्म तथा सत्यमें मेरा निरन्तर अनुराग बना रहे। तत्पश्चात् अन्तमें पत्नी और पितरके साथ मैं भगवान् श्रीविष्णुके धाममें जाना चाहता हूँ।'

देवता बोले—महाभाग! एवमस्तु, यह सब कुछ तुम्हें प्राप्त होगा।

भगवान् श्रीविष्णुने कहा—*राजन्! यह कहकर* देवताओंने उन दोनों पति पत्नीके ऊपर फूलोंकी वर्षा की तथा ललित, मधुर और पवित्र संगीत सुनाया। वर देकर वे उस पतिव्रताकी स्तुति करते हुए अपने-अपने लोकको चले गये। इस परम उत्तम और पवित्र उपाख्यानको मैंने पूर्णरूपसे तुम्हें सुना दिया। राजन्! जो मनुष्य इसे सुनता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। स्त्रीमात्रको सुकलाका उपाख्यान श्रद्धापूर्वक सुनना चाहिये। इसके श्रवणसे वह सौभाग्य, सतीत्व तथा पुत्र-पौत्रोंसे युक्त होती है। इतना ही नहीं, पतिके साथ सुखी रहकर वह निरन्तर आनन्दका अनुभव करती है।

पितृतीर्थके प्रसङ्गमें पिप्पलकी तपस्या और सुकर्माकी पितृभक्तिका वर्णन; सारसके कहनेसे पिप्पलका सुकर्माके पास जाना और सुकर्माका उन्हें माता-पिताकी सेवाका महत्त्व बताना

वेनने कहा—भगवन्! आपने सब तीर्थोंमें उत्तम भार्यातीर्थका वर्णन तो किया, अब पुत्रोंको तारनेवाले पितृ तीर्थका वर्णन कीजिये।

भगवान् श्रीविष्णुने कहा—परम पुण्यमय कुरुक्षेत्रमें कुण्डल नामके एक ब्राह्मण रहते थे। उनके सुयोग्य पुत्रका नाम सुकर्मा था। सुकर्माके माता और पिता दोनों ही अत्यन्त वृद्ध, धर्मज्ञ और शास्त्रवेत्ता थे। सुकर्माको भी धर्मका पूर्ण ज्ञान था। वे श्रद्धायुक्त होकर बड़ी भक्तिके साथ दिन-रात माता-पिताकी सेवामें लगे रहते थे। उन्होंने पितासे ही सम्पूर्ण वेद और अनेक शास्त्रोंका अध्ययन किया। वे पूर्णरूपसे सदाचारका पालन करनेवाले, जितेन्द्रिय और सत्यवादी थे। अपने ही हाथों माता-पिताका शरीर दबाते, पैर धोते और उन्हें स्नान-भोजन आदि कराते थे। राजेन्द्र! सुकर्मा स्वभावसे ही भक्तिपूर्वक माता पिताकी परिचर्या करते और सदा उन्हींके ध्यानमें लीन रहते थे।

उन्हीं दिनों कश्यप-कुलमें उत्पन्न एक ब्राह्मण थे, जो पिप्पल नामसे प्रसिद्ध थे। वे सदा धर्म-कर्ममें लगे रहते थे और इन्द्रिय-संयम, पवित्रता तथा मनोनिग्रहसे सम्पन्न थे। एक समयकी बात है, वे महामना बुद्धिमान् ब्राह्मण दशारण्यमें जाकर ज्ञान और शान्तिके साधनमें तत्पर हो तपस्या करने लगे। उनकी तपस्याके प्रभावसे आस पासके समस्त प्राणियोंका पारस्परिक वैर-विरोध शान्त हो गया। वे सब वहाँ एक



सुकला एवं उसके पतिपर देवताओं और मुनियोंकी कृपा

धर्म जैसे आये थे, वैसे ही लौट गये, परम बुद्धिमान् कृकल भी अपने घर गये और पतिव्रता पत्नीको देखकर मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुए। सुकलाने स्वामीको आया देख उनके शुभागमनके उपलक्षमें माङ्गलिक कार्य किया। तत्पश्चात् धर्मात्मा वैश्यने धर्मकी सारी चेष्टा बतलायी। स्वामीके आनन्ददायक वचन सुनकर महाभागा सुकलाको बड़ा हर्ष हुआ। उसके बाद कृकलने घरपर ही रहकर पत्नीके साथ श्रद्धापूर्वक श्राद्ध और देवपूजन आदि पुण्यकर्मका अनुष्ठान किया। इससे प्रसन्न होकर देवता, पितर और मुनिगण विमानोंके द्वारा वहाँ आये और महात्मा कृकल और उसकी महानुभावा पत्नी दोनोंकी सराहना करने लगे। मैं, ब्रह्मा तथा महादेवजी भी अपनी-अपनी देवीके साथ वहाँ गये। सम्पूर्ण देवता उस सतीके सत्यसे सन्तुष्ट थे। सबने उन दोनों पति-पत्नीसे कहा—'सुव्रत! तुम्हारा कल्याण हो, तुम अपनी पत्नीके साथ वर माँगो।'

कृकलने पूछा—देववरो! मेरे किस पुण्य और तपके प्रसङ्गसे पत्नीसहित मुझे वर देनेको आपलोग पधारे हैं?

इन्द्रने कहा—यह महाभागा सुकला सती है। इसके सत्यसे सन्तुष्ट होकर हमलोग तुम्हें वर देना चाहते हैं।

यह कहकर इन्द्रने उसके सतीत्वकी परीक्षाका सारा वृत्तान्त थोड़ेमें कह सुनाया। उसके सदाचारका माहात्म्य सुनकर उसके स्वामीको बड़ी प्रसन्नता हुई। हर्षोल्लाससे कृकलके नेत्र डबडबा आये। धर्मात्मा वैश्यने पत्नीके साथ समस्त देवताओंको बारंबार साष्टाङ्ग प्रणाम किया और कहा—'महाभाग देवगण! आप सब लोग प्रसन्न हों, तीनों सनातन देवता—ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव हमपर सन्तुष्ट हों, तथा अन्य जो पुण्यात्मा ऋषि मुझपर कृपा करके यहाँ पधारे हैं, वे भी प्रसन्नता प्राप्त करें। मैं सदा भगवान्‌की भक्ति करता रहूँ। आपलोगोंकी कृपासे धर्म तथा सत्यमें मेरा निरन्तर अनुराग बना रहे। तत्पश्चात् अन्तमें पत्नी और पितरके साथ मैं भगवान् श्रीविष्णुके धाममें जाना चाहता हूँ।'

देवता बोले—महाभाग! एवमस्तु, यह सब कुछ तुम्हें प्राप्त होगा।

भगवान् श्रीविष्णुने कहा—राजन्! यह कहकर देवताओंने उन दोनों पति-पत्नीके ऊपर फूलोंकी वर्षा की तथा ललित, मधुर और पवित्र संगीत सुनाया। वर देकर वे उस पतिव्रताकी स्तुति करते हुए अपने-अपने लोकको चले गये। इस परम उत्तम और पवित्र उपाख्यानको मैंने पूर्णरूपसे तुम्हें सुना दिया। राजन्! जो मनुष्य इसे सुनता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। स्त्रीमात्रको सुकलाका उपाख्यान श्रद्धापूर्वक सुनना चाहिये। इसके श्रवणसे वह सौभाग्य, सतीत्व तथा पुत्र-पौत्रोंसे युक्त होती है। इतना ही नहीं, पतिके साथ सुखी रहकर वह निरन्तर आनन्दका अनुभव करती है।

पितृतीर्थके प्रसङ्गमें पिप्पलकी तपस्या और सुकर्माकी पितृभक्तिका वर्णन; सारसके कहनेसे पिप्पलका सुकर्माके पास जाना और सुकर्माका उन्हें माता-पिताकी सेवाका महत्त्व बताना

वेनने कहा—भगवन्! आपने सब तीर्थोंमें उत्तम भार्या तीर्थका वर्णन तो किया, अब पुत्रोंको तारनेवाले पितृ-तीर्थका वर्णन कीजिये।

भगवान् श्रीविष्णुने कहा—परम पुण्यमय कुरुक्षेत्रमें कुण्डल नामके एक ब्राह्मण रहते थे। उनके सुयोग्य पुत्रका नाम सुकर्मा था। सुकर्माके माता और पिता दोनों ही अत्यन्त वृद्ध, धर्मज्ञ और शास्त्रवेत्ता थे। सुकर्माको भी धर्मका पूर्ण ज्ञान था। वे श्रद्धायुक्त होकर बड़ी भक्तिके साथ दिन-रात माता-पिताकी सेवामें लगे रहते थे। उन्होंने पितासे ही सम्पूर्ण वेद और अनेक शास्त्रोंका अध्ययन किया। वे पूर्णरूपसे सदाचारका पालन करनेवाले, जितेन्द्रिय और सत्यवादी थे। अपने ही हाथों माता-पिताका शरीर दबाते, पैर धोते और उन्हें स्नान-भोजन आदि कराते थे। राजेन्द्र! सुकर्मा स्वभावसे ही भक्तिपूर्वक माता-पिताकी परिचर्या करते और सदा उन्हींके ध्यानमें लीन रहते थे।

उन्हीं दिनों कश्यप-कुलमें उत्पन्न एक ब्राह्मण थे, जो पिप्पल नामसे प्रसिद्ध थे। वे सदा धर्म-कर्ममें लगे रहते थे और इन्द्रिय-संयम, पवित्रता तथा मनोनिग्रहसे सम्पन्न थे। एक समयकी बात है, वे महामना बुद्धिमान् ब्राह्मण दशारण्यमें जाकर ज्ञान और शान्तिके साधनमें तत्पर हो तपस्या करने लगे। उनकी तपस्याके प्रभावसे आस-पासके समस्त प्राणियोंका पारस्परिक वैर-विरोध शान्त हो गया। वे सब वहाँ एक



सुकला एवं उसके पतिपर देवताओं और मुनियोंकी कृपा

पेटसे पैदा हुए भाइयोंकी तरह हिल-मिलकर रहते थे। पिप्पलकी तपस्या देख मुनियों तथा इन्द्र आदि देवताओंको भी बड़ा विस्मय हुआ।

देवता कहने लगे—'अहो ! इस ब्राह्मणकी कितनी तीव्र तपस्या है! कैसा मनोनिग्रह है और कितना इन्द्रिय-संयम है! मनमें विकार नहीं। चित्तमें उद्वेग नहीं।' काम-क्रोधसे रहित हो, सर्दी-गर्मी और हवाका झोंका सहते हुए वे तपस्वी ब्राह्मण पर्वतकी भाँति अविचल भावसे स्थित रहे। ऐसी अवस्थामें पहुँचकर उनका चित्त एकाग्र हो गया। वे ब्रह्मके ध्यानमें तन्मय थे। उनका मुख-कमल प्रसन्नतासे खिल उठा था। वे पत्थर और काठकी भाँति निश्चेष्ट एवं सुस्थिर दिखायी देते थे। धर्ममें उनका अनुराग था। तपसे शरीर दुर्बल हो गया था और हृदयमें पूर्ण श्रद्धा थी। इस प्रकार उन बुद्धिमान् ब्राह्मणको तपस्या करते एक हजार वर्ष बीत गये।

वहाँ बहुत-सी चींटियोंने मिलकर मिट्टीका ढेर लगा दिया। उनके ऊपर बाँबीका विशाल मन्दिर-सा बन गया। काले साँपोंने आकर उनके शरीरको लपेट लिया। भयंकर विषवाले सर्प उन उग्र तेजस्वी ब्राह्मणको डँस लेते थे; किन्तु जहर उनके शरीरपर गिर जाता था, उनकी त्वचाको भेदकर भीतर नहीं फैलने पाता था। उनके सम्पर्कमें आकर साँप स्वयं ही शान्त हो जाते थे। उनकी देहसे नाना प्रकारकी तेजोमयी लपटें निकलती दिखायी देती थीं। पिप्पल तीनों काल तपमें प्रवृत्त रहते थे। वे तीन हजार वर्षोंतक केवल वायु पीकर रह गये। तब देवताओंने उनके मस्तकपर फूलोंकी वर्षा की और कहा—'महाभाग! तुम जिस-जिस वस्तुको प्राप्त करना चाहते हो, वह सब निश्चय ही प्राप्त होगी। तुम्हें समस्त अभिलषित पदार्थोंको देनेवाली सिद्धि स्वतः ही प्राप्त हो जायगी।'

यह वाक्य सुनकर महामना पिप्पलने भक्तिपूर्वक मस्तक झुका समस्त देवताओंको प्रणाम किया और बड़े हर्षमें भरकर कहा—'देवताओ! यह सारा जगत् मेरे वशमें हो जाय—ऐसा वरदान दीजिये; मैं विद्याधर होना चाहता हूँ।' 'एवमस्तु' कहकर देवताओंने उन ब्राह्मणको अभीष्ट वरदान दिया और अपने-अपने स्थानको चले गये। राजेन्द्र! तबसे द्विजश्रेष्ठ पिप्पल विद्याधरका पद पा गये और इच्छानुसार विचरते हुए सर्वत्र सम्मानित होने लगे। एक दिन महा-तेजस्वी पिप्पलने विचार किया—'देवताओंने मुझे वर दिया है कि सम्पूर्ण विश्व तुम्हारे वशमें हो जायगा। अतः उसकी परीक्षा करनी चाहिये।' यह सोचकर वे उसे आजमानेको तैयार हुए। जिस-जिस व्यक्तिका वे मनसे चिन्तन करते, वही-वही उनके वशमें हो जाता था। इस प्रकार जब उन्हें देवताओंकी बातपर विश्वास हो गया, तब वे [अहंकारके वशीभूत हो] सोचने लगे—'मेरे समान श्रेष्ठ पुरुष इस संसारमें दूसरा कोई नहीं है।'

पिप्पल जब इस प्रकारकी भावना करने लगे, तब उनके मनका भाव जानकर एक सारसने कहा—'ब्राह्मण! तुम ऐसा अहंकार क्यों कर रहे हो कि 'मैं ही सबसे बड़ा हूँ।' मैं तो ऐसा नहीं मानता कि सबको वशमें करनेकी सिद्धि केवल तुम्हींको प्राप्त हुई है। पिप्पल! मेरी समझमें तुम्हारी बुद्धि मूढ़ है, तुम पराचीन तत्त्वको नहीं जानते। तुमने तीन हजार वर्षोंतक तप किया है, इसीका तुम्हें गर्व है; फिर भी तुम यहाँ मूढ़ ही रह गये। कुण्डलके जो सुकर्मा नामक पुत्र हैं, वे विद्वान् पुरुष हैं; उनकी बुद्धि उत्तम है। वे अर्वाचीन तथा पराचीन तत्त्वको जानते हैं। पिप्पल! तुम कान खोलकर सुन लो, संसारमें सुकर्माके समान महाज्ञानी दूसरा कोई नहीं है। उन्होंने दान नहीं दिया; ध्यान, होम और यज्ञ आदि कर्म भी कभी नहीं किया। न तीर्थ करने गये, न गुरुकी उपासना ही की। वे केवल माता-पिताके हितैषी हैं, वेदाध्ययनसम्पन्न हैं तथा सम्पूर्ण शास्त्रोंके ज्ञाता हैं। यद्यपि सुकर्मा अभी बालक हैं, तो भी उन्हें जैसा ज्ञान प्राप्त है, वैसा तुम्हें अबतक नहीं हुआ। ऐसी दशामें तुम व्यर्थ ही यह गर्वका बोझ ढो रहे हो।'

पिप्पल बोले—आप कौन हैं, जो पक्षीके रूपमें आकर इस प्रकार मेरी निन्दा कर रहे हैं? इस समय मुझे अर्वाचीन और पराचीनका स्वरूप पूर्णतया समझाइये।

सारसने कहा—द्विजश्रेष्ठ ! कुण्डलके बालक पुत्रको जैसा ज्ञान प्राप्त है, वैसा तुममें नहीं है। यहाँसे जाओ और अर्वाचीन एवं पराचीनका स्वरूप तथा मेरा परिचय भी उन्हींसे पूछो। वे धर्मात्मा हैं, तुम्हें सारा ज्ञान बतलायेंगे।

सारसकी यह बात सुनकर विप्रवर पिप्पल बड़े वेगसे कुण्डलके आश्रमकी ओर गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा, सुकर्मा माता-पिताकी सेवामें लगे हैं। वे सत्यपराक्रमी महात्मा अपने माता-पिताके चरणोंके निकट बैठे थे। उनके भीतर बड़ी भक्ति थी। वे परम शान्त और सम्पूर्ण ज्ञानकी महान् निधि जान पड़ते थे। कुण्डल-कुमार सुकर्माने

पेटसे पैदा हुए भाइयोंकी तरह हिल-मिलकर रहते थे। पिप्पलकी तपस्या देख मुनियों तथा इन्द्र आदि देवताओंको भी बड़ा विस्मय हुआ।

देवता कहने लगे—'अहो! इस ब्राह्मणकी कितनी तीव्र तपस्या है! कैसा मनोनिग्रह है और कितना इन्द्रिय-संयम है! मनमें विकार नहीं। चित्तमें उद्वेग नहीं।' काम-क्रोधसे रहित हो, सर्दी-गर्मी और हवाका झोंका सहते हुए वे तपस्वी ब्राह्मण पर्वतकी भाँति अविचल भावसे स्थित रहे। ऐसी अवस्थामें पहुँचकर उनका चित्त एकाग्र हो गया। वे ब्रह्मके ध्यानमें तन्मय थे। उनका मुख-कमल प्रसन्नतासे खिल उठा था। वे पत्थर और काठकी भाँति निश्चेष्ट एवं सुस्थिर दिखायी देते थे। धर्ममें उनका अनुराग था। तपसे शरीर दुर्बल हो गया था और हृदयमें पूर्ण श्रद्धा थी। इस प्रकार उन बुद्धिमान् ब्राह्मणको तपस्या करते एक हजार वर्ष बीत गये।

वहाँ बहुत-सी चींटियोंने मिलकर मिट्टीका ढेर लगा दिया। उनके ऊपर बाँबीका विशाल मन्दिर-सा बन गया। काले साँपोंने आकर उनके शरीरको लपेट लिया। भयंकर विषवाले सर्प उन उग्र तेजस्वी ब्राह्मणको डँस लेते थे; किन्तु जहर उनके शरीरपर गिर जाता था, उनकी त्वचाको भेदकर भीतर नहीं फैलने पाता था। उनके सम्पर्कमें आकर साँप स्वयं ही शान्त हो जाते थे। उनकी देहसे नाना प्रकारकी तेजोमयी लपटें निकलती दिखायी देती थीं। पिप्पल तीनों काल तपमें प्रवृत्त रहते थे। वे तीन हजार वर्षोंतक केवल वायु पीकर रह गये। तब देवताओंने उनके मस्तकपर फूलोंकी वर्षा की और कहा—'महाभाग! तुम जिस-जिस वस्तुको प्राप्त करना चाहते हो, वह सब निश्चय ही प्राप्त होगी। तुम्हें समस्त अभिलषित पदार्थोंको देनेवाली सिद्धि स्वतः ही प्राप्त हो जायगी।'

यह वाक्य सुनकर महामना पिप्पलने भक्तिपूर्वक मस्तक झुका समस्त देवताओंको प्रणाम किया और बड़े हर्षमें भरकर कहा—'देवताओ! यह सारा जगत् मेरे वशमें हो जाय—ऐसा वरदान दीजिये; मैं विद्याधर होना चाहता हूँ।' 'एवमस्तु' कहकर देवताओंने उन ब्राह्मणको अभीष्ट वरदान दिया और अपने-अपने स्थानको चले गये। राजेन्द्र! तबसे द्विजश्रेष्ठ पिप्पल विद्याधरका पद पा गये और इच्छानुसार विचरते हुए सर्वत्र सम्मानित होने लगे। एक दिन महातेजस्वी पिप्पलने विचार किया—'देवताओंने मुझे वर दिया है कि सम्पूर्ण विश्व तुम्हारे वशमें हो जायगा। अतः उसकी परीक्षा करनी चाहिये।' यह सोचकर वे उसे आजमानेको तैयार हुए। जिस-जिस व्यक्तिका वे मनसे चिन्तन करते, वही-वही उनके वशमें हो जाता था। इस प्रकार जब उन्हें देवताओंकी बातपर विश्वास हो गया, तब वे [अहंकारके वशीभूत हो] सोचने लगे—'मेरे समान श्रेष्ठ पुरुष इस संसारमें दूसरा कोई नहीं है।'

पिप्पल जब इस प्रकारकी भावना करने लगे, तब उनके मनका भाव जानकर एक सारसने कहा—'ब्राह्मण! तुम ऐसा अहंकार क्यों कर रहे हो कि 'मैं ही सबसे बड़ा हूँ।' मैं तो ऐसा नहीं मानता कि सबको वशमें करनेकी सिद्धि केवल तुम्हींको प्राप्त हुई है। पिप्पल! मेरी समझमें तुम्हारी बुद्धि मूढ़ है, तुम पराचीन तत्त्वको नहीं जानते। तुमने तीन हजार वर्षोंतक तप किया है, इसीका तुम्हें गर्व है; फिर भी तुम यहाँ मूढ़ ही रह गये। कुण्डलके जो सुकर्मा नामक पुत्र हैं, वे विद्वान् पुरुष हैं; उनकी बुद्धि उत्तम है। वे अर्वाचीन तथा पराचीन तत्त्वको जानते हैं। पिप्पल! तुम कान खोलकर सुन लो, संसारमें सुकर्माके समान महाज्ञानी दूसरा कोई नहीं है। उन्होंने दान नहीं दिया; ध्यान, होम और यज्ञ आदि कर्म भी कभी नहीं किया। न तीर्थ करने गये, न गुरुकी उपासना ही की। वे केवल माता-पिताके हितैषी हैं, वेदाध्ययनसम्पन्न हैं तथा सम्पूर्ण शास्त्रोंके ज्ञाता हैं। यद्यपि सुकर्मा अभी बालक हैं, तो भी उन्हें जैसा ज्ञान प्राप्त है, वैसा तुम्हें अबतक नहीं हुआ। ऐसी दशामें तुम व्यर्थ ही यह गर्वका बोझ ढो रहे हो।'

पिप्पल बोले—आप कौन हैं, जो पक्षीके रूपमें आकर इस प्रकार मेरी निन्दा कर रहे हैं? इस समय मुझे अर्वाचीन और पराचीनका स्वरूप पूर्णतया समझाइये।

सारसने कहा—द्विजश्रेष्ठ! कुण्डलके बालक पुत्रको जैसा ज्ञान प्राप्त है, वैसा तुममें नहीं है। यहाँसे जाओ और अर्वाचीन एवं पराचीनका स्वरूप तथा मेरा परिचय भी उन्हींसे पूछो। वे धर्मात्मा हैं, तुम्हें सारा ज्ञान बतलायेंगे।

सारसकी यह बात सुनकर विप्रवर पिप्पल बड़े वेगसे कुण्डलके आश्रमकी ओर गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा, सुकर्मा माता-पिताकी सेवामें लगे हैं। वे सत्यपराक्रमी महात्मा अपने माता-पिताके चरणोंके निकट बैठे थे। उनके भीतर बड़ी भक्ति थी। वे परम शान्त और सम्पूर्ण ज्ञानकी महान् निधि जान पड़ते थे। कुण्डल-कुमार सुकर्माने

जब पिप्पलको अपने द्वारपर आया देखा, तब वे आसन छोड़कर तुरत खड़े हो गये और आगे बढ़कर उनका स्वागत किया। फिर उनको आसन, पाद्य और अर्घ्य आदि निवेदन करके पूछा—'महाप्राज्ञ! आप कुशलसे तो हैं न? मार्गमें कोई कष्ट तो नहीं हुआ? जिस कारणसे आपका यहाँ आना हुआ है, वह सब मैं बताता हूँ। महाभाग! आपने तीन हजार वर्षोंतक तपस्या करके देवताओंसे वरदान प्राप्त किया—सबको वशमें करनेकी शक्ति और इच्छानुसार गति पायी है। इससे उन्मत्त हो जानेके कारण आपके मनमें गर्व हो आया। तब महात्मा सारसने आपकी सारी चेष्टा देखकर आपको मेरा नाम बताया और मेरे उत्तम ज्ञानका परिचय दिया।

पिप्पलने पूछा—ब्रह्मन्! नदीके तीरपर जो सारस मिला था, जिसने मुझे यह कहकर आपके पास भेजा कि 'वे सब ज्ञान बता सकते हैं।' वह कौन था?

सुकर्माने कहा—विप्रवर! सरिताके तटपर जिन्होंने सारसके रूपमें आपसे बात की थी, वे साक्षात् महात्मा ब्रह्माजी थे।

यह सुनकर धर्मात्मा पिप्पलने कहा—ब्रह्मन्! मैंने सुना है, सारा जगत् आपके अधीन है, इस बातको देखनेके लिये मेरे मनमें उत्कण्ठा हो रही है। आप यत्न करके मुझे अपनी यह शक्ति दिखाइये। तब सुकर्माने पिप्पलको विश्वास दिलानेके लिये देवताओंका स्मरण किया। उनके आवाहन करनेपर सम्पूर्ण देवता वहाँ आये और सुकर्मासे इस प्रकार बोले—'ब्रह्मन्! तुमने किसलिये हमें याद किया है, इसका कारण बताओ।'

सुकर्माने कहा—देवगण! विद्याधर पिप्पल आज मेरे अतिथि हुए हैं, ये इस बातका प्रमाण चाहते हैं कि सम्पूर्ण विश्व मेरे वशमें कैसे है। इन्हें विश्वास दिलानेके लिये ही मैंने आपलोगोंका आवाहन किया है। अब आप अपने अपने स्थानको पधारें।

तब देवताओंने कहा—'ब्रह्मन्! हमारा दर्शन निष्फल नहीं होता। तुम्हारा कल्याण हो, तुम्हारे मनको जो रुचिकर प्रतीत हो, वही वरदान हमसे माँग लो।' तब द्विजश्रेष्ठ सुकर्माने देवताओंको भक्तिपूर्वक प्रणाम करके यह वरदान माँगा—'देवेश्वरो! माता पिताके चरणोंमें मेरी उत्तम भक्ति सदा सुस्थिर रहे तथा मेरे माता पिता भगवान् श्रीविष्णुके धाममें पधारें।'

देवता बोले—विप्रवर! तुम माता पिताके भक्त तो हो ही, तुम्हारी उत्तम भक्ति और भी बढ़े।

यों कहकर सम्पूर्ण देवता स्वर्गलोकको चले गये। पिप्पलने भी यह महान् और अद्भुत कौतुक प्रत्यक्ष देखा। तत्पश्चात् उन्होंने कुण्डलपुत्र सुकर्मासे कहा—'वक्ताओंमें श्रेष्ठ! परमात्माका अर्वाचीन और पराचीन रूप कैसा होता है, दोनोंका प्रमाण क्या है? यह बताइये।'

सुकर्माने कहा—ब्रह्मन्! मैं पहले आपको पराचीन रूपकी पहचान बताता हूँ, उसीसे इन्द्र आदि देवता तथा चराचर जगत् मोहित होते हैं। वे जो जगत्के स्वामी परमात्मा हैं, वे सबमें मौजूद और सर्वव्यापक हैं। उनके रूपको किसी योगीने भी नहीं देखा है। श्रुति भी ऐसा कहती है कि उनका वर्णन नहीं किया जा सकता। उनके न हाथ हैं न पैर; न नाक है न कान और न मुख ही है। फिर भी वे तीनों लोकोंके निवासियोंके सारे कर्म देखा करते हैं। कान न होनेपर भी सबकी कही हुई बातोंको सुनते हैं। वे परम शान्ति प्रदान करनेवाले हैं। हाथ न होनेपर भी काम करते और पैरोंसे रहित होकर भी सब ओर दौड़ते हैं।* वे व्यापक, निर्मल, सिद्ध, सिद्धिदायक और सबके नायक हैं। आकाशस्वरूप और अनन्त हैं। व्यास तथा मार्कण्डेय उनके स्वरूपको जानते हैं।

अब मैं भगवान्‌के अर्वाचीन रूपका वर्णन करूँगा, तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो। 'जिस समय सम्पूर्ण भूतोंके आत्मा प्रजापति ब्रह्माजी स्वयं ही सबका संहार करके श्रीभगवान्‌के स्वरूपमें स्थित होते हैं और भगवान् श्रीजनार्दन उन्हें अपनेमें लीन करके पानीके भीतर शेषनागकी शय्यापर दीर्घकालतक अकेले सोये रहते हैं, उस समयकी बात

* पराचीनस्य रूपस्य लिङ्गमेव वदामि ते। येन लोकाः प्रमोह्यन्ते इन्द्राद्याः सचराचराः॥
अयमेव जगन्नाथः सर्वगो व्यापकः परः। अस्य रूपं न दृष्टं हि केनाप्येव हि योगिना॥
श्रुतिरेवं वदत्येव न वक्तुं शक्यतेऽपि सः। अपादो ह्यकरोऽनासो ह्यकर्णो मुखवर्जितः॥
सर्वं पश्यति वै कर्म कृतं त्रैलोक्यवासिनाम्। तेषामुक्तमकर्णश्च स शृणोति सुशान्तिदः॥
... पाणिहीनः पादहीनः कुरुते च प्रधावति॥ (६२।२८—३१)

है। महामुनि मार्कण्डेयजी जल और अन्धकारसे व्याकुल हो इधर-उधर भटक रहे थे। उन्होंने देखा सर्वव्यापी ईश्वर शेषनागकी शय्यापर सो रहे हैं। उनका तेज करोड़ों सूर्योंके समान जान पड़ता है। वे दिव्य आभूषण, दिव्य माला और दिव्य वस्त्र धारण किये योगनिद्रामें स्थित हैं। उनका श्रीविग्रह बड़ा ही कमनीय है। उनके हाथोंमें शङ्ख, चक्र और गदा विराजमान हैं।* उनके पास ही उन्होंने एक विशालकाय स्त्री देखी, जो काली अञ्जन-राशिके समान थी। उसका रूप बड़ा भयंकर था। उसने मुनिश्रेष्ठ मार्कण्डेयसे कहा— 'महामुने! डरो मत।' तब उन योगीश्वरने पूछा— 'देवि! तुम कौन हो?' मुनिके इस प्रकार पूछनेपर देवीने बड़े आदरके साथ कहा—'ब्रह्मन्! जो शेषनागकी शय्यापर सो रहे हैं, वे भगवान् श्रीविष्णु हैं। मैं उन्हींकी वैष्णवी शक्ति कालरात्रि हूँ।'

पिप्पलजी! यों कहकर वह देवी अन्तर्धान हो गयी। उसके चले जानेपर मार्कण्डेयजीने देखा—भगवान्‌की नाभिसे एक कमल प्रकट हुआ, जिसकी कान्ति सुवर्णके समान थी। उसीसे महातेजस्वी लोकपितामह ब्रह्माजी उत्पन्न हुए। फिर ब्रह्माजीसे समस्त चराचर प्राणी, इन्द्रादि लोकपाल तथा अग्नि आदि देवताओंका जन्म हुआ। इस प्रकार मैंने यह अर्वाचीनका स्वरूप बतलाया है। अर्वाचीन रूप शरीरधारी है और पराचीनरूप शरीररहित है; अतः ब्रह्मा आदि सम्पूर्ण देवता अर्वाचीन हैं। ये लोक भी, जो तीनों भुवनोंमें स्थित हैं, अर्वाचीन ही माने गये हैं। विद्याधर! मोक्षरूप जो परम स्थान है, जिसे परब्रह्म कहते हैं, जो अव्यक्त, अक्षर, हंसस्वरूप, शुद्ध और सिद्धियुक्त है, वही पराचीन है।† इस प्रकार तुम्हारे सामने पराचीन स्वरूपका वर्णन किया गया।

विद्याधरने पूछा—सुव्रत! आप अर्वाचीन और पराचीन स्वरूपके विद्वान् हैं। तीनों लोकोंका उत्तम ज्ञान आपमें वर्तमान है। फिर भी मैं आपमें तपस्याकी पराकाष्ठा नहीं देखता। ऐसी दशामें आपके इस प्रभावका क्या कारण है? कैसे आपको सब बातोंका ज्ञान प्राप्त हुआ?

सुकर्माने कहा—ब्रह्मन्! मैंने यजन-याजन, धर्मानुष्ठान, ज्ञानोपार्जन और तीर्थ-सेवन—कुछ भी नहीं किया। इनके सिवा और भी किसी शुभकर्मजनित पुण्यका अर्जन मेरे द्वारा नहीं हुआ। मैं तो स्पष्टरूपसे एक ही बात जानता हूँ—वह है पिता और माताकी सेवा-पूजा। पिप्पल! मैं स्वयं ही अपने हाथसे माता-पिताके चरण धोनेका पुण्यकार्य करता हूँ। उनके शरीरकी सेवा करता तथा उन्हें स्नान और भोजन आदि कराता हूँ। प्रतिदिन तीनों समय माता-पिताकी सेवामें ही लगा रहता हूँ। जबतक मेरे माँ-बाप जीवित हैं, तबतक मुझे यह अतुलनीय लाभ मिल रहा है कि तीनों समय मैं शुद्धभावसे मन लगाकर इन दोनोंकी पूजा करता हूँ। पिप्पल! मुझे दूसरी तपस्यासे क्या लेना है। तीर्थ-यात्रा तथा अन्य पुण्यकर्मोंसे क्या प्रयोजन है। विद्वान् पुरुष सम्पूर्ण यज्ञोंका अनुष्ठान करके जिस फलको प्राप्त करते हैं, वही मैंने पिता-माताकी सेवासे पा लिया है। जहाँ माता-पिता रहते हों, वही पुत्रके लिये गङ्गा, गया और पुष्कर तीर्थ है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। माता-पिताकी सेवासे पुत्रके पास अन्यान्य पवित्र तीर्थ भी स्वयं ही पहुँच जाते हैं। जो पुत्र माता-पिताके जीते-जी उनकी सेवा करता है, उसके ऊपर देवता तथा पुण्यात्मा महर्षि प्रसन्न होते हैं। पिताकी सेवासे तीनों लोक संतुष्ट हो जाते हैं। जो पुत्र प्रतिदिन माता-पिताके चरण पखारता है, उसे नित्यप्रति गङ्गास्नानका फल मिलता है।* जिस पुत्रने ताम्बूल, वस्त्र, खान-पानकी विविध सामग्री तथा पवित्र अन्नके द्वारा भक्तिपूर्वक माता-पिताका पूजन किया है, वह सर्वज्ञ होता है।

द्विजश्रेष्ठ! माता-पिताको स्नान कराते समय जब उनके शरीरसे जलके छींटे उछटकर पुत्रके सम्पूर्ण अङ्गोंपर पड़ते हैं, उस समय उसे सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करनेका फल होता है। यदि पिता पतित, भूखसे व्याकुल, वृद्ध, सब कार्योंमें असमर्थ, रोगी और कोढ़ी हो गये हों तथा माताकी भी वही अवस्था हो, उस समयमें भी जो पुत्र उनकी सेवा करता है, उसपर निस्सन्देह भगवान् श्रीविष्णु प्रसन्न होते हैं। वह

* भ्रममाणः स ददृशे शेषपर्यङ्कशायिनम्।
सूर्यकोटिप्रतीकाशं दिव्याभरणभूषितम्॥
दिव्यमाल्याम्बरधरं सर्वव्यापिनमीश्वरम्।
योगनिद्रागतं कान्तं शङ्खचक्रगदाधरम्॥
(६२। ३९-४०)

† मोक्षरूपं परं स्थानं परमब्रह्मस्वरूपकम्।
अव्यक्तमक्षरं हंसं शुद्धं सिद्धिसमन्वितम्॥ (६२।५३)

* मातापित्रोस्तु यः पादौ नित्यं प्रक्षालयेत्सुतः।
तस्य भागीरथीस्नानमहन्यहनि जायते॥
(६२। ७४)

योगियोंके लिये भी दुर्लभ भगवान् श्रीविष्णुके धामको प्राप्त होता है। जो किसी अङ्गसे हीन, दीन, वृद्ध, दुखी तथा महान् रोगसे पीडित माता पिताको त्याग देता है, वह पापात्मा पुत्र कीड़ोंसे भरे हुए दारुण नरकमें पड़ता है। जो पुत्र बूढ़े माँ-बापके बुलानेपर भी उनके पास नहीं जाता, वह मूर्ख विष्ठा खानेवाला कीड़ा होता है तथा हजार जन्मोंतक उसे कुत्तेकी योनिमें जन्म लेना पड़ता है। वृद्ध माता पिता जब घरमें मौजूद हो, उस समय जो पुत्र पहले उन्हें भोजन कराये बिना स्वय अन्न ग्रहण करता है, वह घृणित कीड़ा होता है और हजार जन्मोंतक मल-मूत्र भोजन करता है। इसके सिवा वह पापी तीन सौ जन्मोंतक काला नाग होता है।* जो पुत्र कटु वचनोंद्वारा माता पिताकी निन्दा करता है, वह पापी बाघकी योनिमें जन्म लेता है तथा और भी बहुत दु ख उठाता है। जो पापात्मा पुत्र माता पिताको प्रणाम नहीं करता, वह हजार युगोंतक कुम्भीपाक नरकमें निवास करता है। पुत्रके लिये माता पितासे बढकर दूसरा कोई तीर्थ नहीं है। माता पिता इस लोक और परलोकमें भी नारायणके समान हैं।† इसलिये महाप्राज्ञ! मैं प्रतिदिन माता पिताकी पूजा करता और उनके योग क्षेमकी चिन्तामें लगा रहता हूँ। इसीसे तीनों लोक मेरे वशमें हो गये हैं। माता पिताके प्रसादसे ही मुझे पराचीन तथा वासुदेवस्वरूप अर्वाचीन तत्त्वका उत्तम ज्ञान प्राप्त हुआ है। मेरी सर्वज्ञतामें माता पिताकी सेवा ही कारण है। भला, कौन ऐसा विद्वान् पुरुष होगा, जो पिता-माताकी पूजा नहीं करेगा। ब्रह्मन्! श्रुति (उपनिषद्) और शास्त्रोंसहित सम्पूर्ण वेदोंके साङ्गोपाङ्ग अध्ययनसे ही क्या लाभ हुआ, यदि उसने माता पिताका पूजन नहीं किया। उसका वेदाध्ययन व्यर्थ है। उसके यज्ञ, तप, दान और पूजनसे भी कोई लाभ नहीं। जिसने माँ-बापका आदर नहीं किया, उसके सभी शुभकर्म निष्फल होते हैं। माता पिता ही पुत्रके लिये धर्म, तीर्थ, मोक्ष, जन्मके उत्तम फल, यज्ञ और दान आदि सब कुछ हैं।

सुकर्माद्वारा ययाति और मातलिके संवादका उल्लेख—मातलिके द्वारा देहकी उत्पत्ति, उसकी अपवित्रता, जन्म-मरण और जीवनके कष्ट तथा संसारकी दुःखरूपताका वर्णन

सुकर्मा कहते हैं—*अब मैं इस विषयमें पुण्यात्मा राजा ययातिके चरित्रका वर्णन करूँगा, जो सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाला है। सोमवंशमें एक नहुष नामके राजा हो गये हैं। उन्होंने अनेकों दानधर्मोंका अनुष्ठान किया, जिनकी कहीं तुलना नहीं थी। उन्होंने अपने पुण्यके प्रभावसे इन्द्रलोकपर अधिकार प्राप्त किया था। उन्हींके पुत्र राजा ययाति हुए, जो शत्रुओंका मान-मर्दन करनेवाले थे। वे सत्यका आश्रय ले धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करते थे। प्रजाके सब कार्योंकी स्वय ही देख भाल किया करते थे। वे उत्तम धर्मकी महिमा सुनकर सब प्रकारके दान पुण्य, यज्ञानुष्ठान एव तीर्थ सेवन आदिमें लगे रहते थे। महाराज ययातिने अस्सी हजार वर्षोंतक इस पृथ्वीका राज्य किया।*

---

* तयोश्चापि द्विजश्रेष्ठ मातापित्रोश्च स्नातयो । पुत्रस्यापि हि सर्वाङ्गे पतन्त्यम्बुकणा यदा ॥
सर्वतीर्थसम स्नान पुत्रस्यापि प्रजायते । ॥
पतित क्षुधित वृद्धमशक्त सर्वकर्मसु । व्याधित कुष्ठिन तात मातर च तथाविधाम् ॥
उपाचरति य पुत्रस्तस्य पुण्य वदाम्यहम् । विष्णुस्तस्य प्रसन्नात्मा जायते नात्र सशय ॥
प्रयाति वैष्णव लोक यदप्राप्य हि योगिभि । पितरौ विकलौ दीनौ वृद्धौ दु खितमानसौ ॥
महागदेन सतप्तौ परित्यजति पापधी । स पुत्रो नरक याति दारुण कृमिसकुलम् ॥
वृद्धाभ्यां य समाहूतो गुरुभ्यामिह साम्प्रतम् । न प्रयाति सुतो भूत्वा तस्य पाप वदाम्यहम् ॥
विष्ठाशी जायते मूढोऽमेध्यभोजी न सशय । यावज्ज मसहस्र तु पुन. श्वानोऽभिजायते ॥
पुत्रगेहे स्थितौ मातापितरौ वृद्धकौ तथा । स्वय ताभ्यां विना भुक्त्वा प्रथम जायते कृमि ॥
मूत्र विष्ठां च भुञ्जीत यावज्ज मसहस्रकम् । कृष्णसर्पो भवेत्पापी यावज्जन्मशतत्रयम् ॥ (६३ । १—९)

† पितरौ कुत्सते पुत्र कटुकैर्वचनैरपि । स च पापी भवेद्व्याघ्र पश्चाद्दु खी प्रजायते ॥
मातर पितर पुत्रो न नमस्यति पापधी । कुम्भीपाके वसेत्तावद्यावद्युगसहस्रकम् ॥
नास्ति मातु पर तीर्थं पुत्राणां च पितुस्तथा । नारायणसमावेताविह चैव परत्र च ॥ (६३ । ११—१३)



इन्द्रके यहाँ श्रीनारदजी

उनके चार पुत्र हुए, जो उन्हींके समान शूरवीर, बलवान् और पराक्रमी थे। तेज और पुरुषार्थमें भी वे पिताकी समानता करते थे। इस प्रकार ययातिने दीर्घकालतक धर्मपूर्वक राज्य किया।

एक समयकी बात है, ब्रह्माजीके पुत्र नारदजी इन्द्रलोकमें गये। उन्हें आया देख इन्द्रने भक्तिपूर्वक मस्तक झुकाकर प्रणाम किया और मधुपर्क आदिसे उनकी पूजा करके उन्हें एक पवित्र आसनपर बिठाया। तत्पश्चात् वे उन महामुनिसे पूछने लगे—'देवर्षे! किस लोकसे आपका यहाँ आना हुआ है? तथा यहाँ पदार्पण करनेका क्या उद्देश्य है?'

नारदजीने कहा—मैं इस समय भूलोकसे आ रहा हूँ। नहुष-पुत्र ययातिसे मिलकर अब आपसे मिलनेके लिये आया हूँ।

इन्द्रने पूछा—इस समय पृथ्वीपर कौन राजा सत्य और धर्मके अनुसार प्रजाका पालन करता है? कौन सब धर्मोंसे युक्त, विद्वान्, ज्ञानवान्, गुणी, ब्राह्मणोंके कृपापात्र, ब्राह्मणभक्त, वेदवेत्ता, शूरवीर, दाता, यज्ञ करनेवाला और पूर्ण भक्तिमान् है?

नारदजीने कहा—नहुषके बलवान् पुत्र ययाति इन गुणोंसे युक्त हैं। वे अपने पितासे भी बढ़े-चढ़े हैं। उन्होंने सौ अश्वमेध और सौ वाजपेय यज्ञ किये हैं। भक्तिपूर्वक अनेक प्रकारके दान दिये हैं। उनके द्वारा लाखों-करोड़ों गौएँ दानमें दी जा चुकी हैं। उन्होंने कोटिहोम तथा लक्षहोम भी किये हैं। ब्राह्मणोंको भूमि आदिका दान भी दिया है। उन्होंने ही धर्मके साङ्गोपाङ्ग स्वरूपका पालन किया है। ऐसे गुणोंसे युक्त नहुष-पुत्र राजा ययाति अस्सी हजार वर्षोंसे सत्य-धर्मके अनुसार विधिवत् राज्य करते आ रहे हैं। इस कार्यमें वे आपकी समानता करते हैं।

सुकर्मा कहते हैं—मुनीश्वर नारदके मुखसे ऐसी बात सुनकर बुद्धिमान् इन्द्र कुछ सोचने लगे। वे ययातिके धर्म-पालनसे भयभीत हो उठे थे। उनके मनमें यह बात आयी कि 'पूर्वकालमें राजा नहुष सौ यज्ञोंके प्रभावसे मेरे इन्द्रपदपर अधिकार करके देवताओंके राजा बन बैठे थे। शचीकी बुद्धिके प्रभावसे उन्हें पदभ्रष्ट होना पड़ा था। ये महाराज ययाति भी ऐसे ही सुने जाते हैं। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि वे इन्द्रपदपर अधिकार कर लेंगे। अतः जिस-किसी उपायसे सम्भव हो, उन्हें स्वर्गमें लाऊँगा।'

ययातिसे डरे हुए देवराजने ऐसा विचार करके उन्हें बुलानेके लिये दूत भेजा। अपने सारथि मातलिको विमानके साथ रवाना किया। मातलि उस स्थानपर गये, जहाँ नहुष-पुत्र धर्मात्मा ययाति अपनी राजसभामें विराजमान थे। सत्य ही उन श्रेष्ठ नरेशका आभूषण था। देवराजके सारथिने उनसे कहा—'राजन्! मेरी बात सुनिये, देवराज इन्द्रने मुझे इस समय आपके पास भेजा है। उनका अनुरोध है कि अब आप पुत्रको राज्य दे आज ही इन्द्रलोकको पधारें। महीपते! वहाँ इन्द्रके साथ रहकर आप स्वर्गका आनन्द भोगिये।'

ययातिने पूछा—मातले! मैंने देवराज इन्द्रका कौन-सा ऐसा कार्य किया है, जिससे तुम ऐसी प्रार्थना कर रहे हो?

मातलिने कहा—राजन्! लगभग एक लाख वर्षोंसे आप दान-यज्ञ आदि कर्म कर रहे हैं। इन कर्मोंके फल-स्वरूप इस समय स्वर्गलोकमें चलिये और देवराज इन्द्रके सखा होकर रहिये। इस पाञ्चभौतिक शरीरको भूमिपर ही त्याग दीजिये और दिव्य रूप धारण करके मनोरम भोगोंका उपभोग कीजिये।

ययातिने प्रश्न किया—मनुष्य जिस शरीरसे सत्य-धर्म आदि पुण्यका उपार्जन करता है, उसे वह कैसे छोड़ सकता है।

मातलिने कहा—राजन्! तुम्हारा कथन ठीक है, तथापि मनुष्यको अपना यह शरीर छोड़कर ही जाना पड़ता है [क्योंकि आत्माका शरीरके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है]। शरीर पञ्चभूतोंसे बना हुआ है; जब इसकी संधियाँ शिथिल हो जाती हैं, उस समय वृद्धावस्थासे पीड़ित मनुष्य इस शरीरको त्याग देना चाहता है।

ययातिने पूछा—साधुश्रेष्ठ! वृद्धावस्था कैसे उत्पन्न होती है तथा वह क्यों शरीरको पीडा देती है? इन सब बातोंको विस्तारसे समझाओ।

मातलिने कहा—राजन्! पञ्चभूतोंसे इस शरीरका निर्माण हुआ है तथा पाँच विषयोंसे यह घिरा हुआ है। वीर्य और रक्तका नाश होनेसे प्रायः शरीर खोखला हो जाता है, उसमें प्रचण्ड वायुका प्रकोप होता है। इससे मनुष्यका रंग बदल जाता है। वह दुःखसे संतप्त और हतबुद्धि हो जाता है। जो स्त्री देखी-सुनी होती है, उसमें चित्त

आसक्त होनेसे वह सदा भटकता रहता है। शरीरमें तृप्ति नहीं होती; क्योंकि उसका चित्त सदा लोलुप रहा करता है। जब कामी मनुष्य मास और रक्त क्षीण होनेसे दुर्बल हो जाता है, तब उसके बाल पक जाते हैं। कामाग्निसे शरीरका शोषण हो जाता है। वृद्ध होनेपर भी दिन दिन उसकी कामना बढ़ती ही जाती है। बूढ़ा मनुष्य ज्यों ज्यों स्त्रीके सहवासका चिन्तन करता है, त्यों त्यों उसके तेजकी हानि होती है। अतः काम नाशस्वरूप है, वह नाशके लिये ही उत्पन्न होता है। काम एक भयंकर ज्वर है, जो प्राणियोंका काल बनकर उत्पन्न होता है। इस प्रकार इस शरीरमें जीर्णता—जरावस्था आती है।

ययातिने कहा—मातले! आत्माके साथ यह शरीर ही धर्मका रक्षक है, तो भी यह स्वर्गको नहीं जाता—इसका क्या कारण है? यह बताओ।

मातलि बोले—महाराज! पाँचों भूतोंका आपसमें ही मेल नहीं है। फिर आत्माके साथ उनका मेल कैसे हो सकता है? आत्माके साथ इनका सम्बन्ध बिल्कुल नहीं है। शरीर-समुदायमें भी सम्पूर्ण भूतोंका पूर्ण संघट नहीं है; क्योंकि जरावस्थासे पीडित होनेपर सभी अपने अपने स्थानको चले जाते हैं। इस शरीरमें अधिकांश पृथ्वीका भाग है। यह पृथ्वीकी समानताको लेकर ही प्रतिष्ठित है। जैसे पृथ्वी स्थित है, उसी प्रकार यह भी यहीं स्थित रहता है। अतः शरीर स्वर्गको नहीं जाता।

ययातिने कहा—मातले! मेरी बात सुनो। जब पापसे भी शरीर गिर जाता है और पुण्यसे भी, तब मैं इस पृथ्वीपर पुण्यमें कोई विशेषता नहीं देखता। जैसे पहले शरीरका पतन होता है, उसी प्रकार पुनः दूसरे शरीरका जन्म भी हो जाता है। किन्तु उस देहकी उत्पत्ति कैसे होती है? मुझे इसका कारण बताओ।

मातलि बोले—राजन्! नारकी पुरुषोंके अधर्म-मात्रसे एक ही क्षणमें भूतोंके द्वारा नूतन शरीरका निर्माण हो जाता है। इसी प्रकार एकमात्र धर्मसे ही देवत्वकी प्राप्ति करानेवाले दिव्य शरीरकी तत्काल उत्पत्ति हो जाती है। उसका आविर्भाव भूतोंके सारतत्त्वसे होता है। कर्मोंके मेलसे जो शरीर उत्पन्न होता है, उसे रूपके परिमाणसे चार प्रकारका समझना चाहिये। [उद्भिज्ज, स्वेदज, अण्डज और जरायुज—ये ही चार प्रकारके शरीर हैं।] स्थावरोंको उद्भिज्ज कहते हैं। उन्हें तृण, गुल्म और लता आदिके रूपमें जानना चाहिये। कृमि, कीट और पतङ्ग आदि प्राणी स्वेदज कहलाते हैं। समस्त पक्षी, नाके और मछली आदि जीव अण्डज हैं। मनुष्यों और चौपायोंको जरायुज जानना चाहिये।

भूमिके पानीसे सींचे जानेपर बोये हुए अन्नमें उसकी गर्मी चली जाती है। फिर वायुसे संयुक्त होने पर क्षेत्रमें बीज जमने लगता है। पहले तपे हुए बीज जब पुनः जलसे सींचे जाते हैं, तब गर्मीके कारण उनमें मृदुता आ जाती है; फिर वे जड़के रूपमें बदल जाते हैं। उस मूलसे अङ्कुरकी उत्पत्ति होती है। अङ्कुरसे पत्ते निकलते हैं, पत्तेसे तना, तनेसे काण्ड, काण्डसे प्रभव, प्रभवसे दूध और दूधसे तण्डुल उत्पन्न होता है। तण्डुलके पक जानेपर अनाजकी खेती तैयार हुई समझी जाती है। अनाजोंमें शालि (अगहनी धान) से लेकर जौतक दस अन्न श्रेष्ठ माने गये हैं। उनमें फलकी प्रधानता होती है। शेष अन्न क्षुद्र बताये गये हैं। भक्ष्य, भोज्य, पेय, लेह्य, चोष्य और खाद्य—ये अन्नके छः भेद हैं तथा मधुर आदि छः प्रकारके रस हैं। देहधारी उस अन्नको पिण्डके समान कौर या ग्रास बनाकर खाते हैं। यह अन्न शरीरके भीतर उदरमें पहुँचकर समस्त प्राणोंको क्रमशः स्थिर करता है। खाये हुए अपक्व भोजनको वायु दो भागोंमें बाँट देती है। अन्नके भीतर प्रवेश करके उसे पचाती और पृथक्-पृथक् गुणोंसे युक्त करती है। अग्निके ऊपर जल और जलके ऊपर अन्नको स्थापित करके प्राण स्वयं जलके नीचे स्थित हो धीरे-धीरे जठराग्निको प्रज्वलित करता है। वायुसे उद्दीप्त की हुई अग्नि जलको अधिक गर्म कर देती है। उसकी गर्मीके कारण अन्न सब ओरसे भलीभाँति पच जाता है। पचा हुआ अन्न कीट और रस—इन दो भागोंमें विभक्त होता है। इनमें कीट मलरूपसे, बारह छिद्रोंद्वारा शरीरके बाहर निकलता है। दो कान, दो नेत्र, दो नासा छिद्र, जिह्वा, दाँत, ओठ, लिङ्ग, गुदा और रोमकूप—ये ही मल निकलनेके बारह मार्ग हैं। इनके द्वारा कफ, पसीने और मल मूत्र आदिके रूपमें शरीरका मैल निकलता है। हृदयकमलमें शरीरकी सब नाड़ियाँ आबद्ध हैं। उनके मुखमें प्राण अन्नका सूक्ष्म रस डाला करता है। वह बारंबार उस रससे नाड़ियोंको भरता रहता है तथा रससे भरी हुई नाड़ियाँ सम्पूर्ण देहको तृप्त करती रहती हैं।

नाड़ियोंके मध्यमें स्थित हुआ रस शरीरकी गर्मीसे पकने लगता है। उस रसके जब दो पाक हो जाते हैं, तब उससे त्वचा, मांस, हड्डी, मज्जा, मेद और रुधिर आदि उत्पन्न होते हैं। रक्तसे रोम और मांस, मांससे केश और स्नायु, स्नायुसे मज्जा और हड्डी तथा मज्जा और हड्डीसे वसाकी उत्पत्ति होती है। मज्जासे शरीरकी उत्पत्तिका कारणभूत वीर्य बनता है। इस प्रकार अन्नके बारह परिणाम बताये गये हैं।* जब ऋतुकालमें दोषरहित वीर्य स्त्रीकी योनिमें स्थित होता है, उस समय वह वायुसे प्रेरित हो रजके साथ मिलकर एक हो जाता है। वीर्य-स्थापनके समय कारण-शरीरयुक्त जीव अपने कर्मोंसे प्रेरित होकर योनिमें प्रवेश करता है।

वीर्य और रज दोनों एकत्र होकर एक ही दिनमें कललके आकारमें परिणत हो जाते हैं, फिर पाँच रातमें उनका बुद्बुद बन जाता है। तत्पश्चात् एक महीनेमें ग्रीवा, मस्तक, कंधे, रीढ़की हड्डी तथा उदर—ये पाँच अङ्ग उत्पन्न होते हैं; फिर दो महीनेमें हाथ, पैर, पसली, कमर और पूरा शरीर—ये सभी क्रमशः सम्पन्न होते हैं। तीन महीने बीतते-बीतते सैकड़ों अङ्कुरसंधियाँ प्रकट हो जाती हैं। चार महीनोंमें क्रमशः अँगुली आदि अवयव भी उत्पन्न हो जाते हैं। पाँच महीनोंमें मुँह, नाक और कान तैयार हो जाते हैं; छः महीनोंके भीतर दाँतोंके मसूड़े, जिह्वा तथा कानोंके छिद्र प्रकट होते हैं। सात महीनोंमें गुदा, लिङ्ग, अण्डकोष, उपस्थ तथा शरीरकी सन्धियाँ प्रकट होती हैं। आठ मास बीतते-बीतते शरीरका प्रत्येक अवयव, केशोंसहित पूरा मस्तक तथा अङ्गोंकी पृथक्-पृथक् आकृतियाँ स्पष्ट हो जाती हैं।

माताके आहारसे जो छः प्रकारका रस मिलता है, उसीके बलसे गर्भस्थ बालककी प्रतिदिन पुष्टि होती है। नाभिमें जो नाल बँधा होता है, उसीके द्वारा बालकको रसकी प्राप्ति होती रहती है। तदनन्तर शरीरका पूर्ण विकास हो जानेपर जीवको स्मरण-शक्ति प्राप्त होती है तथा वह दुःख-सुखका अनुभव करने लगता है। उसे पूर्वजन्मके किये हुए कर्मोंका, यहाँतक कि निद्रा और शयन आदिका भी, स्मरण हो आता है। वह सोचने लगता है—'मैंने अबतक हजारों योनियोंमें अनेकों बार चक्कर लगाया। इस समय अभी-अभी जन्म ले रहा हूँ, मुझे पूर्वजन्मोंकी स्मृति हो आयी है; अतः इस जन्ममें मैं वह कल्याणकारी कार्य करूँगा, जिससे मुझे फिर गर्भमें न आना पड़े। मैं यहाँसे निकलनेपर संसार-बन्धनकी निवृत्ति करनेवाले उत्तम ज्ञानको प्राप्त करनेका प्रयत्न करूँगा।'

जीव गर्भवासके महान् दुःखसे पीड़ित हो कर्मवश माताके उदरमें पड़ा-पड़ा अपने मोक्षका उपाय सोचता रहता है। जैसे कोई पर्वतकी गुफामें बंद हो जानेपर बड़े दुःखसे समय बिताता है, उसी प्रकार देहधारी जीव जरायु (जेर) के बन्धनमें बँधकर बहुत दुखी होता और बड़े कष्टसे उसमें रह पाता है। जैसे समुद्रमें गिरा हुआ मनुष्य दुःखसे छटपटाने लगता है, वैसे ही गर्भके जलसे अभिषिक्त जीव अत्यन्त व्याकुल हो उठता है। जिस प्रकार किसीको लोहेके घड़ेमें बंद करके आगसे पकाया जाय, उसी प्रकार गर्भरूपी कुम्भमें डाला हुआ जीव जठराग्निसे पकाया जाता है। आगमें तपाकर लाल-लाल की हुई बहुत-सी सूइयोंसे निरन्तर शरीरको छेदनेपर जितना दुःख होता है, उससे आठगुना अधिक कष्ट गर्भमें होता है। गर्भवाससे बढ़कर कष्ट कहीं नहीं होता। देहधारियोंके लिये गर्भमें रहना इतना भयंकर कष्ट है, जिसकी कहीं तुलना नहीं है। इस प्रकार प्राणियोंके गर्भजनित दुःखका वर्णन किया गया। स्थावर और जङ्गम—सभी प्राणियोंको अपने-अपने गर्भके अनुरूप कष्ट होता है।

जीवको जन्मके समय गर्भवासकी अपेक्षा करोड़गुनी अधिक पीड़ा होती है। जन्म लेते समय वह मूर्च्छित हो जाता है। उस समय उसका शरीर हड्डियोंसे युक्त गोल आकारका होता है। स्नायुबन्धनसे बँधा रहता है। रक्त, मांस और वसासे व्याप्त होता है। मल और मूत्र आदि अपवित्र वस्तुएँ उसमें जमा रहती हैं। केश, रोम और नखोंसे युक्त तथा रोगका आश्रय होता है। मनुष्यका यह शरीर जरा और शोकसे परिपूर्ण तथा कालके अग्निमय मुखमें स्थित है। इसपर काम और क्रोधके आक्रमण होते रहते हैं। यह भोगकी तृष्णासे आतुर, विवेकशून्य और रागद्वेषके वशीभूत होता है। इस देहमें तीन सौ साठ हड्डियाँ तथा पाँच सौ मांस-पेशियाँ हैं, ऐसा समझना चाहिये। यह सब ओरसे साढ़े तीन करोड़ रोमोंद्वारा व्याप्त है तथा स्थूल-सूक्ष्म एवं दृश्य-अदृश्यरूपसे उतनी ही नाड़ियाँ भी इसके भीतर फैली हुई हैं। उन्हींके द्वारा भीतरका अपवित्र मल पसीने आदिके रूपमें निकलता रहता है। शरीरमें बत्तीस

* अन्नके बारह परिणाम ये हैं—पाक, रस, मल, रक्त, रोम, मांस, केश, स्नायु, मज्जा, हड्डी, वसा और वीर्य।

दाँत और बीस नख होते हैं। देहके अंदर पित्त एक कुडव[1] और कफ आधा आढक[2] होता है। वसा तीन पल[3], कलल पद्रह पल, वात अर्बुद पल, मेद दस पल, महारक्त तीन पल, मज्जा उससे चौगुनी (बारह पल), वीर्य आधा कुडव, बल चौथाई कुडव, मांस पिण्ड हजार पल तथा रक्त सौ पल होता है और मूत्रका कोई नियत माप नहीं है।

राजन्! आत्मा परम शुद्ध है और उसका यह देहरूपी घर, जो कर्मोंके बन्धनसे तैयार किया गया है, नितान्त अशुद्ध है। इस बातको सदा ही याद रखना चाहिये। वीर्य और रजका सयोग होनेपर ही किसी भी योनिमें देहकी उत्पत्ति होती है तथा यह हमेशा पेशाव और पाखानेसे भरा रहता है; इसलिये इसे अपवित्र माना गया है। जैसे घड़ा बाहरसे चिकना होनेपर भी यदि विष्ठासे भरा हो तो वह अपवित्र ही समझा जाता है, उसी प्रकार यह देह ऊपरसे पञ्चभूतोंद्वारा शुद्ध किया जानेपर भी भीतरकी गदगीके कारण अपवित्र ही माना गया है। जिसमें पहुँचकर पञ्चगव्य और हविष्य आदि अत्यन्त पवित्र पदार्थ भी तत्काल अपवित्र हो जाते हैं, उस शरीरसे बढ़कर अशुद्ध दूसरा क्या हो सकता है।* जिसके द्वारोंसे निरन्तर क्षण क्षणमें कफ-मूत्र आदि अपवित्र वस्तुएँ बहती रहती हैं, उस अत्यन्त अपावन शरीरको कैसे शुद्ध किया जा सकता है।† शरीरके छिद्रोंका स्पर्श मात्र कर लेनेपर हाथको जलसे शुद्ध किया जाता है, तथापि मनुष्य अशुद्ध ही बने रहते हैं, किन्तु फिर भी उन्हें देहसे वैराग्य नहीं होता।‡ जैसे जन्मसे ही काले रगकी ऊन धोनेसे कभी सफेद नहीं होती, उसी प्रकार यह शरीर धोनेसे भी पवित्र नहीं हो सकता। मनुष्य अपने शरीरके मलको अपनी आँखों देखता है, उसकी दुर्गन्धका अनुभव करता है और उससे बचनेके लिये नाक भी दबाता है; किन्तु फिर भी उसके मनमें वैराग्य नहीं होता। अहो! मोहका कैसा माहात्म्य है, जिससे सारा जगत् मोहित हो रहा है! अपने शरीरके दोषोंको देखकर और सूँघकर भी वह उससे विरक्त नहीं होता। जो मनुष्य अपने देहकी अपवित्र गन्धसे घृणा करता है, उसे वैराग्यके लिये और क्या उपदेश दिया जा सकता है।* सारा संसार पवित्र है, केवल शरीर ही अत्यन्त अपवित्र है; क्योंकि जन्मकालमें इस शरीरके अवयवोंका स्पर्श करनेसे शुद्ध मनुष्य भी अशुद्ध हो जाता है। अपवित्र वस्तुकी गन्ध और लेपको दूर करनेके लिये शरीरको नहलाने धोने आदिका विधान है। गन्ध और लेपकी निवृत्ति हो जानेके पश्चात् भावशुद्धिसे वस्तुतः मनुष्य शुद्ध होता है।

जिसका भीतरी भाव दूषित है, वह यदि आगमें प्रवेश कर जाय तो भी न तो उसे स्वर्ग मिलता है और न मोक्षकी ही प्राप्ति होती है; उसे सदा देहके बन्धनमें ही जकड़े रहना पड़ता है। भावकी शुद्धि ही सबसे बड़ी पवित्रता है और वही प्रत्येक कार्यमें श्रेष्ठताका हेतु है। पत्नी और पुत्री—दोनोंका ही आलिङ्गन किया जाता है; किन्तु पत्नीके आलिङ्गनमें दूसरा भाव होता है और पुत्रीके आलिङ्गनमें दूसरा। भिन्न-भिन्न वस्तुओंके प्रति मनकी वृत्तिमें भी भेद हो जाता है। नारी अपने पतिका और भावसे चिन्तन करती है और पुत्रका और भावसे।† तुम यत्नपूर्वक अपने मनको

---

१. आयुर्वेदके अनुसार ३२ तोले (६ छटाक २ तोले) का एक वजन। २. चार सेरके लगभगका एक तौल। ३. आयुर्वेदके अनुसार ८ तोलेका १ पल होता है। अन्यत्र ४ तोलेका एक पल माना गया है।

* य प्राप्यानिपवित्राणि पञ्चगव्य हवींषि च।
अशुचित्व क्षणाद्यान्ति कोऽन्योऽस्मादशुचिस्ततः॥
(६६। ६९)

† स्रोतांसि यस्य सतत प्रवहन्ति क्षणे क्षणे।
कफमूत्राद्यत्यशुचिः स देह शुध्यते कथम्॥
(६६। ७३)

‡ स्पृष्ट्वा च देहस्रोतांसि मृदादिभि शोध्यते करः।
तथाप्यशुचिभाजश्च न विरज्यन्ति ते नराः॥
(६६। ७५)

* जिघ्रन्नपि स्वदुर्गन्ध पश्यन्नपि मल स्वकम्।
न विरज्येत लोकोऽय पीडयन्नपि नासिकाम्॥
अहो मोहस्य माहात्म्य येन व्यामोहित जगत्।
जिघ्रन् पश्यन् स्वकान् दोषान् कायस्य न विरज्यते॥
स्वदेहाशुचिगन्धेन यो विरज्येत मानव।
विरागकारण तस्य किमन्यदुपदिश्यते॥
(६६। ७८–८०)

† अन्तर्भावप्रदुष्टस्य विशतोऽपि हुताशनम्।
न स्वर्गो नापवर्गश्च देहनिर्बन्धन परम्॥
भावशुद्धिः पर शौच प्रमाण सर्वकर्मसु।
अन्यथाऽऽलिङ्ग्यते कान्ता भावेन दुहितान्यथा॥
मनसो भिद्यते वृत्तिर्भिन्नेष्वपि च वस्तुषु।
अन्यथैव ततः पुत्रं भावयत्यन्यथा पतिम्॥
(६६। ८५—८७)

शुद्ध करो, दूसरी-दूसरी बाह्य शुद्धियोंसे क्या लेना है। जो भावसे पवित्र है, जिसका अन्तःकरण शुद्ध हो गया है, वही स्वर्ग तथा मोक्षको प्राप्त करता है*। उत्तम वैराग्यरूपी मिट्टी तथा ज्ञानरूप निर्मल जलसे माँजने-धोनेपर पुरुषके अविद्या तथा रागरूपी मल-मूत्रका लेप नष्ट होता है। इस प्रकार इस शरीरको स्वभावतः अपवित्र माना गया है। केलेके वृक्षकी भाँति यह सर्वथा सारहीन है; अध्यात्म-ज्ञान ही इसका सार है। देहके दोषको जानकर जिसे इससे वैराग्य हो जाता है, वह विद्वान् संसार-सागरसे पार हो जाता है। इस प्रकार महान् कष्टदायक जन्मकालीन दुःखका वर्णन किया गया।

गर्भमें रहते समय जीवको जो विवेक-बुद्धि प्राप्त होती है, वह उसके अज्ञान-दोषसे या नाना प्रकारके कर्मोंकी प्रेरणासे जन्म लेनेके पश्चात् नष्ट हो जाती है। योनि-यन्त्रसे पीडित होनेपर जब वह दुःखसे मूर्च्छित हो जाता है और बाहर निकलकर बाहरी हवाके सम्पर्कमें आता है, उस समय उसके चित्त-पर महान् मोह छा जाता है। मोहग्रस्त होनेपर उसकी स्मरण-शक्तिका भी शीघ्र ही नाश हो जाता है; स्मृति नष्ट होनेसे पूर्वकर्मोंकी वासनाके कारण उस जन्ममें भी ममता और आसक्ति बढ़ जाती है। फिर संसारमें आसक्त होकर मूढ जीव न आत्माको जान पाता है न परमात्माको, अपितु निषिद्ध कर्ममें प्रवृत्त हो जाता है।* बाल्यकालमें इन्द्रियोंकी वृत्तियाँ पूर्णतया व्यक्त नहीं होतीं; इसलिये बालक महान्-से-महान् दुःखको सहन करता है, किन्तु इच्छा होते हुए भी न तो उसे कह सकता है और न उसका कोई प्रतिकार ही कर पाता है। शैशवकालीन रोगसे उसको भारी कष्ट भोगना पड़ता है। भूख-प्यासकी पीडासे उसके सारे शरीरमें दर्द होता है। बालक मोहवश मल-मूत्रको भी खानेके लिये मुँहमें डाल लेता है। कुमारावस्थामें कान छिंधानेसे कष्ट होता है। समय-समयपर उसे माता-पिताकी मार भी सहनी पड़ती है। अक्षर लिखने-पढ़नेके समय गुरुका शासन दुःखद जान पड़ता है।

जवानीमें भी इन्द्रियोंकी वृत्तियाँ कामना और रागकी प्रेरणासे इधर-उधर विषयोंमें भटकती हैं; फिर मनुष्य रोगोंसे आक्रान्त हो जाता है। अतः युवावस्थामें भी सुख कहाँ है। युवकको ईर्ष्या और मोहके कारण महान् दुःखका सामना करना पड़ता है। कामाग्निसे संतप्त रहनेके कारण उसे रातभर नींद नहीं आती। दिनमें भी अर्थोपार्जनकी चिन्तासे सुख कहाँ मिलता है*। कीड़ोंसे पीडित कोढ़ी

---

* चित्तं शोधय यत्नेन किमन्यैर्बाह्यशोधनैः।
भावतः शुचिः शुद्धात्मा स्वर्गं मोक्षं च विन्दति॥
ज्ञानामलाम्भसा पुंसः सद्वैराग्यमृदा पुनः।
अविद्यारागविण्मूत्रलेपो नश्येद्विशोधनैः॥
एवमेतच्छरीरं हि निसर्गादशुचि विदुः।
अध्यात्मसारनिस्सारं कदलीसारसंनिभम्॥
ज्ञात्वैव देहदोषं यः प्राज्ञः स शिथिलो भवेत्।
सोऽतिक्रामति संसारं...............॥
एवमेतन्महाकष्टं जन्मदुःखं प्रकीर्तितम्।
पुंसामज्ञानदोषेण नानाकर्मवशेन च॥
गर्भस्थस्य मतिर्याऽऽसीत् संजातस्य प्रणश्यति।
सम्मूर्च्छितस्य दुःखेन योनियन्त्रप्रपीडनात्॥
बाह्येन वायुना तस्य मोहसङ्गेन देहिनाम्।
स्पृष्टमात्रेण घोरेण...............॥
...............महामोहः प्रजायते।
सम्मूढस्य स्मृतिभ्रंशः शीघ्रं संजायते पुनः॥
स्मृतिभ्रंशात्तस्य पूर्वकर्मवशानसमुद्भवा।
रतिः संजायते पूर्णा जन्तोस्तत्रैव जन्मनि॥
रक्तो मूढश्च लोकोऽयमकार्ये सम्प्रवर्तते।
न चात्मानं विजानाति न परं न च दैवतम्॥
(६६। ९०-९९)

* अव्यक्तेन्द्रियवृत्तित्वाद्बाल्ये दुःखं महत्पुनः।
इच्छन्नपि न शक्नोति वक्तुं कर्तुं च संस्कृतम्॥
भुङ्क्ते तेन महद्दुःखं बाल्येन व्याधिनाप्यथा।
बाल्यरोगैश्च विविधैः पीडा.........॥
तृड्बुभुक्षापरीताङ्गः क्वचिद्गच्छति तिष्ठति।
विण्मूत्रभक्षणाद्यं च मोहाद्बालः समाचरेत्॥
कौमारः कर्णवेधेन मातापित्रोश्च ताडनम्।
अक्षराध्ययनाद्यैश्च दुःखं स्याद्गुरुशासनम्॥
अन्यत्रेन्द्रियवृत्तिश्च कामरागप्रयोजनात्।
रोगावृत्तस्य सततं कुतः सौख्यं च यौवने॥
ईर्ष्यया सुमहद्दुःखं मोहाद्दुःखं सुजायते।
तत्र स्यात्कुपितस्यैव रागे दुःखाय केवलम्॥
रात्रौ न कुरुते निद्रां कामाग्निपरिखेदितः।
दिवा वापि कुतः सौख्यमर्थोपार्जनचिन्तया॥
(६६। १०४-११०)

मनुष्यको अपनी कोढ़ खुजलानेमें जो सुख प्रतीत होता है, वही स्त्रियोंके साथ सम्भोग करनेमें भी है।* जवानीके बाद जब वृद्धावस्था मनुष्यको दबा लेती है, तब असमर्थ होनेके कारण उसे पत्नी पुत्र आदि बन्धु-बान्धव तथा दुराचारी भृत्य भी अपमानित कर बैठते हैं। बुढ़ापेसे आक्रान्त होनेपर मनुष्य धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—इनमेंसे किसीका भी साधन नहीं कर सकता, इसलिये युवावस्थामें ही धर्मका आचरण कर लेना चाहिये †।

प्रारब्ध कर्मका क्षय होनेपर जो जीवोंका भिन्न भिन्न देहोंसे वियोग होता है, उसीको मरण कहा गया है। वास्तवमें जीव का नाश नहीं होता। मृत्युके समय जब शरीरके मर्मस्थानों का उच्छेद होने लगता है और जीवपर महान् मोह छा जाता है, उस समय उसको जो दुःख होता है, उसकी कहीं भी तुलना नहीं है। वह अत्यन्त दुखी होकर 'हाय बाप! हाय मैया! हा प्रिये!' आदिकी पुकार मचाता हुआ बारबार विलाप करता है। जैसे साँप मेढकको निगल जाता है, उसी प्रकार यह सारा संसारको निगलनेवाली मृत्युका ग्रास बना हुआ है। भाई बन्धुओंसे उसका साथ छूट जाता है, प्रियजन उसे घेरकर बैठे रहते हैं। वह गरम-गरम लम्बी साँसें खींचता है, जिससे उसका मुँह सूख जाता है। रह रहकर उसे मूर्च्छा आ जाती है। बेहोशीकी हालतमें यह जोर जोरसे इधर उधर हाथ पैर पटकने लगता है। अपने काबूमें नहीं रहता। लाज छूट जाती है और वह मल मूत्रमें सना पड़ा रहता है। उसके कण्ठ, ओठ और तालु सूख जाते हैं। वह बार बार पानी माँगता है। कभी धनके विषयमें चिन्ता करने लगता है—'हाय! मेरे मरनेके बाद यह किसके हाथ लगेगा?' यमदूत उसे कालपाशमें बाँधकर घसीट ले जाते हैं। उसके कण्ठ में घरघर आवाज होने लगती है, दूतोंके देखते देखते उसकी मृत्यु होती है। जीव एक देहसे दूसरी देहमें जाता है। सभी जीव सबेरे मल मूत्रकी हाजतका कष्ट भोगते हैं, मध्याह्न कालमें उन्हें भूख प्यास सताती है और रात्रिमें वे काम वासना तथा नादके कारण क्लेश उठाते हैं [इस प्रकार संसारका सारा जीवन ही कष्टमय है]।

पहले तो धनको पैदा करनेमें कष्ट होता है, फिर पैदा किये हुए धनकी रखवालीमें क्लेश उठाना पड़ता है, इसके बाद यदि कहीं वह नष्ट हो जाय तो दुःख और खर्च हो जाय तो भी दुःख होता है। भला, धनमें सुख है ही कहाँ। जैसे देहधारी प्राणियोंको सदा मृत्युसे भय होता है, उसी प्रकार धनवानोंको चोर, पानी, आग, कुटुम्बियों तथा राजासे भी हमेशा डर बना रहता है। जैसे मांसको आकाशमें पक्षी, पृथ्वीपर हिंसक जीव और जलमें मत्स्य आदि जन्तु भक्षण करते हैं, उसी प्रकार सर्वत्र धनवान् पुरुषको लोग नोंचते खसोटते रहते हैं। सम्पत्तिमें धन सबको मोहित करता—उन्मत्त बना देता है, विपत्तिमें सन्ताप पहुँचाता है और उपार्जनके समय दुःखका अनुभव कराता है, फिर धनको कैसे सुखदायक कहा जाय।* हेमन्त और शिशिरमें जाड़ेका कष्ट रहता है। गर्मीमें दुःसह तापसे सतप्त होना पड़ता है और वर्षाकालमें अतिवृष्टि तथा अल्पवृष्टिसे दुःख होता है, इस प्रकार विचार करनेपर कालमें भी सुख कहाँ है। यही दशा कुटुम्बकी भी है। पहले तो विवाहमें विस्तारपूर्वक व्यय होनेपर दुःख होता है, फिर पत्नी जब गर्भ धारण करती है, तब उसे उसका भार ढोनेमें कष्टका अनुभव होता है। प्रसवकालमें अत्यन्त पीड़ा भोगनी पड़ती है तथा फिर सन्तान होनेपर उसके मल मूत्र उठाने आदिमें क्लेश होता है। इसके सिवा हाय! मेरी स्त्री भाग गयी, मेरी पत्नीकी सन्तान अभी बहुत छोटी है, वह बेचारी क्या कर सकेगी? कन्याके विवाहका समय आ रहा है, उसके लिये कैसा वर मिलेगा?—इत्यादि चिन्ताओंके भारसे दबे हुए कुटुम्बीजनोंको कैसे सुख मिल सकता है।

राज्यमें भी सुख कहाँ है। सदा सन्धि विग्रहकी चिन्ता

---

* कृमिभिः पीड्यमानस्य कुष्ठिनः पामरस्य च।
कण्डूयनाभितापेन यत्सुखं स्त्रीषु तद्विदुः॥
(६६।११२)

† धर्ममर्थं च कामं च मोक्षं न जरया पुनः।
शक्तः साधयितुं तस्माद् युवा धर्मं समाचरेत्॥
(६६।११७)

* अर्थस्योपार्जने दुःखं दुःखमर्जितरक्षणे।
नाशे दुःखं व्यये दुःखमर्थस्यैव कुतः सुखम्॥
चौरेभ्यः सलिलेभ्योऽग्नेः स्वजनात् पार्थिवादपि।
भयमर्थवतां नित्यं मृत्योर्देहभृतामिव॥
खे यथा पक्षिभिर्मांसं भुज्यते श्वापदैर्भुवि।
जले च भक्ष्यते मत्स्यैस्तथा सर्वत्र वित्तवान्॥
विमोहयन्ति सम्पत्सु तापयन्ति विपत्सु च।
खेदयन्त्यर्जने दुःखं कथमर्थाः सुखावहाः॥
(६६।१४८–१५१)

लगी रहती है। जहाँ पुत्रसे भी भय प्राप्त होता है, वहाँ सुख कैसा। एक द्रव्यकी अभिलाषा रखनेके कारण आपसमें लड़नेवाले कुत्तोंकी तरह प्रायः सभी देहधारियोंको अपने सजातीयोंसे भय बना रहता है। कोई भी राजा राज्य छोड़कर वनमें प्रवेश किये बिना इस भूतलपर विख्यात न हो सका। जो सारे सुखोंका परित्याग कर देता है, वही निर्भय होता है। राजन्! पहननेके लिये दो वस्त्र हों और भोजनके लिये सेर भर अन्न—इतनेमें ही सुख है। मान-सम्मान, छत्र-चँवर और राज्यसिंहासन तो केवल दुःख देनेवाले हैं। समस्त भूमण्डलका राजा ही क्यों न हो, एक खाटके नापकी भूमि ही उसके उपभोगमें आती है। जलसे भरे हजारों घड़ोंद्वारा अभिषेक कराना क्लेश और श्रमको ही बढ़ाना है। [स्नान तो एक घड़ेसे भी हो सकता है।] प्रातःकाल पुरवासियोंके साथ शहनाईका मधुर शब्द सुनना अपने राजत्वका अभिमानमात्र है। केवल यह कहकर सन्तोष लाभ करना है कि मेरे महलमें सदा शहनाई बजती है। समस्त आभूषण भारमात्र हैं, सब प्रकारके अङ्गराग मैलके समान हैं, सारे गीत प्रलापमात्र हैं और नृत्य पागलोंकी-सी चेष्टा है। इस प्रकार विचार करके देखा जाय, तो राजोचित भोगोंसे भी क्या सुख मिलता है। राजाओंका यदि किसीके साथ युद्ध छिड़ जाय तो एक दूसरेको जीतनेकी इच्छासे वे सदा चिन्तामग्न रहते हैं। नहुष आदि बड़े-बड़े सम्राट् भी राज्य-लक्ष्मीके मदसे उन्मत्त होनेके कारण स्वर्गमें जाकर भी वहाँसे भ्रष्ट हो गये। भला, लक्ष्मीसे किसको सुख मिलता है। *

स्वर्गमें भी सुख कहाँ है। देवताओंमें भी एक देवताकी सम्पत्ति दूसरेकी अपेक्षा बढ़ी-चढ़ी तो होती ही है, वे अपनेसे ऊपरकी श्रेणीवालोंके बढ़े हुए वैभवको देख-देखकर जलते हैं। मनुष्य तो स्वर्गमें जाकर अपना मूल गँवाते हुए ही पुण्यफलका भी उपभोग करते हैं। जैसे जड़ कट जानेपर वृक्ष विवश होकर धरतीपर गिर जाता है, उसी प्रकार पुण्य क्षीण होनेपर मनुष्य भी स्वर्गसे नीचे आ जाते हैं। इस प्रकार विचारसे देवताओंके स्वर्गलोकमें भी सुख नहीं जान पड़ता। स्वर्गसे लौटनेपर देहधारियोंको मन, वाणी और शरीरसे किये हुए नाना प्रकारके भयंकर पाप भोगने पड़ते हैं। उस समय नरककी आगमें उन्हें बड़े भारी कष्ट और दुःखका सामना करना पड़ता है। जो जीव स्थावर-योनिमें पड़े हुए हैं, उन्हें भी सब प्रकारके दुःख प्राप्त होते हैं। कभी उन्हें कुल्हाड़ीके तीव्र प्रहारसे काटा जाता है, तो कभी उनकी छाल काटी जाती है और कभी उनकी डालियों, पत्तों और फलोंको भी गिराया जाता है; कभी प्रचण्ड आँधीसे वे अपने-आप उखड़कर गिर जाते हैं तो कभी हाथी या दूसरे जन्तु उन्हें समूल नष्ट कर डालते हैं; कभी वे दावानलकी आँचमें झुलसते हैं तो कभी पाला पड़नेसे कष्ट भोगते हैं। पशु-योनिमें पड़े हुए जीवोंकी कसाइयोंद्वारा हत्या होती है; उन्हें डंडोंसे पीटा जाता है, नाक छेदकर त्रास दिया जाता है, चाबुकोंसे मारा जाता है, बेत या काठ आदिकी बेड़ियोंसे अथवा अंकुशके द्वारा उनके शरीरको बन्धनमें डाला जाता है तथा बलपूर्वक मनमाने स्थानमें ले जाया जाता और बाँधा जाता है तथा उन्हें अपने टोलोंसे अलग किया जाता है। इस प्रकार पशुओंके शरीरको भी अनेक प्रकारके दुःख भोगने पड़ते हैं।

देवताओंसे लेकर सम्पूर्ण चराचर जगत् पूर्वोक्त दुःखोंसे ग्रस्त है; इसलिये विद्वान् पुरुषको सबका त्याग कर देना चाहिये। जैसे मनुष्य इस कंधेका भार उस कंधेपर लेकर अपनेको विश्राम मिला समझता है, उसी प्रकार संसारके सब लोग दुःखसे ही दुःखको शान्त करनेकी चेष्टा कर रहे हैं। अतः सबको दुःखसे व्याकुल जानकर विचारवान् पुरुषको परम निर्वेद धारण करना चाहिये, निर्वेदसे परम वैराग्य होता है और उससे ज्ञान। ज्ञानसे परमात्माको जानकर मनुष्य कल्याणमयी मुक्तिको प्राप्त होता है। फिर वह समस्त दुःखोंसे मुक्त होकर सदा सुखी, सर्वज्ञ और कृतार्थ हो जाता है। ऐसे ही पुरुषको मुक्त कहते हैं। राजन्! तुम्हारे प्रश्नके अनुसार मैंने सब बातें तुम्हें बता दीं।

---

* एवं वस्त्रयुगं राजन् प्रस्थमात्रं तु भोजनम्। मानं छत्रासनं चैव सुखदुःखाय केवलम्॥
सार्वभौमोऽपि भवति खट्वामात्रपरिग्रहः। उदकुम्भसहस्रेभ्यः क्लेशायासप्रविस्तरः॥
प्रत्यूषे तूर्यनिर्घोषः समं पुरनिवासिभिः। राज्येऽभिमानमात्रं हि ममेदं वाद्यते गृहे॥
सर्वमाभरणं भारः सर्वमालेपनं मलम्। सर्वं संलपितं गीतं नृत्तमुन्मत्तचेष्टितम्॥
इत्येवं राज्यसम्भोगैः कुतः सौख्यं विचारतः। नृपाणां विग्रहे चिन्ता ह्यन्योन्यविजिगीषया॥
प्रायेण श्रीमदालेपान्नहुषाद्या महानृपाः। स्वर्गं प्राप्ता निपतिताः क्व श्रिया विन्दते सुखम्॥
(६६ । १७५–१८०)

पापों और पुण्योंके फलोंका वर्णन



ययाति बोले—मातले ! मर्त्यलोकके मानव बड़े भयानक पाप करते हैं; उन्हें उन कर्मोंका क्या फल मिलता है ? इस समय यही बात बताओ।

मातलिने कहा—राजन् ! जो लोग वेदोंकी निन्दा और वेदोक्त सदाचारकी गर्हणा करते हैं तथा जो अपने कुलके आचारका त्याग करके दूसरोंका आचार ग्रहण करते हैं, जो सब साधुओंको पीड़ा देते हैं, वे सब पातकी हैं। तत्त्ववेत्ता पुरुषोंने इन दुष्कर्मोंको पातक नाम दिया है। जो माता पिताकी निन्दा करते, बहिनको सदा मारते और उसकी गर्हणा करते हैं, उनका यह कार्य निश्चय ही पातक है। जो श्राद्धकाल आनेपर भी काम, क्रोध अथवा भयसे, पाँच कोसके भीतर रहनेवाले दामाद, भाजे तथा बहिनको नहीं बुलाता और सदा दूसरोंको ही भोजन कराता है, उसके श्राद्धमें पितर अन्न ग्रहण नहीं करते, उसमें विघ्न पड़ जाता है। दामाद आदिकी उपेक्षा श्राद्धकर्ता पुरुषके लिये पितृहत्याके समान है, उसे बहुत बड़ा पातक माना गया है। इसी प्रकार यदि दान देते समय बहुत से ब्राह्मण आ जायँ तथा उनमेंसे एकको तो दान दिया जाय और दूसरोंको न दिया जाय तो यह दानके फलको नष्ट करनेवाला बहुत बड़ा पातक माना गया है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रको उचित है कि वह प्रत्येक पुण्यपर्वके अवसरपर निर्धन ब्राह्मणकी पूजा करें तथा जहाँतक हो सके, उसे धनकी प्राप्ति करायें। श्राद्धके समय निमन्त्रित ब्राह्मणके अतिरिक्त यदि दूसरा कोई ब्राह्मण आ जाय तो उन दोनोंकी ही भोजन, वस्त्र, ताम्बूल और दक्षिणाके द्वारा पूजा करनी चाहिये; इससे श्राद्धकर्ताके पितरोंको बड़ा हर्ष होता है। यदि श्राद्धकर्ता धनहीन हो तो वह एककी ही पूजा कर सकता है। जो श्राद्धमें ब्राह्मणको भोजन कराकर आदरपूर्वक दक्षिणा नहीं देता, उसे गोहत्या आदिके समान पाप लगता है। महाराज ! व्यतीपात और वैधृति योग आनेपर अथवा अमावास्या तिथिको या पिताकी क्षयाह तिथि प्राप्त होनेपर अपराह्णकालमें ब्राह्मण आदि वर्णोंको अवश्य श्राद्ध करना चाहिये।

विज्ञ पुरुषको उचित है कि वह अपरिचित ब्राह्मणको श्राद्धमें निमन्त्रित न करे। अपरिचितोंमें भी यदि कोई वेद-वेदाङ्गोंका पारगामी विद्वान् हो तो उस ब्राह्मणको श्राद्धमें निमन्त्रित करना और दान देना उचित है। राजन् ! निमन्त्रित ब्राह्मणका अपूर्व आतिथ्य-सत्कार करना चाहिये। जो पापी इसके विपरीत आचरण करता है, उसे निश्चय ही नरकमें जाना पड़ता है। इसलिये दान, श्राद्ध तथा पर्वके अवसरपर ब्राह्मणको निमन्त्रित करना आवश्यक है। पहले ब्राह्मणकी भलीभाँति जाँच और परख कर लेनी चाहिये, उसके बाद उसे श्राद्ध और दानमें सम्मिलित करना उचित है। जो बिना ब्राह्मणके श्राद्ध करता है, उसके घरमें पितर भोजन नहीं करते, शाप देकर लौट जाते हैं। ब्राह्मणहीन श्राद्ध करनेसे मनुष्य महापापी होता है तथा ब्राह्मणघाती कहलाता है। राजन् ! जो पितृकुलके आचारका परित्याग करके स्वेच्छानुसार बर्ताव करता है, उसे महापापी समझना चाहिये; वह सब धर्मोंसे बहिष्कृत है। जो पापी मनुष्य शिवकी परिचर्या छोड़कर शिवभक्तोंसे द्वेष रखते हैं तथा जो ब्राह्मणोंसे द्रोह करते हुए सदा भगवान् श्रीविष्णुकी निन्दा करते हैं, वे महापापी हैं; सदाचारकी निन्दा करनेवाले पुरुषोंकी गणना भी इसी श्रेणीमें है।

सर्वप्रथम उत्तम ज्ञानस्वरूप पुण्यमय भागवत पुराणकी पूजा करनी चाहिये। तत्पश्चात् विष्णुपुराण, हरिवंश, मत्स्यपुराण और कूर्मपुराणका पूजन करना उचित है। जो पद्मपुराणकी पूजा करते हैं, उनके द्वारा भगवान् श्रीमधुसूदनकी प्रत्यक्ष पूजा हो जाती है। जो श्रीभगवान्‌के ज्ञानस्वरूप पुराणकी पूजा किये बिना ही उसे पढ़ते और लिखते हैं, लोभमें आकर बेच देते हैं, अपवित्र स्थानमें मनमाने ढगसे रख देते हैं तथा स्वयं अशुद्ध रहकर अशुद्ध स्थानमें पुराणकी कथा कहते और सुनते हैं, उनका यह सब कार्य गुरुनिन्दाके समान माना गया है। जो गुरुकी पूजा किये बिना ही उनसे शास्त्र श्रवण करना चाहता है, गुरुकी सेवा नहीं करता, उनकी आज्ञा भङ्ग करनेका विचार रखता है, उनकी बातका अभिनन्दन नहीं करता, अपितु प्रतिवाद कर देता है, गुरुके कार्यको, करने योग्य होनेपर भी, उपेक्षा करता है तथा जो गुरुको रोगादिसे पीड़ित, असमर्थ, विदेशको ओर प्रस्थित और शत्रुओंद्वारा अपमानित देखकर भी उनका साथ छोड़ देता है, वह पापी तबतक कुम्भीपाक नरकमें निवास करता है, जबतक कि चौदह इन्द्रोंकी आयु पूरी नहीं हो जाती। जो स्त्री, पुत्र और मित्रोंकी अवहेलना करता है, उसके

इस कार्यको भी गुरुनिन्दाके समान महान् पातक समझना चाहिये। ब्राह्मणकी हत्या करनेवाला, सुवर्ण चुरानेवाला, शराबी, गुरुकी शय्यापर सोनेवाला तथा इनका सहयोगी—ये पाँच प्रकारके मनुष्य महापातकी माने गये हैं। जो क्रोध, द्वेष, भय अथवा लोभसे विशेषतः ब्राह्मणके मर्म आदिका उच्छेद करता है, दरिद्र भिक्षुक ब्राह्मणको द्वारपर बुलाकर पीछे कोरा जवाब दे देता है, जो विद्याके अभिमानमें आकर सभामें उदासीन भावसे बैठे हुए ब्राह्मणोंको भी निस्तेज कर देता है तथा जो मिथ्या गुणोंद्वारा अपनेको जबर्दस्ती ऊँचा सिद्ध करता है और गुरुको ही उपदेश करने लगता है—इन सबको ब्राह्मणघाती माना गया है।

जिनका शरीर भूख और प्याससे पीड़ित है, जो अन्न खाना चाहते हैं, उनके कार्यमें विघ्न खड़ा करनेवाला मनुष्य भी ब्राह्मणघाती ही है। जो चुगलखोर, सब लोगोंके दोष ढूँढनेमें तत्पर, सबको उद्वेगमें डालनेवाला और क्रूर है तथा जो देवताओं, ब्राह्मणों और गौओंके निमित्त पहलेकी दी हुई भूमिको हर लेता है, उसे ब्रह्मघाती कहते हैं। दूसरोंके द्वारा उपार्जित द्रव्यका और ब्राह्मणके धनका अपहरण भी ब्रह्महत्याके समान ही भारी पातक है। जो अग्निहोत्र तथा पञ्चयज्ञादि कर्मोंका परित्याग करके माता, पिता और गुरुका अनादर करता है, झूठी गवाही देता है, शिव-भक्तोंकी बुराई और अभक्ष्य वस्तुका भक्षण करता है, वनमें जाकर निरपराध प्राणियोंको मारता है तथा गोशाला, देव-मन्दिर, गाँव और नगरमें आग लगाता है, उसके ये भयङ्कर पाप पूर्वोक्त पापोंके ही समान हैं।

दीनोंका सर्वस्व छीन लेना, परायी स्त्री, दूसरेके हाथी, घोड़े, गौ, पृथ्वी, चाँदी, रत्न, अनाज, रस, चन्दन, अरगजा, कपूर, कस्तूरी, मालपूआ और वस्त्रको चुरा लेना तथा परायी धरोहरको हड़प लेना—ये सब पाप सुवर्णकी चोरीके समान माने गये हैं। विवाह करने-योग्य कन्याका योग्य वरके साथ विवाह न करना, पुत्र एवं मित्रकी भार्याओं और अपनी बहिनोंके साथ समागम करना, कुमारी कन्याके साथ बलात्कार करना, अन्त्यज जातिकी स्त्रीका सेवन तथा सवर्णा स्त्रीके साथ सम्भोग—ये पाप गुरु-पत्नी-गमनके समान बताये गये हैं। जो ब्राह्मणको धन देनेकी प्रतिज्ञा करके न तो उसे देता है और न फिर उसको याद ही रखता है, उसका यह कार्य उपपातकोंकी श्रेणीमें रखा गया है। ब्राह्मणके धनका अपहरण, मर्यादाका उल्लङ्घन, अत्यन्त मान, अधिक क्रोध, दम्भ, कृतघ्नता, अत्यन्त विषया-सक्ति, कृपणता, शठता, मात्सर्य, परस्त्री-गमन और साध्वी कन्याको कलङ्कित करना; परिवित्ति[1], परिवेत्ता तथा उस-की पत्नी—इनसे सम्पर्क रखना, इन्हें कन्या देना अथवा इनका यज्ञ कराना; धनके अभावमें पुत्र, मित्र और पत्नीका परित्याग करना; विना किसी कारणके ही स्त्रीको छोड़ देना, साधु और तपस्वियोंकी उपेक्षा करना; गौ, क्षत्रिय, वैश्य, स्त्री तथा शूद्रोंके प्राण लेना; शिवमन्दिर, वृक्ष और फुलवाड़ीको नष्ट करना; आश्रमवासियोंको थोड़ा-सा भी कष्ट पहुँचाना, भृत्यवर्गको दुःख देना; अन्न, वस्त्र और पशुओंकी चोरी करना; जिनसे माँगना उचित नहीं है, ऐसे लोगोंसे याचना करना; यज्ञ, बगीचा, पोखरा, स्त्री और सन्तानका विक्रय करना; तीर्थयात्रा, उपवास, व्रत और शुभ कर्मोंका फल बेचना, स्त्रियोंके धनसे जीविका चलाना, स्त्रीद्वारा उपार्जित अन्नसे जीवन-निर्वाह करना तथा किसीके छिपे हुए अधर्मको लोगोंके सामने खोलकर रख देना—इन सब पापोंमें जो लोग रचे-पचे रहते हैं, जो दूसरोंके दोष बताते, पराये छिद्रपर दृष्टि रखते, औरोंका धन हड़पना चाहते और परस्त्रियोंपर कुदृष्टि रखते हैं—इन सभी पापियोंको गोघातकके तुल्य समझना चाहिये।

जो मनुष्य झूठ बोलता, स्वामी, मित्र और गुरुसे द्रोह रखता, माया रचता और शठता करता है; जो स्त्री, पुत्र, मित्र, बालक, वृद्ध, दुर्बल मनुष्य, भृत्य, अतिथि और बन्धु-बान्धवों-को भूखे छोड़, अकेले भोजन कर लेता है; जो अपने तो खूब मिठाई उड़ाते और दूसरोंको अन्न भी नहीं देते, उन सबको पृथक्पाकी समझना चाहिये। वेदज्ञ पुरुषोंमें उनकी बड़ी निन्दा की गयी है। जो स्वयं ही नियम लेकर फिर उन्हें छोड़ देते हैं, जिन्होंने दूसरोंके साथ धोखा किया है, जो मदिरा पीनेवालोंसे संसर्ग रखते और घाव एवं रोगसे पीड़ित तथा भूख-प्याससे व्याकुल गौका यत्नपूर्वक पालन नहीं करते, वे गो-हत्यारे माने गये हैं; उन्हें नरककी यातना भोगनी पड़ती है। जो सब प्रकारके पापोंमें डूबे रहते; साधु, ब्राह्मण, गुरु और गौको मारते तथा सन्मार्गमें स्थित निर्दोष स्त्रीको पीटते हैं; जिनका सारा शरीर आलस्यसे व्याप्त रहता है, अतएव जो बारम्बार सोया करते हैं,

१. बड़े भाईके अविवाहित रहते यदि छोटे भाईका विवाह हो जाय तो बड़ा भाई 'परिवित्ति' और छोटा भाई 'परिवेत्ता' कहलाता है।

जो दुर्बल पशुओंको काममें लगाते, बलपूर्वक हाँकते, अधिक भार लादकर कष्ट देते और घायल होनेपर भी उन्हें जोतते रहते हैं; जो दुरात्मा मनुष्य बैलोंको बधिया करते हैं तथा गायके बछड़ोंको नाथते हैं, वे सभी महापापी हैं। उनके ये कार्य महापातकोंके तुल्य हैं।

जो भूख-प्यास और परिश्रमसे पीड़ित एवं आशा लगाकर घरपर आये हुए अतिथिका अनादर करते हैं, वे नरकगामी होते हैं। जो मूर्ख, अनाथ, विकल, दीन, बालक, वृद्ध और क्षुधातुर व्यक्तिपर दया नहीं करते, उन्हें नरकके समुद्रमें गिरना पड़ता है। जो नीतिशास्त्रकी आज्ञाका उल्लङ्घन करके प्रजासे मनमाना कर वसूल करते हैं और अकारण ही दण्ड देते हैं, उन्हें नरकमें पकाया जाता है। जिस राजाके राज्यमें प्रजा सूदखोरों, अधिकारियों और चोरोंद्वारा पीडित होती है, उसे नरकोंमें पकना पड़ता है। जो ब्राह्मण अन्यायी राजासे दान लेते हैं, उन्हें भी घोर नरकोंमें जाना पड़ता है। पापाचारी पुरवासियोंका पाप राजाका ही समझा जाता है। अतः राजाको उस पापसे डरकर प्रजाको शासनमें रखना चाहिये। जो राजा भलीभाँति विचार न करके, जो चोर नहीं है उसे भी चोरके समान दण्ड देता और चोरको भी साधु समझकर छोड़ देता है, वह नरकमें जाता है।

जो मनुष्य दूसरोंके घी, तेल, मधु, गुड़, ईख, दूध, साग, दही, मूल, फल, घास, लकड़ी, फूल, पत्ती, काँसा, चाँदी, जूता, छाता, बैलगाड़ी, पालकी, मुलायम आसन, ताँबा, सीसा, राँगा, शङ्ख, वंशी आदि बाजा, घरकी सामग्री, ऊन, कपास, रेशम, रङ्ग, पत्र आदि तथा महीन वस्त्र चुराते हैं या इसी तरहके दूसरे-दूसरे द्रव्योंका अपहरण करते हैं, वे सदा नरकमें पड़ते हैं। दूसरेकी वस्तु थोड़ी हो या बहुत—जो उसपर ममता करके उसे चुराता है, वह निस्सन्देह नरकमें गिरता है। इस तरहके पाप करनेवाले मनुष्य मृत्युके पश्चात्
यमराजकी आज्ञासे यम लो[illegible] । यमराजके महा-
भयंकर दूत उन्हें ले जाते हैं [illegible] दुःख
उठाना पड़ता है। देवता, [illegible]
जो भी अधर्ममें मन लगाते [illegible] ने
गये हैं। वे भाँति [illegible] ।
कराते हैं। किन् [illegible]
मलिन आचार [illegible]
माने गये हैं; [illegible]
सकते हैं। ऐसे [illegible]
परस्त्री लम्पट, चोर तथा अन्यायपूर्ण बर्ताव करनेवाले पुरुषोंपर राजाका शासन होता है—राजा ही उनके दण्ड-विधाता माने गये हैं; परन्तु जो पाप छिपकर किये जाते हैं, उनके लिये धर्मराज ही दण्डका निर्णय करते हैं। इसलिये अपने किये हुए पापोंके लिये प्रायश्चित्त करना चाहिये। अन्यथा वे करोड़ों कल्पोंमें भी [फल भोग कराये बिना] नष्ट नहीं होते। मनुष्य मन, वाणी तथा शरीरसे जो कर्म करता है, उसका फल उसे स्वयं भोगना पड़ता है; कर्मोंके अनुसार उसकी सद्गति या अधोगति होती है। राजन्! इस प्रकार संक्षेपसे मैंने तुम्हें पापोंके भेद बताये हैं; बोलो, अब और क्या सुनाऊँ?

ययातिने कहा—*मातले! अधर्मके सारे फलोंका वर्णन तो मैंने सुन लिया; अब धर्मका फल बताओ।*

मातलिने कहा—राजन्! जो श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको जूता और खड़ाऊँ दान करता है, वह बहुत बड़े विमानपर बैठकर सुखसे परलोककी यात्रा करता है। वस्त्र दान करनेवाले मनुष्य दिव्य वस्त्र धारण करके परलोकमें जाते हैं। पालकी दान करनेसे भी जीव विमानद्वारा सुखपूर्वक यात्रा करता है। सुखासन (गद्दे, कुर्सी आदि) के दानसे भी वह सुखपूर्वक जाता है। बगीचा लगानेवाला पुरुष शीतल छायामें सुखसे परलोककी यात्रा करता है। फूल-माला दान करनेवाले पुरुष पुष्पक विमानसे जाते हैं। जो देवताओंके लिये मन्दिर, संन्यासियोंके लिये आश्रम तथा अनाथों और रोगियोंके लिये घर बनवाते हैं, वे परलोकमें उत्तम महलोंके भीतर रहकर विहार करते हैं। जो देवता, अग्नि, गुरु, ब्राह्मण, माता और पिताकी पूजा करता है तथा गुणवानों और दीनोंको रहनेके लिये घर देता है, वह सब कामनाओंको पूर्ण करनेवाले ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है। राजन्! जिसने श्रद्धाके साथ ब्राह्मणको एक कौड़ीका भी दान किया है, वह *स्वर्गलोकमें देवताओंका* अतिथि होता है तथा उसकी कीर्ति बढ़ती है। अतः श्रद्धापूर्वक दान देना चाहिये। उसका फल अवश्य होता है।

अहिंसा, क्षमा, सत्य, लज्जा, श्रद्धा, इन्द्रिय-संयम, दान, यज्ञ, ध्यान [और ज्ञान]—ये धर्मके दस साधन हैं। अन्न देनेवालेको प्राणदाता कहा गया है और जो प्राणदाता है, वही सब कुछ देनेवाला है। अतः अन्न-दान करनेसे सब
फल मिल जाता है। अन्नसे पुष्ट होकर ही मनुष्य
[illegible] करता है; अतः पुण्यका आधा अंश अन्न-दाता-
[illegible] भाग पुण्यकर्ताको प्राप्त होता है—इसमें

तनिक भी सन्देह नहीं है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका सबसे बड़ा साधन है शरीर; और शरीर स्थिर रहता है अन्न तथा जलसे; अतः अन्न और जल ही सब पुरुषार्थोंके साधन हैं। अन्न-दानके समान दान न हुआ है न होगा। जल तीनों लोकोंका जीवन माना गया है। वह परम पवित्र, दिव्य, शुद्ध तथा सब रसोंका आश्रय है।

अन्न, पानी, घोड़ा, गौ, वस्त्र, शय्या, सूत और आसन—इन आठ वस्तुओंका दान प्रेत-लोकके लिये बहुत उत्तम है। इस प्रकार दानविशेषसे मनुष्य धर्मराजके नगरमें सुखपूर्वक जाता है; इसलिये धर्मका अनुष्ठान अवश्य करना चाहिये। राजन्! जो लोग क्रूर कर्म करते और दान नहीं देते हैं, उन्हें नरकमें दुःसह दुःख भोगना पड़ता है। दान करके मनुष्य अनुपम सुख भोगते हैं।

जो एक दिन भी भक्तिपूर्वक भगवान् शिवकी पूजा करता है, वह भी शिवलोकको प्राप्त होता है; फिर जो अनेकों बार उनकी अर्चना कर चुका है, उसके लिये तो कहना ही क्या है। श्रीविष्णुकी भक्तिमें तत्पर और श्रीविष्णुके ध्यानमें संलग्न रहनेवाले वैष्णव वैकुण्ठधाममें चक्रधारी भगवान् श्रीविष्णुके समीप जाते हैं। श्रीविष्णुका उत्तम लोक श्रीशङ्करजीके निवासस्थानसे ऊपर समझना चाहिये। वहाँ श्रीविष्णुके ध्यानमें तत्पर रहनेवाले वैष्णव मनुष्य ही जाते हैं। मनुष्योंमें श्रेष्ठ, सदाचारी, यज्ञ करानेवाले, सुनीतियुक्त और विद्वान् ब्राह्मण ब्रह्मलोकको जाते हैं। युद्धमें उत्साहपूर्वक जानेवाले क्षत्रियोंको इन्द्रलोककी प्राप्ति होती है तथा अन्यान्य पुण्यकर्ता भी पुण्यलोकोंमें गमन करते हैं।

मातलिके द्वारा भगवान् शिव और श्रीविष्णुकी महिमाका वर्णन, मातलिको विदा करके राजा ययातिका वैष्णवधर्मके प्रचारद्वारा भूलोकको वैकुण्ठ-तुल्य बनाना तथा ययातिके दरबारमें काम आदिका नाटक खेलना

ययाति बोले—मातले! तुमने धर्म और अधर्म—सबका उत्तम प्रकारसे वर्णन किया। अब देवताओंके लोकोंकी स्थितिका वर्णन करो। उनकी संख्या बताओ। जिस पुण्यके प्रसङ्गसे जिसने जो लोक प्राप्त किया हो, उसका भी वर्णन करो।

मातलिने कहा—राजन्! देवताओंके लोक भावमय हैं। भावोंके अनेक रूप दिखायी देते हैं; अतः भावात्मक जगत्‌की संख्या करोड़ोंतक पहुँच जाती है। परन्तु पुण्यात्माओंके लिये उनमेंसे अट्ठाईस लोक ही प्राप्य हैं, जो एक दूसरेके ऊपर स्थित और अत्यन्त विशाल हैं। जो लोग भगवान् शङ्करको नमस्कार करते हैं, उन्हें शिवलोकका विमान प्राप्त होता है। जो प्रसङ्गवश भी शिवका स्मरण या नाम-कीर्त्तन अथवा उन्हें नमस्कार कर लेता है, उसे अनुपम सुखकी प्राप्ति होती है। फिर जो निरन्तर उनके भजनमें ही लगे रहते हैं, उनके विषयमें तो कहना ही क्या है। जो ध्यानके द्वारा भगवान् श्रीविष्णुका चिन्तन करते हैं और सदा उन्हींमें मन लगाये रहते हैं, वे उन्हींके परम पदको प्राप्त होते हैं। नरश्रेष्ठ! श्रीशिव और भगवान् श्रीविष्णुके लोक एक-से ही हैं, उन दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है; क्योंकि उन दोनों महात्माओं—श्रीशिव तथा श्रीविष्णुका स्वरूप भी एक ही है। श्रीविष्णुरूपधारी शिव और श्रीशिवरूपधारी विष्णुको नमस्कार है। श्रीशिवके हृदयमें विष्णु और श्रीविष्णुके हृदयमें भगवान् शिव विराजमान हैं। ब्रह्मा, विष्णु और शिव—ये तीनों देवता एकरूप ही हैं। इन तीनोंके स्वरूपमें कोई अन्तर नहीं है, केवल गुणोंका भेद बतलाया गया है।* राजेन्द्र! आप श्रीशिवके भक्त तथा भगवान् विष्णुके अनुरागी हैं; अतः आपपर ब्रह्मा, विष्णु और शिव—तीनों देवता प्रसन्न हैं। मानद! मैं इन्द्रकी आज्ञासे इस समय आपके पास आया हूँ। अतः पहले इन्द्रलोकमें चलिये; उसके बाद क्रमशः ब्रह्मलोक, शिवलोक तथा विष्णु-लोकको जाइयेगा। वे लोक दाह और प्रलयसे रहित हैं।

पिप्पलने पूछा—ब्रह्मन्! मातलिकी बात सुनकर

* शैवं च वैष्णवं लोकमेकरूपं नरोत्तम। द्वयोश्चाप्यन्तरं नास्ति एकरूपं महात्मनोः॥
शिवाय विष्णुरूपाय विष्णवे शिवरूपिणे। शिवस्य हृदये विष्णुर्विष्णोश्च हृदये शिवः॥
एकमूर्तिस्त्रयो देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः। त्रयाणामन्तरं नास्ति गुणभेदः प्रकीर्त्तितः॥ (७१। १८—२०)

जो दुर्बल पशुओंको काममें लगाते, बलपूर्वक हाँकते, अधिक भार लादकर कष्ट देते और घायल होनेपर भी उन्हें जोतते रहते हैं, जो दुरात्मा मनुष्य बैलोंको बधिया करते हैं तथा गायके बछड़ोंको नाथते हैं, वे सभी महापापी हैं। उनके ये कार्य महापातकोंके तुल्य हैं।

जो भूख प्यास और परिश्रमसे पीडित एवं आशा लगा कर घरपर आये हुए अतिथिका अनादर करते हैं, वे नरक गामी होते हैं। जो मूर्ख, अनाथ, विकल, दीन, बालक, वृद्ध और क्षुधातुर व्यक्तिपर दया नहीं करते, उन्हें नरकके समुद्रमें गिरना पड़ता है। जो नीतिशास्त्रकी आज्ञाका उल्लङ्घन करके प्रजासे मनमाना कर वसूल करते हैं और अकारण ही दण्ड देते हैं, उन्हें नरकमें पकाया जाता है। जिस राजाके राज्यमें प्रजा सूदखोरों, अधिकारियों और चोरोंद्वारा पीडित होती है, उसे नरकोंमें पकना पड़ता है। जो ब्राह्मण अन्यायी राजासे दान लेते हैं, उन्हें भी घोर नरकोंमें जाना पड़ता है। पापाचारी पुरवासियोंका पाप राजाका ही समझा जाता है। अतः राजाको उस पापसे डरकर प्रजाको शासनमें रखना चाहिये। जो राजा भलीभाँति विचार न करके, जो चोर नहीं है उसे भी चोरके समान दण्ड देता और चोरको भी साधु समझकर छोड़ देता है, वह नरकमें जाता है।

जो मनुष्य दूसरोंके घी, तेल, मधु, गुड़, ईख, दूध, साग, दही, मूल, फल, घास, लकड़ी, फूल, पत्ती, काँसा, चाँदी, जूता, छाता, बैलगाड़ी, पालकी, मुलायम आसन, ताँबा, सीसा, राँगा, शङ्ख, वंशी आदि बाजा, घरकी सामग्री, ऊन, कपास, रेशम, रङ्ग, पत्र आदि तथा महीन वस्त्र चुराते हैं या इसी तरहके दूसरे-दूसरे द्रव्योंका अपहरण करते हैं, वे सदा नरकमें पड़ते हैं। दूसरेकी वस्तु थोड़ी हो या बहुत—जो उस पर ममता करके उसे चुराता है, वह निस्सन्देह नरकमें गिरता है। इस तरहके पाप करनेवाले मनुष्य मृत्युके पश्चात् यमराजकी आज्ञासे यम-लोकमें जाते हैं। यमराजके महा भयंकर दूत उन्हें ले जाते हैं। उस समय उनको बहुत दुःख उठाना पड़ता है। देवता, मनुष्य तथा पशु पक्षी—इनमेंसे जो भी अधर्ममें मन लगाते हैं, उनके शासक धर्मराज माने गये हैं। वे भाँति भाँतिके भयानक दण्ड देकर पापोंका भोग कराते हैं। विनय और सदाचारसे युक्त मनुष्य यदि भूलसे मलिन आचारमें लिप्त हो जायँ तो उनके लिये गुरु ही शासक माने गये हैं, वे कोई प्रायश्चित्त कराकर उनके पाप धो सकते हैं। ऐसे लोगोंको यमराजके पास नहीं जाना पड़ता। परस्त्री लम्पट, चोर तथा अन्यायपूर्ण बर्ताव करनेवाले पुरुषों पर राजाका शासन होता है—राजा ही उनके दण्ड विधाता माने गये हैं, परन्तु जो पाप छिपकर किये जाते हैं, उनके लिये धर्मराज ही दण्डका निर्णय करते हैं। इसलिये अपने किये हुए पापोंके लिये प्रायश्चित्त करना चाहिये। अन्यथा वे करोड़ों कल्पोंमें भी [फल भोग कराये बिना] नष्ट नहीं होते। मनुष्य मन, वाणी तथा शरीरसे जो कर्म करता है, उसका फल उसे स्वयं भोगना पड़ता है, कर्मोंके अनुसार उसकी सद्गति या अधोगति होती है। राजन्! इस प्रकार संक्षेपसे मैंने तुम्हें पापोंके भेद बताये हैं, बोलो, अब और क्या सुनाऊँ?

ययातिने कहा—मातले! अधर्मके सारे फलोंका वर्णन तो मैंने सुन लिया, अब धर्मका फल बताओ।

मातलिने कहा—राजन्! जो श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको जूता और खड़ाऊँ दान करता है, वह बहुत बड़े विमानपर बैठकर सुखसे परलोककी यात्रा करता है। वस्त्र दान करनेवाले मनुष्य दिव्य वस्त्र धारण करके परलोकमें जाते हैं। पालकी दान करनेसे भी जीव विमानद्वारा सुखपूर्वक यात्रा करता है। सुखासन (गद्दे, कुर्सी आदि)के दानसे भी वह सुखपूर्वक जाता है। बगीचा लगानेवाला पुरुष शीतल छायामें सुखसे परलोककी यात्रा करता है। फूल माला दान करनेवाले पुरुष पुष्पक विमानसे जाते हैं। जो देवताओंके लिये मन्दिर, संन्यासियोंके लिये आश्रम तथा अनाथों और रोगियोंके लिये घर बनवाते हैं, वे परलोकमें उत्तम महलोंके भीतर रहकर विहार करते हैं। जो देवता, अग्नि, गुरु, ब्राह्मण, माता और पिताकी पूजा करता है तथा गुणवानों और दीनोंको रहनेके लिये घर देता है, वह सब कामनाओंको पूर्ण करनेवाले ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है। राजन्! जिसने श्रद्धाके साथ ब्राह्मणको एक कौड़ीका भी दान किया है, वह स्वर्गलोकमें देवताओंका अतिथि होता है तथा उसकी कीर्ति बढ़ती है। अतः श्रद्धा पूर्वक दान देना चाहिये। उसका फल अवश्य होता है।

अहिंसा, क्षमा, सत्य, लज्जा, श्रद्धा, इन्द्रिय-संयम, दान, यज्ञ, ध्यान [और ज्ञान]—ये धर्मके दस साधन हैं। अन्न देनेवालेको प्राणदाता कहा गया है और जो प्राणदाता है, वही सब कुछ देनेवाला है। अतः अन्न-दान करनेसे सब दानोंका फल मिल जाता है। अन्नसे पुष्ट होकर ही मनुष्य पुण्यका सञ्चय करता है; अतः पुण्यका आधा अंश अन्न-दाता -को और आधा भाग पुण्यकर्ताको प्राप्त होता है—इसमें

तनिक भी सन्देह नहीं है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका सबसे बड़ा साधन है शरीर; और शरीर स्थिर रहता है अन्न तथा जलसे; अतः अन्न और जल ही सब पुरुषार्थोंके साधन हैं। अन्न-दानके समान दान न हुआ है न होगा। जल तीनों लोकोंका जीवन माना गया है। वह परम पवित्र, दिव्य, शुद्ध तथा सब रसोंका आश्रय है।

अन्न, पानी, घोड़ा, गौ, वस्त्र, शय्या, सूत और आसन—इन आठ वस्तुओंका दान प्रेत-लोकके लिये बहुत उत्तम है। इस प्रकार दानविशेषसे मनुष्य धर्मराजके नगरमें सुखपूर्वक जाता है; इसलिये धर्मका अनुष्ठान अवश्य करना चाहिये। राजन्! जो लोग क्रूर कर्म करते और दान नहीं देते हैं, उन्हें नरकमें दुःसह दुःख भोगना पड़ता है। दान करके मनुष्य अनुपम सुख भोगते हैं।

जो एक दिन भी भक्तिपूर्वक भगवान् शिवकी पूजा करता है, वह भी शिवलोकको प्राप्त होता है; फिर जो अनेकों बार उनकी अर्चना कर चुका है, उसके लिये तो कहना ही क्या है। श्रीविष्णुकी भक्तिमें तत्पर और श्रीविष्णुके ध्यानमें संलग्न रहनेवाले वैष्णव वैकुण्ठधाममें चक्रधारी भगवान् श्रीविष्णुके समीप जाते हैं। श्रीविष्णुका उत्तम लोक श्रीशङ्करजीके निवासस्थानसे ऊपर समझना चाहिये। वहाँ श्रीविष्णुके ध्यानमें तत्पर रहनेवाले वैष्णव मनुष्य ही जाते हैं। मनुष्योंमें श्रेष्ठ, सदाचारी, यज्ञ करानेवाले, मुनीतिमुक्त और विद्वान् ब्राह्मण ब्रह्मलोकको जाते हैं। युद्धमें उत्साहपूर्वक जानेवाले क्षत्रियोंको इन्द्रलोककी प्राप्ति होती है तथा अन्यान्य पुण्यकर्ता भी पुण्यलोकोंमें गमन करते हैं।

मातलिके द्वारा भगवान् शिव और श्रीविष्णुकी महिमाका वर्णन, मातलिको विदा करके राजा ययातिका वैष्णवधर्मके प्रचारद्वारा भूलोकको वैकुण्ठ-तुल्य बनाना तथा ययातिके दरबारमें काम आदिका नाटक खेलना

ययाति बोले—मातले! तुमने धर्म और अधर्म—सबका उत्तम प्रकारसे वर्णन किया। अब देवताओंके लोकोंकी स्थितिका वर्णन करो। उनकी संख्या बताओ। जिस पुण्यके प्रसङ्गसे जिसने जो लोक प्राप्त किया हो, उसका भी वर्णन करो।

मातलिने कहा—राजन्! देवताओंके लोक भावमय हैं। भावोंके अनेक रूप दिखायी देते हैं; अतः भावात्मक जगत्की संख्या करोड़ोंतक पहुँच जाती है। परन्तु पुण्यात्माओंके लिये उनमेंसे अट्ठाईस लोक ही प्राप्य हैं, जो एक दूसरेके ऊपर स्थित और अत्यन्त विशाल हैं। जो लोग भगवान् शङ्करको नमस्कार करते हैं, उन्हें शिवलोकका विमान प्राप्त होता है। जो प्रसङ्गवश भी शिवका स्मरण या नाम-कीर्त्तन अथवा उन्हें नमस्कार कर लेता है, उसे अनुपम सुखकी प्राप्ति होती है। फिर जो निरन्तर उनके भजनमें ही लगे रहते हैं, उनके विषयमें तो कहना ही क्या है। जो ध्यानके द्वारा भगवान् श्रीविष्णुका चिन्तन करते हैं और सदा उन्हींमें मन लगाये रहते हैं, वे उन्हींके परम पदको प्राप्त होते हैं। नरश्रेष्ठ! श्रीशिव और भगवान् श्रीविष्णुके लोक एक-से ही हैं, उन दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है; क्योंकि उन दोनों महात्माओं—श्रीशिव तथा श्रीविष्णुका स्वरूप भी एक ही है। श्रीविष्णुरूपधारी शिव और श्रीशिवरूपधारी विष्णुको नमस्कार है। श्रीशिवके हृदयमें विष्णु और श्रीविष्णुके हृदयमें भगवान् शिव विराजमान हैं। ब्रह्मा, विष्णु और शिव—ये तीनों देवता एकरूप ही हैं। इन तीनोंके स्वरूपमें कोई अन्तर नहीं है, केवल गुणोंका भेद बतलाया गया है।* राजेन्द्र! आप श्रीशिवके भक्त तथा भगवान् विष्णुके अनुरागी हैं; अतः आपपर ब्रह्मा, विष्णु और शिव—तीनों देवता प्रसन्न हैं। मानद! मैं इन्द्रकी आज्ञासे इस समय आपके पास आया हूँ। अतः पहले इन्द्रलोकमें चलिये; उसके बाद क्रमशः ब्रह्मलोक, शिवलोक तथा विष्णु-लोकको जाइयेगा। वे लोक दाह और प्रलयसे रहित हैं।

पिप्पलने पूछा—ब्रह्मन्! मातलिकी बात सुनकर

* शैवं च वैष्णवं लोकमेकरूपं नरोत्तम। द्वयोश्चाप्यन्तरं नास्ति एकरूपं महात्मनोः॥
शिवाय विष्णुरूपाय विष्णवे शिवरूपिणे। शिवस्य हृदये विष्णुर्विष्णोश्च हृदये शिवः॥
एकमूर्तिस्त्रयो देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः। त्रयाणामन्तरं नास्ति गुणभेदाः प्रकीर्तिताः॥ (७१। १८—२०)

नहुषपुत्र राजा ययातिने क्या किया? इसका विस्तारके साथ वर्णन कीजिये।

सुकर्मा बोले—विप्रवर! सुनिये, उस समय सम्पूर्ण धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ नृपवर ययातिने मातलिसे इस प्रकार कहा—'देवदूत! तुमने स्वर्गका सारा गुण-अवगुण मुझे पहले ही बता दिया है। अतः अब मैं शरीर छोड़कर स्वर्गलोकमें नहीं जाऊँगा। देवाधिदेव इन्द्रसे तुम यही जाकर कह देना। भगवान् हृषीकेशके नामोंका उच्चारण ही सर्वोत्तम धर्म है। मैं प्रतिदिन इसी रसायनका सेवन करता हूँ। इससे मेरे रोग, दोष और पापादि नष्ट हो गये हैं। संसारमें श्रीकृष्णका नाम सबसे बड़ी औषध है। इसके रहते हुए भी मनुष्य पाप और व्याधियोंसे पीड़ित होकर मृत्युको प्राप्त हो रहे हैं—यह कितने आश्चर्यकी बात है। लोग कितने बड़े मूर्ख हैं कि श्रीकृष्ण-नामका रसायन नहीं पीते।* भगवान्की पूजा, ध्यान, नियम, सत्य-भाषण तथा दानसे शरीरकी शुद्धि होती है। इससे रोग और दोष नष्ट हो जाते हैं। तदनन्तर भगवान्के प्रसादसे मनुष्य शुद्ध हो जाता है। इसलिये मैं अब स्वर्गलोकको नहीं चलूँगा। अपने तपसे, भावसे और धर्माचरणके द्वारा भगवत्-कृपासे इस पृथ्वीको ही स्वर्ग बनाऊँगा। यह जानकर तुम यहाँसे जाओ और सारी बातें इन्द्रसे कह सुनाओ।'

राजा ययातिकी यह बात सुनकर मातलि चले गये। उन्होंने इन्द्रसे सब बातें निवेदन कीं। उन्हें सुनकर इन्द्र पुनः राजाको स्वर्गमें लानेके विषयमें विचार करने लगे।

पिप्पलने पूछा—*ब्रह्मन्! इन्द्रके दूत महाभाग मातलिके चले जानेपर धर्मात्मा ययातिने कौन-सा कार्य किया?*

सुकर्मा बोले—विप्रवर! देवराजके दूत मातलि जब चले गये, तब राजा ययातिने मन-ही-मन कुछ विचार किया और तुरत ही प्रधान प्रधान दूतोंको बुलाकर उन्हें धर्म और अर्थसे युक्त उत्तम आदेश दिया—'दूतो! तुमलोग मेरी आज्ञा मानकर अपने और दूसरे देशोंमें जाओ, तुम्हारे मुखसे वहाँके सब लोग मेरी धर्मयुक्त बात सुनें और सुनकर उसका पालन करें। जगत्के मनुष्य परम पवित्र और अमृतके समान सुखदायी भगवत्-सम्बन्धी भावोंद्वारा उत्तम मार्गका आश्रय लें। सदा तत्पर होकर शुभ कर्मोंका अनुष्ठान, भगवत्तत्त्वका ज्ञान, भगवान्का ध्यान और तपस्या करें। सब लोग विषयोंका परित्याग करके यज्ञ और दानके द्वारा एकमात्र मधुसूदनका पूजन करें। सर्वत्र सूखे और गीलेमें, आकाश और पृथ्वीपर तथा चराचर प्राणियोंमें केवल श्रीहरिका दर्शन करें। जो मानव लोभ या मोहवश लोकमें मेरी इस आज्ञाका पालन नहीं करेगा, उसे निश्चय ही कठोर दण्ड दिया जायगा। मेरी दृष्टिमें वह चोरकी भाँति निकृष्ट समझा जायगा।'

राजाके ये वचन सुनकर दूतोंका हृदय प्रसन्न हो गया। वे समूची पृथ्वीपर घूम घूमकर समस्त प्रजाको महाराजका आदेश सुनाने लगे—'ब्राह्मणादि चारों वर्णोंके मनुष्यो! राजा ययातिने संसारमें परम पवित्र अमृत ला दिया है। आप सब लोग उसका पान करें। उस अमृतका नाम है—पुण्यमय वैष्णव धर्म। वह सब दोषोंसे रहित और उत्तम परिणामका जनक है। भगवान् केशव सबका क्लेश हरनेवाले, सर्वश्रेष्ठ, आनन्दस्वरूप और परमार्थ-तत्त्व हैं। उनका नाममय अमृत सब दोषोंको दूर करनेवाला है। महाराज ययातिने उस अमृतको यहीं सुलभ कर दिया है। संसारके लोग इच्छानुसार उसका पान करें। भगवान् विष्णुकी नाभिसे कमल प्रकट हुआ है। उनके नेत्र कमलके समान सुन्दर हैं। वे जगत्के आधारभूत और महेश्वर हैं। पापोंका नाश करके आनन्द प्रदान करते हैं। दानवों और दैत्योंका संहार करनेवाले हैं। यज्ञ उनके अङ्गस्वरूप हैं, उनके हाथमें सुदर्शन चक्र शोभा पाता है। वे पुण्यकी निधि और सुखरूप हैं। उनके स्वरूपका कहीं अन्त नहीं है। सम्पूर्ण विश्व उनके हृदयमें निवास करता है। वे निर्मल, सबको आराम देनेवाले, 'राम' *नामसे विख्यात, सबमें रमण करनेवाले, मुर दैत्यके शत्रु, आदित्यस्वरूप, अन्धकारके नाशक, मलरूप कमलोंके लिये* चाँदनीरूप, लक्ष्मीके निवासस्थान, सगुण और देवेश्वर हैं। उनका नामामृत सब दोषोंको दूर करनेवाला है। राजा ययातिने उसे यहीं सुलभ कर दिया है, सब लोग उसका पान करें। यह नामामृत-स्तोत्र दोषहारी और उत्तम पुण्यका जनक है। लक्ष्मीपति भगवान् विष्णुमें भक्ति रखनेवाला

---

* विद्यमाने हि संसारे कृष्णनाम्नि महौषधे।
मानवा मरणं यान्ति पापव्याधिप्रपीडिताः॥
न पिबन्ति महामूढाः कृष्णनामरसायनम्॥
(७२।१८)

जो महात्मा पुरुष प्रतिदिन प्रातःकाल नियमपूर्वक इसका पाठ करता है, वह मुक्त हो जाता है।*

सुकर्मा कहते हैं—राजा ययातिके दूत सम्पूर्ण देशों, द्वीपों, नगरों और गाँवोंमें कहते फिरते थे—'लोगो! महाराजकी आज्ञा सुनो, तुमलोग पूरा जोर लगाकर सर्वतोभावेन भगवान् विष्णुकी पूजा करो। दान, यज्ञ, शुभकर्म, धर्म और पूजन आदिके द्वारा भगवान् मधुसूदनकी आराधना करते हुए मनकी सम्पूर्ण वृत्तियोंसे उन्हींका ध्यान—चिन्तन करो।' इस प्रकार राजाके उत्तम आदेशका, जो शुभ पुण्य उत्पन्न करनेवाला था, भूतलनिवासी सब लोगोंने श्रवण किया। उसी समयसे सम्पूर्ण मनुष्य एकमात्र भगवान् मुरारिका ध्यान, गुणगान, जप और तप करने लगे। वेदोक्त सूक्तों और मन्त्रोंद्वारा, जो कानोंको पवित्र करनेवाले तथा अमृतके समान मधुर थे, श्रीकेशवका यजन करने लगे। उनका चित्त सदा भगवान्में ही लगा रहता था। वे समस्त विषयों और दोषोंका परित्याग करके व्रत, उपवास, नियम और दानके द्वारा भक्तिपूर्वक जगन्निवास श्रीविष्णुका पूजन करते थे। राजाका भगवदाराधन-सम्बन्धी आदेश भूमण्डलपर प्रवर्तित हो गया। सब लोग वैष्णव प्रभावके कारण भगवान्का यजन करने लगे। यज्ञ-विधिको जाननेवाले विद्वान् नाम और कर्मोंके द्वारा श्रीविष्णुका यजन करते और उन्हींके ध्यानमें संलग्न रहते थे। उनका सारा उद्योग भगवान्के लिये ही होता था। वे विष्णु-पूजामें निरन्तर लगे रहते थे। जहाँतक यह सारा भूमण्डल है और जहाँतक प्रचण्ड किरणोंवाले भगवान् सूर्य तपते हैं, वहाँतकके समस्त मनुष्य भगवद्भक्त हो गये। श्रीविष्णुके प्रभावसे, उनका पूजन, स्तवन और नाम-कीर्तन करनेसे सबके शोक दूर हो गये। सभी पुण्यात्मा और तपस्वी बन गये। किसीको रोग नहीं सताता था। सब-के-सब दोष और रोषसे शून्य तथा समस्त ऐश्वर्योंसे सम्पन्न हो गये थे।

महाभाग! उन लोगोंके घरोंके दरवाजोंपर सदा ही पुण्यमय कल्पवृक्ष और समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाली गौएँ रहती थीं। उनके घरमें चिन्तामणि नामकी मणि थी, जो परम पवित्र और सम्पूर्ण मनोरथोंको पूर्ण करनेवाली मानी गयी है। भगवान् विष्णुकी कृपासे पृथ्वीके समस्त मानव सब प्रकारके दोषोंसे रहित हो गये थे। पुत्र तथा पौत्र उनकी शोभा बढ़ाते थे। वे मङ्गलसे युक्त, परम पुण्यात्मा, दानी, ज्ञानी और ध्यानपरायण थे। धर्मके ज्ञाता महाराज ययातिके शासनकालमें दुर्भिक्ष और व्याधियोंका भय नहीं था। मनुष्योंकी अकाल-मृत्यु नहीं होती थी। सब लोग विष्णु-सम्बन्धी व्रतोंका पालन करनेवाले और वैष्णव थे। भगवान्का ही ध्यान और उन्हींके नामोंका जप उनकी दिनचर्याका अङ्ग बन गया था। वे सब लोग भाव-भक्तिके साथ भगवान्की आराधनामें तत्पर रहते थे। द्विजश्रेष्ठ! उस समय सब लोगोंके घरोंमें तुलसीके वृक्ष और भगवान्के मन्दिर शोभा पाते थे। सबके घर साफ-सुथरे और चमकीले थे तथा उत्तम गुणोंके कारण दिव्य दिखायी देते थे। सर्वत्र वैष्णव भाव छा रहा था। नाना प्रकारके माङ्गलिक उत्सवोंका दर्शन होता था। विप्रवर! भूलोकमें सदा शङ्खोंकी ध्वनियाँ सुनायी पड़ती थीं, जो आपसमें टकराया करती थीं। वे ध्वनियाँ समस्त दोषों और पापोंका विनाश करनेवाली थीं। भगवान् विष्णुमें भक्ति रखनेवाली स्त्रियोंने अपने-अपने घरके दरवाजेपर शङ्ख, स्वस्तिक और पद्मकी आकृतियाँ लिख रखी थीं। सब लोग केशवका गुणगान करते थे। कोई 'हरि' और 'मुरारि' का उच्चारण करता तो कोई 'श्रीश', 'अच्युत' तथा माधवका नाम लेता था। कितने ही श्रीनरसिंह, कमलनयन, गोविन्द, कमलापति, कृष्ण और राम-नामकी रट लगाते हुए भगवान्की शरणमें जाते, मन्त्रोंके द्वारा उनका जप करते तथा पूजन भी

---

*श्रीकेशवं क्लेशहरं वरेण्यमानन्दरूपं परमार्थमेव।
नामामृतं दोषहरं तु राज्ञा आनीतमत्रैव पिबन्तु लोकाः॥
श्रीपद्मनाभं कमलेक्षणं च आधाररूपं जगतां महेशम्।
नामामृतं दोषहरं तु राज्ञा आनीतमत्रैव पिबन्तु लोकाः॥
पापापहं व्याधिविनाशरूपमानन्ददं दानवदैत्यनाशनम्।
नामामृतं दोषहरं तु राज्ञा आनीतमत्रैव पिबन्तु लोकाः॥
यज्ञाङ्गरूपं च रथाङ्गपाणिं पुण्याकरं सौख्यमनन्तरूपम्।
नामामृतं दोषहरं तु राज्ञा आनीतमत्रैव पिबन्तु लोकाः॥
विश्वाधिवासं विमलं विरामं रामाभिधानं रमणं मुरारिम्।
नामामृतं दोषहरं तु राज्ञा आनीतमत्रैव पिबन्तु लोकाः॥
आदित्यरूपं तमसां विनाशं चन्द्रप्रकाशं मलपङ्कजानाम्।
नामामृतं दोषहरं तु राज्ञा आनीतमत्रैव पिबन्तु लोकाः॥
सखड्गपाणिं मधुसूदनाख्यं तं श्रीनिवासं सगुणं सुरेशम्।
नामामृतं दोषहरं तु राज्ञा आनीतमत्रैव पिबन्तु लोकाः॥
नामामृतं दोषहरं सुपुण्यमधीत्य यो माधवविष्णुभक्तः।
प्रभातकाले नियतो महात्मा स याति मुक्तिं न हि कारणं च॥

(७३। १०—१७)

करते थे। सब के सब वैष्णव थे; अतः वे श्रीविष्णुके ध्यानमें मग्न रहकर उन्हींको दण्डवत् प्रणाम किया करते थे।

कृष्ण, विष्णु, हरि, राम, मुकुन्द, मधुसूदन, नारायण, हृषीकेश, नरसिंह, अच्युत, केशव, पद्मनाभ, वासुदेव, वामन, वाराह, कमठ, मत्स्य, कपिल, सुराधिप, विश्वेश, विश्वरूप, अनन्त, अनघ, शुचि, पुरुष, पुष्कराक्ष, श्रीधर, श्रीपति, हरि, श्रीद, श्रीश, श्रीनिवास, सुमोक्ष, मोक्षद और प्रभु—इन नामोंका उच्चारण करते हुए पृथ्वीके समस्त मानव—बाल, वृद्ध और कुमार भी भगवान्‌का भजन करते थे। घरके काम धंधोंमें लगी हुई स्त्रियाँ सदा भगवान् श्रीहरिको प्रणाम करतीं और बैठते, सोते, चलते, ध्यान लगाते तथा ज्ञान प्राप्त करते समय भी वे लक्ष्मीपतिका स्मरण करती रहती थीं। खेल-कूदमें लगे हुए बालक गोविन्दको मस्तक झुकाते और दिन रात मधुर हरिनामका कीर्तन करते रहते थे। द्विजश्रेष्ठ! सर्वत्र भगवान् विष्णुके नामकी ही ध्वनि सुनायी पड़ती थी। भूतलके समस्त मानव वैष्णवोचित भावसे रहा करते थे। महलों और देवमन्दिरोंके कलशोंपर सूर्यमण्डलके समान चक्र शोभा पाते थे। पृथ्वीपर सर्वत्र श्रीकृष्णका भाव दृष्टिगोचर होता था। यह भूतल विष्णुलोककी समानताको पहुँच गया था। वैकुण्ठमें वैष्णव लोग जैसे विष्णुका उच्चारण करते हैं, उसी प्रकार इस पृथ्वीपर मनुष्य कृष्ण नामका कीर्तन करते थे। भूतल और वैकुण्ठ दोनों लोकोंका एक ही भाव दिखायी देता था। वृद्धावस्था और रोगका भय नहीं था; क्योंकि मनुष्य अजर अमर हो गये थे। भूलोकमें दान और भोगका अधिक प्रभाव दृष्टिगोचर होता था। प्रायः सब मनुष्य—द्विजमात्र वेदोंके विद्वान् और ज्ञान ध्यानपरायण थे। सब यज्ञ और दानमें लगे रहते थे। सबमें दयाका भाव था। सभी परोपकारी शुभ विचारसम्पन्न और धर्मनिष्ठ थे। महाराज ययातिके उपदेशसे भूमण्डलके समस्त मानव वैष्णव हो गये थे।

भगवान् श्रीविष्णु कहते हैं—नृपश्रेष्ठ वेन! नहुषपुत्र महाराज ययातिका चरित्र सुनो; वे सर्वधर्मपरायण और निरन्तर भगवान् विष्णुमें भक्ति रखनेवाले थे। उन्हें इस पृथ्वीपर रहते एक लाख वर्ष व्यतीत हो गये। परन्तु उनका शरीर नित्य नूतन दिखायी देता था, मानो वे पचीस वर्षके तरुण हों। भगवान् विष्णुके प्रसादसे राजा ययाति बड़े ही प्रशस्त और प्रौढ़ हो गये थे। भूमण्डलके मनुष्य कामनाओंके बन्धनसे रहित होनेके कारण यमराजके पास नहीं जाते थे। वे दान पुण्यसे सुखी थे और सब धर्मोंके अनुष्ठानमें संलग्न रहते थे। जैसे दूर्वा और वटवृक्ष पृथ्वीपर विस्तारको प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार वे मनुष्य पुत्र-पौत्रोंके द्वारा वृद्धिको प्राप्त हो रहे थे। मृत्युरूपी दोषसे हीन होनेके कारण वे दीर्घजीवी होते थे। उनका शरीर अधिक कालतक दृढ़ रहता था। वे सुखी थे और बुढ़ापेका रोग उन्हें छू भी नहीं गया था। पृथ्वीके सभी मनुष्य पचीस वर्षकी अवस्थाके दिखायी देते थे। सबका आचार-विचार सत्यसे युक्त था। सभी भगवान्‌के ध्यानमें तन्मय रहते थे। समूची पृथ्वीपर जगत्‌में किसीकी मृत्यु नहीं सुनी जाती थी। किसीको शोक नहीं देखना पड़ता था। कोई भी दोषसे लिप्त नहीं होते थे।

एक समय इन्द्रने कामदेव और गन्धर्वोंको बुलाया तथा उनसे इस प्रकार कहा—'तुम सब लोग मिलकर ऐसा कोई उपाय करो, जिससे राजा ययाति यहाँ आ जायँ।' इन्द्रके यों कहनेपर कामदेव आदि सब लोग नटके वेषमें राजा ययातिके पास आये और उन्हें आशीर्वादसे प्रसन्न करके बोले—'महाराज! हमलोग एक उत्तम नाटक खेलना चाहते हैं।' राजा ययाति ज्ञान विज्ञानमें कुशल थे। उन्होंने नटोंकी बात सुनकर सभा एकत्रित की और स्वयं भी उसमें उपस्थित हुए। नटोंने विप्ररूपधारी भगवान् वामनके अवतारकी लीला उपस्थित की। राजा उनका नाटक देखने लगे। उस नाटकमें साक्षात् कामदेवने सूत्रधारका काम किया। वसन्त पारिपार्श्वक बना। अपने वल्लभको प्रसन्न करनेवाली रति नटीके वेषमें उपस्थित हुई। नाटकमें सब लोग पात्रके अनुरूप वेष धारण किये अभिनय करने लगे। मकरन्द (वसन्त) ने महाप्राज्ञ राजा ययातिके चित्तको क्षोभमें डाल दिया।



ययातिके शरीरमें जरावस्थाका प्रवेश, कामकन्यासे भेंट, पूरुका यौवन-दान, ययातिका कामकन्याके साथ प्रजावर्गसहित वैकुण्ठधाम-गमन

सुकर्मा कहते हैं—पिप्पल! महाराज ययाति कामदेवके गीत, नृत्य और ललित हास्यसे मोहित होकर स्वयं भी नट-स्वरूप हो गये। वे मल मूत्रका त्याग करके आये और पैरोंको धोये बिना ही आसनपर बैठ गये। वह छिद्र

पाकर वृद्धावस्था तथा कामदेवने राजाके शरीरमें प्रवेश किया। नृपश्रेष्ठ! उन सबने मिलकर इन्द्रका कार्य पूरा कर दिया। नाटक समाप्त हो गया। सब लोग अपने-अपने स्थानको चले गये। तत्पश्चात् धर्मात्मा राजा ययाति जरावस्थासे पराजित हुए। उनका चित्त काम-भोगमें आसक्त हो गया।

एक दिन वे कामयुक्त होकर वनमें शिकार खेलनेके लिये गये। उस समय उनके सामने एक हिरन निकला, जिसके चार सींग थे। उसके रूपकी कहीं तुलना नहीं थी। उसके सभी अङ्ग सुन्दर थे। रोमावलियाँ सुनहरे रंगकी थीं, मस्तकपर रत्न-सा जड़ा हुआ प्रतीत होता था। सारा शरीर चितकबरे रंगका था। वह मनोहर मृग देखने ही योग्य था। राजा धनुष-बाण लेकर बड़े वेगसे उसके पीछे दौड़े। मृग भी उन्हें बहुत दूर ले गया और उनके देखते-देखते वहीं अन्तर्धान हो गया। राजाको वहाँ नन्दनवनके समान एक अद्भुत वन दिखायी दिया, जो सभी गुणोंसे युक्त था। उसके भीतर राजाने एक बहुत सुन्दर तालाब देखा, जो दस योजन लंबा और पाँच योजन चौड़ा था। सब ओर कल्याणमय जलसे भरा वह सर्वतोभद्रनामक तालाब दिव्य भावोंसे शोभा पा रहा था। राजा रथके वेगपूर्वक चलनेसे खिन्न हो गये थे। परिश्रमके कारण उन्हें कुछ पीड़ा हो रही थी; अतः सरोवरके तटपर ठंडी छायाका आश्रय लेकर बैठ गये।

थोड़ी देर बाद स्नान करके उन्होंने कमलकी सुगन्धसे सुवासित सरोवरका शीतल जल पिया। इतनेमें ही उन्हें अत्यन्त मधुर स्वरमें गाया जानेवाला एक दिव्य संगीत सुनायी पड़ा, जो ताल और मूर्च्छनासे युक्त था। राजा तुरंत उठकर उस स्थानकी ओर चल दिये, जहाँ गीतकी मनोहर ध्वनि हो रही थी। जलके निकट एक विशाल एवं सुन्दर भवन था। उसीके ऊपर बैठकर रूप, शील और गुणसे सुशोभित एक सुन्दरी नारी मनोहर गीत गा रही थी। उसकी आँखें बड़ी-बड़ी थीं। रूप और तेज उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। चराचर जगत्में उसके-जैसी सुन्दरी स्त्री दूसरी कोई नहीं थी। महाराज ययातिके शरीरमें जरायुक्त कामका सञ्चार पहले ही हो चुका था। उस स्त्रीको देखते ही वह काम विशाल रूपमें प्रकट हुआ। राजा कामाग्निसे जलने और कामज्वरसे पीड़ित होने लगे। उन्होंने उस सुन्दरीसे पूछा—'शुभे! तुम कौन हो? किसकी कन्या हो? तुम्हारे पास यह कौन बैठी है? कल्याणी! मुझे सब बातोंका परिचय दो। मैं नहुषका पुत्र हूँ। मेरा जन्म चन्द्रवंशमें हुआ है। पृथ्वीके सातों द्वीपोंपर मेरा अधिकार है। मैं तीनों लोकोंमें विख्यात हूँ। मेरा नाम ययाति है। सुन्दरी! मुझे दुर्जय काम मारे डालता है। मैं उत्तम शीलसे युक्त हूँ। मेरी रक्षा करो। तुम्हारे समागमके लिये मैं अपना राज्य, समूची पृथ्वी और यह शरीर भी अर्पण कर दूँगा। यह त्रिलोकी तुम्हारी ही है।'

राजाकी बात सुनकर सुन्दरीने अपनी सखी विशालाको उत्तर देनेके लिये प्रेरित किया। तब विशालाने कहा—'नरश्रेष्ठ! यह रतिकी पुत्री है। इसका नाम अश्रुबिन्दुमती है। मैं इसके प्रेम और सौहार्दवश सदा इसके साथ रहती हूँ। हम दोनोंमें स्वाभाविक मित्रता है, जिससे मैं सर्वदा प्रसन्न रहती हूँ। मेरा नाम विशाला है। मैं वरुणकी पुत्री हूँ। महाराज! मेरी यह सुन्दरी सखी योग्य वरकी प्राप्तिके लिये तपस्या कर रही है। इस प्रकार मैंने आपसे अपनी इस सखीका तथा अपना भी पूरा-पूरा परिचय दे दिया।

ययाति बोले—शुभे! मेरी बात सुनो—यह सुन्दर मुखवाली रतिकुमारी मुझे ही पतिरूपमें स्वीकार करे। यह बाला जिस-जिस वस्तुकी इच्छा करेगी, वह सब मैं इसे प्रदान करूँगा।

विशालाने कहा—राजन्! मैं इसका नियम बतलाती हूँ, पहले उसे सुन लीजिये। यह स्थिर यौवनसे युक्त, सर्वज्ञ, वीरके लक्षणोंसे सुशोभित, देवराजके समान तेजस्वी, धर्मका आचरण करनेवाले, त्रिलोकपूजित, सुबुद्धि, सुप्रिय तथा उत्तम गुणोंसे युक्त पुरुषको अपना पति बनाना चाहती है।

ययाति बोले—मुझे इन सभी गुणोंसे युक्त समझो। मैं इसके योग्य पति हो सकता हूँ।

विशालाने कहा—राजन्! मैं जानती हूँ, आप अपने पुण्यके लिये तीनों लोकोंमें विख्यात हैं। मैंने पहले जिन-जिन गुणोंकी चर्चा की है, वे सभी आपके भीतर विद्यमान हैं; केवल एक ही दोषके कारण यह मेरी सखी आपको पसंद नहीं करती। आपके शरीरमें वृद्धावस्थाका प्रवेश हो गया है। यदि आप उससे मुक्त हो सकें, तो यह आपकी प्रियतमा हो सकती है। राजन्! यही इसका निश्चय है। मैंने सुना है, पुत्र, भ्राता और भृत्य—जिसके शरीरमें

भी इस जरावस्थाको डाला जाय, उसीमें इसका संचार हो जाता है। अतः भूपाल! आप अपना बुढ़ापा तो पुत्रको दे दीजिये और स्वयं उसका यौवन लेकर परम सुन्दर बन जाइये। मेरी सखी जिस रूपमें आपका उपभोग करना चाहती है, उसीके अनुकूल व्यवस्था कीजिये।

ययाति बोले—महाभागे! एवमस्तु, मैं तुम्हारी आज्ञाका पालन करूँगा।

राजा ययाति काम भोगमें आसक्त होकर अपनी विवेक-शक्ति खो बैठे थे। वे घर जाकर अपने पुत्रोंसे बोले—'तुम-लोगोंमेंसे कोई एक मेरी दुःखदायिनी जरावस्थाको ग्रहण कर ले और अपनी जवानी मुझे दे दे, जिससे मैं इच्छानुसार भोग भोग सकूँ। जो मेरी वृद्धावस्थाको ग्रहण करेगा, वह पुत्रोंमें श्रेष्ठ समझा जायगा और वही मेरे राज्यका स्वामी होगा। उसको सुख, सम्पत्ति, धन धान्य, बहुत-सी सन्तानें तथा यश और कीर्ति प्राप्त होगी।'

तुरुने कहा—पिताजी! इसमें सन्देह नहीं कि पिता-माताकी कृपासे ही पुत्रको शरीरकी प्राप्ति होती है; अतः उसका कर्तव्य है कि वह विशेष चेष्टाके साथ माता पिताकी सेवा करे। परन्तु महाराज! यौवन-दान करनेका यह मेरा समय नहीं है।

तुरुकी बात सुनकर धर्मात्मा राजाको बड़ा क्रोध हुआ। वे उसे शाप देते हुए बोले—'तूने मेरी आज्ञाका अनादर किया है, अतः तू सब धर्मोंसे बहिष्कृत और पापी हो जा। तेरा हृदय पवित्र ज्ञानसे शून्य हो जाय और तू कोढ़ी हो जा।' तुरुको इस प्रकार शाप देकर वे अपने दूसरे पुत्र यदुसे बोले—'बेटा! तू मेरी जरावस्थाको ग्रहण कर और मेरा अकण्टक राज्य भोग।' यह सुनकर यदुने हाथ जोड़कर कहा—'पिताजी! कृपा कीजिये। मैं बुढ़ापेका भार नहीं ढो सकता। शीतका कष्ट सहना, अधिक राह चलना, कदन्न भोजन करना, जिनकी जवानी बीत गयी हो ऐसी स्त्रियोंसे सम्पर्क रखना और मनकी प्रतिकूलताका सामना करना—ये वृद्धावस्थाके पाँच हेतु हैं।' यदुके यों कहनेपर महाराज ययातिने कुपित होकर उन्हें भी शाप दिया—'जा, तेरा वंश राज्यहीन होगा, उसमें कभी कोई राजा न होगा।'

यदुने कहा—महाराज! मैं निर्दोष हूँ। आपने मुझे शाप क्यों दे दिया? मुझ दीनपर दया कीजिये, प्रसन्न हो जाइये।

ययाति बोले—बेटा! महान् देवता भगवान् विष्णु जब तेरे वंशमें अपने अंशसहित अवतार लेंगे, उस समय तेरा कुल पवित्र—शापसे मुक्त हो जायगा।

राजा ययातिने कुरुको शिशु समझकर छोड़ दिया और शर्मिष्ठाके पुत्र पूरुको बुलाकर कहा—'बेटा! तू मेरी वृद्धावस्था ग्रहण कर ले।' पूरुने कहा—'राजन्! मैं आपकी आज्ञाका पालन करूँगा। मुझे अपनी वृद्धावस्था दीजिये और आज ही मेरी युवावस्थासे सुन्दर रूप धारण कर उत्तम भोग भोगिये।' यह सुनकर महामनस्वी राजाका चित्त अत्यन्त प्रसन्न हुआ। वे पूरुसे बोले—'महामते! तूने मेरी वृद्धावस्था ग्रहण की और अपना यौवन मुझे दिया; इसलिये मेरे दिये हुए राज्यका उपभोग कर।' अब राजाकी बिल्कुल नयी अवस्था हो गयी। वे सोलह वर्षके तरुण प्रतीत होने लगे। देखनेमें अत्यन्त सुन्दर, मानो दूसरे कामदेव हों। महाराजने पूरुको अपना धनुष, राज्य, छत्र, घोड़ा, हाथी, धन, खजाना, देश, सेना, चँवर और व्यजन—सब कुछ दे डाला। धर्मात्मा नहुषकुमार अब कामात्मा हो गये। वे कामासक्त होकर बारंबार उस स्त्रीका चिन्तन करने लगे। उन्हें अपने पहले वृत्तान्तका स्मरण न रहा। नयी जवानी पाकर वे बड़ी शीघ्रताके साथ कदम बढ़ाते हुए अश्रुबिन्दुमतीके पास गये। उस समय उनका चित्त कामसे उन्मत्त हो रहा था। वे विशाल नेत्रोंवाली विशालाको देखकर बोले—'भद्रे! मैं प्रबल दोषरूप वृद्धावस्थाको त्यागकर यहाँ आया हूँ। अब मैं तरुण हूँ, अतः तुम्हारी सखी मुझे स्वीकार करे।'

विशाला बोली—राजन्! आप दोषरूपा जरावस्थाको त्यागकर आये हैं, यह बड़ी अच्छी बात है; परन्तु अब भी आप एक दोषसे लिप्त हैं, जिससे यह आपको स्वीकार करना नहीं चाहती। आपकी दो सुन्दर नेत्रोंवाली स्त्रियाँ हैं—शर्मिष्ठा और देवयानी। ऐसी दशामें आप मेरी इस सखीके वशमें कैसे रह सकेंगे? जलती हुई आगमें समा जाना और पर्वतके शिखरसे कूद पड़ना अच्छा है, किन्तु रूप और तेजसे युक्त होनेपर भी ऐसे पतिसे विवाह करना अच्छा नहीं है, जो सौतरूपी विषसे युक्त हो। यद्यपि आप गुणोंके समुद्र हैं, तो भी इसी एक दोषके कारण यह आपको पति बनाना पसंद नहीं करती।

ययातिने कहा—शुभे! मुझे देवयानी और शर्मिष्ठासे कोई प्रयोजन नहीं है। इस बातके लिये मैं सत्यधर्मसे युक्त अपने शरीरको छूकर शपथ करता हूँ।

अश्रुबिन्दुमती बोली—राजन् ! मैं ही आपके राज्य और शरीरका उपभोग करूँगी । जिस-जिस कार्यके लिये मैं कहूँ, उसे आपको अवश्य पूर्ण करना होगा । इस बातका विश्वास दिलानेके लिये अपना हाथ मेरे हाथमें दीजिये ।

ययातिने कहा—राजकुमारी ! मैं तुम्हारे सिवा किसी दूसरी स्त्रीको नहीं ग्रहण करूँगा । वरानने ! मेरा राज्य, समूची पृथ्वी, मेरा यह शरीर और खजाना—सबका तुम इच्छानुसार उपभोग करो । सुन्दरी ! लो, मैंने तुम्हारे हाथमें अपना हाथ दे दिया ।

अश्रुबिन्दुमती बोली—महाराज ! अब मैं आपकी पत्नी बनूँगी । इतना सुनते ही महाराज ययातिकी आँखें हर्षसे खिल उठीं; उन्होंने गान्धर्व-विवाहकी विधिसे काम-कुमारी अश्रुबिन्दुमतीको ग्रहण किया और युवावस्थाके द्वारा वे उसके साथ विहार करने लगे । अश्रुबिन्दुमतीमें आसक्त होकर वहाँ रहते हुए राजाको बीस हजार वर्ष बीत गये । इस प्रकार इन्द्रके लिये किये हुए कामदेवके प्रयोगसे उस स्त्रीने महाराजको भलीभाँति मोहित कर लिया । एक दिनकी बात है—कामनन्दिनी अश्रुबिन्दुमतीने मोहित हुए राजा ययातिसे कहा—'प्राणनाथ ! मेरे हृदयमें कुछ अभिलाषा जाग्रत् हुई है । आप मेरे उस मनोरथको पूर्ण कीजिये । पृथ्वीपते ! आप यज्ञोंमें प्रधान अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान करें ।'

राजा बोले—महाभागे ! एवमस्तु, मैं तुम्हारा प्रियकार्य अवश्य करूँगा ।

ऐसा कहकर महाराजने राज्य-भोगसे निःस्पृह अपने पुत्र पूरुको बुलाया । पिताका आह्वान सुनकर पूरु आये; उन्होंने भक्तिपूर्वक हाथ जोड़कर राजाके चरणोंमें प्रणाम किया और अश्रुबिन्दुमतीके युगल चरणोंमें भी मस्तक झुकाया । इसके बाद वे पितासे बोले—'महाप्राज्ञ ! मैं आपका दास हूँ; बताइये, मेरे लिये आपकी क्या आज्ञा है, मैं कौन-सा कार्य करूँ ?'

राजाने कहा—बेटा ! पुण्यात्मा द्विजों, ऋत्विजों और भूमिपालोंको आमन्त्रित करके तुम अश्वमेध यज्ञकी तैयारी करो ।

महातेजस्वी पूरु बड़े धार्मिक थे । उन्होंने पिताके कहनेपर उनकी आज्ञाका पूर्णतया पालन किया । तत्पश्चात् राजा ययातिने काम-कन्याके साथ यज्ञकी दीक्षा ली । उन्होंने अश्वमेध यज्ञमें ब्राह्मणों और दीनोंको अनेक प्रकारके दान दिये । यज्ञ समाप्त होनेपर महाराजने उस सुमुखीसे पूछा—'बाले ! और कोई कार्य भी, जो तुम्हें अत्यन्त प्रिय हो, बताओ; मैं तुम्हारा कौन-सा कार्य करूँ ?' यह सुनकर उसने राजासे कहा—'महाराज ! मैं इन्द्रलोक, ब्रह्मलोक, शिवलोक तथा विष्णुलोकका दर्शन करना चाहती हूँ ।' राजा बोले—'महाभागे ! तुमने जो प्रस्ताव किया है, वह इस समय मुझे असाध्य प्रतीत होता है । वह तो पुण्य, दान, यज्ञ और तपस्यासे ही साध्य है । मैंने आजतक ऐसा कोई मनुष्य नहीं देखा या सुना है, जो पुण्यात्मा होकर भी मर्त्यलोकसे इस शरीरके साथ ही स्वर्गको गया हो । अतः सुन्दरी ! तुम्हारा बताया हुआ कार्य मेरे लिये असाध्य है । प्रिये ! दूसरा कोई कार्य बताओ, उसे अवश्य पूर्ण करूँगा ।'

अश्रुबिन्दुमती बोली—राजन् ! इसमें सन्देह नहीं कि यह कार्य दूसरे मनुष्योंके लिये सर्वथा असाध्य है; पर आपके लिये तो साध्य ही है—यह मैं बिल्कुल सच-सच कह रही हूँ । इसी उद्देश्यसे मैंने आपको अपना स्वामी बनाया था; आप सब प्रकारके शुभलक्षणोंसे सम्पन्न और सब धर्मोंसे युक्त हैं । मैं जानती हूँ—आप भगवान् विष्णुके भक्त हैं, वैष्णवोंमें परम श्रेष्ठ हैं । जिसके ऊपर भगवान् विष्णुकी कृपा होती है, वह सर्वत्र जा सकता है । इसी आशासे मैंने आपको पतिरूपमें अङ्गीकार किया था । राजन् ! केवल आपने ही मृत्युलोकमें आकर सम्पूर्ण मनुष्योंको जरावस्थाकी पीड़ासे रहित और मृत्युहीन बनाया है । नरश्रेष्ठ ! आपने इन्द्र और यमराजका भी विरोध करके मर्त्यलोकको रोग और पापसे शून्य कर दिया है । महाराज ! आपके समान दूसरा कोई भी राजा नहीं है । बहुत-से पुराणोंमें भी आपके-जैसे राजाका वर्णन नहीं मिलता । मैं अच्छी तरह जानती हूँ, आप सब धर्मोंके ज्ञाता हैं ।

राजाने कहा—भद्रे ! तुम्हारा कहना सत्य है, मेरे लिये कोई साध्य-असाध्यका प्रश्न नहीं है । जगदीश्वरकी कृपासे मुझे स्वर्गलोकमें सब कुछ सुलभ है । तथापि मैं स्वर्गमें जो नहीं जाता हूँ, इसका कारण सुनो । मेरे छोड़ देनेपर मानवलोककी सारी प्रजा मृत्युका शिकार हो जायगी, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है । सुमुखि ! यही सोचकर मैं स्वर्गमें नहीं चलता हूँ; यह मैंने तुम्हें सच्ची बात बतायी है ।

रानी बोली—महाराज ! उन लोकोंको देखकर मैं फिर मर्त्यलोकमें लौट आऊँगी । इस समय उन्हें देखनेके लिये मेरे मनमें इतनी उत्सुकता हुई है, जिसकी कहीं तुलना नहीं है ।

राजाने कहा—देवि ! तुमने जो कुछ कहा है, उसे निःसन्देह पूर्ण करूँगा ।

अपनी प्रिया अश्रुबिन्दुमतीसे यों कहकर राजा सोचने लगे—'मत्स्य पानीके भीतर रहता है, किन्तु वह भी जालसे बँध जाता है। स्वर्गमें या पृथ्वीपर जो स्थावर आदि प्राणी हैं, उन सबपर कालका प्रभाव है। एकमात्र काल ही इस जगत्के रूपमें उपलब्ध होता है। कालसे पीड़ित मनुष्यको मन्त्र, तप, दान, मित्र और बन्धु-बान्धव—कोई भी नहीं बचा सकते। विवाह, जन्म और मृत्यु—ये कालके रचे हुए तीन बन्धन हैं। ये जहाँ, जैसे और जिस हेतुसे होनेको होते हैं, होकर ही रहते हैं, उन्हें कोई मेट नहीं सकता। * उपद्रव, आघातदोष, सर्प और व्याधियाँ—ये सभी कर्मसे प्रेरित होकर मनुष्यको प्राप्त होते हैं। आयु, कर्म, धन, विद्या और मृत्यु—ये पाँच बातें जीवके गर्भमें रहते समय ही रच दी जाती हैं। † जीवको देवत्व, मनुष्यत्व, पशु-पक्षी आदि तिर्यग्योनियाँ और स्थावर योनि—ये सब कुछ अपने अपने कर्मानुसार ही प्राप्त होते हैं। ‡ मनुष्य जैसा करता है, वैसा भोगता है, उसे अपने किये हुएको ही सदा भोगना पड़ता है। वह अपना ही बनाया हुआ दुःख और अपना ही रचा हुआ सुख भोगता है। जो लोग अपने धन और बुद्धिसे किसी वस्तुको अन्यथा करनेकी युक्ति रखते हैं, वे भी अपने उपार्जित सुख दुःखोंका उपभोग करते हैं। जैसे बछड़ा हजारों गौओंके बीचमें खड़ी होनेपर भी अपनी माताको पहचानकर उसके पास पहुँच जाता है, उसी प्रकार पूर्व जन्मके किये हुए शुभाशुभ कर्म कर्ताका अनुसरण करते हैं। पहलेका किया हुआ कर्म कर्ताके सोनेपर उसके साथ ही सोता है, उसके खड़े होनेपर खड़ा होता है और चलनेपर पीछे पीछे चलता है। तात्पर्य यह कि कर्म छायाकी भाँति कर्ताके साथ लगा रहता है। जैसे छाया और धूप सदा एक दूसरेसे सम्बद्ध होते हैं, उसी प्रकार कर्म और कर्ताका भी परस्पर सम्बन्ध है। शस्त्र, अग्नि, विष आदिसे जो बचाने योग्य वस्तु है, उसको भी दैव ही बचाता है। जो वास्तवमें अरक्षित वस्तु है, उसकी दैव ही रक्षा करता है। दैवने जिसका नाश कर दिया हो, उसकी रक्षा नहीं देखी जाती। यह मेरे पूर्वकर्मोंका परिणाम ही है, दूसरा कुछ नहीं है। इस स्त्रीके रूपमें दैव ही यहाँ आ पहुँचा है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। मेरे घरमें जो नाटक खेलनेवाले नट और नर्तक आये थे, उन्हींके सङ्गसे मेरे शरीरमें जरावस्थाने प्रवेश किया है। इन सब बातोंको मैं अपने कर्मोंका ही परिणाम मानता हूँ।'

इस प्रकारकी चिन्तामें पड़कर राजा ययाति बहुत दुखी हो गये। उन्होंने सोचा—'यदि मैं प्रसन्नतापूर्वक इसकी बात नहीं मानूँगा तो मेरे सत्य और धर्म—दोनों ही चले जायँगे, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। जैसा कर्म मैंने किया था, उसके अनुरूप ही फल आज दृष्टिगोचर हुआ है। यह निश्चित बात है कि दैवका विधान टाला नहीं जा सकता है।'

इस तरह सोच विचारमें पड़े हुए राजा ययाति सबके क्लेश दूर करनेवाले भगवान् श्रीहरिकी शरणमें गये। उन्होंने मन ही मन भगवान् मधुसूदनका ध्यान और नमस्कारपूर्वक स्तवन किया तथा कातरभावसे कहा—'लक्ष्मीपते! मैं आपकी शरणमें आया हूँ, आप मेरा उद्धार कीजिये।'

सुकर्मा कहते हैं—परम धर्मात्मा राजा ययाति इस प्रकार चिन्ता कर ही रहे थे कि रति कुमारी देवी अश्रुबिन्दुमतीने कहा—'राजन्! अन्यान्य प्राकृत मनुष्योंकी भाँति आप दुःखपूर्ण चिन्ता कैसे कर रहे हैं। जिसके कारण आपको दुःख हो, वह कार्य मुझे कभी नहीं करना है।' उसके यों कहनेपर राजाने उस वराङ्गनासे कहा—'देवि! मुझे जिस बातकी चिन्ता हुई है, उसे बताता हूँ, सुनो। मेरे स्वर्ग चले जानेपर सारी प्रजा दीन हो जायगी। तथापि अब मैं तुम्हारे साथ स्वर्गलोकको चलूँगा।' यों कहकर राजाने अपने उत्तम पुत्र पूरुको, जो सब धर्मोंके ज्ञाता, वृद्धावस्थासे युक्त और परम बुद्धिमान् थे, बुलाया और इस प्रकार कहा—'धर्मात्मन्! मेरी आज्ञासे तुमने धर्मका पालन किया, अब मेरी वृद्धावस्था दे दो और अपनी युवावस्था ग्रहण करो। खजाना, सेना तथा सवारियोंसहित मेरा यह राज्य तथा समुद्रसहित समूची पृथ्वीको भोगो। मैंने इसे तुम्हें ही दिया है। दुष्टोंको दण्ड देना और साधु पुरुषोंकी रक्षा करना तुम्हारा कर्तव्य है। तात! तुम्हें धर्मशास्त्रको प्रमाण मानकर उसीके अनुसार

---

* न मन्त्रा न तपो दान न मित्राणि न बान्धवा ।
शक्नुवन्ति परित्रातुं नरं कालेन पीडितम् ॥
त्रय कालकृता पाशा शक्यन्ते न निवर्तितुम् ।
विवाहो जन्म मरण यथा यत्र च येन च ॥
(८१ । २३ २४)

† पञ्चैतानि विसृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिन ।
आयु कर्म च वित्त च विद्या निधनमेव च ॥
(८१ । ४१)

‡ देवत्वमथ मानुष्य पशुत्व पक्षिता तथा ।
तिर्यक्त्व स्थावरत्व च प्राप्यते वै स्वकर्मभि ॥
(८१ । ४३)

सब कार्य करना चाहिये। महाभाग! शास्त्रीय विधिके अनुसार भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंका पूजन करना; क्योंकि वे तीनों लोकोंमें पूजनीय हैं। पाँचवें-सातवें दिन खजानेकी देख-भाल करते रहना; सेवकोंको धन और भोजन आदिसे प्रसन्न करके सदा इनका आदर करना। गुप्तचरोंको नियुक्त करके राज्यके प्रत्येक अङ्गपर दृष्टि रखना, सदा दान देते रहना, शत्रुपर अनुराग या विश्वास न करना, विद्वान् पुरुषोंके द्वारा सदा अपनी रक्षाका प्रबन्ध रखना। बेटा! अपने मनको काबूमें रखना, कभी शिकार खेलनेके लिये न जाना। स्त्री, खजाना, सेना और शत्रुपर कभी विश्वास न करना। सुयोग्य पात्रों और सब प्रकारके बलोंका संग्रह करना। यज्ञोंके द्वारा भगवान् हृषीकेशका पूजन करना और सदा पुण्यात्मा बने रहना। प्रजाको जिस वस्तुकी इच्छा हो, वह सब उन्हें प्रतिदिन देते रहना। बेटा! तुम प्रजाको सुख पहुँचाओ, प्रजाका पालन-पोषण करो। पराये धन और परायी स्त्रियोंके प्रति कभी दूषित विचार मनमें न लाना। वेद और शास्त्रोंका निरन्तर चिन्तन करना और सदा अस्त्र-शस्त्रोंके अभ्यासमें लगे रहना। हाथी और रथ हाँकनेका अभ्यास भी बढ़ाते रहना।'

पुत्रको ऐसा आदेश देकर राजाने आशीर्वादके द्वारा उसे प्रसन्न किया और अपने हाथसे राजसिंहासनपर बिठाया। फिर अपनी वृद्धावस्था ले पुत्रको यौवन समर्पित करके महाराज-ने समस्त प्रजाओंको बुलाया और बड़े हर्षमें भरकर यह वचन कहा—'सज्जनो! मैं अपनी इस पत्नीके साथ पहले इन्द्रलोकमें जाता हूँ, फिर क्रमशः ब्रह्मलोक और शिवलोकमें जाऊँगा। इसके बाद समस्त लोकोंके पाप दूर करनेवाले तथा जीवोंको सद्गति प्रदान करनेवाले विष्णुधामको प्राप्त होऊँगा—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—मेरी समस्त प्रजाको कुटुम्बसहित यहीं सुखपूर्वक रहना चाहिये। यही मेरी आज्ञा है। आजसे ये महाबाहु पूरु आपलोगोंके रक्षक हैं। इनका स्वभाव धीर है, मैंने इन्हें शासनका अधिकार देकर राजाके पदपर प्रतिष्ठित किया है।'

महाराजके यों कहनेपर प्रजाजनोंने कहा—'नृपश्रेष्ठ! सम्पूर्ण वेदोंमें धर्मका ही श्रवण होता है, पुराणोंमें भी धर्मकी ही व्याख्या की गयी है; किन्तु पूर्वकालमें किसीने धर्मका साक्षात् दर्शन नहीं किया। केवल हमलोगोंने ही चन्द्रवंशमें राजा नहुषके घर उत्पन्न हुए आपके रूपमें उस दशाङ्ग धर्मका साक्षात्कार किया है। महाराज! आप सत्यप्रिय, ज्ञान-विज्ञान-सम्पन्न, पुण्यकी महान् राशि, गुणोंके आधार तथा सत्यके ज्ञाता हैं। सत्यका पालन करनेवाले महान् ओजस्वी पुरुष परम-धर्मका अनुष्ठान करते हैं। आपसे बढ़कर दूसरा कोई पुरुष हमारे देखनेमें नहीं आया है। आप-जैसे धर्मपालक एवं सत्यवादी राजाको हम मन, वाणी और शरीर—किसी-की भी क्रियाद्वारा छोड़नेमें असमर्थ हैं। महाराज! जब आप ही नहीं रहेंगे, तब स्त्री, धन, भोग और जीवन लेकर हम क्या करेंगे। अतः राजेन्द्र! अब हमें यहाँ रहनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। आपके साथ ही हम भी चलेंगे।'

प्रजाजनोंकी यह बात सुनकर राजा ययातिको बड़ा हर्ष हुआ। वे बोले—'आप सब लोग परम पुण्यात्मा हैं, मेरे साथ चलें।' यों कहकर वे कामकन्याके साथ रथपर सवार हुए। वह रथ चन्द्रमण्डलके समान जान पड़ता था। सेवकगण हाथमें चँवर और व्यजन लेकर महाराजको हवा कर रहे थे। राजाके मनमें किसी प्रकारकी पीड़ा नहीं थी। उनके राज्यमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र—सभी वैष्णव थे। इनके सिवा, जो अन्त्यज थे, उनके मनमें भी भगवान् विष्णुके प्रति भक्ति थी। सभी दिव्य माला धारण किये तुलसीदलोंसे शोभा पा रहे थे। उनकी संख्या अरबों-खरबोंतक पहुँच गयी। सभी भगवान् विष्णुके ध्यानमें तत्पर और जप एवं दानमें संलग्न रहनेवाले थे। सब-के-सब विष्णु-भक्त और पुण्यात्मा थे। उन सबने महाराजके साथ दिव्य लोकोंकी यात्रा की। उस समय सबके हृदयमें महान् आनन्द छा रहा था। राजा ययाति सबसे पहले इन्द्रलोकमें गये; उनके तेज, पुण्य, धर्म और तपोबलसे और लोग भी साथ-साथ गये। वहाँ पहुँचनेपर देवता, गन्धर्व, किन्नर तथा चारणोंसहित देवराज इन्द्र उनके सामने आये और उनका सम्मान करते हुए बोले—'महाभाग! आपका स्वागत है! आइये, मेरे घरमें पधारिये और दिव्य, पावन एवं मनोरम भोगोंका उपभोग कीजिये।'

राजाने कहा—देवराज! आपके चरणारविन्दोंमें प्रणाम करके हमलोग सनातन ब्रह्मलोकमें जा रहे हैं।

यह कहकर देवताओंके मुखसे अपनी स्तुति सुनते हुए वे ब्रह्मलोकमें गये। वहाँ मुनिवरोंके साथ महातेजस्वी ब्रह्मा-जीने अर्घ्यादि सुविस्तृत उपचारोंके द्वारा उनका आतिथ्य-सत्कार किया और कहा—'राजन्! तुम अपने शुभ कर्मोंके फलस्वरूप विष्णुलोकको जाओ।' ब्रह्माजीके यों कहनेपर वे

पहले शिवलोकमें गये, वहाँ भगवान् शङ्करने पार्वतीजीके साथ उनका स्वागत सत्कार किया और इस प्रकार कहा—'महाराज! तुम भगवान् विष्णुके भक्त हो, अतः मेरे भी अत्यन्त प्रिय हो, क्योंकि मुझमें और विष्णुमें कोई अन्तर नहीं है। जो विष्णु हैं, वही मैं हूँ तथा मुझीको विष्णु समझो, पुण्यात्मा विष्णुभक्तके लिये भी यही स्थान है। अतः महाराज! तुम यहाँ इच्छानुसार रह सकते हो।'

भगवान् शिवके यों कहनेपर श्रीविष्णुके प्रिय भक्त ययातिने मस्तक झुकाकर उनके चरणोंमें भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और कहा—'महादेव! आपने इस समय जो कुछ भी कहा है, सत्य है, आप दोनोंमें वस्तुतः कोई अन्तर नहीं है। एक ही परमात्माके स्वरूपकी ब्रह्मा, विष्णु और शिव—तीन रूपोंमें अभिव्यक्ति हुई है। तथापि मेरी विष्णुलोकमें जानेकी इच्छा है, अतः आपके चरणोंमें प्रणाम करता हूँ।' भगवान् शिव बोले—'महाराज! एवमस्तु, तुम विष्णुलोकको जाओ।' उनकी आज्ञा पाकर राजाने कल्याणमयी भगवती उमाको नमस्कार किया और उन परमपावन विष्णुभक्तोंके साथ वे विष्णुधामको चल दिये। ऋषि और देवता सब ओर खड़े हो उनकी स्तुति कर रहे थे। गन्धर्व, किन्नर, सिद्ध, पुण्यात्मा चारण, साध्य, विद्याधर, उनचास मरुद्गण, आठों वसु, ग्यारहों रुद्र, बारहों आदित्य, लोकपाल तथा समस्त त्रिलोकी चारों ओर उनका गुणगान कर रही थी। महाराज ययातिने रोग शोकसे रहित अनुपम विष्णुलोकका दर्शन किया। सब प्रकारकी शोभासे सम्पन्न सोनेके विमान उस लोककी सुषमा बढ़ा रहे थे। चारों ओर दिव्य छटा छा रही थी। वह मोक्षका उत्तम धाम वैष्णवोंसे शोभा पा रहा था। देवताओंकी वहाँ भीड़-सी लगी थी।

नहुषनन्दन ययातिने सब प्रकारके दाहसे रहित उस दिव्य धाममें प्रवेश करके क्लेशहारी भगवान् नारायणका दर्शन किया। भगवान्के ऊपर चँदोवे तने हुए थे, जिनसे उनकी बड़ी शोभा हो रही थी। वे सब प्रकारके आभूषण और पीत वस्त्रोंसे विभूषित थे। उनके वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका चिह्न शोभा पा रहा था। सबके महान् आश्रय भगवान् जगन्नाथ लक्ष्मीजीके साथ गरुड़पर विराजमान थे। वे ही परात्पर परमेश्वर हैं। सम्पूर्ण देवलोकोंकी गति हैं। परमानन्दमय कैवल्यसे सुशोभित हैं। बड़े-बड़े लोक, पुण्यात्मा वैष्णव, देवता तथा गन्धर्व उनकी सेवामें रहते हैं। राजा ययातिने अपनी पत्नीसहित निकट जाकर गन्धर्वोंद्वारा सेवित, देववृन्दसे घिरे, दुःख क्लेशहारी प्रभु नारायणको नमस्कार किया तथा उनके साथ जो अन्य वैष्णव पधारे थे, उन्होंने भी भक्तिपूर्वक भगवान्के दोनों चरण-कमलोंमें मस्तक झुकाया। परम तेजस्वी राजाको प्रणाम करते देख भगवान् हृषीकेशने कहा—'महाराज! मैं तुमपर बहुत सन्तुष्ट हूँ। तुम मेरे भक्त हो, अतः तुम्हारे मनमें यदि कोई दुर्लभ मनोरथ हो तो उसके लिये वर माँगो। मैं उसे निस्सन्देह पूर्ण करूँगा।'

राजा बोले—मधुसूदन! जगत्पते! देवेश्वर! यदि आप मुझपर सन्तुष्ट हैं तो सदाके लिये मुझे अपना दास बना लीजिये।

भगवान् श्रीविष्णुने कहा—महाभाग! ऐसा ही होगा। तुम मेरे भक्त हो, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। राजन्! तुम अपनी पत्नीके साथ सदा मेरे लोकमें निवास करो।

भगवान्की ऐसी आज्ञा पाकर उनकी कृपासे महाराज ययाति परम प्रकाशमान विष्णुलोकमें निवास करने लगे।

सुकर्मा कहते हैं—पिप्पलजी! यह सम्पूर्ण पापनाशक चरित्र मैंने आपको सुना दिया। संसारमें राजा ययातिका दिव्य एवं शुभ जीवनचरित्र परम कल्याणदायक तथा पितृभक्त पुत्रोंका उद्धार करनेवाला है। पिताकी सेवाके प्रभावसे पूरुको राज्य प्राप्त हुआ। पिता माताके समान अभीष्ट फल देनेवाला दूसरा कोई नहीं है। जो पुत्र माताके बुलानेपर हर्षमें भरकर उसकी ओर जाता है, उसे गङ्गास्नानका फल मिलता है। जो माता और पिताके चरण पखारता है, वह महायशस्वी पुत्र उन दोनोंकी कृपासे समस्त तीर्थोंके सेवनका फल भोगता है। उनके शरीरको दबाकर व्यथा दूर करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है। जो भोजन और वस्त्र देकर माता पिताका पालन करता है, उसे पृथ्वीदानका पुण्य प्राप्त होता है। गङ्गा और माता सर्वतीर्थमयी मानी गयी हैं, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। जैसे जगत्में समुद्र परम पुण्यमय एवं प्रतिष्ठित माना गया है, उसी प्रकार इस संसारमें पिता माताका भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। ऐसा पौराणिक विद्वानोंका कथन है। जो पुत्र माता पिताको कटुवचन सुनाता और कोसता है, वह बहुत दुःख देनेवाले नरकमें पड़ता है। जो गृहस्थ होकर भी बूढ़े माता पिताका पालन नहीं करता, वह पुत्र नरकमें पड़ता और भारी यातना भोगता है। जो दुर्बुद्धि एवं पापाचारी पुरुष पिताकी निन्दा करता है, उसके उस पापका प्रायश्चित्त

प्राचीन विद्वानोंको भी कभी दृष्टिगोचर नहीं हुआ है।*

विप्रवर! यही सब सोचकर मैं प्रतिदिन माता-पिताकी भक्तिपूर्वक पूजा करता हूँ और चरण दबाने आदिकी सेवामें लगा रहता हूँ। मेरे पिता मुझे बुलाकर जो कुछ भी आज्ञा देते हैं, उसे मैं अपनी शक्तिके अनुसार बिना विचारे पूर्ण करता हूँ। इससे मुझे सद्गति प्रदान करनेवाला उत्तम ज्ञान प्राप्त हुआ है। पिता-माताकी कृपासे संसारमें तीनों कालोंका ज्ञान सुलभ हो जाता है। पृथ्वीपर रहनेवाले जो मनुष्य माता-पिताकी भक्ति करते हैं, उन्हें यह ज्ञान प्राप्त होता है। मैं यहीं रहकर स्वर्गलोकतकको बातें जानता हूँ। विद्याधर-श्रेष्ठ! आप भी जाइये और भगवत्स्वरूप माता-पिताकी आराधना कीजिये। देखिये, इन माता-पिताके प्रसादसे ही मुझे ऐसा ज्ञान मिला है।†

भगवान् श्रीविष्णु कहते हैं—राजन्! विप्रवर सुकर्मा-के मुखसे ये उपदेश सुनकर पिप्पलको अपनी करतूतपर बड़ी लज्जा आयी और वे द्विजश्रेष्ठ सुकर्माको प्रणाम करके स्वर्गको चले गये। तत्पश्चात् धर्मात्मा सुकर्मा माता-पिताकी सेवामें लग गये। महामते! पितृतीर्थसे सम्बन्ध रखनेवाली ये सारी बातें मैंने तुम्हें बता दीं; बोलो अब और किस विषयका वर्णन करूँ?

गुरुतीर्थके प्रसङ्गमें महर्षि च्यवनकी कथा—कुञ्जल पक्षीका अपने पुत्र उज्ज्वलको ज्ञान, व्रत और स्तोत्रका उपदेश

वेनने कहा—भगवन्! देवदेवेश्वर! आपने मुझपर कृपा करके भार्यातीर्थ, परम उत्तम पितृतीर्थ एवं परम पुण्यदायक मातृतीर्थका वर्णन किया। हृषीकेश! अब प्रसन्न होकर मुझे गुरुतीर्थकी महिमा बतलाइये।

भगवान् श्रीविष्णु बोले—राजन्! गुरुतीर्थ बड़ा उत्तम तीर्थ है, मैं उसका वर्णन करता हूँ। गुरुके अनुग्रहसे शिष्यको लौकिक आचार-व्यवहारका ज्ञान होता है, विज्ञान-की प्राप्ति होती है और वह मोक्ष प्राप्त कर लेता है। जैसे सूर्य सम्पूर्ण लोकोंको प्रकाशित करते हैं, उसी प्रकार गुरु शिष्योंको उत्तम बुद्धि देकर उनके अन्तर्जगत्को प्रकाशपूर्ण

* पितृमातृसमं नास्ति अभीष्टफलदायकम्॥ ... ...
समाहूतो यदा पुत्रः प्रयाति मातरं प्रति। यो याति हर्षसंयुक्तो गङ्गास्नानफलं लभेत्॥
पादप्रक्षालनं यश्च कुरुते च महायशाः। सर्वतीर्थफलं भुङ्क्ते प्रसादादुभयोः सुतः॥
अङ्गसंवाहनाच्चाथ अश्वमेधफलं लभेत्। भोजनाच्छादनैश्चैव गुरुं च परिपोषयेत्॥
पृथ्वीदानस्य यत्पुण्यं तत्पुण्यं तस्य जायते। सर्वतीर्थमयी गङ्गा तथा माता न संशयः॥
बहुपुण्यमयः सिन्धुर्यथा लोके प्रतिष्ठितः। अस्मिन्नेव पिता तद्वत् पुराणाः कवयो विदुः॥
शंसते क्रोशते यस्तु पितरं मातरं पुनः। स पुत्रो नरकं याति महदुःखप्रदायकम्॥
मातरं पितरं वृद्धौ गृहस्थो यो न पोषयेत्। स पुत्रो नरकं याति वेदनां प्राप्नुयाद् ध्रुवम्॥
कुत्सते पापकर्ता यो गुरुं पुत्रः सुदुर्मतिः। निष्कृतिस्तस्य नोद्दिष्टा पुराणैः कविभिः कदा॥
(८४।५—१३)

† एवं मत्वा त्वहं विप्र पूजयामि दिने दिने। मातरं पितरं भक्त्या पादसंवाहनादिभिः॥
कृत्याकृत्यं वदेच्चैव समाहूय गुरुर्मम। तत्करोम्यविचारेण शक्त्या स्वस्य च पिप्पल॥
तेन मे परमं ज्ञानं संजातं गतिदायकम्। एतयोश्च प्रसादेन संसारे परिवर्तते॥
ये विप्रभक्तिं कुर्वन्ति मानवा भुवि संस्थिताः। अत्रस्थस्तदहं जाने अधिस्वर्गं प्रवर्तते॥
एतयोश्च प्रसादेन ज्ञानं मम प्रदृश्यताम्। गच्छ विद्याधरश्रेष्ठ भवानर्चतु माधवम्॥
(८४।१४—१८)

बनाते हैं *। सूर्य दिनमें प्रकाश करते हैं, चन्द्रमा रातमें प्रकाशित होते हैं और दीपक केवल घरके भीतर उजाला करता है; परन्तु गुरु अपने शिष्यके हृदयमें सदा ही प्रकाश फैलाते रहते हैं। वे शिष्यके अज्ञानमय अन्धकारका नाश करते हैं; अतः शिष्योंके लिये गुरु ही सबसे उत्तम तीर्थ हैं। यह समझकर शिष्यको उचित है कि वह सब तरहसे गुरुको प्रसन्न रखे। गुरुको पुण्यमय जानकर मन, वाणी और शरीर—तीनोंकी क्रियासे उनकी आराधना करता रहे।

नृपश्रेष्ठ! भार्गव-वंशमें उत्पन्न महर्षि च्यवन मुनियोंमें श्रेष्ठ थे। एक दिन उनके मनमें यह विचार हुआ कि 'मैं इस पृथ्वीपर कब ज्ञानसम्पन्न होऊँगा।' इस प्रकार सोचते-सोचते उनके मनमें यह बात आयी कि 'मैं तीर्थयात्राको चलूँ; क्योंकि तीर्थयात्रा अभीष्ट फलको देनेवाली है।' ऐसा निश्चय करके वे पिता आदिको तथा पत्नी, पुत्र और धनको भी घरपर ही छोड़कर तीर्थयात्राके प्रसङ्गसे भूतलपर विचरने लगे। मुनीश्वर च्यवनने नर्मदा, सरस्वती तथा गोदावरी आदि समस्त नदियों और समुद्रके तटोंकी *यात्रा की। अन्यान्य क्षेत्रों, सम्पूर्ण तीर्थों तथा पुण्यमय* देवताओंके स्थानोंमें भ्रमण किया। इस प्रकार यात्रा करते हुए वे ओंकारेश्वर तीर्थमें आये और एक बरगदकी शीतल छायामें बैठकर सुखपूर्वक विश्राम करने लगे। उस वृक्षकी छाया ठंडी और थकावटको दूर करनेवाली थी। मुनिश्रेष्ठ च्यवन वहाँ लेट गये। लेटे-लेटे ही उनके कानोंमें पक्षियोंका मनोहर शब्द सुनायी पड़ा, जो ज्ञान विज्ञानसे युक्त था। उस वृक्षके ऊपर अपनी पत्नीके साथ एक दीर्घजीवी तोता रहता था, जो कुञ्जलके नामसे प्रसिद्ध था। वह तोता बड़ा ज्ञानी था। उसके उज्ज्वल, समुज्ज्वल, विज्वल और कपिञ्जल—ये चार पुत्र थे। चारों ही माता-पिताके बड़े भक्त थे। वे भूखसे आकुल होनेपर चारा चुगनेके लिये पर्वतीय कुञ्जों और समस्त द्वीपोंमें भ्रमण किया करते थे। उनका चित्त बहुत एकाग्र रहता था। सन्ध्याके समय मुनिवर च्यवनके देखते देखते वे चारों तोते अपने पिताके सुन्दर घोंसलेमें आये। वहाँ आकर उन सबने माता-पिताको प्रणाम किया और उन्हें चारा निवेदन करके उनके सामने खड़े हो गये। तत्पश्चात् अपने पंखोंकी शीतल हवासे वे माता-पिताकी सेवा करने लगे। कुञ्जल पक्षी अपनी पत्नीके साथ भोजन करके जब तृप्त हुआ, तब पुत्रोंके साथ बैठकर परम पवित्र दिव्य कथाएँ कहने लगा।

उज्ज्वलने कहा—पिताजी! इस समय पहले मेरे लिये उत्तम ज्ञानका वर्णन कीजिये; इसके बाद ध्यान, व्रत, पुण्य तथा भगवान्‌के शत-नामका भी उपदेश दीजिये।

कुञ्जल बोला—बेटा! मैं तुम्हें उस उत्तम ज्ञानका उपदेश देता हूँ, *जिसे किसीने इन चर्मचक्षुओंसे नहीं देखा* है; उसका नाम है—कैवल्य (मोक्ष)। वह केवल—अद्वितीय और दुःखसे रहित है। जैसे वायुशून्य प्रदेशमें रखा हुआ दीपक हवाका झोंका न लगनेके कारण स्थिर भावसे जलता है और घरके समूचे अन्धकारका नाश करता रहता है, उसी प्रकार कैवल्यस्वरूप ज्ञानमय आत्मा सब दोषोंसे रहित और स्थिर है। उसका कोई आधार नहीं है [वही सबका आधार है]। * बेटा! वह आशा-तृष्णासे रहित और निश्चल है। आत्मा न किसीका मित्र है न शत्रु। उसमें न शोक है न हर्ष, न लोभ है न मात्सर्य। वह भ्रम, प्रलाप, मोह तथा सुख-दुःखसे रहित है। जिस समय इन्द्रियाँ सम्पूर्ण विषयोंमें भोग-बुद्धिका त्याग कर देती हैं, उस समय [सब प्रकारकी आसक्तियोंसे रहित] केवल *आत्मा रह जाता है; उसे कैवल्य-रूपकी प्राप्ति हो* जाती है। जैसे दीपक प्रज्वलित होकर जब प्रकाश फैलाता है, तब बत्तीके आधारसे वह तेलको सोखता रहता है। फिर उस तेलको भी काजलके रूपमें उगल देता है। महामते! दीपक स्वयं ही तेलको खींचता और अपने तेजसे निर्मल बना रहता है। इसी प्रकार देहरूपी बत्तीमें स्थित हुआ आत्मा कर्मरूपी तेलका शोषण करता रहता है। वह विषयोंका काजल बनाकर प्रत्यक्ष दिखा देता है और उससे निर्मल होकर स्वयं ही प्रकाशित होता है। उसमें क्रोध आदि दोषोंका अभाव है। क्लेश नामक वायु उसका स्पर्श नहीं करती। वह निःस्पृह और निश्चल होकर स्वयं अपने तेजसे प्रकाशमान रहता है। स्वकीय स्थानपर

* सर्वेषामेव लोकानां यथा सूर्यः प्रकाशकः।
गुरुः प्रकाशकस्तद्वच्छिष्याणां बुद्धिदानतः॥ (८५।८)

* यथा दीपो निवातस्थो निश्चलो वायुवर्जितः।
प्रज्वलन्नाशयेत्सर्वमन्धकारं महामते॥
तद्दोषविहीनात्मा भवत्येव निराश्रयः। (८६।५९-६०)

स्थित रहकर ही अपने तेजसे सम्पूर्ण त्रिलोकीको देखा करता है। यह आत्मा केवल ज्ञानस्वरूप है [इसीको परमात्मा कहते हैं]। इस परमात्माका ही मैंने तुमसे वर्णन किया है।

अब मैं चक्रधारी भगवान् श्रीविष्णुके ध्यानका वर्णन आरम्भ करता हूँ। वह ध्यान दो प्रकारका है—निराकार और साकार। निराकारका ध्यान केवल ज्ञानरूपसे होता है, ज्ञाननेत्रसे उनका दर्शन किया जाता है। योगयुक्त महात्मा तथा परमार्थपरायण संन्यासी उन सर्वज्ञ एवं सर्वद्रष्टा परमेश्वरका साक्षात्कार करते हैं। वत्स ! वे हाथ-पैरसे हीन होकर भी सर्वत्र जाते और समस्त चराचर त्रिलोकीको ग्रहण करते हैं। उनके मुख और नाक नहीं हैं, फिर भी वे खाते और सूँघते हैं। बिना कानके ही सब कुछ श्रवण करते हैं। वे सबके साक्षी और जगत्के स्वामी हैं। रूपहीन होते हुए भी पाँच इन्द्रियोंसे युक्त रूप धारण करते हैं। समस्त लोकोंके प्राण हैं। चराचर जगत्के जीव उनकी पूजा करते हैं। बिना जिह्वाके ही वे बोलते हैं। उनकी सब बातें वेद-शास्त्रोंके अनुकूल होती हैं। उनके त्वचा नहीं है, फिर भी वे सबके स्पर्शका अनुभव करते हैं। उनका स्वरूप सत् और आनन्दमय है; वे विरक्तात्मा हैं। उनका रूप एक है। वे आश्रयरहित और जरावस्थासे शून्य हैं। ममता तो उन्हें छू भी नहीं गयी है। वे सर्वव्यापक, सगुण, निर्गुण और निर्मल हैं। वे किसीके वशमें नहीं हैं तो भी उनका मन सब भक्तोंके अधीन रहता है। वे सब कुछ देनेवाले और सर्वज्ञोंमें श्रेष्ठ हैं। उनका पूर्णरूपसे ध्यान करनेवाला कोई नहीं है। वे सर्वमय और सर्वत्र व्यापक हैं। *

इस प्रकार जो परमात्माके सर्वमय स्वरूपका ध्यान करता है, वह अमृतके समान सुखदायी और आकाररहित परम पद (मोक्ष) को प्राप्त होता है।*

अब परमात्माके ध्यानका दूसरा रूप—साकार ध्यान बतलाता हूँ। मूर्तिमान् आकारके चिन्तनको साकार ध्यान कहते हैं तथा जो निरामय तत्त्वका चिन्तन है, उसे निराकार ध्यान कहा गया है। यह समस्त ब्रह्माण्ड, जिसकी कहीं तुलना नहीं है, भगवानकी वासनासे ही वासित है—भगवान्में ही इसका निवास है; इसीलिये उन्हें 'वासुदेव' कहते हैं। वर्षाके लिये उन्मुख मेघका जैसा वर्ण होता है, वैसा ही उनका भी वर्ण है। वे सूर्यके समान तेजस्वी, चतुर्भुज और देवताओंके स्वामी हैं। उनके दाहिने हाथोंमेंसे एकमें सुवर्ण और रत्नोंसे विभूषित शङ्ख शोभा पा रहा है। बायें हाथोंमेंसे एकमें चक्र प्रतिष्ठित है, जिसकी तेजोमयी आकृति सूर्यमण्डलके समान है। कौमोदकी गदा, जो बड़े-बड़े असुरोंका विनाश करनेवाली है, उन परमात्माके दूसरे बायें हाथमें सुशोभित है तथा उनके दूसरे दाहिने हाथमें सुगन्धपूर्ण महान् पद्म शोभा पा रहा है। इस प्रकार आयुधोंसहित भगवान् कमलापतिका ध्यान करना चाहिये। शङ्खके समान ग्रीवा, गोल-गोल मुख और पद्मपत्रके समान बड़ी-बड़ी आँखें अत्यन्त मनोहर जान पड़ती हैं। रत्नोंके समान चमकीले दाँतोंसे भगवान् हृषीकेशकी बड़ी शोभा हो रही है। उनके घुँघराले बाल हैं, बिम्बाफलके समान लाल-लाल ओठ हैं तथा मस्तकपर धारण किये हुए किरीटसे कमलनयन श्रीहरि अत्यन्त सुशोभित हो रहे हैं। विशाल रूप, सुन्दर नेत्र तथा कौस्तुभमणिसे उनकी कान्ति बहुत बढ़ गयी है। सूर्यके समान तेजसे प्रकाशित होनेवाले कुण्डल और पुण्यमय श्रीवत्स-चिह्नसे श्रीहरि सदा देदीप्यमान दिखायी देते हैं। उनके श्यामविग्रहपर बाजूबंद, कंगन और मोतियोंके हार नक्षत्रोंके समान छवि पा रहे हैं। इनसे सुशोभित भगवान् विजय विजयी पुरुषोंमें सर्वश्रेष्ठ जान

* ध्यानं चैव प्रवक्ष्यामि द्विविधं तस्य चक्रिणः।
केवलं ज्ञानरूपेण दृश्यते ज्ञानचक्षुषा ॥
योगयुक्ता महात्मानः परमार्थपरायणाः।
यं पश्यन्ति यतीन्द्रास्ते सर्वज्ञं सर्वदर्शकम् ॥
हस्तपादादिहीनश्च सर्वत्र परिगच्छति।
सर्वं गृह्णाति त्रैलोक्यं स्थावरं जङ्गमं सुत ॥
मुखनासाविहीनस्तु घ्राति भुङ्क्ते हि पुत्रक।
अकर्णः शृणुते सर्वं सर्वसाक्षी जगत्पतिः ॥
अरूपो रूपसम्पन्नः पञ्चवर्गसमन्वितः।
सर्वलोकस्य यः प्राणः पूजितः सचराचरैः ॥
अजिह्वो वदते सर्वं वेदशास्त्रानुगं सुत।
अत्वचः स्पर्शमेवापि सर्वेषामेव जायते ॥
सदानन्दो विरक्तात्मा एकरूपो निराश्रयः।
निर्जरो निर्ममो व्यापी सगुणो निर्गुणोऽमलः ॥
अवश्यः सर्ववश्यात्मा सर्वदः सर्ववित्तमः।
तस्य ध्याता न चैवास्ति स वै सर्वमयो विभुः ॥
(८६ । ६९–७६)

* एवं सर्वमयं ध्यानं पश्यते यो महात्मनः।
स याति परमं स्थानममूर्तममृतोपमम् ॥
(८६ । ७७)

सर्ववास, पुण्यवास, महाजन, वृन्दानाथ, बृहत्काय, पावन, पापनाशन, गोपीनाथ, गोपसख, गोपाल, गोगणाश्रय, परात्मा, पराधीश, कपिल तथा कार्यमानुष (संसारका उद्धार करनेके लिये मानव शरीर धारण करनेवाले) आदि नामोंसे प्रसिद्ध सर्वस्वरूप परमेश्वरको मैं प्रतिदिन मन, वाणी तथा क्रियाद्वारा नमस्कार करता हूँ।* जो पुण्यात्मा पुरुष शतनाम-स्तोत्र पढ़कर स्थिर चित्तसे भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति करता है, वह सम्पूर्ण दोषोंका त्याग करके इस लोकमें पुण्यस्वरूप हो जाता है तथा अन्तमें वह भगवान् मधुसूदनके लोकको प्राप्त होता है। यह शतनाम-स्तोत्र महान् पुण्यका जनक और समस्त पातकोंकी शुद्धि करनेवाला है। मनुष्यको ध्यानयुक्त होकर अनन्यचित्तसे इसका जप और चिन्तन करना चाहिये। प्रतिदिन इसका जप करनेवाले पुरुषको नित्यप्रति गङ्गास्नानका फल मिलता है। इसलिये सुस्थिर और एकाग्र चित्त होकर इसका जप करना उचित है।*

सुखकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको चाहिये कि जहाँ शालग्रामकी शिला तथा द्वारकाकी शिला (गोमतीचक्र) हों, उन दोनों शिलाओंके समीप पूर्वोक्त स्तोत्रका जप करे। ऐसा करनेसे वह संसारमें नाना प्रकारके सुख भोगकर अन्तमें अपने सहित एक सौ एक पीढ़ीका उद्धार कर देता है। जो कार्तिकमें प्रतिदिन प्रातःस्नान करके मधुसूदनकी पूजा करता और भगवान्‌के सामने शतनाम-स्तोत्रको पढ़ता है, वह परमगतिको प्राप्त होता है। बेटा! माघ-स्नान करनेवाला पुरुष यदि भगवान्‌की पूजा करके उनका ध्यान करता और इस स्तोत्रका जप अथवा श्रवण करता है तो वह मदिरा-पान आदिसे होनेवाले पापोंका भी त्याग करके परमपदको प्राप्त होता है। बिना किसी विघ्नके उसे विष्णुपदकी प्राप्ति हो जाती है। जो मनुष्य श्राद्ध-कालमें भोजन करनेवाले ब्राह्मणोंके सामने इस पापनाशक शतनाम-स्तोत्रका पाठ करता है, उसके पितर संतुष्ट होकर परमगतिको प्राप्त होते हैं। यह स्तोत्र सुख तथा मोक्ष प्रदान करनेवाला है। निश्चय ही इसका जप करना चाहिये। जपकर्ता मनुष्य भगवान् श्रीविष्णुकी कृपासे पूर्ण सिद्ध हो जाता है—उसे सब प्रकारकी सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं।

---

* शतनामस्तोत्रका मूल पाठ इस प्रकार है—

नमाम्यहं हृषीकेशं केशवं मधुसूदनम्। सूदनं सर्वदैत्यानां नारायणमनामयम्॥
जयन्तं विजयं कृष्णमनन्तं वामनं तथा। विष्णुं विश्वेश्वरं पुण्यं विश्वात्मानं सुरार्चितम्॥
अनघं त्वघहर्तारं नारसिंहं श्रियःप्रियम्। श्रीपतिं श्रीधरं श्रीदं श्रीनिवासं महोदयम्॥
श्रीरामं माधवं मोक्षं क्षमारूपं जनार्दनम्। सर्वज्ञं सर्ववेत्तारं सर्वेशं सर्वदायकम्॥
हरिं मुरारिं गोविन्दं पद्मनाभं प्रजापतिम्। आनन्दं ज्ञानसम्पन्नं ज्ञानदं ज्ञानदायकम्॥
अच्युतं सबलं चन्द्रवक्त्रं व्याप्तपरावरम्। योगेश्वरं जगद्योनिं ब्रह्मरूपं महेश्वरम्॥
मुकुन्दं चापि वैकुण्ठमेकरूपं कविं ध्रुवम्। वासुदेवं महादेवं ब्रह्मण्यं ब्राह्मणप्रियम्॥
गोप्रियं गोहितं यज्ञं यज्ञाङ्गं यज्ञवर्धनम्। यज्ञस्यापि सुभोक्तारं वेदवेदाङ्गपारगम्॥
वेदज्ञं वेदरूपं तं विद्यावासं सुरेश्वरम्। प्रत्यक्षं च महाहंसं शङ्खपाणिं पुरातनम्॥
पुष्करं पुष्कराक्षं च वाराहं धरणीधरम्। प्रद्युम्नं कामपालं च व्यासध्यातं महेश्वरम्॥
सर्वसौख्यं महासौख्यं सांख्यं च पुरुषोत्तमम्। योगरूपं महाज्ञानं योगीशमजितं प्रियम्॥
असुरारिं लोकनाथं पद्महस्तं गदाधरम्। गुहावासं सर्ववासं पुण्यवासं महाजनम्॥
वृन्दानाथं बृहत्कायं पावनं पापनाशनम्। गोपीनाथं गोपसखं गोपालं गोगणाश्रयम्॥
परात्मानं पराधीशं कपिलं कार्यमानुषम्। नमामि निखिलं नित्यं मनोवाक्कायकर्मभिः॥
नाम्नां शतेनापि तु पुण्यकर्ता यः स्तौति कृष्णं मनसा स्थिरेण। स याति लोकं मधुसूदनस्य विहाय दोषानिह पुण्यभूतः॥
नाम्नां शतं महापुण्यं सर्वपातकशोधनम्। अनन्यमनसा ध्यायेज्जपेद्ध्यानसमन्वितः॥
नित्यमेव नरः पुण्यं गङ्गास्नानफलं लभेत्। तस्मात्तु सुस्थिरो भूत्वा समाहितमना जपेत्॥

(८७। १—२५)

पड़ते हैं। सोनेके समान रंगवाले पीताम्बरसे गोविन्दकी सुषमा और भी बढ़ गयी है। रत्नजटित मुँदरियोंसे सुशोभित अँगुलियोंके कारण भगवान् बड़े सुन्दर प्रतीत होते हैं। सब प्रकारके आयुधोंसे पूर्ण और दिव्य आभूषणोंसे विभूषित श्रीहरि गरुड़की पीठपर विराजमान हैं। वे इस विश्वके स्रष्टा और जगत्के स्वामी हैं। जो मनुष्य इस प्रकार भगवान्की मनोहर झाँकीका प्रतिदिन अनन्य चित्तसे ध्यान करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो अन्तमें भगवान् श्रीविष्णुके लोकको जाता है। बेटा! इस जगदीश्वरके ध्यानका यह सारा प्रकार मैंने तुम्हे बता दिया।*

अब व्रतोंके भेद बताता हूँ, जिनके द्वारा भगवान् श्रीविष्णुकी आराधना होती है। जया, विजया, पापनाशिनी, जयन्ती, त्रिस्पृशा, वञ्जुली, तिलगन्धा, अखण्डा तथा मनोरमा—ये सब एकादशी या द्वादशियोंके भेद हैं। इसके सिवा और भी बहुत सी ऐसी तिथियाँ हैं, जिनका प्रभाव दिव्य है। अशून्यशयन और जन्माष्टमी—ये दोनों महान् व्रत हैं। इन व्रतोंका आचरण करनेसे प्राणियोंके सब पाप दूर हो जाते हैं।

पुत्र! अब भगवान्के शतनाम स्तोत्रका वर्णन करता हूँ। *यह मनुष्योंकी पापराशिका नाशक और उत्तम गति प्रदान* करनेवाला है। विष्णुके इस शतनाम स्तोत्रके ऋषि ब्रह्मा, देवता ओंकार तथा छन्द अनुष्टुप् है। सम्पूर्ण कामनाओंकी सिद्धि तथा मोक्षके निमित्त इसका विनियोग किया जाता है।*

हृषीकेश (इन्द्रियोंके स्वामी), केशव, मधुसूदन (मधु दैत्यको मारनेवाले), सर्वदैत्यसूदन (सम्पूर्ण दैत्योंके संहारक), नारायण, अनामय (रोग शोकसे रहित), जयन्त, विजय, कृष्ण, अनन्त, वामन, विष्णु, विश्वेश्वर, पुण्य, विश्वात्मा, सुरार्चित (देवताओंद्वारा पूजित), अनघ (पापरहित), अघहर्ता, नारसिंह, श्रीप्रिय (लक्ष्मीके प्रियतम), श्रीपति, श्रीधर, श्रीद (लक्ष्मी प्रदान करनेवाले), श्रीनिवास, महोदय (महान् अभ्युदयशाली), श्रीराम, माधव, मोक्ष, क्षमारूप, जनार्दन, सर्वज्ञ, सर्ववेत्ता, सर्वेश्वर, सर्वदायक, हरि, मुरारि, गोविन्द, पद्मनाभ, प्रजापति, आनन्द, ज्ञानसम्पन्न, ज्ञानद, ज्ञानदायक, अच्युत, सबल, चन्द्रवक्त्र (चन्द्रमाके समान मनोहर मुखवाले), व्याप्तपरावर (कार्य-कारणरूप सम्पूर्ण जगत्में व्याप्त), योगेश्वर, जगद्योनि (जगत्की उत्पत्तिके स्थान), ब्रह्मरूप, महेश्वर, मुकुन्द, वैकुण्ठ, एकरूप, कवि, ध्रुव, वासुदेव, महादेव, ब्रह्मण्य, ब्राह्मणप्रिय, गोप्रिय, गोहित, यज्ञ, यज्ञाङ्ग, यज्ञवर्धन (यज्ञोंका विस्तार करनेवाले), यज्ञभोक्ता, वेद वेदाङ्गपारग, वेदज्ञ, वेदरूप, विद्यावास, सुरेश्वर, प्रत्यक्ष, महाहंस, शङ्खपाणि, पुरातन, पुष्कर, पुष्कराक्ष, वाराह, धरणीधर, प्रद्युम्न, कामपाल, व्यासध्यात (व्यासजीके द्वारा चिन्तित), महेश्वर (महान् ईश्वर), सर्वसौख्य, महासौख्य, सांख्य, पुरुषोत्तम, योगरूप, महाज्ञान, योगीश्वर, अजित, प्रिय, असुरारि, लोकनाथ, पद्महस्त, गदाधर, गुहावास,

* द्वितीयं तु प्रवक्ष्यामि ध्यानस्य ध्यानं महात्मनः ।
मूर्ताकारं तु साकारं निराकारं निरामयम् ॥
ब्रह्माण्डं सर्वमखिलं वासितं यस्य वासनात् ।
स तस्माद् वासुदेवेति उच्यते मम नन्दन ॥
वर्षमाणस्य मेघस्य यद्वर्णं तस्य तद्भवेत् ।
सूर्यतेजःप्रतीकाशं चतुर्बाहुं सुरेश्वरम् ॥
दक्षिणे शोभते शङ्खो हेमरत्नविभूषितः ।
सूर्यबिम्बसमाकारं चक्रं पद्मप्रतिष्ठितम् ॥
कौमोदकी गदा तस्य महासुरविनाशिनी ।
वामे च शोभते वत्स करे तस्य महात्मनः ॥
महापद्मं तु गन्धाढ्यं तस्य दक्षिणहस्तगम् ।
शोभमानं सदा ध्यायेत् सायुधं कमलाप्रियम् ॥
कम्बुग्रीवं वृत्तमास्यं पद्मपत्रनिभेक्षणम् ।
राजमानं हृषीकेशं दशनैः रत्नसन्निभैः ॥
गुडाकेशाः सन्ति यस्य अधरं बिम्बसंनिभम् ।
शोभते पुण्डरीकाक्षः किरीटेनापि पुत्रक ॥
विशालेनापि रूपेण केशवस्तु सुचक्षुषा ।
कौस्तुभेनापि वै तेन राजमानो जनार्दनः ॥
सूर्यतेजःप्रकाशाभ्यां कुण्डलाभ्यां प्रभाति च ।
श्रीवत्साङ्केन पुण्येन सर्वदा राजते हरिः ॥
केयूरकङ्कणैर्हारैर्मौक्तिकैर्ऋक्षसन्निभैः ।
वपुषा भ्राजमानस्तु विजयो जयतां वरः ॥
राजते सोऽपि गोविन्दो हेमवर्णेन वाससा ।
मुद्रिकारत्नयुक्ताभिरङ्गुलीभिर्विराजते ॥
सर्वायुधैः सुसम्पूर्णो दिव्यैराभरणैर्हरिः ।
वैनतेयसमारूढो लोककर्ता जगत्पतिः ॥
एवं स ध्यायते नित्यमनन्यमनसा नरः ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥
एतत्ते सर्वमाख्यातं ध्यानमेव जगत्पतेः ॥
(८६ । ७८-९२)

* शतनाम स्तोत्रका विनियोग इस प्रकार है—ॐ अस्य श्रीविष्णुशतनामस्तोत्रस्य ब्रह्मा ऋषिरनुष्टुप् छन्दः प्रणवो देवता सर्वकामिकसंसिद्ध्यै मोक्षार्थे च जपे विनियोगः ।

सर्ववास, पुण्यवास, महाजन, वृन्दानाथ, बृहत्काय, पावन, पापनाशन, गोपीनाथ, गोपसख, गोपाल, गोगणाश्रय, परात्मा, पराधीश, कपिल तथा कार्यमानुष (संसारका उद्धार करनेके लिये मानव शरीर धारण करनेवाले) आदि नामोंसे प्रसिद्ध सर्वस्वरूप परमेश्वरको मैं प्रतिदिन मन, वाणी तथा क्रियाद्वारा नमस्कार करता हूँ। जो पुण्यात्मा पुरुष शतनाम-स्तोत्र पढ़कर स्थिर चित्तसे भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति करता है, वह सम्पूर्ण दोषोंका त्याग करके इस लोकमें पुण्यस्वरूप हो जाता है तथा अन्तमें वह भगवान् मधुसूदनके लोकको प्राप्त होता है। यह शतनाम-स्तोत्र महान् पुण्यका जनक और समस्त पातकोंकी शुद्धि करनेवाला है। मनुष्यको ध्यानयुक्त होकर अनन्यचित्तसे इसका जप और चिन्तन करना चाहिये। प्रतिदिन इसका जप करनेवाले पुरुषको नित्यप्रति गङ्गास्नानका फल मिलता है। इसलिये सुस्थिर और एकाग्र चित्त होकर इसका जप करना उचित है।*

सुखकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको चाहिये कि जहाँ शालग्रामकी शिला तथा द्वारकाकी शिला (गोमतीचक्र) हों, उन दोनों शिलाओंके समीप पूर्वोक्त स्तोत्रका जप करे। ऐसा करनेसे वह संसारमें नाना प्रकारके सुख भोगकर अन्तमें अपने सहित एक सौ एक पीढ़ीका उद्धार कर देता है। जो कार्तिकमें प्रतिदिन प्रातःस्नान करके मधुसूदनकी पूजा करता और भगवान्‌के सामने शतनाम-स्तोत्रको पढ़ता है, वह परमगतिको प्राप्त होता है। बेटा! माघ-स्नान करनेवाला पुरुष यदि भगवान्‌की पूजा करके उनका ध्यान करता और इस स्तोत्रका जप अथवा श्रवण करता है तो वह मदिरा-पान आदिसे होनेवाले पापोंका भी त्याग करके परमपदको प्राप्त होता है। बिना किसी विघ्नके उसे विष्णुपदकी प्राप्ति हो जाती है। जो मनुष्य श्राद्ध-कालमें भोजन करनेवाले ब्राह्मणोंके सामने इस पापनाशक शतनाम-स्तोत्रका पाठ करता है, उसके पितर संतुष्ट होकर परमगतिको प्राप्त होते हैं। यह स्तोत्र सुख तथा मोक्ष प्रदान करनेवाला है। निश्चय ही इसका जप करना चाहिये। जपकर्ता मनुष्य भगवान् श्रीविष्णुकी कृपासे पूर्ण सिद्ध हो जाता है—उसे सब प्रकारकी सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं।

---

* शतनामस्तोत्रका मूल पाठ इस प्रकार है—

नमाम्यहं हृषीकेशं केशवं मधुसूदनम्। सूदनं सर्वदैत्यानां नारायणमनामयम्॥
जयन्तं विजयं कृष्णमनन्तं वामनं तथा। विष्णुं विश्वेश्वरं पुण्यं विश्वात्मानं सुरार्चितम्॥
अनघं त्वघहर्तारं नारसिंहं श्रियःप्रियम्। श्रीपतिं श्रीधरं श्रीदं श्रीनिवासं महोदयम्॥
श्रीरामं माधवं मोक्षं क्षमारूपं जनार्दनम्। सर्वज्ञं सर्ववेत्तारं सर्वेशं सर्वदायकम्॥
हरिं मुरारिं गोविन्दं पद्मनाभं प्रजापतिम्। आनन्दं ज्ञानसम्पन्नं ज्ञानदं ज्ञानदायकम्॥
अच्युतं सबलं चन्द्रवक्त्रं व्याप्तपरावरम्। योगेश्वरं जगद्योनिं ब्रह्मरूपं महेश्वरम्॥
मुकुन्दं चापि वैकुण्ठमेकरूपं कविं ध्रुवम्। वासुदेवं महादेवं ब्रह्मण्यं ब्राह्मणप्रियम्॥
गोप्रियं गोहितं यज्ञं यज्ञाङ्गं यज्ञवर्धनम्। यज्ञस्यापि सुभोक्तारं वेदवेदाङ्गपारगम्॥
वेदज्ञं वेदरूपं तं विद्यावासं सुरेश्वरम्। प्रत्यक्षं च महाहंसं शङ्खपाणिं पुरातनम्॥
पुष्करं पुष्कराक्षं च वाराहं धरणीधरम्। प्रद्युम्नं कामपालं च व्यासध्यातं महेश्वरम्॥
सर्वसौख्यं महासौख्यं सांख्यं च पुरुषोत्तमम्। योगरूपं महाज्ञानं योगीशमजितं प्रियम्॥
असुरारिं लोकनाथं पद्महस्तं गदाधरम्। गुहावासं सर्ववासं पुण्यवासं महाजनम्॥
वृन्दानाथं बृहत्कायं पावनं पापनाशनम्। गोपीनाथं गोपसखं गोपालं गोगणाश्रयम्॥
परात्मानं पराधीशं कपिलं कार्यमानुषम्। नमामि निखिलं नित्यं मनोवाक्कायकर्मभिः॥
नाम्नां शतेनापि तु पुण्यकर्ता यः स्तौति कृष्णं मनसा स्थिरेण। स याति लोकं मधुसूदनस्य विहाय दोषानिह पुण्यभूतः॥
नाम्नां शतं महापुण्यं सर्वपातकशोधनम्। अनन्यमनसा ध्यायेज्जपेद्ध्यानसमन्वितः॥
नित्यमेव नरः पुण्यं गङ्गास्नानफलं लभेत्। तस्मात्तु सुस्थिरो भूत्वा समाहितमना जपेत्॥

(८७। १—२५)

कुञ्जलका अपने पुत्र विज्वलको उपदेश—महर्षि जैमिनिका सुबाहुसे दानकी महिमा कहना तथा नरक और स्वर्गमें जानेवाले पुरुषोंका वर्णन



तदनन्तर कुञ्जलने अपने पुत्र विज्वलको उपदेश देते हुए कहा—'बेटा! प्रत्येक भोगमें शुभ और अशुभ कर्म ही कारण हैं। पुण्य कर्मसे जीव सुख भोगता है और पाप-कर्मसे दुःखका अनुभव करता है। किसान अपने खेतमें जैसा बीज बोता है, वैसा ही फल उसे प्राप्त होता है। इसी प्रकार जैसा कर्म किया जाता है, वैसे ही फलका उपभोग किया जाता है। इस शरीरके विनाशका कारण भी कर्म ही है। हम सब लोग कर्मके अधीन हैं। संसारमें कर्म ही जीवोंकी संतान है। कर्म ही उनके बन्धु-बान्धव हैं तथा कर्म ही यहाँ पुरुषको सुख-दुःखमें प्रवृत्त करते हैं। जैसे किसानको उसके प्रयत्नके अनुसार खेतीका फल प्राप्त होता है, उसी प्रकार पूर्वजन्मका किया हुआ कर्म ही कर्ताको मिलता है। जीव अपने कर्मोंके अनुसार ही देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी और स्थावर योनियोंमें जन्म लेता है तथा उन योनियोंमें वह सदा अपने किये हुए कर्मको ही भोगता है। दुःख और सुख दोनों अपने ही किये हुए कर्मोंके फल हैं। जीव गर्भकी शय्यापर सोकर पूर्वशरीरके किये हुए शुभाशुभ कर्मोंका फल भोगता है। पृथ्वीपर कोई भी पुरुष ऐसा नहीं है, जो पूर्वजन्मके किये हुए कर्मको अन्यथा कर सके। सभी जीव अपने कमाये हुए सुख-दुःखको ही भोगते हैं। भोगके बिना किये हुए कर्मका नाश नहीं होता। पूर्वजन्मके बन्धनस्वरूप कर्मको कौन भेद सकता है।

बेटा! विघ्न एक प्रकारके विघ्न हैं। जरा आदि अवस्थाएँ उपद्रव हैं। ये पूर्वजन्मके कर्मोंसे पीड़ित मनुष्यको पुनः पुनः पीड़ा पहुँचाते रहते हैं। जिसको जहाँ भी सुख या दुःख भोगना होता है, दैव उसे बलपूर्वक वहाँ पहुँचा देता है। जीव कर्मोंसे बँधा रहता है। प्रारब्धको ही जीवोंके सुख-दुःखका उत्पादक बताया गया है।

महाराज! चोल देशमें सुबाहु नामके एक राजा हो गये हैं। जैमिनि नामके ब्राह्मण उनके पुरोहित थे। एक दिन पुरोहितने राजा सुबाहुको सम्बोधित करके कहा—'राजन्! आप उत्तम-उत्तम दान दीजिये। दानके ही प्रभावसे सुख भोगा जाता है। मनुष्य मरनेके पश्चात् दानके ही बलसे दुर्गम लोकोंको प्राप्त होता है। दानसे सुख और सनातन यशकी प्राप्ति होती है। दानसे ही मर्त्यलोकमें मनुष्यकी उत्तम कीर्ति होती है। जबतक इस जगत्‌में कीर्ति स्थिर रहती है, तबतक उसका कर्ता स्वर्गलोकमें निवास करता है। अतः मनुष्योंको चाहिये कि वे पूर्ण प्रयत्न करके सदा दान करते रहें।'

राजाने पूछा—द्विजश्रेष्ठ! दान और तपस्या—इन दोमें दुष्कर कौन है? तथा परलोकमें जानेपर कौन महान् फलको देनेवाला होता है? यह मुझे बतलाइये।

जैमिनि बोले—राजन्! इस पृथ्वीपर दानसे बढ़कर दुष्कर कार्य दूसरा कोई नहीं है। यह बात प्रत्यक्ष देखी जाती है। सारा लोक इसका साक्षी है। संसारमें लोभसे मोहित मनुष्य धनके लिये अपने प्यारे प्राणोंकी भी परवा न करके समुद्र और घने जंगलोंमें प्रवेश कर जाते हैं। कितने ही मनुष्य धनके लिये दूसरोंकी सेवातक स्वीकार कर लेते हैं। विद्वान् लोग धनके लिये पाठ करते हैं तथा दूसरे दूसरे लोग धनकी इच्छासे ही हिंसापूर्ण और कष्टसाध्य कार्य करते हैं। इसी प्रकार कितने ही लोग खेतीके कार्यमें संलग्न होते हैं। इस तरह दुःख उठाकर कमाया हुआ धन प्राणोंसे भी अधिक प्रिय जान पड़ता है। ऐसे धनका परित्याग करना अत्यन्त कठिन है। महाराज! उसमें भी जो न्यायसे उपार्जित धन है, उसे यदि श्रद्धापूर्वक विधिके अनुसार सुपात्रको दान दिया जाय तो उसका फल अनन्त होता है। श्रद्धा देवी धर्मकी पुत्री हैं, वे विश्वको पवित्र एवं अभ्युदयशील बनानेवाली हैं। इतना ही नहीं, वे सावित्रीके समान पावन, जगत्‌को उत्पन्न करनेवाली तथा संसारसागरसे उद्धार करनेवाली हैं। आत्मवादी विद्वान् श्रद्धासे ही धर्मका चिन्तन करते हैं। जिनके पास किसी भी वस्तुका संग्रह नहीं है, ऐसे अकिञ्चन मुनि श्रद्धालु होनेके कारण ही स्वर्गको प्राप्त हुए हैं।*

नृपश्रेष्ठ! दानके कई प्रकार हैं। परन्तु अन्नदानसे बढ़कर प्राणियोंको सद्गति प्रदान करनेवाला दूसरा

---

* श्रद्धा धर्मसुता देवी पावनी विश्वभाविनी॥
सावित्री प्रसवित्री च संसारार्णवतारिणी।
श्रद्धया ध्यायते धर्मो विद्वद्भिश्चात्मवादिभिः॥
निष्किञ्चनास्तु मुनयः श्रद्धावन्तो दिवं गताः।
(९४।४४—४६)

कोई दान नहीं है। इसलिये जलसहित अन्नका दान अवश्य करना चाहिये। दानके समय मधुर और पवित्र वचन बोलनेकी भी आवश्यकता है। अन्नदान संसार सागरसे तारनेवाला, हितसाधक तथा सुख-सम्पत्तिका हेतु है। यदि शुद्ध चित्तसे श्रद्धापूर्वक सुपात्र व्यक्तिको एक बार भी अन्नका दान दिया जाय तो मनुष्य सदा ही उसका उत्तम फल भोगता रहता है। अपने भोजनमेंसे मुट्ठीभर अन्न 'अग्र-ग्रास' के रूपमें अवश्य दान करना चाहिये। उस दानका बहुत बड़ा फल है, उसे अक्षय बताया गया है। जो प्रति-दिन सेरभर या मुट्ठीभर भी अन्न न दे सके, वह मनुष्य पर्व आनेपर आस्तिकता, श्रद्धा तथा भक्तिके साथ एक ब्राह्मणको भोजन करा दे। राजन्! जो प्रतिदिन ब्राह्मणको अन्न देते और जलसहित मिष्टान्न भोजन कराते हैं, वे मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं। वेदोंके पारगामी ऋषि अन्नको ही प्राणस्वरूप बतलाते हैं; अन्नकी उत्पत्ति अमृतसे हुई है। महाराज! जिसने किसीको अन्नका दान किया है, उसने मानो प्राणदान दिया है। इसलिये आप यत्न करके अन्नका दान दीजिये।

सुबाहुने कहा—द्विजश्रेष्ठ! अब मुझसे स्वर्गके गुणोंका वर्णन कीजिये।

जैमिनि बोले—राजन्! स्वर्गमें नन्दनवन आदि अनेकों दिव्य उद्यान हैं, जो अत्यन्त मनोहर, पवित्र और समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाले हैं। इनके सिवा वहाँ परम सुन्दर दिव्य विमान भी हैं। पुण्यात्मा मनुष्य उन विमानोंपर सुखपूर्वक विचरण किया करते हैं। वहाँ नास्तिक नहीं जाते; चोर, असंयमी, निर्दय, चुगलखोर, कृतघ्न और अभिमानी भी नहीं जाने पाते। जो सत्यके आधारपर रहनेवाले, शूर, दयालु, क्षमाशील, याज्ञिक तथा दानशील हैं, वे ही मनुष्य वहाँ जाने पाते हैं। वहाँ किसीको रोग बुढ़ापा, मृत्यु, शोक, जाड़ा, गर्मी, भूख, प्यास और ग्लानि नहीं सताती। राजन्! ये तथा और भी बहुत-से स्वर्गलोकके गुण हैं। अब वहाँके दोषोंका वर्णन सुनिये। वहाँ सबसे बड़ा दोष यह है कि दूसरोंकी अपनेसे बढ़ी हुई सम्पत्ति देखकर मनमें असंतोष होता है तथा स्वर्गीय सुखमें आसक्त चित्तवाले प्राणियोंका [पुण्य क्षीण होते ही] सहसा वहाँसे पतन हो जाता है। यहाँ जो शुभ कर्म किया जाता है, उसका फल वहीं (स्वर्गमें) भोगा जाता है। राजन्! यह कर्मभूमि है और स्वर्गको भोगभूमि माना गया है।

सुबाहुने कहा—ब्रह्मन्! स्वर्गके अतिरिक्त जो दोष-रहित सनातन लोक हों, उनका मुझसे वर्णन कीजिये।

जैमिनि बोले—राजन्! ब्रह्मलोकसे ऊपर भगवान् श्रीविष्णुका परम पद है। वह शुभ, सनातन एवं ज्योतिर्मय धाम है। उसीको परब्रह्म कहा गया है। विषयासक्त मूढ़ पुरुष वहाँ नहीं जा सकते। दम्भ, लोभ, भय, क्रोध, द्रोह और द्वेषसे आक्रान्त मनुष्योंका वहाँ प्रवेश नहीं हो सकता। जो ममता और अहंकारसे रहित, निर्द्वन्द्व, जितेन्द्रिय तथा ध्यान-योगपरायण हैं, वे साधु पुरुष ही उस धाममें प्रवेश करते हैं।

सुबाहुने कहा—महाभाग! मैं स्वर्गमें नहीं जाऊँगा, मुझे उसकी इच्छा नहीं है। जिस स्वर्गसे एक दिन नीचे गिरना पड़ता है, उसकी प्राप्ति करानेवाला कर्म ही मैं नहीं करूँगा। मैं तो ध्यानयोगके द्वारा देवेश्वर लक्ष्मीपतिका पूजन करूँगा और दाह तथा प्रलयसे रहित विष्णु-लोकमें जाऊँगा।

जैमिनि बोले—राजन्! तुम्हारा कहना ठीक है, तुमने सबके कल्याणकी बात कही है। वास्तवमें राजा दानशील हुआ करते हैं। वे बड़े बड़े यज्ञोंद्वारा भगवान् श्रीविष्णुका यजन करते हैं। यज्ञोंमें सब प्रकारके दान दिये जाते हैं। उत्तम यज्ञोंमें पहले अन्न और फिर वस्त्र एवं ताम्बूलका दान किया जाता है। इसके बाद सुवर्णदान, भूमिदान और गोदानकी बात कही जाती है। इस प्रकार उत्तम यज्ञ करके राजालोग अपने शुभ कर्मोंके फलस्वरूप विष्णुलोकमें जाते हैं। दानसे तृप्तिलाभ करते और संतुष्ट रहते हैं। अतः राजेन्द्र! आप भी न्यायोपार्जित धनका दान कीजिये। दानसे ज्ञान और ज्ञानसे आपको सिद्धि प्राप्त होगी।

जो मनुष्य इस उत्तम और पवित्र आख्यानका श्रवण करेगा, वह सब पापोंसे मुक्त होकर विष्णुलोकमें जायगा।

सुबाहुने पूछा—ब्रह्मन्! मनुष्य किस दुष्कर्मसे नरकमें पड़ते हैं और किस शुभकर्मके प्रभावसे स्वर्गमें जाते हैं? यह बात मुझे बताइये।

जैमिनिने कहा—जो द्विज लोभसे मोहित हो पावन ब्राह्मणत्वका परित्याग करके कुकर्मसे जीविका चलाते हैं, वे नरकगामी होते हैं। जो नास्तिक हैं, जिन्होंने धर्मकी मर्यादा भङ्ग की है; जो काम-भोगके लिये उत्कण्ठित, दाम्भिक और कृतघ्न हैं; जो ब्राह्मणोंको धन देनेकी प्रतिज्ञा करके भी नहीं देते, चुगली खाते, अभिमान रखते और झूठ बोलते हैं; जिनकी बातें परस्पर विरुद्ध होती हैं; जो

दूसरोंका धन हड़प लेते, दूसरोंपर कलङ्क लगानेके लिये उत्सुक रहते और परायी सम्पत्ति देखकर जलते हैं, वे नरकमें जाते हैं। जो मनुष्य सदा प्राणियोंके प्राण लेनेमें लगे रहते, परायी निन्दामें प्रवृत्त होते; कुएँ, बगीचे, पोखरे और पौंसले-को दूषित करते, सरोवरोंको नष्ट भ्रष्ट करते तथा शिशुओं, भृत्यों और अतिथियोंको भोजन दिये बिना ही स्वयं भोजन कर लेते हैं, जिन्होंने पितृयाग (श्राद्ध) और देवयाग (यज्ञ) का त्याग कर दिया है, जो संन्यास तथा अपने रहनेके आश्रमको कलङ्कित करते हैं और मित्रोंपर लाञ्छन लगाते हैं, वे सब-के-सब नरकगामी होते हैं।

जो प्रयाज नामक यज्ञों, शुद्ध चित्तवाली कन्याओं, साधु पुरुषों और गुरुजनोंको दूषित करते हैं; जो काठ, कील, शूल अथवा पत्थर गाड़कर रास्ता रोकते हैं, कामसे पीड़ित रहते और सब वर्णोंके यहाँ भोजन कर लेते हैं तथा जो भोजनके लिये द्वारपर आये हुए जीविकाहीन ब्राह्मणोंकी अवहेलना करते हैं, वे नरकोंमें पड़ते हैं। जो दूसरोंके खेत, जीविका, घर और प्रेमको नष्ट करते हैं; जो हथियार बनाते और धनुष-बाणका विक्रय करते हैं; जो मूढ मानव अनाथ, वैष्णव, दीन, रोगातुर और वृद्ध पुरुषोंपर दया नहीं करते तथा जो पहले कोई नियम लेकर फिर संयमहीन होनेके कारण चञ्चलतावश उसका परित्याग कर देते हैं, वे नरकगामी होते हैं।

अब मैं स्वर्गगामी पुरुषोंका वर्णन करूँगा। जो मनुष्य सत्य, तपस्या, ज्ञान, ध्यान तथा स्वाध्यायके द्वारा धर्मका अनुसरण करते हैं, वे स्वर्गगामी होते हैं। जो प्रतिदिन हवन करते तथा भगवान्‌के ध्यान और देवताओंके पूजनमें संलग्न रहते हैं, वे महात्मा स्वर्गलोकके अतिथि होते हैं। जो बाहर-भीतरसे पवित्र रहते, पवित्र स्थानमें निवास करते, भगवान् वासुदेवके भजनमें लगे रहते तथा भक्तिपूर्वक श्रीविष्णुकी शरणमें जाते हैं; जो सदा आदरपूर्वक माता पिताकी सेवा करते और दिनमें नहीं सोते; जो सब प्रकारकी हिंसासे दूर रहते, साधुओंका सङ्ग करते और सबके हितमें संलग्न रहते हैं, वे मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं। जो गुरुजनोंकी सेवामें संलग्न, बड़ोंको आदर देनेवाले, दान न लेनेवाले, सहस्रों मनुष्योंको भोजन परोसनेवाले, सहस्रों मुद्राओंका दान करनेवाले तथा सहस्रों मनुष्योंको दान देनेवाले हैं, वे पुरुष स्वर्गलोकको जाते हैं। जो युवावस्थामें भी क्षमाशील और जितेन्द्रिय हैं; जिनमें वीरता भरी है; जो सुवर्ण, गौ, भूमि, अन्न और वस्त्रका दान करते हैं, जो अपनेसे द्वेष रखनेवालोंके भी दोष कभी नहीं कहते, बल्कि उनके गुणोंका ही वर्णन करते हैं; जो विज्ञ पुरुषोंको देखकर प्रसन्न होते, दान देकर प्रिय वचन बोलते तथा दानके फलकी इच्छाका परित्याग कर देते हैं, वे मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं। जो पुरुष प्रवृत्ति-मार्गमें तथा निवृत्ति-मार्गमें भी मुनियों और शास्त्रोंके कथनानुसार ही आचरण करते हैं, वे स्वर्गलोकके अतिथि होते हैं। जो मनुष्योंसे कटु वचन बोलना नहीं जानते, जो प्रिय वचन बोलनेके लिये प्रसिद्ध हैं; जिन्होंने बावली, कुआँ, सरोवर, पौंसला, धर्मशाला और बगीचे बनवाये हैं; जो मिथ्यावादियोंके लिये भी सत्यपूर्ण बर्ताव करनेवाले और कुटिल मनुष्योंके लिये भी सरल हैं, वे दयालु तथा सदाचारी मनुष्य स्वर्ग-लोकमें जाते हैं।

जो एकमात्र धर्मका अनुष्ठान करके अपने प्रत्येक दिवसको सदा सफल बनाते हैं तथा नित्य ही व्रतका पालन करते हैं; जो शत्रु और मित्रकी समान भावसे सराहना करते और सबको समान दृष्टिसे देखते हैं; जिनका चित्त शान्त है, जो अपने मनको वशमें कर चुके हैं, जिन्होंने भयसे डरे हुए ब्राह्मणों तथा स्त्रियोंकी रक्षाका नियम ले रखा है; जो गङ्गा, पुष्कर तीर्थ और विशेषतः गयामें पितरोंको पिण्ड-दान करते हैं, वे स्वर्गगामी होते हैं। जो इन्द्रियोंके वशमें नहीं रहते, जिनकी संयममें प्रवृत्ति है; जिन्होंने लोभ, भय और क्रोधका परित्याग कर दिया है; जो शरीरमें पीड़ा देनेवाले जूँ, खटमल और डाँस आदि जन्तुओंका भी पुत्रकी भाँति पालन करते हैं—उन्हें मारते नहीं; सर्वदा मन और इन्द्रियोंके निग्रहमें लगे रहते हैं और परोपकारमें ही जीवन व्यतीत करते हैं, वे मनुष्य स्वर्गलोकके अतिथि होते हैं। जो विशेष विधिके अनुसार यज्ञोंका अनुष्ठान करते, सब प्रकारके द्वन्द्वोंको सहते तथा इन्द्रियोंको वशमें रखते हैं; जो पवित्र और सत्त्वगुणमें स्थित रह कर मन, वाणी तथा क्रियाद्वारा भी कभी परायी स्त्रियोंके साथ रमण नहीं करते, निन्दित कर्मोंसे दूर रहते, विहित कर्मोंका अनुष्ठान करते तथा आत्माकी शक्तिको जानते हैं, वे मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं।

जो दूसरोंके प्रतिकूल आचरण करता है, उसे अत्यन्त दुःखदायी घोर नरकमें गिरना पड़ता है तथा जो सदा दूसरोंके अनुकूल चलता है, उस मनुष्यके लिये सुखदायिनी मुक्ति दूर नहीं है। राजन्! कर्मोंद्वारा जिस प्रकार दुर्गति और सुगति प्राप्त होती है, वह सब मैंने तुम्हें यथार्थरूपसे बतला दिया।

कुञ्जल कहता है—धर्म-अधर्मकी सम्पूर्ण गतिके विषयमें महर्षि जैमिनिका भाषण सुनकर राजा सुबाहुने कहा—'द्विजश्रेष्ठ ! मैं भी धर्मका ही अनुष्ठान करूँगा, पापका नहीं। जगत्की उत्पत्तिके स्थानभूत भगवान् वासुदेवका निरन्तर भजन करूँगा।'

इस निश्चयके अनुसार राजा सुबाहुने धर्मके द्वारा भगवान् मधुसूदनका पूजन किया तथा नाना प्रकारके यज्ञोंद्वारा भगवान्की आराधना करके तथा सम्पूर्ण भोगोंको भोगकर वे शीघ्र ही प्रसन्नतापूर्वक विष्णुलोकको पधार गये।

कुञ्जलका अपने पुत्र विज्वलको श्रीवासुदेवाभिधान-स्तोत्र सुनाना

तदनन्तर वक्ताओंमें श्रेष्ठ कुञ्जलने विज्वलको परम पवित्र श्रीवासुदेवाभिधान-स्तोत्रका उपदेश किया—

इस श्रीवासुदेवाभिधान-स्तोत्रके अनुष्टुप् छन्द, नारद ऋषि और ओंकार देवता हैं; सम्पूर्ण पातकोंके नाश तथा चतुर्वर्गकी सिद्धिके लिये इसका विनियोग है।* 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'— यही इस स्तोत्रका मूलमन्त्र है।†

‡जो परम पावन, पुण्यस्वरूप, वेदके ज्ञाता, वेदमन्दिर, विद्याके आधार तथा यज्ञके आश्रय हैं, उन प्रणवस्वरूप परमात्माको मैं नमस्कार करता हूँ। जो आवास (गृह) और आकारसे रहित, उत्तम प्रकाशरूप, महान् अभ्युदयशाली, निर्गुण तथा गुणोंके उत्पादक हैं, उन प्रणवस्वरूप परमात्माको मैं प्रणाम करता हूँ। जो गायत्री-सामका गान करनेवाले, गीतके ज्ञाता, गीतप्रेमी तथा गन्धर्वगीतका अनुभव करनेवाले हैं, उन प्रणवस्वरूप परमात्माको मैं नमस्कार करता हूँ। जो महान् कान्तिमान्, अत्यन्त उत्साही, महामोहके नाशक, सम्पूर्ण जगत्में व्यापक तथा गुणातीत हैं; जो सर्वत्र विद्यमान रहकर शोभायमान हो रहे हैं, प्राणियोंके ऐश्वर्य एवं कल्याणकी वृद्धि करते हैं तथा समताका भाव उत्पन्न करनेके लिये सद्धर्मका प्रसार करनेवाले हैं, उन प्रणवरूप परमेश्वरको मैं नमस्कार करता हूँ। जो विचारक हैं, वेद जिनका स्वरूप है, जो 'यज्ञ' के नामसे पुकारे जाते हैं, यज्ञ जिन्हें अत्यन्त प्रिय है, जो सम्पूर्ण विश्वकी उत्पत्तिके स्थान तथा समस्त जगत्का उद्धार करनेवाले हैं, संसार-सागरमें डूबे हुए प्राणियोंको बचानेके लिये जो नौकारूपसे विराजमान हैं, उन प्रणवस्वरूप श्रीहरिको मैं प्रणाम करता हूँ। जो सम्पूर्ण भूतोंमें निवास करते हैं, नाना रूपोंमें प्रतीत होते हुए भी एक रूपसे विराजमान हैं तथा जो परमधाम और कैवल्य (मोक्ष) के रूपमें प्रतिष्ठित हैं, उन सुखस्वरूप वरदाता भगवान्को मैं प्रणाम करता हूँ।

जो सूक्ष्म, सूक्ष्मतर, शुद्ध, निर्गुण, गुणोंके नियन्ता और प्राकृत भावोंसे रहित हैं, उन वेदसंज्ञक परमात्माको नमस्कार करता हूँ। जो देवताओं और दैत्योंके वियोगसे वर्जित (सर्वदा सबसे संयुक्त), त्रुटियोंसे रहित तथा वेदों और योगियोंके ध्येय हैं, उन ॐकारस्वरूप परमेश्वरको नमस्कार करता हूँ।

---

* ॐ अस्य श्रीवासुदेवाभिधानस्तोत्रस्यानुष्टुप् छन्दः, नारद ऋषिः, ओंकारो देवता, सर्वपातकनाशाय चतुर्वर्गसाधने च विनियोगः।

† 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' इति मन्त्रः। (९८। ३८)

‡ परमं पावनं पुण्यं वेदज्ञं वेदमन्दिरम्। विद्याधारं मखाधारं प्रणवं तं नमाम्यहम्॥
निरावासं निराकारं सुप्रकाशं महोदयम्। निर्गुणं गुणकर्तारं नमामि प्रणवं परम्॥
गायत्रीसाम गायन्तं गीतज्ञं गीतसुप्रियम्। गन्धर्वगीतभोक्तारं प्रणवं तं नमाम्यहम्॥
महाकान्तं महोत्साहं महामोहविनाशनम्। आचिन्वन्तं जगत् सर्वं गुणातीतं नमाम्यहम्॥
भाति सर्वत्र यो भूत्वा भूतानां भूतिवर्धनः। समभावाय सद्धर्मं नमामि प्रणवं परम्॥
विचारं वेदरूपं तं यज्ञाख्यं यज्ञवल्लभम्। योनिं सर्वस्य लोकस्य ओंकारं प्रणमाम्यहम्॥
तारकं सर्वलोकानां नौरूपेण विराजितम्। संसारार्णवमग्नानां नमामि प्रणवं हरिम्॥
वसते सर्वभूतेषु एकरूपेण नैकधा। धामकैवल्यरूपेण नमामि वरदं सुखम्॥
सूक्ष्मं सूक्ष्मतरं शुद्धं निर्गुणं गुणनायकम्। वर्जितं प्राकृतैर्भावैर्वेदाख्यं नमाम्यहम्॥
देवदैत्यवियोगैश्च वर्जितं त्रुटिभिस्तथा। वेदैश्च योगिभिर्ध्येयं तमोङ्कारं नमाम्यहम्॥

व्यापक, विश्वके ज्ञाता, विज्ञानस्वरूप, परमपदरूप, शिव, कल्याणमय गुणोंसे युक्त, शान्त एवं प्रणवरूप ईश्वरको मैं प्रणाम करता हूँ। जिनकी मायाके प्रभावमें आकर ब्रह्मा आदि देवता और असुर भी उनके परम शुद्ध रूपको नहीं जानते तथा जो मोक्षके द्वार हैं, उन परमात्माको मैं नमस्कार करता हूँ।

जो आनन्दके मूलस्रोत, केवल (अद्वितीय) तथा शुद्ध हंसस्वरूप हैं, कार्य-कारणमय जगत् जिनका स्वरूप है, जो गुणोंके नियन्ता तथा महान् प्रभा पुञ्जसे परिपूर्ण हैं, उन श्रीवासुदेवको नमस्कार है। जो पाञ्चजन्य नामक शङ्ख और सूर्यके समान तेजस्वी सुदर्शन चक्रसे विराजमान हैं तथा कौमोदकी गदा जिनकी शोभा बढ़ा रही है, उन भगवान् श्रीविष्णुकी मैं सदा शरण लेता हूँ। जो उत्तम गुणोंसे सम्पन्न हैं, जिन्हें गुणोंका कोश माना जाता है, जो चराचर जगत्के आधार तथा सूर्य एवं अग्निके समान तेजस्वी हैं, उन भगवान् वासुदेवकी मैं शरण लेता हूँ। जो अपने प्रकाशकी किरणोंसे अविद्याके बादलोंको छिन्न भिन्न कर देते हैं, सन्यासधर्मके प्रवर्तक हैं तथा सूर्यके समान तेजसे सबसे ऊँचे लोकमें प्रकाशित होते हैं, उन भगवान् वासुदेवकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ। जो चन्द्रमाके रूपमें अमृतके भँडार हैं, आनन्दकी मात्रासे जिनकी विशेष शोभा हो रही है, देवताओंसे लेकर सम्पूर्ण जीव जिनका आश्रय पाकर ही जीवन धारण करते हैं, उन भगवान् वासुदेवकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ। जो सूर्यके रूपमें सर्वत्र विराजमान रहकर पृथ्वीके रसको सोखते और पुनः नवीन रसकी वृष्टि करते हैं, जो सम्पूर्ण प्राणियोंके भीतर प्राणरूपसे व्याप्त हैं, उन भगवान् वासुदेवकी मैं शरण लेता हूँ। जो महात्मा स्वरूपसे सबकी अपेक्षा ज्येष्ठ हैं, देवताओंके भी आराध्य देव हैं, सम्पूर्ण लोकोंका पालन करते हैं तथा प्रलयकालीन जलमें नौकाकी भाँति स्थित रहते हैं, उन भगवान् वासुदेवकी मैं शरण लेता हूँ। सम्पूर्ण विश्व जिनका स्वरूप है, जो स्थावर और जङ्गम—सभी प्राणियोंके भीतर निवास करते हैं, स्वाहा जिनका मुख है तथा जो देववृन्दकी उत्पत्तिके कारण हैं, उन भगवान् वासुदेवकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ। जो सब प्रकारके परम पवित्र रत्नोंसे परिपूर्ण और शान्तिमय रूपोंसे युक्त हैं, संसारमें गुणज्ञ माने जाते हैं, रत्नोंके अधीश्वर हैं और निर्मल तेजसे शोभा पाते हैं, उन भगवान् वासुदेवकी मैं शरण लेता हूँ। जो सर्वत्र विद्यमान, सबकी मृत्युके हेतु, सबके आश्रय, सर्वमय तथा सर्वस्वरूप हैं, जो इन्द्रियोंके बिना ही विषयोंका अनुभव करते हैं, उन भगवान् वासुदेवकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ। जो अपने तेजोमय स्वरूपसे समस्त लोकों तथा चराचर जगत्के सम्पूर्ण जीवोंका पालन करते हैं तथा केवल ज्ञान ही जिनका स्वरूप है, उन परम शुद्ध भगवान् वासुदेवकी मैं शरण लेता हूँ।

व्यापक विश्ववेत्तार विज्ञान परम पदम्। शिव शिवगुण शान्त वन्दे प्रणवमीश्वरम्॥
यस्य मायां प्रविष्टास्तु ब्रह्माद्याश्च सुरासुरा। न विदन्ति पर शुद्ध मोक्षद्वार नमाम्यहम्॥
आनन्दकन्दाय च केवलाय शुद्धाय हंसाय परावराय। नमोऽस्तु तस्मै गुणनायकाय श्रीवासुदेवाय महाप्रभाय॥
श्रीपाञ्चजन्येन विराजमान रविप्रभेणापि सुदर्शनेन। गदाख्यवेनापि विशोभमान विष्णु सदैव शरण प्रपद्ये॥
य वेद कोश सुगुण गुणानामाधारभूत सचराचरस्य। य सूर्यवैश्वानरतुल्यतेजस त वासुदेव शरण प्रपद्ये॥
तमोघनानां स्वकरैर्विनाश करोति नित्य यतिधर्महेतुम्। उद्योतमान रवितेजसोर्ध्वं त वासुदेव शरण प्रपद्ये॥
सुधानिधान विमलांशुरूपमानन्दमानेन विराजमानम्। य प्राप्य जीवन्ति सुरादिलोकास्त वासुदेव शरण प्रपद्ये॥
यो भाति सर्वत्र रविप्रभावै करोति शोष च रस ददाति। य प्राणिनामन्तरग स वायुस्त वासुदेव शरण प्रपद्ये॥
ज्येष्ठस्तु रूपेण स देवदेवो बिभर्ति लोकान् सकलान् महात्मा। एकार्णवे नौरिव वर्तते यस्त वासुदेव शरण प्रपद्ये॥
अन्तर्गतो लोकमय सदैव भवत्यसौ स्थावरजङ्गमानाम्। स्वाहामुखो देवगणस्य हेतुस्त वासुदेव शरण प्रपद्ये॥
रत्नै सुपुण्यै सकलैस्तु पुष्ट ससौम्यरूपैर्गुणवित् स लोके। रत्नाधिपो निर्मलतेजसैव त वासुदेव शरण प्रपद्ये॥
अस्त्येव सर्वत्र विनाशहेतु सर्वाश्रय सर्वमय स सर्व। विना हृषीकैर्विषयान् प्रभुङ्क्ते त वासुदेव शरण प्रपद्ये॥
तेज स्वरूपेण बिभर्ति लोकान् सत्त्वान् समस्तान् स चराचरस्य। निष्केवलो ज्ञानमय सुशुद्धस्त वासुदेव शरणं प्रपद्ये॥

जो दैत्योंका अन्त करनेवाले, दुःख-नाशके मूल कारण, परम शान्त, शक्तिशाली और विराट्‌रूपधारी हैं; जिनको पाकर देवता भी मुक्त हो जाते हैं, उन भगवान् वासुदेवकी मैं शरण लेता हूँ। जो सुखस्वरूप और सुखसे पूर्ण हैं, सबके अकारण प्रेमी हैं, जो देवताओंके स्वामी और ज्ञानके महासागर हैं, जो परम हितैषी, कल्याणस्वरूप, सत्यके आश्रय और सत्त्व गुणमें स्थित हैं, उन भगवान् वासुदेवका मैं आश्रय लेता हूँ। यज्ञ और पुरुषार्थ जिनके रूप हैं; जो सत्यसे युक्त, लक्ष्मीके पति, पुण्यस्वरूप, विज्ञानमय तथा सम्पूर्ण जगत्‌के आश्रय हैं, उन भगवान् वासुदेवकी मैं शरण लेता हूँ। जो क्षीरसागरके बीचमें शेषनाग-की विशाल शय्यापर शयन करते हैं तथा भगवती लक्ष्मी जिनके युगल चरणारविन्दोंकी सेवा करती रहती हैं, उन भगवान् वासुदेवकी मैं शरण लेता हूँ। श्रीवासुदेवके दोनों चरण-कमल पुण्यसे युक्त, सबका कल्याण करनेवाले तथा सर्वदा अनेकों तीर्थोंसे सुसेवित हैं, मैं उन्हें प्रतिदिन प्रणाम करता हूँ। श्रीवासुदेवका चरण समस्त पापोंको हरनेवाला है, वह लाल कमलकी शोभा धारण करता है; उसके तलवेमें ध्वजा और वायुके चिह्न हैं; वह नूपुरों तथा मुद्रिकाओंसे विभूषित है। ऐसी सुषमासे युक्त भगवान् वासुदेवके चरणको मैं प्रणाम करता हूँ। देवता, उत्तम सिद्ध, मुनि तथा नागराज वासुकि आदि जिसका भक्तिपूर्वक सदा ही स्तवन करते हैं, श्रीवासुदेवके उस पवित्र चरणकमलको मैं प्रतिदिन प्रणाम करता हूँ। जिनकी चरणोदकस्वरूपा गङ्गा-जीमें गोते लगानेवाले प्राणी पवित्र एवं निष्पाप होकर स्वर्गलोकको जाते हैं तथा परम संतुष्ट मुनिजन उसमें अवगाहन करके मोक्ष प्राप्त करते हैं, उन भगवान् वासुदेव-की मैं शरण लेता हूँ। जहाँ भगवान् श्रीविष्णुका चरणोदक रहता है, वहाँ गङ्गा आदि तीर्थ सदैव मौजूद रहते हैं; आज भी जो लोग उसका पान करते हैं, वे पापी रहे हों तो भी शुद्ध होकर श्रीविष्णुभगवान्‌के उत्तम धामको जाते हैं। जिनका शरीर अत्यन्त भयंकर पापपङ्कमें सना है, वे भी जिनके चरणोदकसे अभिषिक्त होनेपर मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं, उन परमेश्वरके युगलचरणोंको मैं निरन्तर प्रणाम करता हूँ। उत्तम सुदर्शन चक्र धारण करनेवाले महात्मा श्रीविष्णुके नैवेद्यका भक्षण करनेमात्रसे मनुष्य वाजपेय यज्ञका फल प्राप्त करते हैं तथा सम्पूर्ण पदार्थ पा जाते हैं। दुःखोंका नाश करनेवाले, मायासे रहित, सम्पूर्ण कलाओंसे युक्त तथा समस्त गुणोंके ज्ञाता जिन भगवान् नारायणका ध्यान करके मनुष्य उत्तम गतिको प्राप्त होते हैं, उन श्रीवासुदेवको मैं सदा प्रणाम करता हूँ।

जो ऋषि, सिद्ध और चारणोंके वन्दनीय हैं; देवगण सदा जिनकी पूजा करते हैं, जो संसारकी सृष्टिका साधन जुटानेमें ब्रह्मा आदिके भी प्रभु हैं, संसाररूपी महासागरमें गिरे हुए जीवका जो उद्धार करनेवाले हैं, जिनमें वत्सलता भरी हुई है, जो श्रेष्ठ और समस्त कामनाओंको सिद्ध करने-वाले हैं, उन भगवान्‌के उत्तम चरणोंको मैं भक्तिपूर्वक प्रणाम

दैत्यान्तकं दुःखविनाशमूलं शान्तं परं शक्तिमयं विशालम्। संप्राप्य देवा विलयं प्रयान्ति तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये ॥
सुखं सुखान्तं सुहृदं सुरेशं ज्ञानार्णवं तं सुहितं हितं च। सत्याश्रयं सत्यगुणोपविष्टं तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये ॥
यज्ञस्वरूपं पुरुषार्थरूपं सत्यन्वितं मापतिमेव पुण्यम्। विज्ञानमेतं जगतां निवासं तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये ॥
अम्भोधिमध्ये शयनं हि यस्य नागाङ्गभोगे शयने विशाले। श्रीः पादपद्मद्वयमेव सेवते तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये ॥
पुण्यान्वितं शङ्करमेव नित्यं तीर्थैरनेकैः परिसेव्यमानम्। तत्पादपद्मद्वयमेव तस्य श्रीवासुदेवस्य नमामि नित्यम् ॥
अघापहं वा यदि वाम्बुजं तद्रक्तोत्पलाभं ध्वजवायुयुक्तम्। अलंकृतं नूपुरमुद्रिकाभिः श्रीवासुदेवस्य नमामि पादम् ॥
देवैस्तु सिद्धैर्मुनिभिः सदैव नुतं सुभक्त्या भुजगाधिपैश्च। तत्पादपङ्केरुहमेव पुण्यं श्रीवासुदेवस्य नमामि नित्यम् ॥
यस्यापि पादाम्भसि मज्जमानाःपूतं दिवं यान्ति विकल्मषास्ते। मोक्षं लभन्ते मुनयः सुतुष्टास्तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये ॥
पादोदकं तिष्ठति यत्र विष्णोर्गङ्गादितीर्थानि सदैव तत्र। पिबन्ति येऽद्यापि सपापदेहाः प्रयान्ति शुद्धाः सुगृहं मुरारेः ॥
पादोदकेनाप्यभिषिच्यमाना अत्युग्रपापैः परिलिप्तदेहाः। ते यान्ति मुक्तिं परमेश्वरस्य तस्यैव पादौ सततं नमामि ॥
नैवेद्यमात्रेण सुभक्षितेन सुचक्रिणस्तस्य महात्मनश्च। ते वाजपेयस्य फलं लभन्ते सर्वार्थयुक्ताश्च नरा भवन्ति ॥
नारायणं दुःखविनाशनं तं मायाविहीनं सकलं गुणज्ञम्। यं ध्यायमानाः सुगतिं व्रजन्ति तं वासुदेवं सततं नमामि ॥
यो वन्द्यस्त्वृषिसिद्धचारणगणैर्देवैः सदा पूज्यते यो विश्वस्य हि सृष्टिहेतुकरणे ब्रह्मादिकानां प्रभुः।
यः संसारमहार्णवे निपतितस्योद्धारको वत्सलस्तस्यैवापि नमाम्यहं सुचरणौ भक्त्या वरौ साधकौ ॥

करता हूँ। जिन्हें असुरोंने अपने यज्ञमण्डपमें देवताओंसहित सामगान करते हुए वामन ब्रह्मचारीके रूपमें देखा था, जो सामगानके लिये उत्सुक रहते हैं, त्रिलोकीके जो एकमात्र स्वामी हैं तथा युद्धमें पाप या मृत्युसे डरे हुए आत्मीय जनोंको जो अपनी ध्वनिमात्रसे निर्भय बना देते हैं, उन भगवान्‌के परम पावन युगल चरणारविन्दोंकी मैं वन्दना करता हूँ। जो यज्ञके मुहानेपर विप्र-मण्डलीमें खड़े हो अपने ब्राह्मणोचित तेजसे देदीप्यमान एवं पूजित हो रहे हैं, दिव्य तेजके कारण किरणोंके समूह-से जान पड़ते हैं तथा इन्द्रनील मणिके समान दिखायी देते हैं, जो देवताओंके हितकी इच्छासे विरोचनके दानी पुत्र बलिके समक्ष 'मुझे तीन पग भूमि दीजिये।' ऐसा कहकर याचना करते हैं, उन श्रेष्ठ ब्राह्मण श्रीवामनजीको मैं प्रणाम करता हूँ। भगवान्‌ने जब वामनसे विराट्‌रूप होकर अपना पैर बढ़ाया, तब उनका विक्रम (विशाल डग) आकाशको आच्छादित करके सहसा तपते हुए सूर्य और चन्द्रमातक पहुँच गया, इस बातको सूर्यमण्डलमें स्थित हुए मुनिगणोंने भी देखा। फिर उन चक्रधारी भगवान्‌के विराट् रूपमें, जो समस्त विश्वका खजाना है, सम्पूर्ण देवता भी लीन हो गये। भगवान् वामनके उस विक्रमकी कहीं तुलना नहीं है, मैं इस समय उस विक्रमका स्तवन करता हूँ।

भगवान् श्रीविष्णु कहते हैं—राजन्! इस प्रकार यह सारा वृत्तान्त मैंने तुम्हें सुना दिया।

कुञ्जल पक्षी तथा महात्मा च्यवनका चरित्र नाना प्रकारकी कल्याणमयी वार्ताओंसे युक्त है। मैं इसका वर्णन करूँगा, तुम सुनो।

कुञ्जल पक्षी और उसके पुत्र कपिंजलका संवाद—कामोदाकी कथा और विहुंड दैत्यका वध

भगवान् श्रीविष्णु कहते हैं—धर्मात्मा कुञ्जलने अपने चौथे पुत्र कपिञ्जलको पुकार कर बड़ी प्रसन्नताके साथ कहा—'बेटा! तुम मेरे उत्तम पुत्र हो, बोलो, आहार लानेके लिये यहाँसे किस स्थानपर जाते हो? वहाँ तुमने कौन-सी अपूर्व बात देखी अथवा सुनी है? वह मुझे बताओ।'

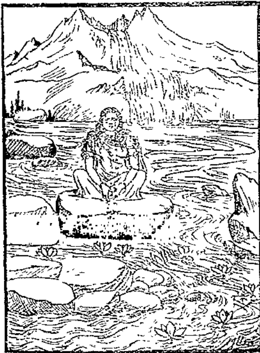
कपिञ्जलने कहा—पिताजी! मैंने जो अपूर्व बात देखी है, उसे बताता हूँ, सुनिये। कैलास सब पर्वतोंमें श्रेष्ठ है। उसकी कान्ति चन्द्रमाके समान श्वेत है। वह नाना प्रकारकी धातुओंसे व्याप्त है। भाँति भाँतिके वृक्ष उसकी शोभा बढ़ाते हैं। गङ्गाजीका शुभ एवं पावन जल सब ओरसे उस पर्वतको नहलाता रहता है। वहाँसे सहस्रों विख्यात नदियोंका प्रादुर्भाव हुआ है। उस पर्वत शिखरपर भगवान् शिवका मन्दिर है, जहाँ कोटि कोटि शिवगण भरे रहते हैं। पिताजी! एक दिन मैं उसी कैलासपर, जो शङ्करजीका घर है, गया था। वहाँ मुझे एक ऐसा आश्चर्य दिखायी दिया, जो पहले कभी देखने या सुननेमें नहीं आया था। मैं उस अद्भुत घटनाका वर्णन करता हूँ, सुनिये। गिरिराज मेरुका पवित्र शिखर महान् अभ्युदयसे युक्त है, वहाँसे हिम और दूधके समान रंगवाला गङ्गानदीका प्रवाह बड़े वेगसे पृथ्वीकी ओर गिरता है। वह स्रोत कैलासके शिखरपर पहुँचकर सब ओर फैल जाता है। उस जलसे दस योजनका लंबा-चौड़ा एक भारी तालाब बन गया है, उसे 'गङ्गाह्रद' कहते हैं। वह तालाब परम पवित्र और निर्मल जलसे सुशोभित है।

महामते! गङ्गाह्रदके सामने ही शिलाके ऊपर एक कन्या बैठी थी, जिसके केश खुले थे। रूपके वैभवसे उसकी बड़ी शोभा हो रही थी। वह कन्या दिव्य रूप और सब प्रकारके शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न थी। उसने दिव्य आभूषण धारण कर रखे थे। उस स्थानपर वह

यो दृष्टो मखमण्डपेऽसुरगणैः श्रीवामनः सामगः सामोद्गीतकुतूहलः सुरगणैस्त्रैलोक्य एकः प्रभुः।
कुर्वंस्तु ध्वनितैः स्वकैर्गतभयान् यः पापभीतान् रणे तस्याहं चरणारविन्दयुगलं वन्दे परं पावनम्॥
राजन्तं द्विजमण्डले मखमुखे ब्रह्मश्रिया पूजितं दिव्येनापि सुतेजसा कृतमयं चेन्द्रनीलोपमम्।
देवानां हितकाम्यया सुतनुजं वैरोचनस्यार्थकं याचन्तं मम दीयतां त्रिपदकं वन्दे परं वामनम्॥
तं दृष्टं रविमण्डले मुनिगणैः सम्प्राप्तवन्तं दिवं चन्द्रार्कौ तु तपन्तमेव सहसा सम्प्राप्तवन्तौ सदा।
तस्यैवापि सुचक्रिणः सुरगणाः प्रापुर्लयं साम्प्रतं काये विश्वनिकेतके तमतुलं नौमि प्रभोर्विक्रमम्॥

(१८ । ३९—७७)

बड़ी शोभासम्पन्न दिखायी देती थी। पता नहीं, वह गिरिराज हिमालयकी कन्या पार्वती थी या समुद्र-तनया लक्ष्मी। इन्द्र या यमराजकी पत्नी भी ऐसी सुन्दरी नहीं दिखायी देतीं। उसके शील, सद्भाव, गुण तथा रूप जैसे दीख पड़ते थे, वैसे अन्य दिव्याङ्गनाओंमें नहीं दृष्टिगोचर होते। शिलाके ऊपर बैठी हुई वह कन्या किसी भारी दुःखसे व्याकुल थी और फूट-फूटकर रो रही थी और कोई स्वजन-सम्बन्धी उसके पास नहीं थे। नेत्रोंसे गिरते हुए निर्मल अश्रुबिन्दु मोतीके दाने-जैसे चमक रहे थे। वे सब-के-सब गङ्गाजीके स्रोतमें ही गिरते और सुन्दर कमल-पुष्पके रूपमें परिणत हो जाते थे। इस प्रकार अगणित सुन्दर पुष्प गङ्गाजीके जलमें पड़े थे और पानीके वेगके साथ बह रहे थे।



पिताजी! इस प्रकार मैंने यह अपूर्व बात देखी है। आप वक्ताओंमें श्रेष्ठ हैं; यदि इसका कारण जानते हों तो मुझपर कृपा करके बतायें। गङ्गाके मुहानेपर जो सुन्दरी स्त्री रो रही थी, जिसके नेत्रोंसे गिरे हुए आँसू सुन्दर कमलके फूल बन जाते थे, वह कौन थी? यदि मैं आपका प्रिय हूँ तो मुझे यह सारा रहस्य बताइये।

कुञ्जल बोला—बेटा! बता रहा हूँ, सुनो। यह देवताओंका रचा हुआ वृत्तान्त है। इसमें महात्मा श्रीविष्णुके चरित्रका वर्णन है, जो सब पापोंका नाश करनेवाला है। एक समयकी बात है, राजा नहुषने संग्राममें महापराक्रमी हुंड नामक दैत्यको मार डाला। उस दैत्यके पुत्रका नाम विहुण्ड था, वह भी बड़ा पराक्रमी और तपस्वी था। उसने जब सुना कि राजा नहुषने उसके पिताका मन्त्री तथा सेनासहित वध किया है, तब उसे बड़ा क्रोध हुआ और वह देवताओंका विनाश करनेके लिये उद्यत होकर तपस्या करने लगा। तपसे बढ़े हुए उस दुष्ट दैत्यका पुरुषार्थ सम्पूर्ण देवताओंको विदित था। वे जानते थे कि समरभूमिमें विहुण्डके वेगको सहन करना अत्यन्त कठिन है। उधर, विहुण्डके मनमें त्रिलोकीका नाश कर डालनेकी इच्छा हुई। उसने निश्चय किया, मैं मनुष्यों और देवताओंको मारकर पिताके वैरका बदला लूँगा। इस प्रकार अत्याचारके लिये उद्यत हो देवताओं और ब्राह्मणोंके लिये कण्टकरूप उस पापी दैत्यने उपद्रव मचाना आरम्भ किया। समस्त प्रजाको पीडा देने लगा। उसके तेजसे संतप्त होकर इन्द्र आदि देवता परम तेजस्वी देवाधिदेव भगवान् श्रीविष्णुकी शरणमें गये और बोले—'भगवन्! विहुण्डके महान् भयसे आप हमारी रक्षा करें।'

भगवान् विष्णु बोले—पापी विहुण्ड देवताओंके लिये कण्टकरूप है, मैं अवश्य उसका नाश करूँगा।

देवताओंसे यों कहकर भगवान् श्रीविष्णुने मायाको प्रेरित किया। सम्पूर्ण विश्वको मोहित करनेवाली महाभागा विष्णुमायाने विहुण्डका वध करनेके लिये रूप और लावण्यसे सुशोभित तरुणी स्त्रीका रूप धारण किया। वह नन्दनवनमें आकर तपस्या करने लगी। इसी समय दैत्यराज विहुण्ड देवताओंका वध करनेके लिये दिव्य मार्गसे चला। नन्दनवनमें पहुँचनेपर उसकी दृष्टि तपस्विनी मायापर पड़ी। वह इस बातको नहीं जान सका कि यह मेरा ही नाश करनेके लिये उत्पन्न हुई है। यह सुन्दरी स्त्री कालरूपा है, यह बात उसकी समझमें नहीं आयी। मायाका शरीर तपाये हुए सुवर्णके समान दमक रहा था। रूपका वैभव उसकी शोभा बढ़ा रहा था। पापात्मा विहुण्ड उस सुन्दरी युवतीको देखते ही लुभा गया और बोला—'भद्रे! तुम कौन हो? कौन हो? तुम्हारे शरीरका मध्यभाग बड़ा सुन्दर है, तुम मेरे चित्तको मथे डालती हो।

सुमुखि ! मुझे समागम प्रदान करो और कामजनित वेदनासे मेरी रक्षा करो । देवेश्वरि ! अपने समागमके बदले इस समय तुम जिस जिस वस्तुकी इच्छा करो, वह सब तुम्हें देनेको तैयार हूँ ।'

माया बोली—दानव ! यदि तुम मेरा ही उपभोग करना चाहते हो, तो सात करोड कमलके फूलोंसे भगवान् शङ्करकी पूजा करो । वे फूल कामोदसे उत्पन्न, दिव्य, सुगन्धित और देवदुर्लभ होने चाहिये । उन्हीं फूलोंकी सुन्दर माला बनाकर मेरे कण्ठमें भी पहनाओ । तभी मैं तुम्हारी प्रिय भार्या बनूँगी ।

विहुण्डने कहा—देवि ! मैं ऐसा ही करूँगा । तुम्हारा माँगा हुआ वर तुम्हें दे रहा हूँ ।

यह कहकर दैत्यराज विहुण्ड जितने भी दिव्य एव पवित्र वन थे, उनमें विचरण करने लगा । उसके चित्तपर कामका आवेश छा रहा था । बहुत खोजनेपर भी उसे कामोद नामक वृक्ष कहीं नहीं दिखायी दिया । वह स्वय इधर-उधर जाकर पूछ-ताछ करता रहा, किन्तु सर्वत्र लोगोंके मुँहसे उसे यही उत्तर मिलता था कि 'यहाँ कामोद वृक्ष नहीं है ।' दुरात्मा विहुण्ड उस वृक्षका पता लगाता हुआ शुक्राचार्यके पास गया और भक्तिपूर्वक मस्तक झुकाकर पूछने लगा—'ब्रह्मन् ! मुझे फूलोंसे लदे सुन्दर कामोद वृक्षका पता बताइये ।'

शुक्राचार्य बोले—दानव ! कामोद नामका कोई वृक्ष नहीं है । कामोदा तो एक स्त्रीका नाम है । वह जब किसी प्रसङ्गसे अत्यन्त हर्षमें भरकर हँसती है, तब उसके मनोहर हास्यसे सुगन्धित, श्रेष्ठ तथा दिव्य कामोद पुष्प उत्पन्न होते हैं । उनका रग अत्यन्त पीला होता है तथा वे दिव्य गन्धसे युक्त होते हैं । उनमेंसे एक फूलके द्वारा भी जो भगवान् शङ्करकी पूजा करता है, उसकी बड़ी-से-बड़ी कामनाको भी भगवान् शिव पूर्ण कर देते हैं । कामोदाके रोदनसे भी वैसे ही सुन्दर फूल उत्पन्न होते हैं, किन्तु उनमें सुगन्ध नहीं होती । अत उनका स्पर्श नहीं करना चाहिये ।

शुक्राचार्यकी यह बात सुनकर विहुण्डने पूछा—'भृगुनन्दन ! कामोदा कहाँ रहती है ?'

शुक्राचार्य बोले—सम्पूर्ण पातकोंका शोधन करनेवाले परम पावन गङ्गाद्वार (हरिद्वार) नामक तीर्थके पास कामोद नामक पुर है, जिसे विश्वकर्माने बनाया था । उस कामोद नगरमें दिव्य भोगोंसे विभूषित एक सुन्दरी स्त्री रहती है, जो सम्पूर्ण देवताओंसे पूजित है । वह भाँति भाँतिके आभूषणोंसे अत्यन्त सुशोभित जान पड़ती है । तुम वहीं चले जाओ और उस युवतीकी पूजा करो । साथ ही किसी पवित्र उपायका अवलम्बन करके उसे हँसाओ ।

यह कहकर शुक्राचार्य चुप हो गये और वह महातेजस्वी दानव अपना कार्य सिद्ध करनेके लिये उद्यत हुआ ।

कपिञ्जलने पूछा—पिताजी ! कामोदाके हास्यसे जो पवित्र, दिव्यगन्धसे युक्त और देवता तथा दानवोंके लिये दुर्लभ सुन्दर फूल उत्पन्न होते हैं, उन्हे सम्पूर्ण देवता क्यों चाहते हैं ? उन हास्यजनित फूलोंसे पूजित होनेपर भगवान् शङ्कर क्यों सन्तुष्ट होते हैं ? उस फूलका क्या गुण है ? कामोदा कौन है और वह किसकी पुत्री है ?

कुञ्जल बोला—पूर्वकालकी बात है, देवताओं और बड़े-बड़े दैत्योंने अमृतके लिये परस्पर उत्तम सौहार्द स्थापित करके उद्यमपूर्वक क्षीरसागरका मन्थन किया । देवताओं और दैत्योंके मथनेसे चार कन्याएँ प्रकट हुईं । फिर कलशमें रखा हुआ पुण्यमय अमृत दिखायी पड़ा । उपर्युक्त कन्याओंमेंसे एकका नाम लक्ष्मी था, दूसरी वारुणी नामसे प्रसिद्ध थी, तीसरीका नाम कामोदा और चौथीका ज्येष्ठा था । कामोदा अमृतकी लहरसे प्रकट हुई थी । वह भविष्यमें भगवान् श्रीविष्णुकी प्रसन्नताके लिये वृक्षरूप धारण करेगी और सदा ही श्रीविष्णुको आनन्द देनेवाली होगी । वृक्षरूपमें वह परम पवित्र तुलसीके नामसे विख्यात होगी । उसके साथ भगवान् जगन्नाथ सदा ही रमण करेंगे । जो तुलसीका एक पत्ता भी ले जाकर श्रीकृष्णभगवान्को समर्पित करेगा, उसका भगवान् बड़ा उपकार मानेंगे और 'मैं इसे क्या दे डालूँ ?' यह सोचते हुए वे उसके ऊपर बहुत प्रसन्न होंगे ।

इस प्रकार पूर्वोक्त चार कन्याओंमेंसे जो कामोदा नामसे प्रसिद्ध देवी है, वह जब हर्षसे गद्गद होकर बोलती और हँसती है, तब उसके मुखसे सुनहरे रगके सुगन्धित फूल झड़ते हैं । वे फूल बड़े सुन्दर होते हैं । कभी कुम्हलाते नहीं हैं । जो उन फूलोंका यत्नपूर्वक सग्रह करके उनके द्वारा भगवान् शङ्कर, ब्रह्मा तथा विष्णुकी पूजा करता है, उसके ऊपर सब देवता सतुष्ट होते हैं और वह जो-जो चाहता है, वही-वही उसे अर्पण करते हैं । इसी प्रकार जब कामोदा किसी दुःखसे दुखी होकर रोने लगती है, तब उसकी आँखोंके आँसुओंसे भी

फूल पैदा होते और झड़ते हैं। महाभाग! वे फूल भी देखनेमें बड़े मनोहर होते हैं; किन्तु उनमें सुगन्ध नहीं होती। वैसे फूलोंसे जो शङ्करका पूजन करता है, उसे दुःख और संताप होता है। जो पापात्मा एक बार भी उस तरहके फूलोंसे देवताओंकी पूजा करता है, उसे वे निश्चय ही दुःख देते हैं।

भगवान् श्रीविष्णुने पापी विहुण्डके पराक्रम और दुःसाहसपर दृष्टि डालकर देवर्षि नारदको उसके पास भेजा। उस समय वह दुरात्मा दानव कामोदाके पास जा रहा था। नारदजी उसके समीप जाकर हँसते हुए बोले—'दैत्यराज! कहाँ जा रहे हो? इस समय तुम बड़े उतावले और व्यग्र जान पड़ते हो।' विहुण्डने ब्रह्मकुमार नारदजीको हाथ जोड़कर प्रणाम किया और कहा—'द्विजश्रेष्ठ! मैं कामोद पुष्पके लिये चला हूँ।' यह सुनकर नारदजीने कहा—'दैत्य! तुम कामोद नामक श्रेष्ठ नगरमें कदापि न जाना; क्योंकि वहाँ सम्पूर्ण देवताओंको विजय दिलानेवाले परम बुद्धिमान् भगवान् श्रीविष्णु रहते हैं। दानव! जिस उपायसे कामोद नामक फूल तुम्हारे हाथ लग सकते हैं, वह मैं बता रहा हूँ। वे दिव्य पुष्प गङ्गाजीके जलमें गिरेंगे और प्रवाहके पावन जलके साथ बहते हुए तुम्हारे पास आ जायँगे। वे देखनेमें बड़े सुन्दर होंगे। तुम उन्हें पानीसे निकाल लाना। इस प्रकार उन फूलोंका संग्रह करके अपना मनोरथ सिद्ध करो।'

दानवश्रेष्ठ विहुण्डसे यह कहकर धर्मात्मा नारदजी कामोद नगरकी ओर चल दिये। जाते-जाते उन्हें वह दिव्य नगर दिखायी दिया। उस नगरमें प्रवेश करके वे कामोदाके घर गये और उससे मिले। कामोदाने स्वागत आदिके द्वारा मुनिको प्रसन्न किया और मीठे वचनोंमें कुशलसमाचार पूछा। द्विजश्रेष्ठ नारदजीने कामोदाके दिये हुए दिव्य सिंहासनपर बैठकर उससे पूछा—'भगवान् श्रीविष्णुके तेजसे प्रकट हुई कल्याणमयी देवी! तुम यहाँ सुखसे रहती हो न? किसी तरहका कष्ट तो नहीं है?'

कामोदा बोली—महाभाग! मैं आप-जैसे महात्माओं तथा भगवान् श्रीविष्णुकी कृपासे सुखपूर्वक जीवन व्यतीत कर रही हूँ। इस समय आपसे कुछ प्रश्नोत्तर करनेका कारण उपस्थित हुआ है; आप मेरे प्रश्नका समाधान कीजिये। मुने! सोते समय मैंने एक दारुण स्वप्न देखा है, मानो किसीने मेरे सामने आकर कहा है—'अव्यक्तस्वरूप भगवान् हृषीकेश संसारमें जायँगे—वहाँ जन्म ग्रहण करेंगे।' महामते! ऐसा स्वप्न देखनेका क्या कारण है? आप ज्ञानवानोंमें श्रेष्ठ हैं, कृपया बताइये।

नारदजीने कहा—भद्रे! मनुष्य जो स्वप्न देखते हैं, वह तीन प्रकारका होता है—वातिक (वातज), पैत्तिक (पित्तज) और कफज। सुन्दरी! देवताओंको न नींद आती है न स्वप्न। मनुष्य शुभ और अशुभ नाना प्रकारके स्वप्न देखता है। वे सभी स्वप्न कर्मसे प्रेरित होकर दृष्टिपथमें आते हैं। पर्वत तथा ऊँचे-नीचे नाना प्रकारके दुर्गम स्थानोंका दर्शन होना वातिक स्वप्न है। अब कफाधिक्यके कारण दिखायी देनेवाले स्वप्न बता रहा हूँ। जल, नदी, तालाब तथा पानीके विभिन्न स्थान—ये सब कफज स्वप्नके अन्तर्गत हैं। देवि! अग्नि तथा बहुत-से उत्तम सुवर्णका जो दर्शन होता है, उसे पैत्तिक स्वप्न समझो। अब मैं भावी (भविष्यमें तुरंत फल देनेवाले) स्वप्नका वर्णन करता हूँ—प्रातःकाल जो कर्मप्रेरित शुभ या अशुभ स्वप्न दिखायी देता है, वह क्रमशः लाभ और हानिको व्यक्त करनेवाला है। सुन्दरी! इस प्रकार मैंने तुमसे स्वप्नकी अवस्थाएँ बतायीं। भगवान् श्रीविष्णुके सम्बन्धमें यह बात अवश्य होनेवाली है, इसी कारण तुम्हें दुःस्वप्न दिखायी दिया है।

कामोदा बोली—नारदजी! सम्पूर्ण देवता भी जिनका अन्त नहीं जानते, उन्हें भी जिनके स्वरूपका ज्ञान नहीं है, जिनमें सम्पूर्ण विश्वका लय होता है, जिन्हें विश्वात्मा कहते हैं और सारा संसार जिनकी मायासे मुग्ध हो रहा है, वे मेरे स्वामी जगदीश्वर श्रीविष्णु संसारमें क्यों जन्म ले रहे हैं?

नारदजीने कहा—देवि! इसका कारण सुनो; महर्षि भृगुके शापसे भगवान् संसारमें अवतार लेनेवाले हैं। [यही बात बतानेके लिये उन्होंने मुझे तुम्हारे पास भेजा है।] इसीलिये तुम्हें दुःस्वप्नका दर्शन हुआ है।

बेटा! यों कहकर नारदजी ब्रह्मलोकको चले गये। उस समय कामोदा भगवान्‌के दुःखसे दुखी हो गयी और गङ्गाजीके तटपर जलके समीप बैठकर बारंबार हाहाकार करती हुई करुण स्वरसे विलाप करने लगी। वह अपने नेत्रोंसे जो दुःखके आँसू बहाती थी, वे ही गङ्गाजीके जलमें गिरते थे। पानीमें पड़ते ही वे पुनः पद्म-पुष्पके रूपमें प्रकट होते और धाराके साथ बह जाते थे। दानवश्रेष्ठ विहुण्ड भगवान् श्रीविष्णुकी मायासे मोहित था। उसने उन फूलोंको देखा; किन्तु महर्षि शुक्राचार्यके बतानेपर भी वह इस बातको न

जान सका कि ये दुःखके आँसुओंसे उत्पन्न फूल हैं। उन्हें देखकर वह असुर बड़े हर्षमें भर गया और उन सबको जलसे निकाल लाया। फिर वह उन खिले हुए पद्म-पुष्पोंसे गिरिजापतिकी पूजा करने लगा। विष्णुकी मायाने उसके मनको हर लिया था, अतः विवेकशून्य होकर उस दैत्यराजने सात करोड़ फूलोंसे भगवान् शिवका पूजन किया। यह देख जगन्माता पार्वतीको बड़ा क्रोध हुआ, उन्होंने शङ्करजीसे कहा—'नाथ! इस दुर्बुद्धि दानवका कुकर्म तो देखिये—यह शोकसे उत्पन्न फूलोंद्वारा आपका पूजन कर रहा है, इसे दुःख और संताप ही मिलेगा, यह सुख पानेका अधिकारी नहीं है।'

भगवान् शिव बोले—भद्रे! तुम सच कहती हो, इस पापीने सत्यपूर्ण उद्योगको पहलेसे ही छोड़ रखा है। इसकी चेतना कामसे आकुल है, अतः यह दुष्टात्मा गङ्गाजीके जलमें पड़े हुए शोकजनित फूलोंको ग्रहण करता है तथा उनसे मेरा पूजन भी करता है। दुःख और शोकसे उत्पन्न ये फूल तो शोक और संताप ही देनेवाले हैं, इनके द्वारा किसीका कल्याण कैसे हो सकता है। देवि! मैं तो समझता हूँ, यह ध्यानहीन है, क्योंकि अब पापाचारी हो गया है। अतः तुम इसे अपने ही तेजसे मार डालो।

भगवान् शङ्करके ये वचन सुनकर भगवती पार्वतीने कहा—'नाथ! मैं आपकी आज्ञासे इसका अवश्य संहार करूँगी।' यों कहकर देवी वहाँ गयीं और विहुण्डके वधका उपाय सोचने लगीं। वे एक महात्मा ब्राह्मणका मायामय रूप बनाकर पारिजातके सुन्दर फूलोंसे अपने स्वामी शङ्करजीकी पूजा करने लगीं। इतनेमें ही उस पापी दानवने आकर देवीकी दिव्य पूजाको नष्ट कर दिया। वह दुष्टात्मा कालके वशीभूत हो चुका था। उसने पार्वतीद्वारा पारिजातके फूलोंसे की हुई पूजाको मिटा दिया और स्वयं लोभवश शोकजनित पुष्पोंसे शङ्करजीका पूजन करने लगा। उस समय उस दुष्टके नेत्रोंसे आँसूकी अविरल बूँदें निकलकर शिवलिङ्गके मस्तकपर पड़ रही थीं। यह देखकर देवीने ब्राह्मणके रूपमें ही पूछा—आप कौन हैं, जो शोकाकुल चित्तसे भगवान् शिवकी पूजा कर रहे हैं? ये शोकजनित अपवित्र आँसू भगवान्‌के मस्तकपर पड़ रहे हैं। आप ऐसा क्यों करते हैं? मुझे इसका कारण बताइये।

विहुण्ड बोला—ब्रह्मन्! कुछ दिन हुए मैंने एक सुन्दरी स्त्री देखी, जो सब प्रकारकी सौभाग्य-सम्पदासे युक्त और समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न थी। देखनेमें वह कामदेवका विशाल निकेतन जान पड़ती थी। उसके मोहसे मैं संतप्त हो उठा, कामसे मेरा चित्त व्याकुल हो गया। जब मैंने उससे समागमकी प्रार्थना की, तब वह बोली—'कामोदके फूलोंसे भगवान् शङ्करकी पूजा करो तथा उन्हीं फूलोंकी माला बनाकर मेरे कण्ठमें पहनाओ। सात करोड़ पुष्पोंसे महेश्वरका पूजन करो।' उस स्त्रीको पानेके लिये ही मैं पूजा करता हूँ, क्योंकि भगवान् शिव अभीष्ट फलके दाता हैं।

देवीने कहा—अरे! कहाँ तेरा भाव है, कहाँ ध्यान है और कहाँ तुझ दुरात्माका ज्ञान है? [तू कामोद पुष्पोंसे पूजा कर रहा है न?] अच्छा, बता, कामोदाका सुन्दर रूप कैसा है? तूने उसके हास्यसे उत्पन्न सुन्दर फूल कहाँ पाये हैं?

विहुण्ड बोला—'ब्रह्मन्! मैं भाव और ध्यान कुछ नहीं जानता। कामोदाको मैंने कभी देखा भी नहीं है। गङ्गाजीके जलमें जो फूल बहकर आते हैं, उन्हींका मैं प्रतिदिन संग्रह करता हूँ और उन्हींसे एकमात्र शङ्करजीका पूजन करता हूँ। महात्मा शुक्राचार्यने मेरे सामने इस फूलका परिचय दिया था। मैं उन्हींकी आज्ञासे नित्यप्रति पूजा करता हूँ।

देवीने कहा—पापी! ये फूल कामोदाके रोदनसे उत्पन्न हुए हैं। इनकी उत्पत्ति दुःखसे हुई है। इन्हींसे तू पापपूर्ण भावना लेकर, प्रतिदिन भगवान्‌की पूजा करता है, किन्तु दिव्य पूजा नष्ट करके तू शोकजनित पुष्पोंसे पूजन कर रहा है—यह आज तेरे द्वारा भयंकर अपराध हुआ है, इसके लिये मैं तुझे दण्ड दूँगा।

यह सुनकर कालके वशीभूत हुआ दानव विहुण्ड बोला—'रे दुष्ट! रे अनाचारी! तू मेरे कर्मकी निन्दा करता है? तुझे अभी इस तलवारसे मौतके घाट उतारता हूँ।' यों कहकर वह ब्राह्मणको मारनेके लिये तीखी तलवार ले उसकी ओर झपटा। यह देख ब्राह्मणरूपमें खड़ी हुई भगवती परमेश्वरी कुपित हो उठीं और ज्यों ही वह दैत्य उनके पास पहुँचा त्यों ही उन्होंने अपने मुँहसे 'हुंकार' का उच्चारण किया। हुंकारकी ध्वनि होते ही वह अधम दानव निश्चेष्ट होकर

गिर पड़ा, मानो वज्रके आघातसे पर्वत फट पड़ा हो। उस लोक-संहारक दानवके मारे जानेपर सम्पूर्ण जगत् स्वस्थ हो गया, सबके दुःख और सन्ताप दूर हो गये। बेटा! गङ्गाजीके तीरपर दुःखसे व्याकुलचित्त होकर बैठी हुई जो सुन्दरी स्त्री रो रही थी, [वह कामोदा ही थी;] उसके रोनेका यही कारण था। यह सारा रहस्य जो तुमने पूछा था, मैंने कह सुनाया।

कुञ्जलका च्यवनको अपने पूर्व-जीवनका वृत्तान्त बताकर सिद्ध पुरुषके कहे हुए ज्ञानका उपदेश करना, राजा वेनका यज्ञ आदि करके विष्णुधाममें जाना तथा पद्मपुराण और भूमिखण्डका माहात्म्य

भगवान् श्रीविष्णु कहते हैं—राजन्! धर्मात्मा पक्षी महाप्राज्ञ कुञ्जल अपने पुत्रोंसे यों कहकर चुप हो गया। तब वटके नीचे बैठे हुए द्विजश्रेष्ठ च्यवनने उस महाशुकसे कहा—महात्मन्! आप कौन हैं, जो पक्षीके रूपसे धर्मका उपदेश कर रहे हैं? आप देवता, गन्धर्व अथवा विद्याधर तो नहीं हैं? किसके शापसे आपको यह तोतेकी योनि प्राप्त हुई है? यह अतीन्द्रिय ज्ञान आपको किससे प्राप्त हुआ है?

कुञ्जल बोला—सिद्धपुरुष! मैं आपको जानता हूँ; आपके कुल, उत्तम गोत्र, विद्या, तप और प्रभावसे भी परिचित हूँ तथा आप जिस उद्देश्यसे पृथ्वीपर विचरण करते हैं, उसका भी मुझे ज्ञान है। श्रेष्ठ व्रतका पालन करनेवाले ब्राह्मण! आपका स्वागत है। मैं आपकी पूछी हुई सब बातें बताऊँगा। इस पवित्र आसनपर बैठकर शीतल छायाका आश्रय लीजिये। अव्यक्त परमात्मासे ब्रह्माजीका प्रादुर्भाव हुआ। उनसे प्रजापति भृगु प्रकट हुए, जो ब्रह्माजीके समान गुणोंसे युक्त हैं। भृगुसे भार्गव (शुक्राचार्य) का जन्म हुआ, जो सम्पूर्ण धर्म और अर्थ-शास्त्रके तत्त्वज्ञ हैं। उन्हींके वंशमें आपने जन्म ग्रहण किया है। पृथ्वीपर आप च्यवनके नामसे विख्यात हैं। [अब मेरा परिचय सुनिये—]मैं देवता, गन्धर्व या विद्याधर नहीं हूँ। पूर्वजन्ममें कश्यपजीके कुलमें एक श्रेष्ठ ब्राह्मण उत्पन्न हुए थे। उन्हें वेद-वेदाङ्गोंके तत्त्वका ज्ञान था। वे सब धर्मोंको प्रकाशित करनेवाले थे। उनका नाम विद्याधर था; वे कुल, शील और गुण—सबसे युक्त थे। विप्रवर विद्याधर अपनी तपस्याके प्रभावसे सदा शोभायमान दिखायी देते थे। उनके तीन पुत्र हुए—वसुशर्मा, नामशर्मा और धर्मशर्मा। उनमें धर्मशर्मा मैं ही था, अवस्थामें सबसे छोटा और गुणोंसे हीन। मेरे बड़े भाई वसुशर्मा वेद-शास्त्रोंके पारगामी विद्वान् थे। विद्या आदि सद्गुणोंके साथ उनमें सदाचार भी था। नामशर्मा भी उन्हींकी भाँति महान् पण्डित थे। केवल मैं ही महामूर्ख निकला। विप्रवर! मैं विद्याके उत्तम भाव और शुभ अर्थको कभी नहीं सुनता था और गुरुके घर भी कभी नहीं जाता था।

यह देख मेरे पिता मेरे लिये बहुत चिन्तित रहने लगे। वे सोचते—'मेरा यह पुत्र धर्मशर्मा कहलाता है, पर इसके लिये यह नाम व्यर्थ है। इस पृथ्वीपर न तो यह विद्वान् हुआ और न गुणोंका आधार ही।' यह विचारकर मेरे धर्मात्मा पिताको बड़ा दुःख हुआ। वे मुझसे बोले—'बेटा! गुरुके घर जाओ और विद्या सीखो।' उनका यह कल्याणमय वचन सुनकर मैंने उत्तर दिया—'पिताजी! गुरुके घरपर बड़ा कष्ट होता है। वहाँ प्रतिदिन मार खानी पड़ती है, धमकाया जाता है। नींद लेनेकी भी फ़ुरसत नहीं मिलती। इन असुविधाओंके कारण मैं गुरुके मन्दिरपर नहीं जाना चाहता; मैं तो आपकी कृपासे यहीं स्वच्छन्दतापूर्वक खेलूँगा, खाऊँगा और सोऊँगा।'

धर्मात्मा पिता मुझे मूर्ख समझकर बहुत दुःखी हुए और बोले—'बेटा! ऐसा दुःसाहस न करो। विद्या सीखनेका प्रयत्न करो। विद्यासे सुख मिलता है, यश और अनुलित कीर्ति प्राप्त होती है तथा ज्ञान, स्वर्ग और उत्तम मोक्ष मिलता है; अतः विद्या सीखो *। विद्या पहले तो दुःखका मूल जान पड़ती है, किन्तु पीछे वह बड़ी सुखदायिनी होती है। इसलिये तुम गुरुके घर जाओ और विद्या सीखो।' पिताके इतना समझानेपर भी मैं उनकी बात नहीं मानता और प्रतिदिन इधर-उधर घूम-फिरकर अपनी हानि किया करता था। विप्रवर! मेरा बर्ताव देखकर लोगोंने मेरा बड़ा उपहास किया, मेरी बड़ी निन्दा हुई। इससे मैं बहुत लज्जित हुआ। जान पड़ा यह लज्जा मेरे प्राण लेकर रहेगी। तब मैं विद्या पढ़नेको तैयार हुआ। [अवस्था अधिक हो चुकी

* विद्यया प्राप्यते सौख्यं यशः कीर्तिस्तथातुला ॥ ज्ञानं स्वर्गः सुमोक्षश्च सन्मादिनी प्रजायते । (१२२ । २५-२६)

थी,] सोचने लगा—'किस गुरुके पास चलकर पढ़ानेके लिये प्रार्थना करूँ ?' इस चिन्तामें पड़कर मैं दुःख शोकसे व्याकुल हो उठा। 'कैसे मुझे विद्या प्राप्त हो ? किस प्रकार मैं गुणोंका उपार्जन करूँ ? कैसे मुझे स्वर्ग मिले और किस तरह मैं मोक्ष प्राप्त करूँ ?' यही सब सोचते विचारते मेरा बुढ़ापा आ गया।

एक दिनकी बात है, मैं बहुत दुःखी होकर एक देवालयमें बैठा था, वहाँ अकस्मात् कोई सिद्ध महात्मा आ पहुँचे। मानो मेरे भाग्यने ही उन्हें भेज दिया था। उनका कहीं आश्रय नहीं था, वे निराहार रहते थे। सदा आनन्दमें मग्न और निःस्पृह थे। प्रायः एकान्तमें ही रहा करते थे। बड़े दयालु और जितेन्द्रिय थे। परब्रह्ममें लीन, ज्ञानी, ध्यानी और समाधिनिष्ठ थे। मैं उन परम बुद्धिमान् ज्ञानस्वरूप महात्माकी शरणमें गया और भक्तिसे मस्तक झुका उन्हें प्रणाम करके सामने खड़ा हो गया। मैं दीनताकी साक्षात् मूर्ति और मन्दभागी था। महात्माने मुझसे पूछा—'ब्रह्मन् ! तुम इतने शोकमग्न कैसे हो रहे हो ? किस अभिप्रायसे इतना दुःख भोगते हो ?' मैंने अपनी मूर्खताका सारा पूर्व वृत्तान्त उनसे कह सुनाया और निवेदन किया—'मुझे सर्वज्ञता कैसे प्राप्त हो ? इसीके लिये मैं दुखी हूँ। अब आप ही मुझे आश्रय देनेवाले हैं।'

सिद्ध महात्माने कहा—ब्रह्मन् ! सुनो, मैं तुम्हारे सामने ज्ञानके स्वरूपका वर्णन करता हूँ। ज्ञानका कोई आकार नहीं है [ज्ञान परमात्माका स्वरूप है]। वह सदा सबको जानता है, इसलिये सर्वज्ञ है। मायामोहित मूढ़ पुरुष उसे नहीं प्राप्त कर सकते। ज्ञान भगवत्तत्त्वके चिन्तनसे उद्दीप्त होता है, उसकी कहीं भी तुलना नहीं है। ज्ञानसे ही परमात्माके स्वरूपका साक्षात्कार होता है। चन्द्रमा और सूर्य आदिके प्रकाशसे उसका दर्शन नहीं किया जा सकता। ज्ञानके न हाथ हैं न पैर; न नेत्र हैं न कान। फिर भी वह सर्वत्र गतिशील है। सबको ग्रहण करता और देखता है। सब कुछ सूँघता तथा सबकी बातें सुनता है। स्वर्ग, भूमि और पाताल—तीनों लोकोंमें प्रत्येक स्थानपर वह व्यापक देखा जाता है। जिनकी बुद्धि दूषित है, वे उसे नहीं जानते। ज्ञान सदा प्राणियोंके हृदयमें स्थित होकर काम आदि महाभोगों तथा महामोह आदि सब दोषोंको विवेककी आगमें दग्ध करता रहता है। अतः पूर्ण शान्तिमय होकर इन्द्रियोंके विषयोंका मर्दन—उनकी आसक्तिका नाश करना चाहिये। इससे समस्त तात्त्विक अर्थोंका साक्षात्कार करानेवाला ज्ञान प्रकट होता है। यह शान्तिमूलक ज्ञान निर्मल तथा पापनाशक है। इसलिये तुम शान्ति धारण करो; वह सब प्रकारके सुखोंको बढ़ानेवाली है। शत्रु और मित्रमें समान भाव रखो। तुम अपने प्रति जैसा भाव रखते हो, वैसा ही दूसरोंके प्रति भी बनाये रहो। सदा नियमपूर्वक रहकर आहारपर विजय प्राप्त करो, इन्द्रियोंको जीतो। किसीसे मित्रता न जोड़ो; वैरका भी दूरसे ही त्याग करो। निस्सङ्ग और निःस्पृह होकर एकान्त स्थानमें रहो। इससे तुम सबको प्रकाश देनेवाले ज्ञानी, सर्वदर्शी बन जाओगे। बेटा ! उस स्थितिमें पहुँचने पर तुम मेरी कृपासे एक ही स्थानपर बैठे-बैठे तीनों लोकोंमें होनेवाली बातोंको जान लोगे—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

कुञ्जल कहता है—विप्रवर ! उन सिद्ध महात्माने ही मेरे सामने ज्ञानका रूप प्रकाशित किया था। उनकी आज्ञामें स्थित होकर मैं पूर्वोक्त भावनाका ही चिन्तन करने लगा। इसस सद्गुरुकी कृपा हुई, जिससे एक ही स्थानमें रहकर मैं त्रिभुवनमें जो कुछ हो रहा है, सबको जानता हूँ।

च्यवनने पूछा—खगश्रेष्ठ ! आप तो ज्ञानवानोंमें श्रेष्ठ हैं, फिर आपको यह तोतेकी योनि कैसे प्राप्त हुई ?

कुञ्जलने कहा—ब्रह्मन् ! संसर्गसे पाप और संसर्गसे पुण्य भी होता है। अतः शुद्ध आचार विचारवाले कल्याणमय पुरुषको कुसङ्गका त्याग कर देना चाहिये। एक दिन कोई पापी व्याध एक तोतेके बच्चेको बाँधकर उसे बेचनेके लिये आया। वह बच्चा देखनेमें बड़ा सुन्दर और मीठी बोली बोलनेवाला था। एक ब्राह्मणने उसे खरीद लिया और मेरी प्रसन्नताके लिये उसको मुझे दे दिया। मैं प्रतिदिन ज्ञान और ध्यानमें स्थित रहता था। उस समय वह तोतेका बच्चा बाल-स्वभावके कारण कौतूहलवश मेरे हाथपर आ बैठता और बोलने लगता—'तात ! मेरे पास आओ, बैठो; स्नानके लिये जाओ और अब देवताओंका पूजन करो।' इस तरहकी मीठी-मीठी बातें वह मुझसे कहा करता था। उसके वाग्विनोदमें पड़कर मेरा सारा उत्तम ज्ञान चला गया।

एक दिन मैं फूल और फल लानेके लिये वनमें गया था। इसी बीचमें एक बिलाव आकर तोतेको उठा ले गया। यह दुर्घटना मुझे केवल दुःख देनेका कारण हुई। बिलाव उस पक्षीको मारकर खा गया। इस प्रकार उस तोतेकी मृत्यु सुनकर मुझे बड़ा दुःख हुआ। असह्य शोकके कारण

अत्यन्त पीड़ा होने लगी। मैं महान् मोह-जालमें बँधकर उसके लिये प्रलाप करने लगा। सिद्ध महात्माने जिस ज्ञानका उपदेश दिया था, उसकी याद जाती रही। तब तो मीठे वचन बोलनेवाले उस तोतेको तथा उसके ज्ञानको याद करके मैं 'हा वत्स! हा वत्स!' कहकर प्रतिदिन विलाप करने लगा।

इस प्रकार विलाप करता हुआ मैं शोकसे अत्यन्त पीड़ित हो गया। अन्ततोगत्वा उसी दुःखसे मेरी मृत्यु हो गयी। उसीकी भावनासे मोहित होकर मुझे प्राण त्यागना पड़ा। द्विजश्रेष्ठ! मृत्युके समय मेरा जैसा भाव था, जैसी बुद्धि थी, उसी भाव और बुद्धिके अनुसार मेरा तोतेकी योनिमें जन्म हुआ है। परन्तु मुझे जो गर्भवास प्राप्त हुआ, वह मेरे ज्ञान और स्मरण-शक्तिको जाग्रत् करनेवाला था। गर्भमें स्वयं ही मुझे अपने पूर्वकर्मका स्मरण हो आया। मैंने सोचा—'ओह! मुझ मूर्ख, अजितेन्द्रिय तथा पापीने यह क्या कर डाला!' फिर गुरुदेवके अनुग्रहसे मुझे उत्तम ज्ञान प्राप्त हुआ। उनके वाक्यरूपी स्वच्छ जलसे मेरे शरीरके भीतर और बाहरका सारा मल धुल गया। मेरा अन्तःकरण निर्मल हो गया। पूर्वजन्ममें मृत्युकाल उपस्थित होनेपर मैंने तोतेका ही चिन्तन किया और उसीकी भावनासे भावित होकर मैं मृत्युको प्राप्त हुआ। यही कारण है कि मुझे पृथ्वीपर तोतेके रूपमें पुनः जन्म लेना पड़ा। मृत्युके समय प्राणियोंका जैसा भाव रहता है, वे वैसे ही जीवके रूपमें उत्पन्न होते हैं। उनका शरीर, पराक्रम, गुण और स्वरूप—सब उसी तरहके होते हैं। वे भाव-स्वरूप होकर ही जन्म लेते हैं।* महामते! इस तोतेके शरीरमें मुझे अतुलित ज्ञान प्राप्त हुआ है, जिसके प्रभावसे मैं भूत, भविष्य और वर्तमान—तीनों कालोंको प्रत्यक्ष देखता हूँ। यहाँ रहकर भी उसी ज्ञानके प्रभावसे मुझे सब कुछ ज्ञात हो जाता है। विप्रवर! संसारमें भटकनेवाले मनुष्योंको तारनेके लिये गुरुके समान बन्धन-नाशक तीर्थ दूसरा कोई नहीं है।† भूतलपर प्रकट हुए जलसे बाहरका ही सारा मल नष्ट होता है; किन्तु गुरुरूपी तीर्थ जन्म-जन्मान्तरके पापोंका भी नाश कर डालता है। संसारमें जीवोंका उद्धार करनेके लिये गुरु चलता-फिरता उत्तम तीर्थ है।*

भगवान् श्रीविष्णु कहते हैं—नृपश्रेष्ठ! वह परम ज्ञानी शुक महात्मा च्यवनको इस प्रकार तत्त्वज्ञानका उपदेश देकर चुप हो गया। यह सब परम उत्तम जङ्गम तीर्थकी महिमाका वर्णन किया गया। राजन्! तुम्हारा कल्याण हो! तुम्हारे मनमें जो इच्छा हो, उसे वरके रूपमें माँग लो।

वेनने कहा—जनार्दन! मुझे राज्य पानेकी अभिलाषा नहीं है। मैं दूसरी कोई वस्तु भी नहीं चाहता। केवल आपके शरीरमें प्रवेश करना चाहता हूँ।

भगवान् श्रीविष्णु बोले—राजन्! तुम अश्वमेध और राजसूय यज्ञोंके द्वारा मेरा यजन करो। गौ, भूमि, सुवर्ण, अन्न और जलका दान दो। महामते! दानसे ब्रह्महत्या आदि घोर पाप भी नष्ट हो जाते हैं। दानसे चारों पुरुषार्थोंकी भी सिद्धि होती है, इसलिये मेरे उद्देश्यसे दान अवश्य करना चाहिये। जो जिस भावसे मेरे लिये दान देता है, उसके उस भावको मैं सत्य कर देता हूँ।† ऋषियोंके दर्शन और स्पर्शसे तुम्हारी पापराशि नष्ट हो चुकी है। यज्ञोंके अन्तमें तुम निश्चय ही मेरे शरीरमें आ मिलोगे।

वेनसे यों कहकर श्रीहरि अन्तर्धान हो गये। उनके अदृश्य हो जानेपर नृपश्रेष्ठ वेन बड़े हर्षके साथ घर आये और कुछ सोच-विचारकर अपने पुत्र पृथुको निकट बुला मधुर वाणीमें बोले—'बेटा! तुम वास्तवमें पुत्र हो। तुमने इस भूलोकमें बहुत बड़े पातकसे मेरा उद्धार कर दिया। मेरे वंशको उज्ज्वल बना दिया। मैंने अपने दोषोंसे इस कुलका नाश कर दिया था, किन्तु तुमने फिर इसे चमका दिया है। अब मैं अश्वमेध यज्ञके द्वारा भगवान्‌का यजन करूँगा और नाना प्रकारके दान दूँगा। फिर भगवान् विष्णुकी कृपासे उनके

---

* मरणे यादृशो भावः प्राणिनां परिजायते ॥
तादृशाः स्युस्तु सत्त्वास्ते तद्रूपास्तत्पराक्रमाः ।
तद्गुणास्तत्स्वरूपाश्च भावभूता भवन्ति हि ॥
(१२३ । ४६-४७)

† तारणाय मनुष्याणां संसारे परिवर्तताम् ।
नास्ति तीर्थं गुरुसमं बन्धच्छेदकरं द्विज ॥
(१२३ । ५०)

* स्वलजाचोदकाद् सर्वं बाह्यं मलं प्रणश्यति ।
जन्मान्तरकृतान्पापान् गुरुतीर्थं प्रणाशयेत् ॥
संसारे तारणायैव जङ्गमं तीर्थमुत्तमम् ।
(१२३ । ५२-५३)

† यादृशेनापि भावेन मामुद्दिश्य ददाति यः ॥
तादृशं तस्य वै भावं सत्यमेव करोम्यहम् ।
(१२३ । ५८-५९)

उत्तम धामको जाऊँगा । अतः महाभाग ! अब तुम यज्ञकी उत्तम सामग्रियोंको जुटाओ और वेदोंके पारगामी विद्वान् ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करो ।'

सूतजी कहते हैं—वेनकी आज्ञा पाकर परम धर्मात्मा राजकुमार पृथुने नाना प्रकारकी पवित्र सामग्रियाँ एकत्रित कीं तथा नाना देशोंमें उत्पन्न हुए समस्त ब्राह्मणोंको निमन्त्रित किया । तदनन्तर राजा वेनने अश्वमेध यज्ञ किया और ब्राह्मणोंको अनेक प्रकारके दान दिये । इसके बाद वे भगवान् विष्णुके धामको चले गये । महर्षियो ! इस प्रकार मैंने आपलोगोंसे राजा पृथुके समस्त चरित्रका वर्णन किया । यह सब पापोंकी शान्ति और सम्पूर्ण दुःखोंका विनाश करनेवाला है । धर्मात्मा राजा पृथुने इस प्रकार पृथ्वीका राज्य किया और तीनों लोकोंसहित भूमण्डलकी रक्षा की । उन्होंने पुण्य धर्ममय कर्मोंके द्वारा समस्त प्रजाका मनोरञ्जन किया ।

यह मैंने आपलोगोंसे परम उत्तम भूमिखण्डका वर्णन किया है । पहला सृष्टिखण्ड है और दूसरा भूमिखण्ड । अब भूमिखण्डके माहात्म्यका वर्णन आरम्भ करता हूँ । जो श्रेष्ठ मनुष्य इस खण्डके एक श्लोकका भी श्रवण करता है, उसके एक दिनका पाप नष्ट हो जाता है । जो श्रेष्ठ बुद्धिसे युक्त पुरुष इसके एक अध्यायको सुनता है, उसे पर्वके अवसरपर ब्राह्मणोंको एक हजार गोदान देनेका फल मिलता है । साथ ही उसपर भगवान् श्रीविष्णु भी प्रसन्न होते हैं । जो इस पद्मपुराणका प्रतिदिन पाठ करता है, उसपर कलियुगमें कभी विघ्नोंका आक्रमण नहीं होगा । ब्राह्मणो ! अश्वमेध यज्ञका जो फल बतलाया जाता है, इस पद्मपुराणके पाठसे उसी फलकी प्राप्ति होती है । पुण्यमय अश्वमेध यज्ञ कलियुगमें नहीं होता, अतः उस समय यह पुराण ही अश्वमेधके समान फल देनेवाला है । कलियुगमें मनुष्य प्रायः पापी होते हैं, अतः उन्हें नरकके समुद्रमें गिरना पड़ता है, इसलिये उनको चाहिये कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंके साधक इस पुण्यमय पुराणका श्रवण करें । जिसने पुण्यके साधनभूत इस पद्मपुराणका श्रवण किया, उसने चतुर्वर्गके समस्त साधनोंको सिद्ध कर लिया । इसका श्रवण करनेवाले मनुष्यके ऊपर कभी भारी विघ्नका आक्रमण नहीं होता । धर्मपरायण पुरुषोंको पूरी पुराणसंहिताका श्रवण करना चाहिये । इससे धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी भी सिद्धि होती है । भूमिखण्डका श्रवण करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है तथा रोग, दुःख और शत्रुओंके भयसे भी छुटकारा पाकर सदा सुखका अनुभव करता है । पद्मपुराणमें पहला सृष्टिखण्ड, दूसरा भूमिखण्ड, तीसरा स्वर्गखण्ड, चौथा पातालखण्ड और पाँचवाँ सब पापोंका नाश करनेवाला उत्तरखण्ड है । * ब्राह्मणो ! इन पाँचों खण्डोंको सुननेका अवसर बड़े भाग्यसे प्राप्त होता है । सुननेपर ये मोक्ष प्रदान करते हैं—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है ।

॥ भूमिखण्ड समाप्त ॥

* प्रथमं सृष्टिखण्डं हि भूमिखण्डं द्वितीयकम् । तृतीयं स्वर्गखण्डं च पातालं च चतुर्थकम् ॥
पञ्चमं चोत्तरं खण्डं सर्वपापप्रणाशनम् । .. ... ॥
(१२५ । ४८-४९)

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

संक्षिप्त पद्मपुराण

स्वर्ग-खण्ड

आदि सृष्टिके क्रमका वर्णन

नमामि गोविन्दपदारविन्दं सदेन्दिरानन्दनमुत्तमाढ्यम् ।
जगज्जनानां हृदि संनिविष्टं महाजनैकायनमुत्तमोत्तमम् ॥*

ऋषि बोले—उत्तम व्रतका पालन करनेवाले रोमहर्षण-जी! आप पुराणोंके विद्वान् तथा परम बुद्धिमान् हैं। आजसे पहले हमलोग आपके मुँहसे पुराणोंकी अनेकों परम पावन कथाएँ सुन चुके हैं तथा इस समय भी भगवान्‌की कथा-वार्तामें ही लगे हैं। जीवोंके लिये सबसे महान् धर्म यही है, जिससे उनकी भगवान्‌में भक्ति हो। अतः सूतजी! आप फिर हमें श्रीहरिकी कथा सुनाइये; क्योंकि भगवच्चर्चाके अतिरिक्त दूसरी कोई बातचीत श्मशान-भूमिके समान मानी गयी है। हमने सुना है, तीर्थोंके रूपमें स्वयं भगवान् विष्णु ही इस भूतलपर विराजमान हैं; इसलिये आप पुण्य प्रदान करनेवाले तीर्थोंके नाम बताइये। साथ ही यह भी कहनेकी कृपा कीजिये कि यह चराचर जगत् किससे उत्पन्न हुआ है, किसके द्वारा इसका पालन होता है तथा प्रलयके समय किसमें यह लीन होता है। जगत्‌में कौन-कौन-से पुण्यक्षेत्र हैं? किन-किन पर्वतोंके प्रति पूज्यभाव रखना चाहिये? और मनुष्योंके पाप दूर करनेवाली परम पवित्र नदियाँ कौन-कौन-सी हैं? महाभाग! इन सबका आप क्रमशः वर्णन कीजिये।

सूतजीने कहा—द्विजवरो! पहले मैं आदि सर्गका वर्णन करता हूँ, जिसके द्वारा षड्विध ऐश्वर्यसे सम्पन्न सनातन परमात्माका ज्ञान होता है। प्रलयकालके पश्चात् इस सृष्टिकी कोई भी वस्तु शेष नहीं रह गयी थी। उस समय केवल ज्योतिःस्वरूप ब्रह्म ही शेष था, जो सबको उत्पन्न करनेवाला है। वह ब्रह्म नित्य, निरञ्जन, शान्त, निर्गुण, सदा ही निर्मल, आनन्दधाम और शुद्धस्वरूप है। संसार-बन्धनसे मुक्त होने-की अभिलाषा रखनेवाले साधु पुरुष उसीको जाननेकी इच्छा करते हैं। वह ज्ञानस्वरूप होनेके कारण सर्वज्ञ, अनन्त, अजन्मा, अविकारी, अविनाशी, नित्यशुद्ध, अच्युत, व्यापक तथा सबसे महान् है। सृष्टिका समय आनेपर उस ब्रह्मने वैकारिक जगत्‌को अपनेमें लीन जानकर पुनः उसे उत्पन्न करनेका विचार किया। तब ब्रह्मसे प्रधान (मूल प्रकृति) प्रकट हुआ। प्रधानसे महत्तत्त्वकी उत्पत्ति हुई, जो सात्त्विक, राजस और तामस भेदसे तीन प्रकारका है। यह महत्तत्त्व प्रधानके द्वारा सब ओरसे आवृत है। फिर महत्तत्त्व-से वैकारिक (सात्त्विक), तैजस (राजस) और भूतादि-रूप तामस—तीन प्रकारका अहंकार उत्पन्न हुआ। जिस प्रकार प्रधानसे महत्तत्त्व आवृत है, उसी प्रकार महत्तत्त्वसे अहंकार भी आवृत है। तत्पश्चात् भूतादि नामक तामस अहंकारने विकृत होकर भूत और तन्मात्राओंकी सृष्टि की।

इन्द्रियाँ तैजस कहलाती हैं—वे राजस अहंकारसे प्रकट हुई हैं। इन्द्रियोंके अधिष्ठाता दस देवता वैकारिक कहे गये हैं—उनकी उत्पत्ति सात्त्विक अहंकारसे हुई है। तत्त्वका विचार करनेवाले विद्वानोंने मनको ग्यारहवीं इन्द्रिय बताया है। विप्रगण! आकाश, वायु, तेज, जल और

---

* मैं भगवान् विष्णुके उन चरण-कमलोंको [भक्तिपूर्वक] प्रणाम करता हूँ, जो भगवती लक्ष्मीजीको सदा ही आनन्द प्रदान करनेवाले और उत्तम शोभासे सम्पन्न हैं, जिनका संसारके प्रत्येक जीवके हृदयमें निवास है तथा जो महापुरुषोंके एकमात्र आश्रय और श्रेष्ठसे भी श्रेष्ठ हैं।

१. स्वर्गखण्डसे लेकर आगेका अंश रोमहर्षणजीका सुनाया हुआ है। इसके पहलेका भाग उनके पुत्रने सुनाया था।

पृथ्वी—ये क्रमशः शब्दादि उत्तरोत्तर गुणोंसे युक्त हैं। ये पाँचों भूत पृथक्-पृथक् नाना प्रकारकी शक्तियोंसे सम्पन्न हैं, किन्तु परस्पर संघटित हुए बिना वे प्रजाकी सृष्टि करनेमें समर्थ न हुए। इसलिये महत्तत्त्वसे लेकर पञ्चभूतपर्यन्त सभी तत्त्व परम पुरुष परमात्माद्वारा अधिष्ठित और प्रधानद्वारा अनुगृहीत होनेके कारण पूर्णरूपसे एकत्वको प्राप्त हुए। इस प्रकार एक दूसरेसे संयुक्त होकर परस्परका आश्रय ले उन्होंने अण्डकी उत्पत्ति की। महाप्राज्ञ महर्षियो! इस तरह भूतोंसे प्रकट हो क्रमशः वृद्धिको प्राप्त हुआ वह विशाल अण्ड पानीके बुलबुलेकी तरह सब ओरसे समान—गोलाकार दिखायी देने लगा। वह पानीके ऊपर स्थित होकर ब्रह्मा (हिरण्यगर्भ) के रूपमें प्रकट हुए भगवान् विष्णुका उत्तम स्थान बन गया। सम्पूर्ण विश्वके स्वामी अव्यक्तस्वरूप भगवान् विष्णु स्वयं ही ब्रह्माजीका रूप धारण कर उस अण्डके भीतर विराजमान हुए।

उस समय मेरु पर्वतने उन महात्मा हिरण्यगर्भके लिये गर्भको ढकनेवाली झिल्लीका काम दिया, अन्य पर्वत जरायु—जेरके स्थानमें थे और समुद्र उसके भीतरका जल था। उस अण्डमें ही पर्वत और द्वीप आदिके सहित समुद्र, ग्रहों और ताराओंके साथ सम्पूर्ण लोक तथा देवता, असुर और मनुष्योंसहित सारी सृष्टि प्रकट हुई। आदि-अन्तरहित सनातन भगवान् विष्णुकी नाभिसे जो कमल प्रकट हुआ था, वही उनकी इच्छासे सुवर्णमय अण्ड हो गया। परमपुरुष भगवान् श्रीहरि स्वयं ही रजोगुणका आश्रय ले ब्रह्माजीके रूपमें प्रकट होकर संसारकी सृष्टिमें प्रवृत्त होते हैं। वे परमात्मा नारायणदेव ही सृष्टिके समय ब्रह्मा होकर समस्त जगत्की रचना करते हैं, वे ही पालनकी इच्छासे श्रीराम आदिके रूपमें प्रकट हो इसकी रक्षामें तत्पर रहते हैं तथा अन्तमें वे ही इस जगत्का संहार करनेके लिये रुद्रके रूपमें प्रकट हुए हैं।

भारतवर्षका वर्णन और वसिष्ठजीके द्वारा पुष्कर तीर्थकी महिमाका बखान

सूतजी कहते हैं—महर्षिगण! अब मैं आपलोगोंसे परम उत्तम भारतवर्षका वर्णन करूँगा। राजा प्रियमित्र, देव, वैवस्वत मनु, पृथु, इक्ष्वाकु, ययाति, अम्बरीष, मान्धाता, नहुष, मुचुकुन्द, कुबेर, उशीनर, ऋषभ, पुरूरवा, राजा नृग, राजर्षि कुशिक, गाधि, सोम तथा राजर्षि दिलीपको, अन्यान्य बलिष्ठ क्षत्रिय राजाओंको एवं सम्पूर्ण भूतोंको ही यह उत्तम देश भारतवर्ष बहुत ही प्रिय रहा। इस देशमें महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान्, ऋक्षवान्, विन्ध्य तथा पारियात्र—ये सात कुल पर्वत हैं। इनके आस पास और भी हजारों पर्वत हैं। भारतवर्षके लोग जिन विशाल नदियोंका जल पीते हैं, उनके नाम ये हैं— गङ्गा, सिन्धु, सरस्वती, गोदावरी, नर्मदा, बाहुदा, शतद्रु (सतलज), चन्द्रभागा, यमुना, दृषद्वती, विपाशा (व्यास), वेत्रवती (बेतवा), कृष्णा, वेणी, इरावती (इरावदी), वितस्ता (झेलम), पयोष्णी, देविका, वेदस्मृति, वेदशिरा, त्रिदिवा, सिन्धुलाकृमि, करीषिणी, चित्रवहा, त्रिसेना, गोमती, चन्दना, कौशिकी (कोसी), हृद्या, नाचिता, रोहितारणी, रहस्या, शतकुम्भा, सरयू, चर्मण्वती, हस्तिसोमा, दिशा, शरावती, भीमरथी, कावेरी, बालुका, तापी (ताप्ती), नीवारा, महिता, सुप्रयोगा, पवित्रा, कृष्णला, [illegible] ...भिरामा, वीरा, मालावती, पापहारिणी, पलाशिनी, महेन्द्रा, पाटलावती, असिक्री, कुशवीरा, मरुत्वा, प्रवरा, मेना, होरा, घृतवती, अनाकती, अनुष्णी, सेव्या, कापी, सदावीरा, अधृष्या, कुशचीरा, रथचित्रा, ज्योतिरथा, विश्वामित्रा, कपिञ्जला, उपेन्द्रा, बहुला, कुचीरा, वैनन्दी, पिञ्जला, वेणा, तुङ्गवेगा, महानदी, विदिशा, कृष्णवेगा, ताम्रा, कपिला, धेनु, सकामा, वेदस्वा, हवि स्रावा, महापथा, शिप्रा (सिप्रा), पिच्छला, भारद्वाजी, कौशिकी, शोणा (सोन), चन्द्रमा, अन्त शिला, ब्रह्ममेध्या, परोक्षा, रोही, जम्बूनदी (जम्बू), सुनासा, तपसा, दासी, सामान्या, वरुणा, असी, नीला, धृतिकरी, पर्णाशा, मानवी, वृषभा तथा भाषा। द्विजवरो! ये तथा और भी बहुत सी बड़ी-बड़ी नदियाँ हैं।

अब जनपदोंका वर्णन करता हूँ, सुनिये। कुरु, पाञ्चाल, शाल्व, माद्रेय, जाङ्गल, शूरसेन (मथुराके आसपासका प्रान्त), पुलिन्द, बौध, माल, सौगन्ध्य, चेदि, मत्स्य (जयपुरके आसपासका भूखण्ड), करूष, भोज, सिन्धु (सिंध), उत्तम, दशार्ण, मेकल, उत्कल, कोशल, नैकपृष्ठ, युगधर, मद्र, कलिङ्ग, काशि, अपरकाशि, जठर, कुकुर, कुन्ति, अवन्ति (उज्जैनके आसपासका देश), अपरकुन्ति, गोमन्त, मल्लक, पुण्ड्र, नृपवाहिक, अश्मक, उत्तर, गोपराष्ट्र, अधिराज्य, कुशाद्य, मल्लराष्ट्र, मालव

(मालवा), उपवास्य, वक्रा, वक्रातप, मागध, सह्य, मलज, विदेह (तिरहुत), विजय, अङ्ग (भागलपुरके आस-पासका प्रान्त), वङ्ग (बंगाल), यकृल्लोमा, मल्ल, सुदेष्ण, प्रह्लाद, महिष, शशक, बाह्लिक (बलख), वाटधान, आभीर, कालतोयक, अपरान्त, परान्त, पञ्चल, चर्मचण्डक, अटवीशेखर, मेरुभूत, उपावृत्त, अनुपावृत्त, सुराष्ट्र (सूरतके आसपासका देश), केकय, कुट्ट, माहेय, कक्ष, सामुद्र, निष्कुट, अन्ध, बहु, अन्तर्गिरि, बहिर्गिरि, मलद, सत्वतर, प्रावृषेय, भार्ग, भार्गव, भासुर, शक, निषाद, निषध, आनर्त्त (द्वारकाके आसपासका देश), नैर्ऋत, पूर्णल, पूतिमत्स्य, कुन्तल, कुशक, तीरग्रह, ईजिक, कल्पकारण, तिलभाग, मसार, मधुमत्त, ककुन्दक, काश्मीर, सिन्धुसौवीर, गान्धार (कंधार), दर्शक, अभीसार, कुद्रुत, सौरिल, दर्वी, दर्वावात, जामरथ, उरग, बलरङ्ग, सुदामा, सुमल्लिक, वन्ध, करीकष, कुलिन्द, गन्धिक, वानायु, दश, पार्श्वरोमा, कुशबिन्दु, कच्छ, गोपालकच्छ, कुरुवर्ण, किरात, बर्बर, सिद्ध, ताम्रलिप्तिक, औड्म्लेच्छ, सैरिन्ध्र और पर्वतीय । ये सब उत्तर भारतके जनपद बताये गये हैं ।

मुनिवरो ! अब दक्षिण भारतके जनपदोंका वर्णन किया जाता है । द्रविड (तमिलनाड), केरल (मलबार), प्राच्य, मूषिक, वालमूषिक, कर्णाटक, माहिषक, किष्किन्ध, झल्लिक, कुन्तल, सौहृद, नलकानन, कोकुट्टक, चोल, कोण, मणिवालव, समङ्ग, कनङ्क, कुकुर, अङ्गार, मारिष, ध्वजिनी, उत्सव, संकेत, त्रिगर्भ, माल्यसेनि, व्यूढक, कोरक, प्रोष्ठ, सङ्गवेगधर, विन्ध्य, रुलिक, बल्वल, मलर, अपरवर्तक, कालद, चण्डक, कुरट, मुशल, तनवाल, सतीर्थ, पूति, सृञ्जय, अनिदाय, शिवाट, तपान, सूतप, ऋषिक, विदर्भ (बरार), तङ्गण और परतङ्गण । अब उत्तर एवं अन्य दिशाओंमें रहनेवाले म्लेच्छोंके स्थान बताये जाते हैं—यवन (यूनानी) और काम्बोज—ये बड़े क्रूर म्लेच्छ हैं । कृधृह, पुलस्त्य, हूण, पारसिक (ईरान) तथा दशमानिक इत्यादि अनेकों जनपद हैं । इनके सिवा क्षत्रियोंके भी कई उपनिवेश हैं । वैश्यों और शूद्रोंके भी स्थान हैं । शूरवीर आभीर, दरद तथा काश्मीर जातिके लोग पशुओंके साथ रहते हैं । खाण्डीक, तुषार, पह्लव, गिरिगह्वर, आत्रेय, भारद्वाज, स्तनपोषक, द्रोषक और कलिङ्ग—ये किरातोंकी जातियाँ हैं [और इनके नामसे भिन्न-भिन्न जनपद हुए हैं] । तोमर, हन्यमान और करभञ्जक आदि अन्य बहुत-से जनपद हैं । यह पूर्व और उत्तरके जनपदोंका वर्णन हुआ । ब्राह्मणो ! इस प्रकार संक्षेपसे ही मैंने सब देशोंका परिचय दिया है । इस अध्यायका पाठ और श्रवण त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ और काम) रूप महान् फलको देनेवाला है ।

द्विजवरो ! प्राचीन कालमें राजा युधिष्ठिरके साथ जो देवर्षि नारदका संवाद हुआ था, उसका वर्णन करता हूँ; आप-लोग श्रवण करें । महारथी पाण्डवोंके राज्यका अपहरण हो चुका था । वे द्रौपदीके साथ वनमें निवास करते थे । एक दिन उन्हें परम महात्मा देवर्षि नारदजीने दर्शन दिया । पाण्डवोंने उनका स्वागत-सत्कार किया । नारदजी उनकी की हुई पूजा स्वीकार करके युधिष्ठिरसे बोले—'धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ ! तुम क्या चाहते हो ?' यह सुनकर धर्मनन्दन राजा युधिष्ठिरने भाइयोंसहित हाथ जोड़ देवतुल्य नारदजीको प्रणाम किया और कहा—'महाभाग ! आप सम्पूर्ण लोकोंद्वारा पूजित हैं । आपके संतुष्ट हो जानेपर मैं अपनेको कृतार्थ मानता हूँ—मुझे किसी बातकी आवश्यकता नहीं है । मुनिश्रेष्ठ ! जो तीर्थयात्रामें प्रवृत्त होकर समूची पृथ्वीकी परिक्रमा करता है, उसको क्या फल मिलता है ? ब्रह्मन् ! इस बातको आप पूर्णरूपसे बतानेकी कृपा करें ।'

नारदजी बोले—राजन् ! पहलेकी बात है, राजाओंमें श्रेष्ठ दिलीप धर्मानुकूल व्रतका नियम लेकर गङ्गाजीके तटपर मुनियोंकी भाँति निवास करते थे । कुछ कालके बाद एक दिन जब महामना दिलीप जप कर रहे थे, उसी समय उन्हें ऋषियोंमें श्रेष्ठ वसिष्ठजीका दर्शन हुआ । महर्षिको उपस्थित देख राजाने उनका विधिवत् पूजन किया और कहा—'उत्तम व्रतका पालन करनेवाले मुनिश्रेष्ठ ! मैं आपका दास दिलीप हूँ । आज आपका दर्शन पाकर मैं सब पापोंसे मुक्त हो गया ।'

वसिष्ठजीने कहा—महाभाग ! तुम धर्मके ज्ञाता हो । तुम्हारे विनय, इन्द्रियसंयम तथा सत्य आदि गुणोंसे मैं सर्वथा संतुष्ट हूँ । बोलो, तुम्हारा कौन-सा प्रिय कार्य करूँ ?

दिलीप बोले—मुने ! आप प्रसन्न हैं, इतनेसे ही मैं अपनेको कृतकृत्य समझता हूँ । तपोधन ! जो (तीर्थयात्राके उद्देश्यसे) सारी पृथ्वीकी प्रदक्षिणा करता है, उसको क्या फल मिलता है ? यह मुझे बताइये ।

वसिष्ठजीने कहा—तात ! तीर्थोंका सेवन करनेसे जो फल मिलता है, उसे एकाग्रचित्त होकर सुनो । तीर्थ ऋषियों-के परम आश्रय हैं । मैं उनका वर्णन करता हूँ । वास्तवमें तीर्थसेवनका फल उसे ही मिलता है जिसके हाथ, पैर और

मन अच्छी तरह अपने वशमें हो, जो विद्वान्, तपस्वी और वीतिमान् हो तथा जिसने दान लेना छोड़ दिया हो। जो मतोगी, नियमपरायण, पवित्र, अहङ्कारशून्य और उपवास (व्रत) करनेवाला हो, जो अपने आहार और इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त कर चुका हो, जो सब दोषोंसे मुक्त हो तथा जिसमें क्रोधका अभाव हो। जो सत्यवादी, दृढ़प्रतिज्ञ तथा सम्पूर्ण भूतोंके प्रति अपने जैसा भाव रखनेवाला हो, उसीको तीर्थका पूरा फल प्राप्त होता है। राजन्! दरिद्र मनुष्य यज्ञ नहीं कर सकते, क्योंकि उसमें नाना प्रकारके साधन और सामग्रीकी आवश्यकता होती है। कहीं कोई राजा या धनवान् पुरुष ही यज्ञका अनुष्ठान कर पाते हैं। इसलिये मैं तुम्हें वह शास्त्रोक्त कर्म बतला रहा हूँ, जिसे दरिद्र मनुष्य भी कर सकते हैं तथा जो पुण्यकी दृष्टिसे यज्ञफलोंकी समानता करनेवाला है, उसे ध्यान देकर सुनो। पुष्कर तीर्थमें जाकर मनुष्य देवाधिदेवके समान हो जाता है। महाराज! दिव्यशक्तिसे सम्पन्न देवता, दैत्य तथा ब्रह्मर्षिगण वहाँ तपस्या करके महान् पुण्यके भागी हुए हैं, जो मनीषी पुरुष मनसे भी पुष्कर तीर्थके सेवनकी इच्छा करता है, उसके सब पाप धुल जाते हैं तथा वह स्वर्गलोकमें पूजित होता है। इस तीर्थमें पितामह ब्रह्माजी सदा प्रसन्नतापूर्वक निवास करते हैं। महाभाग! पुष्करमें आकर देवता और ऋषि भी महान् पुण्यसे युक्त हो परमसिद्धिको प्राप्त हुए हैं। जो वहाँ स्नान करके पितरों और देवताओंके पूजनमें प्रवृत्त होता है, उसके लिये मनीषी विद्वान् अश्वमेधसे दसगुने पुण्यकी प्राप्ति बतलाते हैं। जो पुष्करके वनमें जाकर एक ब्राह्मणको भी भोजन कराता है, वह उसके पुण्यसे ब्रह्मधाममें स्थित अजित लोकों को प्राप्त होता है। जो सायंकाल और प्रातःकालमें हाथ जोड़कर पुष्कर तीर्थका चिन्तन करता है, वह सब तीर्थोंमें स्नान करनेका फल प्राप्त करता है। पुष्करमें जाने मात्रसे स्त्री या पुरुषके जन्मभरके किये हुए सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। जैसे भगवान् विष्णु सम्पूर्ण देवताओंके आदि हैं, उसी प्रकार पुष्कर भी समस्त तीर्थोंका आदि कहलाता है। पुष्करमें नियम और पवित्रतापूर्वक बारह वर्षोंतक निवास करके मनुष्य सम्पूर्ण यज्ञोंका फल प्राप्त कर लेता है और अन्तमें ब्रह्मलोकको जाता है। जो पूरे सौ वर्षोंतक अग्निहोत्रका अनुष्ठान करता है अथवा केवल कार्तिककी पूर्णिमाको पुष्करमें निवास करता है, उसके ये दोनों कर्म समान ही हैं। पहले तो पुष्करमें जाना ही कठिन है। जानेपर भी वहाँ तपस्या करना और भी कठिन है। पुष्करमें दान देना उससे भी कठिन है और सदा वहाँ निवास करना तो बहुत ही मुश्किल है।

जम्बूमार्ग आदि तीर्थ, नर्मदा नदी, अमरकण्टक पर्वत तथा कावेरी-सङ्गमकी महिमा

वसिष्ठजी कहते हैं—राजन्! पृथ्वीकी परिक्रमा आरम्भ करनेवाले मनुष्यको पहले जम्बूमार्गमें प्रवेश करना चाहिये। वह पितरों, देवताओं तथा ऋषियोंद्वारा पूजित तीर्थ है। जम्बूमार्गमें जाकर मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त करता है और अन्तमें विष्णुलोकको जाता है। जो मनुष्य प्रतिदिन छठे पहरमें एक बार भोजन करते हुए पाँच राततक उस तीर्थमें निवास करता है, उसकी कभी दुर्गति नहीं होती तथा वह परम उत्तम सिद्धिको प्राप्त होता है। जम्बूमार्गसे चलकर तुण्डुलिकाश्रमकी यात्रा करनी चाहिये। वहाँ जानेसे मनुष्य दुर्गतिमें नहीं पड़ता तथा स्वर्गलोकमें उसका सम्मान होता है। राजन्! जो अगस्त्याश्रममें जाकर देवताओं और पितरोंकी पूजा करता और वहाँ तीन रात उपवास करके रहता है, उसे अग्निष्टोम यज्ञका फल मिलता है। तथा जो शाक या फलसे जीवन निर्वाह करते हुए वहाँ निवास करता है, वह परम उत्तम कार्तिकेयजीके धामको प्राप्त होता है। राजाओंमें श्रेष्ठ दिलीप! लक्ष्मीसे सेवित तथा समस्त लोकोंद्वारा पूजित कन्याश्रम तीर्थ धर्मारण्यके नामसे प्रसिद्ध है, वह पुण्यदायक और प्रधान क्षेत्र है, वहाँ पहुँचकर उसमें प्रवेश करने मात्रसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो नियमानुकूल आहार करके शौच-सतोष आदि नियमोंका पालन करते हुए वहाँ देवता तथा पितरोंका पूजन करता है, वह सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाले यज्ञका फल पाता है। उस तीर्थकी परिक्रमा करके ययातिपतन नामक स्थानको जाना चाहिये। वहाँकी यात्रा करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है।

तदनन्तर, नियमानुकूल आहार और आचारका पालन करते हुए [उज्जैनमें स्थित] महाकाल तीर्थकी यात्रा करे। वहाँ कोटितीर्थमें स्नान करके मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त करता है। वहाँसे धर्मज्ञ पुरुषको भद्रवट नामक स्थानमें जाना चाहिये, जो भगवान् उमापतिका तीर्थ है। वहाँकी यात्रा

करनेसे एक हजार गोदानका फल मिलता है तथा महादेवजीकी कृपासे शिवगणोंका आधिपत्य प्राप्त होता है। नर्मदा नदीमें जाकर देवताओं तथा पितरोंका तर्पण करके मनुष्य अग्निष्टोम-यज्ञका फल पाता है।

युधिष्ठिर बोले—द्विजश्रेष्ठ नारदजी ! मैं पुनः नर्मदाका माहात्म्य सुनना चाहता हूँ।

नारदजीने कहा—राजन् ! नर्मदा सब नदियोंमें श्रेष्ठ है। वह समस्त पापोंका नाश करनेवाली तथा स्थावर-जङ्गम सम्पूर्ण भूतोंको तारनेवाली है। सरस्वतीका जल तीन सप्ताहतक स्नान करनेसे, यमुनाका जल एक सप्ताहतक गोता लगानेसे और गङ्गाजीका जल स्पर्शके समय ही पवित्र करता है; किन्तु नर्मदाका जल दर्शनमात्रसे पवित्र कर देता है। नर्मदा तीनों लोकोंमें रमणीय तथा पावन नदी है। महाराज ! देवता, असुर, गन्धर्व और तपोधन ऋषि—ये नर्मदाके तटपर तपस्या करके परम सिद्धिको प्राप्त हो चुके हैं। युधिष्ठिर ! वहाँ स्नान करके शौच-संतोष आदि नियमोंका पालन करते हुए जो जितेन्द्रियभावसे एक रात भी उसके तटपर निवास करता है, वह अपनी सौ पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है। जो मनुष्य जनेश्वर तीर्थमें स्नान करके विधिपूर्वक पिण्डदान देता है, उसके पितर महाप्रलयतक तृप्त रहते हैं। अमरकण्टक पर्वतके चारों ओर कोटि रुद्रोंकी प्रतिष्ठा हुई है; जो वहाँ स्नान करता और चन्दन एवं फूल-माला आदि चढ़ाकर रुद्रकी पूजा करता है, उसपर रुद्रकोटिस्वरूप भगवान् शिव प्रसन्न होते हैं, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। पर्वतके पश्चिम भागमें स्वयं भगवान् महेश्वर विराजमान हैं। वहाँ स्नान करके पवित्र हो ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए जितेन्द्रियभावसे शास्त्रीय विधिके अनुसार श्राद्ध करना चाहिये तथा वहीं तिल और जलसे पितरों तथा देवताओंका तर्पण भी करना चाहिये। पाण्डुनन्दन ! जो ऐसा करता है, उसकी सातवीं पीढ़ीतकके सभी लोग स्वर्गमें निवास करते हैं।

राजा युधिष्ठिर ! सरिताओंमें श्रेष्ठ नर्मदाकी लंबाई सौ योजनसे कुछ अधिक सुनी जाती है तथा चौड़ाई दो योजनकी है। अमरकण्टक पर्वतके चारों ओर साठ करोड़ और साठ हजार तीर्थ हैं। वहाँ रहनेवाला पुरुष ब्रह्मचर्यका पालन करे, पवित्र रहे, क्रोध और इन्द्रियोंको काबूमें रखे तथा सब प्रकारकी हिंसाओंसे दूर रहकर सब प्राणियोंके हित-साधनमें संलग्न रहे। इस प्रकार समस्त सदाचारोंका पालन करते हुए क्षेत्रपालों (तीर्थ-देवताओं) के दर्शनके लिये यात्रा करनी चाहिये। नर्मदाके दक्षिण-भागमें थोड़ी ही दूरपर एक कपिला नामकी बहुत बड़ी नदी है, जो अपने तटपर उगे हुए देवदार एवं अर्जुनके वृक्षोंसे आच्छादित रहती है। वह परम सौभाग्यवती पावन नदी तीनों लोकोंमें विख्यात है। युधिष्ठिर ! उसके तटपर सौ करोड़से अधिक तीर्थ हैं। कपिलाके तीरपर जो वृक्ष कालचक्रके प्रभावसे गिर जाते हैं, वे भी नर्मदाके जलसे संयुक्त होनेपर परम गतिको प्राप्त होते हैं। एक दूसरी भी नदी है, जिसका नाम विशल्यकरणा है। उस शुभ नदीके किनारे स्नान करनेसे मनुष्य तत्काल शल्यरहित—शोकहीन हो जाता है। नर्मदासे मिली हुई विशल्या नामकी नदी सब पापोंका नाश करनेवाली है। राजन् ! जो मनुष्य वहाँ स्नान करके ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए जितेन्द्रियभावसे एक रात निवास करता है, वह अपनी सौ पीढ़ियोंको तार देता है। महाराज ! जो उस तीर्थमें उपवास करता है, वह सब पापोंसे शुद्ध होकर इन्द्रलोकको जाता है। नर्मदामें स्नान करके मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त करता है। अमरकण्टक पर्वतपर जिसकी मृत्यु होती है, वह सौ करोड़ वर्षोंसे अधिक कालतक इन्द्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है। फेन और लहरोंसे सुशोभित नर्मदाका पावन जल मस्तकपर चढ़ानेयोग्य है; ऐसा करनेसे सब पापोंसे छुटकारा मिल जाता है। नर्मदा सब प्रकारके पुण्य देनेवाली और ब्रह्महत्याका पाप दूर करनेवाली है। जो नर्मदा-तटपर एक दिन और एक रात उपवास करता है, वह ब्रह्महत्यासे छूट जाता है। पाण्डुनन्दन ! इस प्रकार नर्मदा परम पावन एवं रमणीय नदी है। यह महानदी तीनों लोकोंको पवित्र करती है।

महाराज ! अमरकण्टक पर्वत सब ओरसे पुण्यमय है। जो चन्द्रग्रहण तथा सूर्यग्रहणके अवसरपर अमरकण्टककी यात्रा करता है, उसके लिये मनीषी पुरुष अश्वमेधसे दसगुना पुण्य बताते हैं। वहाँ महेश्वरका दर्शन करनेसे स्वर्गलोककी प्राप्ति होती है। जो लोग सूर्यग्रहणके समय समुदायके साथ अमरकण्टक पर्वतकी यात्रा करते हैं, उन्हें पुण्डरीक-यज्ञका सम्पूर्ण फल प्राप्त होता है। उस पर्वतपर ज्वालेश्वर नामक महादेव हैं, वहाँ स्नान करके मनुष्य स्वर्गलोकको प्राप्त होते हैं तथा जिनकी वहाँ मृत्यु होती है, वे पुनः जन्म-मरणके बन्धनमें नहीं पड़ते। मनुष्यके हृदयमें सकाम भाव हो या निष्काम, वह नर्मदाके शुभ जलमें

स्नान करके सब पापोंसे मुक्त हो जाता है और अन्तमें रुद्र लोकको जाता है।

सूतजी कहते हैं—युधिष्ठिर आदि सब महात्मा पुरुषोंने नारदजीसे पूछा—'भगवन्! सम्पूर्ण लोकोंके हितके उद्देश्यसे तथा हमलोगोंके ज्ञान एवं पुण्यकी वृद्धिके लिये आप [कृपापूर्वक] नर्मदा कावेरी संगमकी यथार्थ महिमाका वर्णन कीजिये।'

नारदजीने कहा—राजन्! लोक विख्यात कावेरी नदी जहाँ नर्मदामें मिली है, उसी स्थानपर पहले कभी सत्यपराक्रमी कुबेर स्नान करके पवित्र हो तपस्या करते थे। उन्होंने सौ दिव्य वर्षोंतक भारी तपस्या की। इससे प्रसन्न होकर महादेवजीने उन्हें उत्तम वर प्रदान किया। वे बोले—'महान् सत्त्वशाली यक्ष! तुम इच्छानुसार वर माँगो, तुम्हारे मनमें जो अभीष्ट कार्य हो, उसे बताओ।'

कुबेरने कहा—देवेश्वर! यदि आप संतुष्ट हैं और मुझे वर देना चाहते हैं तो ऐसी कृपा कीजिये कि मैं सब यक्षोंका स्वामी बनूँ।

कुबेरकी बात सुनकर भगवान् महेश्वर बहुत प्रसन्न हुए, वे 'एवमस्तु' कहकर वहीं अन्तर्धान हो गये। वर पाकर कुबेर यक्षपुरी—अलकापुरीमें गये। वहाँ श्रेष्ठ यक्षोंने उनका बड़ा सम्मान किया और उन्हें 'राजा' के पदपर अभिषिक्त कर दिया। जहाँ कुबेरने तपस्या की थी, वहाँ कावेरी संगमका जल सब पापोंका नाश करनेवाला है। जो लोग उस संगमकी महिमाको नहीं जानते, वे बड़े भारी लाभसे वञ्चित रह जाते हैं। अतः मनुष्यको सर्वथा प्रयत्न करके वहाँ स्नान करना चाहिये। कावेरी और महानदी नर्मदा दोनों ही परम पुण्यदायिनी हैं। महाराज! वहाँ स्नान करके वृषभध्वज भगवान् शङ्करका पूजन करना चाहिये। ऐसा करनेवाला पुरुष अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त करके रुद्रलोकमें पूजित होता है। गङ्गा और यमुनाके संगममें स्नान करके मनुष्य जिस फलको प्राप्त करता है, वही फल उसे कावेरी-नर्मदा-संगममें स्नान करनेसे भी मिलता है। राजेन्द्र! इस प्रकार नर्मदा-कावेरी-संगमकी बड़ी महिमा है। वहाँ सब पापोंका नाश करनेवाला महान् पुण्यफल प्राप्त होता है।

नर्मदाके तटवर्ती तीर्थोंका वर्णन



नारदजी कहते हैं—युधिष्ठिर! नर्मदाके उत्तर तट पर 'पत्रेश्वर' नामसे विख्यात एक तीर्थ है, जिसका विस्तार चार कोसका है। वह सब पापोंका नाश करनेवाला उत्तम तीर्थ है। राजन्! वहाँ स्नान करके मनुष्य देवताओंके साथ आनन्दका अनुभव करता है। वहाँसे 'गर्जन' नामक तीर्थमें जाना चाहिये, जहाँ [रावणका पुत्र] मेघनाद गया था, उसी तीर्थके प्रभावसे उसको 'इन्द्रजित्' नाम प्राप्त हुआ था। वहाँसे 'मेघनाद' तीर्थकी यात्रा करनी चाहिये, जहाँ मेघनादने मेघके समान गर्जना की थी तथा अपने परिकरों सहित उसने अभीष्ट वर प्राप्त किये थे। राजा युधिष्ठिर! उस स्थानसे 'ब्रह्मावर्त' नामक तीर्थको जाना चाहिये, जहाँ ब्रह्माजी सदा निवास करते हैं। वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित होता है।

तदनन्तर अङ्गारेश्वर तीर्थमें जाकर नियमित आहार ग्रहण करते हुए नियमपूर्वक रहे। ऐसा करनेवाला मनुष्य सब पापोंसे शुद्ध हो रुद्रलोकमें जाता है। वहाँसे परम उत्तम कपिला-तीर्थकी यात्रा करे। वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य को गोदानका फल प्राप्त होता है। तत्पश्चात् कुण्डलेश्वर नामक उत्तम तीर्थमें जाय, जहाँ भगवान् शङ्कर पार्वतीजीके साथ निवास करते हैं। राजेन्द्र! वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य देवताओंके लिये भी अवध्य हो जाता है। वहाँसे पिप्पलेश्वर तीर्थकी यात्रा करे, वह सब पापोंका नाश करनेवाला तीर्थ है। वहाँ जानेसे रुद्रलोकमें सम्मानपूर्वक निवास प्राप्त होता है। इसके बाद विमलेश्वर तीर्थमें जाय, वह बड़ा निर्मल तीर्थ है, उस तीर्थमें मृत्यु होनेपर रुद्रलोककी प्राप्ति होती है। तदनन्तर पुष्करिणीमें जाकर स्नान करना चाहिये, वहाँ स्नान करने मात्रसे मनुष्य इन्द्रके आधे सिंहासनका अधिकारी हो जाता है। नर्मदा समस्त सरिताओंमें श्रेष्ठ है, वह स्थावर-जङ्गम समस्त प्राणियोंका उद्धार कर देती है। मुनि भी इस श्रेष्ठ नदी नर्मदाका स्तवन करते हैं। यह समस्त लोकोंका हित करनेकी इच्छासे भगवान् रुद्रके शरीरसे निकली है। यह सदा सब पापोंका अपहरण करनेवाली और सब लोगोंके द्वारा अभिवन्दित है। देवता, गन्धर्व और अप्सरा—सभी इसकी स्तुति करते रहते हैं—'पुण्यसलिला नर्मदा! तुम सब नदियोंमें प्रधान हो, तुम्हें नमस्कार है। सागरगामिनी!

तुमको प्रणाम है । ऋषिगणोंसे पूजित तथा भगवान् शङ्करके श्रीविग्रहसे प्रकट हुई नर्मदे ! तुम्हें बारंबार नमस्कार है । सुमुखि ! तुम धर्मको धारण करनेवाली हो, तुम्हें प्रणाम है । देवताओंका समुदाय तुम्हारे चरणोंमें मस्तक झुकाता है, तुम्हें नमस्कार है । देवि ! तुम समस्त पवित्र वस्तुओंको भी परम पावन बनानेवाली हो, सम्पूर्ण संसार तुम्हारी पूजा करता है; तुम्हें बारंबार नमस्कार है ।'*

जो मनुष्य प्रतिदिन शुद्धभावसे इस स्तोत्रका पाठ करता है, वह ब्राह्मण हो तो वेदका विद्वान् होता है, क्षत्रिय हो तो युद्धमें विजय प्राप्त करता है, वैश्य हो तो [व्यापारमें] लाभ उठाता है और शूद्र हो तो उत्तम गतिको प्राप्त होता है । साक्षात् भगवान् शङ्कर भी नर्मदा नदीका नित्य सेवन करते हैं; अतः इस नदीको परम पावन समझना चाहिये । यह ब्रह्महत्याको भी दूर करनेवाली है ।

शूलभद्र नामसे विख्यात एक परम पवित्र तीर्थ है । वहाँ स्नान करके भगवान् शिवका पूजन करना चाहिये । इससे एक हजार गोदानका फल मिलता है । राजन् ! जो उस तीर्थमें महादेवजीकी पूजा करते हुए तीन राततक निवास करता है, उसका इस संसारमें फिर जन्म नहीं होता । तदनन्तर क्रमशः भीमेश्वर, परम उत्तम नर्मदेश्वर तथा महापुण्यमय आदित्येश्वरकी यात्रा करनी चाहिये । आदित्येश्वर तीर्थमें स्नानके पश्चात् घी और मधुसे शिवजीका पूजन करना उचित है । मल्लिकेश्वर तीर्थमें जाकर उसकी परिक्रमा करनेसे जन्मका पूर्ण फल प्राप्त हो जाता है । वहाँसे वरुणेश्वरमें तथा वरुणेश्वरसे परम उत्तम नीराजेश्वर तीर्थमें जाना चाहिये । नीराजेश्वरके पञ्चायतन (पञ्चदेवमन्दिर) का दर्शन करनेसे सब तीर्थोंका फल प्राप्त हो जाता है । राजेन्द्र ! वहाँसे कोटितीर्थकी यात्रा करनी चाहिये; वह तीर्थ सर्वत्र प्रसिद्ध है । वहाँ भगवान् शिवने करोड़ों दानवोंका वध किया था; इसीलिये उन्हें कोटीश्वर कहा गया है । उस तीर्थका दर्शन करनेसे मनुष्य सशरीर स्वर्गको चला जाता है । वहाँ त्रयोदशीको महादेवजीकी उपासना करके स्नान करने मात्रसे मनुष्यको सम्पूर्ण यज्ञोंका फल प्राप्त हो जाता है । तत्पश्चात् परम शोभायमान और उत्तम तीर्थ अगस्त्येश्वरकी यात्रा करे, वह पापोंका नाश करनेवाला है । वहाँ स्नान करके मनुष्यको ब्रह्महत्यासे छुटकारा मिल जाता है । जो कार्तिक मासके कृष्णपक्षकी चतुर्दशी तिथिको उस तीर्थमें इन्द्रिय-संयमपूर्वक एकाग्रचित्त हो घृतसे भगवान् शिवको स्नान कराता है, वह इक्कीस पीढ़ियोंतक शिव-धामकी प्राप्तिसे वञ्चित नहीं होता । जो वहाँ सवारी, जूते, छाता, घृतपूर्ण सुवर्णपात्र तथा भोजन-सामग्री ब्राह्मणोंको दान करता है, उसका वह सारा दान कोटिगुना अधिक फल देनेवाला होता है ।

राजेन्द्र ! अगस्त्येश्वर तीर्थसे चलकर रविस्तव नामक उत्तम तीर्थमें जाना चाहिये । वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य राजा होता है । नर्मदाके दक्षिण किनारे एक इन्द्र-तीर्थ है, जो सर्वत्र प्रसिद्ध है; वहाँ एक रात उपवास करके स्नान करना चाहिये । स्नानके पश्चात् विधिपूर्वक भगवान् जनार्दनका पूजन करे । ऐसा करनेसे उसे एक हजार गोदानका फल मिलता है तथा अन्तमें वह विष्णुलोकको प्राप्त होता है । इसके बाद ऋषितीर्थमें जाना चाहिये; वहाँ स्नान करने मात्रसे मनुष्य शिवलोकमें प्रतिष्ठित होता है । वहीं परम कल्याणमय नारदतीर्थ भी है; वहाँ नहाने मात्रसे एक हजार गोदानका फल मिलता है । तदनन्तर देवतीर्थकी यात्रा करे, जिसे पूर्वकालमें साक्षात् ब्रह्माजीने उत्पन्न किया था; वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य ब्रह्मलोकमें सम्मानित होता है ।

महाराज ! इसके बाद परम उत्तम वामनेश्वर तीर्थमें जाना चाहिये; वहाँके मन्दिरका दर्शन करनेसे ब्रह्महत्याका पाप छूट जाता है । वहाँसे मनुष्यको निश्चय ही ईशानेश्वरकी यात्रा करनी चाहिये । तत्पश्चात् वटेश्वरमें जाकर भगवान् शिवका दर्शन करनेसे जन्म लेनेका सारा फल मिल जाता है । वहाँसे भीमेश्वर तीर्थमें जाना चाहिये, वह सब प्रकारकी व्याधियोंका नाश करनेवाला है । उस तीर्थमें स्नान मात्र करके मनुष्य सब दुःखोंसे छुटकारा पा जाता है । तत्पश्चात् वारणेश्वर नामक उत्तम तीर्थकी यात्रा करे, वहाँ स्नान करनेसे भी सब दुःख छूट जाते हैं । उसके बाद सोमतीर्थमें जाकर चन्द्रमाका दर्शन करना चाहिये; वहाँ परम भक्तिपूर्वक स्नान करनेसे मनुष्य तत्काल दिव्य देह धारण करके शिवलोकको चला जाता है और वहाँ भगवान् शिवकी ही भाँति चिरकालतक आनन्दका अनुभव करता है । शिवलोकमें

* नमः पुण्यजले आद्ये नमः सागरगामिनि ।
नमोऽस्तु ते ऋषिगणैः शंकरदेहनिःसृते ॥
नमोऽस्तु ते धर्मभृते वरानने नमोऽस्तु ते देवगणैकवन्दिते ।
नमोऽस्तु ते सर्वपवित्रपावने नमोऽस्तु ते सर्वजगत्सुपूजिते ॥
(१८ । १५-१८)

वह साठ हजार वर्षोंतक सम्मानपूर्वक निवास करता है। वहाँसे परम उत्तम सिद्धेश्वर तीर्थको जाय। वहाँ एक दिन रातके उपवाससे निरात्रव्रतका फल मिलता है। राजन्! जो उस तीर्थमें कपिला गौका दान करता है, वह उस गौके तथा उससे होनेवाले गोवंशके शरीरमें जितने रोएँ होते हैं, उतने हजार वर्षोंतक रुद्रलोकमें सम्मानपूर्वक रहता है।

तदनन्तर नन्दितीर्थमें जाकर वहाँ स्नान करे, इससे उसपर नन्दीश्वर प्रसन्न होते हैं और वह सोमलोकमें सम्मानपूर्वक निवास करता है। इसके बाद व्यासतीर्थकी यात्रा करे। व्यासतीर्थ एक तपोवनके रूपमें है। पूर्वकालमें वहाँ महानदी नर्मदाको व्यासजीके भयसे लौटना पड़ा था। व्यासजीने हुंकार किया, जिससे नर्मदा उनके स्थानसे दक्षिण दिशाकी ओर होकर बहने लगी। राजन्! जो उस तीर्थकी परिक्रमा करता है, उसपर व्यासजी संतुष्ट होते और उसे मनोवाञ्छित फल प्रदान करते हैं। जो मनुष्य परम तेजस्वी भगवान् व्यासकी प्रतिमाको वेदीसहित सूतसे आवेष्टित करता है, वह शङ्करजीकी भाँति अनन्त कालतक शिवलोकमें विहार करता है। इसके बाद एरण्डीतीर्थकी यात्रा करनी चाहिये, वह एक उत्तम तीर्थ है। वहाँ नर्मदा एरण्डी संगमके जलमें स्नान करनेसे मनुष्य सब पातकोंसे मुक्त हो जाता है। एरण्डी नदी तीनों लोकोंमें विख्यात और सब पापोंका नाश करनेवाली है। आश्विन मासमें शुक्लपक्षकी अष्टमी तिथिको वहाँ पवित्र भावसे स्नान करके उपवास करनेवाला मनुष्य यदि एक ब्राह्मणको भी भोजन करा दे तो उसे एक करोड़ ब्राह्मणोंको भोजन करानेका फल प्राप्त होता है। जो मनुष्य भक्तिभावसे युक्त होकर नर्मदा एरण्डी-संगममें स्नान करता है अथवा मस्तकपर नर्मदेश्वरकी मूर्ति रखकर नर्मदाके जलसे मिले हुए एरण्डीके जलमें गोता लगाता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। राजन्! जो उस तीर्थकी परिक्रमा करता है, उसके द्वारा सात द्वीपोंसे युक्त समूची पृथ्वीकी परिक्रमा हो जाती है।

तदनन्तर सुवर्णतिलक नामक तीर्थमें स्नान करके सुवर्ण दान करे। ऐसा करनेवाला पुरुष सोनेके विमानपर बैठकर रुद्रलोकमें जाता और सम्मानपूर्वक वहाँ निवास करता है। उसके बाद नर्मदा और इक्षुनदीके सङ्गममें जाना चाहिये। वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य गणपति पदको प्राप्त होता है। तत्पश्चात् स्कन्दतीर्थकी यात्रा करे। वह सब पापोंका नाश करनेवाला है। वहाँ स्नान करने मात्रसे जन्मभरका किया हुआ पाप नष्ट हो जाता है। पुनः वहाँके आङ्गिरस तीर्थमें जाकर स्नान करे, इससे एक हजार गोदानका फल मिलता है तथा रुद्रलोकमें सम्मान प्राप्त होता है। आङ्गिरस तीर्थसे लाङ्गल तीर्थमें जाना चाहिये। वह भी सब पापोंका नाश करनेवाला है। महाराज! वहाँ जाकर यदि मनुष्य स्नान करे तो सात जन्मके किये हुए पापोंसे छुटकारा पा जाता है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। वहाँसे वटेश्वर तीर्थ और सर्वतीर्थकी यात्रा करे। सर्वतीर्थ अत्युत्तम तीर्थ है। वहाँ स्नान करनेसे सहस्र गोदानका फल मिलता है। उसके बाद सङ्गमेश्वर तीर्थमें जाना चाहिये। वह सब पापोंका अपहरण करनेवाला उत्तम तीर्थ है। वहाँसे भद्रतीर्थमें जाकर जो मनुष्य दान करता है, उसका वह सारा दान कोटिगुना अधिक हो जाता है।

तत्पश्चात् अङ्गारेश्वर तीर्थमें जाकर स्नान करे। वहाँ नहाने मात्रसे मनुष्य रुद्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है। जो अङ्गारक चतुर्थीको वहाँ स्नान करता है, वह भगवान् विष्णुके शासनमें रहकर अनन्त कालतक आनन्दका अनुभव करता है। अयोनि-सङ्गम तीर्थमें स्नान करनेसे मनुष्य गर्भमें नहीं आता। जो पाण्डवेश्वर तीर्थमें जाकर वहाँ स्नान करता है, वह अनन्त कालतक सुखी तथा देवता और असुरोंके लिये अवध्य होता है। उत्तरायण आनेपर कम्बोजकेश्वर तीर्थमें जाकर स्नान करे। ऐसा करनेसे मनुष्य जिस वस्तुकी इच्छा करता है, वही उसे प्राप्त हो जाती है। तदनन्तर चन्द्रभागामें जाकर स्नान करे। वहाँ नहाने मात्रसे मनुष्य सोमलोकमें प्रतिष्ठित होता है। इसके बाद शक्रतीर्थकी यात्रा करे। वह सर्वत्र विख्यात, देवराज इन्द्रद्वारा सम्मानित तथा सम्पूर्ण देवताओंसे भी अभिवन्दित है। जो मनुष्य वहाँ स्नान करके सुवर्ण दान करता है अथवा नीले रंगका साँड़ छोड़ता है, वह उस साँड़के तथा उससे उत्पन्न होनेवाले गोवंशके शरीरमें जितने रोएँ होते हैं, उतने हजार वर्षोंतक भगवान् शिवके धाममें निवास करता है।

राजेन्द्र! शक्रतीर्थसे कपिलातीर्थकी यात्रा करनी चाहिये। वह बड़ा ही उत्तम तीर्थ है। जो वहाँ स्नानके पश्चात् कपिला गौका दान करता है, उसे सम्पूर्ण पृथ्वीके दानका फल प्राप्त होता है। नर्मदेश्वर नामक तीर्थ सबसे श्रेष्ठ है। ऐसा तीर्थ आजतक न हुआ है न होगा। वहाँ स्नान करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है तथा मनुष्य इस पृथ्वीपर सर्वत्र प्रसिद्ध राजाके रूपमें जन्म ग्रहण करता है। वह सब

प्रकारके शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न तथा समस्त व्याधियोंसे रहित होता है। नर्मदाके उत्तर-तटपर एक बहुत ही सुन्दर तथा रमणीय तीर्थ है, उसका नाम है—आदित्यायतन। उसे साक्षात् भगवान् शङ्करने प्रकट किया है। वहाँ स्नान करके यथाशक्ति दिया हुआ दान उस तीर्थके प्रभावसे अक्षय हो जाता है। दरिद्र, रोगी तथा पापी मनुष्य भी वहाँ स्नान करके सब पापोंसे मुक्त होते और भगवान् सूर्यके लोकमें जाते हैं। वहाँसे मासेश्वर तीर्थमें जाकर स्नान करना चाहिये। वहाँके जलमें डुबकी लगाने मात्रसे स्वर्गलोककी प्राप्ति होती है तथा जबतक चौदह इन्द्रोंकी आयु व्यतीत नहीं होती, तबतक मनुष्य स्वर्गलोकमें निवास करता है। तदनन्तर मासेश्वर तीर्थके पास ही जो नागेश्वर नामका तपोवन है, उसमें निवास करे और वहाँ एकाग्रचित्त हो स्नान करके पवित्र हो जाय। जो ऐसा करता है, वह अनन्त कालतक नाग-कन्याओंके साथ विहार करता है। तत्पश्चात् कुबेरभवन नामक तीर्थकी यात्रा करे। वहाँसे कालेश्वर नामक उत्तम तीर्थमें जाय, जहाँ महादेवजीने कुबेरको वर देकर संतुष्ट किया था। महाराज! वहाँ स्नान करनेसे सब प्रकारकी सम्पत्ति प्राप्त होती है। उसके बाद पश्चिम दिशाकी ओर मारुतालय नामक उत्तम तीर्थकी यात्रा करे और वहाँ स्नान करके पवित्र एवं एकाग्रचित्त होकर बुद्धिमान् पुरुष यथाशक्ति सुवर्ण और अन्नका दान करे। ऐसा करनेसे वह पुष्पक विमानके द्वारा वायुलोकमें जाता है। युधिष्ठिर! माघ मासमें यमतीर्थकी यात्रा करनी चाहिये। माघकृष्ण चतुर्दशीको जो वहाँ स्नान करता और दिनमें उपवास करके रातमें भोजन करता है, उसे गर्भवासकी पीड़ा नहीं भोगनी पड़ती।

तदनन्तर सोमतीर्थमें[1] जाकर स्नान करे। वहाँ गोता लगाने मात्रसे मनुष्य सब पापोंसे छुटकारा पा जाता है। महाराज! जो उस तीर्थमें चान्द्रायण व्रत करता है, वह सब पापोंसे शुद्ध होकर सोमलोकमें जाता है। सोमतीर्थसे स्तम्भतीर्थमें जाकर स्नान करे। ऐसा करनेसे मनुष्य सोमलोकमें प्रतिष्ठित होता है। इसके बाद विष्णुतीर्थकी यात्रा करे। वह बहुत ही उत्तम तीर्थ है और योधनीपुरके नामसे विख्यात है। वहाँ भगवान् वासुदेवने करोड़ों असुरोंके साथ युद्ध किया था। युद्धभूमिमें उस तीर्थकी उत्पत्ति हुई है। वहाँ स्नान करनेसे भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं। जो वहाँ एक दिन-रात उपवास करता है, उसका ब्रह्महत्या-जैसा पाप भी दूर हो जाता है। तत्पश्चात् तापसेश्वर नामक उत्तम तीर्थमें जाना चाहिये; वह अमोहक तीर्थके नामसे विख्यात है। वहाँ पितरोंका तर्पण तथा पूर्णिमा और अमावास्याको विधिपूर्वक श्राद्ध करना चाहिये। वहाँ स्नानके पश्चात् पितरोंको पिण्डदान करना आवश्यक है। उस तीर्थमें जलके भीतर हाथीके समान आकारवाली बड़ी-बड़ी चट्टानें हैं। उनके ऊपर विशेषतः वैशाख मासमें पिण्डदान करना चाहिये। ऐसा करनेसे जबतक यह पृथ्वी कायम रहती है, तबतक पितरोंको पूर्ण तृप्ति बनी रहती है। महाराज! वहाँसे सिद्धेश्वर नामक उत्तम तीर्थकी यात्रा करे। वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य गणेशजीके निकट जाता है। उस तीर्थमें जहाँ जनार्दन नामसे प्रसिद्ध लिङ्ग है, वहाँ स्नान करनेसे विष्णुलोकमें प्रतिष्ठा होती है। सिद्धेश्वरमें अन्धोन तीर्थके समीप स्नान, दान, ब्राह्मण-भोजन तथा पिण्डदान करना उचित है। उसके आधे योजनके भीतर जिसकी मृत्यु होती है, उसे मुक्ति प्राप्त होती है। अन्धोनमें विधिपूर्वक पिण्डदान देनेसे पितरोंको तबतक तृप्ति बनी रहती है, जबतक चन्द्रमा और सूर्यकी सत्ता है। उत्तरायण प्राप्त होनेपर जो स्त्री या पुरुष वहाँ स्नान करते और पवित्रभावसे भगवान् सिद्धेश्वरके मन्दिरमें रहकर प्रातःकाल उनकी पूजा करते हैं, उन्हें सत्पुरुषोंकी गति प्राप्त होती है। वैसी गति सम्पूर्ण महायज्ञोंके अनुष्ठानसे भी दुर्लभ है।

नारदजी कहते हैं—युधिष्ठिर! तदनन्तर, भक्तिपूर्वक भार्गवेश्वर तीर्थकी यात्रा करे। वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। पाण्डुनन्दन! अब शुक्लतीर्थकी उत्पत्तिका प्रसङ्ग श्रवण करो। एक समयकी बात है, हिमालयके रमणीय शिखरपर भगवान् शङ्कर अपनी पत्नी उमा तथा पार्षदगणोंके साथ बैठे थे। उस समय मार्कण्डेयजीने उनसे पूछा—देवदेव महादेव! मैं संसारके भयसे डरा हुआ हूँ। आप मुझे कोई ऐसा उपाय बताइये, जिससे सुख प्राप्त हो सके। महेश्वर! जो तीर्थ सम्पूर्ण तीर्थोंमें श्रेष्ठ हो, उसका मुझे परिचय दीजिये।

भगवान् शिव बोले—ब्रह्मन्! तुम महान् पण्डित और सम्पूर्ण शास्त्रोंमें कुशल हो; मेरी बात सुनो। दिनमें या रातमें—किसी भी समय शुक्लतीर्थका सेवन किया जाय तो वह महान् फलदायक होता है। उसके दर्शन और स्पर्शसे तथा वहाँ स्नान, ध्यान, तपस्या, होम एवं उपवास करनेसे शुक्लतीर्थ

[1] यह सोमतीर्थ दूसरा है। पहले जिसका वर्णन आया है, वह इससे भिन्न है।

महान् फलका साधक होता है। नर्मदा नदीके तटपर स्थित शुक्लतीर्थ महान् पुण्यदायक है। चाणिक्य नामके राजर्षिने वहीं सिद्धि प्राप्त की थी। यह क्षेत्र चार कोसके घेरेमें प्रकट हुआ है। शुक्लतीर्थ परम पुण्यमय तथा सब पापोंका नाशक है। वहाँके वृक्षोंकी शिखाका भी दर्शन हो जाय तो ब्रह्महत्या दूर हो जाती है। मुनिश्रेष्ठ! इसीलिये मैं वहाँ निवास करता हूँ। परम निर्मल वैशाख मासके कृष्ण पक्षकी चतुर्दशीको तो मैं कैलाससे भी निकलकर यहाँ आ जाता हूँ। जैसे धोबीके द्वारा जलसे धोया हुआ वस्त्र सफेद हो जाता है, उसी प्रकार शुक्लतीर्थ भी जन्मभरके सञ्चित पापको दूर कर देता है। मुनिवर मार्कण्डेय! वहाँका स्नान और दान अत्यन्त पुण्यदायक है। शुक्लतीर्थसे बढ़कर दूसरा कोई तीर्थ न तो हुआ है और न होगा ही। मनुष्य अपनी पूर्वावस्थामें जो-जो पाप किये होता है, उन्हें वह शुक्लतीर्थमें एक दिन-रातके उपवाससे नष्ट कर डालता है। वहाँ मेरे निमित्त दान देनेसे जो पुण्य होता है, वह सैकड़ों यज्ञोंके अनुष्ठानसे भी नहीं हो सकता। जो मनुष्य कार्तिक मासके कृष्ण-पक्षकी चतुर्दशीको वहाँ उपवास करके घीसे मुझे स्नान कराता है, वह अपनी इक्कीस पीढ़ियोंके साथ मेरे लोकमें रहकर कभी वहाँसे भ्रष्ट नहीं होता। शुक्लतीर्थ अत्यन्त श्रेष्ठ है। ऋषि और सिद्धगण उसका सेवन करते हैं। वहाँ स्नान करनेसे पुनर्जन्म नहीं होता। जिस दिन उत्तरायण या दक्षिणायनका प्रारम्भ हो, चतुर्दशी हो, संक्रान्ति हो अथवा विषुव नामक योग हो, उस दिन स्नान करके उपवास पूर्वक मनको वशमें रखकर समाहितचित्त हो यथाशक्ति वहाँ दान दे तो भगवान् विष्णु तथा हम प्रसन्न होते हैं। शुक्लतीर्थके प्रभावसे वह सब दान अक्षय पुण्यका देनेवाला होता है। जो अनाथ, दुर्दशाग्रस्त अथवा सनाथ ब्राह्मणका भी उस तीर्थमें विवाह कराता है, उस ब्राह्मणके तथा उसकी सतानोंके शरीरमें जितने रोएँ होते हैं, उतने हजार वर्षोंतक वह मेरे लोकमें प्रतिष्ठित होता है।

नारदजी कहते हैं—राजा युधिष्ठिर! शुक्लतीर्थसे गोतीर्थमें जाना चाहिये। उसका दर्शन करने मात्रसे मनुष्य पापरहित हो जाता है। वहाँसे कपिलातीर्थकी यात्रा करनी चाहिये। वह एक उत्तम तीर्थ है। राजन्! वहाँ स्नान करके मानव सहस्र गो दानका फल प्राप्त करता है। ज्येष्ठ मास आनेपर विशेषतः चतुर्दशी तिथिको उस तीर्थमें उपवास करके जो मनुष्य भक्तिपूर्वक घीका दीपक जलाता, घृतसे भगवान् शङ्करको स्नान कराता, घीसहित श्रीफलका दान करता तथा अन्तमें प्रदक्षिणा करके घण्टा और आभूषणोंके सहित कपिला गौको दानमें देता है, वह साक्षात् भगवान् शिवके समान होता है तथा इस लोकमें पुनः जन्म नहीं लेता।

राजेन्द्र! वहाँसे परम उत्तम ऋषितीर्थकी यात्रा करे, उस तीर्थके प्रभावसे द्विज पापमुक्त हो जाता है। ऋषितीर्थसे गणेश्वर तीर्थमें जाना चाहिये। वह बहुत उत्तम तीर्थ है। श्रावण मासके कृष्णपक्षकी चतुर्दशीको वहाँ स्नान करने मात्रसे मनुष्य रुद्रलोकमें सम्मानित होता है। वहाँ पितरोंका तर्पण करनेपर तीनों ऋणोंसे छुटकारा मिल जाता है। गणेश्वरके पास ही गङ्गावदन नामक उत्तम तीर्थ है, वहाँ निष्काम या सकामभावसे भी स्नान करनेवाला मानव जन्मभरके पापोंसे मुक्त हो जाता है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। पर्वके दिन वहाँ सदा स्नान करना चाहिये। उस तीर्थमें पितरोंका तर्पण करनेपर मनुष्य तीनों ऋणोंसे मुक्त होता है। उसके पश्चिम ओर थोड़ी ही दूरपर दशाश्वमेधिक तीर्थ है; वहाँ भादोंके महीनेमें एक रात उपवास करके जो अमावास्याको स्नान करता है, वह भगवान् शङ्करके धामको जाता है। वहाँ भी पर्वके दिनोंमें सदा ही स्नान करना चाहिये। उस तीर्थमें पितरोंका तर्पण करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है।

दशाश्वमेधसे पश्चिम भृगुतीर्थ है, जहाँ ब्राह्मण श्रेष्ठ भृगुने एक हजार दिव्य वर्षोंतक भगवान् शङ्करकी उपासना की थी। तभीसे ब्रह्मा आदि सम्पूर्ण देवता और किंनर भृगुतीर्थका सेवन करते हैं। यह वही स्थान है, जहाँ भगवान् महेश्वर भृगुजीपर प्रसन्न हुए थे। उस तीर्थका दर्शन होनेपर तत्काल पापोंसे छुटकारा मिल जाता है। जिन प्राणियोंकी वहाँ मृत्यु होती है, उन्हें गुह्यातिगुह्य गतिकी प्राप्ति होती है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। यह क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत तथा सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाला है। वहाँ स्नान करके मनुष्य स्वर्गको जाते हैं, तथा जिनकी वहाँ मृत्यु होती है, वे फिर संसारमें जन्म नहीं लेते—मुक्त हो जाते हैं। उस तीर्थमें अन्न, सुवर्ण, जूता और यथाशक्ति भोजन देना चाहिये। इसका पुण्य अक्षय होता है। जो सूर्यग्रहणके समय वहाँ स्नान करके इच्छानुसार दान करता है, उसके तीर्थस्नान और दानका पुण्य अक्षय होता है। जो मनुष्य एक बार भृगुतीर्थका

माहात्म्य श्रवण कर लेता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर रुद्रलोकमें जाता है। राजेन्द्र! वहाँसे परम उत्तम गौतमेश्वर तीर्थकी यात्रा करनी चाहिये। जो मनुष्य वहाँ नहाकर उपवास करता है, वह सुवर्णमय विमानपर बैठकर ब्रह्मलोकमें जाता है। तदनन्तर धौतपाप नामक तीर्थमें जाना चाहिये। वहाँ स्नान करनेसे ब्रह्महत्या दूर होती है। इसके बाद हिरण्यद्वीप नामसे विख्यात तीर्थमें जाय। वह सब पापोंका नाश करनेवाला है। वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य धनी तथा रूपवान् होता है। वहाँसे कनखलकी यात्रा करे। वह बहुत बड़ा तीर्थ है। वहाँ गरुड़ने तपस्या की थी। जो मनुष्य वहाँ स्नान करता है, उसकी रुद्रलोकमें प्रतिष्ठा होती है। तदनन्तर सिद्धजनार्दन तीर्थकी यात्रा करे। वहाँ परमेश्वर श्रीविष्णु वाराहरूप धारण करके प्रकट हुए थे। इसीलिये उसे वाराहतीर्थ भी कहते हैं। उस तीर्थमें विशेषतः द्वादशीको स्नान करनेसे विष्णुलोककी प्राप्ति होती है।

राजेन्द्र! तदनन्तर देवतीर्थमें जाना चाहिये, जो सम्पूर्ण देवताओंद्वारा अभिवन्दित है। वहाँ स्नान करके मनुष्य देवताओंके साथ आनन्द भोगता है। तत्पश्चात् शिखितीर्थकी यात्रा करे, वह बहुत ही उत्तम तीर्थ है। वहाँ जो कुछ दान किया जाता है, वह सब-का-सब कोटिगुना अधिक फल देनेवाला होता है। जो कृष्णपक्षमें अमावास्याको वहाँ स्नान करता और एक ब्राह्मणको भी भोजन कराता है, उसे कोटि ब्राह्मणोंके भोजन करानेका फल प्राप्त होता है।

राजा युधिष्ठिर! तदनन्तर, नर्मदेश्वर तीर्थकी यात्रा करनी चाहिये। वह भी उत्तम तीर्थ है। वहाँ स्नान करके मनुष्य स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। इसके बाद पितामह-तीर्थमें जाना चाहिये, जिसे पूर्वकालमें साक्षात् ब्रह्माजीने उत्पन्न किया था। मनुष्यको उचित है कि वहाँ स्नान करके भक्तिपूर्वक पितरोंको पिण्ड-दान दे तथा तिल और कुशमिश्रित जलसे पितरोंका तर्पण करे। उस तीर्थके प्रभावसे वह सब कुछ अक्षय हो जाता है। जो सावित्री-तीर्थमें जाकर स्नान करता है, वह सब पापोंको धोकर ब्रह्मलोकमें सम्मानित होता है। वहाँसे मानस नामक उत्तम तीर्थकी यात्रा करनी चाहिये। उस तीर्थमें स्नान करके मनुष्य रुद्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है। तत्पश्चात् क्रतुतीर्थकी यात्रा करनी चाहिये। वह बहुत ही उत्तम, तीनों लोकोंमें विख्यात और सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाला तीर्थ है। इसके बाद स्वर्गबिन्दु नामसे प्रसिद्ध तीर्थमें जाना उचित है। वहाँ स्नान करनेसे मनुष्यको कभी दुर्गति नहीं देखनी पड़ती। वहाँसे भारभूत नामक तीर्थकी यात्रा करे और वहाँ पहुँचकर उपवासपूर्वक भगवान् विरूपाक्षकी पूजा करे। ऐसा करनेसे वह रुद्रलोकमें सम्मानित होता है। राजन्! जो उस तीर्थमें उपवास करता है, वह पुनः गर्भमें नहीं आता। वहाँसे परम उत्तम अटवी तीर्थमें जाय। वहाँ स्नान करके मनुष्य इन्द्रका आधा सिंहासन प्राप्त करता है। तदनन्तर, सब पापोंका नाश करनेवाले शृङ्गतीर्थकी यात्रा करे। वहाँ स्नान करने मात्रसे निश्चय ही गणेशपदकी प्राप्ति होती है। पश्चिम-समुद्रके साथ जो नर्मदाका सङ्गम है, वह तो मुक्तिका दरवाजा ही खोल देता है। वहाँ देवता, गन्धर्व, ऋषि, सिद्ध और चारण तीनों सन्ध्याओंके समय उपस्थित होकर देवताओंके स्वामी भगवान् विमलेश्वरकी आराधना करते हैं। विमलेश्वरसे बढ़कर दूसरा कोई तीर्थ न हुआ है न होगा। जो लोग वहाँ उपवास करके विमलेश्वरका दर्शन करते हैं, वे सब पापोंसे शुद्ध हो रुद्रलोकमें जाते हैं।

राजेन्द्र! वहाँसे परम उत्तम केशिनी तीर्थकी यात्रा करनी चाहिये। जो मनुष्य वहाँ स्नान करके एक रात उपवास करता है तथा मन और इन्द्रियोंको वशमें करके आहारपर भी संयम रखता है, वह उस तीर्थके प्रभावसे ब्रह्महत्यासे मुक्त हो जाता है। जो सागरेश्वरका दर्शन करता है, उसे समस्त तीर्थोंमें स्नान करनेका फल मिल जाता है। केशिनी तीर्थसे एक योजनके भीतर समुद्रके भँवरमें साक्षात् भगवान् शिव विराजमान हैं। उनको देखनेसे सब तीर्थोंके दर्शनका फल प्राप्त हो जाता है तथा दर्शन करनेवाला पुरुष सब पापोंसे मुक्त हो रुद्रलोकमें जाता है। महाराज! अमरकण्टकसे लेकर नर्मदा और समुद्रके सङ्गम-तक जितनी दूरी है, उसके भीतर दस करोड़ तीर्थ विद्यमान हैं। एक तीर्थसे दूसरे तीर्थको जानेके जो मार्ग हैं, उनका करोड़ों ऋषियोंने सेवन किया है। अग्निहोत्री, दिव्यज्ञानसम्पन्न तथा ज्ञानी—सब प्रकारके मनुष्योंने तीर्थयात्राएँ की हैं। इससे तीर्थयात्रा मनोवाञ्छित फलको देनेवाली मानी गयी है। पाण्डुनन्दन! जो पुरुष प्रतिदिन भक्तिपूर्वक इस अध्यायका पाठ या श्रवण करता है, वह समस्त

तीर्थोंमें स्नानके पुण्यका भागी होता है। साथ ही नर्मदा उसके ऊपर सदा प्रसन्न रहती है। इतना ही नहीं, भगवान् रुद्र तथा महामुनि मार्कण्डेयजी भी उसके ऊपर प्रसन्न होते हैं। जो तीनों सन्ध्याओंके समय इस प्रसङ्गका पाठ करता है, उसे कभी नरकका दर्शन नहीं होता तथा वह किसी कुत्सित योनिमें भी नहीं पड़ता।

विविध तीर्थोंकी महिमाका वर्णन

युधिष्ठिर बोले—नारदजी! महर्षि वसिष्ठके बताये हुए अन्यान्य तीर्थोंका, जिनका नाम श्रवण करनेसे ही पाप नष्ट हो जाते हैं, मुझसे वर्णन कीजिये। नारदजीने कहा—धर्मज्ञ युधिष्ठिर! हिमालयके पुत्र अर्बुद पर्वतकी यात्रा करनी चाहिये, जहाँ पूर्वकालमें पृथ्वीमें छेद था। वहाँ महर्षि वसिष्ठका आश्रम है, जो तीनों लोकोंमें विख्यात है। वहाँ एक रात निवास करनेसे सहस्र गोदानका फल मिलता है। ब्रह्मचर्यके पालनपूर्वक पिङ्ग तीर्थमें आचमन करनेसे कपिला जातिकी सौ गौओंके दानका फल प्राप्त होता है। तत्पश्चात् प्रभास क्षेत्रमें जाना चाहिये। वह विश्वविख्यात तीर्थ है। वहाँ साक्षात् अग्निदेव नित्य निवास करते हैं। उस श्रेष्ठ तीर्थमें शुद्ध एवं एकाग्रचित्त होकर स्नान करनेसे मानव अग्निष्टोम और अतिरात्र यज्ञका फल प्राप्त करता है। उसके बाद सरस्वती और समुद्रके सङ्गममें जाकर स्नान करनेसे मनुष्य सहस्र गोदानका फल पाता और स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। जो वरुण देवताके उस तीर्थमें स्नान करके एकाग्रचित्त हो तीन राततक वहाँ निवास तथा देवता और पितरोंका तर्पण करता है, वह चन्द्रमाके समान कान्तिमान् होता और अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त करता है।

भरतश्रेष्ठ! वहाँसे वरदान नामक तीर्थकी यात्रा करनी चाहिये। वरदानमें स्नान करके मनुष्य सहस्र गोदानका फल प्राप्त करता है। तदनन्तर नियमपूर्वक रहकर नियमित आहारका सेवन करते हुए द्वारकापुरीमें जाना चाहिये। उस तीर्थमें आज भी कमलके चिह्नसे चिह्नित मुद्राएँ दृष्टिगोचर होती हैं। यह एक अद्भुत बात है। वहाँके कमल दलोंमें त्रिशूलके चिह्न दिखायी देते हैं। वहाँ महादेवजीका निवास है। जो समुद्र और सिन्धु नदीके सङ्गमपर जाकर वरुण तीर्थमें नहाता और एकाग्रचित्त हो देवताओं, ऋषियों तथा पितरोंका तर्पण करता है, वह अपने तेजसे देदीप्यमान हो वरुणलोकमें जाता है। युधिष्ठिर! मनीषी पुरुष कहते हैं कि भगवान् शङ्कुकर्णेश्वरकी पूजा करनेसे दस अश्वमेधोंका फल होता है। शङ्कुकर्णेश्वर तीर्थकी प्रदक्षिणा करके तीनों लोकोंमें विख्यात तिमि नामक तीर्थमें जाना चाहिये। वह सब पापोंको दूर करनेवाला तीर्थ है। वहाँ स्नान करके देवताओंसहित रुद्रकी पूजा करनेसे मनुष्य जन्मभरके किये हुए पापोंको नष्ट कर डालता है। धर्मज्ञ! तदनन्तर, सबके द्वारा प्रशंसित वसुधारा तीर्थकी यात्रा करनी चाहिये। वहाँ जानेमात्रसे ही अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है। कुरुश्रेष्ठ! जो मानव वहाँ स्नान करके एकाग्रचित्त हो देवताओं तथा पितरोंका तर्पण करता है, वह विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है। वहाँ वसुओंका एक दूसरा तीर्थ भी है, जहाँ स्नान और जलपान करनेसे मनुष्य वसुओंका प्रिय होता है। तथा ब्रह्मतुङ्ग नामक तीर्थमें जाकर पवित्र, शुद्धचित्त, पुण्यात्मा तथा रजोगुणरहित पुरुष ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है। वहीं रेणुकाका भी तीर्थ है, जिसका देवता भी सेवन करते हैं। वहाँ स्नान करके ब्राह्मण चन्द्रमाकी भाँति निर्मल होता है।

तदनन्तर, पञ्चनद तीर्थमें जाकर नियमित आहार ग्रहण करते हुए नियमपूर्वक रहना चाहिये। इससे पञ्च यज्ञोंके अनुष्ठानका फल प्राप्त होता है। भरतश्रेष्ठ! तत्पश्चात् भीमा नदीके उत्तम स्थानपर जाना चाहिये। वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य कभी गर्भमें नहीं आता तथा एक लाख गोदानोंका फल प्राप्त करता है। गिरिकुञ्ज नामक तीर्थ तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है। वहाँ जाकर पितामहको नमस्कार करनेसे सहस्र गोदानोंका फल प्राप्त होता है। उसके बाद परम उत्तम विमलतीर्थकी यात्रा करनी चाहिये, जहाँ आज भी सोने और चाँदी जैसे मत्स्य दिखायी देते हैं। नरश्रेष्ठ! वहाँ स्नान करनेसे वाजपेय यज्ञका फल मिलता है और मनुष्य सब पापोंसे शुद्ध हो परम गतिको प्राप्त होता है।

काश्मीरमें जो वितस्ता नामक तीर्थ है, वह नागराज तक्षकका भवन है। यह तीर्थ समस्त पापोंको दूर करनेवाला

है। जो मनुष्य वहाँ स्नान करके देवताओं और पितरोंका तर्पण करता है, वह निश्चय ही वाजपेय यज्ञका फल पाता है। उसका हृदय सब पापोंसे शुद्ध हो जाता है तथा वह परम उत्तम गतिको प्राप्त होता है। वहाँसे मलद नामक तीर्थकी यात्रा करे। राजन्! वहाँ सायं-सन्ध्याके समय विधिपूर्वक आचमन करके जो अग्निदेवको यथाशक्ति चरु निवेदन करता है तथा पितरोंके निमित्त दान देता है, उसका वह दान आदि अक्षय हो जाता है—ऐसा विद्वान् पुरुषोंका कथन है। वहाँ अग्निको दिया हुआ चरु एक लाख गोदान, एक हजार अश्वमेध यज्ञ तथा एक सौ राजसूय यज्ञोंसे भी श्रेष्ठ है। धर्मके ज्ञाता युधिष्ठिर! वहाँसे दीर्घसत्र नामक तीर्थमें जाना चाहिये। वहाँ जाने मात्रसे मानव राजसूय और अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त करता है। शशयान तीर्थ बहुत ही दुर्लभ है। उस तीर्थमें प्रतिवर्ष कार्तिकी पूर्णिमाको लोग सरस्वती नदीमें स्नान करते हैं। जो वहाँ स्नान करता है, वह साक्षात् शिवकी भाँति कान्तिमान् होता है; साथ ही उसे सहस्र गोदानका फल मिलता है। कुरुनन्दन! जो कुमारकोटि नामक तीर्थमें जाकर नियमपूर्वक स्नान करता और देवताओं तथा पितरोंके पूजनमें संलग्न होता है, उसे दस हजार गोदानका फल मिलता है तथा वह अपने कुलका भी उद्धार कर देता है। महाराज! वहाँसे एकाग्रचित्त होकर रुद्रकोटि तीर्थमें जाना चाहिये, जहाँ पूर्वकालमें करोड़ ऋषियोंने भगवान् शिवके दर्शनकी इच्छासे बड़े हर्षके साथ ध्यान लगाया था। वहाँ स्नान करके पवित्र हुआ मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल पाता और अपने कुलका भी उद्धार करता है। तदनन्तर, लोकविख्यात सङ्गम-तीर्थमें जाना चाहिये और वहाँ सरस्वती नदीमें परम पुण्यमय भगवान् जनार्दनकी उपासना करनी चाहिये। उस तीर्थमें स्नान करनेसे मनुष्यका चित्त सब पापोंसे शुद्ध हो जाता है और वह शिवलोकको प्राप्त होता है।

राजेन्द्र! तदनन्तर, कुरुक्षेत्रकी यात्रा करनी चाहिये। उसकी सब लोग स्तुति करते हैं। वहाँ गये हुए समस्त प्राणी पापमुक्त हो जाते हैं। धीर पुरुषको उचित है कि वह कुरुक्षेत्रमें सरस्वती नदीके तटपर एक मासतक निवास करे। युधिष्ठिर! जो मनसे भी कुरुक्षेत्रका चिन्तन करता है, उसके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं और वह ब्रह्मलोकको जाता है। धर्मज्ञ! वहाँसे भगवान् विष्णुके उत्तम स्थानको, जो 'सतत' नामसे प्रसिद्ध है, जाना चाहिये। वहाँ भगवान् सदा मौजूद रहते हैं। जो उस तीर्थमें नहाकर त्रिभुवनके कारण भगवान् विष्णुका दर्शन करता है, वह विष्णुलोकमें जाता है। तत्पश्चात् पारिप्लवमें जाना चाहिये। वह तीनों लोकोंमें विख्यात तीर्थ है। उसके सेवनसे मनुष्यको अग्निष्टोम और अतिरात्र यज्ञोंका फल मिलता है। तत्पश्चात् तीर्थसेवी मनुष्यको शाल्विकिनि नामक तीर्थमें जाना चाहिये। वहाँ दशाश्वमेध घाटपर स्नान करनेसे भी वही फल प्राप्त होता है। तदनन्तर, पञ्चनदमें जाकर नियमित आहार करते हुए नियमपूर्वक रहे। वहाँ कोटितीर्थमें स्नान करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है। तत्पश्चात् परम उत्तम वाराह-तीर्थकी यात्रा करे, जहाँ पूर्वकालमें भगवान् विष्णु वराहरूपसे विराजमान हुए थे। उस तीर्थमें निवास करनेसे अग्निष्टोम यज्ञका फल प्राप्त होता है। तदनन्तर, जयिनीमें जाकर सोमतीर्थमें प्रवेश करे। वहाँ स्नान करके मानव राजसूय यज्ञका फल प्राप्त करता है। कृतशौच तीर्थमें जाकर उसका सेवन करनेवाला पुरुष पुण्डरीक यज्ञका फल पाता है और स्वयं भी पवित्र हो जाता है। 'पम्पा' नामका तीर्थ तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है, वहाँ जाकर स्नान करनेसे मनुष्य अपनी सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। कायशोधन तीर्थमें जाकर स्नान करनेवालेके शरीरकी शुद्धि होती है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। तथा जिसका शरीर शुद्ध हो जाता है, वह कल्याणमय उत्तम लोकोंको प्राप्त होता है। तत्पश्चात् लोकोद्धार नामक तीर्थकी यात्रा करनी चाहिये, जहाँ पूर्वकालमें सबकी उत्पत्तिके कारणभूत भगवान् विष्णुने समस्त लोकोंका उद्धार किया था। राजन्! वहाँ पहुँचकर उस उत्तम तीर्थमें स्नान करके मनुष्य आत्मीय जनोंका उद्धार कर देता है। जो कपिला-तीर्थमें जाकर ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए एकाग्रचित्त होकर स्नान तथा देवता-पितरोंका पूजन करता है, वह मानव एक सहस्र कपिला-दानका फल पाता है। जो सूर्यतीर्थमें जाकर स्नान करता और मनको काबूमें रखते हुए उपवास-परायण होकर देवताओं तथा पितरोंकी पूजा करता है, उसे अग्निष्टोम यज्ञका फल मिलता है तथा वह सूर्यलोकको जाता है। गोभवन नामक तीर्थमें जाकर स्नान करनेवालेको सहस्र गोदानका फल मिलता है।

तदनन्तर, ब्रह्मावर्तकी यात्रा करे। ब्रह्मावर्तमें स्नान करनेसे मनुष्य ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है। वहाँसे अन्यान्य तीर्थोंमें घूमते हुए क्रमशः काशीश्वरके तीर्थोंमें पहुँचकर

स्नान करनेसे मनुष्य सब प्रकारके रोगोंसे छुटकारा पाता और ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित होता है। तदनन्तर शौच-सन्तोष आदि नियमोंका पालन करते हुए शीतवनमें जाय। वहाँ बहुत बड़ा तीर्थ है, जो अन्यत्र दुर्लभ है। वह दर्शन मात्रसे एक दण्डमें पवित्र कर देता है। वहाँ एक दूसरा भी श्रेष्ठ तीर्थ है, जो स्नान करनेवाले लोगोंका दुःख दूर करनेवाला माना गया है। वहाँ तत्त्वचिन्तन-परायण विद्वान् ब्राह्मण स्नान करके परम गतिको प्राप्त होते हैं। स्वर्णलोमापनयन नामक तीर्थमें प्राणायामके द्वारा जिनका अन्तःकरण पवित्र हो चुका है, वे परम गतिको प्राप्त होते हैं। दशाश्वमेध नामक तीर्थमें भी स्नान करनेसे उत्तम गतिकी प्राप्ति होती है।

तत्पश्चात् लोकविख्यात मानुष-तीर्थकी यात्रा करे। राजन्! पूर्वकालमें एक व्याधके बाणोंसे पीड़ित हुए कुछ कृष्णमृग उस सरोवरमें कूद पड़े थे और उसमें गोता लगा कर मनुष्य शरीरको प्राप्त हुए थे। [तभीसे वह मानुषतीर्थके नामसे प्रसिद्ध हुआ।] इस तीर्थमें स्नान करके ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए जो ध्यान लगाता है, उसका हृदय सब पापोंसे शुद्ध हो जाता है तथा वह स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। राजन्! मानुषतीर्थसे पूर्व दिशामें एक कोसकी दूरीपर आपगा नामसे विख्यात एक नदी बहती है। उसके तटपर जाकर जो मानव देवता और पितरोंके उद्देश्यसे साँवाका बना हुआ भोजन दान देता है, वह यदि एक ब्राह्मणको भोजन कराये तो एक करोड़ ब्राह्मणोंके भोजन करानेका फल प्राप्त होता है। वहाँ स्नान करके देवताओं और पितरोंके पूजन तथा एक रात निवास करनेसे अग्निष्टोम यज्ञका फल प्राप्त होता है। तत्पश्चात् उस तीर्थमें जाना चाहिये, जो इस पृथ्वी पर ब्रह्मानुस्वर तीर्थके नामसे प्रसिद्ध है। वहाँ सप्तर्षियोंके कुण्डोंमें तथा महात्मा कपिलके क्षेत्रमें स्नान करके जो ब्रह्माजीके पास जा उनका दर्शन करता है, वह पवित्र एवं जितेन्द्रिय होता है तथा उसका चित्त सब पापोंसे शुद्ध होनेके कारण वह अन्तमें ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है।

राजन्! शुक्लपक्षकी दशमीको पुण्डरीक तीर्थमें प्रवेश करना चाहिये। वहाँ स्नान करके मनुष्य पुण्डरीक यज्ञका फल प्राप्त करता है। वहाँसे त्रिविष्टप नामक तीर्थको जाय, वह तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है। वहाँ वैतरणी नामकी एक पवित्र नदी है, जो सब पापोंसे छुटकारा दिलानेवाली है। वहाँ स्नान करके शूलपाणि भगवान् शङ्करका पूजन करनेसे मनुष्यका हृदय सब पापोंसे शुद्ध हो जाता है तथा वह परम गतिको प्राप्त होता है। पाणिख्यात नामसे विख्यात तीर्थमें स्नान और देवताओंका तर्पण करके मानव राजसूय यज्ञका फल प्राप्त करता है। तत्पश्चात् विश्वविख्यात मिश्रक (मिश्रिख) में जाना चाहिये। नृपश्रेष्ठ! हमारे सुननेमें आया है कि महात्मा व्यासजीने द्विजाति मात्रके लिये वहाँ सब तीर्थोंका सम्मेलन किया था, अतः जो मिश्रिखमें स्नान करता है, वह मानो सब तीर्थोंमें स्नान कर लेता है।

नरेश्वर! जो ऋणान्त कूपके पास जाकर वहाँ एक सेर तिलका दान करता है, वह ऋणसे मुक्त हो परम सिद्धिको प्राप्त होता है। वेदीतीर्थमें स्नान करनेसे मनुष्यको सहस्र गोदानका फल मिलता है। अहन् और सुदिन—ये दो तीर्थ अत्यन्त दुर्लभ हैं। उनमें स्नान करनेसे सूर्यलोककी प्राप्ति होती है। मृगधूम तीर्थ तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है। वहाँ रुद्रपदमें स्नान और महात्मा शूलपाणिका पूजन करके मानव अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त करता है। कोटितीर्थमें स्नान करनेसे सहस्र गोदानका फल मिलता है। वामनतीर्थ भी तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है। वहाँ जाकर विष्णुपदमें स्नान और भगवान् वामनका पूजन करनेसे तीर्थयात्रीका हृदय सब पापोंसे शुद्ध हो जाता है। कुलम्पुन तीर्थमें स्नान करके मनुष्य अपने कुलको पवित्र करता है। शालिहोत्रका एक तीर्थ है, जो शालिसूर्य नामसे प्रसिद्ध है। उसमें विधिपूर्वक स्नान करनेसे मनुष्यको सहस्र गोदानोंका फल मिलता है। राजन्! सरस्वती नदीमें एक श्रीकुञ्ज नामक तीर्थ है। वहाँ स्नान करके मनुष्य अग्निष्टोम यज्ञका फल प्राप्त करता है। तत्पश्चात् ब्रह्माजीके उत्तम स्थान (पुष्कर) की यात्रा करनी चाहिये। छोटे वर्णका मनुष्य वहाँ स्नान करनेसे ब्राह्मणत्व प्राप्त करता है और ब्राह्मण शुद्धचित्त होकर परमगतिको प्राप्त होता है।

कपालमोचन तीर्थ सब पापोंका नाश करनेवाला है। वहाँ स्नान करके मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। वहाँसे कार्तिकेयके पृथूदक तीर्थमें जाना चाहिये, वह तीनों लोकोंमें विख्यात है। वहाँ देवता और पितरोंके पूजनमें तत्पर होकर स्नान करना चाहिये। स्त्री हो या पुरुष, वह मानवबुद्धिसे प्रेरित हो जान बूझकर या बिना जाने जो कुछ भी अशुभ कर्म किये होता है, वह सब वहाँ स्नान करने मात्रसे नष्ट हो जाता है। इतना ही नहीं, उसे अश्वमेध यज्ञके फल तथा स्वर्गलोककी प्राप्ति होती है। कुरुक्षेत्रको परम पवित्र

कहते हैं, कुरुक्षेत्रसे भी पवित्र है सरस्वती नदी, उससे भी पवित्र हैं वहाँके तीर्थ और उन तीर्थोंसे भी पावन है पृथूदक। पृथूदक तीर्थमें जप करनेवाले मनुष्यका पुनर्जन्म नहीं होता। राजन्! श्रीसनत्कुमार तथा महात्मा व्यासने इस तीर्थकी महिमा गायी है। वेदमें भी इसे निश्चित रूपसे महत्त्व दिया गया है। अतः पृथूदक तीर्थमें अवश्य जाना चाहिये। पृथूदक तीर्थसे बढ़कर दूसरा कोई परम पावन तीर्थ नहीं है। निःसन्देह यही मेध्य, पवित्र और पावन है। वहीं मधुपुर नामक तीर्थ है, वहाँ स्नान करनेसे सहस्र गोदानोंका फल प्राप्त होता है। नरश्रेष्ठ! वहाँसे सरस्वती और अरुणाके सङ्गममें, जो विश्वविख्यात तीर्थ है, जाना चाहिये। वहाँ तीन राततक उपवास करके रहने और स्नान करनेसे ब्रह्महत्या छूट जाती है। साथ ही तीर्थसेवी पुरुषको अग्निष्टोम और अतिरात्र यज्ञका फल मिलता है और वह अपनी सात पीढ़ियोंतकका उद्धार कर देता है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। वहाँसे शतसहस्र तथा साहस्रक—इन दोनों तीर्थोंमें जाना चाहिये। वे दोनों तीर्थ भी वहीं हैं तथा सम्पूर्ण लोकोंमें उनकी प्रसिद्धि है। उन दोनोंमें स्नान करनेसे मनुष्य सहस्र गोदानोंका फल पाता है। वहाँ जो दान या उपवास किया जाता है, वह सहस्रगुना अधिक फल देनेवाला होता है। तदनन्तर परम उत्तम रेणुकातीर्थमें जाना चाहिये और वहाँ देवताओं तथा पितरोंके पूजनमें तत्पर हो स्नान करना चाहिये। ऐसा करनेसे मनुष्यका हृदय सब पापोंसे शुद्ध हो जाता है तथा उसे अग्निष्टोम यज्ञका फल मिलता है। जो क्रोध और इन्द्रियोंको जीतकर विमोचन तीर्थमें स्नान करता है, वह प्रतिग्रहजनित समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है।

तदनन्तर जितेन्द्रिय हो ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए पञ्चवट तीर्थमें जाकर [स्नान करनेसे] मनुष्यको महान् पुण्य होता है तथा वह स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। जहाँ स्वयं योगेश्वर शिव विराजमान हैं, वहाँ उन देवेश्वरका पूजन करके मनुष्य वहाँकी यात्रा करनेमात्रसे सिद्धि प्राप्त कर लेता है। कुरुक्षेत्रमें इन्द्रिय-निग्रह तथा ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए स्नान करनेसे मनुष्यका हृदय सब पापोंसे शुद्ध हो जाता है और वह रुद्रलोकको प्राप्त होता है। इसके बाद नियमित आहारका भोजन तथा शौचादि नियमोंका पालन करते हुए स्वर्गद्वारकी यात्रा करे। ऐसा करनेसे मनुष्य अग्निष्टोम यज्ञका फल पाता और ब्रह्मलोकको जाता है। महाराज! नारायण तथा पद्मनाभके क्षेत्रोंमें जाकर उनका दर्शन करनेसे तीर्थसेवी पुरुष शोभायमान रूप धारण करके विष्णुधामको प्राप्त होता है। समस्त देवताओंके तीर्थोंमें स्नान करने मात्रसे मनुष्य सम्पूर्ण दुःखोंसे मुक्त होकर श्रीशिवकी भाँति कान्तिमान् होता है। तत्पश्चात् तीर्थसेवी पुरुष अस्थिपुरमें जाय और उस पावन तीर्थमें पहुँचकर देवताओं तथा पितरोंका तर्पण करे। इससे उसे अग्निष्टोम यज्ञका फल मिलता है। भरतश्रेष्ठ! वहीं गङ्गाह्रद नामक कूप है, जिसमें तीन करोड़ तीर्थोंका निवास है। राजन्! उसमें स्नान करनेसे मनुष्य ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है। आपगामें स्नान और महेश्वरका पूजन करके मनुष्य परम गतिको पाता है और अपने कुलका भी उद्धार कर देता है। तत्पश्चात् तीनों लोकोंमें विख्यात स्थाणुवट तीर्थमें जाना चाहिये; वहाँ स्नान करके रात्रिमें निवास करनेसे मनुष्य रुद्रलोकको प्राप्त होता है। जो नियमपरायण, सत्यवादी पुरुष एकरात्र नामक तीर्थमें जाकर एक रात निवास करता है, वह ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित होता है। राजेन्द्र! वहाँसे उस त्रिभुवनविख्यात तीर्थमें जाना चाहिये, जहाँ तेजोराशि महात्मा आदित्यका आश्रम है। जो मनुष्य उस तीर्थमें स्नान करके भगवान् सूर्यका पूजन करता है, वह सूर्यलोकमें जाता और अपने कुलका उद्धार कर देता है।

युधिष्ठिर! इसके बाद सन्निहिता नामक तीर्थकी यात्रा करनी चाहिये, जहाँ ब्रह्मा आदि देवता तथा तपोधन ऋषि महान् पुण्यसे युक्त हो प्रतिमास एकत्रित होते हैं। सूर्यग्रहणके समय सन्निहितामें स्नान करनेसे सौ अश्वमेध यज्ञोंके अनुष्ठानका फल होता है। पृथ्वीपर तथा आकाशमें जितने भी तीर्थ, जलाशय, कूप तथा पुण्य-मन्दिर हैं, वे सब प्रत्येक मासकी अमावास्याको निश्चय ही सन्निहितामें एकत्रित होते हैं। अमावास्या तथा सूर्यग्रहणके समय वहाँ केवल स्नान तथा श्राद्ध करनेवाला मानव सहस्र अश्वमेध यज्ञके अनुष्ठानका फल प्राप्त करता है। स्त्री अथवा पुरुषका जो कुछ भी दुष्कर्म होता है, वह सब वहाँ स्नान करने मात्रसे नष्ट हो जाता है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। उस तीर्थमें स्नान करनेवाला पुरुष विमानपर बैठकर ब्रह्मलोकमें जाता है। पृथ्वीपर नैमिषारण्य पवित्र है; तथा तीनों लोकोंमें कुरुक्षेत्रको अधिक महत्त्व दिया गया है। हवासे उड़ायी हुई कुरुक्षेत्रकी धूलि भी यदि देहपर पड़ जाय तो वह पापीको भी परमगतिकी प्राप्ति करा देती है। कुरुक्षेत्र ब्रह्मवेदीपर स्थित है। वह ब्रह्मर्षियोंसे सेवित पुण्यमय तीर्थ है। राजन्! जो उसमें निवास करते हैं, वे किसी तरह शोकके योग्य नहीं होते।

तरण्डकसे लेकर अरण्डकतक तथा रामह्रद (परशुराम कुण्ड) से लेकर मचक्रुकतकके भीतरका क्षेत्र समन्तपञ्चक कहलाता है। यही कुरुक्षेत्र है। इसे ब्रह्माजीके यज्ञकी उत्तर-वेदी कहा गया है।

धर्मतीर्थ आदिकी महिमा, यमुना-स्नानका माहात्म्य—हेमकुण्डल वैश्य और उसके पुत्रोंकी कथा एवं स्वर्ग तथा नरकमें ले आनेवाले शुभाशुभ कर्मोंका वर्णन

नारदजी कहते हैं—धर्मके ज्ञाता युधिष्ठिर! कुरुक्षेत्रसे तीर्थयात्रीको परम प्राचीन धर्मतीर्थमें जाना चाहिये, जहाँ महाभाग धर्मने उत्तम तपस्या की थी। धर्मशील मनुष्य एकाग्रचित्त हो वहाँ स्नान करके अपनी सात पीढ़ियोंतकको पवित्र कर देता है। वहाँसे उत्तम कलाप-वनकी यात्रा करनी उचित है; उस तीर्थमें एकाग्रतापूर्वक स्नान करके मनुष्य अग्निष्टोम यज्ञका फल पाता और विष्णुलोकको जाता है। राजन्! तत्पश्चात् मानव सौगन्धिक-वनकी यात्रा करे। उस वनमें प्रवेश करते ही वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। उसके बाद नदियोंमें श्रेष्ठ सरस्वती आती हैं, जिन्हें प्लक्षा देवी भी कहते हैं। उनमें जहाँ वल्मीक (बाँबी) से जल निकला है, वहाँ स्नान करे। फिर देवताओं तथा पितरोंका पूजन करके मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल पाता है। भारत! सुगन्धा, शतकुम्भा तथा पञ्चयज्ञकी यात्रा करके मनुष्य स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है।

तत्पश्चात् तीनों लोकोंमें विख्यात सुवर्ण नामक तीर्थमें जाय, वहाँ पहुँचकर भगवान् शङ्करकी पूजा करनेसे मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल पाता और गणपति-पदको प्राप्त होता है। वहाँसे धूमवन्तीको प्रस्थान करे। वहाँ तीन रात निवास करनेवाला मनुष्य मनोवाञ्छित कामनाओंको प्राप्त कर लेता है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। देवीके दक्षिणार्ध भागमें रथावर्त नामक स्थान है। वहाँ जाकर श्रद्धालु एवं जितेन्द्रिय पुरुष महादेवजीकी कृपासे परमगतिको प्राप्त होता है। तत्पश्चात् महागिरिको नमस्कार करके गङ्गाद्वार (हरिद्वार) की यात्रा करे तथा वहाँ एकाग्रचित्त हो कोटितीर्थमें स्नान करे। ऐसा करनेवाला पुरुष पुण्डरीक यज्ञका फल पाता और अपने कुलका भी उद्धार कर देता है। वहाँ एक रात निवास करनेसे सहस्र गोदानोंका फल मिलता है। सप्तगङ्ग, त्रिगङ्ग और शक्रावर्त नामक तीर्थमें देवता तथा पितरोंका विधिपूर्वक तर्पण करनेवाला पुरुष पुण्यलोकमें प्रतिष्ठित होता है। इसके बाद कनखलमें स्नान करके तीन राततक उपवास करनेवाला मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल पाता और स्वर्गलोकको जाता है। वहाँसे ललितिका (ललिता) में, जो राजा शन्तनुका उत्तम तीर्थ है, जाना चाहिये। राजन्! वहाँ स्नान करनेसे मनुष्यकी कभी दुर्गति नहीं होती।

महाराज युधिष्ठिर! तत्पश्चात् उत्तम कालिन्दीतीर्थकी यात्रा करनी चाहिये। वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य दुर्गतिमें नहीं पड़ता। नरश्रेष्ठ! पुष्कर, कुरुक्षेत्र, ब्रह्मावर्त, पृथूदक, अविमुक्त क्षेत्र (काशी) तथा सुवर्ण नामक तीर्थमें भी जिस फलकी प्राप्ति नहीं होती, वह यमुनामें स्नान करनेसे मिल जाता है। निष्काम या सकाम भावसे भी जो यमुनाजीके जलमें गोता लगाता है, उसे इस लोक और परलोकमें दुःख नहीं देखना पड़ता। जैसे कामधेनु और चिन्तामणि मनोगत कामनाओंको पूर्ण कर देती हैं, उसी प्रकार यमुनामें किया हुआ स्नान सारे मनोरथोंको पूर्ण करता है। सत्ययुगमें तप, त्रेतामें ज्ञान, द्वापरमें यज्ञ तथा कलियुगमें दान सर्वश्रेष्ठ माने गये हैं, किन्तु कलिन्द-कन्या यमुना सदा ही शुभकारिणी हैं। राजन्! यमुनाके जलमें स्नान करना सभी वर्णों तथा समस्त आश्रमोंके लिये धर्म है। मनुष्यको चाहिये कि वह भगवान् वासुदेवकी प्रसन्नता, समस्त पापोंकी निवृत्ति तथा स्वर्गलोककी प्राप्तिके लिये यमुनाके जलमें स्नान करे। यदि यमुना स्नानका अवसर न मिला तो सुन्दर, सुपुष्ट, बलिष्ठ एवं नाशवान् शरीरकी रक्षा करनेसे क्या लाभ।

विष्णुभक्तिसे रहित ब्राह्मण, विद्वान् पुरुषोंसे रहित श्राद्ध, ब्राह्मणभक्तिसे शून्य क्षत्रिय, दुराचारसे दूषित कुल, दम्भयुक्त धर्म, क्रोधपूर्वक किया हुआ तप, दृढ़तारहित ज्ञान, प्रमादपूर्वक किया हुआ शास्त्राध्ययन, परपुरुषमें आसक्ति रखनेवाली नारी, मदयुक्त ब्रह्मचारी, बुझी हुई आगमें किया हुआ हवन, कपटपूर्ण भक्ति, जीविकाका साधन बनी हुई कन्या, अपने लिये बनायी हुई रसोई, शूद्र सन्यासीका साधा हुआ योग, कृपणका धन, अभ्यास-रहित विद्या, विरोध पैदा करनेवाला ज्ञान, जीविकाके साधन बने हुए तीर्थ और व्रत, असत्य और चुगलीसे भरी हुई वाणी, छः कानोंमें पहुँचा

हुआ गुप्त मन्त्र, चञ्चल चित्तसे किया हुआ जप, अश्रोत्रियको दिया हुआ दान, नास्तिक मनुष्य तथा अश्रद्धापूर्वक किया हुआ समस्त पारलौकिक कर्म—ये सब-के-सब जिस प्रकार नष्ट-प्राय माने गये हैं; वैसे ही यमुना-स्नानके विना मनुष्योंका जन्म भी नष्ट ही है। मन, वाणी और क्रियाद्वारा किये हुए आर्द्र, शुष्क, लघु और स्थूल—सभी प्रकारके पापोंको यमुनाका स्नान दग्ध कर देता है; ठीक उसी तरह, जैसे आग लकड़ीको जला डालती है। राजन्! जैसे भगवान् विष्णुकी भक्तिमें सभी मनुष्योंका अधिकार है, उसी प्रकार यमुनादेवी सदा सबके पापोंका नाश करनेवाली हैं। यमुनामें किया हुआ स्नान ही सबसे बड़ा मन्त्र, सबसे बड़ी तपस्या और सबसे बढ़कर प्रायश्चित्त है। यदि मथुराकी यमुना प्राप्त हो जायँ तो वे मोक्ष देनेवाली मानी गयी हैं। अन्यत्रकी यमुना पुण्यमयी तथा महापातकोंका नाश करनेवाली हैं; किन्तु मथुरामें बहनेवाली यमुनादेवी विष्णुभक्ति प्रदान करती हैं।

राजन्! इस विषयमें मैं तुमसे एक प्राचीन इतिहासका वर्णन करता हूँ। पूर्वकालके सत्ययुगकी बात है। निषध नामक सुन्दर नगरमें एक वैश्य रहते थे। उनका नाम हेमकुण्डल था। वे उत्तम कुलमें उत्पन्न होनेके साथ ही सत्कर्म करनेवाले थे। देवता, ब्राह्मण और अग्निकी पूजा करना उनका नित्यका नियम था। वे खेती और व्यापारका काम करते थे। पशुओंके पालन-पोषणमें तत्पर रहते थे। दूध, दही, मट्ठा, घास, लकड़ी, फल, मूल, लवण, अदरख, पीपल, धान्य, शाक, तैल, भाँति-भाँतिके वस्त्र, धातुओंके सामान और ईखके रससे बने हुए खाद्य पदार्थ (गुड़, खाँड़, शक्कर आदि)—इन्हीं सब वस्तुओंको सदा बेचा करते थे। इस तरह नाना प्रकारके अन्यान्य उपायोंसे वैश्यने आठ करोड़ स्वर्णमुद्राएँ पैदा कीं। इस प्रकार व्यापार करते-करते उनके कानोंतकके बाल सफेद हो गये। तदनन्तर उन्होंने अपने चित्तमें संसारकी क्षणभङ्गुरताका विचार करके उस धनके छठे भागसे धर्मका कार्य करना आरम्भ किया। भगवान् विष्णुका मन्दिर तथा शिवालय बनवाये, पोखरा खुदवाया तथा बहुत-सी बावलियाँ बनवायीं। इतना ही नहीं, उन्होंने बरगद, पीपल, आम, जामुन और नीम आदिके जंगल लगवाये तथा सुन्दर पुष्पवाटिका भी तैयार करायी। सूर्योदयसे लेकर सूर्यास्ततक अन्न-जल बाँटनेकी उन्होंने व्यवस्था कर रखी थी। नगरके बाहर चारों ओर अत्यन्त शोभायमान पौंसले बनवा दिये थे। राजन्! पुराणोंमें जो-जो दान प्रसिद्ध हैं, वे सभी दान उन धर्मात्मा वैश्यने दिये थे। वे सदा ही दान, देवपूजा तथा अतिथि-सत्कारमें लगे रहते थे।

इस प्रकार धर्मकार्यमें लगे हुए वैश्यके दो पुत्र हुए। उनके नाम थे—श्रीकुण्डल और विकुण्डल। उन दोनोंके सिरपर घरका भार छोड़कर हेमकुण्डल तपस्या करनेके लिये वनमें चले गये। वहाँ उन्होंने सर्वश्रेष्ठ देवता वरदायक भगवान् गोविन्दकी आराधनामें संलग्न हो तपस्याद्वारा अपने शरीरको क्षीण कर डाला। तथा निरन्तर श्रीवासुदेवमें मन लगाये रहनेके कारण वे वैष्णव-धामको प्राप्त हुए, जहाँ जाकर मनुष्यको शोक नहीं करना पड़ता। तत्पश्चात् उस वैश्यके दोनों पुत्र जब तरुण हुए तो उन्हें बड़ा अभिमान हो गया। वे धनके गर्वसे उन्मत्त हो उठे। उनका आचरण बिगड़ गया। वे दुर्व्यसनोंमें आसक्त हो गये। धर्म-कर्मोंकी ओर उनकी दृष्टि नहीं जाती थी। वे माताकी आज्ञा तथा वृद्ध पुरुषोंका कहना नहीं मानते थे। दोनों ही दुरात्मा और कुमार्गगामी हो गये। वे अधर्ममें ही लगे रहते थे। उन दुष्टोंने परायी स्त्रियोंके साथ व्यभिचार आरम्भ कर दिया। वे गाने-बजानेमें मस्त रहते और सैकड़ों वेश्याओंको साथ रखते थे। चिकनी-चुपड़ी बातें बनाकर 'हाँ-में-हाँ' मिलानेवाले चापलूस ही उनके सङ्गी थे। उन्हें मद्य पीनेका चस्का लग गया था। इस प्रकार सदा भोगपरायण होकर पिताके धनका नाश करते हुए वे दोनों भाई अपने रमणीय भवनमें निवास करते थे। धनका दुरुपयोग करते हुए उन्होंने वेश्याओं, गुंडों, नटों, मल्लों, चारणों तथा बन्दियोंको अपना सारा धन लुटा दिया। ऊसरमें डाले हुए बीजकी भाँति सारा धन उन्होंने अपात्रोंको ही दिया। सत्पात्रको कभी दान नहीं दिया, ब्राह्मणके मुखमें अन्नका होम नहीं किया तथा समस्त भूतोंका भरण-पोषण करनेवाले सर्वपापनाशक भगवान् विष्णुकी कभी पूजा नहीं की।

इस प्रकार उन दोनोंका धन थोड़े ही दिनोंमें समाप्त हो गया। इससे उन्हें बड़ा दुःख हुआ। उनके घरमें ऐसी कोई भी वस्तु नहीं बची, जिससे वे अपना निर्वाह करते। द्रव्यके अभावमें समस्त स्वजनों, बान्धवों, सेवकों तथा आश्रितोंने भी उन्हें त्याग दिया। उस नगरमें उनकी बड़ी शोचनीय स्थिति हो गयी। इसके बाद उन्होंने चोरी करना आरम्भ किया। राजा तथा लोगोंके भयसे डरकर वे अपने नगरसे निकल गये और वनमें जाकर रहने लगे। अब वे सबको

भी भय नहीं होता। जैसे नदियाँ समुद्रमें मिलती हैं, उसी प्रकार समस्त धर्म अहिंसामें लय हो जाते हैं—यह निश्चित बात है। वैश्यप्रवर! जिसने इस लोकमें सम्पूर्ण भूतोंको अभय-दान कर दिया है, उसीने सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान किया है तथा वह सम्पूर्ण यज्ञोंकी दीक्षा ले चुका है। वर्णाश्रम-धर्ममें स्थित होकर शास्त्रोक्त आज्ञाका पालन करनेवाले समस्त जितेन्द्रिय मनुष्य सनातन ब्रह्मलोकको प्राप्त होते हैं। जो इष्ट और पूर्तमें लगे रहते हैं, पञ्चयज्ञोंका अनुष्ठान किया करते हैं, जिनके मनमें सदा दया भरी रहती है, जो विषयोंकी ओरसे निवृत्त, सामर्थ्यशाली, वेदवादी तथा सदा अग्निहोत्रपरायण हैं, वे ब्राह्मण स्वर्गगामी होते हैं। शत्रुओंसे घिरे होनेपर भी जिनके मुखपर कभी दीनताका भाव नहीं आता, जो शूरवीर हैं, जिनकी मृत्यु संग्राममें ही होती है; जो अनाथ स्त्रियों, ब्राह्मणों तथा शरणागतोंकी रक्षाके लिये अपने प्राणोंकी बलि दे देते हैं तथा जो पङ्गु, अन्ध, बाल, वृद्ध, अनाथ, रोगी तथा दरिद्रोंका सदा पालन-पोषण करते हैं, वे सदा स्वर्गमें रहकर आनन्द भोगते हैं। जो कीचड़में फँसी हुई गाय तथा रोगसे आतुर ब्राह्मणको देखकर उनका उद्धार करते हैं, जो गौओंको ग्रास अर्पण करते, गौओंकी सेवा-शुश्रूषामें रहते तथा गौओंकी पीठपर कभी सवारी नहीं करते, वे स्वर्गलोकके निवासी होते हैं। जो ब्राह्मण प्रतिदिन अग्निपूजा, देवपूजा, गुरुपूजा और द्विजपूजामें तत्पर रहते हैं, वे स्वर्गलोकमें जाते हैं।

बावली, कुआँ और पोखरे बनवाने आदिके पुण्यका कभी अन्त नहीं होता; क्योंकि वहाँ जलचर और थलचर जीव सदा अपनी इच्छाके अनुसार जल पीते रहते हैं। देवता भी बावली आदि बनवानेवालेको नित्य दानपरायण कहते हैं। वैश्यवर! प्राणी जैसे-जैसे बावली आदिका जल पीते हैं, वैसे-ही-वैसे धर्मकी वृद्धि होनेसे उसके बनवानेवाले मनुष्यके लिये स्वर्ग-का निवास अक्षय होता जाता है। जल प्राणियोंका जीवन है। जलके ही आधार प्राण टिके हुए हैं। पातकी मनुष्य भी प्रतिदिन स्नान करनेसे पवित्र हो जाते हैं। प्रातःकालका स्नान बाहर और भीतरके मलको भी धो डालता है। प्रातः-स्नानसे निष्पाप होकर मनुष्य कभी नरकमें नहीं पड़ता। जो बिना स्नान किये भोजन करता है, वह सदा मलका भोजन करनेवाला है। जो मनुष्य स्नान नहीं करता, देवता और पितर उससे विमुख हो जाते हैं। वह अपवित्र माना गया है। वह नरक भोगकर कीट-योनिको प्राप्त होता है।

जो लोग पर्वके दिन नदीकी धारामें स्नान करते हैं, वे न तो नरकमें पड़ते हैं और न किसी नीच योनिमें ही जन्म लेते हैं। उनके लिये बुरे स्वप्न और बुरी चिन्ताएँ सदा निष्फल होती हैं। विकुण्डल! जो पृथ्वी, सुवर्ण और गौ—इनका सोलह बार दान करते हैं, वे स्वर्गलोकमें जाकर फिर वहाँसे वापस नहीं आते। विद्वान् पुरुष पुण्य तिथियोंमें, व्यतीपात योगमें तथा संक्रान्तिके समय स्नान करके यदि थोड़ा-सा भी दान करे तो कभी दुर्गतिमें नहीं पड़ता। जो मनुष्य सत्यवादी, सदा मौन धारण करनेवाले, प्रियवक्ता, क्रोधहीन, सदाचारी, अधिक बकवाद न करनेवाले, दूसरोंके दोष न देखनेवाले, सदा सब प्राणियोंपर दया करनेवाले, दूसरोंकी गुप्त बातोंको प्रकट न करनेवाले तथा दूसरोंके गुणों-का बखान करनेवाले हैं; जो दूसरेके धनको तिनकेके समान समझकर मनसे भी उसे लेना नहीं चाहते, ऐसे लोगोंको नरक-यातनाका अनुभव नहीं करना पड़ता। जो दूसरोंपर कलङ्क लगानेवाला, पाखण्डी, महापापी और कठोर वचन बोलनेवाला है, वह प्रलयकालतक नरकमें पकाया जाता है। कृतघ्न पुरुषका तीर्थोंके सेवन तथा तपस्यासे भी उद्धार नहीं होता। उसे नरकमें दीर्घकालतक भयङ्कर यातना सहन करनी पड़ती है। जो मनुष्य जितेन्द्रिय तथा मिताहारी होकर पृथ्वी-के समस्त तीर्थोंमें स्नान करता है, वह यमराजके घर नहीं जाता। तीर्थमें कभी पातक न करे, तीर्थको कभी जीविकाका साधन न बनाये, तीर्थमें दान न ले तथा वहाँ धर्मको बेचे नहीं। तीर्थमें किये हुए पातकका क्षय होना कठिन है। तीर्थमें लिये हुए दानका पचाना मुश्किल है।

जो एक बार भी गङ्गाजीके जलमें स्नान करके गङ्गाजलसे पवित्र हो चुका है, उसने चाहे राशि-राशि पाप किये हों, फिर भी वह नरकमें नहीं पड़ता। हमारे सुननेमें आया है कि व्रत, दान, तप, यज्ञ तथा पवित्रताके अन्यान्य साधन गङ्गाकी एक बूँदसे अभिषिक्त हुए पुरुषकी समानता नहीं कर सकते।*

* सकृद्गङ्गाम्भसि स्नातः पूतो गाङ्गेयवारिणा ।
न नरो नरकं याति अपि पातकराशिकृत् ॥
व्रतदानतपोयज्ञाः पवित्राणीतराणि च ।
गङ्गाबिन्द्वभिषिक्तस्य न समा इति नः श्रुतम् ॥

पहुँचाने लगे। इस प्रकार पापपूर्ण आहारसे उनकी जीविका चलने लगी। तदनन्तर, एक दिन उनमेंसे एक तो पहाड़पर गया और दूसरेने वनमें प्रवेश किया। राजन्! उन दोनोंमें जो बड़ा था, उसे सिंहने मार डाला और छोटेको साँपने डस लिया। उन दोनों महापापियोंकी एक ही दिन मृत्यु हुई। इसके बाद यमदूत उन्हें पाशोंमें बाँधकर यमपुरीमें ले गये। वहाँ जाकर वे यमराजसे बोले—'धर्मराज! आपकी आज्ञासे हम इन दोनों मनुष्योंको ले आये हैं। अब आप प्रसन्न होकर अपने इन किङ्करोंको आज्ञा दीजिये, कौन-सा कार्य करें?' तब यमराजने दूतोंसे कहा—'वीरो! एकको तो दुःसह पीड़ा देनेवाले नरकमें डाल दो और दूसरेको स्वर्गलोकमें, जहाँ उत्तम-उत्तम भोग सुलभ हैं, स्थान दो।' यमराजकी आज्ञा सुनकर शीघ्रतापूर्वक काम करनेवाले दूतोंने वैश्यके ज्येष्ठ पुत्रको भयङ्कर रौरव नरकमें डाल दिया। इसके बाद उनमेंसे किसी श्रेष्ठ दूतने दूसरे पुत्रसे मधुर वाणीमें कहा—'विकुण्डल! तुम मेरे साथ आओ, मैं तुम्हें स्वर्गमें स्थान देता हूँ। तुम वहाँ अपने पुण्यकर्मद्वारा उपार्जित दिव्य भोगोंका उपभोग करो।'

यह सुनकर विकुण्डलके मनमें बड़ा हर्ष हुआ। मार्गमें अत्यन्त विस्मित होकर उसने दूतसे पूछा—'दूतप्रवर! मैं आपसे अपने मनका एक संदेह पूछ रहा हूँ। हम दोनों भाइयोंका एक ही कुलमें जन्म हुआ। हमने कर्म भी एक-सा ही किया तथा दुर्मृत्यु भी हमारी एक-सी ही हुई, फिर क्या कारण है कि मेरे ही समान कर्म करनेवाला मेरा बड़ा भाई नरकमें डाला गया और मुझे स्वर्गकी प्राप्ति हुई? आप मेरे इस संशयका निवारण कीजिये। बाल्यकालसे ही मेरा मन पापोंमें लगा रहा। पुण्य-कर्मोंमें कभी संलग्न नहीं हुआ। यदि आप मेरे किसी पुण्यको जानते हों तो कृपया बतलाइये।'

देवदूतने कहा—वैश्यवर! सुनो। हरिमित्रके पुत्र स्वमित्र नामक ब्राह्मण वनमें रहते थे। वे वेदोंके पारगामी विद्वान् थे। यमुनाके दक्षिण किनारे उनका पवित्र आश्रम था। उस वनमें रहते समय ब्राह्मण देवताके साथ तुम्हारी मित्रता हो गयी थी। उन्हींके सङ्गसे तुमने कालिन्दीके पवित्र जलमें, जो सब पापोंको हरनेवाला और श्रेष्ठ है, दो बार माघ-स्नान किया है। एक माघ-स्नानके पुण्यसे तुम सब पापोंसे मुक्त हो गये और दूसरेके पुण्यसे तुम्हें स्वर्गकी प्राप्ति हुई है। इसी पुण्यके प्रभावसे तुम सदा स्वर्गमें रहकर आनन्दका अनुभव करो। तुम्हारा भाई नरकमें बड़ी भारी यातना भोगेगा। असिपत्र-वनके पत्तोंसे उसके सारे अङ्ग छिद जायँगे। मुगदरोंकी मारसे उसकी धज्जियाँ उड़ जायँगी। शिलाकी चट्टानोंपर पटककर उसे चूर-चूर कर दिया जायगा तथा वह दहकते हुए अङ्गारोंमें भूना जायगा।

दूतकी यह बात सुनकर विकुण्डलको भाइके दुःखसे बड़ा दुःख हुआ। उसके सारे शरीरके रोंगटे खड़े हो गये। वह दीन और विनीत होकर बोला—'साधो! सत्पुरुषोंमें सात पग साथ चलनेमात्रसे मैत्री हो जाती है तथा वह उत्तम फल देनेवाली होती है, अतः आप मित्रभावका विचार करके मेरा उपकार करें। मैं आपसे उपदेश सुनना चाहता हूँ। मेरी समझमें आप सर्वज्ञ हैं, अतः कृपा करके बताइये; मनुष्य किस कर्मके अनुष्ठानसे यमलोकका दर्शन नहीं करते तथा कौन-सा कर्म करनेसे वे नरकमें जाते हैं?'

देवदूतने कहा—जो मन, वाणी और क्रियाद्वारा कभी किसी भी अवस्थामें दूसरोंको पीड़ा नहीं देते, वे यमराजके लोकमें नहीं जाते। अहिंसा परम धर्म है, अहिंसा ही श्रेष्ठ तपस्या है तथा अहिंसाको ही मुनियोंने सदा श्रेष्ठ दान बताया है।* जो मनुष्य दयालु हैं वे मच्छर, साँप, डाँस, खटमल तथा मनुष्य—सबको अपने ही समान देखते हैं। जो अपनी जीविकाके लिये जलचर और थलचर जीवोंकी हत्या करते हैं, वे कालसूत्र नामक नरकमें पड़कर दुर्गति भोगते हैं। वहाँ उन्हें कुत्तेका मांस खाना तथा पीब और रक्त पीना पड़ता है। वे चर्बीकी कीचमें डूबकर अधोमुखी कीड़ोंके द्वारा डँसे जाते हैं। अँधेरेमें पड़कर वे एक दूसरेको खाते और परस्पर आघात करते हैं। इस अवस्थामें भयङ्कर चीत्कार करते हुए वे एक कल्पतक वहाँ निवास करते हैं। नरकसे निकलनेपर उन्हें दीर्घकालतक स्थावर योनिमें रहना पड़ता है। उसके बाद वे क्रूर प्राणी सैकड़ों बार तिर्यग्योनियोंमें जन्म लेते हैं और अन्तमें मनुष्य योनिके भीतर जन्मसे अंधे, काने, कुबड़े, पङ्गु, दरिद्र तथा अङ्गहीन होकर उत्पन्न होते हैं।

इसलिये जो दोनों लोकोंमें सुख पाना चाहता है, उस धर्मज्ञ पुरुषको उचित है कि इस लोक और परलोकमें मन, वाणी तथा क्रियाके द्वारा किसी भी जीवकी हिंसा न करे। प्राणियोंकी हिंसा करनेवाले लोग दोनों लोकोंमें कहीं भी सुख नहीं पाते। जो किसी जीवकी हिंसा नहीं करते, उन्हें कहीं

* अहिंसा परमो धर्मो ह्यहिंसैव परं तपः।
अहिंसा परमं दानमित्याहुर्मुनयः सदा॥ (३१।२७)

भी भय नहीं होता। जैसे नदियाँ समुद्रमें मिलती हैं, उसी प्रकार समस्त धर्म अहिंसामें लय हो जाते हैं—यह निश्चित बात है। वैश्यप्रवर! जिसने इस लोकमें सम्पूर्ण भूतोंको अभय-दान कर दिया है, उसीने सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान किया है तथा वह सम्पूर्ण यज्ञोंकी दीक्षा ले चुका है। वर्णाश्रम-धर्ममें स्थित होकर शास्त्रोक्त आज्ञाका पालन करनेवाले समस्त जितेन्द्रिय मनुष्य सनातन ब्रह्मलोकको प्राप्त होते हैं। जो इष्ट[1] और पूर्तमें[2] लगे रहते हैं, पञ्चयज्ञोंका[3] अनुष्ठान किया करते हैं, जिनके मनमें सदा दया भरी रहती है, जो विषयोंकी ओरसे निवृत्त, सामर्थ्यशाली, वेदवादी तथा सदा अग्निहोत्रपरायण हैं, वे ब्राह्मण स्वर्गगामी होते हैं। शत्रुओंसे घिरे होनेपर भी जिनके मुखपर कभी दीनताका भाव नहीं आता, जो शूरवीर हैं, जिनकी मृत्यु संग्राममें ही होती है; जो अनाथ स्त्रियों, ब्राह्मणों तथा शरणागतोंकी रक्षाके लिये अपने प्राणोंकी बलि दे देते हैं तथा जो पङ्गु, अन्ध, बाल, वृद्ध, अनाथ, रोगी तथा दरिद्रोंका सदा पालन-पोषण करते हैं, वे सदा स्वर्गमें रहकर आनन्द भोगते हैं। जो कीचड़में फँसी हुई गाय तथा रोगसे आतुर ब्राह्मणको देखकर उनका उद्धार करते हैं, जो गौओंको ग्रास अर्पण करते, गौओंकी सेवा-शुश्रूषामें रहते तथा गौओंकी पीठपर कभी सवारी नहीं करते, वे स्वर्गलोकके निवासी होते हैं। जो ब्राह्मण प्रतिदिन अग्निपूजा, देवपूजा, गुरुपूजा और द्विजपूजामें तत्पर रहते हैं, वे स्वर्गलोकमें जाते हैं।

बावली, कुआँ और पोखरे बनवाने आदिके पुण्यका कभी अन्त नहीं होता; क्योंकि वहाँ जलचर और थलचर जीव सदा अपनी इच्छाके अनुसार जल पीते रहते हैं। देवता भी बावली आदि बनवानेवालेको नित्य दानपरायण कहते हैं। वैश्यवर! प्राणी जैसे-जैसे बावली आदिका जल पीते हैं, वैसे-ही-वैसे धर्मकी वृद्धि होनेसे उसके बनवानेवाले मनुष्यके लिये स्वर्ग-का निवास अक्षय होता जाता है। जल प्राणियोंका जीवन है। जलके ही आधार प्राण टिके हुए हैं। पातकी मनुष्य भी प्रतिदिन स्नान करनेसे पवित्र हो जाते हैं। प्रातःकालका स्नान बाहर और भीतरके मलको भी धो डालता है। प्रातः-स्नानसे निष्पाप होकर मनुष्य कभी नरकमें नहीं पड़ता। जो बिना स्नान किये भोजन करता है, वह सदा मलका भोजन करनेवाला है। जो मनुष्य स्नान नहीं करता, देवता और पितर उससे विमुख हो जाते हैं। वह अपवित्र माना गया है। वह नरक भोगकर कीट-योनिको प्राप्त होता है।

जो लोग पर्वके दिन नदीकी धारामें स्नान करते हैं, वे न तो नरकमें पड़ते हैं और न किसी नीच योनिमें ही जन्म लेते हैं। उनके लिये बुरे स्वप्न और बुरी चिन्ताएँ सदा निष्फल होती हैं। विकुण्डल! जो पृथ्वी, सुवर्ण और गौ—इनका सोलह बार दान करते हैं, वे स्वर्गलोकमें जाकर फिर वहाँसे वापस नहीं आते। विद्वान् पुरुष पुण्य तिथियोंमें, व्यतीपात योगमें तथा संक्रान्तिके समय स्नान करके यदि थोड़ा-सा भी दान करे तो कभी दुर्गतिमें नहीं पड़ता। जो मनुष्य सत्यवादी, सदा मौन धारण करनेवाले, प्रियवक्ता, क्रोधहीन, सदाचारी, अधिक बकवाद न करनेवाले, दूसरोंके दोष न देखनेवाले, सदा सब प्राणियोंपर दया करनेवाले, दूसरोंकी गुप्त बातोंको प्रकट न करनेवाले तथा दूसरोंके गुणों-का बखान करनेवाले हैं; जो दूसरेके धनको तिनकेके समान समझकर मनसे भी उसे लेना नहीं चाहते, ऐसे लोगोंको नरक-यातनाका अनुभव नहीं करना पड़ता। जो दूसरोंपर कलङ्क लगानेवाला, पाखण्डी, महापापी और कठोर वचन बोलनेवाला है, वह प्रलयकालतक नरकमें पकाया जाता है। कृतघ्न पुरुषका तीर्थोंके सेवन तथा तपस्यासे भी उद्धार नहीं होता। उसे नरकमें दीर्घकालतक भयङ्कर यातना सहन करनी पड़ती है। जो मनुष्य जितेन्द्रिय तथा मिताहारी होकर पृथ्वी-के समस्त तीर्थोंमें स्नान करता है, वह यमराजके घर नहीं जाता। तीर्थमें कभी पातक न करे, तीर्थको कभी जीविकाका साधन न बनाये, तीर्थमें दान न ले तथा वहाँ धर्मको बेचे नहीं। तीर्थमें किये हुए पातकका क्षय होना कठिन है। तीर्थमें लिये हुए दानका पचाना मुश्किल है।

जो एक बार भी गङ्गाजीके जलमें स्नान करके गङ्गाजलसे पवित्र हो चुका है, उसने चाहे राशि-राशि पाप किये हों, फिर भी वह नरकमें नहीं पड़ता। हमारे सुननेमें आया है कि व्रत, दान, तप, यज्ञ तथा पवित्रताके अन्यान्य साधन गङ्गाकी एक बूँदसे अभिषिक्त हुए पुरुषकी समानता नहीं कर सकते।*

१. अग्निहोत्र, तप, सत्य, यज्ञ, दान, वेदरक्षा, आतिथ्य, वैश्वदेव और ध्यान आदि धार्मिक कार्योंको 'इष्ट' कहते हैं।
२. बावली, कुआँ, तालाव, देवमन्दिर और धर्मशाला बनवाना तथा बगीचे लगाना आदि कार्य 'पूर्त' कहलाते हैं। ३. ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, मनुष्ययज्ञ, पितृयज्ञ तथा भूतयज्ञ—ये ही पञ्चयज्ञ कहे गये हैं।

* सकृद्गङ्गाम्भसि स्नातः पूतो गाङ्गेयवारिणा।
न नरो नरकं याति अपि पातकराशिकृत्॥
व्रतदानतपोयज्ञाः पवित्राणीतराणि च।
गङ्गाबिन्द्वभिषिक्तस्य न समा इति नः श्रुतम्॥

(३११ । ७२-७३)

जो धर्मद्रव (धर्मका ही द्रवीभूतस्वरूप) है, जल्का आदि कारण है, भगवान् विष्णुके चरणोंसे प्रकट हुआ है तथा जिसे भगवान् शङ्करने अपने मस्तकपर धारण कर रखा है, वह *गङ्गाजीका निर्मल जल प्रकृतिसे पर निर्गुण ब्रह्म ही है*—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। अतः ब्रह्माण्डके भीतर ऐसी कौन-सी वस्तु है, जो गङ्गाजलकी समानता कर सके। जो सौ योजन दूरसे भी 'गङ्गा, गङ्गा' कहता है, वह मनुष्य नरकमें नहीं पड़ता। फिर गङ्गाजीके समान कौन हो सकता है।* नरक देनेवाला पापकर्म दूसरे किसी उपायसे तत्काल दग्ध नहीं हो सकता, इसलिये मनुष्योंको प्रयत्नपूर्वक गङ्गाजीके जलमें स्नान करना चाहिये।

जो ब्राह्मण दान लेनेमें समर्थ होकर भी उससे अलग रहता है, वह आकाशमें तारा बनकर चिरकालतक प्रकाशित होता रहता है। जो कीचड़से गौका उद्धार करते हैं, रोगियोंकी रक्षा करते हैं तथा गोशालामें जिनकी मृत्यु होती है, उन्हीं लोगोंके लिये आकाशमें स्थित तारामय लोक हैं। सदा प्राणायाम करनेवाले द्विज यमलोकका दर्शन नहीं करते। वे पापी हों तो भी प्राणायामसे ही उनका पाप नष्ट हो जाता है। वैश्यवर! यदि प्रतिदिन सोलह प्राणायाम किये जायँ तो वे साक्षात् ब्रह्मघातीको भी पवित्र कर देते हैं। *जिन जिन* तपोंका अनुष्ठान किया जाता है, जो जो व्रत और नियम कहे गये हैं, वे तथा एक सहस्र गोदान—ये सब एक साथ हों तो भी प्राणायाम अकेला ही इनकी समानता कर सकता है। जो मनुष्य सौसे अधिक वर्षोंतक प्रतिमास कुशके अग्रभागसे एक बूँद पानी पीकर रहता है, उसकी कठोर तपस्याके बराबर केवल प्राणायाम ही है। प्राणायामके बलसे मनुष्य अपने सारे पातकोंको क्षणभरमें भस्म कर देता है। जो नरश्रेष्ठ परायी *स्त्रियोंको माताके समान* समझते हैं, वे कभी यम यातनामें नहीं पड़ते। जो पुरुष मनसे भी परायी स्त्रियोंका सेवन नहीं करता, उसने इस लोक और परलोकके साथ समूची पृथ्वीको धारण कर रखा है। इसलिये परस्त्री सेवनका परित्याग करना चाहिये। परायी स्त्रियाँ इक्कीस पीढ़ियोंको नरकोंमें ले जाती हैं।

जो क्रोधका कारण उपस्थित होनेपर भी कभी क्रोधके *वशीभूत नहीं होता, उस अक्रोधी पुरुषको इस पृथ्वीपर स्वर्ग का विजेता समझना चाहिये।* जो पुत्र माता पिताकी देवताके समान आराधना करता है, वह कभी यमराजके घर नहीं जाता। स्त्रियाँ अपने शील-सदाचारकी रक्षा करनेसे इस लोकमें धन्य मानी जाती हैं। शील भङ्ग होनेपर स्त्रियोंको अत्यन्त भयङ्कर यमलोककी प्राप्ति होती है। अतः स्त्रियोंको दुष्टोंके सङ्गका परित्याग करके सदा अपने शीलकी रक्षा करनी चाहिये। वैश्यवर! शीलसे नारियोंको उत्तम स्वर्गकी प्राप्ति *होती है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।* *

जो शास्त्रका विचार करते हैं, वेदोंके अभ्यासमें लगे रहते हैं, पुराण-संहिताको सुनाते तथा पढ़ते हैं, स्मृतियोंकी व्याख्या और धर्मोंका उपदेश करते हैं तथा वेदान्तमें जिनकी निष्ठा है, उन्होंने इस पृथ्वीको धारण कर रखा है। उपर्युक्त विषयोंके अभ्यासकी महिमासे उन सबके पाप नष्ट हो जाते हैं तथा वे ब्रह्मलोकको जाते हैं, जहाँ मोहका नाम भी नहीं है। जो अनजान मनुष्यको वेद शास्त्रका ज्ञान प्रदान करता है, उसकी वेद भी प्रशंसा करते हैं, क्योंकि वह भव-बन्धनको नष्ट करनेवाला है।

वैष्णव पुरुष यम, यमलोक तथा वहाँके भयङ्कर प्राणियोंका कदापि दर्शन नहीं करते—यह बात मैंने बिल्कुल सच-सच बतायी है। यमुनाके भाई यमराज हमलोगोंसे सदा ही और बारबार कहा करते हैं कि '*तुमलोग वैष्णवोंको* छोड़ देना, वे मेरे अधिकारमें नहीं हैं।' जो प्राणी प्रसङ्गवश एक बार भी भगवान् केशवका स्मरण कर लेते हैं, उनकी समस्त पापराशि नष्ट हो जाती है तथा वे श्रीविष्णुके परमपदको प्राप्त होते हैं।† दुराचारी, पापी अथवा सदाचारी—कैसा

---

* धर्मद्रव ह्यपां बीज वैकुण्ठचरणच्युतम्।
धृत मूर्ध्नि महेशेन यद्गाङ्गममल जलम्॥
तद्ब्रह्मैव न सन्देहो निर्गुण प्रकृते परम्।
तेन किं समतां गच्छेदपि ब्रह्माण्डगोचरे॥
गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि।
नरो न नरकं याति किं तया सदृश भवेत्॥
(३१। ७५-७७)

* इह चैव स्त्रियो धन्या शीलस्य परिरक्षणात्।
शीलभङ्गे च नारीणां यमलोक सुदारुण॥
शील रक्ष्य सदा स्त्रीभिर्दुष्टसङ्गविवर्जनात्।
शीलेन हि पर स्वर्गं स्त्रीणां वैश्य न सशय॥
(३१। ९३ ९४)

† आदास्मान् यमुनाभ्राता सदैव हि पुन पुन।
भवद्भिर्वैष्णवास्त्याज्या न ते स्युर्मम गोचरा॥
स्मरन्ति ये सकृद्भूता प्रसङ्गेनापि केशवम्।
ते विध्वस्ताखिलाघौघा यान्ति विष्णो पर पदम्॥
(३१। १०२ १०३)

भी क्यों न हो,' जो मनुष्य भगवान् विष्णुका भजन करता है, उसे तुमलोग सदा दूरसे ही त्याग देना। जिनके घरमें वैष्णव भोजन करता हो, जिन्हें वैष्णवोंका सङ्ग प्राप्त हो, वे भी तुम्हारे लिये त्याग देने योग्य हैं; क्योंकि वैष्णवोंके सङ्गसे उनके पाप नष्ट हो गये हैं।' पापिष्ठ मनुष्योंको नरक-समुद्रसे पार जानेके लिये भगवान् विष्णुकी भक्तिके सिवा दूसरा कोई उपाय नहीं है। वैष्णव पुरुष चारों वर्णोंसे बाहरका हो तो भी वह तीनों लोकोंको पवित्र कर देता है। मनुष्योंके पाप दूर करनेके लिये भगवान्‌के गुण, कर्म और नामोंका सङ्कीर्तन किया जाय—इतने बड़े प्रयासकी कोई आवश्यकता नहीं है; क्योंकि अजामिल-जैसा पापी भी मृत्युके समय 'नारायण' नामसे अपने पुत्रको पुकारकर भी मुक्ति पा गया।* जिस समय मनुष्य प्रसन्नतापूर्वक भगवान् श्रीहरिकी पूजा करते हैं, उसी समय उनके मातृकुल और पितृकुल दोनों कुलोंके पितर, जो चिरकालसे नरकमें पड़े होते हैं, तत्काल स्वर्गको चले जाते हैं। जो विष्णुभक्तोंके सेवक तथा वैष्णवोंका अन्न भोजन करनेवाले हैं, वे शान्तभावसे देवताओंकी गतिको प्राप्त होते हैं। अतः विद्वान् पुरुष समस्त पापोंकी शुद्धिके लिये प्रार्थना और यत्नपूर्वक वैष्णवका अन्न प्राप्त करे; अन्नके अभावमें उसका जल माँगकर ही पी ले। यदि 'गोविन्द' इस मन्त्रका जप करते हुए कहीं मृत्यु हो जाय तो वह मरनेवाला मनुष्य न तो स्वयं यमराजको देखता है और न हमलोग ही उसकी ओर दृष्टि डालते हैं। अङ्ग, मुद्रा, ध्यान, ऋषि, छन्द और देवतासहित द्वादशाक्षर मन्त्रकी दीक्षा लेकर उसका विधिवत् जप करना चाहिये। जो श्रेष्ठ मानव ['ॐ नमो नारायणाय'] इस अष्टाक्षर मन्त्रका जप करते हैं, उनका दर्शन करके ब्राह्मणघाती भी शुद्ध हो जाता है तथा वे स्वयं भी भगवान् विष्णुकी भाँति तेजस्वी प्रतीत होते हैं।

जो मनुष्य हृदय, सूर्य, जल, प्रतिमा अथवा वेदीमें भगवान् विष्णुकी पूजा करते हैं, वे वैष्णवधामको प्राप्त होते हैं। अथवा मुमुक्षु पुरुषोंको चाहिये कि वे शालग्राम-शिलाके चक्रमें सर्वदा वासुदेव भगवान्‌का पूजन करें। वह श्रीविष्णुका अधिष्ठान है तथा सब प्रकारके पापोंका नाशक, पुण्यदायक एवं सबको मुक्ति प्रदान करनेवाला है। जो शालग्राम-शिलासे उत्पन्न हुए चक्रमें श्रीहरिका पूजन करता है, वह मानो प्रतिदिन एक सहस्र राजसूय यज्ञोंका अनुष्ठान करता है। जिन शान्त ब्रह्मस्वरूप अच्युतको उपनिषद् सदा नमस्कार करते हैं, उन्हींका अनुग्रह शालग्राम-शिलाकी पूजा करनेसे मनुष्योंको प्राप्त होता है। जैसे महान् काष्ठमें स्थित अग्नि उसके अग्रभागमें प्रकाशित होती है, उसी प्रकार सर्वत्र व्यापक भगवान् विष्णु शालग्राम-शिलामें प्रकाशित होते हैं। जिसने शालग्राम-शिलासे उत्पन्न चक्रमें श्रीहरिका पूजन कर लिया, उसने अग्निहोत्रका अनुष्ठान पूर्ण कर लिया तथा समुद्रोंसहित सारी पृथ्वी दान दे दी। जो नराधम इस लोकमें काम, क्रोध और लोभसे व्याप्त हो रहा है, वह भी शालग्राम-शिलाके पूजनसे श्रीहरिके लोकको प्राप्त होता है। वैश्य! शालग्राम-शिलाकी पूजा करनेसे मनुष्य तीर्थ, दान, यज्ञ और व्रतोंके बिना ही मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। शालग्राम-शिलाकी पूजा करनेवाला मानव पापी हो तो भी नरक, गर्भवास, तिर्यग्योनि तथा कीट-योनिको नहीं प्राप्त होता। गङ्गा, गोदावरी और नर्मदा आदि जो-जो मुक्तिदायिनी नदियाँ हैं, वे सब-की-सब शालग्राम-शिलाके जलमें निवास करती हैं। शालग्राम-शिलाके लिङ्गका एक बार भी पूजन करनेपर ज्ञानसे रहित मनुष्य भी मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। जहाँ शालग्राम-शिलारूपी भगवान् केशव विराजमान रहते हैं, वहाँ सम्पूर्ण देवता, यज्ञ एवं चौदह भुवनोंके प्राणी वर्तमान रहते हैं। जो मनुष्य शालग्राम-शिलाके निकट श्राद्ध करता है, उसके पितर सौ कल्पोंतक द्युलोकमें तृप्त रहते हैं। जहाँ शालग्राम-शिला रहती है, वहाँकी तीन योजन भूमि तीर्थस्वरूप मानी गयी है। वहाँ किये हुए दान और होम सब कोटिगुना अधिक फल देते हैं। जो एक बूँदके बराबर भी शालग्राम-शिलाका जल पी लेता है, उसे फिर माताके स्तनोंका दूध नहीं पीना पड़ता; वह मनुष्य भगवान् विष्णुको प्राप्त कर लेता है। जो शालग्राम-शिलाके चक्रका उत्तम दान देता है, उसने पर्वत, वन और काननोंसहित मानो समस्त भूमण्डलका दान कर दिया। जो मनुष्य शालग्राम-शिलाको बेचकर उसकी कीमत उगाहता है, वह विक्रेता, उसकी बिक्रीका अनुमोदन करनेवाला तथा उसकी परख करते समय अधिक प्रसन्न होनेवाला—ये सभी नरकमें जाते हैं और जबतक

* एतावतालमघनिर्हरणाय पुंसां
संकीर्तनं भगवतो गुणकर्मनाम्नाम्।
विक्रुश्य पुत्रमघवान् यदजामिलोऽपि
नारायणेति म्रियमाण इयाय मुक्तिम्॥
(३१।१०९)

सम्पूर्ण भूतोंका प्रलय नहीं हो जाता, तबतक वहीं बने रहते हैं।

वैश्य! अधिक कहनेसे क्या लाभ? पापसे डरनेवाले मनुष्यको सदा भगवान् वासुदेवका स्मरण करना चाहिये। श्रीहरिका स्मरण समस्त पापोंको हरनेवाला है। मनुष्य वनमें रहकर अपनी इन्द्रियोंका संयम करते हुए घोर तपस्या करके जिस फलको प्राप्त करता है, वह भगवान् विष्णुको नमस्कार करनेसे ही मिल जाता है।* मनुष्य मोहके वशीभूत होकर अनेकों पाप करके भी यदि सर्वपापापहारी श्रीहरिके चरणोंमें मस्तक झुकाता है तो वह नरकमें नहीं जाता। भगवान् विष्णुके नामोंका संकीर्तन करनेसे मनुष्य भूमण्डलके समस्त तीर्थों और पुण्यस्थानोंके सेवनका पुण्य प्राप्त कर लेता है। जो शार्ङ्गधनुष धारण करनेवाले भगवान् विष्णुकी शरणमें जा चुके हैं, वे शरणागत मनुष्य न तो यमराजके लोकमें जाते हैं और न नरकमें ही निवास करते हैं।

वैश्य! जो वैष्णव पुरुष शिवकी निन्दा करता है, वह विष्णुके लोकमें नहीं जाता, उसे महान् नरकमें गिरना पड़ता है। जो मनुष्य प्रसङ्गवश किसी भी एकादशीको उपवास कर लेता है, वह यमयातनामें नहीं पड़ता—यह बात हमने महर्षि लोमशके मुखसे सुनी है। एकादशीसे बढ़कर पावन तीनों लोकोंमें दूसरा कुछ भी नहीं है। एकादशी और द्वादशी—दोनों ही भगवान् विष्णुके दिन हैं और समस्त पातकोंका नाश करनेवाले हैं। इस शरीरमें तभीतक पाप निवास करते हैं, जबतक प्राणी भगवान् विष्णुके शुभ दिन एकादशीको उपवास नहीं करता। हजार अश्वमेध और सौ राजसूय यज्ञ एकादशीके उपवासकी सोलहवीं कलाके बराबर भी नहीं हैं। मनुष्य अपनी ग्यारहों इन्द्रियोंसे जो पाप किये होता है, वह सब एकादशीके अनुष्ठानसे नष्ट हो जाता है। एकादशी व्रतके समान दूसरा कोई पुण्य इस संसारमें नहीं है। यह एकादशी शरीरको नीरोग बनानेवाली और स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाली है। वैश्य! एकादशीको दिनमें उपवास और रातमें जागरण करके मनुष्य पितृकुल, मातृकुल तथा पत्नीकुलकी दस-दस पूर्व पीढ़ियोंका निश्चय ही उद्धार कर देता है।

मन, वाणी, शरीर तथा क्रियाद्वारा किसी भी प्राणीके साथ द्रोह न करना, इन्द्रियोंको रोकना, दान देना, श्रीहरिकी सेवा करना तथा वर्णों और आश्रमोंके कर्तव्योंका सदा विधिपूर्वक पालन करना—ये दिव्य गतिको प्राप्त करानेवाले कर्म हैं। वैश्य! स्वर्गार्थी मनुष्यको अपने तप और दानका अपने ही मुँहसे बखान नहीं करना चाहिये, जैसी शक्ति हो उसके अनुसार अपने हितकी इच्छासे दान अवश्य करते रहना चाहिये। दरिद्र पुरुषको भी पत्र, फल, मूल तथा जल आदि देकर अपना प्रत्येक दिन सफल बनाना चाहिये। अधिक क्या कहा जाय मनुष्य सदा और सर्वत्र अधर्म करनेसे दुर्गतिको प्राप्त होते हैं और धर्मसे स्वर्गको जाते हैं। इसलिये बाल्यावस्थासे ही धर्मका संचय करना उचित है। वैश्य! ये सब बातें हमने तुम्हें बता दीं, अब और क्या सुनना चाहते हो?

वैश्य बोला—सौम्य! आपकी बात सुनकर मेरा चित्त प्रसन्न हो गया। गङ्गाजीका जल और सत्पुरुषोंका वचन—ये शीघ्र ही पाप नष्ट करनेवाले हैं। दूसरोंका उपकार करना और प्रिय वचन बोलना—यह साधु पुरुषोंका स्वाभाविक गुण है। अतः देवदूत! आप कृपा करके मुझे यह बताइये कि मेरे भाईका नरकसे तत्काल उद्धार कैसे हो सकता है?

देवदूतने कहा—वैश्य! तुमने पूर्ववर्ती आठवें जन्ममें जिस पुण्यका संचय किया है, वह सब अपने भाईको दे डालो। यदि तुम चाहते हो कि उसे भी स्वर्गकी प्राप्ति हो जाय तो तुम्हें यही करना चाहिये।

विकुण्डलने पूछा—देवदूत! वह पुण्य क्या है? कैसे हुआ? मेरे प्राचीन जन्मका परिचय क्या है? ये सब बातें बताइये, फिर मैं शीघ्र ही वह पुण्य भाईको अर्पण कर दूँगा।

देवदूतने कहा—पूर्वकालकी बात है, पुण्यमय मधुवनमें एक ऋषि रहते थे, जिनका नाम शाकुनि था। वे तपस्या और स्वाध्यायमें लगे रहते थे और तेजमें ब्रह्माजीके समान थे। उनके रेवती नामकी पत्नीके गर्भसे नौ पुत्र उत्पन्न हुए, जो नवग्रहोंके समान शक्तिशाली थे। उनमेंसे ध्रुव, शाली, बुध, तार और ज्योतिष्मान्—ये पाँच पुत्र अग्निहोत्री हुए। उनका मन गृहस्थधर्मके अनुष्ठानमें लगता था। शेष

* बहुनोक्तेन किं वैश्य कर्तव्यं पापभीरुणा।
स्मरणं वासुदेवस्य सर्वपापहरं हरेः॥
तपस्तप्त्वा नरो घोरमरण्ये नियतेन्द्रियः।
यत्फलं समवाप्नोति तन्नत्वा गरुडध्वजम्॥
(३१। १४८-१४९)

चार ब्राह्मण-कुमार—जो निर्मोह, जितकाम, ध्यानकाष्ठ और गुणाधिकके नामसे प्रसिद्ध थे—घरकी ओरसे विरक्त हो गये। वे सब सम्पूर्ण भोगोंसे निःस्पृह हो चतुर्थ आश्रम-संन्यासमें प्रविष्ट हुए। वे सब-के-सब आसक्ति और परिग्रहसे शून्य थे। उनमें आकाङ्क्षा और आरम्भका अभाव था। वे मिट्टीके ढेले, पत्थर और सुवर्णमें समान भाव रखते थे। जिस किसी भी वस्तुसे अपना शरीर ढक लेते थे। जो कुछ भी खाकर पेट भर लेते थे। जहाँ साँझ हुई, वहीं ठहर जाते थे। वे नित्य भगवान्‌का ध्यान किया करते थे। उन्होंने निद्रा और आहारको जीत लिया था। वे वात और शीतका कष्ट सहन करनेमें पूर्ण समर्थ थे तथा समस्त चराचर जगत्‌को विष्णुरूप देखते हुए लीलापूर्वक पृथ्वीपर विचरते रहते थे। उन्होंने परस्पर मौनव्रत धारण कर लिया था। वे स्वल्पमात्रामें भी कभी किसी क्रियाका अनुष्ठान नहीं करते थे। उन्हें तत्त्वज्ञानका साक्षात्कार हो गया था। उनके सारे संशय दूर हो चुके थे और वे चिन्मय तत्त्वके विचारमें अत्यन्त प्रवीण थे।

वैश्य! उन दिनों तुम अपने पूर्ववर्ती आठवें जन्ममें एक गृहस्थ ब्राह्मणके रूपमें थे। तुम्हारा निवास मध्यप्रदेशमें था। एक दिन उपर्युक्त चारों ब्राह्मण संन्यासी किसी प्रकार घूमते-घामते मध्याह्नके समय तुम्हारे घरपर आये। उस समय उन्हें भूख और प्यास सता रही थी। बलिवैश्वदेवके पश्चात् तुमने उन्हें अपने घरके आँगनमें उपस्थित देखा। उनपर दृष्टि पड़ते ही तुम्हारे नेत्रोंमें आनन्दके आँसू छलक आये। तुम्हारी वाणी गद्गद हो गयी, तुमने बड़े वेगसे दौड़कर उनके चरणोंमें साष्टाङ्ग प्रणाम किया। फिर बड़े आदरभावके साथ दोनों हाथ जोड़कर मधुर वाणीसे उन सबका अभिनन्दन करते हुए कहा—'महानुभाव! आज मेरा जन्म और जीवन सफल हो गया। आज मुझपर भगवान् विष्णु प्रसन्न हैं। मैं सनाथ और पवित्र हो गया। आज मैं, मेरा घर तथा मेरे सभी कुटुम्बी धन्य हो गये। आज मेरे पितर धन्य हैं, मेरी गौएँ धन्य हैं, मेरा शास्त्राध्ययन तथा धन भी धन्य है; क्योंकि इस समय आपलोगोंके इन चरणोंका दर्शन हुआ, जो तीनों तापोंका विनाश करनेवाला है। भगवान् विष्णुकी भाँति आपलोगोंका दर्शन भी किसी धन्य व्यक्तिको ही होता है।'

इस प्रकार उनका पूजन करके तुमने अतिथियोंके पाँव पखारे और चरणोदक लेकर बड़ी श्रद्धाके साथ अपने मस्तकपर चढ़ाया। फिर चन्दन, फूल, अक्षत, धूप और दीप आदिके द्वारा भक्ति-भावके साथ उन यतियोंकी पूजा करके उन्हें उत्तम अन्न भोजन कराया। वे चारों परमहंस तृप्त होकर रातको तुम्हारे भवनमें विश्राम और सूर्य आदिके भी प्रकाशक परब्रह्मका ध्यान करते रहे। उनका आतिथ्य-सत्कार करनेसे जो पुण्य तुम्हें प्राप्त हुआ है, उसका एक हजार मुखोंसे भी वर्णन करनेमें मैं असमर्थ हूँ। भूतोंमें प्राणधारी श्रेष्ठ हैं; उनमें भी बुद्धिजीवी, बुद्धिजीवियोंमें भी मनुष्य और मनुष्योंमें भी ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं। ब्राह्मणोंमें विद्वान्, विद्वानोंमें पवित्र बुद्धिवाले पुरुष, उनमें भी कर्म करनेवाले व्यक्ति तथा उनमें भी ब्रह्मज्ञानी पुरुष सबसे श्रेष्ठ हैं। इस प्रकार ब्रह्मज्ञानी तीनों लोकोंमें सर्वश्रेष्ठ माने गये हैं, अतः सबके परमपूज्य हैं। उनका सङ्ग महान् पातकोंका नाश करनेवाला है। यदि कभी किसी गृहस्थके घरपर ब्रह्मज्ञानी महात्मा आकर संतोषपूर्वक विश्राम करें तो वे उसके जन्म-भरके पापोंका अपने दृष्टिपात मात्रसे नाश कर डालते हैं।* *एक रात गृहस्थके घरपर विश्राम करनेवाला संन्यासी उसके* जीवनभरके सारे पापोंको भस्म कर देता है। वैश्य! वही पुण्य तुम अपने भाईको दे दो, जिसके द्वारा उसका नरकसे उद्धार हो जाय।

देवदूतकी यह बात सुनकर विकुण्डलने तत्काल ही वह पुण्य अपने भाईको दे दिया। तब उसका भाई भी प्रसन्न होकर नरकसे निकल आया। फिर तो देवताओंने उन दोनोंपर पुष्पोंकी वृष्टि करते हुए उनका पूजन किया तथा वे

* भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां मतिजीविनः ॥
मतिमत्सु नराः श्रेष्ठा नरेषु ब्रह्मजातयः ।
ब्राह्मणेषु च विद्वांसो विद्वत्सु कृतबुद्धयः ॥
कृतबुद्धिषु कर्तारः कर्तृषु ब्रह्मवेदिनः ।
अत एव सुपूज्यास्ते तस्माच्छ्रेष्ठा जगत्त्रये ॥
सत्संगतिर्विशां श्रेष्ठ महापातकनाशिनी ॥
विश्रान्ता गृहिणो गेहे संतुष्टा ब्रह्मवेदिनः ।
आजन्मसंचितं पापं नाशयन्तीक्षणेन वै ॥
(३१ । २००—२०४)

दोनों भाई स्वर्गलोकमें चले गये। तदनन्तर दोनोंसे सम्मानित होकर देवदूत यमलोकमें लौट आया।

नारदजी कहते हैं—राजन्! देवदूतका वचन वेद वाक्यके समान था, उसमें सम्पूर्ण लोकका ज्ञान भरा था, उसे वैश्यपुत्र विकुण्डलने सुना और अपने किये हुए पुण्यका दान देकर अपने भाईको भी तार दिया। तत्पश्चात् वह भाईके साथ ही देवराज इन्द्रके श्रेष्ठ लोकमें गया। जो इस इतिहासको पढ़ेगा या सुनेगा, वह शोक रहित होकर सहस्र गोदानका फल प्राप्त करेगा।



सुगन्ध आदि तीर्थोंकी महिमा तथा काशीपुरीका माहात्म्य



नारदजी कहते हैं—राजेन्द्र! तदनन्तर तीर्थयात्री पुरुष विश्वविख्यात सुगन्ध नामक तीर्थकी यात्रा करे। वहाँ सब पापोंसे चित्त शुद्ध हो जानेपर वह ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित होता है। तत्पश्चात् रुद्रावर्त तीर्थमें जाय। वहाँ स्नान करके मनुष्य स्वर्गलोकमें सम्मानित होता है। नरश्रेष्ठ! गङ्गा और सरस्वतीके सङ्गममें स्नान करनेवाला पुरुष अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त करता है। वहाँ कर्णह्रदमें स्नान और भगवान् शङ्करकी पूजा करके मनुष्य कभी दुर्गतिमें नहीं पड़ता। इसके बाद क्रमशः कुब्जाम्रक तीर्थकी प्रस्थान करना चाहिये। वहाँ स्नान करनेसे सहस्र गोदानका फल मिलता है और मनुष्य स्वर्गलोकमें जाता है। राजन्! इसके बाद अरुन्धती वटमें जाना चाहिये। वहाँ समुद्रके जलमें स्नान करके तीन राततक उपवास करनेवाला मनुष्य सहस्र गोदानोंका फल पाता और स्वर्गलोकको जाता है। तदनन्तर, ब्रह्मावर्त तीर्थकी यात्रा करे। वहाँ ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए एकाग्र चित्त हो स्नान करनेसे मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल पाता और स्वर्गलोकमें जाता है। उसके बाद यमुनाप्रभव नामक तीर्थमें जाय। वहाँ यमुनाजलमें स्नान करनेसे मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल पाकर ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित होता है। दर्वीसंक्रमण नामक तीर्थ तीनों लोकोंमें विख्यात है। वहाँ पहुँचकर स्नान करनेसे अश्वमेध यज्ञके फल और स्वर्गलोक की प्राप्ति होती है। भृगुतुङ्ग तीर्थमें जानेसे भी अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है। वीरप्रमोक्ष नामक तीर्थकी यात्रा करके मनुष्य सब पापोंसे छुटकारा पा जाता है। कृत्तिका और मघाके दुर्लभ तीर्थमें जाकर पुण्य करनेवाला पुरुष अग्निष्टोम और अतिरात्र यज्ञोंका फल पाता है।

तत्पश्चात् सन्ध्या-तीर्थमें जाकर जो परम उत्तम विद्या तीर्थमें स्नान करता है, वह सम्पूर्ण विद्याओंमें पारगत होता है। महाश्रम तीर्थ सब पापोंसे छुटकारा दिलानेवाला है। वहाँ रात्रिमें निवास करना चाहिये। जो मनुष्य वहाँ एक समय भी उपवास करता है, उसे उत्तम लोकोंमें निवास प्राप्त होता है। जो तीन दिनपर एक समय उपवास करते हुए एक मासतक महाश्रम तीर्थमें निवास करता है, वह स्वयं तो भवसागरके पार हो ही जाता है, अपने आगे-पीछेकी दस दस पीढ़ियोंको भी तार देता है। परम पवित्र देववन्दित महेश्वरका दर्शन करके मनुष्य सब कर्तव्योंसे उऋण हो जाता है। उसके बाद पितामहद्वारा सेवित वेतसिका तीर्थके लिये प्रस्थान करे। वहाँ जानेसे मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल पाता और परमगतिको प्राप्त होता है।

तत्पश्चात् ब्राह्मणिका तीर्थमें जाकर ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए एकाग्रचित्त हो स्नानादि करनेसे मनुष्य कमलके समान रंगवाले विमानपर बैठकर ब्रह्मलोकको जाता है। उसके बाद द्विजोंद्वारा सेवित पुण्यमय नैमिष तीर्थकी यात्रा करे। वहाँ ब्रह्माजी देवताओंके साथ सदा निवास करते हैं। नैमिष तीर्थमें जानेकी इच्छा करनेवालेका ही आधा पाप नष्ट हो जाता है तथा उसमें प्रविष्ट हुआ मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। भारत! धीर पुरुषको उचित है कि वह तीर्थ-सेवनमें तत्पर हो एक मासतक नैमिषारण्यमें निवास करे। भूमण्डलमें जितने तीर्थ हैं, वे सभी नैमिषारण्यमें विद्यमान रहते हैं। जो वहाँ स्नान करके नियमपूर्वक रहते हुए नियमानुकूल आहार ग्रहण करता है, वह मानव राजसूय यज्ञका फल पाता है।

इतना ही नहीं, वह अपने कुलकी सात पीढ़ियोंतकको पवित्र कर देता है।

गङ्गोद्भेद तीर्थमें जाकर तीन राततक उपवास करनेवाला मनुष्य वाजपेय यज्ञका फल पाता और सदाके लिये ब्रह्मस्वरूप हो जाता है। सरस्वतीके तटपर जाकर देवता और पितरोंका तर्पण करना चाहिये। ऐसा करनेवाला पुरुष सारस्वत-लोकोंमें जाकर आनन्द भोगता है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। तत्पश्चात् बाहुदा नदीकी यात्रा करे। वहाँ एक रात निवास करनेवाला मनुष्य स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है और उसे देवसत्र नामक यज्ञका फल मिलता है। इसके बाद सरयू नदीके उत्तम तीर्थ गोप्रतार (गुप्तार) घाटपर जाना चाहिये। जो मनुष्य उस तीर्थमें स्नान करता है, वह सब पापोंसे शुद्ध होकर स्वर्गलोकमें पूजित होता है। कुरुनन्दन ! गोमती नदीके रामतीर्थमें स्नान करके मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल पाता और अपने कुलका उद्धार कर देता है। वहीं शतसाहस्रक नामका तीर्थ है; जो वहाँ स्नान करके नियमसे रहता और नियमानुकूल भोजन करता है, उसे सहस्र गोदानोंका पुण्य-फल प्राप्त होता है। धर्मज्ञ युधिष्ठिर ! वहाँसे ऊर्ध्वस्थान नामक उत्तम तीर्थमें जाना चाहिये। वहाँ कोटितीर्थमें स्नान करके कार्तिकेयजीका पूजन करनेसे मनुष्यको सहस्र गोदानोंका फल मिलता है तथा वह तेजस्वी होता है। उसके बाद काशीमें जाकर भगवान् शंकरकी पूजा और कपिलाकुण्डमें स्नान करनेसे राजसूय यज्ञका फल प्राप्त होता है।

युधिष्ठिर बोले—मुने ! आपने काशीका माहात्म्य बहुत थोड़ेमें बताया है, उसे कुछ विस्तारके साथ कहिये।

नारदजीने कहा—राजन् ! मैं इस विषयमें एक संवाद सुनाऊँगा, जो वाराणसीके गुणोंसे सम्बन्ध रखनेवाला है। उस संवादके श्रवण मात्रसे मनुष्य ब्रह्महत्याके पापसे छुटकारा पा जाता है। पूर्वकालकी बात है, भगवान् शङ्कर मेरुगिरिके शिखरपर विराजमान थे तथा पार्वती देवी भी वहीं दिव्य सिंहासनपर बैठी थीं। उन्होंने महादेवजीसे पूछा—'भक्तोंके दुःख दूर करनेवाले देवाधिदेव ! मनुष्य शीघ्र ही आपका दर्शन कैसे पा सकता है ? समस्त प्राणियोंके हितके लिये यह बात मुझे बताइये।'

भगवान् शिव बोले—देवि ! काशीपुरी मेरा परम गुह्यतम क्षेत्र है। वह सम्पूर्ण भूतोंको संसार-सागरसे पार उतारनेवाली है। वहाँ महात्मा पुरुष भक्तिपूर्वक मेरी भक्तिका आश्रय ले उत्तम नियमोंका पालन करते हुए निवास करते हैं। वह समस्त तीर्थों और सम्पूर्ण स्थानोंमें उत्तम है। इतना ही नहीं, अविमुक्त क्षेत्र मेरा परम ज्ञान है। वह समस्त ज्ञानोंमें उत्तम है। देवि ! यह वाराणसी सम्पूर्ण गोपनीय स्थानोंमें श्रेष्ठ तथा मुझे अत्यन्त प्रिय है। मेरे भक्त वहाँ जाते तथा मुझमें ही प्रवेश करते हैं। वाराणसीमें किया हुआ दान, जप, होम, यज्ञ, तपस्या, ध्यान, अध्ययन और ज्ञान—सब अक्षय होता है। पहलेके हजारों जन्मोंमें जो पाप संचित किया गया हो, वह सब अविमुक्त क्षेत्रमें प्रवेश करते ही नष्ट हो जाता है। वरानने ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, वर्णसङ्कर, स्त्रीजाति, म्लेच्छ तथा अन्यान्य मिश्रित जातियोंके मनुष्य, चाण्डाल आदि, पापयोनिमें उत्पन्न जीव, कीड़े, चींटियाँ तथा अन्य पशु-पक्षी आदि जितने भी जीव हैं, वे सब समयानुसार अविमुक्त क्षेत्रमें मरनेपर मेरे अनुग्रहसे परम गतिको प्राप्त होते हैं। मोक्षको अत्यन्त दुर्लभ और संसारको अत्यन्त भयानक समझकर मनुष्यको काशीपुरीमें निवास करना चाहिये। जहाँ-तहाँ मरनेवालेको संसार-बन्धनसे छुड़ानेवाली सद्गति तपस्यासे भी मिलनी कठिन है। [किन्तु वाराणसीपुरीमें बिना तपस्याके ही ऐसी गति अनायास प्राप्त हो जाती है।] जो विद्वान् सैकड़ों विघ्नोंसे आहत होनेपर भी काशीपुरीमें निवास करता है, वह उस परम पदको प्राप्त होता है जहाँ जानेपर शोकसे पिण्ड छूट जाता है। काशीपुरीमें रहनेवाले जीव जन्म, मृत्यु और वृद्धावस्थासे रहित परमधामको प्राप्त होते हैं। उन्हें वही गति प्राप्त होती है, जो पुनः मृत्युके बन्धनमें न आनेवाले मोक्षाभिलाषी पुरुषोंको मिलती है तथा जिसे पाकर जीव कृतार्थ हो जाता है। अविमुक्त क्षेत्रमें जो उत्कृष्ट गति प्राप्त होती है वह अन्यत्र दान, तपस्या, यज्ञ और विद्यासे भी नहीं मिल सकती। जो चाण्डाल आदि घृणित जातियोंमें उत्पन्न हैं तथा जिनकी देह विशिष्ट पातकों और पापोंसे परिपूर्ण है, उन सबकी शुद्धिके लिये विद्वान् पुरुष अविमुक्त क्षेत्रको ही श्रेष्ठ औषध मानते हैं। अविमुक्त क्षेत्र परम ज्ञान है, अविमुक्त क्षेत्र परम पद है, अविमुक्त क्षेत्र परम तत्त्व है और

अविमुक्त क्षेत्र परम शिव—परम कल्याणमय है। जो मरणपर्यन्त रहनेका नियम लेकर अविमुक्त क्षेत्रमें निवास करते हैं, उन्हें अन्तमें मैं परमज्ञान एवं परमपद प्रदान करता हूँ। वाराणसीपुरीमें प्रवेश करके बहनेवाली त्रिपथगामिनी गङ्गा विशेषरूपसे सैकड़ों जन्मोंका पाप नष्ट कर देती हैं। अन्यत्र गङ्गाजीका स्नान, श्राद्ध, दान, तप, जप और व्रत सुलभ हैं; किन्तु वाराणसीपुरीमें रहते हुए इन सबका अवसर मिलना अत्यन्त दुर्लभ है। वाराणसीपुरीमें निवास करनेवाला मनुष्य जप, होम, दान एवं देवताओंका नित्यप्रति पूजन करनेका तथा निरन्तर वायु पीकर रहनेका फल प्राप्त कर लेता है। पापी, शठ और अधार्मिक मनुष्य भी यदि वाराणसीमें चला जाय तो वह अपने समूचे कुलको पवित्र कर देता है। जो वाराणसीपुरीमें मेरी पूजा और स्तुति करते हैं, वे सब पापोंसे मुक्त हो जाते हैं। देवदेवेश्वरि ! जो मेरे भक्तजन वाराणसीपुरीमें निवास करते हैं, वे एक ही जन्ममें परम मोक्षको पा जाते हैं। परमानन्दकी इच्छा रखनेवाले ज्ञाननिष्ठ पुरुषोंके लिये शास्त्रोंमें जो गति प्रसिद्ध है, वही अविमुक्त क्षेत्रमें मरनेवालेको प्राप्त हो जाती है। अविमुक्त क्षेत्रमें देहावसान होनेपर साक्षात् परमेश्वर मैं स्वयं ही जीवको तारक ब्रह्म (राम-नाम)का उपदेश करता हूँ। वरणा और असी नदियोंके बीचमें वाराणसीपुरी स्थित है तथा उस पुरीमें ही नित्य-विमुक्त तत्त्वकी स्थिति है। वाराणसीसे उत्तम दूसरा कोई स्थान न हुआ है और न होगा। जहाँ स्वयं भगवान् नारायण और देवेश्वर मैं विराजमान हूँ। देवि ! जो महापातकी हैं तथा जो उनसे भी बढ़कर पापाचारी हैं, वे सभी वाराणसीपुरीमें जानेसे परमगतिको प्राप्त होते हैं। इसलिये मुमुक्षु पुरुषको मृत्युपर्यन्त नियमपूर्वक वाराणसीपुरीमें निवास करना चाहिये। वहाँ मुझसे ज्ञान पाकर वह मुक्त हो जाता है।* किन्तु जिसका चित्त पापसे दूषित होगा, उसके सामने नाना प्रकारके विघ्न उपस्थित होंगे। अतः मन, वाणी और शरीरके द्वारा कभी पाप नहीं करना चाहिये।

नारदजी कहते हैं—*राजन् !* जैसे देवताओंमें पुरुषोत्तम नारायण श्रेष्ठ हैं, जिस प्रकार ईश्वरोंमें महादेवजी श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार समस्त तीर्थस्थानोंमें यह काशीपुरी उत्तम है। जो लोग सदा इस पुरीका स्मरण और नामोच्चारण करते हैं, उनका इस जन्म और पूर्वजन्मका भी सारा पातक तत्काल नष्ट हो जाता है; इसलिये योगी हो या योगरहित, महान् पुण्यात्मा हो अथवा पापी—प्रत्येक मनुष्यको पूर्ण प्रयत्न करके वाराणसीपुरीमें निवास करना चाहिये।

पिशाचमोचन कुण्ड एवं कपर्दीश्वरका माहात्म्य—पिशाच तथा शङ्कुकर्ण मुनिके मुक्त होनेकी कथा और गया आदि तीर्थोंकी महिमा

नारदजी कहते हैं—युधिष्ठिर ! वाराणसीपुरीमें कपर्दीश्वरके नामसे प्रसिद्ध एक शिवलिङ्ग है, जो अविनाशी माना गया है। वहाँ स्नान करके पितरोंका विधिवत् तर्पण करनेसे मनुष्य समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है तथा भोग और मोक्ष प्राप्त कर लेता है। काशीपुरीमें निवास करनेवाले पुरुषोंके काम, क्रोध आदि दोष तथा सम्पूर्ण विघ्न कपर्दीश्वरके पूजनसे नष्ट हो जाते हैं। इसलिये परम उत्तम कपर्दीश्वरका सदैव दर्शन करना चाहिये। यत्नपूर्वक उनका पूजन तथा वेदोक्त

* यत्र साक्षान्महादेवो देहान्ते स्वयमीश्वरः। व्याचष्टे तारकं ब्रह्म तत्रैव ह्यविमुक्तके॥
वरणायास्तथा चास्या मध्ये वाराणसी पुरी। तत्रैव संस्थितं तत्त्वं नित्यमेवं विमुक्तकम्॥
वाराणस्याः परं स्थानं न भूतं न भविष्यति। यत्र नारायणो देवो महादेवो दिवीश्वरः॥
महापातकिनो देवि ये तेभ्यः पापकृत्तमाः। वाराणसीं समासाद्य ते यान्ति परमां गतिम्॥
तस्मान्मुमुक्षुर्नियतो वसेद्वै मरणान्तकम्। वाराणस्यां महादेवाज्ज्ञानं लब्ध्वा विमुच्यते॥
(३३। ४६, ४९, ५०, ५२–५३)

स्तोत्रोंद्वारा उनका स्तवन भी करना चाहिये। कपर्दीश्वरके स्थानमें *नियमपूर्वक ध्यान लगानेवाले शान्तचित्त योगियोंको छः* मासमें ही योगसिद्धि प्राप्त होती है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। पिशाचमोचन कुण्डमें नहाकर कपर्दीश्वरके पूजनसे मनुष्यके ब्रह्महत्या आदि पाप नष्ट हो जाते हैं।

पूर्वकालकी बात है, कपर्दीश्वर क्षेत्रमें उत्तम व्रतका पालन करनेवाले एक तपस्वी ब्राह्मण रहते थे। उनका नाम था—शङ्कुकर्ण। वे प्रतिदिन भगवान् शङ्करका पूजन, रुद्रका पाठ तथा निरन्तर ब्रह्मस्वरूप प्रणवका जप करते थे। उनका चित्त योगमें लगा हुआ था। वे मरणपर्यन्त काशीमें रहनेका नियम लेकर पुष्प, धूप आदि उपचार, स्तोत्र, नमस्कार और परिक्रमा आदिके द्वारा भगवान् कपर्दीश्वरकी आराधना करते थे। एक दिन उन्होंने देखा, एक भूखा प्रेत सामने आकर खड़ा है। उसे देख मुनिश्रेष्ठ शङ्कुकर्णको बड़ी दया आयी। उन्होंने पूछा—'तुम कौन हो? और किस देशसे यहाँ आये हो?' पिशाच भूखसे पीड़ित हो रहा था। उसने शङ्कुकर्णसे कहा—'मुने! मैं पूर्वजन्ममें धन-धान्यसे सम्पन्न ब्राह्मण था। मेरा घर पुत्र-पौत्रादिसे भरा था। किन्तु मैंने केवल कुटुम्बके भरण-पोषणमें आसक्त रहनेके कारण कभी देवताओं, गौओं तथा अतिथियोंका पूजन नहीं किया। कभी थोड़ा बहुत भी पुण्यका कार्य नहीं किया। अतः इस समय भूख-प्याससे व्याकुल होनेके कारण मैं हिताहितका ज्ञान खो बैठा हूँ। प्रभो! यदि आप मेरे उद्धारका कोई उपाय जानते हों तो कीजिये। आपको नमस्कार है। मैं आपकी शरणमें आया हूँ।'

शङ्कुकर्णने कहा—तुम शीघ्र ही एकाग्रचित्त होकर इस कुण्डमें स्नान करो, इससे शीघ्र ही इस घृणित योनिसे छुटकारा पा जाओगे।

दयालु मुनिके इस प्रकार कहनेपर पिशाचने त्रिनेत्रधारी देववर भगवान् कपर्दीश्वरका स्मरण किया और चित्तको एकाग्र करके उस कुण्डमें गोता लगाया। मुनिके समीप गोता लगाते ही उसने पिशाचका शरीर त्याग दिया। भगवान् शिवकी कृपासे उसे तत्काल बोध प्राप्त हुआ और मुनीश्वरोंका समुदाय उसकी स्तुति करने लगा। तत्पश्चात् जहाँ भगवान् शङ्कर विराजते हैं, उस त्रयीमय श्रेष्ठ धाममें वह प्रवेश कर गया। पिशाचको इस प्रकार मुक्त हुआ देख मुनिको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने मन-ही-मन भगवान् महेश्वरका चिन्तन करके कपर्दीश्वरको प्रणाम किया तथा उनकी इस प्रकार स्तुति करने लगे—'भगवन्! आप जटा-जूट धारण करनेके कारण कपर्दी कहलाते हैं; आप परात्पर, सबके रक्षक, एक—अद्वितीय, पुराण-पुरुष, योगेश्वर, ईश्वर, आदित्य और अग्निरूप तथा कपिल वर्णके वृषभ नन्दीश्वरपर आरूढ़ हैं; मैं आपकी शरणमें आया हूँ। आप सबके हृदयमें स्थित सारभूत ब्रह्म हैं, हिरण्मय पुरुष हैं, योगी हैं तथा सबके आदि और अन्त हैं। आप 'रु'—दुःखको दूर करनेवाले हैं, अतः आपको रुद्र कहते हैं; आप आकाशमें व्यापकरूपसे स्थित, महामुनि, ब्रह्मस्वरूप एवं परम पवित्र हैं; मैं आपकी शरणमें आया हूँ। आप सहस्रों चरण, सहस्रों नेत्र तथा सहस्रों मस्तकोंसे युक्त हैं; आपके सहस्रों रूप हैं, आप अन्धकारसे परे और वेदोंकी भी पहुँचके बाहर हैं, कल्याणोत्पादक होनेसे आपको 'शम्भु' कहते हैं, आप हिरण्यगर्भ आदि देवताओंके स्वामी तथा तीन नेत्रोंसे सुशोभित हैं; मैं आपको प्रणाम करता हूँ। जिनमें इस जगत्‌की उत्पत्ति और लय होते हैं, जिन शिवस्वरूप परमात्माने इस समस्त दृश्य-प्रपञ्चको व्याप्त कर रखा है तथा जो वेदोंकी सीमासे भी परे हैं, उन भगवान् शङ्करको प्रणाम करके मैं सदाके लिये उनकी शरणमें आ पड़ा हूँ। जो लिङ्गरहित (किसीकी पहचानमें न आनेवाले), आलोकशून्य (जिन्हें कोई प्रकाशित नहीं कर सकता—जो स्वयं प्रकाश हैं), स्वयंप्रभु, चेतनाके स्वामी, एकरूप तथा ब्रह्माजीसे भी उत्कृष्ट परमेश्वर हैं; जिनके सिवा दूसरी कोई वस्तु है ही नहीं तथा जो वेदसे भी परे हैं, उन्हीं आप भगवान् कपर्दीश्वरको मैं नमस्कार करता हूँ। सबीज समाधिका त्याग करके निर्बीज समाधिको सिद्ध कर परमात्मरूप हुए योगीजन जिनका साक्षात्कार करते हैं और जो वेदसे भी परे हैं, वह आपका ही स्वरूप है; मैं आपको सदा प्रणाम करता हूँ। जहाँ नाम आदि विशेषणोंकी कल्पना नहीं है, जिनका स्वरूप इन चर्म-चक्षुओंका विषय नहीं होता तथा जो स्वयम्भू—कारणहीन तथा वेदसे परे हैं, उन्हीं आप भगवान् शिवकी मैं शरणमें हूँ और सदा आपको प्रणाम करता हूँ। जो

देहसे रहित, ब्रह्म (व्यापक), विज्ञानमय, भेदशून्य और एक—अद्वितीय है, तथापि वेदवादमें आसक्त मनुष्य जिसमें अनेकता देखते हैं, उस आपके वेदातीत स्वरूपको मैं नित्य प्रणाम करता हूँ। जिससे प्रकृतिकी उत्पत्ति हुई है, स्वयं पुराणपुरुष आप जिसे तेजके रूपमें धारण करते हैं, जिसे देवगण सदा नमस्कार करते हैं तथा जो आपकी ज्योतिमें सन्निहित है, उस आपके स्वरूपभूत बृहत् कालको मैं नमस्कार करता हूँ। मैं सदाके लिये कार्त्तिकेयके स्वामीकी शरण जाता हूँ, स्थाणुका आश्रय लेता हूँ, कैलास पर्वतपर शयन करनेवाले पुराणपुरुष शिवकी शरणमें पड़ा हूँ। भगवन्! आप कष्ट हरनेके कारण 'हर' कहलाते हैं, आपके मस्तकमें चन्द्रमाका मुकुट शोभा पा रहा है तथा आप पिनाक नामसे प्रसिद्ध धनुष धारण करनेवाले हैं, मैं आपकी शरण ग्रहण करता हूँ।*

इस प्रकार भगवान् कपर्दीकी स्तुति करके शङ्कुकर्ण प्रणवका उच्चारण करते हुए पृथ्वीपर दण्डकी भाँति पड़ गये। उसी समय शिवस्वरूप उत्कृष्ट लिङ्गका प्रादुर्भाव हुआ, जो ज्ञानमय तथा अनन्त आनन्दस्वरूप था। आगकी भाँति उससे करोड़ों लपटें निकल रही थीं। महात्मा शङ्कुकर्ण मुक्त होकर सर्वव्यापी निर्मल शिवस्वरूप हो गये और उस विमल लिङ्गमें समा गये। राजन्! यह मैंने तुम्हें कपर्दीका गूढ माहात्म्य बतलाया है। जो प्रतिदिन इस पापनाशिनी कथाका श्रवण करता है, वह निष्पाप एवं शुद्धचित्त होकर भगवान् शिवके समीप जाता है। जो प्रातःकाल और मध्याह्नके समय शुद्ध होकर सदा ब्रह्मपार नामक इस महास्तोत्रका पाठ करता है, उसे परम योगकी प्राप्ति होती है।

तदनन्तर गयामें जाकर ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए एकाग्रचित्त होकर स्नान करे। भारत! वहाँ जाने मात्रसे मनुष्यको अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है। वहाँ अक्षयवट नामका वटवृक्ष है, जो तीनों लोकोंमें विख्यात है। राजन्! वहाँ पितरोंके लिये जो पिण्डदान किया जाता है, वह अक्षय होता है। उसके बाद महानदीमें स्नान करके देवताओं और पितरोंका तर्पण करे। इससे मनुष्य अक्षय लोकोंको प्राप्त होता तथा अपने कुलका भी उद्धार कर देता है। तत्पश्चात् ब्रह्मारण्यमें स्थित ब्रह्मसरकी यात्रा करे। वहाँ जानेसे पुण्डरीक यज्ञका फल प्राप्त होता है।

राजेन्द्र! वहाँसे विश्वविख्यात धेनुक तीर्थको प्रस्थान करे और वहाँ एक रात रहकर तिलकी धेनु दान करे। ऐसा करनेवाला पुरुष सब पापोंसे शुद्ध हो निश्चय ही सोमलोकमें जाता है। वहाँ बछड़ेसहित कपिला गौके पदचिह्न आज भी देखे जाते हैं। उन पदचिह्नोंमेंसे जल लेकर आचमन करनेसे जो कुछ घोर पाप होता है, वह नष्ट हो जाता है। वहाँसे गृध्रवटकी यात्रा करे। वह शूलधारी भगवान् शङ्करका स्थान है। वहाँ शङ्करजीका दर्शन करके भस्म स्नान करे—सारे अङ्गोंमें भस्म लगाये। ऐसा करनेवाला यदि ब्राह्मण हो तो उसे बारह वर्षोंतक व्रत करनेका फल प्राप्त होता है और अन्य वर्णके मनुष्योंका

---

* कपर्दिनं त्वां परतः परस्ताद् गोप्तारमेकं पुरुषं पुराणम्।
व्रजामि योगेश्वरमीशितारमादित्यमग्निं कपिलाधिरूढम्॥
त्वां ब्रह्मसारं हृदि संनिविष्टं हिरण्मयं योगिनमादिमन्तम्।
व्रजामि रुद्रं शरणं दिविष्ठं महामुनिं ब्रह्ममयं पवित्रम्॥
सहस्रपादाक्षिशिरोऽभियुक्तं सहस्ररूपं तमसः परस्तात्।
तं ब्रह्मपारं प्रणमामि शम्भुं हिरण्यगर्भाधिपतिं त्रिनेत्रम्॥
यत्र प्रसूतिर्जगतो विनाशो येनावृतं सर्वमिदं शिवेन।
तं ब्रह्मपारं भगवन्तमीशं प्रणम्य नित्यं शरणं प्रपद्ये॥
अलिङ्गमालोकविहीनरूपं स्वयम्प्रभुं चित्पतिमेकरूपम्।
तं ब्रह्मपारं परमेश्वरं त्वां नमस्करिष्ये न यतोऽन्यदस्ति॥
यं योगिनस्त्यक्तसबीजयोगा लब्ध्वा समाधिं परमात्मभूताः।
पश्यन्ति देवं प्रणतोऽस्मि नित्यं तं ब्रह्मपारं भवतः स्वरूपम्॥
न यत्र नामादिविशेषक्लृप्तिर्न संदृशे तिष्ठति यत्स्वरूपम्।
तं ब्रह्मपारं प्रणतोऽस्मि नित्यं स्वयम्भुवं त्वां शरणं प्रपद्ये॥
यद् वेदवादाभिरता विदेहं सब्रह्मविज्ञानमभेदमेकम्।
पश्यन्त्यनेकं भवतः स्वरूपं तं ब्रह्मपारं प्रणतोऽस्मि नित्यम्॥
यतः प्रधानं पुरुषः पुराणो बिभर्ति तेजः प्रणमन्ति देवाः।
नमामि तं ज्योतिषि संनिविष्टं कालं बृहन्तं भवतः स्वरूपम्॥
व्रजामि नित्यं शरणं गुहेशं स्थाणुं प्रपद्ये गिरिशं पुराणम्।
शिवं प्रपद्ये हरमिन्दुमौलिं पिनाकिनं त्वां शरणं व्रजामि॥
(३५। ३४—४३)

सारा पाप नष्ट हो जाता है। तत्पश्चात् उदय-पर्वतपर जाय। वहाँ सावित्रीके चरणचिह्नोंका दर्शन होता है। उस तीर्थमें सन्ध्योपासन करना चाहिये। इससे एक ही समयमें बारह वर्षोंतक सन्ध्या करनेका फल प्राप्त होता है। तत्पश्चात् वहीं योनिद्वारके पास जाय। वह विख्यात स्थान है। उसके पास जाने मात्रसे मनुष्य गर्भवासके कष्टसे छुटकारा पा जाता है। राजन्! जो मनुष्य शुक्ल और कृष्ण दोनों पक्षोंमें गयामें निवास करता है, वह अपने कुलकी सात पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

राजन्! तत्पश्चात् तीर्थसेवी मनुष्य फल्गु नदीके किनारे जाय। वहाँ जानेसे वह अश्वमेध यज्ञका फल पाता और परम सिद्धिको प्राप्त होता है। तदनन्तर एकाग्रचित्त हो धर्मपृष्ठकी यात्रा करे, जहाँ धर्मका नित्य-निवास है। वहाँ धर्मके समीप जानेसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है। वहाँसे ब्रह्माजीके उत्तम तीर्थको प्रस्थान करे और वहाँ पहुँचकर व्रतका पालन करते हुए ब्रह्माजीकी पूजा करे। इससे राजसूय और अश्वमेध यज्ञोंका फल मिलता है। इसके बाद मणिनाग तीर्थमें जाय। वहाँ सहस्र गोदानोंका फल प्राप्त होता है। उस तीर्थमें एक रात निवास करनेपर सब पापोंसे छुटकारा मिल जाता है। इसके बाद ब्रह्मर्षि गौतमके वनमें जाय। वहाँ अहल्याकुण्डमें स्नान करनेसे परम गतिकी प्राप्ति होती है। उसके बाद राजर्षि जनकका कूप है; जो देवताओंद्वारा भी पूजित है। वहाँ स्नान करके मनुष्य विष्णुलोकको प्राप्त कर लेता है। वहाँसे विनाशन तीर्थको जाय, जो सब पापोंसे मुक्त करनेवाला है। वहाँकी यात्रासे मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल पाता और सोमलोकको जाता है। तत्पश्चात् सम्पूर्ण तीर्थोंके जलसे प्रकट हुई गण्डकी नदीकी यात्रा करे। वहाँ जानेसे मनुष्य वाजपेय यज्ञका फल पाता और सूर्यलोकको जाता है। धर्मज्ञ युधिष्ठिर! वहाँसे ध्रुवके तपोवनमें प्रवेश करे। महाभाग! वहाँ जानेसे मनुष्य यक्षलोकमें आनन्दका अनुभव करता है। तदनन्तर, सिद्धसेवित कर्मदा नदीकी यात्रा करे। वहाँ जानेवाला मनुष्य पुण्डरीक यज्ञका फल पाता और सोमलोकको जाता है।

राजा युधिष्ठिर! तत्पश्चात् माहेश्वरी धाराके समीप जाना चाहिये। वहाँ यात्रीको अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है और वह अपने कुलका उद्धार कर देता है। देव-पुष्करिणी तीर्थमें जाकर स्नानसे पवित्र हुआ मनुष्य कभी दुर्गतिमें नहीं पड़ता और वाजपेय यज्ञका फल पाता है। इसके बाद ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए एकाग्रचित्त हो माहेश्वर पदकी यात्रा करे। वहाँ स्नान करनेसे अश्वमेध यज्ञका फल मिलता है। भरतश्रेष्ठ! माहेश्वर पदमें एक करोड़ तीर्थ सुने गये हैं; उनमें स्नान करना चाहिये, इससे पुण्डरीक यज्ञके फल और विष्णुलोककी प्राप्ति होती है। तदनन्तर, भगवान् नारायणके स्थानको जाना चाहिये, जहाँ सदा ही भगवान् श्रीहरि निवास करते हैं। ब्रह्मा आदि देवता, तपोधन ऋषि, बारहों आदित्य, आठों वसु और ग्यारहों रुद्र वहाँ उपस्थित होकर भगवान् जनार्दनकी उपासना करते हैं। वहाँ अद्भुतकर्मा भगवान् विष्णुका विग्रह शालग्रामके नामसे विख्यात है, उस तीर्थमें अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले और भक्तोंको वर प्रदान करनेवाले त्रिलोकीपति श्रीविष्णुका दर्शन करनेसे मनुष्य विष्णुलोकको प्राप्त होता है। वहाँ एक कुआँ है, जो सब पापोंको हरनेवाला है। उसमें सदा चारों समुद्रोंके जल मौजूद रहते हैं। वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य कभी दुर्गतिमें नहीं पड़ता और अविनाशी एवं महान् देवता वरदायक विष्णुके पास पहुँचकर तीनों ऋणोंसे मुक्त हो चन्द्रमाकी भाँति शोभा पाता है। जातिस्मर तीर्थमें स्नान करके पवित्र एवं शुद्धचित्त हुआ मनुष्य पूर्वजन्मके स्मरणकी शक्ति प्राप्त करता है। वटेश्वरपुरमें जाकर उपवासपूर्वक भगवान् केशवकी पूजा करनेसे मनुष्य मनोवाञ्छित लोकोंको प्राप्त होता है। तत्पश्चात् सब पापोंसे छुटकारा दिलानेवाले वामन-तीर्थमें जाकर भगवान् श्रीहरिको प्रणाम करनेसे मनुष्य कभी दुर्गतिको नहीं प्राप्त होता। भरतका आश्रम भी सब पापोंको दूर करनेवाला है। वहाँ जाकर महापातकनाशिनी कौशिकी (कोसी) नदीका सेवन करना चाहिये। ऐसा करनेवाला मानव राजसूय यज्ञका फल पाता है।

तदनन्तर, परम उत्तम चम्पकारण्य (चंपारन) करे। वहाँ एक रात उपवास करनेसे मनुष्य

फल पाता है। तत्पश्चात् कन्यासंवेद्य नामक तीर्थमें जाकर नियमसे रहे और नियमानुकूल भोजन करे। इससे प्रजापति मनुके लोकोंकी प्राप्ति होती है। जो कन्यातीर्थमें थोड़ा सा भी दान करते हैं, उनका वह दान अक्षय होता है। निश्चीरा नामक तीर्थमें जानेसे मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल पाता और विष्णुलोकको जाता है। नरश्रेष्ठ! जो मनुष्य निश्चीराके सङ्गममें दान करते हैं, वे रोग शोकसे रहित ब्रह्मलोकमें जाते हैं। निश्चीरा-सङ्गमपर महर्षि वसिष्ठका आश्रम है। देवकूट तीर्थकी यात्रा करनेसे मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल पाता और अपने कुलका उद्धार कर देता है। वहाँसे कौशिक मुनिके कुण्डपर जाना चाहिये, जहाँ कुशिक गोत्रमें उत्पन्न महर्षि विश्वामित्रने परम सिद्धि प्राप्त की थी। भरतश्रेष्ठ! वहाँ धीर पुरुषको कौशिकी नदीके तटपर एक मासतक निवास करना चाहिये। एक ही मासमें वहाँ अश्वमेध यज्ञका पुण्य प्राप्त हो जाता है। कालिका-सङ्गम एवं कौशिकी तथा अरुणाके सङ्गममें स्नान करके तीन राततक उपवास करनेवाला विद्वान् सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। सकृन्नदी नामक तीर्थमें जानेसे द्विज कृतार्थ हो जाता है तथा सब पापोंसे शुद्ध हो स्वर्गलोकको प्राप्त होता है। मुनिजनसेवित औशनक तीर्थमें जाकर स्नान करना चाहिये, इससे सब पाप छूट जाते हैं।

तदनन्तर चम्पापुरीमें जाकर गङ्गाजीके तटपर तर्पण करना चाहिये। वहाँसे दण्डार्पणमें जाकर मनुष्य सहस्र गोदानोंका फल प्राप्त करता है। तदनन्तर, सन्ध्यामें जाकर सद्विद्य नामक उत्तम तीर्थमें स्नान करनेसे मनुष्य विद्वान् होता है। उसके बाद गङ्गा-सागर सङ्गममें स्नान करना चाहिये। इससे विद्वान्लोग दस अश्वमेध यज्ञोंके फलकी प्राप्ति बतलाते हैं। तत्पश्चात् पाप दूर करनेवाली वैतरणी नदीमें जाकर विरज तीर्थमें स्नान करे, इससे मनुष्य चन्द्रमाकी भाँति शोभा पाता है। प्रभाव क्षेत्रके भीतर कुल नामक तीर्थमें जाकर मनुष्य सब पापोंसे छूट जाता है तथा सहस्र गोदानोंका फल पाकर अपने कुलका भी उद्धार कर देता है। सोननदी और ज्योतिरथीके सङ्गमपर निवास करनेवाला पवित्र मनुष्य देवताओं और पितरोंका तर्पण करके अग्निष्टोम यज्ञका फल प्राप्त करता है। सोन और नर्मदाके उद्गम स्थानपर वंशगुल्म तीर्थमें आचमन करके मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त करता है। कोशलाके तटपर ऋषभतीर्थमें जाकर तीन रात उपवास करनेवाला मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल पाता है। कोशलाके किनारे कालतीर्थमें जाकर स्नान करे तो ग्यारह बैल दान करनेका पुण्य प्राप्त होता है। पुष्पवतीमें स्नान करके तीन रात उपवास करनेवाला मनुष्य सहस्र गोदानोंका फल पाता और अपने कुलका भी उद्धार कर देता है। तदनन्तर जहाँ परशुरामजी निवास करते हैं, उस महेन्द्र पर्वतपर जाकर रामतीर्थमें स्नान करनेसे मनुष्य अश्वमेध यज्ञका फल पाता है। वहीं मतङ्गका क्षेत्र है, जहाँ स्नान करनेसे सहस्र गोदानोंका फल मिलता है। उसके बाद श्रीपर्वतपर जाकर नदीके किनारे स्नान करे। वहाँ देवह्रदमें स्नान करनेसे मनुष्य पवित्र एवं शुद्धचित्त हो अश्वमेध यज्ञका फल पाता और परम सिद्धिको प्राप्त होता है। तदनन्तर, कावेरी नदीकी यात्रा करे। वहाँ स्नान करके मनुष्य सहस्र गोदानोंका फल पाता है। वहाँसे आगे समुद्रके तटवर्ती तीर्थमें, जिसे कन्यातीर्थ कहते हैं, जाकर स्नान करे। वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। तदनन्तर, समुद्र मध्यवर्ती गोकर्णतीर्थमें जा भगवान् शंकरकी पूजा करके तीन रात उपवास करनेवाला मनुष्य दस अश्वमेध यज्ञोंका फल पाता और गणपति-पदको प्राप्त होता है। बारह राततक वहाँ उपवास करनेवाला मनुष्य कृतार्थ हो जाता है—उसे कुछ भी पाना शेष नहीं रहता। उसी तीर्थमें गायत्री देवीका भी स्थान है, जहाँ तीन रात उपवास करनेवालेको सहस्र गोदानका फल मिलता है। तत्पश्चात् सदा सिद्ध पुरुषोंद्वारा सेवित गोदावरीकी यात्रा करनेसे मनुष्य गवामय यज्ञका फल पाता और वायुलोकको जाता है। वेणाके सङ्गममें स्नान करनेसे वाजपेय यज्ञका फल प्राप्त होता है और वरदा-सङ्गममें नहानेसे सहस्र गोदानका फल मिलता है।



श्रीहरिः

गीताप्रेस, गोरखपुरकी सुन्दर, सस्ती, धार्मिक पुस्तकें

श्रीमद्भगवद्गीता–[श्रीशांकरभाष्यका सरल हिन्दी-अनुवाद] इसमें मूल भाष्य तथा भाष्यके सामने ही अर्थ लिखकर पढ़ने और समझनेमें सुगमता कर दी गयी है। पृष्ठ ५२०, चित्र ३, मूल्य साधारण जिल्द २॥), बढ़िया कपड़ेकी जिल्द २॥।)

श्रीमद्भगवद्गीता–मूल, पदच्छेद, अन्वय, साधारण भाषाटीका, टिप्पणी, प्रधान और सूक्ष्म विषय एवं 'त्यागसे भगवत्प्राप्ति' लेखसहित, मोटा टाइप, कपड़ेकी जिल्द, पृष्ठ ५७६, चित्र ४, मूल्य ··· १।)

श्रीमद्भगवद्गीता–[मझली] प्रायः सभी विषय १।) वाली नं० २ के समान, विशेषता यह है कि श्लोकोंके सिरेपर भावार्थ छपा हुआ है, साइज और टाइप कुछ छोटे, पृष्ठ ४६८, मूल्य अजिल्द ॥≡), सजिल्द ··· ॥।=)

*__श्रीमद्भगवद्गीता__–(गुटका) १।) वालीगीताकी ठीक नकल, साइज २२×२९=३२ पेजी, पृष्ठ ५९२, सजिल्द मूल्य ··· ॥)

श्रीमद्भगवद्गीता–श्लोक, साधारण भाषाटीका, टिप्पणी, प्रधान विषय, मोटा टाइप, पृष्ठ ३१६, मूल्य ॥), सजिल्द ॥≡)

श्रीमद्भगवद्गीता–मूल, मोटे अक्षरवाली, सचित्र, मूल्य अजिल्द ।–), सजिल्द ··· ··· ।≡)

श्रीमद्भगवद्गीता–केवल भाषा, अक्षर मोटे हैं, १ चित्र, पृष्ठ १९२ मूल्य अजिल्द ।), सजिल्द ··· ।=)

श्रीमद्भगवद्गीता–पञ्चरत्न, मूल, सचित्र, मोटे टाइप, पृष्ठ ३२८, सजिल्द मूल्य ··· ··· ।)

श्रीमद्भगवद्गीता–विष्णुसहस्रनामसहित, मूल, छोटा टाइप, साइज २॥×३। इंच, सजिल्द मूल्य ··· ≡)

श्रीमद्भगवद्गीता–साधारण भाषाटीका, पाकेट साइज, सचित्र, पृष्ठ ३५२, मूल्य अजिल्द =)॥, सजिल्द ··· ≡)॥

गीता–मूल तावीजी, साइज २×२॥ इंच, पृष्ठ २९६, सजिल्द, मूल्य ··· ··· =)

गीता–विष्णुसहस्रनामसहित, पृष्ठ १२८, सचित्र, सजिल्द, मूल्य ··· ··· –)॥

गीता–मूल, महीन अक्षरोंमें, पृष्ठ-संख्या ६४, मूल्य ··· ··· ···)॥

श्रीरामचरितमानस–मूल, मझली साइज, पृष्ठ ६०८, सचित्र, सजिल्द मूल्य ··· ··· १)

श्रीरामचरितमानस–मूल, गुटका, पृष्ठ ६८८, चित्र २ रंगीन और ७ लाइन ब्लाक, सजिल्द मूल्य ··· ॥)

*__मानस-रहस्य__–चित्र रंगीन १, पृष्ठ-संख्या ५१२, मूल्य ··· ··· ··· १।)

मानस-शंका-समाधान–चित्र रंगीन १, पृष्ठ १९८, मूल्य ··· ··· ··· ॥)

ईशावास्योपनिषद्–सानुवाद, शांकरभाष्यसहित, सचित्र, पृष्ठ ५२, मूल्य ··· ··· ≡)

केनोपनिषद्–सानुवाद, शांकरभाष्यसहित, सचित्र, पृष्ठ १४६, मूल्य ··· ··· ॥)

कठोपनिषद्–सानुवाद, शांकरभाष्यसहित, सचित्र, पृष्ठ १७८, मूल्य ··· ··· ॥–)

मुण्डकोपनिषद्–सानुवाद, शांकरभाष्यसहित, सचित्र, पृष्ठ १३२, मूल्य ··· ··· ।≡)

प्रश्नोपनिषद्–सानुवाद, शांकरभाष्यसहित, सचित्र, पृष्ठ १२८, मूल्य ··· ··· ।≡)

उपर्युक्त पाँचों उपनिषद् एक जिल्दमें सजिल्द (उपनिषद्-भाष्य खण्ड १) हिन्दी-अनुवाद और शांकरभाष्यसहित, मूल्य ··· ··· ··· ··· २।–)

*__माण्डूक्योपनिषद्__–श्रीगौडपादीय कारिकासहित, सानुवाद, शांकरभाष्यसहित, सचित्र, पृष्ठ २०४, मूल्य ··· १)

तैत्तिरीयोपनिषद्–सानुवाद, शांकरभाष्यसहित, सचित्र, पृष्ठ २५२, मूल्य ··· ··· ॥।–)

ऐतरेयोपनिषद्–सानुवाद, शांकरभाष्यसहित, सचित्र, पृष्ठ १०४, मूल्य ··· ··· ।=)

* उपर्युक्त तीनों उपनिषद् एक जिल्दमें सजिल्द (उपनिषद्-भाष्य खण्ड २) मूल्य ··· ··· २।=)

बृहदारण्यकोपनिषद्–(उपनिषद्-भाष्य खण्ड ४) सानुवाद, शांकरभाष्यसहित, पृष्ठ १४०८, चित्र ६, सजिल्द, मूल्य ५॥)

श्वेताश्वतरोपनिषद्–सानुवाद, शांकरभाष्यसहित, सचित्र, पृष्ठ २६८, मूल्य ··· ··· ॥।=)

श्रीमद्भागवत-महापुराण–मूल-गुटका, कपड़ेकी जिल्द, मूल्य ··· ··· ··· १॥)

---

* संस्करण समाप्त हो गया है, पुनर्मुद्रण होनेपर मिल सकेगा।

अध्यात्मरामायण–सानुवाद, ८ चित्र, एक तरफ श्लोक और उनके सामने ही अर्थ है, पृष्ठ ४०२, मूल्य १॥), सजिल्द २)
चारों धामकी झाँकी–वर्णनसहित, सचित्र, पृष्ठ-संख्या ४३२, मूल्य ··· ··· ··· १।)
श्रीतुकाराम-चरित्र–९ चित्र, पृष्ठ ५९२, मूल्य अजिल्द १≋), सजिल्द ··· ··· १॥)
विनय-पत्रिका–गो॰ श्रीतुलसीदासकृत, सरल हिन्दी भावार्थसहित, १ चित्र, अनु॰—श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार, पृष्ठ ४७२, मूल्य अजिल्द १), सजिल्द ··· ··· ··· १।)
*गीतावली–गो॰ श्रीतुलसीदासकृत, अनुवादक–श्रीमुनिलालजी, पृष्ठ ४३६, मूल्य अजिल्द १), सजिल्द ··· १।)
श्रीश्रीचैतन्य-चरितावली–(खण्ड २) पृष्ठ ३७६, ९ चित्र, मूल्य अजिल्द १=), सजिल्द ··· १।=)
श्रीश्रीचैतन्य-चरितावली–(,, ४) पृष्ठ २१६, १४ चित्र, मूल्य अजिल्द ।।=), सजिल्द ··· ।।।=)
श्रीश्रीचैतन्य-चरितावली–(,, ५) पृष्ठ २८०, १० चित्र, मूल्य अजिल्द ।।।), सजिल्द ··· १)
तत्त्व-चिन्तामणि–(भाग १)–सचित्र, लेखक—श्रीजयदयालजी गोयन्दका, पृष्ठ ३५२, मूल्य ।।=), सजिल्द ··· ।।।–)
तत्त्व-चिन्तामणि–(भाग २)–सचित्र, लेखक—श्रीजयदयालजी गोयन्दका, पृष्ठ ६३२, मूल्य ।।।=), सजिल्द ··· १=)
तत्त्व-चिन्तामणि–(भाग ३) सचित्र, लेखक—श्रीजयदयालजी गोयन्दका, पृष्ठ ४६०, मूल्य ।।≋), सजिल्द ··· ।।।=)
तत्त्व-चिन्तामणि–(भाग ४) सचित्र, लेखक—श्रीजयदयालजी गोयन्दका, पृष्ठ ५७६, मूल्य ।।।–), सजिल्द ··· १)
तत्त्व-चिन्तामणि–(भाग ५) सचित्र, लेखक—श्रीजयदयालजी गोयन्दका, पृष्ठ ५०४, मूल्य ।।।–), सजिल्द ··· १)
तत्त्व-चिन्तामणि–(भाग १)–(छोटे आकारका गुटका संस्करण) सचित्र, पृष्ठ ४४८, मूल्य ।–), सजिल्द ··· ।=)
तत्त्व-चिन्तामणि–(भाग २)–(छोटे आकारका गुटका संस्करण) सचित्र, पृष्ठ ७५०, मूल्य ।=), सजिल्द ··· ।।)
तत्त्व-चिन्तामणि–(भाग ३)–(छोटे आकारका गुटका संस्करण) सचित्र, पृष्ठ ५५६, मूल्य ।–), सजिल्द ··· ।=)
तत्त्व-चिन्तामणि–(भाग ४)–(छोटे आकारका गुटका संस्करण) सचित्र, पृष्ठ ६९६, मूल्य ।=), सजिल्द ··· ।।)
तत्त्व-चिन्तामणि–(भाग ५)–(छोटे आकारका गुटका संस्करण) सचित्र, पृष्ठ ६२४, मूल्य ।=), सजिल्द ··· ।।)
विष्णुसहस्रनाम–शाकरभाष्य हिन्दी-टीकासहित, सचित्र, भाष्यके सामने ही उसका अर्थ छापा गया है। पृष्ठ २८४, मूल्य ।।=)
*ढाई हजार अनमोल बोल (संत-वाणी)–सम्पादक–श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार, पृष्ठ ३८४, मूल्य ··· ।।=)
कवितावली–गोस्वामी श्रीतुलसीदासकृत, सटीक, १ चित्र, पृष्ठ २२४, मूल्य ··· ··· ।।–)
दोहावली–सानुवाद, अनुवादक–श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार, १ रंगीन चित्र, पृष्ठ १९६, मूल्य ··· ।।)
*स्तोत्ररत्नावली–चुने हुए स्तोत्र, हिन्दी अनुवादसहित, पृष्ठ ३१६, मूल्य ··· ··· ।।)
तुलसीदल–लेखक—श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार, सचित्र, पृष्ठ २८४, मूल्य अजिल्द ॥), सजिल्द ··· ।।≋)
सुखी जीवन–लेखिका—श्रीमैत्रीदेवी, पृष्ठ २१६, मूल्य ··· ··· ··· ।।)
नैवेद्य–श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके २८ लेख और ६ कविताओंका संग्रह, सचित्र, पृष्ठ २६२, मूल्य ।।), सजिल्द ··· ।।≋)
तत्त्व-विचार–लेखक–श्रीज्वालाप्रसादजी कानोड़िया, तात्त्विक लेखोंका संग्रह, सचित्र, पृष्ठ २०४, मूल्य ··· ।=)
उपनिषदोंके चौदह रत्न–पृष्ठ १२, चित्र १, मूल्य ··· ··· ··· ।=)
लघुसिद्धान्तकौमुदी–परीक्षोपयोगी सटिप्पण, पृष्ठ ३६४, मूल्य ··· ··· ··· ।=)
भक्त नरसिंह मेहता–सचित्र, पृष्ठ १६०, मूल्य ··· ··· ··· ··· ।=)
विवेक-चूडामणि–सानुवाद, सचित्र, पृष्ठ १८४, मूल्य अजिल्द ।–), सजिल्द ··· ··· ।।)
प्रेम-दर्शन–नारदरचित भक्तिसूत्रोंकी विस्तृत टीका, टीकाकार–श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार, सचित्र, पृष्ठ १८८, मूल्य ।–)
भक्त बालक–गोविन्द, मोहन आदि बालक भक्तोंकी ५ कथाएँ हैं, पृष्ठ ८०, चित्र ४ रंगीन, १ सादा, मूल्य ।–)
भक्त नारी–स्त्रियोंमें धार्मिक भाव बढ़ानेके लिये बहुत उपयोगी मीरा, शबरी आदिकी कथाएँ हैं, पृष्ठ ६८, १ रंगीन, ५ सादा चित्र, मूल्य ··· ··· ··· ··· ।–)

* संस्करण समाप्त हो गया है, पुनर्मुद्रण होनेपर मिल सकेगा।

भक्त-पञ्चरत्न–यह रघुनाथ, दामोदर आदि पाँच भक्तोंकी कथाओंकी पुस्तक सद्गृहस्थोंके लिये बड़े कामकी है, पृष्ठ ८८, मूल्य ··· ··· ··· |-)
आदर्श भक्त–शिवि, रन्तिदेव आदिकी ७ कथाएँ, पृष्ठ ९८, १ रंगीन, ११ लाइन चित्र, मूल्य ··· |-)
भक्त-सप्तरत्न–दामा, रघु आदिकी गाथाएँ, पृष्ठ ८८, चित्र ३, मूल्य ··· ··· ··· |-)
भक्त-चन्द्रिका–सखू, विट्ठल आदि ६ भक्तोंकी कथाएँ, पृष्ठ ८०, चित्र ३, मूल्य ··· ··· |-)
भक्त-कुसुम–जगन्नाथ, हिम्मतदास आदिकी ६ कथाएँ, पृष्ठ ८४, चित्र २, मूल्य ··· ··· |-)
प्रेमी भक्त–बिल्वमंगल, जयदेव आदिकी ५ कथाएँ, पृष्ठ ९०, ५ चित्र, मूल्य ··· ··· |-)
प्राचीन भक्त–मार्कण्डेय, कण्डु, उत्तङ्क आदिकी १५ कथाएँ, पृष्ठ १५२, चित्र बहुरंगे ४, मूल्य ··· ||)
भक्त-सरोज–गङ्गाधरदास, श्रीधर आदिकी १० कथाएँ, पृष्ठ १०४, चित्र बहुरंगे ३, मूल्य ··· |=)
भक्त-सुमन–नामदेव, राँका-बाँका आदिकी १० कथाएँ, पृष्ठ ११२, चित्र बहुरंगे २, सादे २, मूल्य ··· ··· |=)
भक्त-सौरभ–व्यासदासजी, प्रयागदासजी आदिकी ५ कथाएँ, पृष्ठ ११०, चित्र बहुरंगे १, मूल्य ··· |-)
भक्तराज हनुमान्–सचित्र, पृष्ठ ८०, मूल्य ··· ··· ··· ··· |-)
सत्यप्रेमी हरिश्चन्द्र–पृष्ठ ५२, चित्र रंगीन ४, मूल्य ··· ··· ··· |-)
प्रेमी भक्त उद्धव–पृष्ठ-संख्या ६४, रंगीन चित्र १, मूल्य ··· ··· ··· ≡)
महात्मा विदुर–पृष्ठ-संख्या ६०, १ सादा चित्र, मूल्य ··· ··· ··· =)||
भक्तराज ध्रुव–पृष्ठ-संख्या ४८, २ रंगीन चित्र, मूल्य ··· ··· ··· ≡)
व्रजकी झाँकी–वर्णनसहित, पृष्ठ १०४, ५६ चित्र, मूल्य ··· ··· ··· |)
परमार्थ-पत्रावली (भाग १)–श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके ५१ पत्रोंका संग्रह, पृष्ठ १२४, सचित्र, मूल्य ··· |)
परमार्थ-पत्रावली (भाग २)–८० पत्र, सचित्र, पृष्ठ २००, मूल्य ··· ··· ··· |)
कल्याणकुञ्ज–मननीय तरंगोंका संग्रह, सचित्र, पृष्ठ १३६, मूल्य ··· ··· ··· |)
महाभारतके आदर्श पात्र–पृष्ठ १२४, मूल्य ··· ··· ··· ··· |)
मानवधर्म–लेखक—श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार, पृष्ठ ९८, मूल्य ··· ··· ··· ≡)
आदर्श भ्रातृ-प्रेम–लेखक—श्रीजयदयालजी गोयन्दका, पृष्ठ १०४, मूल्य ··· ··· ≡)
गीता-निबन्धावली–गीताकी अनेक बातें समझनेके लिये बहुत उपयोगी है, पृष्ठ १००, मूल्य =)||
साधन-पथ–लेखक—श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार, सचित्र, पृष्ठ ६८, मूल्य ··· ··· =)||
अपरोक्षानुभूति–शंकरस्वामिकृत, सानुवाद, पृष्ठ ४०, सचित्र, मूल्य ··· ··· ··· =)||
मनन-माला–यह भावुक भक्तोंके बड़े कामकी चीज है, पृष्ठ ५४, सचित्र, मूल्य ··· ··· =)||
नवधा भक्ति–लेखक—श्रीजयदयालजी गोयन्दका, पृष्ठ ६०, सचित्र, मूल्य ··· ··· =)
बालशिक्षा–लेखक—श्रीजयदयालजी गोयन्दका, पृष्ठ ६८, सचित्र, मूल्य ··· ··· =)

भजन-संग्रह–प्रथम भाग, पृष्ठ-संख्या १८०, मूल्य =)
भजन-संग्रह–द्वितीय भाग, पृष्ठ-संख्या १६८, मूल्य =)
भजन-संग्रह–तृतीय भाग, पृष्ठ-संख्या १२८, मूल्य =)
भजन-संग्रह–चतुर्थ भाग, पृष्ठ-संख्या १६०, मूल्य =)
भजन-संग्रह–पञ्चम भाग, पृष्ठ-संख्या १४०, मूल्य =)
चित्रकूटकी झाँकी–पृष्ठ २०, मूल्य ··· –)||
स्त्रीधर्मप्रश्नोत्तरी–पृष्ठ ५६, मूल्य ··· –)||
नारीधर्म–पृष्ठ ४८, मूल्य ··· –)||
गोपी-प्रेम–पृष्ठ ५२, मूल्य ··· –)||
मनुस्मृति–द्वितीय अध्याय सार्थ, पृष्ठ ५६, मूल्य –)||
हनुमानबाहुक–सचित्र, सानुवाद, पृष्ठ ४०, मूल्य –)||
ध्यानावस्थामें प्रभुसे वार्तालाप–पृष्ठ ३८, मूल्य –)||
श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्रम्–सटीक, पृष्ठ ९६, मूल्य अजिल्द –)||, सजिल्द ···



Our English Publications

The Philosophy of Love—*(By Hanumanprasad Poddar)*
The Story of Mira Bai—(By Bankey Behari)* ...
Gems of Truth (First Series)—(By Jayadayal Goyanaka)*
Songs From Bhartrihari—*(By Lal Gopal Mukerji and Bankey Behari)*
Way to God-Realization—*(By Hanumanprasad Poddar)*
Gopis' Love for Sri Krishna—*(By Hanumanprasad Poddar)*
The Bhagavadgita—*(With Sanskrit text and an English translation)* 0-4-0 *Bound*
The Divine Name and Its Practice—*(By Hanumanprasad Poddar)*
The Immanence of God—*(By Madan Mohan Malaviya)*
Wavelets of Bliss—*(By Hanumanprasad Poddar)*
What is God—*(By Jayadayal Goyandka)*
What is Dharma—*(By Jayadayal Goyandka)*
The Divine Message—*(By Hanumanprasad Poddar)*

कुछ ध्यान देने योग्य बातें—

(१) हर एक पत्रमें नाम, पता, डाकघर, जिला बहुत साफ देवनागरी या अंग्रेजी अक्षरोंमें लिखें। साथ ही उत्तरके लिये जवाबी कार्ड या टिकट आना चाहिये।

(२) स्टेशनका नाम जरूर लिखना चाहिये। पुस्तकोंका वजन देखकर सुविधानुसार माल डाकसे या मालगाड़ीसे अथवा पारसलसे भेजा जा सकता है। आर्डरके साथ कुछ दाम पेशगी भेजने चाहिये।

(३) थोड़ी पुस्तकोंपर डाकखर्च अधिक पड़ जानेके कारण एक रुपयेसे कमकी वी० पी० प्रायः नहीं भेजी जाती, इससे कमकी किताबोंकी कीमत, डाकमहसूल और रजिस्ट्रीखर्च जोड़कर दाम भेजें।

(४) पुस्तकका दाम, ८१ एक सेरका ॥) के हिसाबसे डाकमहसूल, ≡) रजिस्ट्रीखर्च तथा १) की पुस्तकपर)॥ पैकिंगखर्च जोड़कर दाम आर्डरके साथ ही भेज देना चाहिये ताकि ग्राहकोंको वी० पी० का अलग खर्च न देना पड़े एवं पुस्तकें भी शीघ्र मिल सकें। रेलसे मँगानेवाले सज्जन पुस्तकके दाम, ।)॥ रजिस्ट्रीखर्च तथा १) की पुस्तकपर)॥ पैकिंगखर्च जोड़कर दाम भेजें।

(५) ५०) की पुस्तकें लेनेसे ग्राहकोंके रेलवे स्टेशनपर मालगाड़ीसे फ्री-डिलेवरी तथा रेलपारसलसे आधा महसूल बाद दिया जायगा। फ्री-डिलेवरीमें बिल्टी भेजनेमें लगनेवाला डाकखर्च, रजिस्ट्रीखर्च या मनीआर्डरकी फीस या बैंक-चार्ज आदि शामिल नहीं हैं।

(६) आर्डर आनेपर भी उसका माल भेजनेके लिये हम बाध्य नहीं हैं।

(७) 'कल्याण' रजिस्टर्ड होनेसे उसका महसूल कम लगता है और वह कल्याणके ग्राहकोंको नहीं देना पड़ता, पर प्रेसकी पुस्तकों और चित्रोंपर ॥) सेर डाकमहसूल लगता है, जो कि ग्राहकोंके जिम्मे होता है। इसलिये 'कल्याण' के साथ किताबें और चित्र नहीं भेजे जा सकते। अतः गीताप्रेसकी पुस्तक आदिके लिये अलग आर्डर देना चाहिये।

व्यवस्थापक—**गीताप्रेस, गोरखपुर**

* The edition has been exhausted, may be had on being reprinted.

☞ गोरखपुरसे मँगवानेके पहले अपने गाँवके पुस्तक-विक्रेतासे अवश्य पूछ लें। इससे आप भारी डाकखर्च और रेलपारसलखर्चसे बच सकते हैं।

श्रीहरिः

चित्र-सूची

गीताप्रेस, गोरखपुरके सुन्दर, सस्ते, धार्मिक दर्शनीय चित्र

सभी चित्र बढ़िया आर्टपेपरपर सुन्दर छपे हुए हैं।

कागज साइज १५×२० इंचके बड़े चित्र

सुनहरी, नेट दाम प्रत्येकका ≈)॥

४ आनन्दकदका आँगनमें खेल | ५ आनन्दकद पालनेमें

रंगीन, नेट दाम प्रत्येकका =)॥

१३ गोपियोंकी योगधारणा | ४५ कौसल्याकी गोदमें ब्रह्म | ५६ जटायुकी स्तुति

कागज-साइज ७॥×१० इंच

बहुरंगे चित्र, नेट दाम)॥ ½ प्रतिचित्र

२६० गुरुसेवा
२७५ देवताओंके द्वारा भगवान् श्रीरामकी स्तुति
२७६ बालिवध और ताराविलाप
२९४ वात्सल्य (माँका प्यार)
३१० आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्र
३१३ भक्त भावन भगवान् श्रीकृष्ण
३१७ मथुरासे गोकुल
३१८ दुलारा लाल
३१९ तृणावर्त-उद्धार
३२० वात्सल्य
३२६ भवसागरसे उद्धार करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण
३३० वर्षामें राम श्याम
३३६ शिशुपाल उद्धार
३४१ अश्व-परिचर्या
३४४ राजा बहुलाश्वकृत श्रीकृष्ण पूजन नं० २
३४६ मुरलीका असर
३४७ व्याधकी क्षमा प्रार्थना
३४८ योगेश्वरका योगधारणासे परम प्रयाण
३४९ शिव
३५१ सदाशिव
३५४ योगाग्नि
३५७ उमा-महेश्वर
३५९ जगज्जननी उमा
३६१ प्रदोष-नृत्य
३६८ श्रीकृष्णरूपसे श्रीशिव रूपकी स्तुति और वरदानलाभ
३६९ शिव-राम-संवाद
३७० काशी-मुक्ति
३७२ श्रीविष्णु
३७८ द्वैतसम्प्रदायके आद्याचार्य श्रीब्रह्माजी
३८० ब्रह्म-स्तुति
३८२ मत्स्यावतार
३८७ भगवान् परशुरामरूपमें
३९० भगवान् ब्रह्मारूपमें
३९२ भगवान् दत्तात्रेयरूपमें
४०५ देवी कूष्माण्डा
४१९ शङ्करके ध्येय बाल श्रीकृष्ण
४२१ निमाई निताई
४२९ प्रेमी भक्त रसखान
४३० गोलोकमें नरसी मेहता
४३१ परम वैराग्यवान् भक्त दम्पति राँका बाँका
४३३ जडयोग
४३५ मानससरोवर
४३६ स्तवन (अवतारके लिये प्रार्थना)
४३९ महामन्त्र नं० १
४५१ यज्ञपत्नीको भगवत्प्राप्ति
४५४ श्रीकृष्ण उद्धवको सन्देश देकर व्रज भेज रहे हैं
४५९ सूरके श्याम ब्रह्म
४६० भगवान् राम और सनकादि मुनि
४६४ गोस्वामी तुलसीदास महाराज
४६५ चित्रकूटमें
४६९ मनु शतरूपापर कृपा
४७२ भरद्वाज-भरत
४७९ लक्ष्मणको उपदेश
४८८ समदर्शिता
४९१ अनन्य चिन्तनका फल
४९३ भगवत्पूजन
४९४ भजनकी महिमा
४९६ सप्तर्षि
४९७ श्रीगङ्गाजी

फुटकर एवं 'कल्याण' तथा 'कल्याण-कल्पतरु'के बचे हुए कुछ चित्र

सुनहरी नेट दाम -) प्रतिचित्र

प्रेमसाधनाकेसाध्य | जगज्जननी श्रीराधा | शोभासिन्धु

रंगीन

त्रिविध यज्ञ	भीष्मपितामहकी सेवामें पाण्डव	पूरुका ययातिको यौवनदान	प्रह्लादको अजगरमुनिका उपदेश
श्रीदक्षिणामूर्ति	भीमसेन और द्रौपदी; कीचक-वध	सुदामाके तन्दुल	महाभारत-लेखन
Vedanta Personified	जमदग्नि-परशुराम	श्रीकमलाजी	परमगुरु मारुति
माखनप्रेमी बालमुकुन्द (माँकी गोदमें)	संजयको दिव्यदृष्टि	श्रीचैतन्यका नाम-संकीर्तन	चैतन्यभावकी साधना
शिबिका आत्मत्याग	गुरुभक्त एकलव्यका आदर्श त्याग	भरतजीका अस्त्र-कौशल	दुर्योधन और भीमसेनका गदायुद्ध
सेनापति द्रोणाचार्य		राधाकृष्ण	अवतार
		उमा, इन्द्र, वरुण और भृगु	

महाभारताङ्कके फुटकर रंगीन चित्र नेट दाम)॥ प्रतिचित्र

श्रीशेषशायी नारायण	रावणसे डरी हुई सीताजी और	उमा-शङ्कर	द्रौपदीको सान्त्वना
भीष्मपितामहपर भगवान् श्रीकृष्णकी कृपा	सीताजीके तेजसे भयभीत रावण	भगवान् विष्णु	महाभारतके प्रतिपाद्य
		गङ्गावतरण	द्रौपदीका स्वयंवर

कागज-साइज ५×७॥ इंच

बहुरंगे चित्र, नेट दाम २॥) सैकड़ा

१०४८ चैतन्यका अपूर्व त्याग	१०५३ भक्त जनाबाई और भगवान्	१०७१ श्रीमनु-शतरूपा

आवश्यक सूचनाएँ

(१) चित्रका नंबर, नाम जिस साइजमें दिया हुआ है वह उसी साइजमें मिलेगा, आर्डर देते समय नंबर भी देख लें। समझकर आर्डरमें नंबर, नाम अवश्य लिख दें। (२) ऽ१ एक सेरमें १५×२० साइजके चित्र ३३, ७॥×१० के १२० और ५×७॥ के ३०० चढ़ते हैं। इस हिसाबसे पहले आधा सेरका ।=) बादमें प्रति ऽ॥ का ।) डाक-महसूल, ≡) रजिस्ट्री-खर्च, प्रतिरुपया -) पैकिंग-खर्च तथा चित्रोंका दाम जोड़कर रकम पेशगी भेज देनी चाहिये। (३) केवल २ या ४ चित्र पुस्तकोंके साथ या अकेले नहीं भेजे जाते, क्योंकि रास्तेमें टूट जाते हैं। (४) 'कल्याण'के साथ भी चित्र नहीं भेजे जाते। (५) स्टाकमें चित्र समय-समयपर कम-अधिक होते रहते हैं, इसलिये चित्रोंका आर्डर आनेपर जितने चित्र स्टाकमें उस समय तैयार रहेंगे उतने ही चित्र भेज दिये जायँगे। (६) जिन चित्रोंके नंबर और नाम उठा दिये गये हैं, वे चित्र अब स्टाकमें समाप्त हो गये हैं। उनके दुबारा छपनेकी आशा भी कम है।

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, गोरखपुर

कल्याणके नियम

उद्देश्य—भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, धर्म और सदाचार-समन्वित लेखोंद्वारा जनताको कल्याणके पथपर पहुँचानेका प्रयत्न करना इसका उद्देश्य है।

नियम

(१) भगवद्भक्ति, भक्तचरित, ज्ञान, वैराग्यादि ईश्वरपरक, कल्याणमार्गमें सहायक, अध्यात्मविषयक, व्यक्तिगत आक्षेपरहित लेखोंके अतिरिक्त अन्य विषयोंके लेख भेजनेका कोई सज्जन कष्ट न करें। लेखोंको घटाने-बढ़ाने और छापने अथवा न छापनेका अधिकार सम्पादकको है। अमुद्रित लेख बिना माँगे लौटाये नहीं जाते। **लेखोंमें प्रकाशित मतके लिये सम्पादक उत्तरदाता नहीं हैं।**

(२) इसका डाकव्यय और विशेषाङ्कसहित अग्रिम वार्षिक मूल्य भारतवर्षमें ४=) और भारतवर्षसे बाहरके लिये ६॥=) (१० शिलिंग) नियत है। **बिना अग्रिम मूल्य प्राप्त हुए पत्र प्रायः नहीं भेजा जाता।**

(३) 'कल्याण'का नया वर्ष अक्टूबरसे आरम्भ होकर सितम्बरमें समाप्त होता है, अतः ग्राहक अक्टूबरसे ही बनाये जाते हैं। वर्षके किसी भी महीनेमें ग्राहक बनाये जा सकते हैं, किन्तु अक्टूबरके अङ्कके बाद निकले हुए प्रत्येकके सब अङ्क उन्हें लेने होंगे। 'कल्याण' के बीचके किसी अङ्कसे ग्राहक नहीं बनाये जाते; छः या तीन महीनेके लिये भी ग्राहक नहीं बनाये जाते।

(४) इसमें व्यवसायियोंके विज्ञापन किसी दरमें प्रकाशित नहीं किये जाते।

(५) कार्यालयसे 'कल्याण' दो-तीन बार जाँच करके प्रत्येक ग्राहकके नामसे भेजा जाता है। यदि किसी मासका अङ्क समयपर न पहुँचे तो अपने डाकघरसे लिखा-पढ़ी करनी चाहिये। वहाँसे जो उत्तर मिले, वह हमें भेज देना चाहिये। डाकघरका जवाब शिकायती पत्रके साथ न आनेसे दूसरी प्रति बिना मूल्य मिलनेमें अड़चन हो सकती है।

(६) पता बदलनेकी सूचना कम-से-कम १५ दिन पहले कार्यालयमें पहुँच जानी चाहिये। लिखते समय ग्राहक-संख्या, पुराना और नया नाम-पता साफ-साफ लिखना चाहिये। महीने-दो-महीनोंके लिये बदलवाना हो, तो अपने पोस्टमास्टरको ही लिखकर प्रबन्ध कर लेना चाहिये। पता-बदलनेकी सूचना न मिलनेपर अङ्क पुराने पतेसे चले जानेकी अवस्थामें दूसरी प्रति बिना मूल्य न भेजी जा सकेगी।

(७) अक्टूबरसे बननेवाले ग्राहकोंको रंग-बिरंगे चित्रोंवाला अक्टूबरका अङ्क (चालू वर्षका विशेषाङ्क) दिया जायगा। विशेषाङ्क ही अक्टूबरका तथा वर्षका पहला अङ्क होगा। फिर सितम्बरतक महीने-महीने नये अङ्क मिला करेंगे।

(८) चार आना एक संख्याका मूल्य मिलनेपर नमूना भेजा जाता है। ग्राहक बननेपर वह अङ्क न लें तो ।) बाद दिया जा सकता है।

आवश्यक सूचनाएँ

(९) 'कल्याण'में किसी प्रकारका कमीशन या 'कल्याण'की किसीको एजेन्सी देनेका नियम नहीं है।

(१०) पुराने अङ्क, फाइलें तथा विशेषांक कम या रियायती मूल्यमें नहीं दिये जाते।

(११) ग्राहकोंको अपना नाम-पता स्पष्ट लिखनेके साथ-साथ **ग्राहक-संख्या** अवश्य लिखनी चाहिये।

(१२) पत्रके उत्तरके लिये जवाबी कार्ड या टिकट भेजना आवश्यक है।

(१३) ग्राहकोंको चंदा मनीआर्डरद्वारा भेजना चाहिये।

(१४) प्रेस-विभाग और कल्याण-विभागको अलग-अलग समझकर अलग-अलग पत्र-व्यवहार करना और रुपया आदि भेजना चाहिये। 'कल्याण'के साथ पुस्तकें और चित्र नहीं भेजे जा सकते। प्रेससे १) से कमकी वी० पी० प्रायः नहीं भेजी जाती।

(१५) चालू वर्षके विशेषाङ्कके बदले पिछले वर्षोंके विशेषाङ्क नहीं दिये जाते।

(१६) मनीआर्डरके कूपनपर रुपयोंकी तादाद, रुपये भेजनेका मतलब, ग्राहक-नम्बर, पूरा पता आदि सब बातें साफ-साफ लिखनी चाहिये।

(१७) प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र, ग्राहक होनेकी सूचना, मनीआर्डर आदि व्यवस्थापक "कल्याण" गोरखपुरके नामसे और सम्पादकसे सम्बन्ध रखनेवाले पत्रादि सम्पादक "कल्याण" गोरखपुरके नामसे भेजने चाहिये।

(१८) स्वयं आकर ले जाने या एक साथ एकसे अधिक अङ्क रजिस्ट्रीसे या रेलसे मँगानेवालोंसे चंदा कुछ कम नहीं लिया जाता।

व्यवस्थापक—कल्याण,

कल्याणके नियम

उद्देश्य—भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, धर्म और सदाचार-समन्वित लेखोंद्वारा जनताको कल्याणके पथपर पहुँचानेका प्रयत्न करना इसका उद्देश्य है।

नियम

(१) भगवद्भक्ति, भक्तचरित, ज्ञान, वैराग्यादि ईश्वर-परक, कल्याणमार्गमें सहायक, अध्यात्मविषयक, व्यक्तिगत आक्षेपरहित लेखोंके अतिरिक्त अन्य विषयोंके लेख भेजनेका कोई सज्जन कष्ट न करें। लेखोंको घटाने-बढ़ाने और छापने अथवा न छापनेका अधिकार सम्पादकको है। अमुद्रित लेख बिना माँगे लौटाये नहीं जाते। लेखोंमें प्रकाशित मतके लिये सम्पादक उत्तरदाता नहीं हैं।

(२) इसका डाकव्यय और विशेषाङ्कसहित अग्रिम वार्षिक मूल्य भारतवर्षमें ४≡) और भारतवर्षसे बाहरके लिये ६॥≈) (१० शिलिंग) नियत है। बिना अग्रिम मूल्य प्राप्त हुए पत्र प्रायः नहीं भेजा जाता।

(३) 'कल्याण'का नया वर्ष अक्टूबरसे आरम्भ होकर सितम्बरमें समाप्त होता है, अतः ग्राहक अक्टूबरसे ही बनाये जाते हैं। वर्षके किसी भी महीनेमें ग्राहक बनाये जा सकते हैं; किन्तु अक्टूबरके अङ्कके बाद निकले हुए तबतकके सब अङ्क उन्हें लेने होंगे। 'कल्याण' के बीचके किसी अङ्कसे ग्राहक नहीं बनाये जाते; छः या तीन महीनेके लिये भी ग्राहक नहीं बनाये जाते।

(४) इसमें व्यवसायियोंके विज्ञापन किसी भी दरमें प्रकाशित नहीं किये जाते।

(५) कार्यालयसे 'कल्याण' दो-तीन बार जाँच करके प्रत्येक ग्राहकके नामसे भेजा जाता है। यदि किसी मासका अङ्क समयपर न पहुँचे तो अपने डाकघरसे लिखा-पढ़ी करनी चाहिये। वहाँसे जो उत्तर मिले, वह हमें भेज देना चाहिये। डाकघरका जवाब शिकायती पत्रके साथ न आनेसे दूसरी प्रति बिना मूल्य मिलनेमें अड़चन हो सकती है।

(६) पता बदलनेकी सूचना कम-से-कम १५ दिन पहले कार्यालयमें पहुँच जानी चाहिये। लिखते समय ग्राहक-संख्या, पुराना और नया नाम-पता साफ-साफ लिखना चाहिये। महीने-दो-महीनोंके लिये बदलवाना हो, तो अपने पोस्टमास्टरको ही लिखकर प्रबन्ध कर लेना चाहिये। पता-बदलनेकी सूचना न मिलनेपर अङ्क पुराने पतेसे चले जानेकी अवस्थामें दूसरी प्रति बिना मूल्य न भेजी जा सकेगी।

(७) अक्टूबरसे बननेवाले ग्राहकोंको रंग-बिरंगे चित्रोंवाला अक्टूबरका अङ्क (चालू वर्षका विशेषाङ्क) दिया जायगा। विशेषाङ्क ही अक्टूबरका तथा वर्षका पहला अङ्क होगा। फिर सितम्बरतक महीने-महीने नये अङ्क मिला करेंगे।

(८) चार आना एक संख्याका मूल्य मिलनेपर नमूना भेजा जाता है। ग्राहक बननेपर वह अङ्क न लें तो ।) बाद दिया जा सकता है।

आवश्यक सूचनाएँ

(९) 'कल्याण'में किसी प्रकारका कमीशन या 'कल्याण'की किसीको एजेन्सी देनेका नियम नहीं है।

(१०) पुराने अङ्क, फाइलें तथा विशेषांक कम या रियायती मूल्यमें नहीं दिये जाते।

(११) ग्राहकोंको अपना नाम-पता स्पष्ट लिखनेके साथ-साथ **ग्राहक-संख्या** अवश्य लिखनी चाहिये।

(१२) पत्रके उत्तरके लिये जवाबी कार्ड या टिकट भेजना आवश्यक है।

(१३) **ग्राहकोंको चंदा मनीआर्डरद्वारा भेजना चाहिये।**

(१४) प्रेस-विभाग और कल्याण-विभागको अलग-अलग समझकर अलग-अलग पत्र-व्यवहार करना और रुपया आदि भेजना चाहिये। 'कल्याण'के साथ पुस्तकें और चित्र नहीं भेजे जा सकते। प्रेससे १) से कमकी वी० पी० प्रायः नहीं भेजी जाती।

(१५) चालू वर्षके विशेषाङ्कके बदले पिछले वर्षोंके विशेषाङ्क नहीं दिये जाते।

(१६) **मनीआर्डरके कूपनपर रुपयोंकी तादाद, रुपये भेजनेका मतलब, ग्राहक-नम्बर, पूरा पता आदि सब बातें साफ-साफ लिखनी चाहिये।**

(१७) प्रबन्ध-सम्बन्धी पत्र, ग्राहक होनेकी सूचना, मनीआर्डर आदि **व्यवस्थापक "कल्याण" गोरखपुरके** नामसे और सम्पादकसे सम्बन्ध रखनेवाले पत्रादि **सम्पादक "कल्याण" गोरखपुरके** नामसे भेजने चाहिये।

(१८) स्वयं आकर ले जाने या एक साथ एकसे अधिक अङ्क रजिस्ट्रीसे या रेलसे मँगानेवालोंसे चंदा कुछ कम नहीं लिया जाता।